श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

श्रीश्रील-श्रीजीवगोस्वामी-प्रभुपाद-विरचितम्

सवृत्तिकं

श्रीहरिनामामृतव्याकरणम्



श्रीहरिदास शास्त्री

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

सवृत्तिकं

श्रीहरिनामामृतव्याकरणम्

श्रीगौड़ीयवैष्णवसम्प्रदायाचार्य्यवर्य्येण-वेद-षड् दर्शनेतिहास-पुराणशब्दानुशासन-ज्योतिष-काव्यालङ्कार-सङ्गीत-छन्दः-शास्त्रादिपारावारपारीणेनमहामहोपाध्यायाध्यापक-निकरैः परमबृहत्तमसिद्धसङ्घैश्च निषेवितपदपङ्कजेन वैष्णवसिद्धान्तराज्य-रक्षणैकसेनापतिना श्रील-सनातन-रूपानुगवरेण परमहंसकुलमुकुट-मणिना श्रील-श्रीजीवगोस्वामिप्रभुणा प्रणीतम्

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन न्यायवैशेषिकशास्त्रि, नव्यन्यायाचार्य्य,
काव्यव्याकरणसांख्यमीमांसा वेदान्ततर्कतर्कतर्क
वैष्णवदर्शनतीर्थाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा
सम्पादितम् ।

सद्ग्रन्थ प्रकाशक
श्रीगदाधरगौरहरिप्रेस
श्रीहरिदास निवास, कालीदह,
पो०—वृन्दावन, जिला—मथुरा,
(उत्तर प्रदेश) पिन—२८११२१

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

मुद्रक॰प्रकाशक :—

श्रीहरिदासशास्त्री

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस, श्रीहरिदास निवास, कालीदह,

पो०—वृन्दावन, जिला—मथुरा (उ० प्र०)

पिन—२८११२१

प्रथमसंस्करणम्—एकसहस्रम्

प्रकाशन सहयोग—१०५.००

प्रकाशनतिथि—

श्रीश्रीजगन्नाथदेवस्यरथयात्रा

श्रीगौराङ्गाब्द ४९९

५ आषाढ़

वङ्गाब्द १३९२

खृष्टाब्द १९८५ २०जून

✽ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ✽

विज्ञप्तिः

श्रीचैतन्यमतानुगा बहुविधैस्तत्त्वैः समुद्भासिता,
सद्भक्ति प्रतिपालनी सुवचसा प्रेमार्थ संस्थापिका ।
जीवातुर्हरिभक्तजीवनिचये चित्तश्रुतिप्रीतिदा,
श्रीजीव प्रतिमा जगद्विजयिनी सर्वैधिया धार्य्यताम् ॥

प्रस्तुत ग्रन्थ सुप्रसिद्ध श्रीहरिनामामृत व्याकरण है, इसमें प्राचीन एवं अर्वाचीन शब्दानुशासन सम्बन्धीय सुसिद्धान्त समूह सङ्कलित हैं। सुप्रसिद्ध सामग्री समूह एवं सुख्यात प्रक्रिया समूह विभूषित होने पर भी श्रीजीवगोस्व मि चरण के हस्त सौष्ठव से यह ग्रन्थ अपूर्व आस्वादनीय हुआ है। ग्रन्थोपसंहार में ग्रन्थकार की उक्ति यह है—

कृष्णत्राकृतमेतत्तस्माद्विफला न चात्र मात्रापि ।
अपितु महाफलयुक्ता, तल्लीलाकाव्यवज्जयति ।
हानीयं पाणिनीयं रसवदसवत् काकलापः कलापः
सार प्रत्यागि सारस्वतमपहतगीर्विस्तरो विस्तरोऽपि ॥
चान्द्रं दुःखेन सान्द्रं सकलमविकलं शास्त्रमन्यन्नधन्यं
गोविन्दं विन्दमानां भगवतिभवतीं वाणि नोचेद् ब्रवाणि ॥
पानीयं पाणिनीयं रसमृदुरसवन्मुत् कलापः कलापः,
सार श्रीसारि सारस्वतमधिमधुगीर्विस्तरो विस्तरोऽपि ।
चान्द्रं सौख्येनसान्द्रं सकलमविकलं शास्त्रमन्यत् प्रशस्तं
गोविन्दं विन्दतीं त्वां यदि भगवति गीर्वाणि वाणि ब्रवाणि ॥

अग्रिम ग्रन्थ में और भी आपने लिखा है—

भगवन्नामवलिता भगवद्भक्तितत्परैः । वृन्दावनस्थ जीवस्य कृतिरेषातु गृह्यताम् ॥

निर्निमित्त हितकारी निसर्ग करुण निखिल ऐश्वर्य्य माधुर्य्यादि शक्तिमण्डित विश्वकर्त्ता श्रीपरमेश्वर की रुचि एवं कृति की अतीव अभिव्यक्ति मानव शरीर रचन में हुई है। श्रीमद्भागवत ३।२६।२८-३३ में उक्त है—

"जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे । ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेन्द्रिय वृत्तयः ॥
तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरा रसवेदिनः । तेभ्यो गन्धविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदोवराः ॥
रूप भेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदतः । तेषां बहुपदः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततोद्विपात् ।
ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः । ब्राह्मणेस्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ।

अर्थज्ञात् संशयच्छेत्ता तत श्रेयान् स्वधर्मकृत् । मुक्त सङ्गस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः ।
तस्मान्मय्यर्पिताशेष क्रियार्थात्मा निरन्तरः । मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्त कर्म्मणः ।
न पश्यामि परं भूतकर्त्तुः समदर्शनात् ।।"

समस्त प्राणियों के मध्य में मानव श्रेष्ठ है । उसमें से अपने को भगवदधीन मानकर निरभिमानी व्यक्ति श्रेष्ठ है, उसमें से भी सर्वत्र भगवान् की स्थिति को उपलब्धि करके आत्मवत् अपर के हिताचरण में जो व्यक्ति रत रहता है वह श्रेष्ठ मानव है । इस प्रकार श्रेष्ठ मानवना एकमात्र ईश्वरीय शिक्षा से ही होती है । और यह शिक्षा शास्त्राध्ययन से पूर्ण होती है । मङ्गलदायक अनुशासन को ही शास्त्र कहते हैं, और अनुशासित जीवन ही श्रेष्ठ है । शिक्षा प्रदायक शास्त्र में वेद एवं वेदानुगत शास्त्रों का स्थान सर्वोद्ध्र्व है । उसमें भी व्याकरण का स्थान मुखवत् कथित है—

"शिक्षाघ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्"

कारण, पद पदार्थ का सम्यक् विशुद्ध ज्ञान व्याकरण से ही होता है । ज्ञानोन्मेष के समय से सुनिश्चित शिक्षा की आवश्यकता होती है, अतः ऋषियों ने भा० २।१।११ में निर्णय किया है—

"एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोऽभयम् ।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम् ।।

साधक सिद्ध प्रभृति व्यक्तियों के पक्ष में श्रीहरिनाम व्यतीत अन्य श्रेयस्कर अवलम्बन नहीं है । कारण, श्रीहरिनाम ही सर्वजीव हितकर आचरण का मूर्त्त आदर्श है । भोगलिप्सु मानवों के पक्ष में भी श्रीहरिनाम ही मुख्यरूप से तत्तत् फल साधक है,–अर्थानुसन्धानपूर्वक श्रीहरिनाम ग्रहण करने से स्पर्द्धाऽसूया मत्सरादि विदूरित होकर चित्त निज अभीप्सित पथ में रत होता है । इससे एकता होती है । मुमुक्षु-व्यक्तियों के पक्ष में यही मोक्ष साधन है । कारण, भा० ६।२।१० में उक्त है—

"नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषयामतिः ।।"

"नाम व्याहरणात् तद्विषया नामोच्चारक पुरुष विषया मदीयोऽयं मया सर्वतो रक्षणीय इति विष्णोर्मति-र्भवति" योगी ज्ञानी प्रभृति का भी यही हरिनाम फल रूप में निर्णीत है । नात्र प्रमाणं वक्तव्य मित्यर्थः" अतएव जावालि संहिता में उक्त है—

"हरेर्नाम परं जप्यं ध्येयं गेयं निरन्तरम् कीर्त्तनीयश्चबहुधा निर्वृतीर्बहुधेच्छता"

हरिनाम ग्रहण से ही श्रीहरि को 'यह मेरा है' इस प्रकार निश्चयात्मिका बुद्धि होती है, अतः श्री-हरिनामामृत व्याकरण का गुम्फन अवरोह भूमिका क्रम से हुआ है । अन्यान्य शब्दानुशासन समूह आरोह भूमिका क्रम से होने के कारण उसके अध्ययन से प्रायशः भगवद्बहिर्मुखता ही होती है । सूत्रारम्भ से इसका निर्वाह यथायथ रूप से हुआ है—"नारायणादुद्भुतोऽयं वर्णक्रम." यह प्रथम सूत्र है । इसका विवरण श्रीमद्भागवत के १।१।१ "तेने ब्रह्महृदा च आदिकवये" एवं भा० २।४।२२ "प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती" में है । इससे प्रतिपन्न होता है कि श्रीनारायण ही निज नाभिकमलज ब्रह्मा के मुख से शब्द ब्रह्म को प्रकट किये थे । श्रीमद्भागवत १२।६।४३ के अनुसार श्रीनारायण से प्राप्त नाद ब्रह्म से ही श्रीब्रह्मा ने अन्तःस्थ एवं ऊष्मादि वर्णसमूह को प्रकट किया है ।

इसमें मातृका वर्णमाला क्रम से ही क्रमयुक्त वर्णसमूह स्वीकृत हैं, एवं (चतुर्दशः सर्वेश्वर) स्वर वर्णों का ग्रहण भी हुआ है, व्याकरण प्रणेता के मत में 'लॄ' स्वीकृत नहीं है, किन्तु क्रमोत्पन्न वर्णसमूह में दीर्घ

लृ कार का बहुल प्रयोग हैं। मातृका वर्णन्यास में यह सुप्रसिद्ध है। अतः प्रस्तुत व्याकरण की संज्ञा सहज सुखबोध्य एवं स्वाभाविकी है। स्वरवर्ण-सर्वेश्वर, दश वर्ण-दशावतार, लघु वामन-गुरु-त्रिविक्रम, त्रिमात्र-महापुरुष, व्यञ्जन-विष्णुजन, प्रभृति संज्ञा भी अन्वर्थ गुण सम्पन्न हैं। एवं पुरुषोत्तमलिङ्ग, लक्ष्मीलिङ्ग, ब्रह्मलिङ्ग संज्ञा भी, अनवद्य सौष्ठव पूर्ण है।

सन्धिसूत्र—

"दशावतार एकात्मके मिलित्वा त्रिविक्रमः" "इद्वयमेव यः सर्वेश्वरे" इत्यादि स्थलों को अवलोकन करने से सारल्य की प्रतीति सुस्पष्ट होती है। सूत्र विरचन में अर्थबोध हेतु, वृत्ति टीका भाष्यादि की आवश्यकता न हो, इसका निर्वाह भी सुष्ठुरूप से इस ग्रन्थ में हुआ है। कारण–सूत्र रचन में-प्रथमा, द्वितीया, षष्ठी, सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। इस विषय में ग्रन्थकार का कथन यह है—

एवं सूत्रं ततो वृत्तिरिति विस्तर शङ्कया, सूत्रेणैवार्थ सिद्धिस्तु यथा स्यात् क्रियते तथा।
साधनानुक्रमार्थश्च नाधिकारेण सूत्र्यते। अन्यथा प्रक्रिया भिन्ना मृग्येताज्ञप्रबोधिनी॥
'प्राङ्' निमित्तं तथा 'कार्य्यी' 'कार्य्यं' 'पर निमित्तकम्।' अत्र क्रमेण वक्तव्यं प्राय सूत्रेषु सर्वतः।
क्रमाच्च पञ्चमी षष्ठी प्रथमा सप्तमी तथा। क्वचित् परनिमित्तस्य स्थाने विषय सप्तमी।
कार्य्य पूर्वं पञ्चमी स्यात्, कार्य्यस्थाने तु षष्ठिका। कार्य्ये तु प्रथमा वाच्या, सप्तमी विषये परे।
विनायोगे निषेधार्थं द्वितीया क्वचिदिष्यते। सर्वाङ्गासम्भवो यत्र स्वल्पान्यङ्गानि तत्र तु।
अतो बालक बोधाय पदं विच्छिद्यमूर्द्धनि। अङ्कादेया विष्णुभक्ति व्यक्त्यर्थं सर्वसूत्रतः॥"

ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा भी यह है "असिद्धरूपं न त्याज्यम्,-प्रतिज्ञेयं कृदन्तिका।"

अत्र व्याकरणे त्वन्यत्रैवासिद्ध रूपं मध्ये मध्ये न त्यज्यते, किन्तु सिद्धं कृत्वैव त्यज्यते। तत्तच्च कृत् पर्य्यन्तं ज्ञेयम्। न समासतद्धितयोरित्यर्थः। दर्शनीयन्त्वग्रे। (४३)

शब्दानुशासन समूह के मध्य में श्रीहरिनामामृत व्याकरण सर्वाङ्गीण वैशिष्ट्य मण्डित अनुपम ग्रन्थ है, इस संस्करण के प्रथमांश में अन्यान्य व्याकरणों के विषयों का तुलनामूलक चित्रण विन्यस्त है। ग्रन्थोपसंहार में ग्रन्थकर्त्ता का निर्देश यह है—

"छान्दसाप्रचरद्रूपरूढ़शब्दान् विना मया।
अत्रालेखि तदिच्छाचेद्दृश्योऽन्यः शास्त्रसंग्रहः॥'

तदनुसार प्रस्तुत संस्करण में वैदिक प्रक्रिया, शिक्षा प्रकरणम् उणादि प्रकरणम्, गणपाठः, धातुसंग्रहः, सूत्रसूची, कारिकासूची, प्रभृति प्रयोजनीय विषयों का सन्निवेश हुआ है। प्रस्तुत व्याकरण–क्रमबद्ध संज्ञा सन्धि प्रकरणम् (१) विष्णुपद प्रकरणम् (२) आख्यात प्रकरणम् (३) कारक प्रकरणम् (४) कृदन्त प्रकरणम् (५) समास प्रकरणम् (६) तद्धित प्रकरणम् (७),–इन सात प्रकरणों से पूर्ण है। इस ग्रन्थ की बालतोषणी टीका, तद्धितोद्दीपनी टीका, अमृता टीका, एवं जयपुरस्थ श्रीगोविन्द मन्दिर ग्रन्थागार में रक्षित अप्रकाशित एक टीका भी है। भरतमल्लिक कृत कारकोल्लास ग्रन्थ भी श्रीहरिनामामृत व्याकरण के कारक प्रकरण के अवलम्बन से रचित है। लघु हरिनामामृत व्याकरण भी मुद्रित एवं हस्तलिखित उपलब्ध है।

श्रीचैतन्यभागवत (मध्य १।१४८) में लिखित विवरण के अनुसार विदित होता है कि—शिक्षावती निगर्स करुण श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु गयाधाम से प्रत्यावर्त्तन पूर्वक व्याकरण शास्त्राध्यापन के समय सूत्र

वृत्ति, एवं टीका की व्याख्या में श्रीहरिनाम की ही समन्वयात्मक व्याख्या करते थे। अनन्तर श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव श्रीसनातन को श्रीभागवतानुसारि भक्तिशास्त्र प्रणयन हेतु जो उपदेश किये थे उसमें प्रस्तुत व्याकरण सम्बन्धीय विषय सन्निविष्ट था. उसके अनुसार लघु हरिनामामृत व्याकरण की रचना श्रीसनातन के उपदेश द्वारा हुई थी। उसका ही सुपरिष्कृत रूप प्रस्तुत श्रीहरिनामामृत व्याकरण है।

व्याकरणशास्त्र बालशास्त्र नाम से सुप्रसिद्ध होने पर भी श्रीहरिनामामृत व्याकरण ही उसका अपवाद है, अर्थात् यह केवल बालशास्त्र ही नहीं है, किन्तु यह प्रौढ़शास्त्र है। कारण, श्रीहरिनामामृत व्याकरण पठन-पाठन से श्रीभगवन्नाम की असकृत् आवृत्ति हेतु भागवत साहित्य सुख ही आस्वादित होता है। ग्रन्थारम्भ में ग्रन्थकार ने स्वयं ही कहा है—

"कृष्णमुपासितुमस्य स्रजमिव नामावलिं तनवै।
त्वरितं वितरेदेषा तत् साहित्यादिजामोदम्॥"

श्रीमद्भागवतार्थ स्वादन ही जब विद्या का चरम फल निर्दिष्ट हुआ है, तब जिसके अध्ययन से प्रथम अवस्था से ही श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण, परिकर एवं लीलादि विषय में चित्त प्रवणता होती है, उस श्रीहरिनामामृत व्याकरण ही आलोच्य है। कारण, व्याकरण शास्त्र में लब्धव्युत्पत्ति न होने से दर्शन, स्मृति प्रभृति शास्त्र में प्रवेशाधिकार ही नहीं होता है।

श्रीजीवगोस्वामि कर्त्तृक प्रणीत ग्रन्थसमूह—

षट्सन्दर्भ, सर्वसम्वादिनी, श्रीहरिनाम मृत व्याकरण, लघु हरिनामामृत व्याकरण, सूत्रमालिका, धातुसंग्रह, भक्तिरसामृत शेष, श्रीमाधव महोत्सव महाकाव्य, श्रीगोपालचम्पू, सकल्प कल्पद्रुम, श्रीगोपाल-विरुदावली, श्रीगोपालतापनी टीका, ब्रह्मसंहिता टीका, रसामृत सिन्धु टीका, उज्ज्वलनीलमणि टीका, गायत्रीभाष्य, क्रमसन्दर्भ, वृहत् क्रमसन्दर्भ, वैष्णवतोषणी, श्रीराधाकृष्णार्चन दीपिका, श्रीराधाकृष्ण कर-पद चिह्न समाहृति प्रभृति हैं।

परिचय—

सुविख्यात श्रीकृष्णचैतन्यमतीय भागवतीय भक्तिग्रन्थ प्रणेता श्रीजीवगोस्वामिचरण हैं, स्वकृत लघु वैष्णवतोषणी नाम्नी श्रीमद्भागवतीय टीका के उपसंहार में आत्म-परिचय प्रदान उन्होंने इस प्रकार किया है—ऊर्द्ध्वतन सप्तमपुरुष 'सर्वज्ञ' कर्णाटदेशाधिपति ब्राह्मणवृन्द वरिष्ठ जगद्गुरु नाम से प्रख्यात थे। आप सर्वशास्त्र विशारद एवं भरद्वाज गोत्रीय यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। सर्वज्ञ के पुत्र अनिरुद्ध-यजुर्वेद के सुपण्डित, महायशाः एवं वरेण्य थे। उनके रूपेश्वर एवं हरिहर पुत्रद्वय शास्त्र एवं शस्त्रविद्या में निपुण थे। अतः हरिहर के द्वारा पितृप्रदत्त राज्य अपहृत होने से रूपेश्वर पौरस्त्य प्रदेश में निवास किये थे। उनके 'पद्मनाभ' नामक रूप गुण विद्यादिसम्पन्न एक पुत्र थे। जिन्होंने नवहट्ट (नैहाटि) ग्राम में निवास किया था। पद्मनाभ के अष्टादश कन्या एवं पञ्च पुत्र थे। कनिष्ठ पुत्र का नाम मुकुन्द था, उनका 'कुमारदेव' नामक परमधर्म आचरण परायण एक पुत्र था। धर्म विप्लव के कारण, जिनका निवास वाकला चन्द्रद्वीप में हुआ था। कुमारदेव के अनेक पुत्र के मध्य में सनातन, रूप, अनुपम प्रसिद्ध थे। पितृवियोग होने के पश्चात् आप गौड़ राजधानी के निकटवर्त्ती साकुर्म्मा पल्ली में विद्याशिक्षार्थ मातुलालय में निवास किये थे। अनन्तर उपयुक्त समय में गौड़राज हुसेनसाह के मन्त्रित्व पद में वृत सनातन रूप (अमर-सन्तोष) शाकरमल्लिक, दवीरखास नाम से भूषित हुये थे। उनके कनिष्ठभ्राता (वल्लभ) अनुपम के पुत्र ही प्रस्तुत ग्रन्थकर्त्ता श्रीजीवगोस्वामी हैं।

बाल्यकाल में ही श्रीजीव का पितृवियोग हुआ था। आबाल्य श्रीजीव श्रीभगवदनुरागी थे। भक्तिरत्नाकर में उक्त है— "श्रीजीव बालक काले बालकेर सने।
श्रीकृष्ण सम्बन्ध विना खेला नाहि जाने।
कृष्ण बलराम मूर्त्ति निर्म्माण करिया।
करितेन पूजा पुष्प चन्दनादि दिया।"(१।७।१६)

श्रीजीव की वंशवल्ली

श्रीसर्वज्ञ (जगद्गुरु कर्णाटक नृपति, १२०३ शक)
|
अनिरुद्ध (नृपति, १२३८ शक)
| |
हरिहर रूपेश्वर
|
पद्मनाभ (जन्म १३०८ शक)
|
पुरुषोत्तम, जगन्नाथ, नारायण, मुरारि, मुकुन्ददेव
|
कुमारदेव
|
(३) श्रीसनातन (१३८६-१४७६) (४) श्रीरूप (१३९२-१४७६) (३) श्रीवल्लभ (अनुपम) (१३९५-१४३७)
|
श्रीजीव (१४३३-१५१८)

श्रीचैतन्यदेव की प्रेरणा से श्रीरूप सनातन, जीव निवह के हितकर कार्य्य में आत्मनियोग करने पर श्रीजीव के हृदय में प्रबल विषय-भोग वितृष्णा का उदय हुआ था। भक्तिरत्नाकर ग्रन्थ में इस प्रकार उल्लेख है— "नाना रत्न भूषा परिधेय सूक्ष्म वास।
अपूर्व शयन शय्या भोजन विलास।।
ए सब छाड़िल किछु नाहि भाय चिते।
राज्यादि विषयबार्त्ता ना पारे शुनिते।।

क्रमशः वृन्दावन निवासी श्रीरूप सनातन गोस्वामीयुगल के आकर्षण से जीव का मन गृह में संसक्त नहीं हुआ। एक दिन स्वप्न में श्रीमन्महाप्रभु का साक्षात् होने पर श्रीजीव अधीर होकर परिजन वर्ग को कहे थे—"मैं शास्त्राध्ययन हेतु नवद्वीप जाऊँगा" इस छल से श्रीजीव, बाकला चन्द्रद्वीप से नवद्वीप आये थे एवं श्रीवास अङ्गन में उपस्थित होकर श्रीनित्यानन्द प्रभु की कृपा प्राप्त किये थे। भक्तिरत्नाकर (१।६७५) में वर्णित है— नित्यानन्द प्रभु महावात्सल्य विह्वल।
धरिला श्रीजीव माथे चरण युगल।।"

श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा—"मैं खड़दह से तुम्हारे निमित्त यहाँ आया हूँ। कुछ दिन नवद्वीप में अवस्थान कर तुम श्रीवृन्दावन जाओ।"

श्रीजीव, श्रीनित्यानन्द प्रभु से आदेश प्राप्तकर नवद्वीप से काशी आये थे, एवं वहाँ शास्त्राध्ययन पूर्वक श्रीवृन्दावन में आकर श्रीरूपसनातन के निदेशानुवर्त्ती हुए थे। श्रीजीव, लोकोत्तर प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे, उनका अवदान चिरकाल मनुष्य समाज को उद्भासित करता रहेगा।

—हरिदास शास्त्री

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

श्रीश्रीहरिनामामृत-व्याकरणस्य मातृकानुक्रमणी

सूत्रसूची

आ

सूत्राणि	प्रकरण-सूत्रसंख्या	सूत्राणि	प्रकरण-सूत्रसंख्या
कथंयोगे गर्हायां	४।१८१	कर्म्मणि दृशेः क्वनिवेव	५।३०३
कथादेर्माधवठः	७।६६७	कर्म्मणि द्वितीया	४।१८
कद्रूपङ्गूश्वश्रूवादयः	७।२४०	कर्म्मणि प्रपूर्व्वाभ्यां	५।२२२
कन्थाया माधव ठः	७।४२२	कर्म्मणि राजयक्लेशापह	५।२६२
कन्यायाः केशव णः	७।२६४	कर्म्मणि विशिपतिपदि	५।१२६
कप्	७।१६९	कर्म्मणि शोकापनुदः सुखदे	५।२२१
कर्मणिङ्	३।२२४	कर्म्मणि समः ख्यः कः	५।२२३
कम्पाहारार्थणेस्तद्वत्	४।२७३	कर्म्मणि हनो णिनिर्निन्दायाम्	५।२६८
कम्बल्यामूर्णापलशते साधु	७।७०९	कर्म्मणि हन्तेष्टक् अमनुष्य	५।२५५
कम्बोजादे राजापत्ययोः	७।३१२	कर्म्मणि हरतेरदनुत्क्षेपे	५।२२६
करणपूर्व्वात् क्तादल्पाख्यायाम्	७।२१४	कर्म्मण्यण् तुमर्थे	५।१४१
करणपूर्व्वात् क्रीतात्	७।२१३	कर्म्मण्यण् ह्वेञ-वेञ	५।२१७
करणे	५।११५	कर्म्मण्यनुपेन्द्रगायतेष्टक्	५।२२४
करणे कर्म्मणि वा पाणिघ	५।२६१	कर्म्मण्यनुपेन्द्रादारामात् कः	५।२१९
करणे यजो णिनिः	५।२९७	कर्म्मण्यर्हतेरत्	५।२२९
करामोद्धवाद्देशात् केशवणः	७।४४८	कर्म्मण्याशिषि हन्तेरच्	५।२६३
करोतेस्तु नित्यं ये च	३।२०५	कर्म्मन्द कृपाश्वाभ्यामिनिस्तयोः	७।५५८
करोत्यरामस्य उर्निर्गुणे	३।४०६	कर्म्मवेशाभ्यां यरामः	७।८१४
कर्कलोहिताभ्यां ठीर्नृसिंहः	७।१०७०	कर्म्माध्ययने वृत्तमस्य	७।६६१
कर्णजाहादयः कर्णादिमूले	७।८७३	कलापिनः कालापाः	७।५५६
कर्णादेः फिर्नृसिंहः	७।३९९	कल्यं प्रातःकाले साधु	७।८१९
कर्णिका ललाटिके अलङ्कारे	७।५२०	कल्याण्यादेर्माधवेनेयः	७।२७२
कर्त्तुरधीनं प्रकृष्टं सहायं	४।१००	कवतेर्नरस्य न चो यङि	३।४८७
कर्त्तृकरणे कृता	६।६२	कवरमणिविषशरेभ्यः पुच्छात्	७।२०४
कर्त्तृकर्म्मणोः प्राप्तौ कर्त्तरि	४।३९	कवर्गनरस्य चवर्गः	३।९४
कर्त्तृकर्म्मणोः षष्ठी कृद्योगे	४।३७	कष्ट-सत्र-कक्ष-कृच्छ्र-गहनेभ्यो	३।५३९
कर्त्तृकर्म्मणोराधारोऽधिकरणम्	४।६९	कस्क आदिषु च	६।३३५
कर्त्तृगामिफले त्वथ	४।२६१	काकतालीयादयः साधवः	७।१०६६
कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहि	५।१२१	काण्डीराण्डीरौ	७।९५२
कत्र्यादिभ्यो माधव ढकः	७।४२५	कादयो विष्णुजनाः	१।१७
कर्म्मकरो भृत्ये, दृतिहरि	५।२४२	कापुरुष कुपुरुषौ	६।२८२
कर्म्मकर्त्तरि कर्म्मवदात्मपदादि	४।२१	कामपाल परपदं कपिलः	३।७८
कर्म्मकर्त्रूपमाने	४।१२३	काम्यश्च पूर्व्ववच्चन्नर्थे	३।५२५
कर्म्मणि	५।१०८	काम्ये तु नररामजविष्णुसर्गं	६।३२८
कर्म्मणि च	७।८४०	कारूणाम्	६।११५
कर्म्मणि डुकृञः खमुण्णाक्रोशे	५।१०३	कार्मुकं धनुषि साधु	७।८१७

घ

सूत्राणि	प्रकरण-सूत्रसंख्या
पञ्चतदशतौ वर्गे वा	७।७७३
पञ्चमी	६।७७
पञ्चमीतस्तसिः	७।९९२
पञ्चालादेः केशवणः	७।३०९
पणः परिमाणे	५।४२१
पण पाद माससतेभ्यो	७।७४५
पण्यं विक्रये अर्य्यः	५।१६२
पतः पुम्र ङे	३।२५३
पत्पदोः पित्सः	३।४७२
पत्नी भार्य्यायां यज्ञयोगे	७।२२१
पत्यन्तात् पुरोहितादेश्च	७।८४४
पथः केशवठः	७।७८७
पथिन्मथिन्ऋभुक्षिन्नित्येषां	२।११८
पथ्यतिथिवसतिस्वपतिभ्यो	७।६९८
पथ्यादीनां संसारहरो	२।१२०
पथ्यादीनामिरामस्यारामः	२।११९
पदमस्मिन् दृश्यं पद्यः	७।६८४
पदरुजविशः	५।३७८
पदस्तु नित्यम्	३।२३७
पदोत्तरपदं प्रतिकण्ड	७।६३७
पदोत्तरपदिकः साधुः	७।३४९
पफयोरुपध्मानीयः	१।१३२
पयसन्तु वा	३।५३१
परजनदेवराजभ्यः कीयः	७।४५२
परदारादिकं गच्छति	७।६०७
परपदादि कर्त्तरि	३।२४
परपदिनश्च शानस्ताच्छील्य	५।१०
परपदेव	६।८३
परम्परायोगे तु न निषेधः	२।२०६
परम्परायोगेऽपि न	२।२०८
परस्त्रियाः पारस्त्रैणेय	७।२७३
परस्त्रिविक्रमः	१।६
परस्परेतरेतरान्योऽन्य	४।२०६
परादेरयनस्य अन्तरस्त्वदेशे	६।३१८
परानुभ्यां कृञस्तद्वत्	४।२६५
परामर्शमात्रे	७।२००

सूत्राणि	प्रकरण-सूत्रसंख्या
परार्द्धादेर्यरामः	७।४५७
परावरत्वे गम्ये च	५।७५
परावराभ्यां वा	७।१००२
परिक्रयणे करणं सम्प्रदानं	४।१०२
परिखाया माधवढः	७।७२६
परिणायः शारीणां	५।३६७
परिपन्थञ्च तिष्ठति	७।६३५
परिमाणात् क्रीतवत्	७।५६१
परिमाणादसंख्याकाल	७।२१७
परिमाणाद्वीप्सायां कर्म्मणि	४।३४
परिषदः समवैति ण्यः	७।६४१
परिषदो ण्यकेशवणौ	७।६९६
परेर्दिविक्षिपरटवदवदहमुहो	५।३२५
परेर्निविभ्यां सेवस्य सितस्य	३।५७६
परेर्निविभ्याञ्च सिवोः	३।५८१
परेर्मृषः	४।२६८
परेर्वर्ज्जने वा, न तु समासे	६।३६०
परोक्षभूते णलादयो	३।८
परोक्षातीते क्वसु	४।४५, ५।१९
परोक्षानद्यतनभूते	४।१५५
परो नारायणः	३।७४
परोवरं परस्परं	७।८६६
पर्य्यादयश्चतुर्थ्या	६।९७
पर्य्यायोऽनुपात्यये	५।३९८
पर्व्वताच्छरामः	७।४५४
पर्व्वतेभ्यश्छ आयुधजीविनि	७।५४३
पवर्गान्तान् यत्	५।१५७
पशुजातिर्गर्भिण्या	६।३१
पश्चाच्छब्दस्य पश्चभावोऽर्द्धे	७।२९३
पश्चाद्योग्ययोः	६।१६१
पश्वङ्गे भागे षष्ठकः	७।१०१७
पाच्छब्दस्य वामनो भगवति	२।११३
पाणिनीयप्रत्याहार	२।१०७
पाण्डुकम्बलादिनिः	७।३५८
पाण्डोर्यरामनृसिंहः	७।३०८
पातेः पाल् णौ वातेः	३।४३८

सूत्राणि	प्रकरण-सूत्रसंख्या
पात्रात् केशवठः	७।७५७
पात्राद्घरामश्च	७।७७८
पात्राद्यन्ता न	६।५२
पाद ईप् वा	७।१८५
पादशतभ्यां संख्यादि	७।१०८१
पादस्य गादिषु	७।२८७
पानस्य देशे भाव	६।३२०
पापादीनि निन्द्यैः	६।२२
पारायणोत्तरायणचान्द्रायणं	७।७८४
पाराशर्य्यशिलालिभ्यां	७।५५७
पारे मध्ये इत्येतौ षष्ठ्या	६।११७५
पार्ष्णिधमन्योस्त्रिविक्रमश्च	७।६३४
पाश्यादयश्च लक्ष्म्यां	७।३४२
पितृमातृपूर्व्वायाः स्वसुः	७।२७९
पितृव्यादयः पितृभ्रात्रादौ	७।३७३
पितु पृथुः	३।११३
पित्रादौ जीवति पौत्रादे	७।२९
पिषनिग्रहनोन्नादुध्यज्जास्युत्	४।६६
पिष्टकः पिष्टिका च संज्ञायाम्	७।५८५
पीडायाञ्च तद्वत्	६।३६४
पीतात् करामः	७।३३१
पीताम्बरात् प्राक् समासाः	६।८
पीताम्बरे	६।११९०, ७।१४५, १९४
पीताम्बरे वा	६।२६७
पीलुकुणादया पीलवादिपाके	७।८७२
पुंसः पुमसुः कृष्णस्थाने	२।१४३
पुंसानुज जनुषान्धौ	६।२०७
पुंस्त्वमित्यादौ षत्वनिषेधा	७।९१
पुंस्शब्दात् पाण्डवे नित्यम्	७।२०३
पुच्छाण्णिङ् उत्क्षेपादौ	३।५४९
पुण्यसुदिनाभ्यामहो ब्रह्म	६।१४३
पुण्याहवाचनादिभ्यो महाहरः	७।८२६
पुत्राच्छयरामौ	७।७५१
पुत्रान्तादादिवृष्णीन्द्रान्नृसिंह	७।२८६
पुत्रे वा	६।२२१
पुत्रतरामस्य न द्वित्वं	६।३०७
पुनरद्वयसन्धौ आङादेशः	१।४५
पुमः सरामो हरिकमल	६।३२४
पुरन्दरभुजङ्गमादयो भुजग	५।२५०
पुराणस्य प्रण प्रत्न प्रतन	७।१०९०
पुरायोगे भुतेश्वरादिवय	४।१५७
पुरुषहस्तिभ्यां केशवनश्च	७।८९१
पुरुषात् बधविकार समूहेषु	७।७१९
पुरुषादायुषः	७।११२
पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सरतेष्टः	५।२३९
पुषादिद्युतादिलृदितो ङो	३।२०९
पुष्पफलमूलेषु समरहरो	७।६०२
पुष्यासिद्धयौ नक्षत्रविशेषे	५।१७६
पृङ् सङ् विष्णुनिष्ठा न	५।५१
पूजाचार्य्यकृतिज्ञानोत्	४।२३२
पूज्यं वृन्दारकाद्यैः	६।१२८
पूज्यवाचिभ्यस्वादरादिक्ये	४।४
पूञो विनाश एव	५।३४
पूरणद्रव्यं पात्रेण	६।७०
पूरणादर्द्धाच्च ठरामः	७।७६०
पूरणाद्वयसि	७।६८०
पूर्णादेः ककुदस्य	६।३४८
पूर्व्वक्तान्तं पश्चात् क्तान्तेन	६।१८
पूर्व्वनिपातः	६।१८२
पूर्व्वपदान्नस्य णः	६।३११
पूर्व्वपदान्महाहरनिषेधः	६।२०२
पूर्व्वप्रथमयोरतिशये	६।३७२
पूर्व्ववदश्ववडवानाम्	६।१४०
पूर्व्वस्य विस्णुपदवत्त्वं	२।१००
पूर्व्वादि च व्यवस्थायां सप्तकम्	२।१७३
पूर्व्वादिनिर्भूतपूर्व्वकर्त्तरि	७।६२७
पूर्व्वादिभ्य नवभ्यः स्मात्	२।१७८
पूर्व्वादिनि नव कृष्णनामानि	२।१७७
पूर्व्वापराधरोत्तरादीन्य	६।३८
पूर्व्वार्द्धस्य त्वरामः	१।८९
पूर्व्वाह्लेतन पराह्लेतने	७।४७२
पूर्व्वोक्तनिमित्तत्वे सत्येव	३।४३

सूत्राणि	प्रकरण-सूत्रसंख्या	सूत्राणि	प्रकरण-सूत्रसंख्या
प्रात् स्तृणातेरयज्ञे	५।३९४	बलिहितादिभिश्च	६।७५
प्रादय उपेन्द्रसंज्ञा	३।४२	बले तु वा यपि च	३।१३५
प्रादिव्यवहितेऽपि	५।१४२	बहुपूगगणसङ्घेभ्यस्तिथ:	७।९०४
प्रादूढोढ्योश्च तथा	१।५८	बहुवचनविषयाज्जनपदाद्विहित	७।५५०
प्रादेरध्वन:	७।१०७	बहुवचने चेद्वा	२।२११
प्रादेरूहास्यतिभ्यां वा	४।२२८	बहुषु लक्ष्मीं विना	७।३१३
प्रादेर्नस:	६।३२१	बहुसर्व्वेश्वरपूर्व्वपदात्	७।६६२
प्रादेर्नासिकाया नस् च	७।१६०	बहुसर्व्वेश्वरान्नृनाम्नष्ठरामो	७।१०३८
प्रादेषैष्ययोर्वा तथा	१।४९	बहूनां जातिप्रश्ने	७।१०५४
प्राद्वहः	४।२६७	बहूर्ज्जो नुम्प्रतिषेध:	२।१५३
प्राप्तापन्ने अपि	६।२५३	बहोर्घा वा निकटकाल	७।१०८२
प्राप्तापन्ने द्वितीयया	६।५५	बह्वल्पार्था शसि	७।८५
प्रायभव:	७।४८६	बह्वल्पार्थात् कारकाच्छस्	७।११०७
प्रायेणाल्पत्व विवक्षायाम्	७।२१५	बाहुबलि ऊरुबलिनौ सर्व्वबली	७।९८६
प्रावसवेश्च	४।२२१	बाहुल्यात् करणादौ च ते	५।१९२
प्रावृट् शरत्काल दिवां जे	५।३०७	बाहुल्यात् कर्म्मण्यपि णक:	५।१९६
प्रावृषष्ठराम:	७।४७४	बाहुल्यात् क्वचित् मानुषी	७।२६८
प्रावृषेण्य:	७।४६६	बाहुल्यात् क्वचिन्नित्यसमास:	६।१३
प्रासादा गृहे प्राकार:	५।४१२	बुद्धे गोविन्द:	२।५६
प्रसृलूभ्योऽक: साधुकारिणि:	५।२१५	बुद्धे तु मातृकस्य	७।१७१
प्रेक्षादेरिनि:	७।३९३	बुधेयुर्धेनशिजनो:	४।२७२
प्रैषातिसर्गप्राप्तकालत्वेषु	४।१७७	ब्रवीत्यादिपञ्चानामाहादयो	३।३४३
प्रोष्ठपदाभद्रपदयोर्जातार्थे	७।१६	ब्रह्मकृष्णात् सोरम्	२।७६
प्लक्षादे: केशवण:	७।५९९	ब्रह्मणस्त्व:	७।८५१
प्वादीनां वामन: शिवे	३।४१४	ब्रह्मणि तु वा	७।१४१
		ब्रह्मणो गोविन्दो वा बुद्धे	२।९०
फ		ब्रह्मत: स्वमोर्महाहर:	२।८५
फलपाकशुषश्च स्मरहर:	७।६०१	ब्रह्मतो जस्शसो: शि:	२।७७
फले	७।५९७	ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु कर्म्मसु हन:	५।२९९
फुल्लोत्फुल्लसंफुल्लक्षीव	५।४०	ब्रह्मराजहस्तिपल्येभ्यो	७।१०२
फेनिल फेनलौ	७।९३९	ब्रह्मान्त त्रिविक्रमस्य वामन:	२।९१
		ब्रह्मेशान्तान्नुक् सर्व्वेश्वरे न	२।८६
ब		ब्राह्मण मानव वाडव पृष्ठेभ्य:	७।३३९
बडवाया वृषे	७।२६७	ब्राह्मणाच्छंसी ऋत्विग्भेदे	६।२०९
बलादेर्मतुर्वा	७।९८८	ब्राह्मो न तु जातौ	७।४२
बलादेर्य:	७।३९७	ब्रुव ईट् कृष्णधातुक	३।३४१

र

ल

सूत्राणि	प्रकरण-सूत्रसंख्या	सूत्राणि	प्रकरण-सूत्रसंख्या
शतमानविंशतिकसहस्र	७।७३४	शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्य	५।१४८
शपाट्‌ठगम यरामावशता	७।७३०	शास् हेः शाधि	३।३२८
शतृशानौ भविष्यति च	५।१२	शिखादिभ्य इनिः	७।९६०
शदन्तविंशतिभ्याश्च	७।८९८	शिखाया वलः	७।४१२
शदेरात्मपदं शिवे	३।२५५	शित् शिवः	३।१८
शन्नतशद्विशतिभ्य इनिच्	७।८८८	शिरसः शीर्षन् ये केशे तु	७।४६
शपेस्तु शपथे तत् स्यात्	४।२१६	शिरसः शीर्षोऽणि	७।४५
शप् कृष्णधातुके	३।२९	शिलाया ढरामश्च	७।१०६२
शप्श्याभ्यां शतुर्नुम्	५।१७	शिवताति प्रभृतयः	७।७०५
शब्ददर्दुरौ करोति	७।६३३	शिवादेः केशव-णः	७।२६३
शब्दश्लोककलहगाथा	५।२४०	शिशुक्रन्दादूयमसभान्	७।५३९
शब्दादिकं करोति	३।५४२	शीङः शे कृष्णधातुके	३।३३५
शब्दान्तरद्योतिते तु	४।२०२	शीङो रुट् च	३।६४
शमादीनां त्रिविक्रमः श्ये	३।३७०	शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः	५।५२
शमादेर्घिनिः	५।३२३	शीतालु तिग्मालु वलुलु	७।९७१
शमिधातोरत् संज्ञायाम्	५।२३२	शीर्षच्छेदाद्यरामश्च	७।७७६
शम्याः शमीनश्च	७।५७९	शीलार्थे तृल् कर्त्तरि	४।५२
शरदादेः	७।१३५	शीलितादौ षष्ठी नेष्यते	४।५७
शरीरावयवाच्च	७।५०२	शुक्रादेर्घरामादयः	७।३३४
शरीरावयवाद्यरामः	७।७११	शुनः सङ्कोच विकारयोरेव	७।३५
शर्करादिभ्यः केशवणः	७।१०६७	शुनो दन्त दंष्ट्रा कर्णेषु	६।२३६
शर्कराया वा	७।४०६	शुषो विष्णुनिष्ठा तस्य कः	५।४४
श-ष-स-हा हरिगोत्राणि	१।२८	शुष्कचूर्णरुक्षेषु पिषः	५।११३
श-ष-साः शौरयः	१।२९	शुद्राशामवहिष्कृतानाम्	६।१२६
शसादयो यदुसंज्ञाः	२।२७	शूद्रादमहत्पूर्व्वात्	७।२४२
शसु दद वरामादीनां	३।१३२	शूर्पात् केशवणो वा	७।७३८
शस्त्रे कर्म्मणि घृत्रोऽत् न तु	५।२३०	शूलात् पाके	७।१११७
शाखादिभ्यो यः	७।१०६३	शृङ्गारक वृन्दारक फलिन	७।९७०
शाखाभेदानां	६।११९	शॄ दॄ इत्येतयोर्वामनो	३।४१७
शा छा सा ह्वा वे पाभ्यो	३।४३६	शॄ वन्दिभ्यामारुः	५।३५७
शाण शताभ्यां वा	७।७४६	शे चान्तो वा	१।११२
शारदकादयो मुद्गादौ	७।४७५	शेतेः शय् कंसारि ये	३।३३६
शारदिकं श्राद्धे	७।४६३	शेवल विशाल वरुणार्य्य	७।१०४५
शारद्वतायनादयो	७।२९६	शेषार्थे विधिः	७।४१६
शार्ङ्गे वायुकर्वुरयोः	५।३८४	शोकरोगयोर्वा	६।२८५
शासः शिष् कंसारि	३।३२७	शोण चण्ड उपाध्याय	७।२१२

सूत्रानि	प्रकरण-सूत्रसंख्या	सूत्राणि	प्रकरण-सूत्रसंख्या
हृदयस्य हृल्लेखलासयो	६।२८४	हैमन हैमन्तौ	७।४६८
हृदयात् प्रिये	७।६६१	है हे प्रयोगे तु	१।७६
हृदयामितसुतेभ्यो गमेः	५।२४६	हो हरिघोषः	११।०१
हृद्भगसिन्ध्वन्तानाम्	७।१८	ह्रस्वे	७।१०४८
हृष्टहृषितौ विस्मये प्रतिघाते	५।६०	ह्लादेर्वामनः क्तिविष्णु	५।६४
हेतुनत्फलयोर्विधिस्तविषये	४।१७२	ह्वः संनिव्युपतः सदा	४।२२६
हेतुशब्दप्रयोगे हेतौ	४।१३४	ह्वयतेर्निहवाभिहवोपहव	५।४२५
हेतोर्मानवनाम्नश्च रूप्यो	७।५३३	ह्वे नरनारायणोयोः	३।२७०
हेतोस्तृतीया	४।१३०		

संज्ञासूची

संज्ञा	तदर्थाः	प्रकरण-सूत्राङ्काः	संज्ञा	तदर्थाः	प्रकरण-सूत्राङ्काः
अच्युतः	लट्	३।३	उद्धवः	उपधा वा उपान्तः (अन्त्यात् पूर्व्ववर्णः)	२।८०
अच्युताभः	शतृशानौ	५।२	उपेन्द्रः	उपसर्गः	३।४२
अजितः	लृङ्	३।१२	एकात्मकः	सवर्णः (समान वर्णः)	१।४
अतिदेशः	अन्यतुल्यत्वविधानम्	१।५४	कंसारि	किच्च ङिच्च	३।१७
अधोक्षजः	लिट्	३।८	कपिलः	कित्	३।१५
अधोक्षजाभः	क्वसु कि कानाः	४।४५, ५।१६	कल्किः	लृट्	३।११
अनन्ताः	अणः (अ आ इ ई उ ऊ)	१।१०	कामपालः	आशीर्लिङ्	३।६
अव्यय:	अलिङ्ग शब्दः	२।६	कृष्णः	अकारान्त पुंलिङ्गशब्दः	२।११
अव्ययीभावः	अव्ययीभावः	६।२	कृष्णधातुकाः	लट् लोट् विधिलिङ् लङ् लुङ् शित्—सार्व्वधातुकानि	३।२२
अस्पर्शी	स्वरोच्चारणम्	१।३४	कृष्णनाम	सर्व्वनाम	२।१६६
आत्मपदम्	आत्मनेपदम्	३।२०	कृष्णपुरुषः	तत्पुरुषः	६।२, ८
आदिवृष्णीन्द्रः	यस्यादिसर्व्वेश्वराः आ ऐ औ रामाः, वृद्धसंज्ञा मतान्तरे	७।२६३	कृष्णप्रवचनीयः	कर्म्मप्रवचनीयः	४।१०७
ईशाः	इकः (इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ)	१।६	कृष्णस्थानम्	घुट् (पुंलिङ्गात् स्त्रीलिङ्गाच्च परे स्वादयः पञ्च विभक्तयः शिश्च)	२।८१
ईश्वराः	इचः (इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ)	१।८	केशवः	टिन	७।११४, २४६
ईषत्स्पर्शतरः	अन्तःस्थ यकारस्योच्चारणम्, उपसर्गात् परस्य पदादिस्थितस्य च यकारस्योच्चारणम्	१।३५	गोपालाः	वर्ग तृतीय चतुर्थ पञ्चमवर्णो हश्च	१।३१
ईषत्स्पर्शी	अन्तःस्थवर्णोच्चारणम्	१।३४	गौरी	ई ऊकारान्त स्त्रीलिङ्गशब्दः	२।७३
उत्तरपदम्	समासे सर्व्वान्तपदम्	६।२०३	गोविन्दः	गुणः	२।३२
			चक्रपाणिः	यङ्लुगन्तधातु	३।४९८

संज्ञा	तदर्थाः	प्रकरण-सूत्राङ्काः
चतुःसनाः	इणः (इ ई उ ऊ)	१।११
चतुर्भुजाः	उकः (उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ)	१।१२
चतुर्व्यूहाः	एचः (ए ऐ ओ औ)	१।१३
त्रिरामो	द्विगुः	६।२, ४८
त्रिविक्रमः	दीर्घः	१।६
दशावताराः	अकः (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ)	१।३
दामोदरः	दान दाञ् देङ् दो धा धेट् (दा संज्ञका धातवः)	३।५४
द्वयम्	वर्णद्वयवाच्यम्	१।३८
धातुः	भूसनन्तादिः	३।१
नरः	द्विरुक्तधातोः पूर्व्वभागः	३।७३
नाम	धातुविभक्ति भिन्नः शब्दः	२।१
नारायणः	द्विरुक्तधातोः परभागः	३।७४
निपाताः	चादयोऽव्ययशब्दाः	२।२१८
निर्गुणः	ङित्	३।१६
नृसिंहः	णित्	३।१४
परपदम्	परस्मैपदम्	३।१९
पाण्डवाः	स्वादयः पञ्च विभक्तयः	२।४४
पीताम्बरः	बहुव्रीहिः	६।२, १०२
पुरुषोत्तम लिङ्गः	पुंलिङ्गः	२।६
पूर्व्वपदम्	समासे पूर्व्वादिपदम्	६।२०३
पृथुः	पित्	३।१३
प्रकृतिः	धातु प्रातिपदिकयोः साधारणं नाम	२।२
प्रत्ययः	धातुप्रातिपदिकयोः पश्चाद्योज्यः	२।३
प्रभुः	केवलाधिकारः (सूत्रविषये सामान्याधिकारः)	३।२
बलाः	य वर्जित व्यञ्जनवर्णाः	१।१८
बालकल्किः	लुट्	३।१०
बुद्धः	सम्बोधनस्य सु	२।२४
ब्रह्मलिङ्गम्	नपुंसकलिङ्गम्	२।६
भगवान्	शसादि स्वराः तद्धित यश्च	२।८८
भूतेशः	लुङ्	३।७
भूतेश्वरः	लङ्	३।६
महापुरुषः	प्लुतस्वरः	१।७
महाहरः	आत्यन्तिकलोपः	१।४१

संज्ञा	तदर्थाः	प्रकरण-सूत्राङ्काः
माधवः	टणित्	७।२४६
यदुः	शसादयो विभक्तयः	२।२७
यादवाः	वर्ग प्रथम द्वितीयवर्णाः शषसाश्च	१।३२
युवा	पित्रादौ जीवति पौत्रादेरपत्यं ज्येष्ठभ्रातरि जीवति कनिष्ठश्च अन्यस्मिन् सपिण्डज्येष्ठे तु वा	७।२९९
राधा	आकारान्त स्त्रीलिङ्गशब्दः	२।६३
रामः	वर्ण स्वरूपम्	१।३७
रामकृष्णः	द्वन्द्वः	६।२, ११७
रामधातुकाः	आर्द्धधातुकानि	२।२३
लक्ष्मीः	स्त्रीलिङ्गः	२।६
वामनः	ह्रस्वः (लघुः)	१।५
वासुदेवः	सजातीय विजातीयानेकाधिकारव्यापी अधिकारविशेषः स च सूत्रविषये	३।२
विग्रहः	समासवाक्यम्	६।५
विधाता	लाट्	३।५
विधिः	कर्त्तव्यत्वेनोपदेशः विधिलिङ्	१।४७, ३।४
विभुः	नामधातुप्रत्ययः, वासुदेवस्यावान्तरानेकाधिकारव्यापी अधिकारः स च सूत्रविषये	३।५११, ३।४
विरिञ्चिः	आदेशः	१।३९
विशेषणम्	येन विशेष्यस्य विशेषः कथ्यते	२।१६०
विशेष्यम्	जातिगुणक्रिया द्वारा विशेषित शब्दः	२।१६०
विष्णुः	आगमः	१।४०
विष्णुकृत्यम्	तव्यादयः 'कृत्याः' इति प्राचीनाः	४।६०
विष्णुगणाः	ञ-भिन्ना व्यञ्जनवर्णाः	१।२०
विष्णुचक्रम्	अनुस्वारः (विन्दुर्लवश्च)	१।१४
विष्णुचापः	चन्द्रविन्दुः	१।१५
विष्णुजनाः	कादयो व्यञ्जनवर्णाः	१।१७
विष्णुदासाः	अवर्गान्तवर्गीयाः	१।२६
विष्णुनिष्ठा	क्त क्तवतू	४।४४, ५।२७
विष्णुपदम्	पदम् (विभक्त्यन्तं धातुरूपं शब्दरूपं वा	२।७
विष्णुवर्गाः	कादयः पञ्च पञ्च वर्गाः	१।१९

संज्ञा	तदर्थाः	प्रकरण-सूत्राङ्काः	संज्ञा	तदर्थाः	प्रकरण-सूत्राङ्काः
विष्णुसर्गः	विसर्गः	१।१६	सात्वताः	वर्ग प्रथम द्वितीयवर्णाः	१।३३
वृष्णिः	ङिद् विभक्तिः	२।३३	स्पर्शी	वर्गीयवर्णोच्चारणम्	१।३४
वृष्णीन्द्रः	वृद्धिः	२।४३	हरः	लोपः	१।४१
वैष्णवाः	अवर्गान्तवर्गीयाः शषसहाश्च	१।३०	हरिः	इ उकारान्त पुंलिङ्गशब्दः	१।३०
शिवः	शिन्	३।१८	हरिकमलानि	क च ट त पाः	१।२१
शौरयः	शषसाः	१।२६	हरिखड्गाः	ख छ ठ थ फाः	१।२२
श्यामरामः	कर्म्मधारयः	६।२, ६	हरिगदाः	ग ज ड द वाः	१।२३
संकर्षणः	संप्रसारणम्	३।२४४	हरिगोत्राणि	श ष स हाः	१।२८
संसारः	टिः (अन्त्य अच् तदादिवर्णश्च)	२।३८	हरिघोषाः	घ झ ढ ध भाः	१।२४
सन्सङ्गः	संयोगः (संयुक्तवर्णः)	१।८२	हरिमित्राणि	य र ल वाः	१।२७
सर्व्वेश्वराः	स्वरवर्णाः	१।२	हरिवेणवः	ङ ञ ण न माः	१।२५

परिभाषा-सूची

[दक्षिणपार्श्वस्थसंख्या प्रकरण-सूत्राङ्कज्ञापिका, पा सू—पाणिनीय-सूत्रम्, पा—पाणिनीय परिभाषा पाठः]

१। अन्तरङ्ग-बहिरङ्गयोरन्तरङ्गविधिर्बलवान्
१।५६, २।६६, ५।६० [पा ५१]

२। अर्थवद्ग्रहणेऽनर्थकस्य न ग्रहणम् १।५८
२।२९६

३। आगमविधिर्बलवान् २।६३

४। आगमशासनमनित्यम् ३।३६ [पा ९५]

५। आद्यन्तवदेकस्मिन् २।२६

६। उक्तार्थानामप्रयोगः ३।५१२, ६।९

७। उत्सर्गापवादयोरपवादो बलवान् १।५६
५।१५१ [पा ५९, ६३-६५]

८। उपपद विभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी
४।११९ [पा १०३]

९। एकदेशविकृतमनन्यवत् १।१४६, २।९, ६८ ६३

१०। एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः ६।२२९ [पा १८]

११। कार्य्यार्थिमक्षरं विश्लेषयेन्मेलयेच्च १।४५
३।३४० ६।३०२

१२। कृतेऽप्यकृते यः स्यात् स नित्य २।५६

१३। कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते ५।२२०

१४। क्वचिदन्तरङ्ग कार्य्ये क्रियमाणे
तदनिमित्तं बहिरङ्गमसिद्धम् २।६०, ११५

१५। गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्य्यसंप्रत्ययः ४।४२
२।१३ [पा १६]

१६। द्वन्द्वात् परः पूर्व्वो वा श्रूयमाणः शब्दः
प्रत्येकमभिसंबध्यते ६।११७

१७। धातुग्रहणात् प्रतिपदस्यैव ग्रहणम् ५।१५२

१८। धातुप्रतिरूपादेशस्तद्धातुवत् प्रयोग
वक्तव्यः ३।१४२

१९। धातूनामनेकार्थत्वम् ३।३६४

२०। नाम्नो ग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्
२।७३, ६।३२, ७।२७४ [पा ७२]

२१। नित्यानित्ययोर्नित्यविधिर्बलवान् १।५६

२२। निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः २।६६
१०३, ३।१६१, ५।६०

२३। पूर्व्वत्रासिद्धम् १।१०२ [पा सू ८।२।१ पा १२७]

२४। पूर्व्वपरयोः परविधिर्बलवान् १।५६ (पा ३९)

२५। प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थं सह ब्रूत ४।११, ५।२

न्याय-सूची

श्रीश्रीहरिनामामृत-व्याकरण-धृत-ग्रन्थादि-नामसूची

(दक्षिण पार्श्वस्थ-संख्या यथाक्रमेण प्रकरण सूत्राङ्कनिर्द्देशिका)

———

श्रीश्रीहरिनामामृत-व्याकरण-धृत-ग्रन्थकृन्नामसूची

(दक्षिणपार्श्वस्थ-संख्या प्रकरण-सुत्राङ्कज्ञापिका)

———

कारिका-सूची

(दक्षिणपार्श्वस्थित-संख्या यथाक्रमेण प्रकरण-सूत्रसंख्या-निर्द्देशिका)

---*---

उद्धृतपद्य-पद्यांश सूची

(दक्षिणपार्श्वस्थितसंख्या प्रकरण सूत्रसंख्याज्ञापिका)

नामसूची

(दक्षिणपार्श्वस्थसंख्या विष्णुपदप्रकरणधृतसूत्राङ्कज्ञापिका)

[स=सर्व्वेश्वरान्तः, वि= विष्णुजनान्तः, पु— पुरुषोत्तमलिङ्गः, ल—लक्ष्मीलिङ्गः, ब्र—ब्रह्मलिङ्गः]

कृष्णनामानि

[दक्षिणपार्श्वस्थसंख्या कृष्णनामप्रकरणधृत सूत्रसंख्याज्ञापिका]

धातुसूची

[भ्वा—भ्वादिः, अ—अदादिः, ह्वा—ह्वादिः, दि—दिवादिः, स्वा—स्वादिः, तु—तुदादिः, रु—रुधादिः
त—तनादिः, क्र्या—क्र्यादिः, चु—चुरादिः, सक—सकर्म्मकः, अक—अकर्म्मकः
पर—परस्मैपदी, आत्म—आत्मनेपदी, उभय—उभयपदी]

धातव	धात्वर्थाः	विवरणानि	अच्युतरूपाणि	आख्यातप्रकरणधृतसूत्राङ्का
अङ्क	लक्षणे (पदे च)	चु सक पर	अङ्कयति	४२७
अज	गतौ क्षेपणे च	भ्वा सेट् सक पर	अजति	१३४-१४३
अट	गतौ	भ्वा सेट् सक पर	अटति	१०९-१११
अद	भक्षणे	अ अनिट् सक पर	अत्ति	२७७-२८१
अन	प्राणने	अ सेट् अक पर	अनिति	३१५
अन्चु	गतिपूजनयोः	भ्वा सेट् सक पर	अञ्चति	१२९
अन्जु	म्रक्षणादिषु	रु वेट् सक पर	अनक्ति	३९८
अय	गतौ	भ्वा सेट् सक आत्म	अयते, परा-अय् = पलायते, प्र-अय्—प्लायते, परि-अय्—पल्ययते	२३४-२३५
अर्थ	याच्ञायाम्	चु सक आत्म	अर्थयते	४२७
अशूङ्	व्याप्तौ	स्वा वेट् सक आत्म	अश्नुते	३८०
अश्	भोजने	क्र्या सेट् सक पर	अश्नाति	४१७
असु	क्षेपणे	दि सेट् सक पर	अस्यति	३७१
अस्	भुवि, सत्तायामित्यर्थः	अ सेट् अक पर	अस्ति	३०३-३०९
आङ् शासू	इच्छायाम्	अ सेट् सक आत्म	आशास्ते	३२७
आछि	आयामे	भ्वा सेट् अक पर	आञ्छति	१३०
आस	उपवेशने	अ सेट् अक आत्म	आस्ते	३३३
इक्	स्मरणे	अ अनिट् सक पर	अधि—अध्येति	२९६-२९७
इङ्	अध्ययने	अ अनिट् सक आत्म	अधि—अधीते	३३७
इण्	गतौ	अ अनिट् सक पर	एति	२९४-२९५
इदि	परमैश्वर्य्ये	भ्वा सेट् अक पर	इन्दति	२१८-१२५
(ञ) इन्धी	दीप्तौ	रु सेट् अक आत्म	इन्धे	३९९
इषु	इच्छायाम्	तु सेट् सक पर	इच्छति	३८९
ईड	स्तुतौ	अ सेट् सक आत्म	ईट्टे	३३३
ईश	ऐश्वर्य्ये	अ सेट् सक आत्म	ईष्टे	३३३

धातवः	धात्वर्थाः	विवरणाणि	अच्युतरूपाणि	आख्यातप्रकवणधृतसूत्राङ्का
उख	गतौ	भ्वा सेट् सक पर	ओखति	१२६-१२८
उष	दाहे	भ्वा सेट् सक पर	ओषति	१७६
ऊर्णु ञ्	आच्छादने	अ सेट् सक उभय	ऊर्णौति ऊर्णोति ऊर्णुते	३३८-३४०
ऊह	वितर्के	भ्वा सेट् सक आत्म	ऊहते	२५२
ऋ	गतौ प्रापणे च	भ्वा अनिट् सक पर	ऋच्छति	१६०, २००-२०१
ऋ	गतौ	ह्वा अनिट् सक पर	इयर्त्ति	३५०
ऋच्छ	गत्यादिषु	तु सेट् अक (सक) पर	ऋच्छति	३८४
ऋत	घृणायाम्	भ्वा सौत्रधातुः सक पर	ऋतीयते	२२१
एजृ	कम्पने	भ्वा सेट् अक पर	एजति	२२१
एध	वृद्धौ	भ्वा सेट् अक आत्म	एधते	२२२
कथ	वाक्यप्रबन्धे	चु सक उभय	कथयति, कथयते	४२६
कपि	चलने	भ्वा सेट् अक आत्म	कम्पते	६४
कमु	कान्तौ, कान्तिरिच्छा	भ्वा सेट् सक आत्म	कामयते	२२४-२३३
काशृ	दीप्तौ	भ्वा सेट् अक आत्म	काशते	२३८
कासृ	काशरोगशब्दे (शब्दकुत्सायाम्)	भ्वा सेट् अक आत्म	कासते	२३८
कित्	निवासे, रोगापनयने च	भ्वा सेट् सक पर	चिकित्सति	२१७-२२०
कुट	कौटिल्ये	तु सेट् अक पर	कुटति	३६०-३६१
कुथि	हिंसा संक्लेशयोः	भ्वा सेट् पर	कुन्थस्ति	६३ ६४
कुष	निष्कर्षे, निष्कर्षः निष्काशनम्	क्रया सेट् अक पर	कुष्णाति	४१८
(डु) कृञ्	करणे	त अनिट् सक उभय	करोति कुरुते	४०६-४११
कृती	छेदने	तु सेट् सक पर	कृन्तति	३८४
कृपू	सामर्थ्ये	भ्वा वेट् अक आत्म	कल्पते	२४६-२५०
कृवि	हिंसायाम्	भ्वा सेट् सक पर	कृण्वति	१७८
कृवि	जिघांसायाम्	स्वा सेट् सक पर	कृणोति	३७६
कृष	विलेखने, आकर्षणे च	भ्वा अनिट् सक पर	कर्षति	१७०-१७४
कॄ	विक्षेपे	तु सेट् सक पर	किरति	३८४-३८७
कॄत	संशब्दने	चु अक उभय	कीर्त्तयति, कीर्त्तयते	४२५-४२६
क्रमु	पादविक्षेपे	भ्वा अक पर	क्रामति	१५८-१६०
क्रमु	पादविक्षेपे	दि सेट् सक पर	क्राम्यति	३६६
(डु) क्रीञ्	द्रव्यविनिमये	क्रया सक उभय	क्रीणाति, क्रीणीते	४१२-४१३
क्लमु	ग्लानौ	भ्वा अक पर	क्लामति	१५६-१५७
क्लमु	ग्लानौ	दि सेट् अक पर	क्लाम्यति	३७०
क्षणु	हिंसायाम्	त सेट् सक उभय	क्षणोति, क्षणुते	४०४-४०५
क्षि	क्षये	भ्वा अनिट् अक पर	क्षयति	१४८
क्षिणु	हिंसायाम्	त सेट् सक उभय	क्षिणोति, क्षिणुते	४०४-४०५
क्षुभ	सञ्चलने	क्रया सेट् सक पर	क्षुभ्नाति	४१६

धातवः	धात्वर्थाः	विवरणानि	अच्युतरूपाणि	आख्यातप्रकरणधृतसूत्राङ्का
खनु	अवदारणे	भ्वा सेट् सक उभय	खनति, खनते	२५६-२५७
खव	भूनि-प्रादुर्भावे	क्रया सेट् सक पर	खौनाति	४२१-४२२
ख्या	प्रकथने	अ अनिट् सक पर	ख्याति	२६८
गण	संख्याने	चु सक उभय	गणयति, गणयते	४२६
गद	व्यक्तायां वाचि	भ्वा सेट् सक पर	गदति	१०६-१०८
गमॢ	गतौ	भ्वा अनिट् सक पर	गच्छति	१६१, २०८-२११
गाङ्	गतौ	भ्वा अनिट् सक आत्म	गाते	२३८
गुपू	रक्षणे	भ्वा वेट् सक पर	गोपयति	१५०-१५३
गुप्	गोपन-कुत्सनयोः	भ्वा सेट् सक आत्म	जुगुप्सते	२३६
गुफ्	ग्रन्थे	तु सेट् सक पर	गुफति	३८६
गुहू	संवरणे	भ्वा वेट् सक उभय	गुहति, गुहते	२५८-२५६
गॄ	निगरणे, निगरणम् गलाधःकरणम्	तु सेट् सक पर	गिरति	३८८
गै	शब्दे	भ्वा अनिट् अक पर	गायति	१८४-१८५
ग्रन्थ	सन्दर्भे (संक्लेशने इति दुर्गः)	क्रया सेट सक पर	ग्रथ्नाति	४१७
ग्रह्	उपादाने	क्रया सेट् सक उभय	गृह्णाति, गृह्णीते	४१४-४१६
ग्लै	हर्षक्षये	भ्वा अकिट् अक पर	ग्लायति	१७६-१८३
घ्रा	गन्धोपादाने	भ्वा अनिट् सक पर	जिघ्रति	१६०-१६१
चकासृ	दीप्तौ	अ सेट् अक पर	चकास्ति	३२५-३२६
(आ) चक्षिङ्	व्यक्तायां वाचि	अ अनिट् सक आत्म	आचष्टे	३२६-३३२
चमु	अदने	भ्वा सेट् सक पर	(आ) चमति	१५६
चिञ्	चयने	स्वा अनिट् सक उभय	चिनोति, चिनुते	३७७
चिती	संज्ञाने संज्ञानम् चैतन्यम्	भ्वा सेट् अक पर क्वचिद् विशेषे ज्ञानेऽपि सकर्म्मकः।	चेतति	७६-८६
चुर	स्तेये	चु सेट् सक उभय	चोरयति, चोरयते	४२३-४२४
चुलुम्प	लोपे	भ्वा अक पर	चुलुम्पति	१५३
च्युतिर्	आसेचने	भ्वा सेट् सक पर	च्योतति	६०
छो	छेदने	दि अनिट् सक पर	छ्यति	३६३
जक्ष	भक्ष-हसनयोः	अ सेट् पर	जक्षिति	३१६-३१७
जनी	प्रादुर्भावे	दि सेट् अक आत्म	जायते	३७६
जभ (जभी)	गात्रविनामे गात्रविनामः जृम्भणम्	भ्वा सेट् अक आत्म	जम्भते	२२२
जागृ	निद्राक्षये	अ सेट् अक पर	जागर्त्ति	३१८-३२०
जि	जये	भ्वा अनिट् सक पर	जयति	१६८-१६६
जॄष	वयोहानौ	दि सेट् अक पर	जीर्य्यति	३६२
ज्या	वयोहानौ	क्रया अनिट् अक पर	जिनाति	४१७
णद	अव्यक्तशब्दे	भ्वा सेट् अक पर	नदति	११५-११८
णय	गतौ	भ्वा अक पर	नयति	१६४
णह	बन्धने	दि अनिट् सक उभय	नह्यति, नह्यते	३७६

धातवः	धात्वर्थाः	विवरणानि	अच्युतरूपानि	आख्यातप्रकरणधृतसूत्राङ्का
णिजिर	शौचे (पोषणे च)	ह्वा अनिट् सक उभय	नेनेक्ति नेनिक्ते	३५१-३५२
णू	स्तवने	तु सेट् सक पर	नुवति	३९२
तनु	विस्तारे	त सेट् सक उभय	तनोति, तनुते	४००-४०३
तप	सन्तापे	भ्वा अनिट् सक पर	तपति	१५४-१५५
तिज	निशाने, क्षमायाञ्च	भ्वा सेट् सक आत्म	तेजते, तितिक्षते	२२२
तुद	व्यथने	तु अनिट् सक उभय	तुदति, तुदते	३८१
तृणु	अदने	त सेट् सक उभय	तर्णोति तृणोति तर्णुते तृणुते	४०५
तृण्हू	हिंसायाम्	तु वेट् सक पर	तृहनि	१७८
तृपु	तर्पणे	क्र्या सक पर	तृप्नोति	४१९
तृप्	प्रीणने	दि वेट् सक पर	तृप्यति	३६६
तृह्	हिंसायाम्	रु सेट् सक पर	तृणेढि	३९६
तॄ	प्लवन-तरणयोः	भ्वा सेट् सक पर	तरति	२१२-२१४
त्रसी	उद्वेगे	दि सेट् अक पर	त्रस्यति	३६२
त्सर	छद्मगतौ	भ्वा सेट् सक पर	त्सरति	३८९
दन्भु	दम्भे दम्भः परवञ्चना	स्वा सेट् सक पर	दभ्नोति	३७९
दन्श	दंशने	भ्वा अनिट् सक पर	दशति	२१६
दरिद्रा	दुर्गतौ	अ सेट् अक पर	दरिद्राति	३२१-३२४
दल	विदारणे	भ्वा सेट् सक पर	दलति	९६५
दह	भस्मीकरणे	भ्वा अनिट् सक पर	दहति	१७८
(डु) दाञ्	दाने	ह्वा अनिट् सक उभय	ददाति, दत्ते	३५३
दाण	दाने	भ्वा अनिट् सक पर	यच्छति	१९०-१९२
दिवु	क्रीडा विजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति गतिषु	दि सेट् अक प्रायेण सक पर	दीव्यति	३६१
दिह	उपचये	अ अनिट् सक उभय	देग्धि, दिग्धे	३३७
दीङ्	क्षये	दि अनिट् अक आत्म	दीयते	३७४-३७५
दुह	प्रपूरणे	अ अनिट् सक उभय	दोग्धि, दुग्धे	३३७
दृप	हर्षविमोचनयोः	दि वेट् पर	दृप्यति	३६६
दृशिर् (दृश)	प्रेक्षणे	भ्वा अनिट् सक पर	पश्यति	२१६
दॄ	भये	भ्वा अक पर	दरति	२१४
दॄ	विदारणे	क्र्या सेट् सक पर	दृणाति	४१७
देङ्	पालने	भ्वा अनिट् सक आत्म	दयते	२३९
दैप्	शोधने	भ्वा अनिट् सक पर	दायति	१८५
दो	अवखण्डने	दि अनिट् सक पर	द्यति	३६३
द्युत	दीप्तौ	भ्वा सेट् अक आत्म	द्योतते	२४३-२४५
द्रा	कुत्सायाम् (गतौ)	अ अनिट् अक पर	नि—निद्राति (निद्रायाम्)	२९८
द्विष	अप्रीतौ	अ अनिट सक उभय	द्वेष्टि, द्विष्टे	३३७
(डु) धाञ्	धारण-पोषणयोः	ह्वा (अनिट् सक उभय	दधाति दत्ते	३५४ ३५८
धिवि	प्रीणने	स्वा सेट् सक पर	धिणोति	३७९

धातवः	धात्वर्थाः	विवरणानि	अच्युतरूपाणि	आख्यातप्रकरणधृतसूत्राङ्का
धुञ्	कम्पने	स्वा अनिट् सक उभय	धुनोति, धुनुते	३७७
धूप	सन्तापे	भ्वा सेट् सक पर	धूपायति	१५३
धेट्	पाने	भ्वा अनिट् सक पर	धयति	१८६-१८९
ध्मा	शब्दाग्निसंयोगयोः	भ्वा अनिट् पर	धमति	१९०-१९१
नश (णश)	अदर्शने	दि वेट् अक पर	नश्यति	३६७-३६९
नृती	गात्रविक्षेपे	दि सेट् अक पर	नृत्यति	३६२
पण	व्यवहारे स्तुतौ च	भ्वा सेट् सक आत्म	पणते	२२३
पतॢ	गतौ	भ्वा सेट् अक पर	पतति	२५३
पद	गतौ	दि अनिट् सक आत्म	पद्यते	३७६
पन	व्यवहारे स्तुतौ च	भ्वा सेट् सक पर	पनायति	२२३
पा	पाने	भ्वा अनिट् सक पर	पिबति	१९०-१९१
पुष	पुष्टौ	दि अनिट् सक पर	पुष्यति	३६३
पूञ्	पवने	क्र्या सेट् सक उभय	पुनाति, पुनीते	४१४
पॄ	पालन-पूरणयोः	ह्वा सेट् सक पर	पिपर्त्ति	३४७-३४८
(ओ)प्यायी	वृद्धौ	भ्वा सेट् अक आत्म	प्यायते	२३६-२३८
प्रच्छ	ज्ञीप्सायाम्	तु अनिट् सक पर	पृच्छति	३८९
प्रीञ्	तर्पणे (कान्तौ च)	क्र्या अनिट् सक उभय	प्रीणाति, प्रीणीते	४१३
प्सा	भक्षणे	अ अनिट् सक पर	प्साति	२८१
फण	गतौ	भ्वा सेट् सक पर	फणति	२५५
(ञि) फला	विशरणे विशरणम् विदीर्णता	भ्वा सेट् अक पर	फलति	१६५
बध	बन्धने निन्दायाश्च	भ्वा सेट् सक आत्म	बधते, बीभत्सते	२४०
बुध	अवगमने	दि अनिट् सक आत्म	बुध्यते	३७६
ब्रूञ्	व्यक्तायां वाचि	अ अनिट् सक उभय	ब्रवीति, ब्रूते	३४१-३४३
भज	सेवायाम्	भ्वा अनिट् सक उभय	भजति, भजते	२६०
भन्जो	आमर्द्दने	रु अनिट् सक पर	भनक्ति	३९९
(ञि) भी	भये	ह्वा अनिट् अक पर	बिभेति	३४६
भू	सत्तायाम् सत्ता विद्यमानता	भ्वा सेट् अक पर	भवति	१, २९-४४ ४८-६३, ६६-७८
भू	प्राप्तौ (अवकल्कने च, अवकल्कनम्— मिश्रीकरणम् इति स्वामी	चु सक उभय	भावयति भावयते	४२८
(डु) भृञ्	धारण-पोषणयोः	ह्वा अनिट् सक उभय	बिभर्त्ति	३५९
भ्रस्ज	पाके	तु अनिट् सक उभय	भृज्जति, भृज्जते	३८२-३८३
(टु) भ्राजृ	दीप्तौ	भ्वा सेट् अक आत्म	भ्राजते	२५५
मन्थ	विलोडने	भ्वा सेट् सक पर	मन्थति	९१
(टु) मस्जो	शुद्धौ शुद्धिरिह स्नानम् अवगाहे तु प्रयोग बाहुल्यम्	तु अनिट् अक पर	मज्जति	३८९

मा	माने	अ अनिट् अक पर	माति	२९७
मान	विचारणे पूजायाञ्च	भ्वा सेट् सक आत्म	मीमांसते, मानते	२४०
(डु) मिञ्	प्रक्षेपणे	स्वा अनिट् सक उभय	मिनोति, मिनुते	३७७
(ञि) मिदा	स्नेहने	दि सेट् अक पर	मेद्यति	३७३
मिल	सङ्गे	तु सेट् सक उभय	मिलति, मिलते	३९२
मिह	सेचने	भ्वा अनिट् सक पर	मेहति	१७७
मीञ्	हिंसायाम्	क्र्या अनिट् सक उभय	मीनाति मीनीते	४१३
मुचॢ	मोक्षणे	तु अनिट् सक उभय	मुञ्चति मुञ्चते	३८४
मुह्	वैचित्त्ये	दि वेट् अक पर	मुह्यति	३६६
मृङ्	प्राणत्यागे	तु अनिट् अक आत्म	म्रियते	३९२
मृजूष्	शुद्धौ	अ वेट् सक पर	मार्ष्टि	३१०
मृश	आमर्शने	तु सेट् सक पर	मृशति	३८९
म्ना	अभ्यासे	भ्वा अनिट् सक पर	मनति	१९०, १९२
म्लै	गात्रविनामे	भ्वा अनिट् अक पर	म्लायति	१८३
यज्	देवपूजा-सङ्गतिकरण दानेषु	भ्वा अनिट् सक उभय	यजति, यजते	२६१-२६२
यमु	उपरामे	भ्वा अनिट् अक पर	यच्छति	१६१-१६४
यसु	प्रयत्ने	दि सेट् सक पर	यस्यति	३७२
या	प्रापणे	अ अनिट् सक पर	याति	२९८
यु	मिश्रणामिश्रणयोः	अ सेट् सक पर	यौति	२९१-२९३
युज्	संयमने	चु सक उभय	योजयति योजयते	४२८
रद्	विलेखने	भ्वा सेट् सक पर	रदति	११२-११४
रध्	हिंसायाम्	दि वेट् सक पर	रध्यति	३६५-३६६
रञ्ज्	रागे	भ्वा अनिट् सक उभय	रजति रजते	२६०
रभ्	राभस्ये कौतुके इत्यर्थः	भ्वा अनिट् सक पर	रभते आङ्पूर्व्वास्त्वारम्भे— आरभते	२५१
रहि	गतौ	भ्वा सेट् सक पर	रंहति	१७८
रह	त्यागे	भ्वा सेट् सक पर	रहति	१७८
राजृ	दीप्तौ	भ्वा सेट् अक उभय	राजति, राजते	२५५
राध	संसिद्धौ	दि अनिट् अक पर	राध्यति	३६३
रिष	हिंसायाम्	भ्वा वेट् सक पर	रेषति	१७४-१७५
रु	शब्दे	अ सेट् अक पर	रौति	३४०
रुदिर्	अश्रुविमोचने	अ सेट् अक पर	रोदिति	३१२-३१४
रुधिर्	आवरणे	रु अनिट् सक उभय	रुणद्धि, रुन्धे	३९५
रुष	हिंसायाम्	भ्वा वेट् सक पर	रोषति	१७४-१७५
लगि	गतौ	भ्वा सेट् अक पर	लगति	९४
लगे	सङ्गे	भ्वा सेट् पर	लगति	१४९
(डु) लभष्	प्राप्तौ	भ्वा अनिट् सक आत्म	लभते	२४२
लिख	लिखने	तु सेट् अक पर	लिखति	३९२
लिप	उपदेहे	तु अनिट् सक उभय	लिम्पति, लिम्पते	३८४

लिह	आस्वादने	अ अनिट् सक उभय	लेढि, लीढे	३३७
लीङ्	श्लेषणे	दि अनिट् सक आत्म	लीयते	३७५
लुप्लृ	छेदने	तु अनिट् सक उभय	लुम्पति, लुम्पते	३८४
लुभ	गार्ध्ये गार्ध्यमाकाङ्क्षा	दि सक पर	लुभ्यति	३७२
लूञ्	छेदने	क्र्या सेट् सक उभय	लुनाती, लुनीते	४१४
वच्	परिभाषणे	अ अनिट् सक पर	वक्ति	३११
वज्	गतौ	भ्वा सेट् सक पर	वजति	१३२
वद्	व्यक्तायां वाचि	भ्वा सेट् सक पर	वदति	२७२
(डु) वप्	वीजतन्तुसन्ताने	भ्वा अनिट् सक उभय	वपति, वपते	२६२
वश्	कान्तौ कान्तिरिच्छा	अ सेट् सक पर	वष्टि	२७२
वस	निवासे	भ्वा अनिट् अक पर	वसति	२७१-२७२
वस्	आच्छादने	अ सेट् सक आत्म	वस्ते	३३३
वह्	प्रापणे	भ्वा अनिट् सक उभय	वहति वहते	२६२
वा	गतिगन्धनयोः गतिर्वातस्यैव	अ अनिट् पर	वाति	२९८
विच्छ	गतौ	तु सेट् सक पर	विच्छायति	३८९
(ओ)विजी	भयचलनयोः	तु सेट् अक आत्म	विजते	३९३-३९४
विद्लृ	लाभे	तु सेट् सक उभय	विन्दति, विन्दते	३८४
विद्	ज्ञाने	अ सेट् सक पर	वेत्ति	२९९-३०२
विष्लृ	व्याप्तौ	ह्वा अनिट् सक उभय	वेवेष्टि, वेविष्टे	३५२
वृङ्	संभक्तौ	क्र्या सेट् सक आत्म	वृणीते	४४२
वृञ्	आवरणे	स्वा सेट् सक उभय	वृणाति, वृणुते	३७७
वृतु	वर्त्तने	भ्वा सेट् सक आत्म	वर्त्तते	२४६, २४८
वृहि	वृद्धौ	भ्वा सेट् अक पर	वर्हति, वृंहति	१७८
वेञ्	तन्तुसन्ताने	भ्वा अनिट् सक उभय	वयति, वयते	२६३-२६६
व्यच्	व्याजीकरणे	तु सेट् सक पर	विचति	३९२
व्यथ्	दुःखे भये चलने च	भ्वा सेट् अक आत्म	व्यथते	२५१
व्यध	ताडने	दि अनिट् सक पर	विध्यति	३६३
व्येञ्	संवरणे	भ्वा अनिट् सक उभय	व्ययति, व्ययते	२६७
व्रज	गतौ	भ्वा सेट् सक पर	व्रजति	१३३
(ओ)व्रस्चू	छेदने	तु वेट् सक पर	वृश्चति	३८४
शद्लृ	शातने	भ्वा अनिट् पर	शीयते	२५५
शमु	उपशमे	दि सेट् अक पर	शाम्यति	३७०
शासु	अनुशिष्टौ अनुशिष्टिः उपदेशो दण्डनश्च	अ सेट् सक पर	शास्ति	३२७-३२८
शिष्लृ	विशेषणे	रु अनिट् सक पर	शिनष्टि	३९५
शीङ्	स्वप्ने	अ सेट् अक आत्म	शेते	३३५-३३६
शॄ	हिंसायाम्	क्र्या सेट् सक पर	शृणाति	४१७

धातवः	धात्वर्थाः	विवरणानि	अच्युतरूपाणि	आख्यातप्रकरणधृतसूत्राङ्का
शो	तनूकरणे	दि अनिट् सक पर	श्यति	३६३
श्चुतिर्	क्षरणे	भ्वा सेट् अक पर	श्चयोतति	६०
		दन्त्यादिरयम्		
श्रिञ्	सेवायाम्	भ्वा सेट् सक उभय	श्रयति श्रयते	२६०
श्रु	श्रवणे	भ्वा अनिट् सक पर	शृणोति	२०२-२०६
श्लिष	आलिङ्गणे	दि अनिट् सक पर	श्लिष्यति	३६४
श्वस्	प्राणने	अ सेट् अक पर	श्वसिति	३१५
(टु ओ) श्वि	गति-वृद्धयोः	भ्वा सेट् पर	श्वयति	३७२-२७६
षणु	दाने	त सेट् सक उभय	सनोति, सनुते	४०३
षद्लृ	विशरण-गत्यवसादनेषु	भ्वा अनिट् पर	सीदति	२५४
षन्ज्	सङ्गे	भ्वा अनिट् अक पर	सजति	२१५
षस्ज्	गतौ	भ्वा सेट् सक पर	सज्जति	१३१
षह	मर्षणे	भ्वा सेट् सक आत्म	सहते	२५४
षिच् (सच्)	क्षरणे (क्षरणमिह सेचनम्)	तु अनिट् सक उभय	सिञ्चति सिञ्चते	३८४
षिधु	गत्याम्	भ्वा सेट् पर	सेधति	९५-९६, ९९
षिधू	शास्त्रे, माङ्गल्ये च	भ्वा वेट् पर	सेधति	९९-१०५
षिवु	तन्तुसन्ताने	दि सेट् सक पर	सीव्यति	३६१
षु	प्रसवे	भ्वा अनिट् पर	सवति	२०७
षुञ्	अभिषवे	स्वा अनिट् सक उभय	सुनोति सुनुते	३७७
षू	प्रेरणे	तु सेट् सक पर	सुवति	३८४
षूङ्	प्राणिगर्भविमोचने	अ वेट् सक आत्म	सूते	३३४
षूङ्	प्राणिप्रसवे	दि वेट् सक आत्म	सूयते	३७३
ष्टुञ् (स्तु)	स्तुतौ	अ अकिट् सक उभय	स्तौति स्तुते	३४०
ष्ठा (स्था)	गतिनिवृत्तौ	भ्वा अनिट् अक पर	तिष्ठति	१९०-१९२
ष्ठिवु	निरसने	भ्वा सेट् सक पर	ष्ठीवति	१९६-२६७
(ञि) ष्वप्	शये	अ अनिट् अक पर	स्वपिति	३१४
सृ	गतौ	भ्वा अनिट् सक पर	धावति	१९०, १९७-१९९
	अजवार्थे तु—		सरति	
सृज	विसर्गे विसर्गः सृष्टिस्त्यागो वा	तु अनिट् सक पर	सृजति	३८९
स्कन्दिर्	गतिशोषणयोः	भ्वा अनिट् सक पर	स्कन्दति	२११
स्कुञ्	आप्लवने	क्र्या अनिट् सक उभय	स्कुनाति स्कुनीते	४१३
स्तृञ्	आच्छादने	स्वा अनिट् सक उभय	स्तृणति स्तृणुते	३७७
स्पृश	संस्पर्शने	तु अनिट् सक पर	स्पृशति	३७९
स्पृह	ईप्सायाम्	चु सक उभय	स्पृहयति स्पृहयते	४२६
स्फुटिर्	विशरणे विशरणम् विदारणम् विशरणे इति पाठे विकाशः	भ्वा सेट् अक पर	स्फोटति	८७-९०

धातवः	धात्वर्थाः	विवरणानि	अच्युतरूपाणि	आख्यातप्रकरणधृतसूत्राङ्काः
स्फुर	स्फुरणे	तु सेट् अक शर	स्फुरति	३९२
स्मृ	चिन्तायाम्	भ्वा अनिट् सक पर	स्मरति	१९३-१९६
स्रु	गतौ	भ्वा अनिट् सक पर	स्रवति	२०८
स्वृ	शब्दोपतापयोः	भ्वा वेट् अक पर	स्वरति	१९६
हन	हिंसा गत्योः	अ अनिट् सक पर	हन्ति	२८२-२९०
हय	गतौ	भ्वा सेट् सक पर	हयति	१६४
(ओ)हाक्	त्यागे	ह्वा अनिट् सक पर	जहाति	३४९-३५०
(ओ) हाङ	गतौ	ह्वा अनिट् सक आत्म	जिहीते	३६०
हि	गतौ, वृद्धौ च	स्वा अनिट् पर	हिनोति	३७८
हिंसि	हिंसायाम्	रु सेट् सक पर	हिनस्ति	३९७
हु	वह्नौ दाने	ह्वा अनिट् सक पर	जुहोति	३४४-३४५
हृञ्	हरणे	भ्वा अनिट् सक उभय	हरति हरते	२६०
ह्री	लज्जायाम्	ह्वा अनिट् अक पर	जिह्रेति	३४६
ह्वेञ्	स्पर्द्धायाम् [शब्दे च]	भ्वा अनिट् सक उभय [अक—शब्दार्थे]	ह्वयति ह्वयते	२६८-२७०

विशेष-शब्दसूची

[दक्षिणपार्श्वस्थाङ्काः प्रकरण-सूत्रसंख्यानिर्द्देशिकाः]

गण–सूची

[दक्षिणपार्श्वस्थाङ्काः प्रकरण-सूत्रसंख्याज्ञापिकाः, आ—आकृतिगणः]

स्त्रीप्रत्यय-सुची

—*—

आदेश-सूची

आगमसूची

	३।९८ ४१० ४१८ ४५४ ४६०		३।९३ २२२ २४१-४२ ३६८	सक्	३।१७३ ३६४
	६१ ५।२० २२ ४९-५३ ५५		३८४ ५-१६-१७ १४३ १५८	सि	३।५२ १७०
	५९ ८१-८२	पुक्	३।८२७	सुगिटौ	३।१६२
इण्	३।५८ २३६-३७ ४।२१ २५	पुम्	३।२५३	सुट्	२।१७० ३।३८५-८७
इणवदिट्	३।६२ ४।२१	भू	३।१२०		४०७-९ ४११ ५।१३२
ई	७।११२१-२२	मुक्	४।४३ ५।३	सुप्	६।२१
ईट्	३।८१ २८० ३१४ ३४१-४२	मुम्	५।१०४	स्याप्	२।२१३

धात्ववयवसूची

[स्त्रीत्व-समासान्त-तद्धित-कृदन्तेतर-प्रत्यया]

आय	३।१५० १५२ २२३	क्विप्	३।५३३-३५	णिङ्	३।१५२ २२४ ५४९-५२
ईयङ्	३।२२१	क्यङ्	३।५२९-३१ ५३६-४४	यङ्	३।४७७ ४८० ४८३ ४८६
काम्य	३।५२५	णि	३।४२३ ४२८-२९ ५४८		४९६
क्यन्	३।५१२ ५२६ ५४५		५५२-५९	सन्	३।२१७ २४० ४४९ ४५१

धात्वनुबन्धसूची

अनुबन्धाः	प्रयोजनानि	स्वार्थविधायक-प्रकरण-सूत्राङ्काः	अनुबन्धाः	प्रयोजनानि	प्रकरण सूत्राङ्काः
अ	सुखोच्चारणार्थः	२।५	लृ	भूतेश-परपदे ङः	३।२०९
	दशावतारादर्शनार्थ (तेन सन्निमित्त		ए	सेटि सौ परपदे वृष्णीन्द्राभावः	३।१४९
	कार्य्याद्यभावः) स्थानिवत्त्वार्थः		ओ	विष्णुनिष्ठा तस्य नः	५।३३
	(तेनोद्धवस्य वृष्णीन्द्र गोविन्दाभावः	३।४२६	क्	चिह्नार्थः	२।५
आ	विष्णुनिष्ठायां नेट्, आरम्भ		ङ्	कर्त्तरि आत्मनेपदी	३।२५ ४।२००
	भावयोर्वेट् च	५।३२ ५३	ञ्	उभयपदी	३।२६ ४।२०१
इ	नुमर्थः	३।९३ (३।९१)	ञि	वर्त्तमाने क्तः	५।७२
इर्	भूतेश परपदे-विकल्पित ङः	३।८८	ट्	ईवर्थः	७।२०७
ई	विष्णुनिष्ठायां नेट्	५।३२	टु	अथुप्रत्ययार्थः	५।४२४
उ	क्ति्व-वेट्	५।८२	डु	क्त्रिमार्थः	५।४३३
ऊ	सेट्	३।१००	ण्	चिह्नार्थः	२।५
ॠ	अङ्परे णौ उद्धवस्य वामनाभावः	३।२२७	प्	चिह्नार्थः	२।५
			ष्	भावे ङाप्रर्थः	५।४४६

कृत्प्रत्ययसूची

[उ—उणादिप्रत्ययः]

कृत्प्रत्ययाः	पाणिनीय-व्याकरणस्थ कृत्प्रत्ययनामानि सूत्रनिर्देशाश्च	श्रीहरिनामामृत-व्याकरणस्य कृदन्त प्रकरणस्थित सूत्रसंख्याः
अकः	'वुन्' ३।१।१४९	२१४-२१६
अच्	'डः' ३।२।४८	२५८-२६० २६२-३
		३०५-३११ ३१३
अण्	'अण' ३।२।१	१४१ २१७-८ २५३
अन्	'अच्' ३।१।१४३	२००-२०३ २०७
		२२६-२३६ २४१
अथुः	'अथुच्' ३।३।८९	३७७ ४३४
अनः	'ल्युः' ३।१।१३४	१४६ १४८ १५२ १९७
	'युच्' ३।२।१४८	२१४ ३३३-३३८ ४५७
अनिः	'अनिः' ३।३।१३२	४५६
अनीयः	'अनीयर्' ३।१।९६	१४९ १८९ १९२
अन्तः (उ)	'झच्' उ ४१५	३७१
अल्	'अच्' ३।३।५६	१४४ ३७७ ४१५-४२८
	'अप्' ३।३।५७	
असिः	'अस्' १।२।१	२९२
आकट्	'षाकन्' ३।२।१५५	३४०
आय्यः (उ)	'आय्यः' उ ३८३	३७२
आरुः	'आरुः' ३।२।१७३	३५७
आलुः	'आलुच्' ३।२।१५८	३४१
इक्	'इक्' ३।३।१०८	४५४
इण्	'इञ्' ३।३।११०	४५५
इत्नुः (उ)	'इत्नुच्' उ ३१६	३८३
इत्रः	'इत्रः' ३।२।१८४	३६४
इन्	'इन्' ३।२।२४	२४२ ३१२ ४३२
इष्णुः	'इष्णुच्' ३।२।१३६	३१७ ३१९
ईः (उ)	'ईः' उ ४४६	३६८
ईप्	'ड्रट्' उ ६१५	३७०
उः	'उः' ३।२।१६८	३५२ ३५३
उकण्	'उकञ्' ३।२।१५४	३३९
उच्	'डुः' ३।२।१८०	३६३
उण् (उ)	'उण्' ३।१।१ उ १	३६६
उसिः (उ)	'शित्' उ २८४	३७४

कृत्प्रत्ययाः	पाणिनीय-व्याकरणस्थ कृत्प्रत्ययनामानि सूत्रनिर्देशाश्च	श्रीहरिनामामृत-व्याकरणस्य कृदन्त प्रकरणस्थित सूत्रसंख्याः
ऊकः	'ऊकः' ३।२।१६५	३४९ ३५०
ओच् (उ)	'डोः' उ २३५	३७५
कः	कः' ३।१।१३५	२०४ २०५ २१९-२२३
	'कञ्' ३।२।६०	२६८ २६९
कानः	'कानच्' ३।२।१६०	६ १९ २३ २४
किः	'किः' ३।२।१७१	१९ ३५४ ३५५ ३७७
		४३६ ४३७
कुरः	'कुरच्' ३।२।१६२	३४८ ३५४
केलिमः	'केलिमर्' ३।१।९६	१४९ १९१
क्तः	'क्तः' १।१।२६	२६-७२ १५२
क्तवतुः	'क्तवतुः' १।१।२६	१९ ३५४ ३५५ ३७७
		३६ ३८ ४० ४४ ४५ ४९-
		५६ ५९ ६२ ६४
क्तिः	'क्तिन्' ३।३।९४	६४ ४३८ ४४५
क्त्रिमः	'क्त्रिः' ३।३।८८	४३३
क्त्वा	'क्त्वाः' ३।४।१८	५० ७३-८५ ८७
		८९ ९६ १०० १०२ १०६
		१०७ १३३ १३४ १३८
क्नुः	'क्नुः' ३।२।१४०	३२२
क्मरः	'क्मरच्' ३।२।१६०	३४२
क्यप्	'क्यप्' ३।१।१०६	१४९ १६० १७५-
		१८८ १९२ ४४४
क्वनिप्	'क्वनिप्' ३।२।७४	२७९ २८० ३०३ ३०४
क्वरप्	'क्वरप्' ३।२।१७३	३४६-३४८
क्वसुः	'क्वसुः' ३।२।१०७	१९-२३
क्विप्	'क्विन्' ३।२।५८	९१ २६८-२७३ २७७
	'क्विप्' ३।२।६१	२७८ २८२-२९१ २९९
		३०२ ३०६ ३१५ ३६०-
		३६२ ४४२
खः	'खच्' ३।२।३८	२४६-२५३ २५७
खनट्	'ख्युन्' ३।२।५६	२६५
खमुण्	'खमुञ्' ३।४।२५	१०३ १०४

कृत्प्रत्ययाः	पाणिनीय-व्याकरणस्थ कृत्प्रत्ययनामानि सूत्रनिर्द्देशश्च	श्रीहरिनामामृत-व्याकरणस्य कृदन्त प्रकरणस्थित सूत्रसंख्याः
खल्	'खल्' ३।३।१२६	१४२-१४८ १५२
खश्	'खश्' ३।२।२८	२४३-२४८ २६४ २६५
खिष्णु	'खिष्णुच्' ३।२।५७	२६६ २६७
खुकण्	'खुकञ्' ३।२।५७	२६६ २६७
घः	'घः' ३।३।११८	४२९-४३१
घण्	'घञ्' ३।३।१६	१४३ ३७६ ३७८ ४१५ ४१८
घिनुण्	'घिनुण्' ३।२।१४१	२१४ ३३० ३३१
घुरः	'घुरच्' ३।२।१६१	३४३
ङाप्	'आङ्' ३।३।१०२	४४५ ४५१
ङ्वनिप्	'ङ्वनिप्' ३।२।१०३	२९६ ३०४
टः	'टः' ३।२।१६	२३७-२४२
टक्	'टक्' ३।२।८	२२४ २२५ २५४ २५४ २५५ २६० २६१ २८४
टकः	'ष्वुन्' ३।१।४५	२१२ २१३
टणन्	'न्युट्' ३।१।१४७	२१३
टनः	'ल्युट्' ३।३।११५	४५८ ४६४
णः	'णः' ३।१।१४०	२०७ २१० २११ ४३२
णकः	'ण्वल्' ३।३।१०	१३९ १९४ १९६ २०४ २३२ ४५२ ४५३
णमुः	'णमुल्' ३।४।२२	९५-९७ ९९ १०१ १०२ १०५ १०७ १०९ ११३ ११६-१२३ १२५-१३४ १३८
णिः	'णिच्' ३।१।२५	२८९ २९०
णिनिः	'णिनिः' ३।१।१३४ ३।२।७८	१९८ १९९ २६२ २६३ २९४ २९७ २९८ ३२३ ३२९
ण्यत्	'ण्यत्' ३।१।१२४	१४९ १५५ १५६ १६० १६६-१७४ १७९ १८१-१८३ १८९
ण्विः	'ण्विः' ३।२।६२	२७४-२७६
तव्यः	'तव्यः' ३।१।९६	१४९ १५२ १९३ १९५
तुः (उ)	'तुन्' उ ७२	३६७
तुमुः	'तुमुन्' ३।३।१०	१३९-१४१ १५२
तृन्	'तृच्' ३।१।१३३	१९४ १९५ २०४ २०६ २१४ ३१६
त्रः	'ष्ट्रन्' ३।२।१८२	३६४ ३६५
थकः	'थकन्' ३।१।१४६	२१३
नः	'नङ्' ३।३।९०	४३५
नजिङ्	'नजिङ्' ३।२।१७२	३५६
मनिप्	'मनिन्' ३।२।७४	२७९ २८०
मुट् (उ)	'मुट्' उ ४४८	३८९
यत्	'यत्' ३।१।९७	१४९ १५० १५३ १६५ १७२ १७४ १७७ १८९ १९० १९२
यप्	'ल्यप्' ७।१।३७	७५-७७ ८५ ८७ ८८ ९०-९४ ९९ १२५ १२८ १३४ १३८
रः	'रः' ३।२।१६७	३५१
वनिप्	'वनिप्' ३।२।७४	२७९ २८१
वरः	'वरच्' ३।२।१७५	३५९
विः	'विच्' ३।२।७३	२७९
शः	'शः' ३।१।१३७	२०६-२०९
शतृ	'शतृ' ३।२।१२४	२ ४ ५ ११-१८
शानः	'शानच्' ३।२।१२४	२-१० १२ १४
श्निप्	'श्तिप्' ३।३।१०८	४५४
सक्	'क्सः' ३।२।६०	२८६
स्नुः	'ग्स्नुः' ३।२।१३९	३२१
स्नुक्	'ग्स्नुः' ३।२।१३९	३२०

कतिपय-कृत्प्रत्ययानां श्रीश्रीहरिनामामृत-व्याकरणोक्त-संज्ञाः

अच्युताभौ—वर्त्तमानादौ शतृशानौ, 'सत्' इति पाणिनिः (३।२।१२७)

अधोक्षजाभाः—परोक्षातीते क्वसु-कि-कानाः (४।४५ ५।१६) पदात्मनेपदयोः।

विष्णुकृत्याः— विध्याद्यर्थे तव्यानीय-यत्-क्यप् (४।६० ५।१५६) ण्यत्-केलिमा भाव-कर्म्मणोः, 'कृत्याः' इति पाणिनिः (३।१।९५) कलापव्याकरणञ्च (४।२।४६) त्याः इति मुग्धबोध व्याकरणम् (९८९)

विष्णुनिष्ठा— अतीतादौ क्त-क्तवतू, निष्ठा इति (४।४४ ५।२७) पाणिनिः (१।१।२६) कलाप-व्याकरणञ्च (४।३।९३)

उणादिशब्दसूची

समासान्तसूची

तद्धित-प्रत्ययसूची

[खः—ईनः, घः—इयः, छः—ईयः, ठः—इकः, टी—ईकः, ढः—एयः, ढकः—एयकः, फः=आयनः फिः—आयनिः, वुः—अकः। टित्—केशवः, टणित्—माधवः। के—केशवः, मा—माधवः, नृ—नृसिंहः]

श्रीश्रीहरिनामामृत-व्याकरणोल्लिखितानाम् इतरव्याकरणादिस्थित-संज्ञाप्रत्ययादीनाम् अनुक्रमणी

श्रीश्रीहरिनामामृत-व्याकरणस्थ-संज्ञा-शब्दानां पाणिनीयादि—व्याकरणोक्त संज्ञा—शब्दानाञ्च—तारतम्य—प्रदर्शकं सूचीपत्रम्

श्रीश्रीहरिनामामृत व्याकरणस्थ संज्ञाः प्रकरण सूत्राङ्क-सहिताः	संज्ञा-विवरणानि	पाणिनि-कृता अष्टाध्यायी ६५० तम खृष्ट-पूर्व्वाब्ददेशीया	सर्व्ववर्म्माचार्य्य-कृतं कलाप व्याकरणम्, कातन्त्रव्याकरणं वा(५० तम खृष्ट-पूर्व्वाब्दः १५० तम खृष्टाब्द-देशीयम्)	चन्द्रगोमि-कृतं चान्द्र व्याकरणम् (४५०-५०० तम खृष्टाब्द-देशीयम्)
१	२	३	४	५
अच्युतः (३।३)	वर्त्तमानकाले धातोः परं प्रयुज्यमानाः तिवादयोऽष्टादश विभक्तयः—तिप्, तस् अन्ति, सिप् थस् थ, मिप् वस् मस्, । ते आते अन्ते, से आथे ध्वे, ए वहे महे इति—लट्	वर्त्तमाने लट् (३।२।१२३)	वर्त्तमाना (३।१।२४)	वर्त्तमाने लट् (१।२।८२)
अच्युतादिः (३।१२	अच्युत-विधि-विधातृ-भूतेश्वर भूतेशाधोक्षज-कामपाल-बालकल्कि कल्क्यजितनामानो दश लकाराः।	तिङ्	आख्यातम्	
अच्युताभौ (५।२)	वर्त्तमानादौ शतृशानौ फलान्तर-प्रयोगे परस्मै पदात्मनेपदयोः	तौ (—शतृ-शानचौ) सत् (३।२।१२७)		शतृ(१।१।८४) शानच् १।२।८६
अजितः (३ १२)	यत्र साकाङ्क्षं क्रियाया अनिष्पत्तिः निर्द्दिश्यते तत्र कार्य्य कारण बोधक वाक्ययोर्भूते भविष्यति च धातोः परं प्रयुज्यमानाः स्यदादिका अष्टादश विभक्तयः—स्यत् स्यताम् स्यन्, स्यस् स्यतम् स्यत, स्यम् स्याव स्याम। स्यत स्येताम् स्यन्त, स्यथास् स्येथाम् स्यध्वम्, स्ये स्यावहि स्यामहि इति—लृङ्	लिङ्-निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ (३।३।१३९)	द्यादीनि क्रियातिपत्तिः (३ १।३३)	लिङ्घतिपत्तौ लृङ् (१।३।१०७)
अधिकरणम् (४।६९)	कर्त्तृकर्म्मणोराधाररूप कारकम्	आधारोऽधिकरणम् (१।४।४५)		सप्तम्याधारे (२।१।८८)
अधोक्षजः (३।८)	परोक्षातीतकाले धातोः परं प्रयुज्यमानाः णलादयोऽष्टादश विभक्तयः—णल् अतुस् उस्, थल् अथुस् अ, णल् व म। ए आते इरे, से आथे ध्वे. ए वहे महे इति—लिट्	परोक्षे लिट् (३ २।११५)	परोक्षा (३।२।२९)	परोक्षे लिट् (१।२।८१)
अधोक्षजाभाः (४.४५ ५।११९)	परोक्षातीतकाले परस्मैपदात्मनेपदयोः प्रायश्छान्दसाः क्वसु-कि-कान प्रत्ययाः			
अनन्ताः (१।१०)	अ आ इ ई उ ऊ	अण् शिव सूत्रम्-१		अण् प्रत्याहार सूत्रम्-१
अपादानम् (४।७५)	अपायादिषु क्रियासु साध्यासु यदवधिभूत तत् कारकम्।	ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४		अवधे पञ्चमी २।१।८१

हेमचन्द्र-कृतं सिद्धहेम शब्दानुशासनम् १०८८-११७२ तम खृष्टाब्दः	अनुभूतिस्वरूपाचार्य्य कृतं सारस्वत व्याकरणम् (१२००-२५०० तम खृष्टाब्द देशीयम्)	वोपदेव-कृतं मुग्धबोध व्याकरणम् १२००-१२५० तम खृष्टाब्द देशीयम्	क्रमदीश्वर कृत संक्षिप्तसार व्याकरणम् १२००-१२५० तम खृष्टाब्द देशीयम्	पद्मनाभदत्तकृतं सुपद्म-व्याकरणम् १३००-१३५० तम खृष्टाब्द देशीयम्
६	७	८	९	१०
वर्त्तमाना तिव्—महे ३।३।६	वर्त्तमाने तिप् महे उत्तरार्द्धम् १।७	की खी गी घी टी ठी डी ढी- तीथ्योऽष्टादशशः (५२९)	धातोस्तङ् तस् अन्ति—ए वहे महे —लड् वर्त्तमाने तिङन्तपादः १	वर्त्तमाने लट् ३।२।१९ लट् लृटोस्तिप् महे ३।२।७९
			लङ्-लृङ्वत् कृत् शतृ शानौ कृदन्तपादः १	
क्रियातिपत्तिः स्यत् स्यामहि ३।३।१६	स्यप् क्रियातिक्रमे उ० १।४२ लृङ्	थीः—की —तीथ्यो ऽष्टादशशः ५२९	लङ् लृङ् लिङ् हेतौ कृत्यानिष्पत्तौ भूते च तिङन्तपादः ८४२	लिङ् निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३।२।४८ लुङ् लङ् लृङां दिप् महि ३।२।८५
क्रियाश्रयस्याधारो ऽधिकरणम् २।२।३०	आधारे सप्तमी पूर्व्वार्द्धम् १७।१० इत्यस्य वृत्तौ	कालभावाधारं ङं प्ती ३०९	वैषयिकाद्यधिकरणम् कारकपादः ३५	आधारोऽधिकरणम् २।१।२१
परोक्षा णव्—महे ३।३।१२	परोक्षे णप् महे उ० १२७—लिट्	टी अष्टादशशः ५२९	अण् महे लिड् भूतानद्यतन परोक्षे तिङन्तपादः ७९३ अण सन्धिपादः १	परोक्षे लिट् ३।२।२४ लिटो णल् महे ३।२।८१ अण् १।१।१
अपायेऽवधिरपादानम् २।२।२९	विश्लेषावधौ पञ्चमी पू० १७।८ इत्यस्य	यतोऽपाय-भी जुगुप्सा पराजय प्रमादादान भू-त्राण विरामान्तर्द्धि-वारणं ञं पी (२९९)	चलत्प्राग्-भूरपादानम् कारकपादः २६	अवधिरपायादिष्व पादानम् २।१।२०

१	२ (संज्ञा विवरणानि)	३ (पाणिनि)	४ (कलाप)	५ (चान्द्र)
अव्ययम् (२१६ २१७)	(१) अलिङ्गः शब्दः अभीष्ट श्रीभगवदंशस्य ब्रह्मणो वाचत्वादस्याः संज्ञायाः श्रीभगवन्नामता सिद्धा। (२) वाचक द्योतक भेदाद् द्विविधं स्वरादि चादि वदादि तद्धिताः क्त्वा मान्तश्च कृत्।	स्वरादिनिपातमव्ययम् (१।१।३७)		
अव्ययीभावः (६।२ १५१)	समासभेदः अभीष्ट श्रीभगवदंशस्य ब्रह्मणो वाचकत्वादस्याः संज्ञायाः श्रीभगवन्नामता	अव्ययीभावः २।१।५ अव्ययं विभक्ति साकल्यान्त वचनेषु २।१।६	पूर्व्वं वाच्यं भवेद्यस्य सोऽव्ययीभाव इष्यते २।५।१४	
आत्मपदानि: ३।२०	अच्युतादि दश यूथेषु तिवादि नवनवानामुत्तरोत्तराणि ते आते अन्ते इत्यादीनि, आत्मनेपद-संज्ञकानि।	तङानावात्मनेपदम् १।४।१०० अनुदात्तङित् आत्मने पदम् १।३।१२	नव पराण्यात्मने ३।१।२	तङ्— तङाना यथा पाठम् १।४।४६
आदिवृष्णीन्द्रः ७।२६३	आ ऐ औ कारा यस्यादिस्वराः तद्यदादयश्च।			
इत् (२।५)	उच्चारणार्थचिह्नार्थो विध्यादिनिमित्तश्च अनुबन्धः। एति गच्छति न तिष्ठतीति इत्।			
ईशाः (१।६)	इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ।	इक् शिवसूत्रे १-२		इक् प्रत्याहार सूत्रे १-२
ईश्वराः १।८	अ आ वर्ज्जिताः स्वरवर्णाः इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ।	इच् शिवसूत्राणि १-४	स्वरोऽवर्णवर्ज्जो नामी १।१।७	इच् प्रत्याहार सूत्राणि १४
उद्धवः (२।८०)	शब्दस्य अन्त्यवर्णात् अव्यवहितपूर्व्ववर्णः	अलोऽन्त्यात् पूर्व्व उपधा १।१।६५	अन्त्यात् पूर्व्व उपधा २।१।११	
उपेन्द्राः (३।४२)	धातोः पूर्व्वं प्रयुक्ताः प्रादयो विंशतिः उपसर्गाः प्र परा अप् सम् अनु अव निर् दुर् अभि वि अधि सु उत् अति नि प्रति परि अपि उप आङ्।	प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे गतिश्च (१-४।५८-६०)		
एकात्मकः (१।४)	स्वरवर्णेषु आदिम दश वर्णानां मध्ये क्रमेण द्वौ द्वौ वर्णौ प्रत्येकं एकात्मकौ सवर्ण संज्ञौ च ज्ञेयौ	तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् १।१।९	तेषां द्वौ द्वावन्योऽन्यस्य सवर्णौ (१।१।४)	
कंसारिः (३।१७)	क् इत् ङ् इत् च आख्यात प्रत्ययः			
कपिलः (३।१८)	क् इत् आख्यातप्रत्ययः			
करणम् ४।१००	कर्त्रधीन प्रकृष्टसहायरूपं कारकम्	साधकतमं करणम् १।४।४२		करणे २।१।६३
कर्त्तृ ४।१३	स्वतन्त्रं तत्प्रयोजकश्च कारकम्।	स्वतन्त्रः कर्त्ता १।४।५४		कर्त्तरि तृतीया २।१।६२

६ (सिद्धहेम)	७ (सारस्वत)	८ (मुग्धबोध)	९ (संक्षिप्तसार)	१० (सुपद्म)
स्वरादयोऽव्ययम् १।१।३० चादयोऽसत्त्वे १।१।३१ गतिः १।१।३६	तदव्ययम् पू० ५।१०	स्वरादि-नि-चित्यं व्ययम् ९४	लिङ्ग संख्या विनिर्म्मुक्तात् सुः पदत्वार्थमव्ययात् कारकपादः ५६	स्वरादि चादि वदादि तद्धित क्त्वा मान्तकृद व्ययम् १।१।२५
तत्रादाय मिथस्तेन प्रहृत्येति सरूपेण युद्धेऽव्ययीभावः ३।१।२६	पूर्व्वेऽव्ययेऽव्ययीभावः पू० १८।२	वः भिन्नान्यैकार्थे द्वयादि-संख्या व्यादीनां च-ह-य-ष-ग-वा: ३१८	समृद्धयादावव्ययस्या व्ययीभावः समासपादः ५७	अव्ययीभावः ४।३।३
पराणि कानानासौ चात्मनेपदम् ३।३।२४		मः नवशः पमे ञितोऽन्यङिद्धुर्चां घे ५३१	नवशः परस्मायात्मने नडादौ तिङन्तपादः १४	परार्द्धमाणश्चात्मनेपदं तङ् च ३।२।८९
	आदिस्वरस्य ञ्णिति च वृद्धिः पू ९२।२			ञ्णिति वृद्धिरचामादेः ५।१।२
इत् अप्रयोगीत् १।१।३७	इत् कार्य्ययित् पू० १।८	इत् कृते ४		चिह्नार्थ मित् २।३।१०
		इक् ३	इक् सन्धिपादः १	इक् १।१।१
अनवर्णा नामी १।१।६	अवर्ज्जा नामिनः पू० १।५	इच् (३)	इच् सन्धिपादः १	इक् १।१।१
	अन्त्यात् पूर्व्व उपधा पू० ११९	उङः पूर्व्वोऽन्त्यादुङ् ९१		उपधोपान्त्यः १।१।२९
धातोः पूजार्थ स्वति गतार्थाधि पर्यतिक्रमार्थाऽतिवर्जः प्रादिरुपसर्गः प्राक् च ३।१।१	प्रादिरुपसर्गः पू १५।८	प्र-पराप-सं न्यवानु निर्दुर्व्यधि सून् परि प्रत्यभ्यत्यप्युपाङ् गिः १०	उपसर्गादूहो ह्रस्वः तिङन्तपादः ६०७	प्रादुपसर्गः प्रागधातोः १।१।२७
तुल्यास्थानस्य प्रयत्नः स्वः १।१।१७	ह्रस्व दीर्घ प्लुतभेदाः सवर्णाः पू १।२	अपोऽक् समो र्ण ऋक् च ६		वर्ग्यस्वरौ सजातीयौ सवर्णौ १।१।१५
		कित् ठी ढीपम् ५३३		असंयोगादलिलिट् कित् ३।२।३
साधकतमं करणम् २।२।२४	साधकतमं करणम् पू० १७।२९	साधन हेतु विशेषण भेदकं घं कर्त्ता घस्त्री २८८	क्रियातिसाधनं करणं कारक पादः १६	साधकतमं करणम् २।१।९
स्वतन्त्रः कर्त्ता २।२।२	स्वतन्त्रः कर्त्ता पू० १७।२८	घः साधन हेतु विशेषण भेदकं घ कर्त्ता घस्त्री २८८	क्रियामुख्यप्रयोजको कर्त्ता कारकपादः १	स्वतन्त्र तत्प्रयोजकौ कर्त्ता २।१।२

१	२ (संज्ञा-विवरणानि)	३ (पाणिनि)	४ (कलाप)	५ (चान्द्र)
कर्म्म (४।१७)	क्रिया यस्य साधनार्थं प्रवर्त्तते तत् कारकम्।	कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म्म १।४।४६		क्रियाप्ये द्वितीया २।१।४३
फलिकः ३।११	भविष्यत्काले वाच्ये धातोः परं प्रयुज्यमानाः स्यत्यादयोऽष्टादश विभक्तयः—स्यति स्यतस् स्यन्ति, स्यसि स्यथस् स्यथ, स्यामि स्यावस् स्यामस् स्यते स्येते स्यन्ते, स्यसे स्येथे स्यध्वे, स्ये स्यावहे स्यामहे इति—लृट्।	लृट् शेषे च ३।३।१३	स्यसंहितानि त्यादीनि भविष्यन्ती ३।१।३२	भविष्यति लृट् १।३।२ शेषे लृट् १।३।११६
कामपालः ३।९	आशिषि धातोः परं प्रयुज्यमाना यात् यास्तामित्यादयोऽष्टादश विभक्तयः यात् यास्ताम् यासुस्, यास् यास्तम् यास्त, यासम् यास्व यास्म। सीष्ट सीयास्ताम् सीरन्, सीष्ठास् सीयास्थाम् सीध्वम्, सीय सीवहि सीमहि —इति आशीर्लिङ्।	आशीर्लिङ् आशिषि लिङ् लोटौ ३।३।१७३ लिङाशिषि ३।४।११६	आशीः (३।१।३१)	
कारकम् ४।१०	क्रियायाः कर्त्तृत्वादिसम्बन्धविशेषो यत्र विवक्ष्यते तत् कारकम्।	कारके १।४।२३		
कृष्णः २।११	अकारान्तः पुंलिङ्ग शब्दः			
कृष्णधातुकाः ३।२२	अच्युत विधि विधातृ भूतेश्वर भूतेश नामानः पञ्च लकाराः लट् विधिलिङ् लोट् लङ् लुङ् श इन् प्रत्ययाश्च।	तिङ् शित् सार्व्वधातुकम् ३।४।११३	षडाद्याः सार्व्वधातुकम् ३।१।३४	
कृष्णनामानि २।१६६	सर्व्वादीनि कृष्णनामानि	सर्व्वादीनि सर्व्वनामानि १।१।२७		
कृष्णपुरुषः ६।२, ८	तत्पुरुष-समासः	तत्पुरुषः २।१।२२	विभक्तयो द्वितीयाद्या नाम्ना परपदेन तु समास्यन्ते समासो हि ज्ञेयस्तत्पुरुषः स च (२।५।८)	
कृष्णप्रवचनीयाः ४।१०७	कर्म्मप्रवचनीयाः—लक्षण वीप्सेत्थम्भूतार्थेसु अभिः लक्षणाद्यर्थेषु भागे च परि प्रती लक्षणादिषु चतुर्षु सहार्थे च अनुः उपश्च, एतैर्योगे द्वितीया विभक्तिः स्यात्	कर्म्मप्रवचनीयाः १।४।८३ कर्म्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया २।३।८		
कृष्णस्थानम् २।८१	क्लीव लिङ्ग शब्दस्य जस् विभक्तिः शस् विभक्तिश्च पुंलिङ्ग शब्दस्य स्त्रीलिङ्ग शब्दस्य च सु औ जस् अम् औ इति पञ्च विभक्तयः।	शि सर्व्वनामस्थानम् १।१।४२	पञ्चादौ घुट् जस् शसौ नपुंसके २।१।३-४	

६ (सिद्धहेम)	७ (सारस्वत)	८ (मुग्धबोध)	९ (संक्षिप्तसार)	१० (सुपद्म)
कर्त्तुर्व्याप्यं कर्म्म २।२।३	शेषाः कार्य्ये कर्त्तृ सःघनयोर्दानपात्रे विश्लेषावधौ सम्बन्ध आधारभावयोः पू० १७।४ इत्यस्य वृत्तौ	कर्म्म क्रियाविशेषणा भिनिविशाभिशीङ् स्थासन्वध्युपा वस-ङं ढ द्वी २८१	तत्समुद्दिष्टं कर्म्म कारकपादः २	क्रियाव्याप्यं कर्म्म २।१।३
भविष्यन्ती स्यति स्यामहे ३।३।१५	त्यादौ भविष्यति स्यप् उ० १४१ लृट्	ती अष्टादशशः ५।२९	लट् लृट् स्यङ् च तिङन्तपादः ८३६	भविष्यति लृट् ३।२।३१ लट् लृटोस्तिप् महे ३।२।७९
आशीः क्यात् सीमहि ३।३।१३	आशिषि यात् सीमहि उ० १३७ लिङ्	ढी अष्टादशशः ५२९	यात् यास्तां यासुस् सीय सीवहि सीमहिङाशिषि २।६८८	आशिषि लोङ् लोटौ ३।२।७२ लोङो यात् सीमहिङ् ३।२।८७
क्रियाहेतु कारकम् २।२।१	क्रियासिद्धुपकारकं कारकम् पू० १७।१ इत्यस्य पादटीकायाम्	संज्ञाः कम् ३१६		कारके २।१।१ इत्यस्य वृत्तौ
			पञ्च रः शिच्च ५३०	शिल्लट् लोट् लिङ् लङः सार्व्वधातुकम् ३।२।१७
		त्रिः ८६	सर्व्वादिः सर्व्वनाम स्याद्वालपादिर्ङसि नान्यतः तियश्च ङिति पूर्व्वादिर्ङसि ङ्योर्व्वान्यितः सदा सुबन्तपादः २९३	सर्व्वादीनि सर्व्व-नामानि स्वार्थेऽसंज्ञायाम् २।४।१
गतिक्वन्यस्तत्पुरुषः ३।१।४२	अमादौ तत्पुरुषः पू० १८।११	ष—३१८	तत्पुरुषो वा नञः समासः समासपादः १	तत्पुरुषः ४।३।१६
शिघुट् पुं स्त्रीयोः स्यमौजस् १।१।२८-२९		स्यमौजस् घिः शिः क्लीबे ८१-८२		शिः सुट् चाक्लीबस्य सादिस्थानम् २।३।६

१	२ (संज्ञा-विवरणानि)	३ (पाणिनि)	४ (कलाप)	५ (चान्द्र)
केशव: ७।११४ २४६	ट् इत् तद्धित प्रत्यय:			
केशव-ण: ७।२४८	अण् तद्धित प्रत्यय:			
गोपाला: १।३१	वर्गाणां तृतीया चतुर्थ पञ्चम वर्णा य र ल वा हश्च—ग घ ङ, ज झ ञ, ड ढ ण, द ध न, ब भ म, य र ल व ह।	हश् शिव-सूत्राणि ५-१०	घोषवन्तोऽन्ये १।१।१२	हश् प्रत्याहार सूत्राणि ५-६
गोपी २।७३ ७५	ई-ऊ-कारान्ता नित्यस्त्रीलिङ्ग शब्दा:	यू स्त्र्याख्यौ नदी १।४।३	ईदूत् स्त्र्याख्यौ नदी २।१।६	
गोविन्द: २।३२	इ-द्वयस्य ए, उ-द्वयस्य ओ, ऋ-द्वयस्य अर्, लृ-द्वयस्य अल्—गुण:।	अदेङ् गुण: १।१।२	अर् पूर्व्वे द्वे सन्ध्यक्षरे च गुण: ३।८।३४	
चक्रपाणि: ३।४९८	अदादि गणे परस्मैपदिषु पठिता यङ्लुगन्ता धातव:।	यङ्लुगन्त:	चर्करीतम्	
चतु:सना: १।११	इ ई उ ऊ	इण् शिवसूत्रम् १		इण् प्रत्याहार सूत्रम् १
चतुर्भुजा: १।१२	उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ	उक् शिवसूत्रे १-२		उक् प्रत्याहार सूत्रे १-२
चतुर्व्युहा: १।१३	ए ऐ ओ औ	एच् शिवसूत्रे ३-४	एकारादीनि सन्ध्यक्षराणि १।१।८	एच् प्रत्याहार सूत्रे ३।४
त्रिरामी ६।२, ४८	द्विगुसमास:	द्विगुश्च २।१।२३ संख्यापूर्व्वो द्विगु: २।१।५२	संख्यापूर्व्वो द्विगुरिति ज्ञेय: २।५।६	संख्यादि: समाहारे २।२।७६
त्रिविक्रम: १।६ ८०	एकात्मकवर्णानां परपरो वर्ण: दीर्घो गुरुश्च।	ऊकालोऽज् ह्रस्व दीर्घ-प्लुत: १।२।२७ संयोगे गुरु: दीर्घञ्च १।४।११-१२	परो दीर्घ: १।१।६	
दशावतारा: १।३	स्वर वर्णेषु आदौ दश वर्णा: अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ	अक् शिवसूत्रे १-२	दश समाना: १।१।३	अक् प्रत्याहार सूत्रे १-२
दामोदर: ३।५४	दाप्-दैप्-दीङो विना दा धा रूपा धातव:।	घु: दा धा घ्वदाप् १।१।२०	अदाव् दाधौ दा ३।१।८	
द्वयम् १।३८	निर्दिश्यमानैकात्मकवर्णस्य आदिद्वय वाचकम् अस्या: संज्ञाया लक्ष्मी नारायण-वाचित्वाद् भगवन्नामता	अणुदित सवर्णस्य चा प्रत्यय: १।१।६९		उता सवर्णे: १।१।२

६ (सिद्धहेम)	७ (सारस्वत)	८ (मुग्धबोध)	९ (संक्षिप्तसार)	१० (सुपद्म)
अन्यो घोषवान् १।१।१४		हव् (३)		खरुज्जितो हल् हश् १।१।११
		यूत् स्त्र्येव दी (९६)		स्त्री स्त्रीयूचानि-युवौ नदी २।३।८
गुणोऽरेदात् ३।३।२	अरेदोन्नामिनो गुण: पू० ११६	इङोऽरलेङ् णु: ८	इक एङरलो गुण: सन्धिपाद: ६९	एङरलो गुण इक: १।१।२२
व्यञ्जनादेरक स्वराद्भृशा भीक्ष्ण्ये यङ् वा ३।४।९			हलाद्येकाचोऽशुभ् रुचोऽस्यादेश्च भृशाभीक्ष्ण्ययोर्यन यन्लुग् वा ङिद्धलि चतुर्ष्वोङ् च तिङन्तपाद: ५३७, ५६५	यङो लुग् बहुलं प्रकृतिवत् परस्मैपदी च ३।१।२१
			इण् सन्धिपाद: १	इण् १।१।१
		उक् ३	उक् सन्धिपाद: १	उक् १।१।१
ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षरम् १।१।८	ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षराणि पू० १।३	एच् ३	एच् सन्धिपाद: १	एच् १।१।१ सन्ध्यक्षराणि वर्ग्यस्वरौ सजातीयौ सवर्णौ १।१।१५ इत्यस्य वृत्तौ
संख्या समाहारे च द्विगुश्चानाम्न्यमु ३।१।९९	संख्यापूर्व्वो द्विगु: पू० १८।१७	ग (३१८)	तद्धितार्थे समाहारे द्विगु: संख्याया: समासपाद: ११९	द्विगु: संख्या तद्धितार्थ समाहारयो: ४।३।७१
	ह्रस्व दीर्घ प्लुत भेदा: सवर्णा: पू० १।२ विसर्गानुस्वार संयोगपरो दीर्घश्च गुरु: पू० १।२१	घं:—आ वत् स्व घं प्लु—५ रु:—स्वर्घौ घुरु (५३९)	णमिणोणौ दीर्घ: सन्धिपाद: ३५	दीर्घौ गुरु: १।१।१।१७ ह्रस्वश्च संयोगे १।१।१८
लृदन्ता: समाना: १।१।७	अ इ उ ऋ लृ समाना: पू० १।१	अक् (३)	अक् सन्धिपाद: १	अक् १।१।१
अवौ दाधौ दा ३।३।५	दा–धा दा ५३४			घु:—दा धा घुरप् १।१।२३

१	२ (संज्ञा विवरणानि)	३ (पाणिनि)	४ (कलाप)	५ (चान्द्र)
धातुः २।१ ३।१, १५०, २२०	भू सत्तायामित्यादयः सनादि प्रत्ययान्ताश्च एतत् संज्ञाः	भूवादयो धातवः १।३।१ सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२	क्रियाभावो धातुः ३।१।९	
नरः ३।७३	द्विरुक्तस्य धातोः पूर्व्वभागः।	पूर्व्वोऽभ्यासः ६।१।४	पूर्व्वोऽभ्यासः ३।३।४	
नाम २।१	धातु विभक्ति हीनमर्थयुक्तं शब्दरूपम्।	अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १।२।४५	धातु विभक्ति वर्ज्जमर्थवल्लिङ्गम् २।१।१	
नारायणः ३।७४	द्विरुक्तस्य धातोरुत्तरभागः।	उभे अभ्यस्तम् ६।१।५	द्वयमभ्यस्तम् ३।३।५	
निपाताः २।२१८	चादयोऽव्ययशब्दाः।	प्राग्रीश्वरान्निपाताः चादयोऽसत्त्वे ५।१।५६-५७		
निर्गुणः ३।१६	ङ् इत् आख्यात प्रत्ययः।	ङिच्च १।१।५३		ङित् १।१।११
नृसिंह ३।१४	ण् इत् आख्यात प्रत्ययः।			
परपदानि ३।१९	अच्युतादि दश यूथेषु तिबादि नवनवानां पूर्व्व-पूर्व्वाणि तिप् तस् अन्ति इत्यादीनि परस्मैपदसंज्ञकानि।	लः परस्मैपदम् १।४।९९	अथ परस्मैपदानि ३।१।१	
पाण्डवाः २।४४	नाम्नः परे प्रयुज्यमानाः सु औ जस् अम् औ इति पञ्च विभक्तयः	सुट्—सुडनपुंसकस्य १।१।४३	पञ्चादौ घुट्, जस् शसौ नपुंसके २।१।३-४	
पीताम्बरः ६।२, १०२	बहुव्रीहि समासः	शेषो बहुव्रीहिः अनेकमन्यपदार्थे २।२।२३-२४	स्यातां यदि पदे द्वे तु यदि वा स्युर्बहून्यपि तान्यन्यस्य पदस्यार्थे बहुव्रीहिः विदिक् तथा २।५।९-१०	अनेक मन्यार्थे २।२।४६
पुरुषोत्तमः २।६	पुंलिङ्ग शब्दः।			
पृथुः ३।१३	प् इत् आख्यात प्रत्ययः।			
प्रकृतिः २।२	यस्या परं प्रत्ययः प्रयुज्यते सा—नामधातुभेदाद्द्विविधा।			
प्रत्ययः २।३	प्रकृते परं प्रयुज्यमानः स्वाद्याख्यात कृत्तद्धितभेदाच्चतुर्विधः			
प्रभुः ३।२	केवलाधिकारः			

६ (सिद्धहेम)	७ (सारस्वत)	८ (मुग्धबोध)	९ (संक्षिप्तसार)	१० (सुपद्म)
क्रियार्थो धातुः ३।३।३	धातोः भ्वादिः उ० १।१, २	घुः—भ्वादिर्घुः (११)	भ्वादि दशगणा निङ् सनाद्यन्ताश्च धातवः तिङन्तपादः २	भूवादि सनाद्यन्ता धातवः ३।१।४६
		खिः—द्वेः पूर्व्वः खिः ५३८		पूर्व्वोऽभ्यासः ३।४।११
अधातु विभक्ति वाक्य मर्थवन्नाम १।१।२७	अविभक्ति नाम पू ७।२ धातु प्रत्ययातिरिक्तमर्थव च्छब्दरूपं लिङ्गम् पू० १७।१ इत्यस्य वृत्तौ	लिः—क्तयन्तान्यौ दली १४		अधातु विभक्त्यर्थ वत् प्रातिपदिकम् २।२।१
		द्विः—द्विरुक्त-जक्षादी द्विः १७४		द्विरुक्त जक्षादि षट् केऽभ्यस्तम् ३।४।१२
	चादिर्निपातः पू० १५।१	निः—चादिर्गि निः १६		निपाताश्चादयोऽसत्त्वे १।१,२६
				ङिदपिल्लुङ् सार्व्वधातुकेम् ३।२।१
नवाद्यानि शतृ क्वसू च परस्मैपदम् ३।३।१६	नव परस्मैपदानि उ० १।६	प— नवशः पमे त्रितोऽन्य ङिद्भ्यां घे ५३१	नवशः परस्मायात्मने लडादौ लिङन्त-पादः १४	लस्तिङि पूर्व्वार्द्धे शतृक्वसू च परस्मैपदम् ३।२।८८
शिर्घुट् १।१।२८ पुंस्त्रियोः स्यमौजस् १।१।२९		घिः—स्यमौजस् घिः (८१)		शिः सुट् चाक्लीवस्य सादि स्थानम् २।३।६
सुज्वार्थे संख्या संख्येये संख्याया बहुव्रीहिः ३।१।१९	बहुव्रीहिरन्यार्थे पू० १८।१६	—ह— (३१८)	अन्यपदार्थो बहुव्रीहिः समासपादः १२२	अनेकमन्यार्थे बहुव्रीहिः ४।३।७२
		स्यः—परस्त्यः (१८)		सुवाद्या प्रत्ययाः परे २।२।२

१	२ (संज्ञा-विवरणानि)	३ (पाणिनि)	४ (कलाप)	५ (चान्द्र)
बला: १।१९	य-व वर्जिता व्यञ्जनवर्णाः	रल् शिवसूत्राणि ५-१४		रल् प्रत्याहार सूत्राणि ५-१३
बालकल्कि: ३।१०	अर्हार्थेऽनद्यतन भविष्यत्काले च वाच्ये धातोः परं प्रयुज्यमानास्तादयोऽष्टादश विभक्तयः—ता तारौ तारस्, तासि तास्थस् तास्थ, तास्मि तास्वस् तास्मस्। ता तारौ तारस् तासे तासाथे ताध्वे, ताहे तास्वहे तास्महे इति—लुट्	अनद्यतने लुट् ३।३।१५	श्वस्तनी ३।१।३०	अनद्यतने लुट् १।३।३
बुद्धः २।२४, ८२	सम्बोधनैकवचने 'सु' विभक्तिः	एकवचनं सम्बुद्धिः २।३।४९	आमन्त्रिते सिः सम्बुद्धिः २।१।५	
ब्रह्म (२।६)	नपुंसकलिङ्गः शब्दः			
भगवान् २।८८	कृष्णस्थानेतर स्वरास्तद्धिते यश्च	भ—यचि भम् १।४।१८		
भूतेशः ३।७	अतीतकाले वाच्ये धातोः परं प्रयुज्यमानाः दिवादयोऽष्टादश विभक्तयः दिप् ताम् अन्, सिप् तम् त, पम् व म ता आताम् अन्त, थास् आथाम् ध्वम्, इ वहि महि इति—लुङ्	लुङ् ३।२।११०	अद्यतनी एव मेवाद्यतनी ३।१।२८	लुङ् १।२।७६
भूतेश्वरः ३।६	अनद्यतनातीतकाले धातोः परं प्रयुज्यमानाः दिवादयोऽष्टादश विभक्तयः—दिप् ताम् अन्, सिप् तम् त, पम् व म। त आताम् अन्त, थास् आथाम् ध्वमु, इ वहि महि इति—लङ्	अनद्यतने लङ् ३।२।१११	ह्यस्तनी ३।२।२७	अनद्यतने लङ् १।२।७७
महापुरुषः १।७, ७४	दूराह्वाने गाने रोदनादौ च प्रसिद्ध-स्त्रिमात्रत्वेनोच्चार्य्यमाणो वर्णः प्लुत संज्ञश्च।	ऊकालोऽज् ह्रस्व दीर्घ-प्लुतः १।२।२७		
महाहरः १।४१, २।९	अस्यन्तिकलयहेतुः लुक्	प्रत्ययस्य लुक् श्लु-लुपः १।१।६१		
माधवः ७।२४६	ट् इत् ण् इत च तद्धित प्रत्ययः			
माधव ठः ७।२८१	टिकण् (तद्धित प्रत्ययः)			
यदुः २।२७	शसादयः सुवन्ताः षोडश स्वादि विभक्तयः— शस्, टा भ्याम् भिस्, ङे भ्याम् भ्यस्, ङसि भ्याम् भ्यस्, ङस् ओस् आम्, ङि ओस् सुप् इति।			

६ (सिद्धहेम)	७ (सारस्वत)	८ (मुग्धबोध)	९ (संक्षिप्तसार)	१० (सुपद्म)
श्वस्तनी ता तास्महे ३।३।१४	श्वस्तने, ता तास्महे उ० १।४० लुट्	डी अष्टादशशः ५२६	ताङ् तास्महे लुङ् भाविन्यनद्यतने तिङन्तपादः ८३१	अनद्यतने लुङ् ३।२।३२ लुटस्ता तास्महे ३।२।८४
	धिः—आमन्त्रणे सिधिः पू० ७।२०	धिः—सम्बुद्धौ सिधिः ८०	ह्रस्वैङ्भ्यां सोः सम्बुद्धौ सुबन्तपादः (५)	सम्बोधनैकवचनं सम्बुद्धिः २।२।६
		पिः अघ्यच् ताच्येप् पिः १००		भ यचि भमसादिस्थाने २।३।५
अद्यतनी दि महि ३।३।११	भूते सिः उ० १।४४ लुङ्	टी अष्टादशशः ५२६	लुङ् सङ् च तिङन्त पादः ८४४	भुते लुङ् ३।२।२० लुङ् लङ् लृङां दिप् महि ३।२।८५
ह्यस्तनी दिव् महि ३।३।९	अनद्यतनेऽतीते दिप् महि उ० १।२५ लङ्	घीः अष्टादशशः ५२६	दुङ् महि लङनद्य तने भुते तिङन्त- पादः ६४२	अनद्यतने लङ् ३।२।२१, लुङ् लङ् लृङां दिप् महि ३।२ ८५
एक-द्वि-त्रिमात्रा ह्रस्व दीर्घ प्लुताः १।१।५	ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतभेदा सवर्णाः पू १।२ दूरादाह्वाने च टेः प्लुतः पू० ४।५	प्लु—आ वत् स्वः घं प्लु (५)		प्लुतः वर्ग्यस्वरौ सजातीयैः सवर्णौ १।१।१५ इत्यस्य वृत्तौ
			लुक् चिह्नार्थस्य सुबन्तपादः १	लुक्—न लुवलुकालुप्ते प्रत्यये तल्लक्षणं कार्य्यमङ्गस्य १।१।३३

१	२ (संज्ञा विवरणानि)	३ (पाणिनि)	४ (कलाप)	५ (चान्द्र)
यादवा: १।३२	वर्गाणां प्रथम द्वितीय वर्णा: शष साश्च	खर् शिवसूत्राणि ११-१३	अघोष: वर्गाणां प्रथम द्वितीया: शषसाश्चाघोषा: १।१।११	खर् प्रत्याहार सूत्राणि १०-१२
युवा: ७।२९९	पित्रादौ जीवति पौत्रादेरपत्यम् ज्येष्ठभ्रातरि जीवति कनिष्ठश्च।			
राधा २।६३	आप् प्रत्ययान्त: स्त्रीलिङ्ग शब्द:		आ श्रद्धा २।१।१०	
राम: १।३७	वर्णस्वरूपमात्रस्य वाचक: श्रीरामचन्द्रस्यैकपरिग्रहता ख्यातेरेतत्संज्ञासिद्धि:।	तत्परस्तत्कालस्य १।१।७०		ता तत्काल: १।१।३
रामकृष्ण: ६।२, ११७	द्वन्द्वसमास:	चार्थे द्वन्द्व: २।२।२९	द्वन्द्व समुच्चयो नाम्नोर्वहूनां वापि यो भवेत् २।५।११	चार्थे २।२।४८
रामधातुका: ३।२३	कृष्णधातुक भिन्नप्रत्यया अधोक्षज कामपाल बालकलिक कल्क्यजित नामान: पञ्च लकाराश्च (लिट् आशीर्लिङ् लुट् लृट् लृङ्)	आर्धधातुकं शेष: ३।४।११४		
लक्ष्मी: २।६	स्त्रीलिङ्ग: शब्द			
वामन: १।५, ७९	एकात्मक वर्णानां पूर्व्वपूर्व्वो वर्ण: ह्रस्वो लघुश्च	ऊकालोऽज् ह्रस्व दीर्घ प्लुत: १।२। २७ ह्रस्वं लघु १।४।१०	पूर्व्वो ह्रस्व: १।१।५	
वासुदेव: ३।२	सजातीय विजातीयानेकाधिकारस्य व्यापी अधिकार:।			
विग्रह: ६।५	समासवाक्यम्			
विधाता: ३।५	आशी: प्रेरणाद्यर्थेषु धातो: परं प्रयुज्यमाना: तुवादयोऽष्टादश विभक्तय:—तुप् ताम् अन्तु, हि तम् त, आनिप् आवप् आमप्। ताम् आताम् अन्ताम्, स्व आथाम् ध्वम्, ऐप् आवहैप् आमहैप् इति—लोट्	लोट् च आशिषि लिङ् लोटौ ३।३।	पञ्चमी ३।१।२६	लोट् १।३।१६२

६ (सिद्धहेम)	७ (सारस्वत)	८ (मुग्धबोध)	९ (संक्षिप्तसार)	१० (सुपद्म)
आद्य द्वितीय शषसा अघोषाः १।१।१३		खस् (३)		खर् खय् शरौ १।१।१० जीवति वंश्ये युवाऽग्रजेऽपि ५।२।११९
	कारग्रहणे केवलग्रहणम् तापर करणं तावन्मात्रार्थम् पू० संज्ञा प्रकरणम्	चपोदिकाऽकाऽनिता र्णः (७)		
चार्थे द्वन्द्वः सहोक्तौ ३।१।११७	चार्थे द्वन्द्वः पू० १८।१५ –	च—भिन्नान्यैकार्थ च ह य ष ग वाः ३१८	द्वन्द्वोऽन्योऽन्य-योगे समास-पादः १२१	चार्थे द्वन्द्वः ४।३।७७
				शेषमलुङार्द्ध-धातुकम् ३।२।१८
एक द्वि त्रिमात्रा ह्रस्व दीर्घ प्लुताः १।१।५	ह्रस्व दीर्घ प्लुतभेदाः सवर्णाः पू० १।२ असंयोगादि परो ह्रस्वो लघुः पू० १।२०	आ वत् स्व-र्घ प्लु (५) घु—स्वघौ घुरू ५३९	णौ घटादेर्ह्रस्वः सन्धिपादः १३	ह्रस्वो लघुः १।१।१६
	अन्वययोग्याथ समपकः पद समुदायो विग्रहो वाक्यम् पू० १८।१ इत्यस्य वृत्तौ			
पञ्चमी तुव् आमहैव् ३।३।८	आशीःप्रेरणयोस्तुप् आमहैप् उ० १२२	गी—अष्टादशशः ५२९	तुङ् ङामहे लोड् विध्यादौ तिङन्तपादः ६२०	लोट् इच्छार्थे विभिसंप्रश्न प्रार्थने च लिङ् लोटौ ३।२।६४ आशिषि लोङ् लोटौ ३।२।७२ लोटस्तुप् आमहैप् ३।२।८०

१	२ (संज्ञा विवरणानि)	३ (पाणिनि)	४ (कलाप)	५ (चान्द्र)
विधिः ३।४	विधि सम्भावनाद्यर्थेषु धातोः परं प्रयुज्यमानाः यादादयोऽष्टादश विभक्तयः—यात् याताम् युस्, यास् यातम् यात, याम् याव याम। ईत ईयाताम् ईरन्, ईथास ईयाथाम् ईध्वम्, ईय ईवहि ईमहि इति—विधिलिङ्	विधि निमन्त्रणामन्त्रणाधीष्ट संप्रश्न प्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१	सप्तमी ३।१।२५	उताप्योर्वाढार्थे लिङ् विधि संप्रश्न प्रार्थनेषु १।३।११७, १२१
विभुः ३।२	अवान्तरानेकाधिकारव्यापी अधिकारः			
विभुः ३।५११	नामधातुः।			
विरिञ्चिः १।३६, ४७	आदेशः। विरिञ्चिर्ब्रह्मा यथैकं वस्तूपादाय अन्यत् करोति तथास्य विधेः प्रवर्त्तमानत्वादेतत्संज्ञासिद्धिः।			
विष्णुः १।४०	आगमः। विष्णुर्यथा मध्यतः स्वयमाविर्भूय पोषको भवति तथास्य विधेः प्रवर्त्तमानत्वादेतत्संज्ञासिद्धिः।		आगम उदनुबन्धः स्वरादन्त्यात् परः २।१।६	
विष्णुकृत्वाः ४।६०, ५।१४६	विध्याद्यर्थेषु भाव वाच्ये कर्म्म वाच्ये च धातोः परं प्रयुज्यमानाः तव्यानीय यत् क्यप् ण्यत् केलिमाः कृत् प्रत्ययाः।	कृत्याः ३।१।९५	ते कृत्याः ४।२।४६	तव्यानीयर् केलिमरः १।१।१०५
विष्णुगणाः १।२०	ञ वर्जिता वर्गीय वर्णाः।	मय् शिवसूत्राणि ७-१२		मय् प्रत्याहार सूत्राणि ६।११
विष्णुचक्रम् १।१४	विन्दुस्वरूपो वर्णः, अनुस्वारः।		अं इत्यनुस्वारः १।१।१९	
विष्णुचापः १।१५	अर्द्धचन्द्राकृतिनासिकाभवो वर्णः चन्द्रविन्दुः।			
विष्णुजनाः १।१७	ककारादयो हकारान्ता वर्णाः व्यञ्जनवर्णाः। विष्णोः सर्व्वव्यापकतया सर्व्वेश्वरस्य जना इव स्वरवर्णानामधीनाः।	हल् शिवसूत्राणि ५।१४	कादीनि व्यञ्जनानि १।१।९	हल् प्रत्याहार सूत्राणि ५-१३
विष्णुदासाः १।२६	अनुनासिक पञ्चम वर्णाः (ङ ञ ण न म) वर्जिता वर्गीय वर्णाः—क ख ग घ, च छ ज झ, ट ठ ड ढ, त थ द ध, प फ ब भ, इति	झय् शिव सूत्राणि ८-१२		झय् प्रत्याहार सूत्राणि ७।११
विष्णुनिष्ठा ४।४४, ५।२७	अतीतादिकालेषु धातोः परं प्रयुज्यमानौ भाव कर्म्म वाच्ये क्तः कर्त्तृ वाच्ये क्तवतुश्च।	क्त क्तवतू निष्ठा १।१।२६	निष्ठा ४।३।९३	क्तवतुः भावाप्ययोः क्तः १।२।६६-६७
विष्णुपदम् २।७	विभक्तिसिद्धं नाम्नो धातोर्व्वा रूपम्।	सुप् तिङन्तं पदम् १।४।१४	पूर्व्वपरयोरर्थोपलब्धौ पदम् १।१।२०	

६ (सिद्धहेम)	७ (सारस्वत)	८ (मुग्धबोध)	९ (संक्षिप्तसार)	१० (सुपद्म)
सप्तमी यात्—ईमहि ३।३।७		खी—अष्टादशशः ५२९	यात्—ईमहि लिङ्‌लोडर्थे तिङन्तपादः ६६३	लिङ्—लिङाशंसार्थे ३।२।४१ इच्छार्थे विधिसंप्रश्न प्रार्थने च लिङ्‌लोटौ ३।२।६४ लिङो यात्—ईमहि ३।२।८६
			नामधातुश्च बहुलम् सन्धिपादः १०	
	आदेशः—शत्रुवदादेशः पू० १।१३ आगमः—मित्रवदागमः पू० १।२			
		ल्यः—ते ल्याः शक्यार्ह्य प्रेष्यानुज्ञा प्राप्तकाले वा ९८९		कृत्याः प्राङ् णकात् ४।१।८
		णप् (३)		
अं अः अनुस्वार विसर्गौ १।१।९	वर्णशिरोविन्दुरनुस्वारः पू० १।२५	नु—अं अः नुवी १९	अपदान्तस्य शादाव अं नुस्वारः सन्धिपादः १३४	ङमोऽनुनासिकाः १।१।१४
	मुखनासिकाभ्यामुच्चार्य्यमाणो वर्णोऽनुनासिकः पू० १२२			
कादिर्व्यञ्जनम् १।१।१०	हसा व्यञ्जनानि पू० १।७	हस् (३)		अचोऽन्ये हल् १।१।२
		झप् (३)		झय् वर्गोऽङम् १।१।७
				क्त-क्तवतु निष्ठा ३।२।१६
तदन्तं पादम् १।१।२०	विभक्त्यन्तं पदम् पू० ७।१	द—क्त्यन्तान्यो दली १४		सुप्तिङन्तं पदम् २।३।१

१	२ (संज्ञा-विवरणानि)	३ (पाणिनि)	४ (कलाप)	५ (चान्द्र)
विष्णुभक्तिः २।१	स्वादि-तिवादि विभक्तिः	विभक्तिश्च १।४।१०४	तस्मात् परा विभक्तयः २।१।२	
विष्णुवर्गाः १।१९	ककारादयो मकारान्त व्यञ्जनवर्णाः पञ्च पञ्च एतत्संज्ञाः, वर्ग-संज्ञाश्च ।	अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः १।१।६९	ते वर्गाः पञ्च पञ्च पञ्च १।१।१०	उता सवर्गः १।१।२
विष्णुसर्गः १।१३	विन्दुद्वयाकारो वर्णः विसर्गः ।		अः इति विसर्ज्जनीयः १।१।१६	
वृष्णिः २।३३	ङ् इत् स्वादिप्रत्ययः ।			
वृष्णीन्द्रः २।४३	वृद्धिः—अ द्वयस्य आ, इ द्वयस्य ऐ, उ द्वयस्य औ, ऋ द्वयस्य आर्, लृ द्वयस्य आल्, ए ओ स्थाने ऐ औ च	वृद्धिरादैच् १।१।१		
वैदिकाः २।५	चन्द्रविन्दु युक्ता अ कारादि विशेषवर्णाः			
वैष्णवाः १।३०	अनुनासिक वर्ण पञ्चक वर्जिता वर्गीय वर्णाः श ष स हाश्च—क ख ग घ, च छ ज झ, ट ठ ड ढ, त थ द ध, प फ ब भ, श ष स ह इति ।	झल् शिवसूत्राणि ८।१४	घुड् व्यञ्जनमनन्तः स्थानुनासिकम् २।१।३	झल् प्रत्याहार सूत्राणि ७-१३
शिवः ३।१८	श् इत् आख्यात प्रत्ययः	अनेकाल् शित् सर्व्वस्य १।१।५५		श्चिदनेकाल् सर्व्वस्य १।१।१२
शौरिः १।२९	श ष स	शर् शिवसूत्रम् १३		शर् प्रत्याहार सूत्रम् १२
श्यामरामः ६।२, ९	कर्म्मधारय समासः ।	तत्पुरुष समानाधिकरणः कर्म्मधारयः १।२।४२	पदे तुल्याधिकरणे विज्ञेयः कर्म्मधारयः २।५।५	विशेषणमेकार्थेन २।२।१८
संसारः १।७५, २।३८	शब्दस्य अन्त्य स्वरादारभ्य शेषांशः	अचोऽन्त्यादि टि १।१।६४		
सङ्कर्षणः ३।२४४	पर स्वरवर्णेन सहितं य व र कार स्थाने क्रमेण इ उ ऋ कारादेशः सम्प्रसारणम्	इग् यणः सम्प्रसारणम् १।१।४५		
सत्सङ्गः १।८२	मिथः संलग्नो व्यञ्जनवर्णः	हलोऽनन्तराः संयोगः १।१।७		
समासः ६।३	अन्तर्भिन्नपदत्वेऽप्येकनामत्वेन	समर्थः पदविधिः २।१।१	नाम्नां समासो युक्तार्थः २।५।१	समासः सुपा सुपैकार्थ्यम् २।२।१ इत्यस्य वृत्तौ

६ (सिद्धहेम)	७ (सारस्वत)	८ (मुग्धबोध)	९ (संक्षिप्तसार)	१० (सुपद्म)
स्त्यादिर्विभक्तिः १।१।१९		क्तिः— सित्यादिः क्तिः १२		उदिद् ह्रस्वश्च सवर्णेनाप्रत्ययो ऽतपरः १।१।१९
पञ्चको वर्गः १।१।१२	कु चु टु तु पु वर्गाः पू० १।१५	चपोदिताऽकाऽनिता र्णः ७		खयादिर्द्वयं वर्गस्य १।१।३ इत्यस्य वृत्तौ
अं अः अनुस्वार विसर्गौ १।१।९	अः त्र्ति विसर्जनीयः पू० १।२४	विः—अं अः नुवी १९	स्रोर्विसर्गोऽकस्कादेः सन्धिपादः १३८	
		ङित्—ङिदपिद्रः ५३२		ङित्—ङिदपिल्लुङ् सार्व्वधातुके ३।२।१
वृद्धिरारैदौत् ३।३।१	आरै औ वृद्धिः पू० १।१७	व्रिः—अच आरालैज् व्रिः ९	वृद्धिरादैजागालैचोऽ- ङः सन्धिपादः १	वृद्धिरादैजारा- लोऽक ऐ जे चश्च १।१।२१
अपञ्चमान्तःस्थो धुट् १।१।११				ङम् यण् हीनो झल् १।१।१२
एताः शितः ३।३।१०				
		शस् ३		शषसाः शर् १।१।९
	कर्म्मधारयस्तुल्यार्थे पू० १८।२५	य ३१८	विशेषणस्य विशेष्यैः कर्म्मधारयः समास पादः ८६	विशेषणमेकार्थेन कर्म्मधारयो बहुलम् ४।३।५८
	टिः—अन्त्यस्वरादिष्टि पू० १।१८	टिः अन्त्याजादिष्टिः ६२		अचोऽन्त्यादि टिः १।१।३०
		जिः—यलोऽचेग् जिः ५३५		
	स्वरानन्तरिता हसा संयोगः पू० ११४	स्यः हसोऽनन्तरः स्यः ९५		हलो लग्नाः सं योगः १।१।२०
नाम नाम्नैकार्थे समासो बहुलम् ३।१।१८	समासश्चान्वये नाम्नाम् पू० १८।१	सः देवयं सोऽन्वये ३१७	समासोऽनेक- पदस्यैक पदवत्ता समासपादः १	समर्थानां समासः ४।३।१

१	२ (संज्ञा विवरणानि)	३ (पाणिनि)	४ (कलाप)	५ (चान्द्र)
सम्प्रदानम् ४।८८	प्रदेयाभिसम्बध्यमानं कारकम्।	कर्म्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १।४।३२	यस्मै दित्सा रोचते धारयते वा तत् सम्प्रदानम् २।४।१०	सम्प्रदाने चतुर्थी २।१।७३
सर्व्वेश्वराः १।२	वर्णक्रमे आदौ चतुर्द्दशः वर्णाः, स्वरवर्णाः। कादि व्यञ्जन वर्णानामुच्चारणं स्वतन्त्रोच्चारणानामेषा मधीनमिति सर्व्वेश्वर-संज्ञा सिद्धिः।	अच् शिवसूत्राणि १-४	तत्र चतुर्द्दशादौ स्वराः १।१।२	अच् प्रत्याहार सूत्राणि १-४
सात्वताः १।३३	वर्गाणां प्रथम द्वितीय वर्णाः—क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ इति।	खय् शिवसूत्रे ११-१२		खय् प्रत्याहार सूत्रे १०-११
सिद्धोपदेशाः २।५	धातुप्रत्ययगमाः।			
स्मरहरः ७।३६३	लुप्।	लुप्—लुपि युक्तवद्व्यक्ति वचने १।२।५१		
हरः १।४१	अदर्शनमात्रहेतुर्लोपः हरो यथा नाशहेतुर्भवति तथास्य विधेः प्रवर्त्तमानत्वादेतत्संज्ञासिद्धिः।	अदर्शनं लोपः १।१।६०		
हरिः २।३०	इ उ कारान्तः पुंलिङ्ग शब्दः।	घिः—शेषो घ्यसखि १।४।७	अग्निः—इदुदग्निः २।१।८	
हरिकमलानि १।२१	वर्गाणां प्रथमवर्णाः—क च ट त प इति।	चय् शिवसूत्रे ११-१२		चय् प्रत्याहारसूत्रे १०-११
हरिखड्गाः १।२२	वर्गाणां द्वितीय वर्णाः—ख छ ठ थ फ इति।			
हरिगदाः १।२३	वर्गाणां तृतीय वर्णाः ग ज ड द ब इति।	जश् शिवसूत्रम् १०		जश् प्रत्याहार सूत्रम् ९
हरिगोत्राणि १।२८	श ष स हाः।	शल् शिवसूत्रे १३-१४	उष्माणः शषसहाः १।१।१५	शल् प्रत्याहार सूत्रे १२-१३
हरिघोषाः १।२४	वर्गाणां चतुर्थ वर्णाः—घ झ ढ ध भ इति।	झष् शिवसूत्रे ८-९		झष् प्रत्याहार सूत्रे ७-८
हरिमित्राणि १।२७	य र ल वाः।	यण् शिवसूत्रे ५-६	अन्तस्था यरलवाः १।१।१४	यण् प्रत्याहार सूत्रम् ५
हरिवेणवः १।२५	वर्गाणां पञ्चम वर्णाः—ङ ञ ण न म इति।	ञम् शिवसूत्रम् ७	अनुनासिका ङ ञ ण न माः १।१।१३	ञम् प्रत्याहार सूत्रम् ६

६ (सिद्धहेम)	७ (सारस्वत)	८ (मुग्धबोध)	९ (संक्षिप्तसार)	१० (सुपद्म)
कर्म्माभिप्रेयः सम्प्रदानम् २।२।२५	दानपात्रे सम्प्रदान कारके चतुर्थी पू १७।७ इत्यस्य वृत्तौ	भः—यस्मै दित्सा सूया क्रोधेर्ष्या रुचि- द्रोह स्था ह्नु श्लाघ स्पृहि शप्राधीक्षा- प्रतिश्रु प्रत्यनु गृ- धार्य्यार्थां भं ची तादर्थ्ये च २९४	प्रदालप् सम्प्रदानम् कारकपादः १७	प्रदानाभिसम्बध्य मानं सम्प्रदानम् २।१।२२
औदन्ताः स्वराः १।१।४	अ इ उ ऋ ऌ समानाः ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षराणि उभये स्वराः पू १।११ ३, ४	अच् (३)	अच् सन्धिपादः १	अच् १।१।१
		खप् (३)		खय् खयादिद्वयं वर्गस्य १।१।३
				न लुव् लुका लुप्ते प्रत्यये तल्लक्षणं कार्य्यमङ्गस्य १।१।३३
	वर्णादर्शनं लोपः पू० १।१०			
				उदितो घिः सख्य समास पतिवर्ज्यम् २।३।७
		चप् (३)		
		खथ् (३)		
		जव् (३)		तृतीयो जश् १।१।४
		झभ् (३)		तुर्यो झष् १।१।८
यवरलवा अन्तःस्थाः १।१।१५		यल् (३)		यवरल यण् १।१।८
		ञम् (३)		ञम् पञ्चमः १।१।६ अं ङमोऽनुनासिकाः १।१।१४

श्लोक-सूची

[दक्षिणपार्श्वस्थित-संख्याप्रकरणश्लोकाङ्कनिर्द्देशिका, म—ग्रन्थारम्भे मङ्गलाचरणम्, उप—उपसंहारः]

श्रीश्रीहरिनामामृत-व्याकरणे

श्लोकसूत्रसमष्टि निर्णयः

	श्लोकसंख्या	सूत्रसंख्या
मङ्गलाचरणम्	४	
१। संज्ञासन्धिप्रकरणम्	९	१४७
२। विष्णुपदप्रकरणम्	१४	२१८
३। आख्यातप्रकरणम्	१९	५८६
४। कारकप्रकरणम्	१४	२७५
५। कृदन्तप्रकरणम्	४	४६६
६। समासप्रकरणम्	९	३७३
७। तद्धितप्रकरणम्	४	११२७
ग्रन्थोपसंहारः	७	
	श्लोक-समष्टिः— ८४	सूत्र समष्टिः— ३१९२

साङ्केतिक-चिह्नानि

सं० प्र०—संज्ञा-सन्धिप्रकरणम्
वि० प्र०—विष्णुपदप्रकरणम्
आ० प्र०—आख्यातप्रकरणम्
का० प्र०—कारकप्रकरणम्
कृ० प्र०—कृदन्तप्रकरणम्
समा० प्र०—समासप्रकरणम्
त० प्र०—तद्धितप्रकरणम्
पा—पाणिनीयं व्याकरणम्

श्रीश्रीहरिनामामृत-व्याकरणस्य

उद्धृत-पद्यपद्यांशसूची

पद्यप्रतीकम्	आकरः	छन्दः	प्रकरणसूत्रसंख्या
अजिग्रहत्तं	भट्टिकाव्यम् २।४२	उपेन्द्रवज्रा	४।३०
अतप्त तपो नरः		हरिणी वृत्तांशः	४।२३
अतैलपूराः	कुमारसम्भवम् १।१०	उपेन्द्रवज्रा	७।०९९
अद्रिः सुतां	कुमारसम्भवम् १।४२	उपजातिः	४।३०
अनङ्गमानभङ्गुरम्		प्रमाणिका	५।३४३
अन्धायास्त	काशिका २।३।१७	अनुष्टुप्	४।३५
अन्यच्च किञ्चिद्		अनुष्टुप्	४।२१०
अपश्यती वनम	पाणिनिमुनेः काव्यम्	उपजातिः (ऋद्धिः)	५।१७
अपिस्येत् पर्व्वतं सिंहः		अनुष्टुप्	३।५६६
अयाचितारं न	कुमारसम्भवम् १।५२	उपजातिः	४।३०
अविवेकः	किरातार्ज्जुनीयम् २।३०	वियोगिनी (सुन्दरी)	३।४२२
अशेषाघहरं	श्रीमद्भागवतम् ६।२।१४	अनुष्टुप्	१। [४]
अश्मानं दृषदं	काशिका २।३।१७	अनुष्टुप्	४।३५
अहो भाग्यं भाग्यम्		शिखरिणी वृत्तांशः	६।३६९
अहो भाग्यमहो	श्रीमद्भागवतम् १०।१४।३२	अनुष्टुप्	६।३६९
अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या		अनुष्टुप्	४।१०९
आः कष्टं	भट्टिकाव्यम् ६।११	अनुष्टुप्	२।७५
आकालिकीं वीक्ष्य	कुमारसम्भवम् ३।३४	इन्द्रवज्रा	७।८२७
आखूत्थशलभोत्थादि	शब्दार्णवः	अनुष्टुप्	५।२२०
आतिष्ठद्गु	भट्टिकाव्यम् ४।१४	अनुष्टुप्	६।१७८
आत्मनेऽपि द्वयम्	आख्यातचन्द्रिका	अनुष्टुप्	३।३५
आदत्तो मृत्तिकां कृष्णो		अनुष्टुप्	४।२१०
आराद् दूरसमीपयोः	अमरकोषः ३।३।२४२	अनुष्टुप्	४।१२३
आवेदयन्तः	भट्टिकाव्यम् ३।४९	इन्द्रवज्रा	५।१३४
इदानीं दुःख		अनुष्टुप्	१।८६
इयेष सा	कुमारसम्भवम् ५।२	वंशस्थविलम्	७।८६
ईक्षितव्यं	भट्टिकाव्यम् ८।७६	अनुष्टुप्	४।९५
उचितं रचयामि देवि ते		वियोगिनी वृत्तांशः	२।२०९
उद्गच्छति च भास्करः	भट्टिकाव्यम् १८।१९	अनुष्टुप्	२।११६
उद्भासीनि	भट्टिकाव्यम् ६।७५	अनुष्टुप्	५।३०९
उपतिष्ठे सरस्वतीम्	अनर्घराघवनाटकम् १।११	,,	६।५२
उपत्यका	अमरकोषः ३।३।७	,,	७।८८२
उपर्य्युपरि बुद्धीनां		,,	४।११०
उपलम्भ्यामपश्यन्तः	भट्टिकाव्यम् ७।९२	,,	७।३६८
उपायंसत		,,	४।२५१
एकैकशो		,,	६।३६३
एति जीवन्तमानन्दः		,,	४.६४

पद्यप्रतीकम्	आकरः	छन्दः	प्रकरणसूत्रसंख्या
एवौपम्येऽवधारणे	विश्वप्रकाशः २।६३	अनुष्टुप्	६।२९६
कदध्वा कापथः	अमरकोषः २।३।७	,,	६।१४३
करीन्द्रदर्पच्छिदुरो		उपेन्द्रवज्रा	५।३४५
कर्णजाहविलोचना	भट्टिकाव्यम् ४।१६	अनुष्टुप्	७।८७३
कार्त्स्न्येन भजति प्रियाम्		,,	४।११४
काशाश्चक्रे पुरी	भाषावृत्तिः	,,	३।२२८
किं व्याददत्से विहग ! वदनम्		मन्दाक्रान्ता वृत्तांशः	४।२१०
किरति नयना		उपगीत आर्य्या	६।३४०
कृष्णैकशरणस्यास्य		अनुष्टुप्	२।२०४
कृष्णो मम च सौख्याय		,,	२।२०५
कौमारीं पततां वर	भट्टिकाव्यम् ७।९२	,,	७।३६८
कौस्तुभेन भगवन्तमद्राक्षीत्		स्वागता	४।११४
क्षीणेऽवतमसं तम	अमरकोषः १।७।३	अनुष्टुप्	७।१०३
क्षीवतामुपगता	शिशुपालबधम् १०।३४	स्वागता	७।८६
खलूक्त्वा खलु वाचिकम्	शिशुपालबधम् २।७०	अनुष्टुप्	५।७३
गतेऽर्द्धरात्रे	पाणिनिमुनेः काव्यम्	उपजातिः (ऋद्धिः)	५।१७
गर्ज्जत्यसौ	पाणिनिमुनेः काव्यम्	उपजातिः (ऋद्धिः)	५।१७
गिरमत्युदारां	किरातार्ज्जुनीयम् ३।१०	उपजाति (माया)	४।२८
गुणज्ञो ब्राह्मणो दाशः		अनुष्टुप्	५।३८१
गुणलुब्धाः स्वयमेव	किरातार्ज्जुनीयम् २।३०	वियोगिनी (सुन्दरी)	३।४२२
गृणद्भ्योऽनु	भट्टिकाव्यम् ८।७७	अनुष्टुप्	४।९८
गोपायकेद् धनायुषी	नीतिशास्त्रम्	,,	७।१०३७
गोपीवृन्देन खेलितम्		,,	६।३६६
गोष्ठं गोस्थानकं	अमरकोषः २।१।१४	,,	५।२२०
चञ्चत्पक्षतिभिः खगैः		,,	७।८७४
चन्द्रलेखेव	भट्टिकाव्यम् ४।१६	,,	७।८७४
चान्दनिकं हरेर्वपुः		,,	७।८१३
चारुतामभिमता	किरातार्ज्जुनीयम् ९।६४	स्वागता	७।८६
चालनी तितउः	अमरकोषः २।९।२६	अनुष्टुप्	२।४८
चिचेत राम	भट्टिकाव्यम् १४।६२	,,	३।७८
जगाद, मारीच	भट्टिकाव्यम् २।३२	इन्द्रवज्रा	४।२८
जन्मजन्म यदभ्यस्तम्		अनुष्टुप्	४।१०९
जलप्रायमनूपं	अमरकोषः २।१।११	,,	६।३५४
तति ते नाग		,,	२।४१
तपसामसिद्धिम्	रावणार्ज्जुनीयकाव्यम् १९।२	उपजाति वृत्तांशः	६।२०४
तव हन्त कुतो भयम्		अनुष्टुप्	२।२०४
तस्मिन्नन्तर्घणे	भट्टिकाव्यम् ७।६३	,,	५।४२७
तां प्रातिकूलिकीं	भट्टिकाव्यम् ५।९४	,,	७।६४३

पद्यप्रतीकम्	आकरः	छन्दः	प्रकरणसूत्रसंख्या
पुत्रं मित्रवदाचरेत्	वृद्धचाणक्यः ७५	,,	७।८२८
पुरीं द्रक्ष्यथ काञ्चनीम्		,,	७।५८३
पुष्पमर्घ्यं पदाम्बुजे		,,	६।६३
प्रदीयतां	रामायणम्, युद्धकाण्डम् ६।२२.२३ महानाटकम् ६।३४	वंशस्तविलम्	७।२५६
प्रफुल्लपुण्डरीकाक्षं		अनुष्टुप्	५।४०
प्राध्वङ्कृत्य		,,	५।८७
प्राप्तौ प्राप्नोति	आख्यातचन्द्रिका (भट्टमल्ल कृता)	,,	३।३५
प्रामाद्यद् गुणिनां	भट्टिकाव्यम् १७।३९	,,	४।१५०
प्लवङ्गनखकोटिभिः		पृथ्वी	७।१७३
फलेग्रहीन्	भट्टिकाव्यम् २।३३	उपेन्द्रवज्रा	५।२४२
बद्धकोपविकृता	किरातार्ज्जुनीयम् ९।६४	स्वागता	७।८६
बभौ बहुच्छत्र	शिशुपालवधम् १२।३३	वंशस्थविलम्	७।८६
बह्वेवं विललाप	भट्टिकाव्यम् ६।११	अनुष्टुप्	२।७५
बुभुक्षितं न		उपेन्द्रवज्रा	४।११०
भग्नवाल	शिशुपालवधम् १०।३	स्वागता	७।१६५
भर्त्तुर्विप्रकृतापि	अभिज्ञान शकुन्तलम् ४।१८	शार्दूलविक्रीडितम्	७।८६
भवता चारुविक्रमः	भट्टिकाव्यम् ६।५१	अनुष्टुप्	५।१६०
भवती प्रसादात्		इन्द्रवज्रा वृत्तांशः	६।२५१
भवन्ति यत्रौषधयो	कुमारसम्भवम् १।१०	उपेन्द्रवज्रा	७।१०९९
भवेद् भक्तिलवाद्धरिः		अनुष्टुप्	४।१३१
भीमयुद्धा शिखण्डिनी		,,	४।१९३
भुनक्ति पृथिवीं रामः		,,	४।२५७
भोगः शरीरम्	स्मृतिः	अनुष्टुव् वृत्तांशः	७।७१४
भ्रकुंसश्च	अमरकोषः १।६।११	अनुष्टुप्	६।२४२
भ्रमरैर्भीतभीतेन		,,	६।३६६
मखेषु मघवानसौ	भट्टिकाव्यम् १८।१९	,,	२।११६
मन्त्रो दुष्टः	पाणिनीयशिक्षा ५२	वातोर्म्मी	७।११०६
मन्ये काष्ठ	काशिका २।३।१७	अनुष्टुप्	४।३५
मात्स्यो न्यायः	कामन्दकीय नीतिसारः २।४०	अनुष्टुप्	७।७५
मा भैः शशाङ्क	काव्यमीमांसा धृत पद्यम् (शीतायाः)	वसन्ततिलकम्	३।३४६
मारीचमुच्चैः	भट्टिकाव्यम् २।३२	इन्द्रवज्रा	४।२८
मार्गणैरथ तव	किरातार्ज्जुनीयम् १३।५९	रथोद्धता	४।२१६
मुखं व्यादाच्च मायया		अनुष्टुप्	४।२१०
मुमुक्षोर्धनकः कुतः		अनुष्टुप्	७।९१९
मृगस्यानुपदी	भट्टिकाव्यम् ५।५०	,,	७।९२३
मृगेन मृगलोचना	भट्टिकाव्यम् ५।४९	,,	४।१०१
यति ते नाग		,,	२।४१

पद्यप्रतीकम्	आकरः	छन्दः	प्रकरणसूत्रसंख्या
यत्र तिष्ठति कंसहा	श्रीपद्यावली, ३१२ग श्रीपद्मपुराणम् (पातालखण्डे मथुरा माहात्म्ये)	अनुष्टुप्	५।२९९
यदङ्गनारूप	शिशुपालबधम् ३।४२	उपेन्द्रवज्रा	७।८६
यदि सरसिरुह		उपगीत आर्य्या	६।३४०
यस्य माता	काशिका २।३।१७	अनुष्टुप्	४।३५
याः पश्यन्ति		,,	५।४०
रमणानि वनौकसाम्	भट्टिकाव्यम् ६।७३	,,	५।१९७
रामस्तव च शर्मणे		,,	२।२०५
लक्ष्मणं सा	भट्टिकाव्यम् ४।३०	,,	३।५१४
लघुर्बहुतृणं नरः	शिशुपालबधम् २।५०	,,	७।१०२८
ल्युः कर्त्तरि	अमरकोषः ३।५।१५	,,	५।१९७
ल्युः कर्त्तरीमनिज्	अमरकोषः ३।५।१५	,,	५।२१०
वकस्यामरवैरिणः		,,	४।२१०
वचने स्थित	अमरकोषः ३।१।२४	,,	५।२१०
वनेचराणां	कुमारसम्भवम् १।१०	उपेन्द्रवज्रा	७।१०९९
वपुरन्वलिप्त	शिशुपालबधम् ६।५१	प्रमिताक्षरा	७।८६
वहति स्वेच्छया	भट्टिकाव्यम् १८।१९	अनुष्टुप्	२।११६
वाणीं भजामि		वसन्ततिलकम्	६।५२
वाणेन रक्षः	भट्टिकाव्यम् २।३६	उपजातिः	४।३५
विभावरी	पाणिनिमुनेः काव्यम्	उपजातिः (ऋद्धिः)	५।१७
विश्वासयुक्ते	रुद्रकोषः	अनुष्टुप्	५।५६
विषवृक्षोऽपि	कुमारसम्भवम्	,,	४।५०
वृणते हि	किरातार्ज्जुनीयम् २।३०	वियोगिनी (सुन्दरी)	३।४२२
वृषस्यन्ति तु	अमरकोषः २।६।९	अनुष्टुप्	३।५२४
वैकुण्ठनाम	श्रीमद्भागवतम् ६।२।१४	,,	१।[४]
व्यध्वो दुरध्वो	अमरकोषः २।१।१७	,,	६।१४३
व्यभिचारित्वं युक्तीनाम्		,,	७।८६
व्याकोशकोकनदतां	शिशुपालबधम् ४।४६	वसन्ततिलकम्	७।८६
व्याददे स		अनुष्टुप्	४।२१०
व्यादेहीति		,,	४।२१०
व्रजति हि	शिशुपालबधम् ११।३३	मालिनी	७।८६
शङ्करस्य रहसि	कुमारसम्भवम् ८।१७	रथोद्धता	७।८६
शिष्यतां निधुवनोप	कुमारसम्भवम् ८।१७	रथोद्धता	७।८६
शृङ्गाटकविहारिणीम्	अनर्घराघवनाटकम् १।११	अनुष्टुप्	६।५२
शृण्वद्भ्यः प्रतिशृण्वति	भट्टिकाव्यम् ८।७७	,,	४।९७
श्रीयं लक्ष्मीयमित्यपि	दुर्घटवृत्तिः	,,	७।२३०
स एवमुक्त्वा	रघुवंशम् ३।५२	वंशस्थविलम्	२।११६
संक्रुध्यसि मृषा	भट्टिकाव्यम् ८।७६	अनुष्टुप्	४।९५

पद्यप्रतीकम्	आकर:	छन्द:	प्रकरणसूत्रसंख्या
सत्यवद्यो	भट्टिकाव्यम् ५।६०	अनुष्टुप्	५।११७
स देवदारु	कुमारसम्भवम् ३।४४	उपेन्द्रवज्रा	६।११
समुद्रोपत्यका	भट्टिकाव्यम् ५।८९	अनुष्टुप्	७।८८२
समूलघातं निजघान		उपेन्द्रवज्रा	५।११४
समूलघातं न्यवधीद्	,, १।२	,,	५।११४
सर्वमध्यैष्ट माधवः		अनुष्टुप्	४।१०९
सर्वानुत्तरकोशलान्		,,	५।८७
सहसा विदधीत	किरातार्ज्जुनीयम् २।३०	वियोगिनी (सुन्दरी)	३।४२२
साङ्केत्यं पारिहास्यं	श्रीमद्भागवतम् ६।२।१४	अनुष्टुप्	१। [४]
सा बाला	साहित्यदर्पण: १०।६०	शार्दूलविक्रीडितम्	४।५
सा मुमोच	कुमारसम्भवम् ८।१३	रथोद्धता	७.८६
सा लक्ष्मीरुपकुरुते	किरातार्ज्जुनीयम् ७।२८	प्रहर्षिणी	४।१५०
सीमेव पद्मासन	भट्टिकाव्यम् १।६	इन्द्रवज्रा	६।८७
सुग्रीवो नाम	,, ६।५१	अनुष्टुप्	५।१६०
सैन्याः श्रिया	शिशुपालबधम् ५।२८	वसन्ततिलकम्	७।८६
सैष कर्णो	उद्भटश्लोक:	अनुष्टुप्	३।१४१
सैष दाशरथी	,,	,,	३।१४१
सैष भीमो	,,	,,	३।१४१
सैष राजा	,,	,,	३।१४१
स्तोभं हेलन	श्रीमद्भागवतम् ६।२।१४	,,	१। [४]
स्नुः प्रस्थः	अमरकोषः २।३।५	,,	२।६३
स्यादबन्ध्यः	अमरकोषः २।४।६	,,	५।२४२
स्वधर्मो रक्षसामयम्	भट्टिकाव्यम् ८।७६	,,	४।६५
स्वयमतनुः		उपगीति आर्य्या	६।३४०
स्वो ज्ञातावात्मनि	अमरकोषः ३।३।२११	अनुष्टुप्	२।१७५
हरिं विनाङ्ग		,,	१।८६
हरिमप्यमंसत	शिशुपालबधम् १५।६१	उद्‌गता	४।३५
हरेर्यदक्रामि	नैषधीयचरितम् १।७०	वंशस्थविलम्	३।१६०
हविर्जक्षिति	भट्टिकाव्यम् १८।१९	अनुष्टुप्	२।११६
हस्तरोधं	,, ५।३२	,,	५।१२६
हा देवि	ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाशः, साहित्यदर्पण: २।१६	शार्दूलविक्रीडितवृत्तांश:	४।११०
हा पितः	भट्टिकाव्यम् ६।११		२।७५
हा रमणीनां	अमरकोषोद्घाटनटीका भट्टक्षीरस्वामीकृता ३।३।२५६	आर्य्या वृत्तांश	४।११०
हिम ऋतावपि	शिशुपालबधम् ६।६१	द्रुतविलम्बितम्	१।९२
हूं मात	भट्टिकाव्यम् ६।११	अनुष्टुप्	२।७५
हृदयङ्गम	भट्टिकाव्यम् ६।१०९	अनुष्टुप्	५।२४९

कारिका संग्रहः

अनिदेशोऽनुवादश्च विभाषा च निपातनम् ।
एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा दशधा सूत्रमुच्यते ।।
—अभियुक्तोक्तिः ।

अनाश्रिते तु व्यापारे निमित्तं हेतुरिष्यते ।
आश्रितावधिभावं तु लक्षणे लक्षणं विदुः ।।
—हरिकारिका ।

अनुवाद्यमनुक्त्वैव न विधेयमुदीरयेत् ।
न ह्यलब्धास्पदं किञ्चित् कुत्रचित् प्रतितिष्ठति ।।
—कुमारिलस्य तन्त्रवार्तिकम् ।

अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः ।
नकारस्य च मूर्द्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः ।
—व्याघ्रभूतेः श्लोकवार्त्तिकम् ।

अपादानं सम्प्रदानं तथाधिकरणं स्मृतम् ।
करणं कर्म्मकर्त्तेति कारकाणि वदन्ति षट् ।।
—वैयाकरणानाम् आभाणकः ।

अपादानसम्प्रदानकरणाधारकर्म्मणाम् ।
कर्त्तुश्चान्योन्यसन्देहे परमेकं प्रवर्त्तते ।।
—क्रमदीश्वरीय कारिका ।

अपादानसम्प्रदानकरणाधारकर्म्मणाम् ।
कर्त्तुश्चोभयसम्प्राप्तौ परमेव प्रवर्त्तते ।।
—भर्त्तृहरिः ।

अपाये यदुदासीनं चलं वा यदि वाऽचलम् ।
ध्रुवमेवातदावेशात्तदपादानमुच्यते ।।
—हरिकारिका ।

अप्राधान्यं विधेर्यत्र प्रतिषेधे प्रधानता ।
प्रसज्यप्रतिषेधोऽसौ क्रियया सह यत्र नञ् ।।
—कुमारिलस्य तन्त्रवार्तिकम् ।

अप्राप्ते प्रापणं चापि प्राप्तेर्वारणमेव वा ।
अधिकार्थविवक्षा च त्रयमेतन्निपातनात् ।।
—वैयाकरणानाम् आभाणकः ।

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् गुढनिर्णयम् ।
निर्द्दोषं हेतुमत् तुल्यं सूत्रमित्युच्यते बुधैः ।।
—वाररुच श्लोकः ।

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ।।
—विष्णुधर्म्मोत्तरः ।

'अविकारो द्रवं मूर्त्तं प्राणिस्थं स्वाङ्गमुच्यते ।
च्युतं च प्राणिनस्तत्तन्निभं च प्रतिमादिषु ।।'

'अवी तन्त्री-तरी-लक्ष्मी-ह्री-धी श्रीणामुणादिना ।
शब्दानान्तु भवत्येषां सुलोपो न कदाचन ।।'

'अष्टकं धातुपाठश्च गणपाठस्तथैव च ।
लिङ्गानुशासनं शिक्षा पाणिनीया अमी क्रमात् ।।'
—पाणिनीयाभाणकः ।

आकृतिग्रहणा जातिर्लिङ्गानां च न सर्व्वभाक् ।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रं च चरणैः सह ।।
—महाभाष्यम् ।

आगमादेशयोर्मध्ये बलीयानागमो विधिः ।
—वैयाकरणानाम् आभाणकः ।

आगमोऽनुपघातेन विकारश्चोपमर्द्दनात् ।
आदेशस्तु प्रसङ्गेन लोपः सर्व्वापकर्षणात् ।।
—आपिशलीय वचनम् ।

आत्मजन्या भवेदिच्छा इच्छाजन्या कृतिर्भवेत् ।
कृतिजन्या भवेच्चेष्टा क्रिया सैव निगद्यते ।।
—कौमाराणाम् आभाणकः ।

आत्मनेपदमिच्छन्ति परस्मैपदिनः क्वचित् ।
—वैयाकरणानाम् उक्तिः ।

आत्मनेपदसंप्राप्तौ परस्मै कुत्रचिद्भवेत् ।
—वैयाकरणानाम् उक्तिः ।

आदेश उपघाती यः प्रकृतेः प्रत्ययस्य वा ।
—वैयाकरणानाम् उक्तिः ।

आधारस्त्रिविधो ज्ञेयः कटाकाशतिलादिषु ।
निमित्तादिप्रभेदाच्च षड्विधः कैश्चिदिष्यते ।।
—सारस्वतानां कारिका ।

आरम्भोऽथापि सम्बन्धः सूत्रार्थस्तद्विशेषणम् ।
चोदकं परिहारश्च व्याख्या सूत्रस्य षड्विधा ।।
—विष्णुधर्म्मोत्तरः ।

आवश्यकत्वे नैकत्रानावश्यकतया परे ।
पदानां यत्र सम्बन्धः सोऽन्वाचय उदाहृतः ।।
—पुरुषोत्तम सम्प्रदायस्य श्लोकः ।

आसन्नं ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः ।
प्रथमं छन्दसामङ्गमाहुर्व्याकरणं बुधाः ।।
—हरिकारिका ।

'इदमन्तु सन्निकृष्टं, समीपतरवर्त्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं, तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥'
'इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः ॥'
—कविकल्पद्रुमे वोपदेवः।

इह जगति संसारे पदार्थो भिद्यते द्वयम्।
क्वचिद्व्यक्तिः क्वचिज्जातिः पाणिनेस्तूभय मतम् ॥
—आभाणकः।

उक्तं तिङादिनिर्दिष्टं मुख्यं कर्म्म द्विकर्म्मणाम्।
अप्रधानं दुहादीनां ण्यन्ते कर्त्ता च कर्म्म यत् ॥
—सौत्र सूत्रम्।

उक्तानुक्तदुरुक्तादिचिन्ता यत्र प्रवर्त्तते।
तं ग्रन्थ वार्त्तिकं प्राहुर्वार्त्तिकज्ञा विपश्चितः ॥
—सुरेश्वरकृत सम्बन्धवार्त्तिकम्।

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्त्तते।
त ग्रन्थं वार्त्तिकं प्राहुर्वार्त्तिकज्ञा मनीषिणः ॥
—पराशरोपपुराणम्।

उक्तानुक्तदुरुक्तानां व्यक्तिकारि तु वार्त्तिकम्।
—हेमचन्द्रसूरिः।

उणाद्यन्तं कृदन्तं च तद्धितान्तं समासजम्।
शब्दानुकरणं चैव नाम पञ्चविधं स्मृतम् ॥
—गोयीचन्द्रः।

उत्तरार्थान्वितस्वार्थाव्ययपूर्व्वस्तु यो भवेत्।
समासः सोऽव्ययीभावः स्त्रीपुंलिङ्गविवर्ज्जितः।
—शब्दशक्तिप्रकाशिका।

'उदूटौ यत्र विद्येते यो वः प्रत्ययसन्धिजः।
अन्तःस्थं तं विजानीयात्तदन्यो वर्ग्य उच्यते ॥'
'उपसर्गवशाद् धातुरनेकार्थप्रकाशकृत्।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत् ॥'
—अभिनवशाकटायनस्य धातुपाठः।

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
विहारहारसंहारप्रहारप्रतिहारवत् ॥
—सारस्वतव्याकरणम्।

उपोद्घातः पदं चैव पदार्थः पदविग्रहः।
चालना प्रत्यवस्था च व्याख्या तन्त्रस्य षड् विधा ॥
—कौमाराणां श्लोकः।

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्द्धमात्रकम् ॥
—सौवरशास्त्रीय वचनम्।

औपश्लेषिको वैषयिकश्चाभिव्यापक एव च।
आधारस्त्रिविधो ज्ञेयः कटाकाशतिलादिषु ॥
—पाणिनिसम्प्रदायस्य श्लोकः।

कर्णेचुरचुराश्चैव कूपमण्डूक इत्यपि।
कर्णेटिरिटिरा गेहेप्रगल्भोऽन्ये प्रयोगतः ॥
—प्रमोदजननी धृत श्लोकः।

कर्त्ता कर्म्म च करणं सम्प्रदानं ततः परम्।
अपादानाधिकरणे कारकाणि भवन्ति षट् ॥
—चाङ्ग सूत्रम्।

कर्त्ता च त्रिविधो ज्ञेयः कारकाणां प्रवर्त्तकः।
केवलो हेतुकर्त्ता च कर्म्मकर्त्ता तथाऽपरः ॥
—वैयाकरणानां कारिका।

कर्त्तृकर्म्माधिकरणं करणं सम्प्रदानकम्।
अपादानं च सन्देहे परं पूर्व्वेण बाध्यते ॥
—दुर्गादासोद्धृत कारिका।

कर्म्मधारय आद्यः स्याद्द्विगुस्तत्पुरुषोऽपरः।
बहुव्रीहिरथ द्वन्द्वोऽव्ययीभावः षडीरिताः ॥
—प्रयोगरत्नमाला।

कर्म्मस्थः पचतेर्भावः कर्म्मस्था च भिदेः क्रिया।
अस्त्यादिभावः कर्त्तृस्थः कर्त्तृस्था च गमे क्रिया ॥
—उमापतेः श्लोकः।

कर्म्मस्थः पचतेर्भावः कर्म्मस्था च भिदेः क्रिया।
मासासिभावः कर्त्तृस्थः कर्त्तृस्था च गमेः क्रिया ॥
—जयादित्यवचनम्।

कारकाव्यवधानेन क्रियानिष्पत्तिकारणम्।
यद्वै विवक्षितन्तेषु करणं तत् प्रकीर्त्तितम् ॥
—दौर्गटीकाधृत कारिका।

कार्य्यपूर्व्वे पञ्चमी स्यात् कार्य्यस्थाने तु षष्ठिका।
कार्य्ये तु प्रथमा वाच्या सप्तमी विषये परे ॥
—श्रीश्रीहरिनामामृत-व्याकरणम्।

कार्य्यिकार्य्यनिमित्तानां पदानां यदुदीरणम्।
वक्ष्यमाणार्थसंक्षेपादधिकारः स उच्यते ॥
—विल्वेश्वर धृत प्रमाणम्।

कार्यिणा हन्यते कार्य्यी कार्य्यं कार्य्येण हन्यते ।
निमित्तं च निमित्तेन तच्छेषमनुवर्त्तते ॥
—वैयाकरणानां कारिका ।

कार्यी कार्य्यं निमित्तं च त्रिभिः सूत्रमुदाहृतम् ।
—वैयाकरणगोष्ठीसम्मतप्रमाणम् ।

कालभावाध्वगन्तव्याः कर्म्मसंज्ञा ह्यकर्म्मणाम् ।
—पाणिनीय वार्त्तिकम् ।

कालभावाध्वदेशानामन्तर्भूतक्रियान्तरैः ।
सर्व्वैरकर्म्मकैर्योगे कर्म्मत्वमुपजायते ॥
—भर्त्तृहरेर्वाक्यपदीयम् ।

कालेन यावता पाणिः पर्य्येति जानुमण्डले ।
सा मात्रा कविभिः प्रोक्ता ह्रस्वदीर्घप्लुता मता ॥
—शौनर सम्प्रदायस्य श्लोकः ।

केऽप्येषां द्योतकाः केऽपि वाचकाः केऽप्यनर्थकाः ।
आगमा इव केऽपि स्युः संभूयार्थस्य वाचकाः ॥
—सुपद्ममकरन्दधृत कारिका ।

कमिकं यन्नामयुगमेकार्थेऽन्यार्थबोधकम् ।
तादात्म्येन भवेदेष समासः कर्म्मधारयः ॥
—शब्दशक्तिप्रकाशिका ।

क्रियते साध्यते कर्त्रा यदाश्रित्य वदन्ति तत् ।
करणं तद्द्विधा वाह्यमाभ्यन्तरमपि स्मृतम् ॥
—कारकोल्लासः ।

क्रियमाणं तु यत् कर्म्म स्वयमेव प्रसिध्यति ।
सुकरैः स्वैर्गुणैः कर्त्तुः कर्म्मकर्त्तेति तद्विदुः ॥
—दौर्गश्लोकः ।

क्रियाप्रकारीभूतोऽर्थः कारकं तच्च षड्विधम् ।
कर्त्तृकर्म्मादिभेदेन शेषः सम्बन्ध इष्यते ॥
—शाब्दिकानाम् उक्तिः ।

क्रियायाः परिनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम् ।
विवक्ष्यते यदा तत्र करणत्वं तदा स्मृतम् ॥
—भर्त्तृहरेर्महाभाष्यदीपिका ।

क्रियाया द्योतको नायं सम्बन्धस्य न वाचकः ।
नापि क्रियापदाक्षेपी सम्बन्धस्य तु भेदकः ॥
—भर्त्तृहरिः ।

क्रियावाचकमाख्यातं लिङ्गतो न विशिष्यते ।
त्रीनत्र पुरुषान् विद्यात् कालतन्तु विशिष्यते ॥
—भगवान् शौनकः ।

क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेषकृत् ।
—साम्प्रदायिकोक्तिः ।

क्रियावाचित्वमाख्यातुं प्रसिद्धोऽर्थः प्रदर्शितः ।
प्रयोगतोऽन्ये मन्तव्या अनेकार्था हि धातवः ॥
—वोपदेवस्य श्लोकः ।

क्रियावाचित्वमाख्यातुमेकैकोऽर्थो निदर्शितः ।
प्रयोगतोऽनुमन्तव्या अनेकार्था हि धातवः ॥
—सौनागसम्प्रदायः ।

क्रियावाचित्वमाख्यातुमेकैकोऽर्थः प्रदर्शितः ।
प्रयोगतोऽनुगन्तव्या अनेकार्था हि धातवः ॥
—चन्द्रगोमिनः श्लोकः ।

क्रियाविशेषणं कर्म्म तन्नपुंसकमव्ययम् ।
—पाणिनिसम्प्रदायोक्तिः ।

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्व्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥
—अभियुक्तोक्तिः ।

क्वचिदर्थे प्रादियोगे ह्यकर्म्मणोऽपि धातवः ।
सकर्म्माणः प्रजायन्ते सतां सङ्गाज्जना इव ॥
—प्रयोगरत्नमाला ।

क्वचिद्भिनत्ति धात्वर्थं क्वचित्तमनुवर्त्तते ।
विशिनष्टि तमोवार्थमुपसर्गगतिस्त्रिधा ॥
—वैयाकरणानां कारिका ।

गुणभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्मनाम् ।
बुद्ध्या प्रकल्पिताभेदः सा क्रियेत्यभिधीयते ॥
—भर्त्तृहरिः ।

गुणादिभिस्तु यद्भेद्यं तद्विशेष्यमुदाहृतम् ।
—वैयाकरणानाम् उक्तिः ।

गोयूथं सिंहदृष्टिश्च मण्डूकप्लुतिरेव च ।
गङ्गास्रोतःप्रवाहश्च ह्यधिकारश्चतुर्व्विधः ॥
—कौमाराणां श्लोकः ।

घटादीनां कपालादौ द्रव्येषु गुणकर्म्मणोः ।
तेषु जातेश्च सम्बन्धः समवायः प्रकीर्त्तितः ॥
—भाषापरिच्छेदः ।

चकारबहुलो द्वन्द्वः स चासौ कर्म्मधारयः ।
—वाररुचसंग्रहः ।

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा,
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति,
महोदेवो मर्त्यां आविवेश॥
—ऋग्वेदः।

चर्म्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्क(ष्य)लको हतः॥
—महाभाष्यम्।

चान्वाचये समाहारेऽप्यन्योन्यार्थे समुच्चये।
—शाब्दिकानाम् उक्तिः।

चाषस्त्वेकां वदेन्मात्रां द्विमात्रं वायसो वदेत्।
त्रिमात्रं तु शिखी ब्रूयान्नकुलश्चार्द्धमात्रकम्॥
—सौवरसम्प्रदायस्य श्लोकः।

तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्त्तिताः॥
—प्राचीनकारिका।

तथाधिकरणं पश्चमाभिव्यापकमीर्य्यते।
औपश्लेषिकं वैषयिक सामीप्यञ्चौपचारिकम्॥
—चाङ्ग सूत्रम्।

तद्गुणोऽतद्गुणश्चेति बहुव्रीहिर्द्विधा मत।
प्रथमो लम्बकर्णः स्याद्द्वितीया दृष्टसागरः॥
—चाङ्ग सूत्रम्।

तद्धितार्थे समाहारे स्यादुत्तरपदे परे।
स समासो द्विगुर्यत्र सख्या संख्येयवाचिभिः।
—चाङ्ग सूत्रम्।

ददाति दण्डं पुरुषो महीपते-
र्न चात्र भक्तिर्न च दानकामना।
यद्दीयते वासनया सुपात्रे
तत् सम्प्रदानं कथितं मुनीन्द्रैः॥
—चन्द्रकीर्त्तिधृत-श्लोकः।

दानपात्रं सम्प्रदानं त्रिधा तच्च निरूपितम्।
देहीति प्रेरणात् किञ्चित् प्रेरकं याचको यथा॥
—प्राचीनोक्तिः।

दीपो यथा प्रभाद्वारा सर्व्वगेहप्रकाशकः।
परिभाषा तथा बुद्ध्या सर्व्वशास्त्रोपकारिका॥
—अभियुक्तोक्तिः।

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।
—महाभाष्यम्।

दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिक्षाचिञो
ब्रुविशासिजिदण्डिद्रुमन्थिवदः।
इति चोभयकर्म्म दुहादि विदुः
कृपिनीवहिहृप्रभृतीति परम्॥
—सुपद्मव्याकरणम्।

दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिक्षिचिञा
मुपयोगनिमित्तमपूर्व्वविधौ।
ब्रुविशासिगुणेन च यत् सचते
तदकीर्त्तितमाचरितं कविना॥
—व्याघ्रभूतिः।

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमन्थ्मुषाम्।
कर्म्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥
—पाणिनिसम्प्रदायस्य श्लोकः।

दूराह्वाने च गाने च रोदने च प्लुतो मतः।
द्वन्द्वो दिगुरपि चाहं मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः।
तत् पुरुष कर्म्म धारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः॥
—उद्भटः।

द्विगुर्द्वन्द्वोऽव्ययीभावः कर्म्मधारय एव च।
पञ्चमस्तु बहुव्रीहिः षष्ठस्तत्पुरुषः स्मृतः॥
—वैयाकरणसम्प्रदायविशेषः।

धातवस्त्रिविधा धीरैरुक्ताः केचिदकर्म्मकाः।
सकर्म्मकाश्च कतिचित् कतिचिच्च द्विकर्म्मकाः॥
—कारकोल्लासः।

धातुः सम्बन्धमायाति पूर्व्वं कर्त्रादिकारकैः।
उपसर्गादिभिः पश्चादिति कैश्चिन्निगद्यते॥
—कौमार सम्प्रदायः।

धातुनोक्तक्रिये नित्यं कारके कर्त्तृतेष्यते।
व्यापारे च प्रधानत्वात् स्वतन्त्र इति चोच्यते॥
—वाक्यपदीयम्।

धातुसूत्रगणोणादिवाक्यलिङ्गानुशासनम्।
आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्त्तिताः॥
—पाणिनीय कारिका।

धातूनामप्यनन्तत्वान्नानार्थत्वाच्च सर्व्वथा ।
अभिधातुमशक्यत्वादाख्यातख्यापनैरलम् ॥
—सारस्वत-सम्प्रदायः ।

धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात् ।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्म्मणोऽकर्म्मिका क्रिया ।
—भर्त्तृहरिः ।

धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित्तमनुवर्त्तते ।
तमेव विशिनिष्टचन्योऽनर्थकोऽन्यः प्रयुज्यते ॥
—अष्टममङ्गला ।

धात्वर्थमाश्रित्य भवन्त्युणादिका
उणाद्यधीना निगमेऽपि च स्वराः ।
अतः कृदन्तर्गतमप्युणादिकं
धातोः परं छान्दसतोऽपरं ब्रूते ॥
—प्रक्रियासर्व्वस्वः ।

धात्वर्थस्य विरुद्धार्थः प्रादिभ्यो यत्र लभ्यते ।
तत्रामी द्योतका ज्ञेया बुधैरन्यत्र वाचकाः ॥
—आख्यातमञ्जर्यां दिवाकरस्य मतवादः ।

ध्रुवं न कारकं मन्ये नोपकारी भवेद्यतः ।
अपायाधारभूतोऽसौ क्रियते न च कथ्यते ॥
—अभियुक्तोक्तिः ।

नकारजावनुस्वारपञ्चमौ झलि धातुषु ।
सकारजः शकारश्चे रषाभ्यां टुस्तवर्गजः ॥
नखनक्षत्रनासत्या नवेदा नमुचिर्नपात् ।
नभ्राण्नमेरुर्नकुलनाकनक्रनपुंसकम् ॥
—वैयाकरण कारिका ।

न साधयितुमीशा ये वस्त्वन्तरमकर्म्मकाः ।
सत्तामात्राद्यर्थकास्ते भूवादय उदीरिताः ॥
—कारकोल्लासः ।

नाको नवेदा नकुलश्च नक्रो
नासत्या नक्षत्रं नपादो नभ्राट् ।
नपुंसकं वै नमुचिर्नखं च
नादेशमेतेषु वदन्ति धीराः ॥
—शाब्दिकानां श्लोकः ।

नित्योऽनित्यो विकल्पश्च समासः कर्त्तुरिच्छया ।
—वैयाकरणसम्प्रदायविशेषः ।

निपाता द्योतकाः केचित् पृथगर्थाभिधायिनः ।
आगमा इव केऽपि स्युः सम्भूयार्थस्य वाचकाः ॥
—भर्त्तृहरिः ।

निपाताश्चादयो ज्ञेया उपसर्गाश्च प्रादयः ।
द्योतकत्वात् क्रियायोगे लोकादवगता इमे ॥
—उद्भटः ।

निपाताश्चोपसर्गाश्च धातवश्चेत्यमी त्रयः ।
अनेकार्थाः स्मृताः सर्व्वे पाठस्तेषां निदर्शनम् ॥
निरुक्ता प्रकृतिर्द्वेधा नामधातुप्रभेदतः ।
नामप्रकृतिकश्चैव धातुप्रकृतिकस्तथा ॥
—जगदीशः ।

निर्द्दिष्टविषयं किञ्चिदुपात्तविषयं तथा ।
अपेक्षितक्रियं चेति त्रिधाऽपादानमुच्यते ॥
—वाक्यपदीयम् ।

निर्द्देशः कर्म्म करणं प्रदानमपकर्षणम् ।
स्वाम्यर्थोऽथाधिकरणं विभक्त्यर्थाः प्रकीर्त्तिताः ॥
—निरुक्तवृत्तिः ।

निर्व्वर्त्यं च विकार्य्यं च प्राप्यं च त्रिविधं मतम् ।
तत्रेप्सिततमं कर्म्म चतुर्द्धाऽन्यत्तु कल्पितम् ॥
—हरिकारिका ।

पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना ।
आक्षेपस्य समाधानं व्याख्यानं पञ्चलक्षणं ॥
—पराशरोपपुराणम् ।

पदान्तरेण सम्बन्धे संहतेर्यत्र मुख्यता ।
साहित्यवत् पदानां हि समाहारः स उच्यते ॥
—प्रयोगरत्नमाला ।

पात्रेसमिता आखनिकवको
मातरिपुरुष उडुम्बरमशकाः ।
पिण्डीशूरो गेहेविजिती गेहेनर्द्दी गेहेनर्त्ती ॥
—मौग्धबोधसम्प्रदायः ।

पूज्यानुग्रहकाम्याभिः स्वद्रव्यस्य परार्पणम् ।
दानं तस्यार्पणस्थानं सम्प्रदानं प्रकीर्त्तितम् ॥
—प्रमोदजननीधृत-श्लोकः ।

पूर्व्वं निपातोपपदोपसर्गैः
सम्बन्धमासादयतीह धातुः ।

पश्चात्तु कर्त्रादिभिरेव कारकै
वदन्ति केचित्त्वपरे विपश्चितः ॥
—कौमारसम्प्रदायस्य श्लोकः ।

पूर्व्वमध्यान्तसर्व्वान्य पदप्राधान्यतः पुनः ।
प्राच्यैः पञ्चविधः प्रोक्तः समासो वाग्भटादिभिः ॥
—शब्दशक्तिप्रकाशिका ।

पूर्व्वेऽव्ययेऽव्ययीभावोऽमादौ तत्पुरुषः स्मृतः ।
चकारबहुलो द्वन्द्वः संख्यापूर्व्वो द्विगुः स्मृतः ॥
—पुरुषोत्तमः ।

प्रकृतात् कर्म्मणो यस्मात् तत्समानेषु कर्म्मसु ।
धर्म्मोपदेशो येन स्यादतिदेशः स उच्यते ॥
—मीमांसासम्प्रदाय ।

प्रकृतिं प्रत्ययं चापि यो न हन्ति स आगमः ।
—अभियुक्तोक्तिः ।

प्रकृतेः प्रत्ययस्यापि सम्बन्धो यो भवन्नपि ।
तयोरनुपघाती स्यादागमः स बुधैर्मतः ॥
—दुर्गादासोद्धृत कारिका ।

प्रकृत्यन्तः सनन्तश्च यङन्तो यङ्लुगेव च ।
ण्यन्तो ण्यन्तसनन्तश्च षड्विधो धातुरुच्यते ॥
—वैयाकरणानां कारिका ।

प्रकृत्याक्षिप्तकार्य्यं स्यादन्तरङ्गमिति ध्रुवम् ।
प्रकृतेः पूर्व्वपूर्व्वं स्यादन्तरङ्गतरं तथा ॥
—वैयाकरणानां श्लोकः ।

प्रतिज्ञा हेतु दृष्टान्तमुपसंहार एव च ।
तथा निगमनं चैव पञ्चावयवमिष्यते ॥
—विष्णुधर्म्मोत्तरः ।

प्रत्याहारो हि वर्णैकमुखीकरणमिष्यते ।
—जैनेन्द्रव्याकरणम् ।

प्रधानकर्म्मण्याख्येये लादीनाहुर्द्विकर्म्मणाम् ।
अप्रधाने दुहादीनां ण्यन्ते कर्त्तुश्च कर्म्मणः ॥
—पाणिनीयवार्त्तिकम् ।

प्रधानत्वं विधेर्यत्र प्रतिषेधेऽप्रधानता ।
पर्युदासः स विज्ञेयो यत्रोत्तरपदेन नञ् ॥
—मीमांसावार्त्तिकम् ।

प्रपराऽपसमन्ववनिर्दुरभि
व्याधिसूदतिनिप्रतिपर्य्यपयः ।

उपआङिति विंशतिरेष सखे
उपसर्गविधिः कथितः कविना ॥
—सुपद्मव्याकरणम् ।

प्रपरासमन्यवनिर्दुर्व्याङ्न्यधयोऽपती
सूदभयश्च प्रतिना सह पर्य्युपयोरपि ।
—अभिनव-शाकटायनः ।

प्रयोजनं संशयनिर्णयौ च
व्याख्याविशेषो गुरुलाघवं च ।
कृतव्युदासोऽकृतशासनं च
सा वर्त्तिको धर्म्मगुणोऽष्टाकश्च ॥
—विष्णुधर्म्मोत्तरः ।

प्रवृत्तोपरतश्चैव वृत्ताविरत एव च ।
नित्यप्रवृत्तः सामीप्यो वर्त्तमानश्चतुर्व्विधः ॥
—अभियुक्तोक्तिः ।

प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च कारकाणां य ईश्वरः ।
अप्रयुक्तः प्रयुक्तो वा स कर्त्ता नाम कारकम् ॥
—सौपद्म-सम्प्रदायः ।

प्रागन्यतः शक्तिलाभान्न्यग्भावापादनादपि ।
तदधीनप्रवृत्तित्वात् प्रवृत्तानां निवर्त्तनात् ॥
अदृष्टत्वात् प्रतिनिधेः प्रविवेके च दर्शनात् ।
आरादप्युपकारित्वे स्वातन्त्र्यं कर्त्तुरुच्यते ॥
—वाक्यपदीयम् ।

प्राण्यङ्गं मूर्त्तिमत् स्वाङ्गं विना द्रवविकारजे ।
तद्वत् प्राणिप्रतिकृतेरङ्गं स्वाङ्गमितीष्यते ॥
प्रारम्भादासमाप्तेस्तु यावन्नो नश्यति क्रिया ।
तावद्वर्त्तत इत्यस्माद्वर्त्तमान उदाहृतः ॥
—अभियुक्तोक्तिः ।

प्रेषणाध्येषणे कुर्व्वंस्तत्समर्थानि वा चरन् ।
कर्त्तैव विहितां शास्त्रे हेतुसंज्ञां प्रपद्यते ॥
—वाक्यपदीयम् ।

फलव्यापारयोरेकनिष्ठतायामकर्म्मकः ।
धातुस्तयोर्धर्म्मिभेदे सकर्म्मक उदाहृतः ॥
—भूषणकारीका ।

बहवो विषया यस्य स सामान्यविधिर्भवेत् ।
अल्पः स्याद् विषयो यस्य स विशेषविधिर्मतः ॥
—वैयाकरणनां श्लोकः ।

भवेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्य्ययात् ।
गूढोऽऽत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात् पृषोदरम् ॥
—न्यासोद्धृत-कारिका ।

भेद्यभेदकयोः श्लेषः सम्बन्धः स चतुर्विधः ।
स्वस्वामी जन्यजनकोऽवयवावयवी तथा ।
स्थान्यादेश इति प्रोक्तः ॥
—कारकोल्लासः ।

भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च ।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनक्र्यादिचुरादयः ॥
—पाणिनीय-श्लोकः ।

मधुराल्पाक्षरयुतं सारवद्गूढकर्म्मकम् ।
हेतुमत् तथ्यवच्चित्रं षड् विधं सूत्रलक्षणम् ॥
—चान्द्रसम्प्रदायः ।

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा ।
—पाणिनीय शिक्षा ।

मूलधातुर्गणोक्तोऽसौ सौत्रः सूत्रैकदर्शितः ।
यागलभ्यार्थको धातुः प्रत्ययान्तः प्रकीर्त्तितः ॥
—जगदीशः ।

यत् कर्त्तुः क्रियया व्याप्यं तत् कर्म्म परिकीर्त्तितम्
—प्रयोगरत्नमाला ।

यत्रानेकं परस्यार्थे बहुव्रीहिः स उच्यते ।
—चाङ्ग सूत्रम् ।

यदसज्जायते सद्वा जन्मना यत् प्रकाशते ।
तन्निर्व्वर्त्यं विकार्य्यं च कर्म्म द्वेधा व्यवस्थितम् ॥
प्रकृत्युच्छेदसम्भूतं किञ्चित् काष्ठादिभस्मवत् ।
किञ्चिद्गुणान्तरोत्पत्त्या सुवर्णादिविकारवत् ॥
क्रियाकृतविशेषाणां सिद्धिर्यत्र न गम्यते ।
दर्शनादनुमानाद्वा तत् प्राप्यमिति कथ्यते ॥
—वाक्यपदीयम् ।

यदीयेन सुवर्थेन युतयद्बोधनक्षमः ।
यः समासस्तस्य तत्र स तत्पुरुष उच्यते ।
—शब्दशक्तिप्रकाशिका ।

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत् ।
—लौकिकोक्तिः ।

यद्विशेषणतां प्राप्य स्त्रियां पुंसि च वर्त्तते ।
भवेन्नपुंसके वृत्तिरुक्तपुंस्कं तदुच्यते ॥
—कातन्त्रपरिशिष्टम् ।

यस्य निर्द्दिश्यते कार्य्यं स कार्यी गदितो बुधैः ।
क्रियते यत्तु तत् कार्य्यमादेशप्रत्ययागमैः ॥
यस्मात् परं परे यस्मिंस्तन्निमित्तं द्विधा मतम् ।
—वैयाकरणसम्प्रदायः ।

यावत् सिद्धमसिद्धं वा साध्यत्वेनाभिधीयते ।
आश्रितकर्म्मरूपत्वात् क्रियेति व्यपदिश्यते ॥
—हरिकारिका ।

येन येन स्वरूपेण या या शक्तिर्विवक्ष्यते ।
तेन तेन स्वरूपेन सैव शक्तिस्तु कारकम् ॥
—कौमारसम्प्रदायः ।

रामस्तत्पुरुषं प्राह बहुव्रीहिं महेश्वरः ।
रामेश्वरपदे ब्रह्मा कर्म्मधारयमब्रवीत् ॥
—उद्भटः ।

लक्षणवीप्सेत्थम्भूतेष्वभिभागे परिप्रती ।
अनुरेषु सहार्थे च हीन उपश्च कथ्यते ॥
—कौमारसम्प्रदायधृत-कारिका ।

लघूनि सूचितार्थानि स्वल्पाक्षरपदानि च ।
सर्व्वतः सारभूतानि सूत्राण्याहुर्मनीषिणः ॥
—मीमांसकसम्प्रदायः ।

लोपस्वरादेशयोस्तु स्वरादेशो विधिर्बली ।
—वैयाकरणसम्प्रदायः ।

लौकिकव्यवहारेषु यथेष्टं चेष्टतां जनः ।
वैदिकेषु तु मार्गेषु विशेषोक्तिः प्रवर्त्तताम् ॥
—गणरत्नमहोदधौ वर्द्धमानोपाध्यायः ।

वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्य्ययः ।
षोडशादौ विकारः स्याद्वर्णनाशः पृषोदरे ॥

वर्णागमो वर्णविपर्य्ययश्च
द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योग-
स्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ॥
—काशिका ।

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपञ्चापि हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥
—वैयाकरणसम्प्रदायः ।

बहिरङ्गविधिभ्यः स्यादन्तरङ्गविधिर्बली ।
प्रत्ययाश्रितकार्य्यं तु बहिरङ्गमुदाहृतम् ॥
प्रकृत्याश्रितकार्य्यं स्यादन्तरङ्गमिति ध्रुवम् ।
प्रकृतेः पूर्व्वपूर्व्वं स्यादन्तरङ्गतरं तथा ॥
—वैयाकरणानां कारिका ।

वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी ।
पीता भवति सस्याय दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ॥
—महाभाष्यम् ।

विभक्तयो द्वितीयाद्या नाम्ना परपदेन तु ।
समस्यन्ते समासो हि ज्ञेयस्तत्पुरुषः स च ॥
—कातन्त्रसूत्रम् ।

विभक्तिमात्रप्रक्षेपान्निजान्तर्गतनाम सु ।
स्वार्थस्याबोधबाधाभ्यां नित्यानित्यसमासकौ ॥
—जयादित्यः ।

विभक्तिर्लुप्यते यत्र तदर्थस्तु प्रतीयते ।
ऐकपद्यं पदानां च स समासोऽभिधीयते ॥
—वैयाकरण-सम्प्रदायः ।

विवादे विस्मये हर्षे दैन्ये मानेऽवधारणे ।
पराक्रमे सम्भ्रमे च द्विस्त्रिरुक्तिर्न दुष्यति ॥
—आलङ्कारिकसम्प्रदायः ।

विशिष्टबुद्धिहेतुः स्यादुपश्लेषो य उच्यते ।
सः सम्बन्धः स चानेकविधिः स्वस्वामिकादिकः ॥
—कारकोल्लासः ।

विशेषणं विशेष्येणाऽप्येकार्थं यदि तद्द्वयम् ।
स कर्म्मधारयस्तस्मिन् प्रायः पूर्व्वं विशेषणम् ॥
—चान्द्रसूत्रम् ।

विशेष्यस्य हि यल्लिङ्गं विभक्तिवचने च ये ।
तानि सर्व्वाणि योज्यानि विशेषणपदेष्वपि ॥
—वैयाकरण-सम्प्रदायः ।

विस्तरेणोपदिष्टानामर्थानां सूत्रभाष्ययोः ।
निबन्धो यः समासेन संग्रहं तं विदुर्बुधाः ॥
—वैयाकरणसम्प्रदायः ।

व्याघ्रपुङ्गवशार्दूलसिंहकण्ठीरवर्षभाः ।
वराहमहिषाकर्षपद्मकुञ्जरहस्तिनः ॥
कमलं पल्लवं नागः केशरी वृषभो हरिः ।
वृषश्चन्द्रः किशलयं कडारोऽन्ये प्रयोगतः ॥
—रामतर्कवागीशधृत कारिका ।

शब्देनोच्चार्य्यमाणेन यद्वस्तु प्रतिपाद्यते ।
तस्य शब्दस्य तद्वस्तु ज्ञायतामर्थसंज्ञया ॥
—वैयाकरणसम्प्रदायः ।

शब्दैरेभिः प्रतीयन्ते जातिद्रव्यगुणक्रियाः ।
चातुर्व्विध्यादमूषां तु शब्द उक्तश्चतुर्व्विधः ॥
—दण्डी ।

शास्त्रैकदेशसंबद्धं शास्त्रकार्य्यान्तरे स्थितम् ।
आहुः प्रकरणं नाम ग्रन्थभेदं विपश्चितः ॥
—अभियुक्तोक्तिः ।

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
—पाणिनीय-शिक्षा ।

शेषो गतायाः प्रहरो निशाया
आगमिनी या प्रहरश्च तस्याः ।
दिनस्य चत्वार इमे च यामाः
कालं बुधा ह्यद्यतनं वदन्ति ॥
—सौपद्म-सम्प्रदायः ।

श्रुतिमात्रेण यत्रास्य तादर्थ्यमवसीयते ।
तं मुख्यमर्थं मन्यन्ते गौणं यत्नोपपादितम् ॥
—अभियुक्तोक्तिः ।

षष्ठी सूत्रे ततः स्थाने पञ्चमी च तदुत्तरे ।
सप्तमी च परे वाच्ये गम्ये चोपपदे क्वचित् ।
—व्याघ्रभूतिः ।

षोढा समासः संक्षेपादष्टाविंशतिधा पुनः ।
नित्यानित्यत्वयोगेन लुगलुक्त्वेन च द्विधा ॥
तत्राष्टधा तत्पुरुषः षड्विधः कर्म्मधारयः ।
षड्विधश्च बहुव्रीहिर्द्विगुराभाषितो द्विधा ॥
द्वन्द्वश्चतुर्व्विधो ज्ञेयोऽव्ययीभावो द्विधा मतः ।
तेषां पुनः समासानां प्राधान्यं तच्चतुर्व्विधम् ॥
चकारबहुलो द्वन्द्वः स चासौ कर्म्मधारयः ।
यस्य येषां बहुव्रीहिः शेषस्तत्पुरुषः स्मृतः ।
—वररुचिः ।

संख्यात्वव्याप्यसामानैः शक्तिमान् प्रत्ययस्तु यः ।
सा विभक्तिर्द्विधा प्रोक्ता सुप् तिङ् चेति प्रभेदतः ॥
—शब्दशक्तिप्रकाशिका ।

संख्याशब्दयुतं नाम तदलक्ष्यार्थबोधकम् ।
अभेदेनैव यत् स्वार्थे स द्विगुस्त्विविधो मतः ॥
—शब्दशक्तिप्रकाशिका ।

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड् विधं सूत्रलक्षणम् ॥
—गोयीचन्द्रः।

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।
कार्याद् विद्यादनुबन्धमेकच्छास्त्रमुणादिषु ॥
—महाभाष्यम्।

संयुतस्य हि विश्लिष्टिक्रियारम्भो भवेद् यतः।
तदेवावधिभावेन ह्यपादानमिति स्मृतम् ॥
—दुर्गसिंहधृत श्लोकः।

संयोग समवायश्च सम्बन्धो द्विविधः स्मृतः।
—कारकोल्लासः।

संस्त्यानप्रसवौ लिङ्गमास्थेयौ स्वकृतान्ततः।
संस्त्याने स्त्यायतेर्ड्रट् स्त्री सूतेः सप् प्रसवे पुमान्।
—महाभाष्यम्।

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
समासे चैव सा नित्या वाक्ये सा स्याद् विभाषया
—वैयाकरणसम्प्रदायः।

सकलेभ्यो विधिभ्यः स्याद् बली लोपविधिस्तथा।
लोपस्वरादेशयस्तु स्वरादेशो विधिर्बली ॥
—वैयाकरणसम्प्रदायः।

सत्तालज्जास्थितिजागरणं
वृद्धिक्षयभयजीवितमरणम्।
शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्था
नैते कर्म्मणि धातव उक्ताः ॥
—वैयाकरणसम्प्रदायः।

सत्त्ववृद्धिशुद्धिसिद्धियत्नवासरोदने
स्थानभीतिनृत्तमृत्युभासदीपजीवने।
स्वप्नदाहशोषरोषहर्षयुद्धकम्पने
नैव कर्म्म चाप्नुवन्ति भावमात्रवाचकाः ॥
—वैयाकरणसम्प्रदायः।

सत्त्वे निविशतेऽपैति पृथग् जातिषु दृश्यते।
आधेयश्चाक्रियाजश्च सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुणः ॥
सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्व्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्व्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥
—गोपथब्राह्मणम्।

सन्धिरेकपदे नित्यं नित्यं धातूपसर्गयोः।
अनित्यं सूत्रनिर्द्दिशेऽन्यत्र चानित्यमिष्यते ॥
—वैयाकरणसम्प्रदायः।

सन्धिरेकपदे नित्यो नित्यो धातूपसर्गयोः।
सूत्रेषु च भवेन्नित्यः सोऽन्यत्रैव विभाषितः ॥
—वैयाकरणसाम्प्रदायविशेषः।

सन्ध्यभावः पौनरुक्त्यं विभक्तीनां च लोपनम्।
व्याख्येयव्याख्ययोरैक्यं सुखबोधकृते कृतम्।
—प्रयोगरत्नमाला।

समस्यन्ते द्वितीयाद्या नामापरपदेन यत्।
स तत्पुरुष इत्युक्तो यत्परं तत्परं बहु ॥
—चाङ्ग सूत्रम्।

समासे खलु भिन्नैव शक्तिः पङ्कजशब्दवत्।
—भट्टोजिः।

सम्प्रदानं तदेव स्यात् पूजानुग्रहकाम्यया।
दीयमानेन संत्यागात् स्वामित्व लभते यदि ॥
—चाङ्ग सूत्रम्।

सम्बन्धः कारकेभ्योऽन्यः क्रियाकारकपूर्व्वकः।
श्रुतायामश्रुतायां वा क्रियायां सोऽभिधीयते ॥
—वाक्यपदीयम्।

सम्बन्धस्य विवक्षायां षष्ठीत्याहुर्मनीषिणः।
—कारकोल्लासः।

सम्बोधनपदं यच्च तत् क्रियाया विशेषणम्।
व्रजानि देवदत्तेति निघातोऽत्र तथा सति ॥
—वाक्यपदीयम्।

सम्बोधने तूशनसस्त्रिरूपं
सान्तं तथा नान्तमथाप्यदन्तम्।
माध्यन्दिनिर्वष्टि गुणं त्विगन्ते
नपुंसके व्याघ्रपदां वरिष्ठः ॥
—व्याघ्रभूतिः।

सर्व्वेषां तु स्वतन्त्राणां पदानामनपेक्षया।
क्वचित् क्रियायां सम्बन्धः समुच्चय उदाहृतः ॥
—प्रयोगरत्नमाला।

सवाक्ये यः समासः स्यात् स विकल्पः सुसम्मतः।
वाक्याभावे तु नित्यं स्यादिति शब्दविदो विदुः ॥
—वैयाकरणसम्प्रदायः।

सादृश्ययोग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तयः।
यथाऽर्था वाचकं तेषां सादृश्ये न यथादयः ॥
—पुरुषोत्तमः।

सामीप्यको वैषयिक आभिव्यापक एव च।
औपश्लेषिक इत्येवं स्यादाधारश्चतुर्विधः॥
—अग्निपुराणम्।

सावकाशविधिभ्यः स्याद्बली निरवकाशकः।
—वैयाकरणसम्प्रदायः।

सिंहावलोकिताख्यश्च मण्डूकप्लुतिरेव च।
गङ्गास्रोत इति ख्यातो ह्यधिकारास्त्रयो मताः॥
—मौग्धबोधसम्प्रदायः।

सिद्धं साध्यं फलं चेति प्रवृत्तेर्विषयस्त्रिधा।
तत्र सिद्धमुपादानां क्रिया साध्यं फलं सुखम्॥
—वैयाकरणसम्प्रदायः।

सिद्धस्याभिमुखीभावमात्रं सम्बोधनं विदुः।
प्राप्ताभिमुख्यो ह्यर्थात्मा क्रियायां विनियुज्यते।
सम्बोधनं न वाक्यार्थ इति वृद्धेभ्य आगमः॥
—वाक्यपदीयम्।

सुपां सुपा तिङा नाम्ना धातुनाथ तिङां तिङा।
सुबन्तेनेति विज्ञेयः समासः षड्विधो बुधैः॥
—पाणिनीय-श्लोकः।

सूत्रं व्युदासश्च तथा तथोदाहरणं नृप।
प्रत्युदाहरणं चैव चतुरङ्गं प्रकीर्त्तितम्॥
—विष्णुधर्म्मोत्तरः।

सूत्रस्थं पदमादाय पदैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि वर्णयन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥
—पराशरोपपुराणम्।

सूत्रार्थश्च पदार्थश्च हेतुश्च क्रमशस्तथा।
निरुक्तमथ विन्यासो व्याख्या योगस्य षड्विधा॥
—विष्णुधर्म्मोत्तरः।

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥
—अभियुक्तोक्तिः।

सोऽव्ययीभावो यत्र नानाविभक्तिष्वेकरूपता।
अयं पूर्व्वोत्तरान्यार्थमुख्योऽव्ययं समस्यते॥
—पुरुषोत्तमः।

स्तनकेशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुषः स्मृतः।
उभयोरन्तरं यच्च तदभावे नपुंसकम्।
लिङ्गात् स्त्रीपुंसयोर्ज्ञाने भ्रूकुंसे टाप् प्रसज्यते॥
—महाभाष्यम्।

स्तनकेशादिसम्बन्धो विशिष्टा वा स्तनादयः।
तदुपव्यञ्जना जातिर्लिङ्गमेतन्निरुच्यते॥
—श्रीपतिदत्तः।

स्त्रीलिङ्गमपि पुंलिङ्गं क्लीबलिङ्गमिति त्रिधा।
शब्दसंस्कारसिद्ध्यर्थं भाषया नाम भिद्यते॥
—जगदीशः।

स्थानं निमित्तं वक्ता च श्रोता श्रोतृप्रयोजनम्।
सम्बन्धाद्यभिधानं च ह्युपोद्घातः स उच्यते॥
—गाठराचार्य्यः।

स्यातां यदि पदे द्वे तु यदि वा स्युर्बहून्यपि।
तान्यन्यस्य पदस्यार्थे बहुव्रीहिर्विदिक् तथा॥
—कातन्त्रसूत्रम्।

स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः।
सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः॥
—अमरः।

स्वकीयार्थविशेषाभ्यां कर्म्मणा साधयन्ति ये।
द्विकर्म्मका अमी ते च विज्ञातव्या दुहादयः॥
—कारकोल्लासः।

स्वतन्त्राणां पदानां हि सापेक्षाणां परस्परे।
योगः क्रियायां कस्याञ्चिदितरेतर उच्यते॥
—प्रयोगरत्नमाला।

स्वल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥
—विष्णुधर्म्मोत्तरः, पराशरोपपुराणञ्च।

स्वसा नप्ता च नेष्टा च त्वष्टा क्षत्ता तथैव च।
होता पोता प्रशास्ता च अष्टौ स्वस्रादयः स्मृताः॥
—समन्तभद्रः, दौर्गवृत्तिश्च।

स्वस्वामी जन्यजनकोऽवयवावयवी तथा।
स्थान्यादेश इति प्रोक्ताः सम्बन्धाश्चोपचारतः॥
स्वार्थो द्रव्यं च लिङ्गं च संख्या कर्म्मादिरेव च।
अमी पञ्चैव लिङ्गार्थास्त्रयः केषाञ्चिदग्रिमाः।
—पाणिनियसम्प्रदायः।

स्वान्तर्निविष्टद्वित्र्यादिनामभिर्विग्रहात् पुनः।
बहुव्रीहिर्बहुविधो द्विपदत्रिपदादिकः॥
—जगदीशः।

श्रीश्रीहरिनामामृत-व्याकरणस्य विषय-सूची



नरेन्द्र सरोवर में सपरिकर श्रीमद्भागवती कथा श्रवणरत श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु

प्रवक्ता —श्रील गदाधर पण्डित गोस्वामी

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

श्रीश्रील-श्रीजीवगोस्वामी-प्रभुपाद-विरचितम्

श्रीहरिनामामृतव्याकरणम्

ग्रन्थारम्भः

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

कृष्णमुपासितुमस्य, स्रजमिव नामावलिं तनवै ।
त्वरितं वितरेदेषा, तत्साहित्यादिजामोदम् ॥ * [१]

आहत-जल्पित-जटितं, दृष्ट्वा शब्दानुशासन-स्तोमम् ।
हरिनामावलि-वलितं, व्याकरणं वैष्णवार्थमाचिन्मः ॥ [२]

व्याकरणे मरुनीवृति, जीवनलुब्धाः सदाघ-संविग्नाः ॥
हरिनामामृतमेतत्, पिबन्तु शतधावगाहन्ताम् ॥ [३]

"साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥" [४] ('श्रीमद्भागवतम् ६।२।१४') इति।

पाठान्तराणां साङ्केतिकचिह्नानि-'क' ढाका-विश्वविद्यालय-संरक्षित-लिपिशालायाः २४०९-संख्यक करलिपिः ; 'ख' श्रीपाट-गोपीवल्लभपुरस्थ-ग्रन्थागार-रक्षिता करलिपिः ; 'ग' मुर्शिदाबाद-बहरमपुरतः प्रकाशितः श्रीरामनारायण-विद्यारत्न-सम्पादितो ग्रन्थः; 'घ' ४४२-श्रीचैतन्याब्दे श्रीगौड़ीयमठतः प्रकाशितो ग्रन्थः ।

---

* शब्दार्थौ सहितौ काव्यमतः साहित्यमुच्यते । निर्दोषौ गुणसम्पन्नौ सालङ्कारौ रसान्वितौ ॥

"साहित्यम्—शास्त्रविशेषम्; हितेन प्राणिनामविद्यामोचनरूपोपकारेण सह वर्त्तमाना सहिता—भगवद्भक्तिस्तामर्हतीति साहित्यं श्रीभागवतं, भगवत्स्वरूपत्वात्; यद्वा, तत्सहितस्य भगवत्सङ्गस्य भावस्तत्साहित्यम्, 'आदि' शब्देन तत्सेवावि; यद्वा, तत्सहितमर्हतीति तत्साहित्यः श्रीवासनामा तद्भक्तः, स आदिर्येषां ते श्रीस्वरूपादयस्तेभ्यो जातमामोदं श्रीभागवत शास्त्रादि-परमार्थानुशीलनरूपं सुखविशेषम् । केचित्तु सहितस्य भावः साहित्यं, शास्त्रमात्रं, तच्चापि तच्छब्दोपादानात् श्रीभागवतम् ।

'कृष्णमुपासितुम्' इति तुमन्तप्रयोगे नामावलिविस्तारस्य श्रीकृष्णानुशीलनमेव प्रयोजनं, तदनुशीलनपूर्वकमनायासेन लभ्यमपि व्याकरणपरिज्ञानजन्य-ज्ञानञ्च; सम्बन्धस्य द्विनिष्ठतया नाम-नामिनोरभेदाच्च श्रीकृष्ण एव सम्बन्धः; श्रीभागवतार्थानुमोदन-जातानन्दरूपमेवाभिधेयम्—एते त्रयोऽस्य ग्रन्थस्य व्यवहाराः । —श्रीहरेकृष्णाचार्य्य-विरचित 'बालतोषणी'-टीका ।

[प्रथमम्]

संज्ञा–सन्धि–प्रकरणम्

संज्ञा–प्रकरणम्

१। नारायणादुद्भूतोऽयं वर्णक्रमः।

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अँ अः क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व श ष स ह क्ष। एते 'वर्णाः,' 'अक्षराणि,' अलः' च। एषामुद्भवस्थानानि १—अ-आ- कवर्ग- ह-विसर्गाणां कण्ठः; इ-ई-चवर्ग-य-शानां तालु, उ-ऊ-पवर्गाणामोष्ठः ऋ ॠ टवर्ग र षाणां मूर्द्धा, ऌ ॡ तवर्ग-ल-सानां दन्ताः; एदैतोः कण्ठतालू; ओदौतोः कण्ठोष्ठम्; वकारस्य दन्तौष्ठम्; अनुस्वारस्य शिरो नासिका वा इत्यादीनि ॥१॥

२। तत्रादौ चतुर्द्दश सर्व्वेश्वराः।

तस्मिन् वर्णक्रमे आदौ चतुर्दश वर्णाः 'सर्व्वेश्वर'–नामानो भवन्ति—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। एते 'स्वराः''अचः' च प्राचीनानाम्। एते स्वतन्त्रोच्चारणाः। कादीनामुच्चारणञ्चैषामधीनमिति सर्व्वेश्वराः२। एवमन्यत्रापि ज्ञेयम्। 'मात्रा-लाघवमात्रं पुत्रोत्सवः' ३ इति परेऽभिमन्यन्ते। हरिनामाक्षरलाभाद्वयं त्वमूदृक् तिरस्कुर्मः ॥२॥

३। दश दशावताराः।

तत्रादौ दश वर्णा 'दशावतार'–नामानो भवन्ति—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ। एते 'समानाः', 'अकः' च प्राचीनानाम् ॥३॥

४। तेषां द्वौ द्वावेकात्मकौ।

तेषां दशावताराणां मध्ये क्रमेण द्वौ द्वौ वर्णौ प्रत्येकं परस्परञ्चैकात्मकौ, ज्ञेयौ; यथा—अ आ इति द्वौ एकात्मकौ, इ ई इति द्वौ एकात्मकौ एवं उ ऊ इत्यादि। अत्र 'सवर्ण'-संज्ञा च। प्रत्येकमेकात्मकत्वं स्पष्टमेवेति परस्परार्थमिदं सूत्रम् ॥४॥

५। पूर्व्वो वामनः।

तेषामेकात्मकानां पूर्व्वपूर्व्वो वर्णो 'वामन'-नामा—अ इ उ ऋ ऌ। एते 'ह्रस्वाः' 'निर्ह्रस्वाः' च ॥५॥

६। परस्त्रिविक्रमः।

तेषामेकात्मकानां परपरो वर्णः 'त्रिविक्रम'-नामा—आ ई ऊ ॠ ॡ। एते 'दीर्घाः' च ॥६॥

७। त्रिमात्रो महापुरुषः।

त्रिमात्रत्वेनोच्चार्य्यमाणो वर्णो वामनस्त्रिविक्रमश्च 'महापुरुष' संज्ञः स्यात्। एष दूराह्वाने गाने रोदनादौ च प्रसिद्धः। ४ 'प्लुत' संज्ञश्च, यथोक्तम्—

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनञ्चार्द्धमात्रकम् ॥इति।

(सौवरशास्त्रीय-वचनम्)

आदित्रयस्य कुक्कुट-रुतौ क्रमेण प्रसिद्धिः। * अत्र महापुरुषे वामनमपि त्रिविक्रममुच्चारयन्ति लिखन्ति च तज्ज्ञाः। आगच्छ भो विष्णुमित्र३ आगच्छ आगतोऽस्मि भो विश्वपा३ आगतोऽस्मि ॥७॥

१। अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा। जिह्वामूलञ्च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च।

२। व्यञ्जनान्यनुगामीनि स्वरा नैव यतो मताः। स्वयमुच्चार्य्यन्ते यस्मात् स्वयं राजन्ते तत् स्वराः।

३। 'अर्द्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः' इति पाणिनीय-परिभाषापाठः—१३४

४। त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयः सर्वः प्लुतो विकल्पयते। दूराह्वाने च गाने च रोदने च प्लुतो मतः।

*। चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं त्वेव वायसः। शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्द्धमात्रकम् ॥

८। अ-आ-वर्ज्जिताः सर्व्वेश्वरा ईश्वराः

अ आ इति वर्णद्वयवर्ज्जिताः सर्वेश्वरा 'ईश्वर'-नामानः— इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। एते नामिनः' 'इचः' च ॥८॥

९। दशावतारा ईशाः।

अ-आ-वर्ज्जिता दशावतारा 'ईश'-नामानः— इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ। एते 'इकः' च ॥९॥

१०। अ-आ-इ-ई-उ-ऊ अनन्ताः।

'अगः' च ॥१०॥

११। इ-ई-ऊ-ऊ चतुःसनाः।

'इणः' च ॥११॥

१२। उ-ऊ-ऋ-ॠ चतुर्भुजाः।

'उकः' च। प्रयोजनाभावात् ऌ ॡ न गृह्येते ॥१२॥

१३। ए-ऐ ओ औ चतुर्व्यूहाः।

'सन्ध्यक्षराणि,' 'एचः' च। एते सर्व्वं एव त्रिविक्रमाः ॥१३॥

१४। अं इति विष्णुचक्रम्।

अकार उच्चारणार्थः। विन्दुस्वरूपो वर्णो विष्णुचक्रनामा 'अनुस्वार' 'विन्दुः' लवः च ॥१४॥

१५। अँ इति विष्णुचापः।

अर्द्धचन्द्राकृतिवर्णो 'विष्णुचाप'-नामा, 'अनुनासिकः' च नासिकाभवोऽयम्; सानुनासिकस्तु मुखनासिकाभवः ॥१५॥

१६। अः इति विष्णुसर्गः।

*विन्दुद्वयाकारो वर्णो 'विष्णुसर्ग'–नामा, 'विसर्गः' 'विसर्ज्जनीयः' 'विसृष्टः' 'अभिनिष्टानः' च ॥१६॥

१७। कादयो विष्णुजनाः।

ककारादयो हकारान्ताः वर्णा 'विष्णुजन'–नामानो भवन्ति; विष्णो सर्व्वव्यापकतया 'सर्व्वेश्वरस्य'[१]जना इव तस्याधीना इत्यर्थः—क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म य र ल व श ष स ह; क-ष-संयोगे तु क्षः। एते 'व्यञ्जनानि' 'हलः' च ॥१७॥

१८। य–वर्ज्जितास्तु वलाः।

'रलः' च ॥१८॥

१९। ते मान्ताः पञ्च पञ्च विष्णुवर्गाः।

ते ककारादयो मकारान्ताः वर्णाः पञ्च पञ्च विष्णुवर्गा' भवन्ति। एते वर्गाः' च। क ख ग घ ङ इति कवर्गः; एवं चवर्गः, टवर्गः, तवर्गः, पवर्गश्च। एते 'कु-चु-टु-तु-पु'-नामाश्च; 'स्पर्शाः' तु सर्व्व एव ॥१९

२०। ञ-वर्ज्जितास्तु विष्णुगणाः।

'मयः' च। तत्र समानवर्गः 'सवर्ग' उच्यते 'सवर्णः' च ॥२०॥

२१। क-च-ट-त-पा हरिकमलानि।

'प्रथमाः' 'चपः' च ॥२१॥

२२। ख-छ-ठ-थ-फा हरिखड्गाः।

'द्वितीयाः', 'छफः' च ॥२२॥

२३। ग-ज-ड-द-बा हरिगदाः।

'तृतीयाः' 'जबः' च ॥२३॥

२४। घ-झ-ढ-ध-भा हरिघोषाः।

'चतुर्थाः', 'झभः' च ॥२४॥

२५। ङ-ञ-ण-न-मा हरिवेणवः।

'पञ्चमाः', 'अनुनासिकाः', 'ञमः' च एते च मुखनासिकाभवाः ॥२५॥

२६। त एतद्वर्ज्जिता विष्णुदासाः।

हरिवेणु–वर्ज्जिता विष्णुवर्गा 'विष्णुदास'नामानः—क ख ग घ, च छ ज झ, ट ठ ड ढ, त थ द ध, प फ ब भ,। एते 'झपः' च ॥२६॥

---

* अत्र 'अकार उच्चारणार्थः।' इत्यधिकः पाठः (ख)।

१। 'सर्व्वेश्वरस्य' इत्यस्मात् परं 'कृष्णस्य' इत्यधिकः पाठः(क ख)

२७। य-र-ल-वा हरिमित्राणि ।

'अन्तःस्थाः' 'यणः' च। एते सविष्णुचापा, निर्विष्णुचापाश्च ॥२७॥

२८। श-ष-स-हा हरिगोत्राणि ।

'उष्माणः' 'षिटः' 'शलः' च ॥२८॥

२९। श-ष-साः शौरयः ।

'शरः' च ॥२९॥

३०। विष्णुदास-हरिगोत्राणि वैष्णवाः ।

एतानि 'वैष्णव'-नामानि—क ख ग घ, च छ ज झ ट ठ ड ढ, त थ द ध, प फ ब भ, श ष स ह। एते 'धुटः' 'झलः' च ॥३०॥

३१। हरिगदा-हरिघोष-हरिवेणु-हरिमित्राणि हश्च गोपालाः

एते 'गोपाल'-नामानः—ग घ ङ, ज झ ञ, ड ढ ण, द ध न, ब भ म, य र ल व ह ; एते 'घोषवन्तः' 'हशः च ॥३१॥

३२। यादवा अन्ये ।

गोपालेभ्योऽन्ये विष्णुजना 'यादव'-नामानः—क, ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ, श ष स;एते 'अघोषाः' 'खरः' च ॥३२॥

३३। शौरि-वर्ज्जितास्तु 'सात्वताः'

शौरी-वर्ज्जितास्तु यादवाः 'सात्वत' 'नामानः' 'खपः' च ॥३३॥

३४। 'अस्पर्शी' प्रयत्न सर्व्वेश्वराणाम्'स्पर्शी' विष्णुवर्गाणाम्,'ईषत्स्पर्शी हरिमित्राणाम्।*

३५। रादनुस्वाराच्च परं य-वाभ्यान्तु पूर्व्वं विना यरामस्य पुनरविष्णुपदावीषत् स्पर्शितरः ।*

३६। उपेन्द्रात् क्वचित् विष्णुपदादौ च ।

'उपेन्द्र' संज्ञा (आ० प्र० ४२), 'विष्णुपद' संज्ञा (वि० प्र० ७) च वक्ष्येते । त्रिविक्रम-महापुरुष हरिगोत्राणां विवृतश्चेति ज्ञेयम् । तत्र 'रात्, इति क्रमेण दर्श्यते—अर्य्यमा, यंयम्यते, अय्यते ,वाय्वग्नी, नारायणाय, नियमः, प्रयुङ्क्ते। अत्र पञ्चमषष्ठे एवोदाहरणे, अन्यानि तु प्रत्युदाहरणानि ॥३५-३६॥

३७। वर्णस्वरूपे रामः ।

वर्णस्य स्वरूपमात्रे वाच्ये 'रामः' शब्दो देयः, तस्यैकपरिग्रहताख्यातेः; यथा अ-रामः, इ-राम इत्यादि । 'अत्' 'इत्' इत्यादि च पाणिनेः, 'अकार' इत्यादि च कलापस्य । यथा च—क-राम इत्यादि तु प्राचाम् । ररामस्तु 'रेफ' इति ॥३७॥

३८। तदादिद्वये द्वयम् ।

यो वर्णो निर्दिश्यते, तदादिद्वये वाच्ये 'द्वय' शब्दो देयः; यथा-अ-द्वयम्, इ-द्वयम् इत्यादि। अस्य लक्ष्मीनारायणवाचित्वाद्भगवन्नामता; तन्मन्त्रो हि 'द्वय'- मन्त्राख्यः पद्मपुराणे । 'अवर्ण' इत्यादि च प्राचाम्; 'अकार' इत्यादि च पाणिनेः ॥३८॥

३९। आदेशो विरिञ्चिः ।

विरिञ्चिर्ब्रह्मा यथैकं वस्तूपादाय अन्यत् करोति, तथा यो विधिः प्रवर्त्तते, स 'आदेशः' 'विरिञ्चिः' चोच्यते ॥३९॥

४०। आगमो विष्णुः ।

विष्णुर्यथा मध्यतः स्वयमाविर्भूय पोषको भवति, तथा यो विधिः प्रवर्त्तते, स 'आगमः' 'विष्णुः' चोच्यते ॥४०॥

४१। लोपो हरः ।

हरो यथा नाशहेतुर्भवति, तथा यो विधिः प्रवर्त्तते, स 'लोपः' 'हरः' चोच्यते । तत्र हरो द्विधा भवेत्—तत्रादर्शन-मात्रहेतु 'हरः' आत्यन्तिकलयहेतुर्महाहरः 'लुग्' इत्यन्ये ॥४१॥

---

* चिह्नित-सूत्रद्वयं क-पाण्डुलिप्यां वृत्तिरूपेण पठ्यते ।

४२। सूत्राणि[१] षड् विधानि।

"संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड् विधं सूत्रलक्षणम्॥" इति।
(गोयीचन्द्रः)

'प्रतिषेधोऽधिकारश्च' इति केचित् पठन्ति च। अत्र[२] नामकरणं 'संज्ञा' यथा—'तत्रादौ चतुर्दशसर्वेश्वराः (स० प्र० २) इत्यादि; अन्यानि वक्ष्यन्ते[३]॥४२॥

४३। असिद्धरूपं न त्याज्यम्,—प्रतिज्ञेयं कृदन्तिका।

अत्र व्याकरणे त्वन्यत्रैवासिद्ध[४] रूपं मध्ये मध्ये न त्यज्यते, किन्तु सिद्धं कृत्यैव त्यज्यते। तत्तच्च कृत्पर्य्यन्तं ज्ञेयम्, न समासतद्धितयोरित्यर्थः। दर्शनीयन्त्वग्रे॥४३॥

इति संज्ञादि *।

सन्धि–प्रकरणम्

सर्व्वेश्वरसन्धिः

(१) यदिदं सन्धिनिर्म्माणं वर्णानामारभे मुदा
तेन मे कृष्ण! पादाब्जे मनःसन्धिर्विधीयताम्॥
सन्धिरेकपदे नित्यं नित्यं धातूपसर्गयोः।
अनित्यं सूत्रनिर्द्दे शेऽन्यत्र चानित्यमिष्यते॥*

परिभाषेयम्[१]; सा चानियमे नियमकारिणी॥१॥

४४। सर्व्वप्रकरणव्यापी वर्णमात्रनिमित्तकः॥
वार्गो विकारः सन्धिः स्याद्द्विवयापेक्षकः क्वचित्॥*

किञ्च—

४५। अचो ये हलि संलग्नास्ते सर्व्वे परतो मताः।
हल् च तत् स्यादरामान्तं यत्र नान्याच् न चाङ्कभित्

ततश्च कृष्ण+अग्रे इति स्थिते—'कार्य्यार्थमक्षरं विश्लेषयेन्मेलयेच्च' इति न्यायेन अरामविश्लेषः—कृष्ण्+अ+अग्रे; ततश्च—॥४५॥

४६। दशावतार एकात्मके मिलित्वा त्रिविक्रमः।

'दशावतार'–नामा वर्ण एकात्मके वर्णे परे सति तेन मिलित्वा त्रिविक्रमो भवति। ततश्च आरामस्य पुनर्मिलनम्=कृष्णाग्रे; राधा+आगता=राधागता हरिहरि+इति=हरिहरीति, हरि+ईहा=हरीहा, विष्णु+उदयः=विष्णूदयः, विष्णु+ऊढा=विष्णूढा नरभ्रातृ+ऋषिः=नरभ्रातॄषिः, गमॢ+ॢकारः=गमॣकारः॥४६॥

४७। ऋद्वय ॡद्वययोरेकात्मकत्वम् वाच्यम्।

ऋ ॡद्वयम् ऋद्वयम्, ॡ-ऋद्वयम् ॡद्वयमित्यादि। ईदृशो विधिर्विरिञ्चिः—'कर्त्तव्यत्वेनोपदेशो विधिः' इति॥४७॥

१। अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्। अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥
(विष्णुधर्म्मोत्तरम्)

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः। स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥
(अभियुक्तोक्तिः)

२। तत्र (क); ३। परिभाषा (स० प्र० [१]) विधिः (स० प्र० ४७), नियमः। (वि० प्र० ११०], अतिदेशः(स०प्र०५४ अधिकारः (वि० प्र० १६८); ४। अन्यत्रैवासिद्ध- (ख, घ)। *'संज्ञादि' इत्यत्र 'आदि' पदेन परिभाषादीनां ग्रहणम्।

* सन्धिरेकपदे नित्यो नित्यो धातूपसर्गयोः। सूत्रेषु च भवेन्नित्यः सोऽन्यत्रैव विभाषितः॥

* स्वर-व्यञ्जनयोः सन्धौ सन्ध्यभावस्तथैव च। अनुस्वारो विसर्गश्च सन्धिः स्तात् पञ्चलक्षणः॥

१। 'परिभाषयेम्' इत्यस्मात् परं 'बहुप्राप्तौ सङ्कोचनं नियमः; अन्यतुल्यत्वविधानमतिदेशः; उत्तरप्रकरणव्याप्यधिकारः इत्यधिकः पाठः (क)।

४८। अद्वयमिद्वये ए।

अ आ इति द्वयम् इ ई इतिद्वये परे तेन मिलित्वा एरामो भवति—यादव+इन्द्रः=यादवेन्द्रः, गोकुल+ईशः=गोकुलेशः, मथुरा+ईशः=मथुरेशः ।।४८।।

४६। प्रादेषैष्ययोर्वा तथा।

प्रात् उत्तरस्मात् एष-एष्ययोः परयोस्तथा सन्धिर्वा भवति।२ प्र+एषः=प्रेषः, प्र+एष्यः=प्रेष्य, पक्ष 'एद्वये ऐ'—प्रैषः, प्रैष्यः ।।४६।।

५०। उद्वये ओ।

अ आ इति-द्वयम् उ ऊ इति द्वये परे मिलित्वा ओरामो भवति। अद्वयमत्र पूर्व्वतोऽनुवर्त्तते; यदुक्तम्—

"कार्य्यिणा हन्यते कार्य्यी कार्य्यं कार्य्येण हन्यते।
निमित्तञ्च निमित्तेन यच्छेषमनुवर्त्तते ।।"* इति।

पुरुष+उत्तमः=पुरुषोत्तमः, सुपर्ण+ऊढ़ः=सुपर्णोढ़ः, द्वारका+उत्सवः=द्वारकोत्सवः ।।५०।।

५१। ओमि च तथा।

कृष्ण+ओम्=कृष्णोम् ।।५१।।

५२। ऋद्वये अर्।

अ आ इतिद्वयम् ऋ ॠ इतिद्वये परे मिलित्वा अर् भवति—कृष्ण+ऋद्धिः=कृष्ण्-अर्-द्धिः इति स्थिते,—'जलतुम्बिका'न्यायेन पूर्व्वविष्णुजनस्य परोद्र्ध्वं गमनम्, 'जलवालुका' न्यायेनपर सर्व्वेश्वरस्य पूर्व्वविष्णुजने प्रवेशः—कृष्णर्द्धिः ।।५२।।

५३। लृद्वये अल्।

अ आ इतिद्वयम् लृ ॡ इतिद्वये परे मिलित्वा अल् भवति—यमुना+लृकारायते=यमुनल्कारायते

५४ पुनरद्वयसन्धौ आङादेशः परनिमित्तवद्वक्तव्यः

अतिदेशोऽयम्—'अन्यतुल्यत्वविधानमतिदेशः'। अत्रारामस्य ङित्त्वं क्रियायोगे इति वक्ष्यते३ (स० प्र० ७०)। आ+इहि=एहि, कृष्ण+एहि=कृष्णेहि; आ+ऊढ़ा=ओढ़ा, कृष्ण+ओढ़ा=कृष्णोढ़ा, आ+ऋद्धिः=अर्द्धिः, कृष्ण+अर्द्धिः=कृष्णर्द्धिः, आ+लृकारायते=अल्कारायते, यमुना+अल्कारायते यमुनल्कारायते ।।५४।।

५५। एद्वये ऐ।

अ आ इतिद्वयम् ए ऐ इतिद्वये परे मिलित्वा ऐरामो भवति—कृष्ण+एकनाथः=कृष्णैकनाथः; कृष्ण+ऐश्वर्य्यम्=कृष्णैश्वर्य्यम् ।।५५।।

५६। स्वादीरेरिणोश्च तथा।

स्व+ईरम्=स्वैरम्, स्व+ईरी=स्वैरी, स्वैरिणी च, 'नाम्नो ग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' इति न्यायात् ।।५६।।

५७। ओद्वये औ।

अ आ इतिद्वयम् ओ औ इतिद्वये परे मिलित्वा औरामो भवति—कृष्ण+ओदनम्=कृष्णौदनम्, कृष्ण+औन्नत्यम्=कृष्णौन्नत्यम् ।।५७।।

५८। प्रादूढ़ोढ़्योश्च तथा।

प्र+ऊढ़ः=प्रौढ़ः, प्र+ऊढ़िः=प्रौढ़िः। ऊहमिति केचित् पठन्ति—प्रौहः। नेह प्रौढ़वान्, 'अर्थवद् ग्रहणेऽनर्थकस्य न ग्रहणम्' इति न्यायात् ।।५८।।

५६। इद्वयमेव यः सर्व्वेश्वरे।

इ ई इतिद्वयमेव सर्व्वेश्वरे परे यरामो भवति, न तु मिलित्वा। य इत्यत्र अरामो उच्चारणार्थः। एवमन्यत्रापि। हरि+अर्च्चनम्=हर्य्यर्च्चनम्, हरि+आसनम्=हर्यासनम्, दधि+उपेन्द्रस्य=दध्युपेन्द्रस्य

* कार्य्यी कार्य्यं निमित्तञ्च त्रिभिः सूत्रमुदाहृतम्। कदाचित् कार्य्यिकार्य्याभ्यां क्वचित् कार्य्यनिमित्ततः।। यस्य निर्द्दिश्यते कार्य्यं स कार्य्यी गदितो बुधैः। क्रियते यत्तु यत् कार्य्यमादेशप्रत्ययागमैः।।

२। एषा वृत्तिः ख ग घ पाण्डुलिपिषु नास्ति। ३। 'ईषदर्थे क्रियायोगे व्याप्तिमर्य्यादयोश्च यः। एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित् ।।" इत्यधिकः पाठः (क)।

रुक्मिणी+एषा=रुक्मिण्येषा, द्वित्वप्रकरणे एतावतैव सिद्धिः। विकल्पेन तु मतान्तराणि वक्ष्यन्ते१ तस्माद् 'असिद्धरूपं न त्याज्यम्' (स० प्र० ४३) इति प्रतिज्ञा नात्र व्यभिचरति।

कथं 'हरिहरीति'? हरिहरीति, एकात्मकतामवलम्ब्य त्रिविक्रमविधेर्विशेषत्वेन बलवत्वात्; तथाहि—समस्तव्यापि 'सामान्यम्', एकदेशव्यापी 'विशेषः' सामान्यविधिः उत्सर्गः', विशेषविधिः 'अपवादः' इति स्थिते 'पूर्व्वापरयोः परविधिर्बलवान्', नित्यानित्ययोर्नित्यः', 'अन्तरङ्गवहिरङ्गयोरन्तरङ्गः 'उत्सर्गापवादयोरपवादः'। तेषु चोत्तरोत्तर इति। दशावतारे सामान्यत्वञ्चेत्तत्राद्वयमित्येव क्रियेत, 'विष्णूदय' इत्यादावपि परपरसूत्रप्राप्तेः। तदेवमेते चान्ये च न्याया युक्त्या प्रसिद्ध्या च स्वीकृतत्वात् पूर्व्वमुत्तरञ्च ग्रन्थं व्याप्नुवन्ति ।।५६।।

६० । उद्वयं व ।

उ ऊ इतिद्वयं सर्व्वेश्वरे परे वरामो भवति—मधु+अरिः=मध्वरिः, विष्णु+आश्रितः=विष्ण्वाश्रितः ।।६०।।

६१ । ऋद्वयं रः ।

ऋ ॠ इतिद्वयं सर्व्वेश्वरे परे ररामो भवति—रामभ्रातृ+उदयः=रामभ्रात्रुदयः, रामभ्रातृ+ऐश्वर्य्यम्=रामभ्रात्रैश्वर्य्यम् ।।६१।।

६२ । लृद्वयं लः ।

लृ ॡ इतिद्वयं सर्व्वेश्वरे परे लरामो भवति शकलृ+अर्थः=शक्लर्थः। श्रीपतेरेव। व्याड़िगालवयोर्मतेन मध्ये एव य व र ला भवन्ति हरियच्चर्नं, मधुवरिः, भुवादि इत्यादि ।।६२।।

६३ । ए अय् ।

एरामो अय् भवति, सर्व्वेश्वरे परे—कृष्णे+उत्कर्षः=कृष्णयुत्कर्षः ।।६३।।

६४ । ऐ आय् ।

ऐ राम आय् भवति, सर्व्वेश्वरे परे—यमुनायै+अर्घः=यमुनायायर्घः, गोप्यै+आसनम्=गोप्यायासनम् ।।६४।।

६५ । ओ अव् ।

ओरामो अव् भवति सर्व्वेश्वरे परे—विष्णो+इह=विष्णविह ।।६५।।

६६ । औ आव् ।

औराम आव् भवति, सर्व्वेश्वरे परे—कृष्णौ+अत्र=कृष्णावत्र ।।६६।।

६७ । ए-ओभ्यामस्य हरो विष्णुपदान्ते ।

ए-ओरामाभ्यां विष्णुपदान्ते स्थिताभ्यां परस्य अरामस्य हरो भवति—हरे+अत्र=हरेऽत्र, विष्णो+अत्र=विष्णोऽत्र ।।६७।।

६८ । अयादीनां य-वयोर्व्वा ।

अय् आय् अव् आव् इत्येषां विरिञ्चीनां य-वयोर्व्वा हरो भवति विष्णुपदान्ते विषये—कृष्णयुत्कर्षः=कृष्ण-उत्कर्षः, यमुनायायर्घ=यमुनायाअर्घः, गोप्यायासनम्=गोप्याआसनम्; विष्णविह=विष्णइह, कृष्णावत्र=कृष्णाअत्र, य-वाविमावीषत्स्पर्शिनावीषत्स्पर्शितरौ च मतौ ।।६८

६९ । तेषां न सन्धिर्नित्यम् ।

तेषां य-व-लोपिनां नित्यं सन्धिर्न भवति। प्रतिषेधोऽयम्। कृष्णउत्कर्षः, यमुनायाअर्घः, गोप्याआसनम्, विष्णइह इत्यादि ।।६९।।

७० । ओरामान्तानामनन्तानां चाव्ययानां सर्व्वेश्वरे ।

ओरामान्तानामनन्तानाञ्च केवलानामव्ययाना सर्व्वेश्वरे परे सति पूर्व्वस्य च परस्य च सन्धिर्न भवति

१। स० प्र० ६१, १२०-१२२-संख्यक-सूत्राणि द्रष्टव्यानि।

नोऽउपेन्द्रः, नोअच्युतः। कथं तद्धिते वि-प्रत्ययान्तस्य 'गो' शब्दस्याव्ययत्वे सति 'गोऽभवत्' इति ? 'गोऽभवत्' इत्यत्र 'लाक्षणिक-प्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्' इति न्यायेन स्यात्।

अरामादयः सम्बोधनादौ। तत्र सम्बोधने—'अ अनन्त' स्मरणे—'आ एवमच्युतलीला', भर्त्सने—'इ अच्युतं न भजसि', वाक्पूरणे—'ई ईदृशः संसारः' आमन्त्रणे—'उ अच्युत', प्रतिषेधे—'उ उपसन्नं मां त्यजसि'। आङस्तु सन्धिर्भवत्येव—आ+अनन्तम्= आनन्तम्, अनन्तमर्य्यादां कृत्वेत्यर्थः।

"ईषदर्थे क्रियायोगे व्याप्ति-मर्य्यादयोश्च यः।
एतमातं ङितं विद्याद्वाक्य-स्मरणयोरङित्॥" इति।
॥७०॥

७१। ईदूदेतां द्विवचनस्य मणीवादिवर्ज्जम्।

द्विवचनस्थानीयानाम् ई-ऊ-एरामाणां सम्बन्धे सर्व्वेश्वरे परे सन्धिर्न भवति। हरी अत्र, विष्णू अत्र अमू अत्र, गङ्गे अत्र, भजेते अजितम्, अमुके अत्र स्तः चान्द्रास्त्वत्र सन्धिमिच्छन्ति—'अमुकेऽत्र स्तः'। मणीवादौ तु सन्धिर्भवत्येव, विकल्प इत्येके—मणी+इव=मणीव, एवं दम्पती+इव=दम्पतीव, रोदसी+इव=रोदसीव, जम्पती+इव=जम्पतीव ॥७१॥

७२। अदसोऽमीत्यस्य।

'अदस्'-शब्दसम्बन्धिनः 'अमी' इत्यस्य पदस्य सर्व्वेश्वरे परे सन्धिर्न भवति—अमी अच्युतप्रियाः। 'अमी' इति किम् ? अमुकेऽत्र स्युः। ओरामान्ताद्या असन्धयः पाणिनीयानां (पा १।१।११) 'प्रगृह्य' संज्ञाः * ॥७२॥

७३। महापुरुषस्य च।

महापुरुषस्य च सम्बन्धे सर्व्वेश्वरे परे सन्धिर्न भवति ॥७३॥

७४। दूराह्वानादावन्त्यसर्व्वेश्वरस्य महापुरुषत्वं मतम्।

आगच्छ हरे३, आगच्छ। तिष्ठ हरे३, अत्र तिष्ठ। 'सर्व्वेश्वरे परे' निषेधादत्र तु सन्धिः—गच्छ आ३च्युतदत्त, गच्छा३च्युतदत्त। आदि महापुरुषमिदं सम्बोधनम्। तथाहि तत्सूत्राणि१—दूराह्वानादौ यत्नविशेषे वाक्यस्यान्ते सम्बोधनपदस्य संसारो 'महापुरुषः'। 'क्रियान्वयावच्छिन्नः पदसमूहो वाक्यम्' ॥७४॥

७५। अन्त्यसर्व्वेश्वरादिवर्णाः संसार-संज्ञाः।

'टि'संज्ञाश्च। आगच्छ हरे३। तिष्ठ हरे३। 'आदि' पदेन 'गाने रोदने विचारे च' इति सारस्वतादयः। 'सम्बोधनमात्रे च' इति काशिका। कृष्णं भजस्व वैष्णवा३। वाक्यस्यान्ते एव, न त्विह,—हरे आगच्छ। 'कृष्णा३ एहि' इति प्रक्रियाकौमुद्यां (पा ६।१।१२५) भ्रमः।

सारस्वत-प्रक्रियायां भ्रमा ये सन्ति भूरयः।
लिखितुं ते न शक्यन्ते ज्ञेयास्तत्त्वस्यानुसारतः॥

सर्व्वेषाममतं यत् स्यात् स 'भ्रमः' परिचीयते।
बहूनाममतं यत्तत् केषाञ्चिन्मतमिष्यते ॥७५॥

७६। है-हे-प्रयोगे तु है-हयोरेवानन्त्ययोरपि

है३ कृष्ण, हे३ कृष्ण, कृष्ण है३, कृष्ण हे३ ॥७६

७७। प्रत्यभिवाद-वाक्ये संसारः, न तु स्त्री-शूद्र-विषये।

'अभिवादये विष्णुमित्रोऽहम्' इत्यनन्तरं गुरुराह—'आयुष्मानेधि विष्णुमित्रा'३ ॥७७॥

पूर्व्वोक्तविधीनां स्थानविशेषमाह—

७८। गुरोरनृतोऽनन्तस्याप्येकैकस्य प्राचाम्।

ऋरामवर्जितस्य गुरोरनन्तस्यापि वर्णस्य यः संसारस्तस्यैकैकस्य सम्बोधने महापुरुषः स्यात्—प्राचामाचार्य्याणां मते, न तु अन्येषाम् ॥७८॥

---

* 'ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्' (अष्टाध्यायी १।१।११)। १। 'तस्य महापुरुषस्य सूत्राणि लक्षणानि च कथ्यन्ते'। इत्यधिक-पाठः (क)।

७९ । वामनो लघुः ।

८० । त्रिविक्रमो गुरुः ।

८१ । सत्सङ्गात् पूर्व्वो वामनोऽपि गुरुः ।

८२ । मिथः संलग्नो विष्णुजनः सत्सङ्ग-संज्ञः ।

'संयोगः' च । वी३ष्णुमित्र, विष्णुमी३त्र । मतान्तरे विष्णुमित्रा३ इत्येव । 'अनृत' किम् ? कृष्णमी३त्र, कृष्णमित्रा३ । 'आगच्छ' इति सर्व्वस्यादौ योज्यम्, वाक्याधिकारात् ।।८२।।

८३ । पृष्ट-प्रतिवचने हेर्व्वा ।

अकार्षीर्मालां विष्णुमित्र ? अकार्षं ही३, अकार्षं हि ।।८३।।

८४ । आक्षेप-गर्भे निगृहीत-परमतस्यानुवादे वाक्यस्य संसारो वा ।

'अनित्या हरिभक्तिः' इत्यात्था३ ? पक्षे तु न ।।८४।।

८५ । आम्रेडितस्य संसारो भर्त्सने पर्य्यायेण

अवैष्णवा३, अवैष्णव, अवैष्णव, अवैष्णवा३ ।।८५।।

८६ । अङ्गेत्यनेन युक्तस्याख्यातस्य संसारो भर्त्सने साकाङ्क्षता चेत् ।

हरिं विनाङ्ग प्रीणीही३, इदानीं दुःखमाप्स्यसि । 'इदानीम्' इत्यादिरत्राकाङ्क्षा, एतां विना तु न स्यात् ।।८६।।

८७ । विचारे पूर्व्ववाक्यस्य संसारः ।

तमालो नु३, कृष्णो नु ।।८७।।

८८ । प्रतिश्रवणे च संसारः ।

प्रतिश्रवणमभ्युपगमः, प्रतिज्ञानं, श्रवणाभिमुख्यञ्च । हरिमन्त्रं देहि । हरिमन्त्रं ददामी३ । हरिभक्तिर्नित्या भवितुमर्हती३ । विष्णुमित्र भोः किमात्था३ ? एवमन्येऽपि ज्ञेयाः । विचार-प्रश्न-पूजासु चतुर्व्यूहस्य वक्ष्यते ।।८८।।

८९ । पूर्व्वार्द्धस्य त्वरामः स्यादिदुतावुत्तरस्य हि ।
विभक्तावयवात्तस्माच्छकारो द्विभंवत्युत ।।

हरा३ इच्छ्वमेतत्ते ? पटा३ उच्छ्वम् इत्यपि ।।८९।।

९० । ओरामस्य बुद्ध-निमित्तस्येतौ सन्धिर्व्वा ।

बुद्धनिमित्तको य आरामस्तस्य सन्धिर्व्वा स्यात्, 'इति' शब्दे परे । 'बुद्ध'-संज्ञा वक्ष्यते (वि०प्र० २४) विष्णोइति, विष्णविति वा । 'बुद्धनिमित्तस्य' इति किम् ? 'गवित्ययमाह'—
अत्रानुकार्य्यानुकरणयोर्भेदस्याविवक्षितत्वादसत्यर्थवत्त्वे विष्णुभक्तिर्नोपपद्यते । 'विष्णुभक्ति' (वि०प्र० १) संज्ञा च वक्ष्यन्ते ।।९०।।

९१ । ईशस्यानेकात्मके वामनश्च वा ।

'ईश' संज्ञस्य एकात्मकान्य-सर्व्वेश्वरेपरे सन्धिर्व्वा स्यात्, त्रिविक्रमस्य वामनश्च वा—हरि आसनम्, रुक्मिणि एषा, रुक्मिणी एषा इति च । 'अन्यत्र 'चानित्यमिष्यते' इति मध्ये विलम्बोच्चारणे सन्धिर्न स्यादित्यर्थः । सूत्रेषु संहितासंज्ञेषु शीघ्रोच्चारणेऽपि विकल्प्यते ।।९१।।

९२ । ऋद्वयाद्वययोर्ऋति ।

अनयोर्ऋति परे सन्धिर्व्वा स्यात्, त्रिविक्रमस्य वामनश्च वा—स्रष्टृ-ऋषभः, यादव-ऋषभः । "हिम-ऋतावपि ताः स्म भृशस्विदः" इति माघः (६।६१) । माला ऋषभस्य, मालऋषभस्य इति च । पक्षे यथाप्राप्तं हर्य्यासनम् इत्यादि ।।९२।।

९३ । न नित्यसमासे न चाविष्णुपदान्ते निषेधवामनौ ।

हर्य्यर्थम्, कुमार्य्यौ ।।९३।।

९४ । उञः सन्ध्यभावः, ऊं वश्चेतौ ।

९५ । विष्णुगणाद्वो वा सर्व्वेश्वरे ।

उ-इति, ऊं इति, विति, किमु उक्तम्, किम्वुक्तम्, किमु इति, किम्विति इत्यपि बोद्धव्यम् । 'विष्णुगणात्' इति किम् । नञूक्तम् । अद्येव, हलीषा, प्रार्च्छति, ऋणार्णम्, गोऽग्रम्, गवेन्द्र
इत्यादयस्त्वाख्यातसमासयोर्वक्ष्यन्ते, दुर्गमत्वात् ९४-९५

इति सर्व्वेश्वरसन्धिः ।

अथ विष्णुजनसन्धिः

९६। विष्णुदासो विष्णुपदान्ते हरिघोषे च हरिगदा।

विष्णुपदान्ते विषये, हरिघोषे च परे सति अविष्णुपदान्ते च, विष्णुदासनामा वर्णः सवर्ग तृतीयः स्यात्, 'स्थाने सदृशतमः' इति न्यायेन—वाक्+अच्युतस्य=वागच्युतस्य, वाक्+गोविन्दस्य=वाग्गोविन्दस्य, षट्+गोपिका=षड्गोपिका, भगवत्+इच्छा=भगवदिच्छा, ककुभ्+विष्णोः=ककुब्विष्णोः, विष्णुपदान्तादन्यत्र न—(चतुर्थ्याम्) कंसजित्+ए=कंसजिते। उदाहरणान्तरमग्रे ✻ ९६

९७। हरिवेणौ हरिवेणुर्व्वा।

विष्णुपदान्ते वर्त्तमानो विष्णुदासो हरिवेणौ परे हरिवेणुर्व्वा स्यात्, स चस्थानिवर्गपञ्चमः—जगत्+नाथः=जगन्नाथः, जगद्नाथः, कृष्णगुप्+ञुङुवे=कृष्णगुम्ञुङुवे, कृष्णगुब्ञुङुवे ॥९७॥

९८। यादवमात्रे हरिकमलम्।

विष्णुदासो यादवे परे तद्वर्गप्रथमः स्यात्—वाक्+कृष्णस्य=वाक्कृष्णस्य। अत्र विष्णुपदान्ते हरिगदाबाधनार्थमिदं सूत्रम्। 'मात्र' ग्रहणादविष्णुपदान्ते च। उदाहरणन्त्वग्रे ✻ ॥९८॥

९९। ततः शश्छो वा।

विष्णुदासात् परः शरामश्छरामो वा स्यात् १—सुवाक्शौरिः, सुवाक्छौरिर्व्वा, अप्शायी; अप्छायी वा ॥९९॥

१००। न श्च्युतेरिति वाच्यम्।

वाक्श्च्योतति ॥१००॥

१०१। हो हरिघोषः।

विष्णुदासात् परो हरामस्तद्वर्गचतुर्थवर्णो वा स्यात्—वाक्+हरेः=वाग्घरेः, वाग्हरेः, अच्+हलो=अज्झलो, अज्हलो, षट्+हरेः=षड्ढरेः षड्हरेः, तत्+हलिनः=तद्धलिनः, तद्हलिनः, ककुभ्+हरस्य=ककुब्भरस्य, ककुब्हरस्य ॥१०१॥

१०२। द-तौ परवर्णौ ल-च-टवर्गेषु नित्यम्।

दरामस्तरामश्च ले परे, चवर्गे टवर्गे च परे परो यो वर्णः, स एव नित्यं स्यात्—तद्+लक्ष्मीपतेः तल्लक्ष्मीपतेः तत्+चतुर्भुजस्य—तच्चतुर्भुजस्य, कंसजित्+छादयति—('यादवमात्रे' स० प्र० ९८ इत्यादिना) कंसजिच्छादयति, तत्+जनार्द्दनस्य—तज्जनार्द्दनस्य, कंसजित्+झङ्कारः—कंसजिझ्झङ्कारः ('विष्णुदासो' स० प्र० ९६ इत्यादिना) कंसजिज्झङ्कारः तद्-ञरामः तञ्ञरामः वा इति निवृत्तम्। 'तद्ञरामः' इत्यपि पाणिनीयाः, तन्मते 'पूर्व्वत्रासिद्धम्' इति न्यायेन (पा ८।२।१) तद्वर्गतृतीयस्यैव स्थितिरिति; एवं णरामेऽपि। कंसजित्+टीकते—कंसजिट्टीकते, कंसजित्+ढौकते—कंसजिड्ढौकते ॥१०२॥

१०३। तश्च शे।

तरामः२ शरामे परे चरामः स्यात्—तत्+शौरेः—तच्शौरेः, पक्षे छत्वम्—तच्छौरेः ॥१०३॥

१०४। नोऽन्तश्च-छयोः शरामो, विष्णुचक्रपूर्व्वो विष्णुचापपूर्व्वो वा।

नरामो विष्णुपदान्तश्चछयोः परयोः शरामः स्यात् स च विष्णुचक्रपूर्व्वो विष्णुचापपूर्व्वो वा—भगवान्+चलति—भगवांश्चलति, भगवाँश्चलति, भगवान्+छादयति=भगवांश्छादयति, भगवाँश्छादयति ॥१०४

१०५। ट-ठयोः षरामः।

नरामो विष्णुपदान्तष्टठयोः परयोः षरामः स्यात्, विष्णुचक्रपूर्व्वो विष्णुचापपूर्व्वो वा—भगवान्+टीकते—भगवांष्टीकते, भगवाँष्टीकते, भगवान्+ठक्कुरः—भगवांष्ठक्कुरः, भगवाँष्ठक्कुरः ॥१०५॥

१०६। त-थयोः सरामः।

नरामो विष्णुपदान्तस्तथयोः परयोः सरामः स्यात्, विष्णुचक्रपूर्व्वो विष्णुचापपूर्व्वो वा—भगवान्+तरति—भगवांस्तरति, भगवाँस्तरति, भगवान्+थुत्करोति—भगवांस्थुत्करोति, भगवाँस्थुत्करोति १०६

✻ अवड्ढ्वमित्यादौ ज्ञेयम्। ✻ आख्यातप्रकरणे 'धत्ते धत्से' इत्यादौ। १। भवति वा (क), २। दरामस्तरामश्च (क)

१०७। न त्से।

त्से परे नरामो विष्णुपदान्तो विष्णुचक्रपूर्व्वो विष्णुचापपूर्व्वो वा सरामो नो स्यात्—भगवान्त्सरुः कान् कान् इत्यत्र कांस्कान् इति वाच्यं वा ॥१०७॥

१०८। प्रशानो नस्य चादौ हरिवेणुः।

विष्णुपदान्तस्य प्रशानो नरामस्य च छ ट ठ त थेषु परेषु परवर्णानुरूपो हरिवेणुर्भवति—प्रशान्+चतुर्भुजः—प्रशाञ्चतुर्भुजः, प्रशान्+छादयति—प्रशाञ्छादयति, प्रशान्+टीकते—प्रशाण्टीकते; प्रशान्+ठक्कुरः—प्रशाण्ठक्कुरः, प्रशान्+तरति—प्रशान्तरति ॥१०८॥

१०९। ले लराम एव।

नरामो विष्णुपदान्तो ले परे लरामः स्यात्—भगवान्+लीलायते—भगवाँल्लीलायते। अत्र 'स्थाने सदृशतमः' इति न्यायेन सानुनासिक एव लरामः स्यात्। अत्र य व ला हि द्विविधा मताः—सानुनासिकाः, निरनुनासिकाश्च ॥१०९॥

११०। ड-ढ-णेषु णरामः।

नरामो विष्णुपदान्तो ड ढ णेषु परेषु णरामः स्यात्—गरुत्मन्+डयसे—गरुत्मण्डयसे, चक्रिन्+ढौकसे—चक्रिण्ढौकसे, शार्ङ्गिन्+णंकुरु—शार्ङ्गिण्णंकुरु ॥११०॥

१११। ज झ ञ शरामेषु ञरामः।

नरामो विष्णुपदान्तो ज झ ञ शरामेषु परेषु ञरामः स्यात्—भगवान्+जयति—भगवाञ्जयति, भगवान्+झषरूपी—भगवाञ्झषरूपी, भगवान्+ञुङ्वे—भगवाञ्ञुङ्वे, भगवान्+शूरः—भगवाञ्शूरः ॥१११॥

११२। शे चान्तो वा।

नरामो विष्णुपदान्तः शरामे परे चरामान्तो ञरामः स्याद्वा—भगवान्+शूरः—भगवाञ्च्शूरः, भगवाञ्शूरः, छत्वे—भगवाञ्छूरः ॥११२॥

११३। मो विष्णुचक्रं विष्णुजने।

मरामो विष्णुपदान्तो विष्णुजने परे विष्णुचक्रं स्यात्—कृष्णम्+स्मरति—विष्णुचक्रस्य पूर्व्वोर्द्ध्वगामित्वं लोकात्, कृष्णं स्मरति। विष्णुजनादन्यत्र तु न—कृष्णम्+इच्छ—कृष्णमिच्छ कथं 'किम्वुक्तं', 'कृष्णगुमञ्ञुङ्वे'? 'असिद्धरूपं न त्याज्यम्, (स० प्र० ४३) इति प्रतिज्ञासिद्धयर्थमिदं तत्रैव कर्त्तुं योग्यमपि यन्न कृतम्, तस्मात्तत्राकरणान्न विष्णुचक्रमिति ॥११३॥

११४। विष्णुचक्रस्य हरिवेणुर्विष्णुवर्गे, विष्णुपदान्तस्य तु वा।

विष्णुचक्रस्य परवर्णानुरूपो हरिवेणुः स्यात्, विष्णुवर्गे परे, विष्णुपदान्तस्य तु विकल्पः। अविष्णुपदान्तोदाहरणं वक्ष्यन्ते*। कृष्णं कीर्त्तयति कृष्णङ्कीर्त्तयति वा, कृष्णं भजति, कृष्णम्भजति वा संसारं तरति, संसारन्तरति वा। अत्र त-थयोः सरामनिषेधो वक्तव्यः। 'विष्णुवर्गे' इति किम्? संवत्सरः ॥११४॥

११५। य व लेषु सविष्णुचाप-पररूपञ्च मन्यन्ते

सँव्वत्सरः, यँय्यम्यते, सँल्लुनाति ॥११५॥

११६। द्विः सर्व्वेश्वरमात्राच्छः।

अविष्णुपदान्तादपि सर्व्वेश्वरात् परश्छरामो द्विर्भवति—कृष्ण+छत्रम्=कृष्णच्छत्रम् ॥११६॥

११७। विष्णुपदान्तात् त्रिविक्रमाद्वा।

विष्णुपदान्तात् त्रिविक्रमात् परश्छरामो द्विर्व्वा भवति—यमुनाछाया, यमुनाच्छाया वा ॥११७॥

११८। आङ् माङ् भ्यां नित्यम्।

आङ् माङ् भ्यां परश्छरामो नित्यं द्विर्भवति, ङरामस्याप्रयोगः—आच्छादयति, माच्छिदत् ॥११८

११९। वामनात् ङ-ण-ना द्वि सर्व्वेश्वरे।

वामनात् परा ङ ण ना विष्णुपदान्ताः सर्व्वेश्वरे

---

* आख्यातप्रकरणे 'गन्ता मन्ता' इत्यादौ। १। 'ङ ण ना सर्व्वेश्वरे' (क ग घ)

परे द्विः स्युः—पर्य्यङ्+अनन्तः=पर्य्यङ्ङनन्तः, सुगण्+अनन्तः=सुगण्णनन्तः, कुर्व्वन्+अस्ति=कुर्व्वन्नस्ति। वामनादन्यत्र तु२ न—भगवान्+इह=भगवानिह। 'उणादि' 'तिङन्त' 'सनन्ता' दयस्तु सूत्रनिर्द्देशबलात् ॥११९॥

१२०। विष्णुजने विष्णुजनो वा, ह-रौ विना

वामनात् परो विष्णुजनो विष्णुजने परे द्विर्व्वा स्यात्, ह रौ तु द्विर्न भवतः—दध्युपेन्द्रस्य, दद्ध्युपेन्द्रस्य वा ॥१२०॥

१२१। हरिमित्राद्विष्णुगणो, विष्णुगणाद्धरिमित्रं, शौरितः सात्वतः सात्वताच्छौरिर्द्विर्व्वा सर्व्वेश्वरे इति वाच्यम्।

यमुनल्क्कारायते, दध्य्युपेन्द्रस्य, भगवांश्च्छादयति सुवाक्श्शोरिः। अत्र छोऽपि न मन्यते; पक्षे पूर्व्ववत् ॥१२१॥

१२२। रराभात्, सर्व्वेश्वरे तु हरिगोत्रं विना

रराभात् परो विष्णुजनो, विष्णुजने परे, द्विर्व्वा स्यात्, सर्व्वेश्वरे परे तु हरिगोत्रं विना—हर्य्यासनं, वा, कार्ष्ण्णं, कार्ष्णं वा ॥१२२॥

१२३। हाच्च सर्व्वेश्वरतः परादिति व्यक्तव्यम्

सर्व्वेश्वरतः परात् हादुत्तरो विष्णुजनो द्विर्व्वा स्यात्—ब्रह्मा, ब्रह्म्मा वा। नेह—'ह्नुते'। सर्व्वेश्वरे तु इत्यादि किम्?१ परामर्शः वार्षभानव्याः अर्हति ॥१२३॥

१२४। हस्तु विष्णुजने च न।

अर्ह्यते। 'विष्णुजने' (स० प्र० १२०) इत्यादौ द्वित्वप्रकरणे 'सर्व्वत्र साकल्यस्य' इति अद्वित्वपक्षानुल्लेखस्तस्यां प्रमादः ॥१२४॥

१२५। विष्णुजनाद्विष्णुदासस्यादर्शनं सवर्गे विष्णुदासे।

विष्णुजनात् परस्य विष्णुदासस्यादर्शनं वा स्यात् सवर्गे विष्णुदासे परे—भगवाञ्च्छूरः, भगवाञ्छूरो वा। अस्य पूर्व्वत्राकरणं, विकल्पेनावश्यकत्वाभावात् ॥१२५॥

१२५। अव्यक्तानुकरणशब्दानामद्धागस्य हर इतौ, हरिगदानिषेधश्च।

पटत्+इति=पटिति, घटत्+इति=घटिति ॥१२६

१२७। नैकसर्व्वेश्वरत्वे।

स्रत्+इति=स्रदिति ॥१२७॥

११८। न द्विस्त्रिरुक्तावन्त्यस्य, तरामस्य तु वा।

पटत्पटत्+इति=पटत्पटदिति, पटत्पटेति वा

कथं 'वड़भी वलभी', पर्य्यङ्कः पलयङ्कः, रघुः लघुः कपिरिका कपिलिका, इत्यादि। डलयो रलयोश्च प्राय एकत्वश्रवणात्* ॥१२८॥

१२९। सरामे ट नाभ्यां तुग्वेति वक्तव्यम्।

षट्+साधवः=षट्त्साधवः, भगवान्+साधुः=भगवान्त्साधुः ॥१२९॥

१३०। शौरौ ण ङाभ्यां ट कौ वेति वक्तव्यम्।

सुगण्+शङ्करः=सुगण्ट्शङ्करः, प्राङ्+स्वभूः=प्राङ्क्स्वभूः, प्राङ्+षष्ठः=प्राङ्क्षष्ठः ॥१३०॥

इति विष्णुजनसन्धिः।

२। वामनादन्यतस्तु (क ग घ)। १। 'सर्व्वेश्वरे त्वित्यादिकम्' (ग घ)। * श्रील-श्रीजीवप्रभु कृत 'श्रीभक्तिरसामृतशेष'स्य चतुर्थप्रकाशे यमक प्रकरणं द्रष्टव्यम्, साहित्यदर्पणे च—"यमकादौ भवेदैक्यं डलोर्बवोर्लरोस्तथा॥" (दशम परिच्छेदः)। उद्द्योतकारस्तु एतदतिरिक्तमपि परिभाषितवान्, यथा—"यमकादौ भवेदैक्यं डलयोरलयोर्बवोः। शषयोर्णणतोश्चान्ते सविर्गाविसर्गयोः॥ सविन्दुकाविन्दुकयोः स्यादभेदप्रकल्पनम्॥"

अथ विष्णुसर्गसन्धिः

१३१। विष्णुसर्गो जिह्वामूलीयः कखयोर्व्वा

विष्णुसर्ग कखयोः परयोर्जिह्वामूलीयो वा स्यात् स च वज्राकृतिलेखो जिह्वामूलभवो वर्णविशेषः। अस्य विष्णुजनवत् परोद्ध्र्वगामित्वं, लोकात्। एवमुपध्मानीयस्य च। कः कृष्णः, क ✕ कृष्णः, कृष्णः खेलति, कृष्ण ✕ खेलति ॥१३१॥

१३२। पफयोरुपध्मानीयः।

विष्णुसर्गः पफयोः परयोरुपध्मानीयो वा स्यात् स च गजकुम्भाकृतिलेख ओष्ठभवो वर्णविशेषः। कृष्णः परमः, कृष्ण ≍ परमः वा, कृष्णः फलम्, कृष्ण ≍ फलम् वा ॥१३२॥

१३३। न शौरिपरेषु तेषु।

शौरिपरेषु तेषु क ख प फेषु परेषु विष्णुसर्गस्थाने जिह्वामूलीयादिर्न स्यात्—कृष्णः क्षीरस्यति, कृष्णः प्साति। अत्र समासकार्य्ये षत्वौ च वक्ष्येते (समा० प्र० ३२५); यथा—निष्कृष्णः, रक्षस्पाशः, इत्यादि ॥१३३॥

१३४। च छयोः शरामः।

विष्णुसर्गः, चछयो परयोः शरामः स्यात्—कृष्णः + चरति = कृष्णश्चरति, कृष्णः + छादयति = कृष्णश्छादयति ॥१३४॥

१३५। ट ठयोः षरामः।

विष्णुसर्गः ट ठयोः परयोः षरामः स्यात्—कृष्णः + टीकते = कृष्णष्टीकते, कः + ठरामः = कष्ठरामः ॥१३५

१३६। तथयोः सरामोः।

विष्णुसर्गः तथयोः षरामः स्यात्—कृष्णः + तरति = कृष्णस्तरति, कृष्णः + थुत्करोति = कृष्णस्थुत्करोति ॥१३६॥

१३७। न त्से।

कः त्सरुः ॥१३७॥

१३८। शौरिषु शौरिर्व्वा।

विष्णुसर्गः शौरिषु परेषु परो यो वर्णः स एव वा स्यात्—कृष्णः शरणम्, कृष्णश्शरणम् वा, हरेः षण्डः हरेष्षण्डः वा, हरेः सुरभिः, हरेस्सुरभिः, वा ॥१३८।

१३९। सात्वतपरत्वे लोप्यश्च।

सात्वतः परो येभ्यस्तेषु शौरिषु परेषु विष्णुसर्गः पक्षे लोप्यश्च स्यात्—हरेः + स्थलम् = हरेस्थलम्, हरेस्थलम् वा ॥१३९॥

१४०। आदरामगोपालयोरुर्नित्यम्।

अरामात् परो विष्णुसर्ग उरामः स्यात्, अराम गोपालयोः परयोः—कृष्णः + अत्र = कृष्णोऽत्र, कृष्णः + गच्छति = कृष्णोगच्छति। अराम[१] निर्द्देशात् महापुरुषे तु न—आगच्छ तीर्थश्रवा ३ अत्र। विष्णुसर्गलोपो वक्ष्यते ॥१४०॥

१४१। अद्वय भो भगो अघोभ्यो लोप्यः सर्व्वेश्वरे तु यश्च, न च लोप्ये[२] सन्धिः।

अ आ इति वर्णद्वयात् 'भोः भगोः अघोः' शब्देभ्यश्च परो विष्णुसर्गो लोप्यः स्यात्, सर्व्वेश्वरगोपालयोः परयोः, सर्व्वेश्वरे तु परे पक्षे यरामश्च स्यात्, तस्मिन् लोप्ये सति पुनः सन्धिर्न स्यात्—कृष्णः + इह = कृष्ण इह, कृष्णयिह, कृष्णाः + अत्र = कृष्णा अत्र कृष्णायत्र, भोः + अनन्त = भो अनन्त, भो यनन्त, भगोः + अनन्त = भगो अनन्त, भगोयनन्त, अघोः + अवैष्णव = अघो अवैष्णव, अघोयवैष्णव। अत्राद्वयात् पर ईषत्स्पर्शो, ईषत्स्पर्शीतरश्च यरामो ज्ञेयः। ओरामात् परस्त्वीषत्स्पर्शितर एव। गोपाले न यरामः—कृष्णागच्छन्ति, भोगोविन्द, भगोगोविन्द, अघोहरिविमुख। 'आदरामगोपालयोः' इति विशेषविधानान्नेह—कृष्णोऽत्र' कृष्णो गच्छति।

सैष इति पादपूरणे, सः + एष = स एषः।

'सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः।
सैष कर्णो महात्यागी, सैष भीमो महाबलः ॥१४१

१। वामन (क)। २। लोपे (ख ग घ)।

१४२ । एष स परो विष्णुजने ।

एतच्छब्दस्य 'एष' इत्यस्मात्, तच्छब्दस्य 'स' इत्यस्माच्च परो विष्णुमर्गो लोप्यः स्याद्विष्णुजने परे३—एषः+कृष्णः=एषकृष्णः, सः+रामः=स रामः ॥१४२॥

१४३ । न तु नञ्समासाकप्रत्यययोः ।

अनेषः कृष्णः, असो रामः, एषकः, कृष्णः, सको रामः । 'स' इत्यस्य साहचर्य्यात्* एषणमेष इत्यस्मान्न स्यात्—एषो भवति ॥१४३॥

१४४ । र ईश्वरात् सर्व्वेश्वर गोपालयोः ।

ईश्वरात् परो विष्णुसर्गो ररामः स्यात्, सर्व्वेश्वर गोपालयोः परयोः—हरेः+इदम्—हरेरिदम्, हरिः+गच्छति=हरिर्गच्छति ॥१४४॥

१४५ । अनीश्वरादपि ररामजः ।

स एव विष्णुसर्गो यदि ररामजातस्तदा ईश्वरादनीश्वरादपि च परो ररामः स्यात्, सर्व्वेश्वर गोपालयोः परयोः—प्रातः+अत्र=प्रातरत्र, गीः+मुकुन्दस्य=गीर्मुकुन्दस्य, भ्रातः+व्रजे=भ्रातर्व्रजे भ्रातः+गोविन्दं पश्य=भ्रातर्गोविन्दं पश्य ॥१४५॥

१४६ । अह्नो विष्णुसर्गस्य रो रात्रि-रूप-रथन्तरादन्येषु ।

रात्रि-रूप-रथन्तरादन्येषु परेषु अह्नो विष्णुसर्गस्य स्थाने रो भवति—अहः+अहः=अहरहः, अहः+गणः=अहर्गणः । सर्व्वेश्वर गोपालयोरेव, नेह—अहःपतिः । *रात्रादौ तु न—अहोरात्रि, 'एकदेशविकृतमनन्यवत्'—अहोरात्रः, अहोरूपम्, अहोरथन्तरं साम ॥१४६॥

१४७ । रो रे लोप्यः, पूर्व्वश्च त्रिविक्रमः ।

रो ररामे परे लोप्यः स्यात् ररामात् पूर्व्वो वामनश्च त्रिविक्रमः स्यात्—भ्रातः+रामानुजं पश्य=भ्रातारामानुजं पश्य, हरिः+राधाप्रियः=हरीराधाप्रियः ॥१४७॥

इति विष्णुसर्गसन्धिः

इति श्रीश्रीहरिनामामृताख्ये वैष्णवव्याकरणे संज्ञा-सन्धि-प्रकरणं प्रथमं समाप्तम् ॥१॥

---

३ । 'इत्यस्मात्तच्छब्दस्य स इत्यस्माच्च परस्य विष्णुसर्गस्यादर्शनं स्यात्, विष्णुजने परे' (क) ।

* "अनियत धर्म्मिणां नियत धर्म्मिणा सह चरितत्वं साहचर्य्यत्वम्"—'बालतोषणी' टीका ।

* 'रूप रात्रि रथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्'—वार्त्तिकसूत्रम् ।

अथ विष्णुपदप्रकरणम्

(१) य एकः सर्व्वरूपाणां सर्व्वनाम्नां तथाश्रयः।
तस्य विष्णोः पदं सर्व्वं विष्णुभक्त्या निरूप्यते ॥

अथ नामजानि विष्णुपदानि

नाम्नो जातानि यानि विष्णुपदानि, अथानन्तरं तानि निरूप्यन्ते।

१। अधातुविष्णुभक्तिकमर्थवन्नाम।

भू सनन्ताद्या 'धातवः' स्वादि तिवाद्या 'विष्णुभक्तयः' 'विभक्तयः' इति प्राञ्चः। तान् धातून्, ता विष्णुभक्तीश्च वर्जयित्वा यदर्थयुक्तं शब्दरूपम्, तन्नाम संज्ञं स्यात्, 'लिङ्गम्' इत्येके, 'प्रातिपदिकम्' इत्यन्ये। ते चार्था द्रव्यगुणजातिक्रियाः। तद्युक्तं तदभिधायकं शब्दरूपमित्यर्थः। (१) द्रव्यं परमेश्वरमारभ्य मृन्मयपर्य्यन्तं सर्व्वं वस्तु, (२) 'गुण' सदाश्रयी, ऐश्वर्य्यादिशब्दस्पर्शादिको धर्म्मः, (३) 'जातिः' समानत्वं१ ब्राह्मणत्वं गोत्वादि' (४) 'क्रिया' धात्वर्थः, सत्त्वाहारज्ञानविहारप्रभृतिः। अर्थवद्ग्रहणात् 'कृष्ण' इत्यादौ प्रत्यक्षरं नामत्वं न स्यात्; 'गवित्ययमाह' इत्यत्र च ॥१॥

२। प्रकृतिः पूर्व्वा।

सा च नाम धातुभेदाद्द्विविधा ॥२॥

३। प्रत्ययः परः।

स च स्वाद्याख्यातकृत्तद्धितभेदाच्चतुर्विधः ॥३॥

४। तत्र नाम्नः 'सुँ औ जस्, अम् औ शस्, टा भ्याम् भिस्, ङे भ्याम् भ्यस्, ङसि भ्याम् भ्यस्, ङस् ओस् आम्, ङि ओस् सुप्'।

एते 'सु' इत्यादय एकविंशतिर्विष्णुभक्तयः, प्रत्येकं नाम्नः परे स्युः। तासु च 'सुँ' औ जस्, प्रथमा, 'अम् औ शस्' द्वितीया, 'टा भ्याम् भिस्' तृतीया, 'ङे भ्याम् भ्यस् चतुर्थी, 'ङसि भ्याम् भ्यस्, पञ्चमी, 'ङस् ओस् आम्' षष्ठी, 'ङि ओस् सुप्' सप्तमी। तत्र२ प्रथमाया एकवचनं 'सुँ' द्विवचनम् 'औ' बहुवचनम् 'जस्'; द्वितीयैकवचनम् 'अम्' द्विवचनम् 'औ' बहुवचनं 'शस्' इत्यादि ज्ञेयम्। एताः 'स्यादयः'; 'स्वादयः' इत्यन्ये; 'सुप्' इत्येके ॥४॥

५। तत्र ज ट श ङ पा इतः, उँश्च सँोः, ङसेरिश्च।

एति—गच्छति—न तिष्ठतीति 'इत्', 'अनुबन्धः' च। स च उच्चारणार्थश्चिह्नार्थो विध्यादिनिमित्तश्च क्वचित्। इतश्चैते—सिद्धोपदेशे विरिञ्चौ च सविष्णुचापसर्व्वेश्वर इत्, अन्त्यो विष्णुजनश्च 'अत् इत्' इत्यादौ, आङ् माङ् उत्र् नञ्सु च। विरिञ्चौ तु क्वचित्। धात्वादि ञि टु डु। प्रत्ययाद्या ज ट ण पाः, श कवर्गावतद्धिते। न विष्णुभक्तौ त न स मा इति। 'सिद्धोपदेशाः'—धातुप्रत्ययविष्णवः। अरामादिभेदाः सविष्णुचापास्तु वैदिका उच्यन्ते ॥५

६। नामसंज्ञश्चतुर्विधः।

यथा पुंलिङ्गः 'पुरुषोत्तम' संज्ञः, स्त्रीलिङ्गो 'लक्ष्मी' संज्ञः, नपुंसकलिङ्गो 'ब्रह्म' संज्ञः, अलिङ्गः 'अव्यय' संज्ञः* ॥६॥

तत्र सर्व्वेश्वरान्ताः पुरुषोत्तमलिङ्गाः।

अत्र अरामान्तः 'कृष्णः' शब्द। तत्र प्रथमैकवचने कृष्ण सुँ इति स्थिते, उँराम उच्चारणार्थः।

७। विष्णुभक्तिसिद्धं विष्णुपदम्।

विष्णुभक्तिसिद्धं नाम्नो धातोर्वा रूपं 'विष्णुपद' संज्ञं स्यात्। 'पदम्' इति प्राञ्चः

१। सामान्यं (क)। २। अत्र (घ)।

* "सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्व्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्व्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥" (गोपथ ब्राह्मणम्)

१४२। एष स परो विष्णुजने।

एतच्छब्दस्य 'एष' इत्यस्मात्, तच्छब्दस्य 'स' इत्यस्माच्च परो विष्णुसर्गो लोप्यः स्याद्विष्णुजने परे३—एषः+कृष्णः=एषकृष्णः, सः+रामः=स रामः ॥१४२॥

१४३। न तु नञ्समासाकप्रत्यययोः।

अनेषः कृष्णः, असो रामः, एषकः, कृष्णः, सको रामः। 'स' इत्यस्य साहचर्य्यात्* एषणमेष इत्यस्मान्न स्यात्—एषो भवति ॥१४३॥

१४४। र ईश्वरात् सर्व्वेश्वर गोपालयोः।

ईश्वरात् परो विष्णुसर्गो ररामः स्यात्, सर्व्वेश्वर गोपालयोः परयोः—हरेः+इदम्—हरेरिदम्, हरिः+गच्छति=हरिर्गच्छति ॥१४४॥

१४५। अनीश्वरादपि ररामजः।

स एव विष्णुसर्गो यदि ररामजातस्तदा ईश्वरादनीश्वरादपि च परो ररामः स्यात्, सर्व्वेश्वर गोपालयोः परयोः—प्रातः+अत्र=प्रातरत्र, गीः+मुकुन्दस्य=गीर्मुकुन्दस्य, भ्रातः+व्रजे=भ्रातर्व्रजे भ्रातः+गोविन्दं पश्य=भ्रातर्गोविन्दं पश्य ॥१४५॥

१४६। अह्नो विष्णुसर्गस्य रो रात्रि-रूप-रथन्तरादन्येषु।

रात्रि-रूप-रथन्तरादन्येषु परेषु अह्नो विष्णुसर्गस्य स्थाने रो भवति—अहः+अहः=अहरहः, अहः+गणः=अहर्गणः। सर्व्वेश्वर गोपालयोरेव, नेह—अहःपतिः। *रात्रादौ तु न—अहोरात्रिः, 'एकदेशविकृतमनन्यवत्'—अहोरात्रः, अहोरूपम्, अहोरथन्तरं साम ॥१४६॥

१४७। रो रे लोप्यः, पूर्व्वश्च त्रिविक्रमः।

रो ररामे परे लोप्यः स्यात् ररामात् पूर्व्वो वामनश्च त्रिविक्रमः स्यात्—भ्रातः+रामानुजं पश्य=भ्रातारामानुजं पश्य, हरिः+राधाप्रियः=हरीराधाप्रियः ॥१४७॥

इति विष्णुसर्गसन्धिः

इति श्रीश्रीहरिनामामृताख्ये वैष्णवव्याकरणे संज्ञा-सन्धि-प्रकरणं प्रथमं समाप्तम् ॥१॥

३। 'इत्यस्मात्तच्छब्दस्य स इत्यस्माच्च परस्य विष्णुसर्गस्यादर्शनं स्यात्, विष्णुजने परे' (क)।

* "अनियत धर्म्मिणां नियत धर्म्मिणा सह चरितत्वं साहचर्य्यत्वम्"—'बालतोषणी' टीका।

* 'रूप रात्रि रथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्'—वार्त्तिकसूत्रम्।

[द्वितीयम्]

अथ विष्णुपदप्रकरणम्

(१) य एकः सर्व्वरूपाणां सर्व्वनाम्नां तथाश्रयः ।
तस्य विष्णोः पदं सर्व्वं विष्णुभक्त्या निरूप्यते ।।

अथ नामजानि विष्णुपदानि

नाम्नो जातानि यानि विष्णुपदानि, अथानन्तरं तानि निरूप्यन्ते ।

१ । अधातुविष्णुभक्तिकमर्थवन्नाम ।

भू सनन्ताद्या 'धातवः' स्वादि तिबाद्या 'विष्णुभक्तयः' 'विभक्तयः' इति प्राञ्चः । तान् धातून्, ता विष्णुभक्तीश्च वर्जयित्वा यदर्थयुक्तं शब्दरूपम्, तन्नाम संज्ञं स्यात्, 'लिङ्गम्' इत्येके, 'प्रातिपदिकम्' इत्यन्ये । ते चार्था द्रव्यगुणजातिक्रियाः । तद्युक्तं तदभिधायकं शब्दरूपमित्यर्थः । (१) द्रव्यं' परमेश्वरमारभ्य मृन्मयपर्य्यन्तं सर्व्वं वस्तु, (२) 'गुण' सदाश्रयी, ऐश्वर्य्यादिशब्दस्पर्शादिको धर्म्मः, (३) 'जातिः' समानत्वं१ ब्राह्मणत्वं गोत्वादि' (४) 'क्रिया' धात्वर्थः, सत्त्वाहारज्ञानविहारप्रभृतिः । अर्थवद्ग्रहणात् 'कृष्ण' इत्यादौ प्रत्यक्षरं नामत्वं न स्यात् ; 'गवित्ययमाह' इत्यत्र च ।।१।।

२ । प्रकृतिः पूर्व्वा ।

सा च नाम धातुभेदाद्द्विविधा ।।२।।

३ । प्रत्ययः परः ।

स च स्वाद्याख्यातकृत्तद्धितभेदाचतुर्विधः ।।३।।

४ । तत्र नाम्नः 'सुँ औ जस्, अम् औ शस्, टा भ्याम् भिस्, ङे भ्याम् भ्यस्, ङसि भ्याम् भ्यस्, ङस् ओस् आम्, ङि ओस् सुप्' ।

एते 'सुँ' इत्यादय एकविंशतिर्विष्णुभक्तयः, प्रत्येकं नाम्नः परे स्युः । तासु च 'सुँ औ जस्, प्रथमा, 'अम् औ शस्' द्वितीया, 'टा भ्याम् भिस्' तृतीया, 'ङे भ्याम् भ्यस् चतुर्थी, 'ङसि भ्याम् भ्यस्, पञ्चमी, 'ङस् ओस् आम्' षष्ठी, 'ङि ओस् सुप्' सप्तमी । तत्र२ प्रथमाया एकवचनं 'सुँ' द्विवचनम् 'औ' बहुवचनम् 'जस्' ; द्वितीयैकवचनम् 'अम्' द्विवचनम् 'औ' बहुवचनं 'शस्' इत्यादि ज्ञेयम् । एताः 'स्यादयः' ; 'स्वादयः' इत्यन्ये ; 'सुप्' इत्येके ।।४।।

५ । तत्र ज ट श ङ पा इतः, उँश्च सँ ोः, ङसेरिश्च ।

एति—गच्छति—न तिष्ठतीति 'इत्', 'अनुबन्धः' च । स च उच्चारणार्थश्चिह्नार्थो विध्यादिनिमित्तश्च क्वचित् । इतश्चैते—सिद्धोपदेशे विरिञ्चौ च सविष्णुचापसर्व्वेश्वर इत, अन्त्यो विष्णुजनश्च 'अत् इत्' इत्यादौ, आङ् माङ् उञ् नञ्सु च । त्रिरिञ्चौ तु क्वचित् । धात्वादि ञि टु डु । प्रत्ययाद्या ज ट ण पाः, श कवर्गावतद्धिते । न विष्णुभक्तौ त न स मा इति । 'सिद्धोपदेशाः'—धातुप्रत्ययविष्णवः । अरामादिभेदाः सविष्णुचापास्तु वैदिका उच्यन्ते ।।५

६ । नामसंज्ञश्चतुर्विधः ।

यथा पुंलिङ्गः ,पुरुषोत्तम' सञ्ज्ञः, स्त्रीलिङ्गो 'लक्ष्मी' संज्ञः, नपुंसकलिङ्गो 'ब्रह्म' संज्ञः, अलिङ्गः 'अव्यय' संज्ञः* ।।६।।

तत्र सर्व्वेश्वरान्ताः पुरुषोत्तमलिङ्गाः ।

अत्र अरामान्तः 'कृष्णः' शब्द । तत्र प्रथमैकवचने कृष्ण सुँ इति स्थिते, उँराम उच्चारणार्थः ।

७ । विष्णुभक्तिसिद्धं विष्णुपदम् ।

विष्णुभक्तिसिद्धं नाम्नो धातोर्वा रूपं 'विष्णुपद' संज्ञं स्यात् । 'पदम्' इति प्राञ्चः

---

१ । सामान्यं (क) । २ । अत्र (घ) ।

* "सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्व्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्व्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ।।" (गोपथ ब्राह्मणम्)

गङ्गास्रोतोवदेवास्य भवेद्विधिरतःपरः।
नारोहति परः पूर्व्वं यत्रोपाधिर्न विद्यते ।।७।।*

८। स र रामयोर्विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते।

स र रामयोः स्थाने विष्णुसर्गः स्यात्, विष्णुपदान्ते विषये—कृष्णः।

एवं सूत्रं ततो वृत्तिरिति विस्तरशङ्कया।
सूत्रेणैवार्थसिद्धिस्तु यथा स्यात् क्रियते तथा ।।
साधनानुक्रमार्थञ्च नाधिकारेण सूत्र्यते।
अन्यथा प्रक्रिया भिन्ना मृग्येताज्ञप्रबोधनी ।।
'प्राङ्-निमित्तं' तथा 'कार्य्यी' 'कार्य्यं' परनिमित्तकम्
अत्र क्रमेण वक्तव्यं प्रायः सूत्रेषु सर्व्वतः ।।
क्रमाच्च पञ्चमी षष्ठी प्रथमा सप्तमी तथा।
क्वचित् परनिमित्तस्य स्थाने 'विषयसप्तमी' ।।
कार्य्यपूर्व्वे पञ्चमी स्यात्, कार्य्यस्थाने तु षष्ठिका।
कार्य्ये तु प्रथमा वाच्या, सप्तमी विषये परे ।।*
विना योगे निषेधार्थं द्वितीया क्वचिदिष्यते।
सर्व्वाङ्गासम्भवो यत्र स्वल्पान्यङ्गानि तत्र तु ।।
अतो बालकबोधाय पदं विच्छिद्य मूर्द्धनि।
अङ्का देया विष्णुभक्तिव्यक्त्यर्थं सर्व्वसूत्रतः ।।

यथा 'स र रामयोः' इति कार्य्यस्थानं, विष्णुसर्गः इति कार्य्यं, 'विष्णुपदान्तः' विषयः। परनिमित्तं पूर्व्वनिमित्तञ्चात्र नास्ति, तत्तच्च यथा—'द्वयमेव यः सर्व्वेश्वरे' (स० प्र० ५९) इत्यत्र परनिमित्तं सर्व्वेश्वरः, 'ततः शश्छो वा' (स० प्र० ६६) इत्यत्र पूर्व्वनिमित्तं विष्णुदासः, 'विष्णुजने' (स० प्र० १२०) इत्यादौ 'ह रौ विना' इति तौ निषिद्धौ।

तदेवं प्रथमाया एकवचने कृष्णः। द्विवचने कृष्ण-औ—'ओद्वये औ' (स० प्र० ५७) कृष्णौ। बहुवचने कृष्ण जस्, ज् इत् चिह्नार्थः, शसादिभेदज्ञापनाय; एवमुत्तरत्रापि, त्रिविक्रमविष्णुसर्गौ—कृष्णाः ।।८।।

द्वितीयैकवचने कृष्ण-अम्—

९। दशावतारादम्शसोररामहरः।

कृष्णम्। हरोऽयं ज्ञापयति—'सूत्रे प्रत्ययरूपान्निमित्तादन्यस्य हरोऽपि महाहरः।' इति, तेनैकात्मकमात्रनिमित्तत्वान्न त्रिविक्रमः। द्वितीया द्वित्वे कृष्ण-औ कृष्णौ। पूर्व्ववद्बहुत्वे कृष्ण-शस्, श् इत्, अरामहरः। एकदेश विकृत मनन्यवत्', तथापि तन्नामैवेत्यर्थः। ततश्च— ।।९।।

१०। दशावतारस्य त्रिविक्रमः शसि, तस्मात् सो नः पुंसि।

अराम उच्चारणार्थः, कृष्णान् ।।१०।।

तृतीयैकत्वे टा—

११। अरामान्तः कृष्णसंज्ञः।

१२। कृष्णात् टा इनः।

'टा' इति सूत्रबलेन लुप्तषष्ठी, स्पष्टतार्थमसन्धिः। एवमन्यत्रापि। कृष्ण-इन, 'अद्वयमिद्वये ए' (स० प्र० ४८) कृष्णेन ।।१२।।

द्वित्वे कृष्ण-भ्याम्—

१३। कृष्णस्य त्रिविक्रमो गोपाले।

'एकवर्णो विधिरन्ते प्रवर्त्तते'—कृष्णाभ्याम् ।।१३।।

बहुत्वे कृष्ण-भिस्—

१४। कृष्णाद्भिस् ऐस्।

'एद्वये ऐ' (स० प्र० ५५) विष्णुसर्गः—कृष्णैः ।।१४

चतुर्थ्येकत्वे ङे—

१५। कृष्णात् ङेर्यः।

'कृष्णस्य त्रिविक्रमो' (वि० प्र० १३)—कृष्णाय। द्वित्वे कृष्णाभ्याम् ।।१५।।

बहुत्वे भ्यस्—

१६। कृष्णस्य ए वैष्णवे बहुत्वे।

कृष्णेभ्यः ।।१६।।

---

* "गोयूथं सिंहदृष्टिश्च मण्डुक प्लुतिरेव च। गङ्गास्रोतप्रवाहश्च ह्यधिकारश्चतुर्विधः ।।" (कौमाराणां श्लोकः)

* सूत्रे षष्ठ्यां ततः स्थाने, पञ्चम्यां तत उत्तरे। सप्तम्याञ्च परे तस्मिन्, गम्ये चोदपदे क्वचित् ।।

पञ्चम्येकत्वे कृष्ण-ङसि—

१७। कृष्णात् ङसेरात्।

कृष्णात्। पञ्चमी द्वित्वबहुत्वयोश्चतुर्थीवत्, कृष्णाभ्याम्, कृष्णेभ्यः ॥१७॥

षष्ठ्येकत्वे कृष्ण-ङस्—

१८। कृष्णात् ङसः स्य।

कृष्णस्य ॥१८॥

द्वित्वे ओस्—

१९। कृष्णस्य ए ओसि।

'ए अय्' (स० प्र० ६३)—कृष्णयोः ॥१९॥

बहुत्वे आम्—

२०। वामन-गोपी-राधाभ्यो नुड़ामि।

ईदृशो विधिर्विष्णुः। उटावितौ। टिदागमः परसम्बन्धी ; किदागमः पूर्व्वसम्बन्धी ॥२०॥

२१। तत्र टिन्मितौ सर्व्वत्रागमौ श्नमं विना, उगन्त-किच्च।

यथा 'नुक्' 'पुक्' 'तुक्' 'युक्' इत्यादि। ततो 'नामि' स्थिते—॥२१॥

२२। वामनस्य त्रिविक्रमो नामि, नृशब्दस्य तु वा, न तिसृ-चतस्रोः।

कृष्णानाम्। 'कृष्णस्य त्रिविक्रमो' (वि० प्र० १३) इत्यनेनैव सिद्धत्वेऽपि सूत्रस्य प्रयोजनं 'हरीणाम्' (वि० प्र० ३६) इत्यादावेव। सप्तम्येकत्वे कृष्ण-ङि ङ्‌ इत्, 'अद्वयमिद्वये ए' (स० प्र० ४८)—कृष्णे। द्वित्वे ओस्—कृष्णयोः ॥२२॥

बहुत्वे सुप्, पराम इत्—'कृष्णस्य ए' (वि० प्र० १६)—

२३। ईश्वर-हरिमित्र-क-ङेभ्यः प्रत्यय-विरिञ्चि सस्य षो, नुम्-विष्णुसर्ग-व्यवधानेऽपि, न तु विष्णुपदाद्यन्त—सातीनाम्।

कृष्णेषु ॥२३॥

अथ सम्बोधनम्, तत्र 'हे' शब्दः सम्बोधनसूचकः

२४। सम्बोधने सुर्बुद्ध-संज्ञः।

'सम्बुद्धिः' च ॥२४॥

२५। ए-ओ वामनेभ्यो बुद्धस्यादर्शनम्।

हे कृष्ण ! द्वित्व—बहुत्वयोः पूर्व्ववत्—हे कृष्णौ हे कृष्णाः। अत्र प्रथमैव। 'हे' शब्दाद्यभावेऽपि—कृष्ण, कृष्णौ, कृष्णाः ! विष्णुभक्ति हरेऽपि तदर्थावृतत्वान्नामत्वातिक्रमः, ततः 'कृष्ण यासि', 'कृष्ण भासि' इत्यादौ नामविशेषस्य विहितं त्रिविक्रमादिकं न स्यात्। एवं रामः, रामौ, रामाः इत्यादि ॥२५॥

२६। र-ष-ऋद्वयेभ्यो नस्य णः, सर्व्वेश्वर ह-य-व कवर्ग-पवर्ग व्यवधानेऽपि, समान विष्णुपदे, न तु विष्णुपदान्तस्य।

रामान्, रामेण इत्यादि। 'वामन' 'नारायण' 'गोविन्द' 'वैकुण्ठ' 'वासुदेव' आदयोऽपि अरामान्ताः 'कृष्णः' तुल्याः।

'कुर्व्वन्नस्ति' इत्यादौ द्वित्वे पूर्व्वनरामस्य न णत्वं तत्राकरणात्। 'अ' इति शब्दोऽपि आद्यन्तवदेकस्मिन् इति न्यायेन अरामान्तः। अः औ आः इत्यादि। सम्बोधने 'अन्यत्र चानित्यमिष्यते' (स० प्र० १) इति हे अ, अ हे वा। दूराह्वाने हैहयोरेव महापुरुषत्वं मतम्—हे अ३, अ हे३ वा ॥२६॥

२७। शसादयो यदु-संज्ञाः।

२८। अत्र पाद-दन्त-मास-यूष इत्येतेषां पद् दत् मास् यूषन् इत्येते विरिञ्चयो यदुषु वा।

यथासंख्यमनुदेशः, 'समानां कार्य्यिणां कार्य्याणाञ्च प्रकृतीनां प्रत्ययानाञ्च तुल्यसंख्यानां सतां' यद्विधानं तद्यथासंख्यं स्यात्। प्रथमस्य प्रथमं, द्वितीयस्य द्वितीयम्, इत्यादि क्रमेणेत्यर्थः। प्रयोगाश्च पक्षे विष्णुजनान्तवज्ज्ञेयाः। यथा—पदः पादान्, पदा पादेन, पद्भ्यां पादाभ्याम् इत्यादि।

अथ धातुस्वरूप आरामान्तो 'विश्वपा'-शब्दः। विश्वपाः, विश्वपौ, विश्वपाः, विश्वपाम्, विश्वपौ ॥२८॥

विश्वपा—शस्—

२९। आरामहरो यदुसर्व्वेश्वरे, न त्वापः।

विश्वपः। विश्वपा—टा, ट् इत्, विश्वपा, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभिः, विश्वप-ङे, ङ् इत्, विश्वपे, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभ्यः, विश्वपा-ङसि, इङावितौ, विश्वपः, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभ्यः, विश्वपा-ङस् विश्वपः, विश्वपोः, विश्वपाम्, विश्वपा—ङि विश्वपि, विश्वपोः, विश्वपासु। सम्बोधने पूर्व्ववत् 'हे विश्वपाः' इत्यादि। एवं 'सोमपा' प्रभृतयः। आरामहरविधिर्व्वा 'हाहा-अब्जादीनाम्' इति क्रमदीश्वरादयः—हाहः, हाहान्, अब्जः, अब्जान्। 'हाहाः अब्जाः' इति केचित्। एवम् 'अग्रेगाः उदधिक्राः' ॥२९॥

इरामान्तो 'हरि' शब्दः—

३०। इ-उ-रामान्तो हरि-संज्ञः।

'अग्निः' 'घिः' च। हरिः ॥३०॥

३१। हरित ओ पूर्व्वसवर्णः।

'हरित' इति पञ्चम्यास्तस् तद्धितः। हरी ॥३१

३२। इद्वयस्य ए, उद्वयस्य ओ, ऋद्वयस्य अर्, लृद्वयस्य अल् गोविन्द-संज्ञः।

'गुण' संज्ञश्च ॥३२॥

३३। ङितो वृष्णि-संज्ञाः।

३४। हरेर्गोविन्दो जसि वृष्णिषु बुद्धे च।

हरयः, हरिम्, हरी, हरीन् ॥३४॥

३५। हरितष्टा ना, न तु लक्ष्म्याम्।

हरिणा, हरिभ्याम्, हरिभिः, हरये, हरिभ्याम्, हरिभ्यः ॥३५॥

३६। ए-ओभ्यां ङसि-ङसोररामहरः।

हरेः, हरिभ्याम्, हरिभ्यः, हरेः, हर्य्योः, हरीणाम् ॥३६॥

३७। हरितः ङेरौच्।

चराम इत् ॥३७॥

३८। अन्त्यसर्व्वेश्वरादि-वर्णाः संसार-संज्ञाः[१]

३९। संसारस्य हरश्चिति।

'ङित् इति प्राञ्चः। हरौ, हर्य्योः, हरिषु, हे हरे! एवम् 'अग्नि' 'रवि' 'कवि' 'गिरि' प्रभृतयः। 'त्रि' शब्दो वाच्यलिङ्गो नित्यबहुवचनान्तस्तस्य पुंसि—त्रयः, त्रीन्, त्रीभिः, त्रिभ्यः, त्रिभ्यः ॥३९॥

४०। त्रेस्त्रयो नामि स्वार्थे।

त्रयाणाम् तदन्तत्वेऽपि—परमत्रयाणाम्। अस्वार्थे तु—प्रियत्रीणाम्। त्रिषु ॥४०॥

'कति' शब्दोऽपि तद्वत्—

४१। षनान्त-संख्यातः कतेश्च जस्-शसोर्महाहरः स्वार्थे।

अत्र आत्यन्तिकलयात् प्रत्ययकार्य्यं न गोविन्दः। कति, कति, कतिभिः इत्यादि। कतेरिति यति तत्योरूपलक्षणम्, "यति ते नाग शीर्षाणि, तति ते नाग वेदनाः" इति प्रयोगात्। एवं 'परमकति' इत्यादि। अस्वार्थे तु—प्रियकतयः ॥४१॥

अथ 'सखि' शब्दः—

४२। ऋराम-सखिभ्यामुशनस्-पुरुदंशस्-अनेहस् इत्येतेभ्यश्च सोराच्, बुद्धं विना।

संसारस्य हरः ॥४२॥

४३। अद्वयस्य आ, इद्वयस्य ऐ, उद्वयस्य औ, ऋद्वयस्य आर्, लृद्वयस्य आल् वृष्णीन्द्र-संज्ञः ए-ओ-स्थाने ऐ औ च।

'वृद्धि' संज्ञश्च ॥४३॥

१। एतत् सूत्रं क- पाण्डुलिप्यां नास्ति।

४४। स्वादयः पञ्च पाण्डवाः।

'घुटः', 'सुटः' च ।।४४।।

४५। सख्युर्वृष्णीन्द्रः सुवर्ज्जं पाण्डवेषु।

'ऐ आय्' (म० प्र० ६४) सखायौ, सखायः, सखायम् सखायौ, सखीन् ।।४५।।

४६। न सखिर्हरिसंज्ञष्टादौ, पतिस्त्वसमासे

सख्या, सखिभ्याम् सखिभिः, सख्ये, सखिभ्याम्, सखिभ्यः ।।४६।।

४७। ख्य-त्याभ्यां ङसि ङसोरुस्।

खिशब्द—खीशब्दयोः, तिशब्द, तीशब्दयोः, कृतयरामादेशयोरिदं ग्रहणम्। सख्युः, सखिभ्याम्, सखिभ्यः, सख्युः, सख्योः ,सखीनाम् ।।४७।।

४८। सखि-पतिभ्यां ङेरौ।

सख्यौ, सख्योः, सखिषु, हे सखे, हे सखायौ, हे सखायः! तदन्तत्वेऽपि—'बहुसख्या, बहुसख्ये, बहुसख्युः, बहुसख्यौ' इत्याहुः। पञ्चम्यां 'सुसखेरागच्छति' इति भाष्यादौ। एतद्दृष्ट्वैव "सख्युः समासे 'घि' संज्ञोऽस्ति" इति प्रक्रियायाम् (पा ७।३।११८)। 'समास इत्युपलक्षणम्' इति कृष्ण-पण्डितः, तेन प्रकृतेः पूर्व्वत्र बहुप्रत्ययेऽपि 'बहुसखेः' इत्यादि। 'पति शब्दस्य प्रथमा-द्वितीययोर्हरिशब्दवत् तृतीयादौ सखि-शब्दवत्, समासान्तस्य तु हरिशब्दवदेव—यदुपतिना, यदुपतये इत्यादि।

ईरामान्तो 'दैत्यप्रमी' शब्दः—दैत्यान्, प्रमीनाति हिनस्तीति क्विबन्तो विष्णुवाची। दैत्यप्रमीः, दैत्यप्रम्यौ, दैत्यप्रम्यः। धातुत्वादत्र सर्व्वत्र सर्व्वेश्वरे यराम एव वक्ष्यते(वि०प्र० ५०)। तस्यैवोदाहरणमिदं 'वातप्रमी' भेदज्ञापनार्थमत्र लिखितम्। एवमन्यत्रापि ज्ञेयम्। दैत्यप्रम्यम्, दैत्यप्रम्यौ, दैत्यप्रम्यः, दैत्यप्रम्या, दैत्यप्रमीभ्याम्, दैत्यप्रमीभिः, दैत्यप्रम्ये, दैत्यप्रमीभ्याम्, दैत्यप्रमीभ्यः,दैत्यप्रम्यः दैत्यप्रमीभ्याम् दैत्यप्रमीभ्यः, दैत्यप्रम्यः, दैत्यप्रम्योः, दैत्यप्रम्याम्, दैत्यप्रम्यि, दैत्यप्रम्योः, दैत्यप्रमीषु। सम्बोधने पूर्व्ववत्। एवं 'वातप्रमी' शब्द ई प्रत्ययान्तत्वात् अम्-शस्-ङिषु विशेष इति केचित्। वातप्रमीम्; 'यावत्सम्भवस्तावद्विधिः' इति न्यायेन दशावतारस्य (वि० प्र० १०) इति त्रिविक्रमे कृते 'तस्मात् सो नः' —वातप्रमीन्। ङौ वातप्रमी। 'वातप्रमी हूहू-प्रभृतेर्धातुत्वं वा' इत्यन्ये—वातप्रम्यम्, वातप्रमीम्, हूह्वम्, हूहूम्।

उरामान्तो 'विष्णुशब्दः' 'हरि' सूत्रैरेव साधनम्, विष्णुः, विष्णू, विष्णवः, विष्णुम्, विष्णू, विष्णून्, विष्णुना, विष्णुभ्याम्, विष्णुभिः, विष्णवे, विष्णुभ्याम् विष्णुभ्यः, विष्णोः, विष्णुभ्याम्, विष्णुभ्यः, विष्णोः विष्ण्वोः, विष्णूनाम्, विष्णौ, विष्ण्वोः, विष्णुषु, हे विष्णो!

"चालनी तितउः पुमान्" इत्यमरः (२।९।२६) प्रकृतौ सन्धि विनैव सिद्धोऽयमुणादाविति प्रकृत्यङ्गयोर्न सन्धिः, तितउः, तितऊ, तितवः इत्यादि ।।४८।।

कृष्णश्रीः—

४९। धातोरीदूतोरियुवौ सर्व्वेश्वरे बहुलम्

ईरामस्य इय्, ऊरामस्य उव्। 'प्रत्ययवर्णेन तदादिर्गृह्यते', ततः सर्व्वेश्वरादौ विष्णुभक्तावित्यर्थः एवमन्यत्रापि। एतद्विधसूत्रस्य नामप्रकरणपाठात् लुप्तकृत्प्रत्ययस्य धातुत्वेऽपि नामत्वम्, ततः प्रत्ययाश्च —कृष्णश्रियौ, कृष्णश्रियः, परत्वादमृशसोरपि—कृष्णश्रियम् इत्यादि।

भावे क्विपि—भूः, भुवौ, भुवः। बाहुल्यात् न सर्व्वत्र, यथोक्तम्—

"क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः
क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य
चतुर्व्विधं बाहुलकं वदन्ति ।।"*
(अभियुक्तोक्तिः)

---

* प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च विभाषोक्तविधिः क्वचित्। अपूर्व्वस्य विधानञ्च बहुलं स्याच्चतुर्व्विधम् ।।

तेन—॥४९॥

५०। सहजानेकसर्व्वेश्वरस्य क्विवन्तस्य केवलधात्वक्षर-सत्सङ्गास्पृष्टयोरीदूतोर्यवौ।

तत्र कृत्समासे—विश्वनीः, विश्वन्यौ, विश्वन्यः इत्यादि, षष्ठी-बहुत्वे—विश्वन्याम् ॥५०॥

५१। नी-राधाभ्यां ङेराम्।

विश्वन्यां, विश्वन्योः, विश्वनीषु। एवं प्रकृष्टं ध्यायतीति क्विपि निपातात्—प्रधीः, प्रध्यौ। केवलक्विवन्ते मालीयति इति—मालीः, माल्यौ, ङौ—माल्यि।

'सहज'-इति किम्? पश्चाद्योगे तु न स्यात्; विश्वस्यनीः—विश्वनीः, विश्वनियौ, विश्वनियः; आमि ङौ च विश्वनियाम्। 'अनेक'—इति किम्? नीः, नियौ, नियः। 'धात्वक्षरसत्सङ्गास्पृष्टयो'-इति किम्? कृष्णप्रीः, कृष्णप्रियौ, कृष्णपटप्रूः, कृष्णपटप्रुवौ। 'केवल' इति किम्? इह तु स्यादेव—उन्नीः, उन्नयौ, उन्नयः ॥५१॥

५२। सुधी-भुवोरियुवावेव।

सुष्ठु ध्यायतीति क्विपि निपातनात्—सुधीः सुधियौ, सुधियः। कृष्णभूः, कृष्णभुवौ, कृष्णभुवः ॥५२॥

५३। वर्षा-पुन-र्द्दृन्-कर-कार-काराभ्यो भुवो व एव।

'कर एव कारः, सोऽपि गृह्यते' इति विस्तरादुभयोरुपादानम्। वर्षाभूः, वर्षाभ्वौ, वर्षाभ्वः। दृन्भूः, दृन्भ्वौ, एवं 'खलपू'-प्रभृतयः।

कृष्णं सुखीयति—कृष्णसुखीः, कृष्णसुख्यौ, कृष्णसुख्यः। अनन्तीयति—अनन्तीः, अनन्त्यौ, अनन्त्यः। 'स्यत्याभ्याम्' वि० प्र० ४७) इति त्रिविक्रमग्रहणात् ङसिङसोरुस्—कृष्णसुख्युः, अनन्त्युः। नरामादेशस्य तरामस्थानिवत्त्वात्—लून्युः। 'कृष्णसुख्युः' इत्याद्येके ॥५३॥

अथ ऋरामान्ताः, तत्र 'पितृ' शब्दः। 'ऋराम-सखिभ्याम्' (वि० प्र० ४२) इत्यादि-पिता।

५४। ऋरामस्य गोविन्दः पाण्डवेषु ङौ च

पितरौ, पितरः, पितरम्, पितरौ, पितॄन्, पित्रा, पितृभ्याम्, पितृभिः, पित्रे, पितृभ्याम्, पितृभ्यः ॥५४

५५। ऋरामतो ङसि-ङसोरस्य उच्।

पितुः, पितृभ्याम्, पितृभ्यः, पितुः, पित्रोः, पितॄणाम्, पितरि, पित्रोः, पितृषु ॥५५॥

५६। बुद्धे गोविन्दः।

५७। राधा-विष्णुजनाभ्यामीपश्च त्रिविक्रमात् सोर्हरः।

हे पितः! एवं 'जामातृ' प्रभृतयः। 'नृ' शब्दः—ना, नरौ, नरः, नरम्, नरौ, नॄन्, न्रा, नृभ्याम्, नृभिः 'नृशब्दस्य तु वा' (वि० प्र० २२)—नृणाम्, नॄणाम् ॥५६-५७॥

'कर्त्तृ'शब्दस्य भेदः—कर्त्ता,—

५८। *स्वसृ-तृल्-तृन्-प्रत्ययान्तानां वृष्णीन्द्रः सुवर्ज्जं पाण्डवेषु।

कर्त्तारौ, कर्त्तारः, कर्त्तारम्, कर्त्तारौ, यदुपु पितृवत्, हे कर्त्तः! लेष्टृ—लेष्टा, लेष्टारौ, लेष्टारः लेष्टारम्, लेष्टारौ। हरिमित्रादिरेवायं, हरिवेण्वादिस्त्वपपाठः।

लेष्टृ-त्वष्टृ-तृशब्दान्तास्तृल्-तृनन्ता बुधैर्मताः।
पितृ-मातृ-भ्रातृ-यातृ-जामातृ-दुहितॄ विना ॥५८*

५९। क्रोष्टु-शब्दस्य पाण्डवेषु तृल्-प्रत्ययान्तस्यैव रूपं, बुद्धं विना, टादिसर्व्वेश्वरे तु विकल्पः।

क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः, क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ,

---

* "स्वसा नप्ता च नेष्टा च कर्त्ता तथैव च। होता पोता प्रशास्ता च ह्यष्टौ स्वस्रादयः स्मृताः॥" (सारस्वत-व्याकरणम्)

* "पिता माता ननान्दा ना सव्येष्ठ भ्रातृ यातर। जामाता दुहिता देवा न तृनन्ता इमे दश॥" (मुग्धबोध-व्याकरणम्)

क्रोष्टून्, क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना, क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टुभिः, क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे इत्यादि। कृतेऽप्यकृते यः स्यात्, स 'नित्यः'; नित्यस्य बलवत्त्वात् पूर्व्वन्त्वामि नुड्व (वि० प्र० २०) —क्रोष्टूनाम्, 'क्रोष्टॄणाम्' इत्येके; हे क्रोष्टो! लक्ष्म्यान्तु—क्रोष्ट्री ॥५९॥

ऐरामान्तः[१] 'कृष्णरै'शब्द—

६०। राय आ सभोः।

कृष्णराः, कृष्णरायौ, कृष्णरायः, कृष्णरायम् इत्यादि। एवं 'रै' शब्दश्च। नेह—तद्धिते 'रैत्वम्' क्यनि—रैयति, पाणिनीयेऽपि (७।२।८५) 'रायो हलि' इत्यत्र विष्णुभक्त्यनुवृत्तेः ॥६०॥

ओरामान्तो 'गो' शब्दो बलीवर्द्दादिषु पुरुषोत्तमलिङ्गः—

६१। ओ औ पाण्डवेषु।

गौः, गावौ, गावः ॥६१॥

६२। ओ आ अमशसोर्न च सो नः।

अन्यथा 'वातप्रमीन्' इतिवत् 'गा' इत्यत्र सो न स्यात्[२]। गाम्, गावौ, गाः, गवा, गोभ्याम्, गोभिः, गवे, गोभ्याम्, गोभ्यः, 'ए-ओभ्यां ङसि ङसां' (वि० प्र० ३६) इत्यादिना अरामहरः—गोः, गोभ्याम् गोभ्यः, गोः, गवोः, गवाम् इत्यादि। 'सर्व्वविधिभ्यो हरो, हरात् सर्व्वेश्वरादेशो बलवान्', 'अन्तरङ्ग' इत्यादि च विधानसामर्थ्यात् न सोऽहरः+हे गौः!

औरामान्तो 'ग्लौ' शब्दः—ग्लौः, ग्लावौ, ग्लावः इत्यादि ॥६२॥

इति सर्व्वेश्वरान्ताः पुरुषोत्तमलिङ्गाः

अथ सर्व्वेश्वरान्ताः लक्ष्मीलिङ्गाः

६३। अत्रावन्तलक्ष्मी राधा-संज्ञा।

'श्रद्धा' संज्ञा च। तत्र 'राधा' शब्दः, 'राधाविष्णुजनाभ्याम्'(वि०प्र० ५७)इति—राधा॥६३

६४। राधा ब्रह्मभ्यामौ ई।

'अद्वयमिद्वये ए' (स० प्र० ४८) राधे, राधाः ॥६४

६५। राधाया ए टौसोर्बुद्धे च।

ए अय् (स० प्र० ६३)—राधया, राधाभ्याम्, राधाभिः ॥६५॥

६६। राधातो याप् वृष्णिषु।

ए द्वये ऐ (स० प्र० ५५)—राधायै, राधाभ्याम्, राधाभ्यः, राधायाः, राधाभ्याम्, राधाभ्यः, राधायाः राधयोः, राधानाम्, 'ङेराम्' (वि० प्र० ५१) लाक्षणिक-प्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्' इति न नुट्—राधायाम्, राधयोः, राधासु। सम्बोधने-'प्रकृत्याश्रितं प्रकृतावपि पूर्व्वपूर्व्वमन्तरङ्गं प्रकृतेर्वहिराश्रितं वहिरङ्गम्, स्वल्पाश्रितमन्तरङ्गं, वह्वाश्रितं वहिरङ्गम्, अन्तरङ्गवहिरङ्गयोरन्तरङ्गो विधिर्बलवान्' * इति न्यायेन प्रथममेत्वे कृते

१। 'ऐरामान्तः' इत्यस्मात् परं 'वाच्यलिङ्गः' इत्यधिकः पाठः (क) २। 'इत्यत्र सो नो न स्यात्' (क)।

* वहिरङ्गविधिभ्यः स्यादन्तरङ्गविधिर्बली। प्रत्ययाश्रितकार्य्यन्तु वहिरङ्गमुदाहृतम्॥
प्रकृत्याश्रितकार्य्यं स्यादन्तरङ्गमिति ध्रुवम्। प्रकृतेः पूर्व्वपूर्व्वं स्यादन्तरङ्गतरन्तथा॥

'ए ओ वामनेभ्यो बुद्धस्यादर्शनम्' (वि० प्र० २५) इति हे राधे !

एवं 'रमा' 'रामा' 'श्रद्धा' 'माला' आदयः; अम्बादयश्च। 'लक्ष्मी' (वि० प्र० ६३) ग्रहणान्नेह 'राधा' संज्ञा, समासे वामनो वक्ष्यन्ते (समा० प्र० ५६)—प्रियराधाय कृष्णाय ॥६६॥

६७। अम्बादीनां गोप्याश्च वामनो बुद्धे।*

हे अम्ब! हे अक्क! हे अत्त! हे अल्ल! हे अप्प! हे अब्ब! एत एवाम्बादयः। नेह—हे अम्बाड़े! हे अम्बाले! हे अम्बिके इत्यादि ॥६७॥

अथ जरा—

६८। जराया जरस् वा सर्व्वेश्वरे।

जरा, जरसौ जरे, 'जरसी' इति केचित्, जरसः जरा, जरसम् जराम् इत्यादि। एवमरामान्त 'निर्जर' शब्दस्यापि जरेतिभागस्य विकल्पेनादेशो ज्ञेयः; 'वर्णेन विधौ तदन्तस्य कार्य्यं स्यान्नाम्ना तु क्वचित्' इति, 'निर्द्दिश्यमानानामादेशिनामादेशाः' इति, 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' इति च न्यायेभ्यः—निर्जरसौ निर्जरौ, निर्जरसः निर्जराः इत्यादि; निर्जरेण निर्जरसा, 'निर्जरसिन' इत्येके; निर्जरैः निर्जरसैः, निर्जरात् निर्जरसः, 'निर्जरसात्' इति केचित्।

'विश्वपा' पुरुषोत्तम-'विश्वपा शब्दवत् ॥६८॥

६९। अत्र निशानासिकयोर्निश्-नसावादेशौ यदुषु वा वाच्यौ, प्रयोगाश्च पक्षे विष्णुजनान्तवज्ज्ञेयाः।*

यथा निशः निशाः, निज्भ्याम् इत्यादि।

इरामान्त 'भक्ति' शब्दः। तस्य पाण्डवेषु 'हरि' शब्दवत्, शसि—भक्तीः, 'पुंसि' (वि० प्र० १०) इति विशेषणान्नरामो न स्यात्। 'न तु लक्ष्म्याम्' (वि० प्र० ३५) इति न नादेशः—भक्त्या, भक्तिभ्याम् भक्तिभिः ॥६९॥

७०। हरित आप् वा वृष्णिषु लक्ष्म्यां नित्यं गोप्याः।

वृष्णिनिमित्तापो न याप्—भक्त्यै भक्तये, भक्तिभ्याम्, भक्तिभ्यः, भक्त्याः भक्तेः, भक्तिभ्याम् भक्तिभ्यः, भक्त्याः भक्तेः, भक्त्योः, भक्तीनाम्। आवन्तत्वेऽपि 'नीराधाभ्यां ङेराम्' (वि० प्र० ५१)—भक्त्याम् भक्तौ, भक्त्योः, भक्तिषु, हे भक्ते! एवं 'बुद्धि मति भूति कृति१ धृति रुचि' प्रभृतयः।

अथ 'धेनु' शब्दः—धेनुः, धेनू, धेनवः, धेनुम्, धेनू, धेनूः इत्यादि। वृष्णिषु—धेन्वै धेनवे, धेन्वाः धेनोः, धेन्वाम् धेनौ। अशन्यादीनां लक्ष्मीत्व पक्षेऽपि एवमेव ज्ञेयम्। अत्र हरेः स्वभावलक्ष्मीत्वे सत्येवेति वाच्यम्, तेन नेह—प्रियहरये, प्रियविष्णवे श्रियैः। एवं 'प्रियत्रिः', 'मतिवदयम्' इति तु तस्यां भ्रमः। शसि—प्रियहरीः। नादेशस्तु (वि० प्र० ३५) न—प्रियहर्य्या। 'पटु प्रभृतीनान्तु विकल्पः' इति केचित्—पटवे पट्वै ॥७०॥

'त्रि' शब्दस्य लक्ष्म्याम्—

७१। लक्ष्मीस्थयोस्त्रि-चतुरोस्तिसृ-चतसृ विष्णुभक्तौ।

७२। तिसृ-चतस्रो रः सर्व्वेश्वरे।

गोविन्द-त्रिविक्रमोरामाणामपवादः। पत्वे केवल-सरामो विरिञ्चिर्गृहीतः। तिस्रः, तिस्रः, तिसृभिः, तिसृभ्यः, तिसृभ्यः; आमि तु 'न तिसृचतस्राः' (वि० प्र० २२) इति ज्ञापकात् नुड़ेव—तिसृणाम्, तिसृषु ॥७१-७२॥

ईरामान्तो 'गोपी'-शब्दः; ईविति लक्ष्मीविहितप्रत्ययः—

७३। ई-ऊ-लक्ष्मीर्गोपीसंज्ञा।

'नदी' संज्ञा च। गोपी, गोप्यौ, गोप्यः, गोपीम्, गोप्यौ, गोपीः, गोप्या, गोपीभ्याम्, गोपीभिः, गोप्यै

* चिह्नितसूत्रद्वयं ख ग घ पाण्डुलिपिषु वृत्तिरूपेण पठ्यते। १। -द्रुति- (क)।

गोपीभ्याम्, गोपीभ्यः, गोप्याः गोपीभ्याम्, गोपीभ्यः गोप्याः, गोप्योः, गोपीनाम्, गोप्याम्, गोप्योः, गोपीषु, हे गोपि ! अत्र वामन-विधान-सामर्थ्यान्न गोविन्दः। एवं 'नदी मही' प्रभृतयः ; सखी च— सखी, सख्यौ। 'अत्र नाम्नो ग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' इति परिभाषा नेष्यते ; ङौ—सख्याम्। एव 'सुपथी' इत्यत्र नात्वम्। 'त्रिविक्रमात्' (वि० प्र० ५७) इति विशेषणान्नेह सोर्हरः—अतिगोपिः। पुंसि वृष्णिषु अतिगोपये इत्यादि ; लक्ष्म्याम्— अतिगोप्यै अतिगोपये इत्यादि।

अवी-तन्त्री-तरी-लक्ष्मी-ह्री-धी-श्रीणामुणादिना[१]। शब्दानान्तु भवत्येषां सुलोपो न कदाचन ॥*

लक्ष्मीः, लक्ष्म्यौ, लक्ष्म्यः इत्यादि गोपीवत्। तन्त्री वीणायामिति तु तन्त्रयतेरणन्तत्वादीपि सिद्धा गौरादित्वात् 'स्त्री' शब्द ईबन्तः, ततः सोर्हरः—स्त्री ॥७३॥

७४। स्त्री-भ्रुवोरियुवौ सर्व्वेश्वरे, स्त्रिया अम्-शसोर्व्वा।

स्त्रियौ, स्त्रियः, स्त्रियम् स्त्रीम्, स्त्रियौ, स्त्रियः स्त्रीः, स्त्रिया, स्त्रीभ्याम्, स्त्रीभिः, 'नित्यं गोप्याः' (वि० प्र० ७०)—स्त्रियै, स्त्रीभ्याम्, स्त्रीभ्यः, स्त्रियाः स्त्रीभ्याम्, स्त्रीभ्यः, स्त्रियाः, स्त्रियोः, 'विरिञ्चितो विष्णुर्बलवान्'—स्त्रीणाम्, स्त्रियाम्, स्त्रियोः, स्त्रीषु हे स्त्रि ! गौणत्वे पुंसि तु 'अतिस्त्रिः'। 'नाम्ना तु क्वचित्' इति तदन्तविधिः स्यात् ; तत्र 'क्वचिद्' (वि० प्र० ६७) ग्रहणात् गोविन्दं नानुङौ च वर्ज्जं स्त्रिया इयादेश इति विस्तरः ; मतान्तरन्तु न भाष्यादिमतमिति च ; अतिस्त्रियौ, अतिस्त्रियः, अतिस्त्रियम् अतिस्त्रिम्, अतिस्त्रियौ, अतिस्त्रियः अतिस्त्रीन्, अतिस्त्रिणा, अतिस्त्रियै, अतिस्त्रेः अतिस्त्रियोः, अतिस्त्रीणाम्, अतिस्त्रौ। लक्ष्म्यां शस्-टा परत्वे—अतिस्त्रियः, अतिस्त्रीः, अतिस्त्रिया। वृष्णिषु पक्षे—अतिस्त्रियै अतिस्त्रये, अतिस्त्रियाः, अतिस्त्रियाम् ॥७४॥

'श्री' शब्दः—श्रीः, 'धातोरीदूतो' (वि० प्र० ४६) इति श्रियौ, श्रियः इत्यादि।

७५। नेयुवस्थानं गोपी, स्त्रियं विना, वृष्णिष्वामि च वा।

श्रियै श्रिये, श्रीभ्याम्, श्रीभ्यः, श्रियाः श्रियः श्रियाः श्रियः, श्रियोः, श्रीणाम् श्रियाम्, श्रियाम् श्रियि, श्रियोः, श्रीषु, हे श्रीः ! एव 'धी' प्रभृतयः ; 'भ्रू' प्रभृतयश्च—भ्रूः, भ्रुवौ, भ्रुवः। एवं सुभ्रूः, 'बुद्ध वामनः' इति केचित्—(भट्टिः ६।११)

"आः कष्टं वत ही चित्रं हूं मातर्दैवतानि धिक्।
हा पितः ! क्वासि हे 'सुभ्रु' ! बह्वेवं विललाप सः ॥
इति

पश्चात् 'प्र' शब्दयोगे प्रकृष्टा धीः—प्रधीः प्रधियौ, प्रधियः ङे—प्रधियै प्रधिये। अत्र 'या' देशस्तस्यां भ्रमः' तन्मते एव गतिकारकपूर्व्वत्वाभावात्। प्रादीनां क्रियायोगे एव हि 'गति' संज्ञा इति। 'केवलाव्ययपूर्व्वत्वेऽपि' इति त्वपाणिनीयम्। 'पुनर्भू' शब्दस्य पुनर्व्यूढ़ावाचकस्य नित्यस्त्रीत्वे—हे पुनर्भु ! क्वचिद्भिन्नपदत्वेऽपि णत्व वाच्यम्— पुनर्भूणाम्। 'बधू' प्रभृतीनां 'लक्ष्मी' शब्दवत्—बधूः बध्वौ, बध्वः ; हे बधु ! किञ्च अनियुवां पश्चात् पुंस्त्वेऽपि 'गोपी' संज्ञामाहुः ; ततो 'बहुप्रेयसी' शब्दः शसं विना पुंस्यपि 'गोपी' शब्दवत्। एवम् 'अतिलक्ष्मीः' लक्ष्मी शब्दवत्। अवयवस्त्रीविषयत्वात् सिद्धम्' इति भाष्यम्। 'ईप्रत्ययान्त वातप्रमीवत्' इति तु प्रक्रियाकारः। 'बहुप्रेयसीः' इति गौणत्वान्न सोर्हरः, वृष्णिषु 'गोपी' संज्ञत्वञ्च न इति विस्तरः। इदमपाणिनीयम्।

१। श्रीणामुणादितः (क ग घ)।

* "अवी-लक्ष्मी-तरी-तन्त्री-धी-ह्री-श्रीणामुदाहृतः। सप्तानामेव शब्दानां सेर्लोपो न कदाचन ॥" (सारस्वत-व्याकरणम्)

तथा गोपीमिच्छतीति क्यजन्तात् क्विपि—गोपी कृष्णः। सो 'गोपी'वत्, शस्पर्य्यन्तं 'धातु'वत्; पुनर्गोपीवत्। वामनत्वे तु 'गोपी'संज्ञत्वं नेच्छन्ति। सखीमतिक्रान्तस्य 'अतिसखेः' इति भाष्यम्। 'अनियुवाम्' (वि० प्र० ७५) इति किम्? अतिश्रिये गोपीसङ्घाय। कश्चित्स्वत्र 'आप्' इच्छति। ई-ऊ रामयोरस्वाभाविकलक्ष्मीत्वे 'गोपी'संज्ञत्वं न—विश्वन्ये श्रियै। 'मातृ'शब्दः पितृशब्दवत् माता मातरौ मातरः, शसि तु मातॄः। 'स्वसृ'शब्दः* कर्त्तृशब्दवत्—स्वसा, स्वसारौ, स्वसारः, शसि तु स्वसॄः। 'रैशब्दः स्त्रियामपीत्येके' इति क्षीरस्वामी, तेन पूर्व्ववत्। 'गो' शब्दः पूर्व्ववत्; 'द्यो' शब्दः 'गो'वत् 'नौ'शब्द 'ग्लौ'वत् ॥७५॥

इति सर्व्वेश्वरान्ता लक्ष्मीलिङ्गाः।

अथ सर्व्वेश्वरान्ता ब्रह्मलिङ्गाः

तत्र अरामान्तो 'गोकुल' शब्दः—

७६। ब्रह्मकृष्णात् सोरम्।

'दशावतारादमृशसोररामहरः' (वि०प्र० ६)—गोकुलम्; 'रावाब्रह्मभ्यामो ई' (वि० प्र० ६४)—गोकुले ॥७६॥

७७। ब्रह्मतो जस् शसोः शिः।

श् इत्। एकवर्णत्वादन्ते प्राप्ते 'शित् सर्व्वस्य' इति शिदादेशः सर्व्वस्य भवति ॥७७॥

७८। सर्व्वेश्वर-वैष्णवान्तयोर्नुम् शौ।

उमावितौ ॥७८॥

७९। अन्त्यसर्व्वेश्वरात् परं मितः स्थानम्

८०। अन्त्यात् पूर्व्ववर्णं उद्धवः-संज्ञ।

'उपधा' इति प्राञ्चः[1] ॥८०॥

८१। अब्रह्मपाण्डवाः शिश्च कृष्णस्थान-संज्ञाः

'घुट्'संज्ञा इत्येके, 'सर्व्वनाम' संज्ञा इत्यन्ये ॥८१

८२। नान्त-धातुवर्ज्जितसान्तसत्सङ्ग-महदपामुद्धवस्य त्रिविक्रमः कृष्णस्थाने, बुद्धं विना।

नान्तस्य धातुवर्ज्जितसान्तसत्सङ्गस्य महतः अपश्चेति विच्छेदः। गोकुलानि, एवं द्वितीयाम्; तृतीयादौ पुरुषोत्तमवत्। बुद्धस्थानीयत्वादमपि 'बुद्ध'संज्ञः—हे गोकुल! एवं 'कुल फल मूल' आदयः ॥८२॥

८३। हृदयस्य हृद् यदुषु वा।

'शीर्षस्य शीर्षन् वा' इत्येके; प्रयोगाश्च पक्षे विष्णुजनान्तवज्ज्ञेयाः; यथा—हृन्दि हृदयानि, हृदा हृदयेन। उभयत्रापि शीर्षाणि। 'जराया जरस् वा सर्व्वेश्वरे (वि० प्र० ७८)—निर्जरम् निर्जरसम्; निर्जरे निर्जरसी। नुमः पूर्व्वं जरसादेशं मन्यन्ते ॥८३

८४। अविष्णुपदान्तस्य नस्य मस्य च विष्णुचक्रं वैष्णवे।

निर्जराणि निर्जरांसि, पुनस्तद्वत्। बुद्धे-हे निर्जर!

---

* स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा। याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः।

1। 'उपा इत्येके' इत्यधिक पाठः (क)।

'हे निर्जरसम्' इत्यपि केचित् ॥८४॥

इरामान्तो 'दधि' शब्दः—

८५ । ब्रह्मतः स्वमोर्महाहरः ।

दधि । कथं 'गोकुलम्' ? तत्राकरणात् ॥८५॥

८६ । ब्रह्मेशान्तान्नुक् सर्व्वेश्वरे, न त्वामि ।

उकावितौ । दधिनी, दधीनि, पुनस्तद्वत् ॥८६॥

८७ । दधि-अस्थि-शक्थि-अक्षि-शब्दानामिरामस्य अन् टादि-सर्व्वेश्वरे ।

८८ । अकृष्णस्थान-सर्व्वेश्वरो भगवत्-संज्ञः तद्धिते यश्च ।

अत्र पाणिनीयानां(१।४।१८) प्रकृते 'भ'संज्ञा ॥८८॥

८९ । व-म-सत्सङ्गहीनस्यानोऽरामहरो भगवति, न तु ये, ईङ्योस्तु वा ।

दध्ना, दधिभ्याम्, दधिभिः ; दध्ने, दधिभ्याम्, दधिभ्यः इत्यादि । ङौ—दध्नि, दधनि ॥८९॥

९० । ब्रह्मणो गोविन्दो वा बुद्धे ।

हे दधे ! हे दधि ! एवम् 'अस्थि, शक्थि, अक्षि' अतिक्रान्त दधि येन यया वा—अतिदध्ना गोपालेन गोपालया वा । स्वभावतो ब्रह्मैव 'दधि'शब्दो गृह्यते ततो दधातीति दधिः, तेन—दधिना । 'इरामस्य' इति (वि० प्र० ८७ किम् ? पद्माक्षेण ।

वारि, वारिणी, वारीणि, वारि, वारिणी, वारीणि वारिणा, वारिभ्याम्, वारिभिः, वारिणे इत्यादि । वारीणाम् । मधु, मधुनी, मधूनि ॥९०॥

९१ । ब्रह्मान्त-त्रिविक्रमस्य वामनः ।

विश्वनि, विश्वनिनी, विश्वनीनि । 'गोकुलाभ्याम्' इत्यादौ तु न वामनः, त्रिविक्रमविधेरुभयाश्रितत्वेन वहिरङ्गत्वात्, 'क्वचिदन्तरङ्गकार्य्ये क्रियमाणे तदनिमित्तं वहिरङ्गमसिद्धं स्यात्' इति वक्ष्यमाणन्यायेन, तत्राकरणेन वा ॥९१॥

९२ । समानार्थतया पुरुषोत्तमतार्हमीशान्तं ब्रह्मपुरुषोत्तमवद्वा टादि-सर्व्वेश्वरे ।

विश्वन्या, विश्वनिना, आमि—विश्वन्याम्, विश्वनीनाम् । अत्र पुरुषोत्तमे ब्रह्मणि च विश्वप्रेरकत्वं समानम् । असमानार्थे तु पुंसि वृक्षे यथा—'पीलवे' ब्रह्मणि फले च तथा न, किन्तु केवलं 'पीलुने' । पूर्व्वत्र तद्वृक्षत्वम्, उत्तरत्र तज्जातत्वमित्यर्थभेदः* ॥९२॥

'कृष्णरै'शब्दस्य वामन इराम एव, यतः—

९३ । ए-ऐ-स्थाने इरामः, ओ-औ स्थाने उरामो वामनः स्यात् ।

कृष्णरि, कृष्णरिणी कृष्णरीणि, कृष्णराया कृष्णरिणा, 'एकदेशविकृतमनन्यवत्'—कृष्णराभ्याम् कृष्णरायाम् ; 'स भो' (वि०प्र० ६०) रन्यत्र नात्वम् +कृष्णरीणाम् । 'टामोः—कृष्णराणा, कृष्णराणाम्' इत्येव जुमरमतम् । 'आमि तु कृष्णराणाम्' इत्येवोज्ज्वलदत्तमतम् । येषां विष्णुजनादिविष्णुभक्तिमात्रेऽप्यात्वम् तेषामपि सन्निपातलक्षणत्वेन नात्वम् इति प्रक्रियाकारेण तन्न गृहीतम् । सन्निपातलक्षणं वक्ष्यते (आ० प्र० १८८) । 'सुद्यो' शब्दस्य—सुद्यु, सुद्युनी, सुद्यूनि, टादौ—सुद्यवा सुद्युना, हे सुद्यो ! हे सुद्यु !

'कर्त्तृ'—पृथग्विधानेन ब्रह्मकार्य्यस्य बलवत्त्वान्न वृष्णीन्द्रः—कर्त्तृणी, कर्त्तॄणि, टादौ-कर्त्रा कर्त्तृणा हे कर्त्तः ! हे कर्त्तृ ! एवं प्रियक्रोष्टुनी, प्रियक्रोष्टूनि अत्रापि 'तृभावः' इति तस्यां भ्रमः । 'तृभावात् पूर्व्वं विप्रतिषेधेन नुम् नुटौ भवतः' इति काशिका ; 'परत्वान्नुमा क्रोष्टुभावो बाध्यते' इति पदचन्द्रिका 'आगमविधिर्बलवान्' इति कातन्त्रो विस्तरश्च ।

प्रियास्तिस्रो यस्मिन् गोकुले तत् 'प्रियत्रि' । महाहरत्वेऽपि तिसृभावः काशिकादौ दृश्यते—प्रियतिसृ । यद्येवं तर्हि विष्णुभक्तावित्यस्य प्रत्युदाहरणन्तु त्रित्वमिति तद्धितादावेव ज्ञेयम् ।

---

* "पीलुर्वृक्षः फले पीलु पीलुने न तु पीलवे । वृक्षे निमित्तं पीलुत्वं तज्जत्वं तत्फले पुनः ॥" (सारस्वत-व्याकरणम्)

प्रियतिसृणी प्रियतिसृ̥णि, प्रियतिस्रा प्रियतिसृणा, ङसिङसोः—प्रियतिस्रः, र-विधानस्य नित्यत्वात्। एवं प्रियचतसृ। विस्तरकारस्तु विकल्पयति ; तेन प्रियत्रि, प्रियचतुः इत्यपि। 'सानु' आदि शब्दानां स्वत एव द्विलिङ्गता—सानुने, सानवे, 'स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियौ' इत्यमरः(२।३।५)। 'मधु' शब्दानन्तरम् 'एवम् अम्बुगान्वादयः' इति प्रक्रिया (पा ७।१।७५) तु चिन्त्या ॥९३॥

इति सर्व्वेश्वरान्ता ब्रह्मलिङ्गाः।

अथ विष्णुजनान्ताः पुरुषोत्तमलिङ्गाः

तत्र चरामान्ताः केचन शब्दा वाच्यलिङ्गाः। तत्र 'प्रत्यच्' प्रतिपूर्व्वादञ्च् धातोः क्विप् प्रत्ययः ; क्विप्-लोपः, नलोपश्च, यत्वम्, ततः 'प्रत्यच्'शब्दात् स्वादयः।

९४। अचश्चतुर्भुजानुबन्धानाञ्च नुम् कृष्णस्थाने

'राधा विष्णुजनाभ्याम्' (वि० प्र० ५७) इति सोऽहरः ॥९४॥

९५। तवर्गस्य चवर्गश्चवर्गयोगे।

९६। सत्सङ्गान्तस्य हरो विष्णुपदान्ते।

९७। चवर्गस्य कवर्गो विष्णुपदान्ते, वैष्णवे त्वसवर्गे।

प्रत्यङ् ॥९५-९७॥

९८। विष्णुजनस्य द्वित्वं वा विरामे।

'विरामः'—परवर्णादर्शनम्। प्रत्यङ्ङ् ; सवर्गे तु—प्रत्यञ्चौ, प्रत्यञ्चः, प्रत्यञ्चम्, प्रत्यञ्चौ। कथं 'तच्छौरेः' 'भगवाञ्च्छूरः' ? तत्राकरणात् ॥९८॥

९९। अचोऽरामहरो भगवति, पूर्व्वस्य त्रिविक्रमश्च।

'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इति न्यायेन यरामस्य इरामः, ततस्त्रिविक्रमः—प्रतीचः, प्रतीचा ॥९९॥

१००। पूर्व्वस्य विष्णुपदवत्त्वं स्वादि-तद्धितयोरय-सर्व्वेश्वराद्योः।

प्रत्यग्भ्याम् इत्यादि। 'चवर्गस्य' (वि० प्र० ९७) इत्यादौ 'वैष्णव' ग्रहणं केवलधात्वर्थम्, अन्येषामपि सूत्राणां तत्पर्य्यन्तव्याप्तेर्ज्ञापकम्। एवं 'प्राच्'। तथा 'पित्रच्' इत्यस्य शसि—पितृ̥चः। 'अनन्तस्यैव त्रिविक्रमः' इति तु तस्यां भ्रमः, तदधिकारनिवृत्तेः तिर्य्यच्—तिर्य्यङ् तिर्य्यञ्चौ तिर्य्यञ्चः, तिर्य्यञ्चम्, तिर्य्यञ्चौ ॥१००॥

१०१। तिर्य्यचस्तिरश्चिरुदच उदीचिर्भगवति

इराम इत्। तिरश्चः, तिरश्चा, तिर्य्यग्भ्याम्, तिर्य्यग्भिः। एवम् उदच्—उदङ्, उदञ्चम्, उदञ्चौ उदीचः, उदीचा, उदग्भ्याम् इत्यादि। क्रुञ्च्—क्रुङ् क्रुञ्चौ, क्रुञ्चः, क्रुञ्चम्, क्रुञ्चौ, क्रुञ्चः, क्रुञ्चा, क्रुङ्भ्याम् क्रुङ्षु। एवम् अञ्चु पूजार्थे ; प्रत्यञ्चः, प्राञ्चः ॥१०१

ओव्रश्चू छेदने धातुर्दन्त-मध्यः, ओ-उरामावितौ—

१०२। सस्य शश्चवर्गयोगे।

ततो व्रश्च् इति स्थिते—तस्य 'दैत्य' शब्दपूर्व्वस्य क्विप् प्रत्ययलोपे ररामस्य ऋरामः—दैत्यवृश्च् सोऽहरः ॥१०२॥

१०३। छ-शो-राज्-यज्-भ्राज्-परिव्राज्-सृज्-मृज्-भ्रस्ज्-व्रश्चां च षो विष्णुपदान्ते वैष्णवे च।

अथ नैमित्तिकापाये दन्त्यमध्य एव ।।१०३।।

१०४। स्कोः सत्सङ्गाद्योर्हरो विष्णुपदान्ते वैष्णवे च।

१०५। षस्य डो विष्णुपदान्ते हरिघोषे च

१०६। विष्णुदासस्य हरिकमलं वा विरामे

दैत्यवृट्, दैत्यवृड्, दैत्यवृश्चौ, दैत्यवृश्चः, दैत्यवृड्भ्याम्, दैत्यवृट्सु। जलमुच्, सत्सङ्गान्तहरेणैव सुलोपसिद्धौ 'राधाविष्णुजनाभ्याम्' (वि० प्र० ५७) इत्यत्र 'विष्णुजन' ग्रहणबलात् नात्र 'स्कोः'(वि० प्र० १०४) इति हरः—जलमुक् जलमुग्, जलमुचौ, जलमुचः, जलमुग्भ्याम् ।।१०६।।

१०७। पाणिनीयप्रत्याहारवाचिनामच्-शब्दादीनामुञ्-नञनुकरणस्य च न कवर्गाद्वित्वम्।

अच, अचौ, अचः, अज्भ्याम्, 'सस्य श' (वि० प्र० १०२)—अच् शु, छत्वे—अच्छु। उञ्, उञौ, उञः। यदुराज्—यदुराट्, यदुराड्, यदुराजौ, यदुराजः। भ्रस्ज्धातोः क्विपि भृज्ज्—सत्सङ्गान्तस्य हरो (वि० प्र० ६६) भृट् भृड्, भृज्जौ, भृज्जः ।।१०७

१०८। स्रज्-दिश्-दृश्-ऋत्विज्-उष्णिह्-दधृष्-अनुदकपूर्व्वस्पृश्-तादृश् इत्यादिनां को विष्णुपदान्ते।

ऋतौ यजति—ऋत्विक्, ऋत्विजौ ।।१०८।।

युजः पुंसि—

१०९। युजोऽसमस्तस्य नुम् कृष्णस्थाने, न तु समाधौ।

अत्र 'सुटी'ति तस्यां भ्रमः। युङ्, युञ्जौ, युञ्जः युग्भ्याम्। समस्तस्य समाध्यर्थस्य च न नुम्—कृष्णयुक् कृष्णयुग्, कृष्णयुजौ, कृष्णयुजः, कृष्णयुग्भ्याम्। युक् युग्, युजौ ।।१०९।।

ऊर्ज्ज् पुंसि—

११०। रात् सस्यैव सत्सङ्गान्तहरविधिः।

नियमोऽयम्—'बहुत्र प्राप्तौ सङ्कोचनं* नियमः' ऊर्क्, ऊर्ग्, ऊर्ज्जौ, ऊर्ज्जः। विश्वसृज्—विश्वसृट् विश्वसृड्, विश्वसृजौ, विश्वसृजः। 'षत्वं न इति' विश्वसृक्। विश्वसृट्सु।

कंसजित्, कंसजितौ, कंसजितः, कंसजिद्भ्याम् कंसजित्सु।

उरामानुबन्धो 'महतु'। तस्य पुंसि 'नान्तधातुवर्ज्जित' (वि० प्र० ८२) इति त्रिविक्रमः 'अचश्चतुर्भुज'(वि० प्र० ९४) इति नुम्, सोर्हरः, सत्सङ्गान्तस्य हरः; अत्राकरणात्, 'क्वचिदन्तरङ्गे' इत्यादि वक्ष्यमाणन्यायात्, 'ब्रह्मेशान्तान्नुक्' (वि० प्र० ८६) इत्यत्र ज्ञापकेन सर्व्वेश्वरेण त्वागम-नराम हराभावस्य नाम्नि निश्चयात् नस्य हरो न स्यात्—महान्, महान्तौ, महान्तः, महान्तम्, महान्तौ, महतः, महता महद्भ्याम्, हे महन्! ।।११०।।

'भगवतु'—

१११। अत्वसन्तोद्धवस्य त्रिविक्रमो बुद्धवर्ज्जितसौ, धातुं विना।

भगवान्, भगवन्तौ, भगवन्त, भगवन्तम्, भगवन्तौ भगवतः, भगवता, भगवद्भ्याम् ।।१११।।

११२। भगवतु-अघवतु-भवतूनां भगोस्-अघोस्-भोस् इति निपाता वा बुद्धे।

'पूर्व्वपरयोः सहैवादेशो निपातः'। हे भगोः! हे भगवन्! हे अघोः! हे अघोवन्! हे भोः! हे भवन्! कथं 'भो वैष्णवाः'? अव्ययत्वात्। 'भगवत्' शब्दात् भगवानिवाचरति क्यङन्तात् क्विपि 'भगवत्'। तस्मात् स्वादौ प्रकृतवदेव रूपं स्यात्,

---

* "सङ्कोचनम्—स्थापनविशेषेण स्थानम्।"—'बालतोषणी' टीका।

नामावस्थायां चतुर्भुजानुबन्धत्वात्, भगवान्। 'ददतृ' 'जक्षतृ' इत्यादिशब्दानां तु कृदन्तप्रकरणे।१६ संख्यक सूत्रे) नुम् निषेधो वक्ष्यते—ददत्, ददतौ ददतः, ददद्भ्याम्। जक्षत्, जक्षतौ, जक्षतः जक्षद्भ्याम्। ऋरामानुबन्धो 'भवतृ' तत् पुंसि—भवन्, भवन्तौ, भवन्तः, भवद्भ्याम्, हे भवन्। मुरं मथ्नातीति—मुरमत् मुरमद्, मुरमथौ।

कृष्णं वेत्तीति कृष्णविद्, तत् पुंसि—कृष्णवित् कृष्णविद्, कृष्णविदौ।

सुपाच्छब्दस्य—सुपात् सुपाद्—

११३। पाच्छब्दस्य वामनो भगवति।

सुपदः। एवं 'पाद' शब्दस्य 'पद' आदेशेऽपि पदः इत्यादि। आमि नुटं बाधित्वा विरिञ्चिरेव, विरिञ्चितो विष्णुर्बलवान्, विष्णुतः सर्व्वविरिञ्चिः, इति न्यायेन—पदाम्।

'निशा-हृदय-मास-यूष-दोषां विष्णुजने तु विरिञ्चिर्नास्ति, भाष्यचान्द्रादिष्वधृतत्वात्' इति वर्द्धमानः। विरिञ्चिसद्भावे तु 'षस्य डः' इतिवत् शस्य जो मन्तव्यः। 'छशो राज्' इत्यादिकञ्च धातुपरमेव, ततो—निज्भ्याम्, निच्शु निच्छु॥११३

कृष्ण-पूर्व्वस्य बुध्धातोः 'कृष्णं बुध्यति' इति 'कृष्णबुध्' तत् पुंसि।

११४। जवर्ज्जं[1] हरिगदादेरेकसर्व्वेश्वरस्य धातोर्हरिघोषान्तस्यादौ हरिघोषत्वं विष्णुपदान्ते, सध्वोश्च।

कृष्णभुत् कृष्णभुद्, कृष्णबुधौ, कृष्णबुधः। एवं तत्त्वभुदादयः। 'जवर्ज्जं' इति किम्? जभ् जप् जभौ, जभः, इत्यादि 'एकसर्व्वेश्वरस्य' इति किम्? दामन् क्विवन्तस्य धातोर्दामरुधः—दामरुत्।

'धातु' पदेन धात्ववयवोऽपि गृह्यते; तेन गोविन्देन भातीति क-प्रत्ययान्तस्य गोविन्दभः, तस्य णि क्विवन्तस्य गोविन्दभ्—गोविन्धप्, गोविन्दभौ, गोविन्दभः। एवं पुण्ड्रभ् पुण्ढ्रप्। अत्र प्रक्रिया कलाप काशिका भाषा वृत्तयो विचार्य्याः; किन्तु प्रक्रियायाम् 'अधोक्' 'गोविन्धप्' च प्रश्नपदं भवेत्, कालापे 'दामारुत्' 'जप्' च। काशिकादौ न संशयः ॥११४॥

'राजन्', 'नान्त' (वि० प्र० ८२) इति त्रिविक्रमः, सोर्हरः—

११५। नामान्तस्य नस्य हरो विष्णुपदान्ते बुद्धं विना।

प्रथमतो नलोपाभावः, 'पथिन्-मथिन्' (वि० प्र० ११८) इत्यादौ वक्ष्यमाण नलोपवैयर्थ्यात्—राजा, राजानौ, राजानः, राजानम्, राजानौ 'व-म-सत्सङ्गहीनस्य' (वि० प्र० ८६) इति अरामहरः; 'तवर्गस्य चवर्गे' (वि० प्र० ९५) ज्ञोः सत्सङ्गे ज्ञः राज्ञः, राज्ञा। 'क्वचिदन्तरङ्गे कार्य्ये क्रियमाणे तदनिमित्तं वहिरङ्गमसिद्धं स्यात्' इति न्यायेन नस्य हरासिद्धेः 'कृष्णस्य' त्रिविक्रमो गोपाले' (वि० प्र० १३) इत्यादिकं न प्राप्नोतीत्यर्थः, किन्तु नवयोर्हरे 'कृष्ण' संज्ञा न वाच्या—राजभ्याम्, राजभिः, राज्ञे, राजभ्याम्, राजभ्यः, राज्ञः, राजभ्याम्, राजभ्यः, राज्ञः, राज्ञोः, राज्ञाम् 'ईङ्योस्तु वा' (वि० प्र० ८६) राज्ञि राजनि, राज्ञोः, राजसु, हे राजन्!

'यूष' शब्दस्य 'यदुषु वा' (वि० प्र० २८) इत्यादिना यूषन्नादेशे—'आदेशः स्थानिवत् क्वचित् नाम धातु प्रत्यय-विष्णुपदानामादेशस्य तज्जातिवद्भावः सर्व्वत्रैव, वर्णानां तद्वचक्तिवद्भावश्च' यत्र मस्यते, तत्रैव इत्यर्थः—तेन नामत्वे सत्यनोऽरामहरः (वि० प्र० ८६)—यूष्णः, यूष्णा। एवं 'यज्वन्, आत्मन्, सुधर्म्मन्' इत्यादयः। किन्तु 'व म सत्सङ्गहीनस्य' (वि० प्र० ८६) इति विशेषणादरामहरो नास्ति—यज्वनः, यज्वना। एव 'श्वन्, युवन्, मघवन्'। श्वा, श्वानौ, श्वानः॥११५॥

क्वचिद्विशेषः —

---

[1] जवर्ज्जं (क)।

११६। श्वन्-युवन्-मघवन् इत्येषां वस्य उर्भगवति।

ईव् वर्जित तद्धिते तु न, युवतीत्यादिवर्ज्जम् 'वस्य' इति सारामनिर्द्देशः। शुनः, शुना, श्वभ्याम् श्वभिः। शसि—यूनः, यूना, युवभ्याम्, युवभिः। एवं मघोनः, मघोना। 'सौ च मघवन् मघवा वा' इति तु कालापाः (शब्दप्रकरणम्—१६५)।

"वहति स्वेच्छया वायुरुद्गच्छति च भास्करः।
हविर्जक्षिति निःशङ्को मखेषु मघवानसौ॥"*

इति भट्टिः (१८।१९)

'मघवतु'शब्दोऽप्यस्ति, 'मघवद्वज्रलज्जानिदानं स एवमुक्त्वा मघवन्तम्' इत्यादि प्रयोगदर्शनात्; मघवान्, मघवन्तौ, मघवन्तः, मघवद्भ्याम्।

अथ दिवसवाची 'प्रतिदिवन्' शब्दः—प्रतिदिवा प्रतिदिवानौ प्रतिदिवानः, प्रतिदिवानम्, प्रतिदिवानौ ॥११६॥

११७। धातो र-व-प्रागिदुतोस्त्रिविक्रमो रवतो विष्णुजने, न कुर-छुर-नामधातूनां, न च तद्धित-ये।

नाम्नो जातो धातुः 'नामधातुः' (विभुः—आ० प्र० ५०९-५६३) इति वक्ष्यते। अत्र पाठाद्विष्णुजनो वर्णमात्रं गृह्यते, न केवलस्वादयः। कुरादिनिषेधान्नाम्नोऽन्यत्रापि ज्ञेयम्। ततः शसि—प्रतिदीव्नः, प्रतिदीव्ना। अरामहरस्य निमित्तत्वं मत्वैवात्र त्रिविक्रमविधानं, ततो नासिद्धत्वम्। प्रतिदिवभ्याम्, तदेतत् प्रक्रियाकौमुद्यादौ (पा ८।२।२) अन्ये तु 'प्रतिदिव्नो नस्य विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते' इति मन्यन्ते—प्रतिदिवाः, प्रतिदिवोभ्याम् ॥११७॥

अथ 'पथिन्'— ११८। पथिन्-मथिन्-ऋभुक्षिन्नित्येषां नस्य हरः सौ।

११९। पथ्यादीनामिरामस्यारामः कृष्णस्थाने, थात् पूर्व्वं नुक् च।

'अविष्णुपदान्तस्य' (वि० प्र० ८४) इति विष्णुचक्रस्य हरिवेणुः' (स० प्र० ११४) इति अत्र नागरलिपावस्य विष्णुपदान्ते यद्विष्णुचक्रं तन्नोचितम् पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः, पन्थानम्, पन्थानौ ॥११८-११९॥

१२०। पथ्यादीनां संसारहरो भगवति।

पथः, पथा। 'एव' कारेणैव सर्व्वत्र नियमात् 'नामान्तस्य नस्य हरः' वि० प्र० ११५) तेन पथिभ्याम् पथिभिः। एवं मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः, ऋभुक्षाः, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षाणः ॥१२०॥

अथ 'शार्ङ्गिन्':—

१२१। इन्-हन्-पूषन्-अर्य्यमन् इत्येषामुद्धवस्य त्रिविक्रमः सु-श्योरेव।

शार्ङ्गी, शार्ङ्गिनौ, शार्ङ्गिणः, शार्ङ्गिणम्, शार्ङ्गिणौ शार्ङ्गिणः, शार्ङ्गिभ्याम् हे शार्ङ्गिन्! एवं 'वनमालिन्, हलिन्, दण्डिन्'।

'हन्' इति 'हन्' धातुः, ततः कंसहन्—कंसहा, कंसहनौ, कंसहनः, कंसहनम्, कंसहनौ ॥१२१॥

'व-म-सत्सङ्गहीनस्य' (वि० प्र० ८९) इति अरामहरः —

१२२। हनो हस्य घो णिन्नयोः।

कंसघ्नः, कंसघ्ना, कंसहभ्याम्, ङौ—कंसहनि, कंसघ्नि, हे कंसहन्! एवं पूषा, पूषणौ, पूषणः; पूषणम्, पूषणौ, पूष्णः पूष्णि, पूषणि, 'पूषि च' इत्येके। अर्य्यमा, अर्य्यमणौ।

संख्याशब्दाः 'पञ्चन्' प्रभृतयो नित्यबहुवचनान्ताः, त्रिषु सरूपाः। 'षनान्त संख्यातः कतेश्च' (वि०प्र० ४१) इति पञ्च, पञ्च, पञ्चभिः पञ्चभ्यः ॥१२२॥

१२३। र-ष-नान्त-संख्याभ्यो नुडामि स्वार्थे

२२४। नान्तोद्धवस्य त्रिविक्रमो नामि।

पञ्चानाम्, पञ्चसु। एवं सप्तन्, अष्टन्, नवन्, दशन् ॥१२३-१२४॥

---

* 'हविर्जक्षिति निःशङ्को मखेषु मघवानसौ। प्रवाति स्वेच्छया वायुरुद्गच्छति च भास्करः।' इति तु भट्टिकाव्ये (१८।१९) पाठो दृश्यते।

१२५ । अष्टन् आ विष्णुभक्तिषु वा ।

१२६ । तस्मात् जस्-शसोरौश् स्वार्थे ।

श् इत् । 'शित् शर्व्वस्य' इति न्यायेन शिदादेशः सर्व्वादेशः । अष्टौ अष्ट, अष्टौ अष्ट, अष्टाभिः अष्टभिः, अष्टाभ्यः अष्टभ्यः, पक्षद्वयेऽपि अष्टानाम्, अष्टासु, अष्टसु । एवं परम पञ्च, परमाष्टौ इत्यादि । अस्वार्थे तु—प्रियपञ्चा, प्रियपञ्चानौ, प्रियपञ्चानः ; भगवति—प्रियपञ्चनः, इत्यादि आमि-प्रियपञ्चनाम् अष्टनः परार्थत्वेऽप्यात्वं वा, न त्वौश्—प्रियाष्टा, प्रियाष्टौ, प्रियाष्टाः ; भगवति—'विश्वपा'वदेव । प्रियाष्टः, आमि—प्रियाष्टाम् । पक्षे—प्रियाष्टा, प्रियाष्टानौ, प्रियाष्टानः, भगवति—प्रियाष्टनः, आमि—प्रियाष्टनाम् ॥१२५-१२६॥

'अर्व्वन्'-अर्व्वा—

१२७ । अनञ्-पूर्व्वस्यार्व्वणोऽर्व्वतृ सुं विना चतुर्भुजानुवन्धानां नुम् ॥१२७॥

१२८ । नवर्ज्ज[1] -तवर्गस्थस्य नस्य न णत्वम्

अर्व्वन्तौ, अर्व्वन्तः, अर्व्वन्तम् अर्व्वन्तौ, अर्व्वतः, अर्व्वता, अर्व्वद्भ्याम्, हे अर्व्वन् ! नञ्पूर्व्वस्य तु—अनर्व्वा, अनर्व्वाणो ।

कृष्णगुप्, तस्य पुंसि—कृष्णगुप्, कृष्णगुब्, कृष्णगुपौ ॥१२८॥

मान्तः 'प्रशाम्' तस्य पुंसि—

१२९ । धातोर्मो नो विष्णुपदान्ते म-वयोश्च ।

अत्र 'झलि च' इति तस्यां (पा ८।२।६४) भ्रमः 'संगंस्यते' इत्यादौ विधानबलान्नरामस्यैव स्थितिः स्यात् । प्रशान्, 'प्रशानो नस्य चादौ' (स० प्र० १०८) इति ज्ञापकान्नस्य हरो न स्यात् । प्रशामौ, प्रशामः, प्रशान्भ्याम् ॥१२९॥

'चतुर्' नित्यं बहुवचनान्तः तस्य पुंसि—

१३० । चतुरनडुहोराम् कृष्णस्थाने, बुद्धे त्वम् ।

म् इत् । चत्वारः, चतुरः । विष्णुसर्गे कृते पुनाररामः—चतुर्भिः, चतुर्भ्यः 'रषनान्त' (वि० प्र० १२३) इति नुट्—चतुर्णाम् ॥१३०॥

१३१ । ररामस्य न विष्णुसर्गः सुपि ।

चतुर्षु । 'प्रियचतुर्' प्रियचत्वाः, प्रियचत्वारौ, प्रियचत्वारः । अस्वार्थत्वादामि न नुट्—प्रियचतुराम् हे प्रियचत्वः ।

'हल्'शब्दस्य सुपि हल्षु । अभ्रतीति क्विपि 'अभ्र' शब्दस्य सौ सत्पङ्क्तान्तहरे—अप् अब् । 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः' इति तु तस्यां विकल्पितम् ।

'दैत्यवृश्चमाचष्टे' इति ण्यन्तात् क्विप् प्रत्ययः—दैत्यव्, दैत्यवौ ॥१३१॥

१३२ । यवयोर्विष्णुपदान्तयोर्हरो गोपाले ।

'नवयोर्हरे' (वि० प्र० ११५) इति—दैत्यभ्याम्, दैत्यभिः, दैत्यव्षु ॥१३२॥

१३३ । सर्व्वेश्वरे तु विकल्पः, हरे सति पुनर्न सन्धिश्च ।

दैत्यव् आयाति = दैत्य आयाति दैत्यवायाति ।

'प्रच्छ्' धातोः क्विवन्तः शरामान्तः कृष्णप्राश् —कृष्णप्राट् कृष्णप्राङ्, कृष्णप्राशौ, कृष्णप्राच्छौ' इत्येके । एवं वाञ्छेर्वान्श्, हरविधेर्नित्यत्वात्--वान्, वांशौ, वांशः 'वाञ्छौ' इत्येके । कृष्णस्पृश्-कृष्णस्पृक् कृष्णस्पृशौ 'उदक' पूर्व्वत्वे तु उदकस्पृट् ।

षरामान्तो दधृष्—दधृक्, दधृषौ, दधृषः । कंसद्विष्—'षस्य डः' (वि० प्र० १०५) इति कंसद्विट् कंसद्विड्, कंसद्विषौ ।

'षष्' नित्यं बहुवचनान्तः । 'षनान्त' (वि० प्र० ४१) इति षट्, षड्, षड्भिः, षड्भ्यः ॥१३३॥

'रषनान्त' (वि० प्र० १२३) इति नुट्, 'यस्य डः' (वि० प्र० १०५) —

[1] । नवर्ज्जं (क) ।

१३४। नित्यं हरिवेणुविधिः प्रत्ययहरिवेणौ

'मयटच्चेव' इति तस्यां भ्रमः ॥१३४॥

१३५। षात् परस्य टवर्गयुक्तस्य च तवर्गस्य टवर्गः, न तु विष्णुपदान्ताट्टवर्गादनाम-नवति-नगरीणाम्।

तेन नामष्टवर्गत्वम्—षण्णाम्, षट्सु। नवति-नगर्य्योष्ट-वर्गत्वम्—षण्णवतिः, षड्णवतिः, षण्णगर्य्यः षड्णगर्य्यः। नेह—षन्नरः, षड्नरः, षन्नावः, षड्नावः।

'दतौ परवर्णौ' (स० प्र० १०२) इत्यादीनि तु सन्धिमात्रसुबोधायः पृथगुक्तानि। 'न तु विष्णुपदान्तात्' इत्यादौ 'विष्णुपदान्त' ग्रहणफलं 'षट्टि:' (कृ० प्र० ४३८) इत्यादौ दर्शयिष्यते।

अस्वार्थत्वात्—प्रियषषः, प्रियषषाम् ॥१३५॥

'सजुष्'—

१३६। सजुष् आशिष् इत्यनयोरिसुसन्तधातोश्च रो विष्णुपदान्ते, तस्य विष्णुसर्गश्च सुपि।

'धातु' ग्रहणफलं समासकार्य्ये षत्वविधाने (समा० प्र० ३२८) 'सर्पिष्कास्यति' इत्यत्र वक्ष्यते ॥१३६॥

१३७। इरुरन्तधातोरुद्धवस्य त्रिविक्रमो विष्णुपदान्ते।

सजूः, सजुषौ, सजूर्भ्याम्, सजूःषु, शौरित्वं सजूष्षु।

सनन्तधातोः क्विप्—पिपठिष्, विष्णुपदान्तत्वान्निमित्तत्वनिवृत्तः षत्वापायः, पिपठीः पिपठिषौ, पिपठिषः, पिपठिर्भ्याम्, पिपठीःषु। एवं 'विश्वचिकीर्ष'—'रात् सस्यैव' (वि० प्र० ११०) इति विश्वचिकीः, विश्वचिकीर्षौ, विश्वचिकीर्भ्याम्, विश्वचिकीर्षु ॥१३७॥

१३८। सहजस्य मूर्द्धन्यजात-करामसम्बन्धिनश्च क्षरामस्य सत्सङ्गादिहरे डः, अन्यस्य तु को वक्तव्यः, दिशि-दृशि-अनुदकपूर्व्व-स्पृशि-जातस्य च।

अत्र सहजे गोरक्ष्—गोरट्, गोरड्, गोरक्षौ, गोरक्षः, गोरड्भ्याम्, गोरट्सु ॥१३८॥

१३९। 'रक्षेर्वा कः' इति केचित्।

गोरक्। मूर्द्धन्यजे विशि विष्लृ धात्वोः सनि वेष्टुमिच्छति विविक्ष्—विविट् विविड्, विविक्षौ, विविक्षः। वहधातोर्विविक्ष्—वोढुमिच्छति, विवट् विवड्, विवक्षौ, विवक्षः। 'अन्यस्य तु'—वचधातोर्विवक्ष्—विवक् विवग् विवक्षौ। 'दह्' धातोर्दिधक्ष्—दिधक् दिधग्, दिधक्षौ, दिधक्षः। दिश्यादीनां—दिदिक्, दिदृक्, पिस्पृक्। मन्यन्ते च तदिदं पाणिनीयाः। कालापास्तु षकार चवर्गस्थानिकादन्यस्य षढादि स्थानिकस्यापि कस्य लोपमाहुः तेन, 'विवीः' इत्याहुः।

'पिस्' धातोः सरामान्तः सुपिस्, 'तुस्' धातोः सुतुस्—सुपीः सुपिसौ, सुपिसः सुतूः, सुतुसौ, सुतुसः षत्वम्—सुपीःषु, सुतूःषु।

उरुश्रवस्—'अत्वसन्तोद्धवस्य' (वि० प्र० १११) इति त्रिविक्रमः, उरुश्रवाः, उरुश्रवसौ, उरुश्रवसः, उरुश्रवोभ्याम्, उरुश्रवःसु, हे उरुश्रवः! एवं 'विष्टरश्रवस्' 'वेधस्' इत्यादि।

अथ दोष् उणादिप्रत्ययान्तः—दोः, दोषौ, दोषः दोषम्, दोषौ ॥१३९॥

१४०। दोषो दोषन् यदुपु वा।

'व म सत्सङ्ग' (वि० प्र० ८९) इति अरामहरः—दोष्णः दोषः, दोष्णा दोषा, दोर्भ्याम् दोषभ्याम् इत्यादि।

पीतं वस्ते परिदधाति—पीतवस्, 'धातुं विना' (वि० प्र० १११) इति त्रिविक्रमाभाव—पीतवः पीतवसौ।

कंसं हिनस्तीति—कंसहिंस्। अन्तरालपाटाद्विष्णुचक्रविष्णुसर्गयोः सर्व्वेश्वरत्वं विष्णुजनत्वञ्चास्तीति सत्सङ्गान्तत्वात सस्य हरः निमित्तापायान्नराम एव, 'धातुवर्जित' (स० प्र० ८२) इति विशेषणान्नात्र त्रिविक्रमः—कंसहिन्, कंसहिंसौ कंसहिन्भ्याम्। षत्वविधौ तु नुमो विष्णुचक्रमेव गृह्यते, ततो नेह षत्वम् कंसहिन्सु ॥१४०॥

'वैकुण्ठध्वस्'—

१४१। ध्वंस-भ्रंसु-वस्वनडुहां दो विष्णुपदान्ते

अत्र 'झलि च' इति तस्यां (पा ८।२।७२) भ्रमः, 'ध्वस्त' इत्यादौ दोषश्च। 'ध्वंसु-भ्रंसु' धातू ; चतुर्थ जानुबन्धत्व नामावस्थायामेव गृहीतम्, 'अच' उपादानात्, तेनात्र न नुम्—वैकुण्ठध्वद्, वैकुण्ठध्वत्, वैकुण्ठध्वसौ, वैकुण्ठध्वद्भ्याम्। एवं 'वैकुण्ठभ्रत्'।

अत्र[1] 'वसु' प्रत्ययः—विद्वसु। उदित्वात् 'चतुर्थ जानुबन्धानाञ्च नुम्' (वि० प्र० ६४) 'नान्त' (वि० प्र० ८२) इति त्रिविक्रमः सत्सङ्गान्तहरः (वि० प्र० ९६) विद्वान्, विद्वांसौ, विद्वांसः, विद्वांसम्, विद्वांसौ ॥१४१॥

१४२। वसोर्व्वस्य उर्भगवति।

'वस्य' इति सारामनिर्द्देशः, षत्वम्—विदुषः, विदुषा, विद्वद्भ्याम्, विद्वद्भिः, विदुषे, हे विद्वन्।

'आदिवस्' प्रभृतयः कृदन्तप्रकरणे (५।२०) साधयिष्यन्ते। रूपाणि यथा—आदिवान्, आदिवांसौ आदिवांसः, आदिवांसम्, आदिवांसौ, आदुषः, आदुषा आदिवद्भ्याम्। एवं 'जक्षिवस्'।

अथ 'जग्मिवस्'—जग्मिवान्, जग्मिवांसौ, जग्मिवांसः, जग्मिवांसम्, जग्मिवांसौ। तथा 'जगन्वस्'—जगन्वान्, जगन्वांसौ, जगन्वांसः। उभयत्र भगवति—जग्मुषः, इत्यादि ॥१४२॥

'पुंस्'—

१४३। पुंसः पुमसुः कृष्णस्थाने।

अत्र च 'सुटि' इति तस्यां (पा ७।१।८९) भ्रमः, गौणत्वे ब्रह्मणि दोषश्च। उराम इत्, पुमान् पुमांसौ पुमांसः, पुमांसम्, पुमांसौ, पुंसः, पुंसा, पुंभ्याम्, पुम्भ्याम्। 'नुमा सर्व्वोऽप्यनुस्वारो लक्ष्यते'—इति भाषावृत्तिकारादयः। अत्र औणादिकस्यास्य 'पुंसः' इत्यादौ षत्वनिषेधो वाच्यः ; अत्र तु षत्वम्—पुंषु। 'न' इत्यन्ये पुंसु।

उशनस्—उशना उशनसौ उशनसः ॥१४३॥

१४४। उशनसो नान्तत्वं सलोपित्वं विष्णुसर्गान्तत्वं च बुद्धे।✻

हे उशनन्, हे उशन, हे उशनः ! एवं अनेहा, अनेहसौ, पुरुदंशा, पुरुदंशसौ, हे अनहः ! हे पुरुदंशः ! 'श्वेतवाह्' 'पुरोडाश्' 'उक्थशास्' प्रभृतयस्तु छान्दसाः ✻ ॥१४४॥

'कृष्णवाह्'—

१४५। हस्य ढः, नहो धः, दादेस्तु धातोर्घः द्रुह-मुह-नश[1] स्नुह-स्निहां वा विष्णुपदान्ते वैष्णवे च।

एते सर्व्वेऽपि धातवः। कृष्णवाट्, कृष्णवाड्, कृष्णवाहौ, कृष्णवाहः ॥१४५॥

१४६। वाहो वा ऊठ् भगवति।

ठ् इत् ॥१४६॥

१४७। अद्वयादूठो वृष्णीन्द्रः।

कृष्णौहः, कृष्णौहा, कृष्णवाड्भ्याम्, कृष्णवाट्सु अत्र, 'कंसद्विट्सु' इत्यत्र च 'षढोः कः से' (आ० प्र० १७०) इति प्राप्नोति, अत्राकरणेन केवलधातुविषयत्वात्, ततश्च कृष्णवाट्साद्भवति' इत्यादौ कृदन्तधातोस्तद्धितेऽपि न स्यात्, सम्मतरूपत्वात् पाणिनीयैरपि समाधेयमेवेदम्। 'असुपि' इत्युक्त्वापि क्रमदीश्वर पद्मनाभाभ्यां तद्धिते तु समाधेयमेव। कृष्णपण्डितस्तु 'अपदान्ते' इत्युक्त्वा सर्व्वमेव समादधे ॥१४७॥

१। अथ (क)।

❀ "सम्बोधने तूशनसस्त्रिरूपं, शान्तं तथा नान्तमथाप्यदन्तम्।
माध्यन्दिनिर्वष्टि गुणं त्विगन्ते, नपुंसके व्याघ्रपदां वरिष्ठः॥" (व्याघ्रभूतिः)

✻ "मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस् पुरोडाशो ण्विन्", "श्वेतवहादीनां डस्पदस्येति वक्तव्यम्" इति सूत्रद्वयं द्रष्टव्यम् (सिद्धान्तकौमुदी, वैदिक प्रकरणम्)। १। 'नश' इति पाठः क-पाण्डुलिप्यां नास्ति।

अथ 'अनडुह्' 'चतुरनडुहोराम्' (वि० प्र० १३०)

१४८ । अनडुहो नुम् च सौ ।

सत्वङ्गान्तहरः (वि० प्र० ९६) असिद्धत्वान्न नस्य हरः—अनड्वान्, अनड्वाहौ, अनड्वाहः, अनड्वाहम् अनड्वाहौ, अनडुहः, अनडुहा अनडुद्भ्याम्, 'वृद्ध त्वम्' (वि० प्र० १३०)—हे अनड्वन् !

गोदुह्—'जवर्ज्जहरिगदादे' (वि० प्र० ११४) इत्यादि—गोधुक् गोधुग्, गोदुहौ, गोधुग्भ्याम्, गोधुक्षु ।

घत्वे 'धातो' (वि० प्र० १४५) इति औपदेशिकत्वमेव गृह्यते, तेन दामलिडिवाचरतीति क्यङन्तात् क्विप् दामलिट् ।

कंसद्रुह्—कंसध्रुक् कंसध्रुग् कंसध्रुट् कंसध्रुड्, कंसद्रुहौ, कंसध्रुग्भ्याम् कंसध्रुड्भ्याम् । एवं 'कृष्णमुह्' 'कृष्णस्निह्' इत्यादयः । कृष्णाङ्घ्रिलिह्—'हस्य ढः' (वि० प्र० १४५) इति कृष्णाङ्घ्रिलिड्, कृष्णाङ्घ्रिलिहौ ।।१४८।।

'तुरासाह्'—

१४९ । साढः षाट् ।

तुराषाट्, तुराषाड्, तुरासाहौ, तुरासाहः, तुराषाड्भ्याम् ।।१४९।।

इति विष्णुजनान्ताः पुरुषोत्तमलिङ्गाः

अथ विष्णुजनान्ता लक्ष्मीलिङ्गाः

तत्र चरामान्त ऋच्, 'चवर्गस्य' (वि० प्र० ९७) इति—ऋक् ऋग्, ऋचौ, ऋचः, ऋग्भ्याम्, ऋक्षु । एवं 'त्वच्, वाच्, स्रज्, दिश्, दृश्' इत्यादि, स्रक् स्रग्, स्रजौ, स्रजः ।

समिध्—समित् समिद् ।

सीमन्—सीमा, सीमानौ, सीमानः, सीम्नः, सीम्ना, 'ईङ्योस्तु वा' (वि० प्र० ८९) सीम्नि,सीमनि

'अप्' नित्यं बहुवचनान्तः 'नान्त'(वि० प्र० ८२) इति त्रिविक्रमः—आपः अपः ।

१५० । अपो दो भे ।

अद्भिः, अप्सु, हे आपः ! तदन्तत्वात् स्वद्भिः इत्यादि ।

ककुभ्—ककुप् ककुव्, ककुभौ, ककुव्भ्याम्, ककुप्सु ।

गिर्—'इरुरन्तधातोः' (वि० प्र० १३७) गीः, गिरौ, गिरः, गीर्भ्याम्, गीर्षु । एवं 'पुर्'—पूः, पुरौ पुरः ।

चतुरस्त्रियां चतस्रादेशः (वि० प्र० ७१) चतस्रः, चतस्रः, चतसृभिः, चतसृभ्यः, चतसृभ्यः, चतसृणाम्, चतसृषु ।

'लक्ष्मीस्थयोः' (वि० प्र० ७१) इति विशेषणात् समस्तस्यान्यलिङ्गत्वेऽपि तत्तदादेशः ।

प्रियास्तिस्रो यस्य सः—प्रियतिसा, प्रियतिस्रौ, प्रियतिस्रः, प्रियचतसा, प्रियचतस्रौ, प्रियचतस्रः, ङसि-ङसोः—प्रियतिस्रः, प्रियचतस्रः, प्रियतिसृणाम् । समस्तमात्रस्य लक्ष्मीत्वे तु—प्रियत्रिः, प्रियत्री, प्रियत्रयः ।।१५०।।

'दिव्'—

१५१ । दिव् औ सौ ।

द्यौः, दिवौ, दिवः, दिवम्, दिवौ, दिवः, दिवा ।।१५१

१५२ । दिव उर्विष्णुपदान्ते ।

द्युभ्याम्, द्युषु ।

दिश्—दिक्, दिग्, दिशौ, दिग्भ्याम् दिक्षु। एवं 'दृश्'। 'अघद्विष्' 'कंसद्विड्'वत्। एवं विप्रुष्।

अथ 'आशिष्' 'सजुष्' (वि० प्र० १३६) इत्यादिना रः—आशीः, आशिषौ, आशिषः, आशिर्भ्याम्, आशीःषु।

उष्णिह्—उष्णिक्, उष्णिग्, उष्णिहौ।

उपानह्—'नहो धः' (वि० प्र० १४५) इति उपानत् उपानद्, उपानहौ ॥१५२॥

इति विष्णुजनान्ता लक्ष्मीलिङ्गाः।

अथ विष्णुजनान्ता ब्रह्मलिङ्गाः

तत्रापि 'प्रत्यच्'—प्रत्यक् प्रतीची, प्रत्यञ्चि, प्रतीचा, प्रत्यग्भ्याम्। एवं 'प्राच्'—प्राङ्, प्राञ्ची, प्राञ्चि। प्रत्यञ्च्—प्राञ्च् शब्दयोस्तु—प्रत्यङ्, प्रत्यञ्ची, प्रत्यञ्चि।

शौ नरामद्वयं लेख्यम्, किन्तु मित-स्थाने नराम-सद्भावे नुम् न दृश्यते; यथा—कंसहिंसो ब्रह्मणि 'कंसहिंसि' इति केवलं विष्णुचक्रं स्यात्।

तिर्य्यच्—तिर्य्यक्, तिरश्ची, तिर्य्यञ्चि।

ऊर्ज्—ऊर्क्, ऊर्ग्, ऊर्ज्जी, ऊर्न्ज्जि।

१५३। बहूर्ज्जो नुम् प्रतिषेधः।

बहूर्ज्जि, अन्त्यात् पूर्व्वं नुम् इच्छन्त्येके—'बहूर्न्ज्जि' इति।

जगत्—जगत, जगती, जगन्ति।

अथ शतृप्रत्ययान्तः भवतृ—'नुम् ई प्रत्यये' कृदन्त प्रकरणे (५।१७) वक्ष्यते—भवन्ती, भवन्ति। 'तुदतृ' 'भातृ' 'करिष्यतृ' प्रभृतीनां विकल्पः—तुदत्, तुदती, तुदन्ती, तुदन्ति, एवं भात्, भाती, भान्ती, भान्ति, करिष्यत्, करिष्यती, करिष्यन्ती, करिष्यन्ति।

'महत्' शब्दः—महत, महती, महान्ति, ब्रह्मन्—ब्रह्म, 'व म-सत्सङ्गहीनस्य (वि० प्र० ८९) इति विशेषणादरामहराभावः—ब्रह्मणी, ब्रह्माणि, ब्रह्मणा ब्रह्मभ्याम् ॥१५३॥

१५४। नस्य हरो वा ब्रह्मणि बुद्धे।

हे ब्रह्म, हे ब्रह्मन्! एवं 'शर्म्मन्, वर्म्मन्, चर्म्मन्' ॥१५४॥

अथ 'अहन्'—

१५५। अह्नो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते।

'न समासे पुंसि' इति वाच्यम्। अहः 'ईङ्योस्तु वा' (वि० प्र० ८९) धातुत्वाभावात् घत्वाभावः—अह्नी अहनी, अहानि, अह्ना ॥१५५॥

१५६। अस्य स्वाद्यभाव एव र-विधिर्वाच्यः

अहोभ्याम्, बुद्धेऽपि—हे अहः! समासे पुंसि तु त्रिविक्रमो, न तु विष्णुसर्गः[१]—दीर्घाहा निदाघः, बुद्धे तु हे दीर्घाहन्! अत्र णत्वं वाच्यम्—दीर्घाहाणौ दीर्घाहाणः, दीर्घाह्णः।

सुपथिन्—सुपथि, सुपथी, सुपन्थानि। शसि च सुपन्थानि। 'पथ्यादीनां सुटि नुम्' इति तस्यां भ्रमः दृष्टशार्ङ्गिन्—दृष्टशार्ङ्गि, दृष्टशार्ङ्गिणी, दृष्टशार्ङ्गिणि एवं दृष्टकंसहन्—दृष्टकंसह, दृष्टकंसहनी, दृष्टकंसघ्नी दृष्टकंसहानि। एवं 'दृष्टपूषन्, दृष्टार्य्यमन्'।

स्वप्, स्वपी, 'नामधातुवर्ज्जित' (वि० प्र० ८२) इति त्रिविक्रमः—स्वाम्पि, स्वद्भ्याम्।

१। 'त्रिविक्रमो, न तु विष्णुसर्गः' इति पाठः ग घ पुस्तकयोर्नास्ति।

वार्—वाः, वारी, वारि, 'अनीश्वरादपि ररामजः' (स० प्र० १४५) वार्भ्याम् ।

अत्रापि 'चतुर्'—चत्वारि ।

पयस्—पयः, पयसी, पयांसि, पयोभ्याम् ।

हविस्—हविः, औणादिक-सरामोऽयं प्रत्ययः, अतः षत्वम्—हविषी, हवींषि, हविर्भ्याम्, विष्णुसर्गः, षत्वम्—हविःषु, शौरित्वम्—हविष्षु । एवं 'धनुस्' अतिपुंस्—अतिपुम्, अतिपुंसी, अतिपुमांसि ।

स्वनडुह्—स्वनडुत्, स्वनडुही, स्वनड्वांहि ॥१५६॥

इति विष्णुजनान्ता ब्रह्मलिङ्गाः

इति लिङ्गत्रयं दर्शितम्

अथ विशेषणलिङ्गाः

१५७ । *अत्र कृष्णादिशब्दाः संज्ञाविशेषादौ नियतपुरुषोत्तमादयः ।

१५८ । * संख्यादि-शब्दास्तु वाच्यलिङ्गाः

१५९ । *समानाधिकरण-विशेषणरूपा विशेष्यलिङ्ग-विष्णुभक्ति-वचनानि भजन्ते १

१६० । *जाति-गुण-क्रियाद्वारा यस्य विशेषः कथ्यते, तद्विशेष्यं, येन तस्य विशेषः कथ्यते, तद्विशेषणम् ।

यथा—गोपः कृष्णः, गोपी राधा, क्षौमं वसनम्, श्यामः कृष्णः, गौरी राधा, पीतं वसनम्, विहारी कृष्णः, विहारिणी राधा, विहारि गोकुलम् इत्यादि ॥१५७-१६०॥

१६१ । अव्ययविशेषणं ब्रह्म ।

यथा—महत् स्वः ॥१६१॥

१६२ । केचिच्छब्दा विशेषणत्वेऽपि स्वलिङ्गं न त्यजन्ति ।

यथा—प्रधानं कृष्णं, प्रधानं राधा, गतिः कृष्णः आश्रयो राधा इत्यादि ॥१६२॥

१६३ । एकस्य विशेषणस्य विशेष्यमनेकञ्चेत् प्रत्येकं वा समुदायस्य वा संख्यानुरूपं वचनम्

चार्थस्य समुच्चयेतरेतरयोगभेदेन द्वैविध्यात्; यथा—रामः कृष्णश्च सुन्दरः, रामः कृष्णश्च प्रत्येकमित्यर्थः, सुन्दरौ वा, रामः कृष्ण इति द्वावित्यर्थः । तदिदं रामकृष्णसमासे(समा० प्र० ११७) विवरणीयम् ॥१६३॥

१६४ । क्वचिद्बहूनां विशेषणत्वेऽप्येकत्वम् २

यथा—धर्म्मे वेदाः प्रमाणम् इत्यादि ॥१६४॥

१६५ । विंशत्याद्याः सदैकत्वे अनावृत्तौ ।

विंशतिर्वैष्णवाः । तासामेवावृत्तौ तु—द्वे विंशती तिस्रो विंशतयः । एवम् 'एकविंशतिः' इत्यादि, तदन्तत्वादूनविंशतिश्च । तत्र विशेषणशब्देषु कृष्णनामाख्यशब्दा उच्यन्ते ॥१६५॥

---

* चिह्नित सूत्रचतुष्टयं क-पाण्डुलिप्यां वृत्तिरूपेण पठ्यते ।

१ । विशेष्यस्य हि यल्लिङ्गं विभक्तिवचने च ये । तानि सर्व्वाणि योज्यानि विशेषण-पदेष्वपि ॥

२ । आपः सुमनसो वर्षा अप्सरः सिकताः समाः । एते स्त्रियां बहुत्वे स्युरेकत्वेऽप्युत्तरे त्रयः ॥

अथ कृष्णनामप्रकरणम्

१६६ । सर्व्वादीनि कृष्णनामानि ।

'सर्व्वनामानि' इत्यन्ये । सर्व्व, विश्व, उभ, उभय, अन्य, अन्यतर, ततर, ततम, यतर, यतम, कतर, कतम, एकतर, एकतम, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, पूर्व्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर, (त्यद् छान्दसः) तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस् एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् ॥१६६॥

तत्र पुंसि—सर्व्वः, सर्व्वौ,—

१६७ । कृष्णनाम-कृष्णतो जसः शीः ।

श् इत्, सर्व्वे, सर्व्वम्, सर्व्वौ, सर्व्वान्, सर्व्वेण, सर्व्वाभ्याम्, सर्व्वैः ॥१६७॥

सर्व्व-ङे—

१६८ । कृष्णनाम-कृष्णतो ङेः स्मै ।

सर्व्वस्मै, सर्व्वाभ्याम्, सर्व्वेभ्यः ॥१६८॥

१६९ । कृष्णनाम-कृष्णतो ङसेः स्मात् ।

सर्व्वस्मात्, पञ्चम्यास्तस् प्रत्ययस्तद्धितः—सर्व्वतः सर्व्वाभ्याम्, सर्व्वेभ्यः, सर्व्वस्य, सर्व्वयोः ॥१६९॥

सर्व्व-आम्—

१७० । कृष्णनाम-कृष्ण-राधाभ्यां सुडामि उटावितौ । 'कृष्णस्य ए वैष्णवे' (वि० प्र० १६) षत्वम्—सर्व्वेषाम् ॥१७०॥

१७१ । कृष्णनाम-कृष्णतो ङेः स्मिन् ।

सर्व्वस्मिन्, सर्व्वयोः, सर्व्वेषु ।

सप्तम्यास्त्रप्रत्ययस्तद्धितः—सर्व्वत्र, हे सर्व्व ! ॥१७१

'आदि' (वि० प्र० १६६)शब्दः प्रसिद्धगणविशेषग्राहकः ततश्च—

१७२ । सर्व्वादिः कृष्णनामाख्यो गौण-संज्ञे विना भवेत् ।

तेन नेह—सर्व्वमतिक्रान्ताय—अतिसर्व्वाय, दृष्टः सर्व्वो येन, तस्मै—दृष्टसर्व्वाय । सर्व्वो नाम कश्चित्, तस्मै—सर्व्वाय ॥१७२॥

१७३ । पूर्व्वादि च व्यवस्थायां सप्तकं कृष्णनामकम् ।

दिग्-देश-कालविभागोऽत्र 'व्यवस्था' तस्यां गम्यमानायाम् । पूर्व्वस्मै दिगन्तराय, देशादये वा । तथा—पूर्व्वस्मै कालाय, दिनाय, पदार्थविशेषाय वा । अन्यत्र तु पूर्व्वाय, श्रेष्ठाय इत्यर्थः, दक्षिणाय, प्रवीणाय इत्यर्थः । 'गौणसंज्ञे विना' (वि० प्र० १७२) इत्येव अत्युत्तराय, उत्तराः कुरवः ॥१७३॥

१७४ । समोऽतुल्ये कृष्णनाम ।

समस्मै, सर्व्वस्मै इत्यर्थः । नेह—समाय, तुल्याय इत्यर्थः ॥१७४॥

१७५ । स्वमज्ञातिधनाह्वये ।

"स्वो ज्ञातावात्मनि स्वंत्रिष्वात्मीये स्वोऽस्त्रियां धने" (अमरकोषः ३।३।२११) स्वस्मै—आत्मने, आत्मीयाय वा इत्यर्थः । नेह—स्वाय ज्ञातये, धनाय वा इत्यर्थः ॥१७५॥

१७६ । अन्तरो वाह्यपरिधानीययोर्न त्वसौ पुरि । *

अन्तरस्मै—वाह्याय इत्यर्थः, वस्त्रान्तरावृत-परिधानीयाय इति वा । वाह्यत्वेऽपि पुरि वर्त्तमानस्तु न—अन्तराय पुराय, वाह्याय इत्यर्थः ॥१७६॥

१७७ । पूर्व्वादीनि नव कृष्णनामानि जसि वा ।

---

* १७२-१६७संख्यक-सूत्राणां युगपत्पाठे श्लोकद्वयं भवति, ततश्च—

"सर्व्वादि सर्व्वनामाख्यो न चेद्गौणोऽथवाभिधा । पूर्व्वादिश्च व्यवस्थायां समोऽतुल्येऽन्तरोऽपुरि ।
परिधाने बहिर्योगे स्वोऽर्थ्यज्ञात्यन्यवाच्यपि ॥" (सारस्वत व्याकरणकारिका)

पूर्व्वे पूर्व्वाः, स्वे स्वाः, अन्तरे, अन्तराः। 'सर्व्व'वद् 'विश्व' आदयोऽपि अरामान्ताः। तत्र 'उभ' शब्दो नित्यं द्विवचनान्त—उभौ, उभौ, उभाभ्याम्, उभाभ्याम्, उभाभ्याम्, उभयोः, उभयोः उभस्य सर्व्वादिषु पाठो हेत्वर्थे कृष्णनाम्नो योगे सर्व्वविष्णुभक्तयर्थस्तस्य वृत्तिमात्रे पुंवद्भावार्थश्च। त्वत् त्वौ अन्यपर्य्यायौ, नेमोऽर्द्धपर्य्यायः, समादय उक्तार्थाः, सिमश्च सर्व्वार्थः, 'शक्तावबद्ध-मर्य्यादानां वाची' इति तु मतभेदाः, अन्ये तु प्रसिद्धाः ॥१७७॥

१७८। पूर्व्वादिभ्यो नवभ्यः स्मात्-स्मिनौ वा

पूर्व्वस्मात्, पूर्व्वात्, पूर्व्वस्मिन्, पूर्व्वे ॥१७८॥

१७९। न कृष्णनाम तृतीया-समासे तद्वाक्ये च।

मासेन पूर्व्वाय इति वाक्ये—मासपूर्व्वाय। केवलवाक्ये तु—मासेन पूर्व्वस्मै धनं देहि ॥१७९॥

१८०। न कृष्णनाम द्वन्द्वे, जसि तु वा।

पूर्व्वापराणां वैष्णवेतरे, वैष्णवेतराः ॥१८०॥

१८१। प्रथम-चरम-तयायाल्पार्द्ध-कतिपय-नेमाः कृष्णनामानि जसि वा।

प्रथमे, प्रथमाः। 'तयायौ' प्रत्ययौ—द्वितीये, द्वितीयाः, द्वये, द्वयाः, शेषं 'कृष्ण'वत्। उभयस्य द्विवचनाभावः—उभये, उभयाः। 'इहापि जसः कार्य्यं प्रति विभाषा' इति काशिका (१।१।३३)। 'उभय इति नित्यं भाषायाम्' इति तु कालापाः (चतुष्टयवृत्तिः—३१) नेमे, नेमाः, शेषं 'सर्व्व'वत् ॥१८१॥

१८२। तीयस्य कृष्णनामता वृष्णिषु वा

द्वितीयस्मै, द्वितीयाय, द्वितीयस्मात्, द्वितीयात्, द्वितीयस्मिन् द्वितीये, शेषं 'कृष्ण'वत्। एवं 'तृतीयः'। 'अर्थवद्ग्रहणात्' तु—गोपजातीयाय ॥१८२॥

अथ तदादयः—

१८३। तदादिसप्तानां * संसारस्यारामः स्वादौ, दस्य च मः, तदादेस्तः सः सौ।

सः, तौ, ते, तम्, तौ, तान्, तेन, ताभ्याम्, तैः तस्मै, ताभ्याम्, तेभ्यः, तस्मात् इत्यादि। बुद्धस्यादर्शनम्—हे स! 'तदोः सः सावनन्त्ययोः' इति सूत्रे (पा ७।२।१०६) काशिकायामप्येतद्दर्शितम्। 'हे स, हे असौ' इति भाष्योदाहरणात् प्रक्रिया तु चिन्त्या। गौण-संज्ञयोस्तु न तदादिकार्य्यम्, सर्व्वादिगणत्यागात्—अतितद्, अतितदौ, अतितदः१ तद्धिते पञ्चम्याम्—ततः, सप्तम्याम्—तत्र।

यद्—यः, यौ, ये तद्धिते पञ्चम्याम्—यतः, सप्तम्याम्—यत्र।

एतद्—एषः, एतौ, एते, एतम्, तद्धिते पञ्चम्याम्—अतः; सप्तम्याम्—अत्र ॥१८३॥

१८४। इदमोऽयं सौ, इयन्तु लक्ष्म्यां, साकस्य त्वयकमियकमौ।

अयम्, इमौ, इमे, इमम्, इमौ, इमान् ॥१८४॥

१८५। इदमोऽकरामस्य अनष्टौसोः।

१८६। वैष्णवे त्वश्।

१८७। सकरामस्य च कथितानुकथने।

अनेन, 'शित् सर्व्वस्य' इति सर्व्वादेशः—आभ्याम् इमकाभ्यामहः कृष्णोऽर्च्चितः, अथ आभ्यां रात्रिमपि ॥१८५-१८७॥

१८८। इदमदोभ्यामकरामाभ्यां नैस्।

एभिः, अस्मै, आभ्याम्, एभ्यः, अस्मात्, आभ्याम्, एभ्यः, तद्धिते पञ्चम्याम्—इतः, अस्य, अनयोः, एषाम्, अस्मिन्, अनयोः, एषु। तद्धिते सप्तम्याम्—इह। संसारात् पूर्व्वमक्प्रत्यये 'इदकम्' शब्दो भवति अयकम्, इमकौ; इमके सर्व्ववत् ॥१८८॥

---

* इदमस्तु सन्निकृष्टं, समीपतरवर्त्ति चैतदो रूपम्। अदसस्तु विप्रकृष्टं, तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥

१। 'अतितदः' इत्यस्मात् परः 'तद् तदौ तदः इत्यादि' इत्यधिकः पाठः (क)।

१८९। एतदिदमोरेनः कथितानुकथने द्वितीयाटौस्सु।

एनम् इमं वा दीक्षय, अथो एनं पाचय। एनम्, एनौ, एनान्, एनेन, एनयोः, एनयोः ॥१८९॥

अदस् 'सु' 'संसारस्यारामः' (वि० प्र० १८३)

१९०। अदसो दस्य सः, सोरौच्।

असौ ॥१९०॥

'अमौ' इति स्थिते—

१९१। अदो मात् परस्य सर्व्वेश्वरस्य उ ऊ यथेष्टसिद्धिः।

वामनस्य वामनः, त्रिविक्रमस्य त्रिविक्रमः, अमू ॥२९१॥

जसि अमे स्थिते—

१९२। अदस एत ई बहुत्वे, न तु कात्।

अमी, अमुम्, अमू, अमून्, मूत्वे चोत्वे च कृते 'हरितष्टा ना' (वि० प्र० ३५)—अमुना। भ्यामि 'कृष्णस्य त्रिविक्रमः' (वि० प्र० १३) पश्चात् ऊ—अमूभ्याम्, अमीभिः, स्मै-प्रभृतौ कृते पश्चादुरामः—अमुष्मै, अमूभ्याम्, अमीभ्यः, अमुष्मात, अमूभ्याम्, अमीभ्यः। तद्धिते पञ्चम्याम्—अमुतः, अमुष्य, एत्वे अयादेशे च कृते पश्चादुरामः—अमुयोः, अमीषाम्, अमुष्मिन्, अमुयोः, अमीषु। तद्धिते—अमुत्र। चित्-करणेन 'हे असौ' इति बुद्धस्यादर्शनं न स्यात्। 'अदस औ सुलोपश्च' इत्यत्र (पा ७।२।१०७) काशिकादावप्यस्य सम्मतिः, प्रसादे च। अक्प्रत्यये 'असकौ' अमुकश्च' इति मन्यन्ते। औ प्रभृति मराम मध्याः—अमुकौ, अमुके। एकः सर्व्ववत् ॥१९२॥

अथ द्विशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः—

१९३। न द्वेर्म्मः।

द्वौ, द्वौ द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः ॥१९३॥

युष्मदस्मदौ त्रिष्वपि समानौ—

१९४। युष्मदस्मदोस्त्वमहमादयः स्वादिना सह।

तत्र युष्मच्छब्दस्य— त्वम् युवाम् यूयम्, त्वाम् युवाम् युष्मान्, त्वया युवाभ्याम् युष्माभिः, तुभ्यम् युवाभ्याम् युष्मभ्यम्, त्वत् युवाभ्याम् युष्मत्, तव युवयोः युष्माकम्, त्वयि युवयोः युष्मासु।

अस्मच्छब्दस्य—अहम् आवाम् वयम्, माम् आवाम् अस्मान्, मया आवाभ्याम् अस्माभिः, मह्यम् आवाभ्याम् अस्मभ्यम्, मत् आवाभ्याम् अस्मत्, मम आवयोः अस्माकम्, मयि आवयोः अस्मासु ॥१९४॥

१९५। अनयोर्विष्णुपदत्वे सत्येव संसारात् पूर्व्वमक्-प्रत्ययः।

त्वकम् युवकाम् यूयकम, किन्तु त्रिसर्व्वेश्वरत्वे मध्यसर्व्वेश्वरात् पूर्व्वमक्—युवकाभ्याम्, युष्मकाभिः, युष्मकभ्यम्, युष्मकाकम्, युष्मकासु। एवमस्मदोऽपि—अहकम्, आवकाम्, वयकम्, मकाम्, अस्मकान्, मयका, आवकाभ्याम्, अस्मकाभिः; मह्यकम्, अस्मकभ्यम्, अस्मकत्, ममक, आवकयोः, अस्मकाकम्; मयकि, अस्मकासु।

गौणत्वे[१] 'त्वामतिक्रान्तः' इत्यर्थे—अतित्वत्; 'युवामतिक्रान्तः' इत्यर्थे—अतियुवत्; 'युष्मानतिक्रान्तः' इत्यर्थे—अतियुष्मत्; एवम् 'मामतिक्रान्तः' इत्यर्थे—अतिमत्; 'आवामतिक्रान्तः' इत्यर्थे—अत्यावत्, 'अस्मानतिक्रान्तः' इत्यर्थे—अत्यस्मत्। एवं प्रत्वदादयोऽपि ॥१९५॥

१९६। तेषामतित्वदादीनां सर्व्वेषा[२]न्त्वमहमादय एव सु-जस्-ङे-ङस्सु।

यथा—अतित्वम्, अतियूयम्, अतितुभ्यम्, अतितव। एवम् अत्यहम् इत्यादि ॥१९६॥

१९७। अन्यत्र व-म-पर्य्यन्तवर्ज्जमक्षराणि प्रकृतपदवत् कार्य्याणि।

१ 'युष्मदो गौणस्य त्वद्युवद्युष्मदेकत्वादिषु अस्मदो मदावस्मदः।' इति सूत्ररूपेणाधिकः पाठः (क)

२। 'तेषां सर्व्वेषां' (ख ग घ)

यथा—अतित्वद्-औ इति स्थिते अद औभागस्य 'युवाम्' इत्यन्तस्थित आम्भाग आदिश्यते-अतित्वाम् एवम् अम्—अतित्वाम्, पुनरौ—अतित्वाम्, शस्—अतित्वान्, टा—अतित्वया, अतित्वाभ्याम्, अतित्वाभिः, अतित्वाभ्याम्, अतित्वभ्यम्, अतित्वत् अतित्वाभ्याम्, अतित्वत्, अतित्वयोः, अतित्वाकम्, अतित्वयि, अतित्वयोः, अतित्वासु।

यथा च अतियुवच्छब्दात्—अतियुवाम्, अतियुवाम् अतियुवाम्, अतियुवान्, अतियुवया। यथा च अतियुष्मच्छब्दस्य—अतियुष्माम्, अतियुष्माम्, अतियुष्माम्, अतियुष्मान्, अतियुष्मया। आमि च—'अतित्वाकम्' इत्यादि; 'अतित्वयाकम्' इत्यादि केषाञ्चित्। एवम् 'अस्मदो'ऽपि ॥१९७॥

१९८। विष्णुपदाद्वा, अन्वादेशे तु नित्यम्

अधिकारोऽयम्, 'उत्तरप्रकरणव्याप्यधिकारः'। 'वां-नौ'-पर्य्यन्ता ये विरिञ्चयो वक्ष्यन्ते, ते सर्व्वे विष्णुपदाद्वक्तव्याः; ते च अनन्वादेशे वा अन्वादेशे तु नित्यमित्यर्थः। पुनःकथनम्—अन्वादेशः ॥१९८॥

१९९। युष्मान् युष्मभ्यं युष्माकमित्येषां वस् अस्मान् अस्मभ्यम् अस्माकमित्येषा नस्।

हरिर्युष्मान् अवतु, हरिर्वोऽवतु, हरिर्युष्मभ्यं रोचताम्, हरिर्वो रोचताम्, हरिर्युष्माकं सर्व्वस्वम्, हरिर्वः सर्व्वस्वम्, हरिरस्मान् अवतु, हरिर्नः, हरिरस्मभ्यं रोचताम्, हरिर्नः; हरिरस्माकं सर्व्वस्वम्, हरिर्नः। अन्वादेशे तु नित्यम्—हरिरस्मान् अवतु, अथो नस्त द्भक्ताः कृपयन्तु इत्यादि सर्व्वत्र योज्यम् ॥१९९॥

२००। तुभ्यम्-तवयोस्ते, मह्यम्-ममयोर्मे।

हरिस्तुभ्यं रोचताम्, हरिस्ते; एवं हरिस्तव, हरिस्ते, हरिस्तुभ्यं रोचताम्, अथो हरिस्ते प्रेम ददातु, हरिर्मह्यं, हरिर्मे, हरिर्मम, हरिर्मे ॥२००॥

२०१। त्वां मां त्वा मा।

हरिस्त्वां पातु, हरिस्त्वा पातु, हरिर्मां पातु, हरिर्मा, अथो हरिस्त्वा पश्यतु, हरिर्मा रक्षतु ॥२०१

२०२। युष्मदस्मद्विष्णु[1]-पदयोर्वां नौ द्वितीया-चतुर्थी-षष्ठीद्वित्वे, न तु समासे।

हरिर्युवां पातु, हरिर्वाम्, हरिर्युवां रक्षतु अथ हरिर्वां पश्यतु, हरिर्युवाभ्यां रोचताम्, हरिर्वाम्; हरिर्युवयोःस्वामी हरिर्वाम्, हरिरावां पातु, हरिर्नौ, हरिरावाभ्यां रोचताम्, हरिर्नौ, हरिरावयोः स्वामी, हरिर्नौ। समस्तत्वे तु न--हरिरस्मत्स्वामी ॥२०२॥

२०३। सपूर्व्वपदात् प्रथमान्ताद्वाऽन्वादेशेऽपि ते विरिञ्चयः।

व्रजे कृष्ण मम स्वम्, मे वा; अथो वृन्दावने कृष्णो मम स्वम्, मे वा ॥२०३॥

२०४। न ते वाक्यादौ श्लोकपादादौ च।

हे वैष्णव! त्वं सुखी भव। त्वां हरिः पातु, मां हरिः पातु। 'कृष्णैकशरणस्यास्य, तव हन्त कुतो भयम्' इत्यादि ॥२०४॥

२०५। न च चादिभिर्योगे।

'कृष्णो मम च सौख्याय, रामस्तव च शर्म्मणे'। च, वा, ह, अह, एव[2] ॥२०५॥

२०६। परम्परायोगे तु न निषेधः।

हरिश्च मे स्वामी ॥२०६॥

२०७। न च दर्शनार्थैरचाक्षुषत्वे।

चेतसा त्वामीक्षते वैष्णवः ॥२०७॥

२०८। परम्परायोगेऽपि न।

कृष्णश्चेतसा तव रूपमीक्षते। 'भक्तस्तव रूपं ध्यायति' इति तु तस्यां विचार्य्यं; दर्शनार्थधातुयोगाभावात्। चाक्षुषत्वे तु—कृष्णस्त्वा पश्यति ॥२०८॥

२०९। आमन्त्रितं पूर्व्वमसद्वत्।

'ततो नादेशाः' इति काशिकादौ (पा ८।१।७२) च मतम्। हे कृष्ण! तवाहम्। हे रामकृष्णौ!

१। युष्मदस्मदोर्विष्णु (क)　२। च वा हा ह अह एव इति षट् चादयो मताः (क)

युवयोरहम्। कथम् ? 'उचितं रचयामि देवि ते' इति, आमन्त्रितस्य असद्वत्त्वेऽपि तत्पूर्व्वपदस्य सत्त्वात् २०९

२१०। सामान्यवचन-तुल्याधिकरणे आमन्त्रिते क्रमस्थे चेत् पूर्व्वं सत्।

२११। बहुवचने चेद्वा।

अत्र आदेशाः। हे वैष्णव! सप्रेमस्ते कृष्णः। वैष्णवोऽत्र सप्रेमा तद्विहितश्च भवति इति सामान्यवचनः। तौ द्वौ तु तद्विशेष्यौ। तत्रान्वादेशे नित्यमादेशाः, अनन्वादेशे तु वा। 'सामान्यवचन' इति किम्? ब्रह्मरात कृष्णज्ञ! तव कृष्णः। ब्रह्मरात इत्येकस्य नाम, ततो न सामान्यवचनः; तत उभयमप्यामन्त्रितमसद्वत (२०९ संख्यकसूत्रेण)। एवं हरे कृपालोऽस्मान् पाहि। बहुवचने—वैष्णवाः श्रीभागवतज्ञाः। वः कृष्णः, युष्माकं वा।
'अनन्वादेशेऽप्यादेशा वा'—एतत् पाणिनीयमतं प्रक्रिया धृतम्; मतान्तरन्तु न किञ्चित्। तथाहि तत्सूत्रत्रयम्—(१) "आमन्त्रितं पूर्व्वमविद्यमानवत्" (पा ८।१।७२); (२) "नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्" (पा ८।१।७३) (३) "विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम्" (पा ८।१।७४) इति।
'आमन्त्रिते' इत्यादिषु परसप्तम्येव। मध्यमे सूत्रे सामान्यवचनस्याविद्यमानताखण्डनात्तन्मूला एवादेशाः अन्तिमे तु तद्विकल्पात्तद्विकल्पः।
'भवतु' शब्दो युष्मद्वाचको 'भगवतु' शब्दवत्॥२१०-२११

अथ 'किम्' शब्द—

२१२। किमः को विष्णुभक्तौ साकस्यापि

कः कौ के, कम् कौ कान्,—'सर्व्व'वत्। तद्धिते पञ्चम्याम्—कुतः, सप्तम्याम्—क्व, कुत्र॥२१२॥

अथ कृष्णनाम्नां लक्ष्मीलिङ्गोदाहरणम्

'कृष्णादाप् लक्ष्म्याम्' त० प्र० १८४) इति वक्ष्यमाणसूत्रात् 'सर्व्व'शब्दादाप्—सर्व्वा, सर्व्वे, इत्यादि 'राधा'वत्, वृष्णिष्वामि च विशेषः।

सर्व्वा ङे—

२१३। कृष्णनाम राधातः स्याप् वृष्णिषु पूर्व्वस्य च वामनः।

प् इत्—सर्व्वस्यै; ङसि—सर्व्वस्याः, ङस्—सर्व्वस्याः, आमि—'कृष्णनाम्' (वि० प्र० १७०) इति सुट्—सर्व्वासाम्, ङि—'नीराधाभ्यां ङेराम्' (वि० प्र० ५१) इति सर्व्वस्याम्, तद्धिते पूर्व्ववत्। एवं 'विश्व' आदयः॥२१३॥

२१४। दिग्बहुव्रीहौ कृष्णनामता वा।

उत्तरपूर्व्वस्यै, उत्तरपूर्व्वायै। तदादिसप्तानां[१] संसारस्यारामे कृते पश्चादाप्, तदादेस्तः सः सौ (वि० प्र० १८३)—सा, ते, ताः, ताम्, ते, ताः। एवं 'यद्'—या ये याः। एतद्—एषा एते एताः। इदम्—'इयन्तु लक्ष्म्याम्' (वि० प्र० १८४) इयम् इमे इमाः, इमाम् इमे इमाः, 'इदमोऽकरामस्य अनष्टौसोः' (वि० प्र० १८५)—अनया, 'वैष्णवे त्वश्' (वि० प्र० १८६) आभ्याम्, आभिः, अस्यै, अस्याः, सुट् (वि० प्र० १७०) अश् (वि० प्र० १८६) पश्चादाप्—आसाम्।
'अदस्' शब्दस्य सौ पुंवत्—'असौ दस्य च मः' (वि० प्र० १८३) आप्, 'अदो मात् परस्य सर्व्वेश्वरस्य उ ऊ' (वि० प्र० १९१) अमू, अमूः, अमूम्, अमू, अमूः अमुया, अमूभ्याम्, अमूभिः, 'स्याप् वृष्णिषु, पूर्व्वस्य च वामनः' (वि० प्र० २१३) अमुष्यै, अमूभ्याम्, अमूभ्यः, अमुष्याः अमूभ्याम् अमूभ्यः, अमुष्याः, अमुयोः अमूषाम् अमुष्याम् अमुयोः अमूषु।
एकः सर्व्ववत्। द्विशब्दस्य—द्वे द्वे द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वयोः द्वयोः।
'भवतु' शब्दादीप्—भवती भवत्यौ।
'किम्' शब्दस्य, का, के, काः सर्व्ववत्॥२१४

अथ ब्रह्माणि

सर्व्वम् सर्व्वे सर्व्वाणि; पुनस्तद्वत्, तृतीयादौ

१। तदादि शब्दानां (क)।

पुरुषोत्तमवत् । (उभ-औ) उभे ।

२१५ । अन्यादिभ्यस्तुक् स्वमोर्ब्रह्मणि ।

उकावितौ—अन्यत् अन्यद्, अन्ये, अन्यानि । अन्यादय एकादशैकतरवर्जम् । तत्, ते, तानि । इदम्, इमे, इमानि ॥२१५॥

२१६ । द्वितीयैकत्वे कथितानुकथने इदमेतदोरेनदादेशो ब्रह्मणि वाच्यः ।

एतद्गच्छति, अथो एनत् पश्य ।

अदः, 'अमे' इति स्थिते पश्चात् ऊ (वि० प्र० १६१) अमू, अमूनि, पुनस्तद्वत् । द्वे द्वे । भवत्, भवती, भवन्ति, पुनस्तद्वत् । किम्, के, कानि ; पुनस्तद्वत् ॥२१६॥

२१७ । अव्ययात् स्वादेर्महाहरः ।

स्वरादि, चादि, वदादि-तद्धिताः, क्त्वा, मान्तश्च कृदव्ययम् । अव्ययाः खलु—(१) वाचकाः (२) द्योतकाश्च ; तत्र वाचकाः—स्वः, प्रातः इत्यादयः । एषां विशेषणस्य ब्रह्मत्वमेव । सुन्दरं स्वः, सुन्दरे स्वः, सुन्दराणि स्वः इत्यादयः । 'अत्रैकवचनमेव' इति तस्यां भ्रमः, द्वित्वादीनामनिवार्य्यत्वात्, 'अव्ययादपि सुप्' * इति सुलोपे विरोधाच्च । द्योतकाः च, वा, ह, अह, वै, तु, अपि, इत्यादयः ; प्रादयश्च ॥२१७॥

२१८ । चादयो निपातसंज्ञाः ।

एतेभ्यो 'द्योतयतया अर्था विद्यन्ते एषाम्' इत्यर्थत्वात् स्वाद्युत्पत्तिः, किन्तु प्रथमैकवचनमेव । वदादि तद्धिताः 'हरिवत् कृष्णीभवति' इत्यादयः ; क्त्वा ; मान्तकृत् कृत्वा, कर्त्तुं, कारं कारम् इत्यादि च । महाहरत्वात् 'ओ औ पाण्डवेषु' (वि० प्र० ६१) न—अहो इत्यादि ज्ञेयम् ॥२१८॥

इति कृष्णनाम-प्रकरणम् ।

इति श्रीश्रीहरिनामामृताख्ये वैष्णवव्याकरणे नामविष्णुपद-प्रकरणं द्वितीयं समाप्तम् ॥

---

* अव्ययादाप् सुपः (पा २।४।८२)

आख्यातप्रकरणम्

[१] प्रवर्त्तन्ते क्रियाः सर्व्वा यतोऽर्व्वाचीनवस्तुषु ।
हरेस्तस्यैव लीलस्ता निरूप्यन्ते यथामति ॥

अथ धातुजानि विष्णुपदानि

१। भूसनन्ताद्या धातवः।

भू सत्तायामित्यादयः सनादि प्रत्ययान्ताश्च 'धातु' संज्ञा स्युः ॥१॥

२। धातोः।

अधिकारोऽयम्। पूर्व्वनिमित्तादिभेदेन सचाधिकारस्तावच्चतुर्विधः॥*। तत्र कार्य्यञ्च संज्ञा विधि-निषेध-भेदेन त्रिविधमिति षड्विधः। स च सजातीय-विजातीयानेकाधिकारस्य व्यापी 'वासुदेव' संज्ञः; तदवान्तरानेकाधिकारव्यापी 'विभु' संज्ञः केवलः 'प्रभु' संज्ञः; तत्र वासुदेवोऽयम्। किन्तु 'धातोः' इति सम्बन्धसामान्यनिर्द्देशात् यथायथं पञ्चम्याद्यर्थो ज्ञेयः ॥२॥

३। तत्र प्रायो वर्त्तमानकाले तिवादयोऽष्टादशाच्युत नामानः।

तिप् तस् अन्ति, सिप् थस् थ, मिप् वस् मस् ते आते अन्ते, से आथे ध्वे, ए वहे महे। एते 'वर्त्तमानः' इत्यन्ये, 'लट्' इत्येके ॥३॥

४। विधि सम्भावनादौ यादादयो विधिनामानः।

यात् याताम् युस्, यास् यातम् यात, याम् याव याम। ईत ईयाताम् ईरन्, ईथास् ईयाथाम् ईध्वम्, ईय ईवहि ईमहि। एते 'सप्तमी' इत्यन्ये, 'विधिलिङ्' इत्येके ॥४॥

५। आशीः प्रेरणादौ तुवादयो विधातृ नामानः।

तुप् ताम् अन्तु, हि तम् त, आनिप् आवप् आमप्। ताम् आताम् अन्ताम्, स्व आथाम् ध्वम्, ऐप् आवहैप् आमहैप्। एते 'पञ्चमी' इत्यन्ये, 'लोट्' इत्येके ॥५॥

६। अनद्यतन-भूते दिवादयो भूतेश्वरनामानः

दिप् ताम् अन्, सिप् तम् त, पम् व म। त आताम् अन्त, थास् आथाम् ध्वम्, इ वहि महि। एते 'ह्यस्तनी' इत्यन्ये, 'लङ्' इत्येके ॥६॥

७। भूते दिवादयो भूतेश नामानः।

एते 'अद्यतनी' इत्यन्ये, 'लुङ्' इत्येके ॥७॥

८। परोक्षभूते णलादयोऽधोक्षज-नामानः

णल् अतुस् उस्, थल् अथुस् अ, णल् व म। ए आते इरे, से आथे ध्वे, ए वहे महे। एते 'परोक्षा' इत्यन्ये, 'लिट्' इत्येके ॥८॥

९। आशिषि यात् यास्तामित्यादयः कामपाल-नामानः।

यात् यास्ताम् यासुस्, यास् यास्तम्, यास्त, यासम् यास्व यास्म। सीष्ट सीयास्ताम् सीरन्, सीष्ठास् सीयास्थाम् सीध्वम्, सीय सीवहि सीमहि। एते 'आशीः' इत्यन्ये, 'आशीर्लिङ्' इत्येके ॥९॥

१०। अर्हार्थेऽनद्यतन-भविष्यति च तादयो बालकल्कि-नामानः।

ता तारौ तारस्, तासि तास्थस् तास्थ, तास्मि तास्वस् तास्मस्। ता तारौ तारस्, तासे तासाथे ताध्वे, ताहे तास्वहे तास्महे। एते 'श्वस्तनी' इत्यन्ये 'लुट्' इत्येके ॥१०॥

११। भविष्यत्काले स्यत्यादयः कल्किनामानः

स्यति स्यतस् स्यन्ति, स्यसि स्यथस् स्यथ; स्यामि स्यावस् स्यामस्। स्यते स्येते स्यन्ते, स्यसे स्येथे स्यध्वे, स्ये स्यावहे स्यामहे। एते 'भविष्यन्ती,

---

"भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च। तुदादिश्च रुधादिश्च तनक्र्यादि चुरादयः॥" (पाणिनीयश्लोकः)

* १। 'प्राङ् निमित्तं' तथा २। 'कार्य्यी' ३। 'कार्य्यं' ४। 'परनिमित्तकम्' (वि० प्र० ८)

इत्यन्ये, 'लृट्' इत्येके ॥११॥

१२। साकाङ्क्षं यत्र क्रियातिक्रमो निर्दिश्यते तत्र कार्य्य-कारणयोः स्यादादिका अजितोनामानो भूते भविष्यति च।

स्यत् स्यताम् स्यन्, स्यस् स्यतम् स्यत, स्यम् स्याव स्याम। स्यत स्येताम् स्यन्त, स्यथास् स्येथाम् स्यध्वम्, स्ये स्यावहि स्यामहि। एते 'क्रियातिपत्तिः' इत्यन्ये, 'लृङ्' इत्येके।

अच्युतादयः 'तिङ्' इत्येके, 'आख्यातम्' इति सर्व्वे। सर्व्वत्र प्राम इत्, ण-लौ च,
दिप्-सिपोरिरामश्च ॥१२॥

१३। पित् पृथुः।

१४। णित् नृसिंहः।

१५। कित् कपिलः।

१६। ङिन्निर्गुणः।

१७। किच्च ङिच्च कंसारिः।

१८। शित् शिवः।

१९। तिवादि नवनवानां पूर्व्वपूर्व्वाणि परपदसंज्ञानि।

'परस्मैपदानि' इत्यन्ये। तिप् तस् अन्ति इत्यादीनि यात् याताम् युस् इत्यादीनि, एवमुत्तरत्रापि ॥१९॥

२०। उत्तरोत्तराण्यात्मपद-संज्ञकानि।

'आत्मनेपदानि' इत्यन्ये, 'तङ्' इति च पा (१।४।१००)। ते आते अन्ते इत्यादीनि ; ईत ईयाताम् ईरन् इत्यादीनि। एवमुत्तरत्रापि ॥२०॥

२१। नवकेषु त्रीणि त्रीणि प्रथम-मध्यमोत्तम-पुरुष-संज्ञकानि।

यथा—तिप् तस् अन्ति इति प्रथमपुरुषः, सिप् थस् थ इति मध्यमः, मिप् वस् मस् इति उत्तमः। ते आते अन्ते इति प्रथमः ॥२१॥

२२। अच्युतादयः पञ्च, शिवश्च कृष्णधातुकाः

'सार्व्वधातुकानि' इत्येके ॥२२॥

२३। अन्ये प्रत्यया रामधातुकाः।

'आर्द्धधातुकानि' इत्येके ॥२३॥

२४। परपदानि कर्त्तरि।

२५। आत्मपदिभ्य आत्मपदानि ङितश्च।

२६। उभयपदिभ्य उभयपदानि ञितश्च।

२७। आत्मपदान्येव कर्म्मणि।

२८। आत्मपद-प्रथमपुरुषैकवचनमेव भावे।

भावो धात्वर्थः। कर्त्तृ-कर्म्मणी वक्ष्यते (का०प्र० १३, १७) ॥२८॥

अत्र भुवादिगणे परपदिनां पदानि दर्श्यन्ते। भू सत्तायाम् ; सत्ता—विद्यमानता। तत्र कर्त्तरि एकवचनादयः स्वादिवज्ज्ञेयाः।

भू तिप् इति स्थिते प् इत्—

२९। शप् कृष्णधातुके कर्त्तरि।

विकरणाख्योऽयम्। शपावितौ, अरामशेषः ॥२९

३०। धातोरन्तस्य गोविन्दः प्रत्यये।

स इद्वयादीनामेव विहितः। शिवत्वात् कृष्णधातुकत्वम् ॥३०॥

३१। अपृथु कृष्णधातुको निर्गुणः।

तस्मात् पृथुत्वान्नात्र निर्गुणत्वम्। 'ओ अव् (स० प्र० ६५)—भवति। भू-तस्, 'स-र-रामयोर्विष्णुसर्गो (वि० प्र० ८)—भवतः ॥३१॥

भू अन्ति—

३२। अरामहर ए-अयोरविष्णुपदान्ते।

भवन्ति। 'अविष्णुपदान्ते' इति किम्? प्लायते। 'दैत्यमर्द्दति' इति कर्म्मण्यणि 'दैत्यार्द्द' इत्यादीनां वक्ष्यमाणत्वादरामहरो न स्यात्। भवसि, भवथः भवथ ॥३२॥

३३। अ आ व-मोः।

भवामि भवावः भवामः। अकर्म्मकोऽयम्, यतः
सत्ता-वृद्धि-विशुद्धि-सिद्धि-शयन-स्थानासने भासने लज्जा-जीवन-रोदने च हदने-नृत्ये-विलासे क्रुधि।

त्रास-स्पन्द-निवास-शोष-मरण-स्पर्द्धा-विहारेष्वपि
ज्ञातो धातुरकर्म्मकः क्षय-मदोद्वेग-प्रकम्पेष्वपि ।।

उपलक्षणञ्चैतत् ; जागरणार्थादिष्वपि । तस्मान्नास्य कर्म्मणि प्रयोगः ।।३३।।

भावे दर्श्यते—भू-ते इति स्थिते—

३४ । यक् कृष्णधातुके भाव कर्म्मणोः ।

क् इत् ।।३४।।

३५ । ईशस्य न गोविन्द-वृष्णिन्द्रो कंसारिषु

भूयते । 'ईशस्य' इति किम् ? कामयते । प्राप्त्यर्थोऽपि भूधातुरस्ति, तदा सकर्म्मकत्वेन कर्म्मणि च । तथा चाख्यातचन्द्रिका (द्वितीय-काण्डे क्षत्रियचेष्टावर्गे षष्टितम-पर्य्यायः)—"प्राप्तौ प्राप्नोति, भवति, विन्दत्यवरुणद्धचपि ; आत्मनेऽपि द्वयम्" इति । 'भवत्यप्यात्मने' इति केचित् । भूयते ।।३५।।

भूय आते—

३६ । अत आ ईस्तथयोः ।

भूयेते भूयन्ते, भूयसे भूयेथे भूयध्वे भूये भूयावहे भूयामहे ।।३६।।

अथ विधौ कर्त्तरि—

३७ । अतो या ईः ।

भवेत् भवेताम् ।।३७।।

३८ । अत इट् युसि ।

भवेयुः, भवेः भवेतम्, भवेत ।।३८।।

३९ । अतो याम इयम् ।

भवेयम् भवेव भवेम । भावे—भूयेते । प्राप्त्यर्थे कर्म्मणि—भूयेत भूयेयाताम् भूयेरन् भूयेथाः भूयेयाथाम् भूयेध्वम् भूयेय भूयेवहि भूयेमहि ।।३९।।

अथ विधातरि कर्त्तरि—भवतु—

४० । तु-ह्योस्तातङाशिषि वा सर्व्वत्र ।

भवताद्वा, भवताम् भवन्तु ।।४०।।

४१ । अतो हेर्हरः ।

भव भवताद्वा, भवतम्, भवत, भवानि, भवाव भवाम ।।४१।।

४२ । प्रादयो उपेन्द्र-संज्ञा धातु योगे, ते च प्राक् ।

उपसर्गाः प्राञ्चः ।

प्र-पराऽप-समन्वव-निर्दुरभि-
व्यधि-सूदति-नि-प्रति-पर्य्यपयः ।
उप-आङिति विंशतिरेष सखे
उपसर्गविधिः कथितः कविना ।।*

(सुपद्मव्याकरणम्, कातन्त्रपञ्जी च)

प्र परा अप सम् अनु अव निर् दुर् अभि वि अधि सु उत् अति नि प्रति परि अपि उप आङ् ; 'निस्' इति पाठान्तरम् ; आङो ङ् इत् । ततो भूधातोः प्र पूर्व्वत्वे प्राद्यव्ययात् स्वादेर्महाहरः (वि० प्र० २१७) एवं सर्व्वत्र ; प्रभवति, प्रभवतः इत्यादि ।।४२।।

४३ । पूर्व्वोक्तनिमित्तत्वे सत्येव षत्वणत्वे सर्व्वत्र नियमोऽयम् ।।४३।।

४४ । उपेन्द्रात् णोपदेशस्य णत्वम् ।

४५ । हिनुमीनानिपाश्च ।

४६ । निंस्निङ्क्ष्निन्दां वा[1] ।

४७ । निंसादीनां कृतीत्येके ।

हि गतौ+श्नु=हिनु ; मीञ् हिंसायाम्+श्ना =मीना ; आनिपः—प्रभवाणि । 'उपेन्द्रात्' (अ० प्र० ४४) इति किम् ?—प्रगतो नायकः—प्रनायकः ।

---

१ । 'निस्निन्द निङ्क्षां वा' (क)

* उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यः प्रतीयते । प्रहाराहार-संहार-विहार-परिहारवत् ।।
क्वचिद्‌भिनत्ति धात्वर्थं क्वचित्तमनुवर्त्तते । विशिनष्टि तमेवार्थमुपसर्गगतिस्त्रिधा ।।
क्वचिदर्थं प्रादि-योगे ह्यकर्म्माणोऽपि धातवः । सत्कर्म्माणः प्रजायन्ते सतां सङ्गाज्जन इव ।।

'दुरुपसर्गस्य प्रतिषेधः' इति भाष्यम्—दुर्भवानि। 'उपसर्ग-प्रतिरूपकत्वादेव न णत्वम्' इति अष्टक-वृत्तिकृत् ।।४३-४७।।

४८। आङोऽन्येन विष्णुपदेन व्यवधानेन णत्वं न।

पर्य्यवभवानि ।।४८।।

४९। वक्ष्यमाणकृदादौ च।

प्रापयानम्। आङा तु णत्वमेव—पर्य्याभवाणि ।।४९

५०। व-मादयस्ते त्वच्युतादेरेव, नान्यस्य

नियमोऽयम्; तेन 'अवहृत्' इत्यादौ न त्रिविक्रमादि भावे—भूयताम्। कर्म्मणि—भूयताम्, भूयेताम्; भूयन्ताम्, भूयस्व, भूयेथाम्, भूयध्वम्; भूयै, भूयावहै भूयामहै ।।५०।।

भूतेश्वरे कर्त्तरि—

५१। धातोः पूर्व्वमत् भूतेश्वर-भूतेशाजितेषु

विष्णुरयम्। 'अट्' पा (६।४।७१) अत्र 'पा' इति 'पाणिनीयानाम्' इति साङ्केतितम्। येन 'नाव्यवधान सम्भवति, तेन व्यवधानेऽपि—अभवत्, अभवताम्, अभवन्, अभवः, अभवतम्, अभवत, अभवम्, अभवाव अभवाम। भावे—अभूयत। कर्म्मणि—अभूयत, अभूयेताम्, अभूयन्त, अभूयथाः, अभूयेथाम्, अभूयध्वम् अभूये, अभूयावहि, अभूयामहि ।।५१।।

भूतेशे कर्त्तरि—भू-दिप्, अदागमः—

५२। सिर्भूतेशे।

इराम इत्। 'सिच्' पा (३।१।४४) ।।५२।।

५३। इग-स्था-पिवति-दामोदर-भूभ्यः सेर्महाहरः परपदे।

५४। दाप्—दैप्-दीङो विना दा-धा दामोदर-संज्ञाः।

'दा' इत्यन्ये, 'घु' इत्येके। दाप्-दैप्-दीङाम् 'अदासीत्, अदास्त' इत्यादौ प्रयोजनम् ।।५४।।

५५। भुवो न गोविन्दः सि-लुकि।

अभूत्; अत्र शपं बाधित्वा सिर्जातः, इति तस्य महाहरेति शप् न स्यात्, 'सकृदपि विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव' इति न्यायात्। अभूताम् ।।५५।।

५६। भुवो भूव् भूतेशाधोक्षज-सर्व्वेश्वरे।

अभूवन्, अभूः, अभूतम्, अभूत, अभूवम्, अभूव, अभूम ।।५६।।

५७। अत्-प्रतिषेधो मा-मास्मयोगे।

मा भवान् भूत्; मास्म भूत् ।।५७।।

भावे—

५८। इण् भूतेश-ते भाव कर्म्मणोः।

ण् इत्, 'चिण्' पा (३।१।६०, ६६, ६।४।१०४) ।।५८

५९। अन्तस्य वृष्णीन्द्रो नृसिंहे।

६०। इणस्तो हरः।

अभावि। कर्म्मणि—अभावि ।।६०।।

६१। इट् रामधातुके।

६२। सहज-सर्व्वेश्वरान्त-हन-ग्रह-दृशिभ्य इण्वदिड्वा स्य-सि-कामपाल-बालकल्किषु भाव-कर्म्मणोः।

'दृशस्तिवड्' इति कृते पृथगारम्भे गौरवं स्यात्। अभाविषाताम्, अभविषाताम् ।।६१-६२।।

६३। अरामान्यवर्णादन्ते-अन्तामन्तानां नस्य हरः।

६४। शीङो रुट् च।

६५। वेत्ते रुट् तु वा।

अभाविषत, अभविषत। 'षात् परस्य टवर्गयुक्तस्य' (वि० प्र० १३५) इति—अभाविष्ठाः, अभविष्ठाः; अभाविषाथाम्, अभविषाथाम् ।।६३।।

६६। सस्य हरो धे।

६७। ईश्वर-हरिमित्र-हकारेभ्यः सीध्वं भूतेशाधोक्षजानां धस्य ढः।

६८। इड्व्यवधाने तु वा।

अभाविढ्वम्, अभाविध्वम्, अभविढ्वम्, अभविध्वम् द्वित्वपक्षे—अभाविड्ढ्वम्, अभाविषि अभविषि; अभाविष्वहि अभविष्वहि, अभाविष्महि अभविष्महि ॥६६-६८॥

अधोक्षजे कर्त्तरि—भू-णल्, णलावितौ, 'भुवो भूव्' (आ० प्र० ५६)—

६९। धातोर्द्विर्वचनमधोक्षज-सन्नङ्-यङ्षु।

७०। सर्व्वेश्वरपर्य्यन्तस्यादिभागस्य अ-नरस्य द्विर्वचनम्।

७१। सर्व्वेश्वरादित्वे तु सत्सञ्ज्ञादि न-व-द-र-वर्ज्जस्यान्यभागस्य।

७२। सन्-यङोस्तु तत्सम्बन्धिनः सर्व्वेश्वरस्य च।

तदेवं 'भू' इत्यस्य द्विर्वचनरूपे 'भू भू' इत्यादेशे कृते—

द्विरुक्तस्य—

७३। पूर्व्वो नरः।

७४। परो नारायणः।

'पूर्व्वः—अभ्यासः; परम्—अभ्यस्तम्' इति प्राञ्चः ॥७३-७४॥

७५। भू-नरस्य भोऽधोक्षजे।

७६। हरिखड्गस्य हरिकमलं, हरिघोषस्य हरिगदा नरस्य।

७७। नेट् य-सर्व्वेश्वरयोः।

नित्यत्वाद्भूवादेशः (आ० प्र० ५६)—बभूव, बभूवतुः, बभूवुः, टिदागमः परसम्बन्धी; अत इटोऽप्याधोक्षजता—बभूविथ, बभूवथुः, बभूव, बभूव, बभूविव, बभूविम। भावे—बभूवे। कर्म्मणि—बभूवे, बभूवाते, बभूविरे, बभूविषे, बभूवाते, बभूविढ्वे बभूविध्वे, बभूवे, बभूविवहे, बभूविमहे। 'बुभूव' इत्यादि केषाञ्चित् ॥७५-७७॥

कामपाले कर्त्तरि—

७८। कामपालपरपदं कपिलः।

कपिलत्वान्निर्गुणः। भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासुः भूयाः, भूयास्तम्, भूयास्त, भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म भावे—भाविषीष्ट, भविषीष्ट। कर्म्मणि—भाविषीष्ट, भाविषीयास्ताम्, भाविषीरन्।
भाविषीष्ठाः, भाविषीयास्थाम्, भाविषीढ्वम् भाविषीध्वम्; भाविषीय, भाविषीवहि, भाविषीमहि पक्षे—भविषीष्ट इत्यादि।

बालकल्कौ कर्त्तरि—भविता, भवितारौ, भवितारः भवितासि, भवितास्थः, भवितास्थ, भवितास्मि, भवितास्वः, भवितास्मः। भावे—भाविता भविता। कर्म्मणि—भाविता, भावितारौ, भावितारः, भावितासे, भावितासाथे, भाविताध्वे, भाविताहे, भावितास्वहे, भावितास्महे। पक्षे—भविता इत्यादि

कल्कौ कर्त्तरि—भविष्यति, भविष्यतः, भविष्यन्ति, भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ, भविष्यामि, भविष्यावः, भविष्यामः। भावे—भाविष्यते भविष्यते कर्म्मणि—भाविष्यते, भाविष्येते, भाविष्यन्ते, भाविष्यसे, भाविष्येथे, भाविष्यध्वे, भाविष्ये, भाविष्यावहे, भाविष्यामहे। पक्षे—भविष्यते इत्यादि

अजिते कर्त्तरि—अभविष्यत्, अभविष्यताम्, अभविष्यन्, अभविष्यः, अभविष्यतम्, अभविष्यत, अभविष्यम्, अभविष्याव, अभविष्याम। भावे—अभाविष्यत अभविष्यत। कर्म्मणि—अभाविष्यत, अभाविष्येताम्, अभाविष्यन्त, अभाविष्यथाः, अभाविष्येथाम्, अभाविष्यध्वम्, अभाविष्ये, अभाविष्यावहि, अभाविष्यामहि। पक्षे—अभविष्यत इत्यादि ॥८८॥ **चिती संज्ञाने**; संज्ञानम्-चैतन्यम्; तस्माज्जागरणार्थादिकर्म्मकोऽयम् (आ० प्र० ३३) क्वचिद्विशेषे ज्ञानेऽपि दृश्यते, तत्र अकर्म्मकः—'चिचेत रामस्तं क्लेशम्' * इति भट्टिः (१४।६२)।

---

* "चिचेत् रामस्तत् कृच्छ्रम्" इति पाठस्तु भट्टिकाव्ये (१४।६२) दृश्यते।

७९। द्व्यक्षरधातोरन्तः पूर्व्वश्च सर्व्वेश्वरः सविष्णुचापः, जागृ-कथादिवर्ज्जं चकासृ-प्रभृतीनामन्तः, ओवै-ओश्वि-प्रभृतिनां पूर्व्वः।

ततो इराम इत् ॥७९॥

८०। लघूद्धवस्य गोविन्दः, वामनो लघुः।

अच्युते कर्त्तरि—चेतति, भावे—चित्यते। विधौ चेतेत्, भावे—चित्येत। विधातरि—चेततु चित्यताम् भूतेश्वरे—अचेतत्, अचित्यत ॥८०॥

भूतेशे—दिप्, सिः (आ० प्र० ५२) **इट्** (६१) **गोविन्दः** (३०)—

८१। अस्ति-सिभ्यामिड् दिप्-सिपोः।

८२। इटः सि-लोप ईटि।

अचेतीत्, अचेतिष्टाम् ॥८१-८२॥

८३। सि-नारायण-वेत्तिभ्योऽनउस्।

अचेतिषुः, अचेतीः, अचेतिष्टम्, अचेतिष्ट; अचेतिषम्, अचेतिष्व, अचेतिष्म। भावे—अचेति ॥८३॥

अधोक्षजे—चिचेत—

८४। असंयोगादलिदधोक्षजः कपिलः।

८५। सञ्जेर्व्वा।

८६। श्रन्थि-ग्रन्थि-दम्भिभ्यस्थल् च वा।

'सत्सङ्गमात्वात्' इति तु न वृद्धानां मतम्। चिचिततुः, चिचितुः, चिचेतिथ, चिचितथुः, चिचित चिचेत, चिचितिव, चिचितिम; भावे—चिचिते। कामपाले—चित्यात्, भावे—चेतिषीष्ट। बालकल्कौ—चेतिता, भावे—चेतिता। कल्कौ—चेतिष्यति; भावे—चेतिष्यते। अजिते—अचेतिष्यत्; भावे—अचेतिष्यत। एवं कर्म्मणि ज्ञेयम् ॥८६॥

स्फुटिर् विशरणे; विशरणम्—विदारणम्; 'विसरणे' इति पाठे विकाशः। धातोरन्त इरित्। कर्त्तरि—स्फोटति। कर्म्मणि—स्फुटचते

८७। अरामहरस्य निमित्तमरामः पूर्व्ववच्च।

ततो न नस्य हरः, स्फुटचन्ते, चित्यन्ते। विध्यादौ—स्फोटेत, स्फुट्यते। स्फोटतु, स्फुट्यताम् अस्फोटत्, अस्फुट्यत ॥८७॥

भूतेशे—

८८। इरनुबन्धात् ङो वा भूतेश-परपदे।

ङ् इत्, अरामशेषः। 'अङ्' पा (३।१।५७)। अस्फुटत्, अस्फोटीत्, अस्फुटताम्, अस्फोटिष्टाम्। इटो व्यवधानतया निर्द्देशान्न निमित्तत्वम्, ततो न ढत्वम्—अस्फोटिध्वम्। एवम् अचेतिध्वम् ॥८८॥

अधोक्षजे—

८९। नर-विष्णुजनानामादिः शिष्यते।

९०। शौरिशिरस्कस्तु सात्वतः।

अन्यो विष्णुजनो न रक्ष्यते। पुस्फोट, पुस्फुटे। कामपाले—स्फुटचात् स्फोटिषीष्ट। बालकल्कौ—स्फोटिता। कल्कौ—स्फोटिष्यते। अजिते—अस्फोटिष्यत् अस्फोटिष्यत।

एवं श्च्युतिर् क्षरणे, दन्त्यादिरयम्; 'सस्य शश्चवर्गयोगे' (वि० प्र० १०२)—श्च्योतति, अश्च्युतत्, अश्च्योतीत्, चुश्च्योत। एवं च्युतिर् आसेचने ॥९०॥

मन्थ् विलोडने—मन्थति—

९१। अनिरामेतां विष्णुजनान्तानामुद्धवनरामहरः कंसारौ।

९२। लगि कम्प्योरुपताप-शरीरविकारयोः।

मथ्यते। भूतेशे—अमन्थीत्, अमन्थि। अधोक्षजे—ममन्थ, ममन्थे। कामपाले—मथ्यात्, मन्थिषीष्ट ॥९१-९२॥

कुथि हिंसा-संक्लेशयोः, इराम इत्—

९३। इरामेद्धातोर्नुम्।

उपदेश एवायं नुम्, कुन्थति। इरामेत्वान्न नस्य हरः (आ० प्र० ९१) कुन्थ्यते ॥९३॥

९४। कवर्ग-नरस्य चवर्गः।

चुकुन्थ।

लगि गतौ—विलग्यते। कपि चलने—विकप्यते। उपतापादिभ्यामन्यत्र तु—लङ्ग्यते, कम्प्यते ॥९४॥

षिधु गत्याम्, उराम इत्—

९५। धात्वादेः षः सः।

९६। सर्व्वेश्वर-दन्त्यपरा धातोरादिसाः षोपदेशाः। *

९७। ष्वष्क[1]-स्विद-स्वद-स्वञ्ज-स्वप-स्मिङाश्च[2]।

९८। सृप्लृ-सृ-स्तृ-सृज्-स्तृ-स्त्या-सूच-सूत्र-स्तन-संग्राम-सार-साम-सभाज-सेक्-स्तेन-स्तोम—वर्ज्जम्।

सूत्र-स्थूल-सुखाश्च धातुप्रदीपे दृश्यन्ते। दन्त्यपरत्वेऽपि ष्वष्कादीनां[3] पाठो नियमार्थस्तेन स्वृप्रभृतीनां न स्यादिति। सेधति ॥९८॥

९९। उपेन्द्रादपि षोपदेशस्य षत्वं क्वचित् निषेधति। अद्व्यवधानेऽपि षत्वम्—न्यषेधत्।

षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च, ऊराम इत्, शास्त्रम्—अनुशासनम्, माङ्गल्यम्—शिवम्, सेधति शिष्यं गुरुः सेधति हरिभक्तिः ॥९९॥

१००। स्वरति-सूति-सूयति-धुञूदित इड्वा

असेधीत्, असेधिष्टाम् इत्यादि ॥१००॥

१०१। विष्णुजनान्तानामनिटां वृष्णीन्द्रः सौ परपदे।

'यादवमात्रे हरिकमलम्' (स० प्र० ९८)—असैत्सीत् ॥१०१॥

१०२। वामन-वैष्णवाभ्यां सेर्हरो वैष्णवे न त्विटः।

१०३। हरिघोषात्त-थोर्धो धा-वर्ज्जम्।

असैद्धाम् इत्यादि। वस्यापि वैष्णवत्वाभावात् सेर्हराभावः—

उद्गूठौ यत्र विद्येते प्रत्ययोऽच्प्रभवश्च यः।
अन्तःस्थं वं विजानीयात्तदन्यो वर्ग्य उच्यते ॥*

इति स्मरणात्—असैत्स्व, असैत्स्म। कर्म्मणि—असेधि, असेधिषाताम् ॥१०२-१०३॥

१०४। ऋद्व्याद्विष्णुजनान्तेशोद्धवाच्च वैष्णवादि-सि-कामपालौ कपिलावात्मपदे, गमेस्तु वा।

असित्सातामु ॥१०४॥

१०५। कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-श्रु-स्रुभ्य एवाधोक्षजमात्रे नेट्।

अन्येभ्यस्त्वनिड्भ्योऽपीट् इति नियमादधोक्षजे नित्यमिट्—सिषेधिथ, सित्सीष्ट सेधिषीष्ट ॥१०५॥

गद् व्यक्तायां वाचि—

१०६। विष्णुजनादेर्लघोररामस्य वृष्णीन्द्र इडादौ सौ वा परपदे।

अगादीत्, अगदीत् ॥१०६॥

१०७। उद्धवारामस्य वृष्णीन्द्रो नृसिंहे।

भावे—अगादि। जगाद ॥१०७॥

१०८। उत्तम-णल् नृसिंह कार्य्यकरो वा।

जगाद, जगद ॥१०८॥

अट् गतौ—

१०९। सर्व्वेश्वरादेर्वृष्णीन्द्रोऽत्प्रसङ्गमात्रे।

'आट्वृद्धिः' च पा (६।४।७२)। आटत्। आटीत्। विष्णुजनादित्वाभावात्—मा भवानटीत् ॥१०९॥

अधोक्षजे द्विर्वचने कृते लोपापवादमाह—

११०। नरादेररामस्य त्रिविक्रमः।

* 'सेक्-सृप्-सृ-स्तृ-सृज-स्तृ-स्त्याऽन्ये दन्त्याजन्तसादयः। एकाचः षोपदेशाः ष्वष्क्स्विद्स्वदस्वञ्जस्वत्स्मिङः ॥' (सिद्धान्तकौमुदी)

[1] ष्वस्क (ख ग घ) [2] स्विङाञ्च (ख ग घ) [3] ष्वस्कादीनां (ख ग घ)

* उद्गूठौ यत्र विद्येते यो वः प्रत्ययसन्धिजः। अन्तःस्थं तं विजानीयात्तथोपसर्गयोर्द्वयोः ॥

१११। तस्मान्नुङ् द्विविष्णुजने धातौ।

आट, आटतुः ॥११०-१११॥

रद् विलेखने—रराद—

११२। आदेशहीन-नराद्यक्षरस्य धातोरसंयुक्त-विष्णुजनमध्यस्यारामस्य एत्वं नरादर्शनञ्च कपिलाधोक्षजे सेट्थलि च।

११३। तॄ-फल-भज-त्रपां, नलोपि-ग्रन्थि-श्रन्थि-दन्भीनाञ्च।

११४। जॄ-भ्रमु-त्रस-फणादीनां हिंसार्थ-राधश्च वा।

रेदतुः, रेदुः, रेदिथ। आदेशयुक्तस्य तु—जगदतुः। संयुक्तविष्णुजनमध्यस्य तु—ननन्दिथ[1] ॥११२-११४॥

णद् अव्यक्तशब्दे—

११५। धात्वादेर्णो नः।

११६। सर्व्वे नादयो णोपदेशा नॄ--नृति-नर्द्दि-नन्दि-नक्कि-नाथि-नाधि-नटिवर्ज्जम्।*

नाथौ तु भाष्ये णोादेशत्वं, परायणे तु न। नदति ॥११५-११६॥

११७। उपेन्द्रात् णोपदेशस्य णत्वम्।

प्रणदति ॥११७॥

११८। उपेन्द्रान्नेर्णत्वं नद-गद-पत-पद-वह-वप-हन्ति-द्राति-मा-या-दामोदर-शमु-सो-चिजि-दिहि-वाति-प्साातिष्वद्—व्यवधानेऽपि, क-खादि-सहज-षान्तौ विना शेषे तु वा।

'मा' इति मेङ्माङोर्ग्रहणम्, 'मातेरपि' इति केचित्। प्रणिनदति, प्रण्यनदत्। एवं प्रणिगदति इत्यादि। ननाद, नेदतुः। अर्द्द गतौ याचने च—अर्द्दति, प्रणर्द्दति प्रन्यर्द्दति। 'कखादिसहजषान्तौ विना' इति किम्? प्रणिकषति, प्रणिखनति। भूतेश्वरे—आर्द्दत। 'नरादे' इति, 'तस्मान्नुङ्' इति उटावितौ—आनर्द्द। इदि परमैश्वर्य्ये, इराम इत्, 'इरामेद्धातोर्नुम्' (आ० प्र० ९३)—इन्दति, ऐन्दत् ॥११८॥

११९। ऋच्छ-वर्जित-गुर्व्वीश्वरादेरामधोक्षजे

आमो मस्येत्वनिषेधः ॥११९॥

१२०। आमः कृ-भ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते।

१२१। कृञ आमन्तधातुवत् परपदादि।

१२२। अस्भुवोस्त्वस्भूवत् [2]।

१२३। नर-ऋरामस्यारामः।

इन्दाञ्चकार ॥१२०-१२३॥

१२४। आमो मस्य हरिवेणु-विधिर्व्वा।

इन्दांचकार। कर्त्तरि न त्विन्दाञ्चक्रे ॥१२४॥

१२५। द्विर्व्वचननिमित्त-सर्व्वेश्वरपरमात्रे सति यः सर्व्वेश्वरस्यादेशः, स स्थानिवत् द्विर्व्वचने एव कर्त्तव्ये।

अत्र लोपोऽप्यादेशवत्। ततो गोविन्द-वृष्णीन्द्रौ, यादयश्चादयादयश्चादेशा आरामोद्धव-णि-लोपाश्च स्थानिवत्। ततो ररमादेशस्य स्थानिवत्त्वे कृते कृरामस्य द्विर्व्वचनम्। अतः पश्चादेव द्विर्व्वचनं यत्, तत् प्रयोजनं 'दुद्यूषति' (आ० प्र० ४६१) इत्यादौ सेत्स्यति। इन्दाञ्चक्रतुः, इन्दाञ्चक्रुः। 'कृ-सृ-भृ-वृ' (आ० प्र० १०५) इति नेट्—इन्दाञ्चकर्थ, इन्दाञ्चक्रथुः इन्दाञ्चक्र, इन्दाञ्चकार इन्दाञ्चकर, इन्दाञ्चकृव, इन्दाञ्चकृम। इन्दांबभूव इत्यादि, इन्दामास इत्यादि 'मात्र' ग्रहणात् उवोख इति सेत्स्यति, आटिटत् इति च ॥१२५॥

उख् गतौ—ओखति—

१२६। उपेन्द्राद्वयहर ए-ओ-रामयोरिनेधौ विना।

---

* नन्दतिर्नर्द्दतिर्नाथृ-नॄ-नृती-नाटि-नाथयः। नादयः सह विख्याता णादयस्ते परे मताः॥

[1] ननन्दतुः (क) [2] एतत् सूत्रं ख ग घ पाण्डुलिपिषु नास्ति।

१२७। नामधातौ वा।

प्र-ओखति इति स्थिते-असिद्धत्वात् न सत्सङ्क्रान्तहरः अतः प्रोखति। 'इनेधौ विना' इति किम्? उपैति; प्रैषते, औखत्, औखीत् ॥१२७॥

अधोक्षजे—

१२८। नरेदुतोरियुवावेकात्मकेतरसर्व्वेश्वरे।

द्विर्व्वचने कृते परस्य न स्थानिवत्त्वम्, तत उव्। आम् तु न स्यात्, 'गुर्व्वीश्वरादेः' इति सहजस्यैव ग्रहणात्। उवोख, ऊखतुः। कथमिदेराम्? परानपेक्षत्वेन, नुमः सहजत्वात्। गोविन्दस्तु कंसारिवर्ज्जमपेक्षते ॥१२८॥

अन्चु गति-पूजनयोः —'तवर्गस्य चवर्ग' (वि० प्र० ६५) अञ्चति। कर्म्मणि गतौ—अच्यते; 'अनिरामेतां' (आ० प्र० ६१) इति नस्य हरः।

१२९। अञ्चेः पूजायां नलोपाभावः।

अञ्चयते, आनञ्च, आनञ्चतुः, आनञ्चुः। कामपाले गतौ—अच्यात्, पूजायाम्—अञ्चयात् ॥१२९॥

आछि आयामे—आञ्छति—

१३०। नरस्य वामनः।

'नरादे' (आ० प्र० ११०) इति कृते, ततो नुट्— आनाञ्छ। 'न' इति बहवः—आञ्छ ॥१३०॥

षस्ज् गतौ—

१३१। सस्य जो जे, न तु वैष्णवे।

सज्जति। 'वैष्णव' ग्रहणम् 'अमांक्षीत्' इत्यादौ सेत्स्यति ॥१३१॥

वज् गतौ—

१३२। शसुददवरामादीनां गोविन्दारामस्य च नैत्वादि।

'शसिति द्वितालव्य' इत्येके। वजोऽयं दन्तोष्ठ्यादिगणपठितः। तत्प्रसङ्गाद्वरामादिरपि तदादिरेव, ववजतुः ॥१३२॥

व्रज् गतौ—

१३३। वद-व्रजयोर्वृष्णीन्द्रः सौ परपदे।

अव्राजीत् ॥१३३॥

अज् गतौ क्षेपणे च—

१३४। अजेर्वी घणं विना रामधातुके।

१३५। वले तु वा, यपि च।

घण्-यपौ कृत्प्रत्ययौ। वीयते, वीरयमनिट्।

अथानिटः

ऊ-ऋरामान्त-रु-स्नु-क्षण्-शी-यु-नु-क्षु-श्वि-डी-श्रिभिः।
वृङ्-वृञ्भ्यां च विनैकाचः, स्वरान्ता धातवोऽनिटः ॥
अनिडेकः शक्लृः कान्ते, चान्ते पचि-वची विचिः।
सिचिर्मुचिरिची चैक,-श्छान्ते प्रच्छिरुदाहृतः ॥

भजि-भञ्जि-यजि-त्यजि-रञ्जि-रुजो
भुजि-सञ्जि-सृजोऽप्यथ-मज्जिरपि।
युजि-भृज्जि-निर्जिविजिरश्च तथा
स्वजिरुद्धवने[1] जगणेऽप्यनिटः ॥*

अर्दि हर्दि स्कन्दि-भिदि-च्छिदि-क्षुदीन्
शदि सदि स्विद्यति-पद्यती खिदिम्।
तुदिं नुदिं विद्यतिकं विनत्तिकं
प्रतीहि दान्तान् दश पञ्च चानिटः ॥*

क्रुधि-राधि-रुधि-क्षुधि-बुध्यतयो
व्यधि-शुध्यति-सिध्यति-बन्धि-युधः।
सह साधय इत्यनिटो ध-गणे
हनि-मन्यति चेत्यपि नान्तगणे ॥*

स्वपि-वपि-तिपि-तपि-तृप्यापि-शपोऽपि
क्षिपि-सृपि-लिपि-लुम्प-च्छुपि-दृपयः।
पान्तगणेष्वथ भान्ते—लभि-रभि-जभि-
यभयो-मगणे—यमि-रमि-णमि-गमयश्च ॥*

शिषि-श्लिषी-दुष्य-विषि-त्विषि-द्विषीन्
पिषि कृषि पुष्यति-शुष्य-तुष्यतीन्।
दिशि दृशि दंशि-मृशी-रिशि-रुशि
लिशि-स्पृशि-क्रोश-विशोऽनिटो जगुः ॥*

१। रुद्धवने (क ख ग) * तोटकवृत्तम्। * वंशस्थविलवृत्तम्।

घसिश्च वसतिः सान्ते, हान्ते दहति-मेहती।
दिहिर्दुहि-लिही रोहि,—वहि-नहिरिमेऽनिटः ॥*

यु इति—यु मिश्रणे। 'युञ मिश्रणामिश्रणयोः' इति वोपदेवः, नु-साहचर्य्यात्। शक्लृरिति कृष्णपण्डितः। प्रक्रियाटीकायामत्र लृदिदेव शक्लृर्गृह्यते। कविकल्पद्रुमे (कान्तवर्गे सप्तमः श्लोकः) तु स्वादि-शक्लृर्विकल्पितेट्, दिवादिशक्लृस्तु सेट्। 'भुज्' इति भुजो-भुजौ गृह्येते। 'युजि' इति युज्-युजिरौ स्वजिरुद्धत्रन इति स्वञ्जिजरित्यर्थः। कालापा विन्दतिमपि गृह्णन्ति। लुम्पादयो लुम्पत्यादीनामेकदेश-निर्द्देशाः। 'लिशि' इति लिश् अल्पीभावे, 'निशि' इत्यपपाठः, वोपदेवाद्यसम्मतत्वात् अत एकसर्व्वेश्वरः सर्व्वेश्वरान्तश्चेति वीरनिट् ॥१३५॥

---

* "शक्लृ-वक्ति-घसि-क्रुधि-मन्यतयो, रभि-दंशि-लभि-क्रुशि-शुध्यतयः।
यभि-बुध्यति-हन्ति-यमाप्लृ-रुहो, रमि-राधि-नमि-व्यधि-सिध्यतयः ॥
युधि-बन्धि-रुधि-त्विषि-गम्-सृपयो, दृशि-शुष्यति-मेहति-पुष्यतयः।
भजि-भञ्जि-यजि-त्यजि-लुप्-कृषयो, भुजि-सञ्जि-रुजि-स्वजि-मज्जि-मुचः ॥
भिदि-विन्दति-सीदति-विद्यतयो, निजि-रञ्जि-सिचो-लिशि-शज्जभयः।
दिशि-दुष्यति-तुष्यति-पद्यतय, स्तपतिस्तिपि-भ्रस्जि-हृदि-क्षिपयः ॥
शपति-च्छिदि-पृच्छि-पिषि-श्लिषयो, वपति-स्वपि-नुद्यदि क्लिद्वहयः।
दहति-छुपि-देग्धि-पचि-व्रुवयो, विषलृ-लेढि नहि-क्षुदि-विज्लिपयः ॥
वसति-स्पृशि-दोग्धि-तुदि-स्कन्दयो, विशि-तृप्-दृपि-रुध्यति-सृज-स्विदयः।
क्षुधि-साधि-रिणक्ति-रिशि-द्विषयो, मृशतिश्च शिनष्टि-विनक्ति-युजः ॥
अनिङो हलि सेङ इमेऽचि परं, श्रयति-श्वयति-क्षु-यु-नु-क्ष्णुरुवः।
डयति-स्नु-वृणोति वृणाति-शियो, द्विबहुस्वर उपर ऋपरकः ॥" (संक्षिप्तसार-व्याकरणम्)

※ "ऊदृदन्तैर्यौति-रु-क्ष्णु-शीङ्-स्नु-नु-क्षु-श्वि-डीङ्-श्रिभिः। वृङ्-वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ॥
शक्लृ-पच्-मुच्-रिच्-वच्-विच्-सिच्-प्रच्छि-त्यज्-निजिर्-भजः।
भञ्ज्-भुज्-भ्रस्ज्-मस्जि-यज्-युज्-रुज्-रञ्ज्-विजिर्-स्वञ्जि--सञ्ज्-सृजः ॥
अद्-क्षुद्-खिद्-छिद्-तुदि-नुदः, पद्य-भिद्-विद्यति-विनद्। शद्-शदी स्विद्यति स्कन्दि-हदी क्रुध् क्षुधि-बुध्यती ॥
बन्धिर्युधि-रुधी-राधि-व्यध् शुधः साधि-सिध्यती। मन्य-हन्नाप्-क्षिप्-छुपि-तप्-तिपस्तृप्यति-दृप्यती ॥
लिप्-लुप्-वप्-शप्-स्वप्-सृपि-यभ्-रभ्-लभ्-गम्-नम्-यमो-रमिः।
क्रुशिर्दंशि-दिशी-दृश्-मृश्-रिश्-रुश्-लिश्-विश्-स्पृशः कृषिः ॥
त्विष्-तुष्-द्विष्-दुष्-पुष्य-पिष्-विष्-शिष्-शुष्-श्लिष्यतयो-घसिः।
वसति-र्दह्-दिहि-दुहो-नह्-मिह्-रुह्-लिह्-वहिस्तथा ॥
अनुदात्ता हलन्तेषु धातवो द्व्यधिकं शतम्। तुदादौ मतभेदेन स्थितौ यौ च चुरादिषु ॥
तृप्-दृपी तौ वारयितुं श्यना निर्देश आदृतः। क्लिद्य-पद्यौ सिध्य-बुध्यौ मन्य पुष्य-श्लिषः श्यना ॥
वसिः शपा लुका यौतिर्निर्दिष्टोऽन्यनिवृत्तये। णिजिर्-विजिर्-शक्लृ-इति सानुबन्धा अमी तथा ॥
विन्दतिश्चान्द्रदौर्गादेरिष्टो भाष्येऽपि दृश्यते। व्याघ्रभूत्यादयस्त्वेनं नेह पेठुरिति स्थितम् ॥
रञ्जि-मस्जि-अदि-पदी-तुद् क्षुद् शुषि-पुषी शिषिः। भाष्यानुक्ता नवेहोक्ता व्याघ्रभूत्यादि-सम्मते ॥" (पा ७।२।१०)

१३६। ईशान्तस्य वृष्णीन्द्रः सौ परपदे।

१३७। ऊर्णोतेर्व्वा।

'वले तु वा' (आ० प्र० १३५) इत्यस्य वैयर्थ्यात् 'विष्णुतः सर्व्वविरिञ्चिः' इत्यतश्चेटः पूर्व्वमेव पक्षे वीभावः—अवैषीत्, आजीत् ॥१३६-१३७॥

१३८। नरस्य वामनः।

विवाय ॥१३८॥

१३९। धातोश्चतुःसनेस्येयुवौ सर्व्वेश्वरे।

१४०। संयुक्तश्नोश्च।

१४१। असंयोगपूर्व्वस्यानेकसर्व्वेश्वरस्येद्वयस्य तु यः।

१४२। एति-हुवोर्य-वौ कृष्णधातुके एव।

गोविन्दवृष्णीन्द्राभ्यामन्यत्रैते। इद्वयादीनां याद्यादेशः स्थानिवत्, न तु द्वित्वविधाविति। 'धातो र-व-प्राक्' (वि० प्र० ११७) त्रिविक्रमो न स्यात्। 'विष्णुजने विष्णुजनो वा' (स० प्र० १२०) इति पक्षे द्वित्वं तु स्यात्—विव्यतुः, विव्व्यतुः। 'वी प्रजनकान्त्यसन-खादनेषु' इति 'वी' धातु-रप्यस्ति। तत्र च सति 'धातुप्रतिरूपादेशस्तद्धातुवत् प्रयोगो वक्तव्यः[1] इति न्यायेन वी-वदेवास्य प्रयोगः। ततश्च— ॥१३९-१४२॥

१४३। सर्व्वेश्वरान्तात् सहजानिट इड् वा थलि।

१४४। सहजारामवतश्च तादृशात्।

१४५। सृजि-दृशिभ्याञ्च।

१४६। अत्त्यर्त्ति-वृ-व्येञ्भ्यो नित्यम्।

१४७। ऋरामात्तु नित्यं नेट्।

सहजा अनिटः शकादिगण-पठिताः। 'सहज' ग्रहणं सनादावनिट्त्वेऽपि 'बभूविथ' इत्यादौ नित्यमिड्भावार्थः। विवेथ, विवयिथ, अनादेशपक्षे —आजिथ ॥१४३॥

क्षि क्षये—क्षयति, क्षयन्ति—

१४८। वामनस्य त्रिविक्रमः कृत्-कृष्णधातुकेतर-य-प्रत्यये।

क्षीयते, अक्षैषीत्, चिक्षाय, चिक्षियतुः, चिक्षियुः, चिक्षयिथ, चिक्षेथ। कृति तु—क्षेयम्। कृष्णधातुके —क्षियात् ॥१४८॥

लगे सङ्गे—

१४९। ह-म-यान्त-क्षण-श्वस-श्वीनामेरामतश्च न वृष्णीन्द्रः, सेटि सौ परपदे।

अलगीत् ॥१४९॥

गुपू रक्षणे, ऊराम इत्—

१५०। गुपू-धूप-विच्छि-पणि-पनिभ्य आयः

गोपाय।

सनाद्यन्ताश्च धातवः —

सन्-क्यच्-क्यङश्च-काम्यश्च-क्यङर्थ-क्विप् च णिस्तथा
कण्ड्वादि यक् तथैवाय ईयङ् यङ् स्युः सनादयः॥

तिप्, शप्—गोपायति ॥१५०॥

१५१। अरामहरो रामधातुके।

अत्र लिखनाद्वामनस्य त्रिविक्रममपि बाधते; गोपाय्यते ॥१५१॥

१५२। आय इयङ् कर्मणिङ् च रामधातुके तु वा।

'भाविनि भूतवदुपचारः'—गुप्यते, अगोपायीत्। ऊदित्वादिड् वा (आ० प्र० १००) अगोपीत्, अगौप्सीत्, अगोप्साम्, अगोपायि, अगोपि, 'अगोपायायि' इत्यपि मन्यन्ते ॥१५२॥

१५३। अनेकसर्व्वेश्वरकाशिभ्यामामधोक्षजे

कृञादेरणुप्रयोगः (आ० प्र० १२०) गोपायाञ्चकार जुगोप। अरामहरस्य नित्यत्वादन्तरङ्गत्वाच्च 'गोपाय्यात्' इत्यादौ न 'अतो या ईः' (आ० प्र० ३७) धूप् सन्तापे—धूपायति, अधूपायीत्। इट् तु नित्यम् अधूपीत्। 'कासि-प्रत्ययात् इत्यत्र कास्यनेकाच

१। प्रयोक्तव्यम् (क)।

इति वक्तव्यम्' इति काशिका।
'प्रत्ययग्रहणमनेकाजुपलक्षणम्' इति भाषावृत्तिः (पा ३।१।३५)।

चुलुम्प लोपे—चुलुम्पाञ्चकार ॥१५३॥

तप् सन्तापे—तपति—

१५४। निसः षत्वं तपतौ सकृत् सेवने।

निष्टपति सुवर्णम्, सकृदग्निं स्पर्शयति इत्यर्थः। अताप्सीत्, अताप्ताम् ॥१५४॥

१५५। नानोस्तप इण्।

अन्वतप्त, तताप। 'सहजारामवतश्च तादृशात्' (आ० प्र० १४४) इति वेट्—तेपिथ, ततप्थ ॥१५५

चमु अदने—

१५६। ष्ठिव्वाचमु-क्लमां त्रिविक्रमः शिवे

आचामति। स्वादावपि पाणिनीयाः पठन्ति—आचाम्नोति। वैष्णवपरत्वाभावान्न विष्णुचक्रम्। आचाम्यते। इणि—आचामि।

क्लमु ग्लानौ—क्लामति। 'भौवादिकस्य तु न त्रिविक्रमः' इति तस्यां भ्रमः। पाणिनीयादौ हि भुवादौ नैवायं पठ्यते, किन्तु देवादिकादेव श्यो विकल्प्यते। तथैव क्लमतीति न कुत्रापि दृश्यते च ॥१५६॥

१५७। जनि-वध्योर्मान्तानाञ्चानाचम्यमि-कमि-वमि-यमि-रमि-नमि-गमां न वृष्णीन्द्रः इणि कृते च।

अक्लमि ॥१५७॥

१५८। भ्रम-त्रस-क्लमां वेत्येके।

क्रमु पादविक्षेपे ॥१५८॥

१५९। क्रमस्त्रिविक्रमः परपदे शिवे।

क्रामति ॥१५९॥

१६०। स्नु-क्रमिभ्यामिड् नात्मपद एव।

अक्रमीत्। अक्रमि। 'हरेर्यदक्रामि पदैककेन खम्' (नैषधचरितम् १ ७०) इत्यादि प्रयोगे बाहुल्याद्विकल्पः।[1] अक्रंसाताम्। १६०॥

यमु उपरमे—

१६१। इषु-गमि-यमां छः शिवे।

यच्छति ॥१६१॥

१६२। यम-रम-नमारामान्तेभ्यः सुगिटौ सौ परपदे।

अयंसीत्, अयंसीष्टाम्, अयामि ॥१६२॥

१६३। सूचनार्थाद्यमः सिः कपिल आत्मपदे स्वीकारार्थाद्वा।

१६४। हरिवेण्वन्त-सहजानिटां तनु-क्षणु-क्षिणु-तृणु-वनु-मनूनामपि हरिवेणु-हरो वैष्णवादिकंसारौ।

उदायसाताम्, सूचिताविदर्थः, उपायसाताम्, उपायंसाताम् वा, स्वीकृताविदर्थः। 'सहज' इति किम्? कृत्प्रत्यये गान्तः।

णय् हय् गतौ—अनयीत् ॥१६३-१६४॥

दल् विदारणे—

१६५। अरलित्यन्तस्य वृष्णीन्द्रः सौ परपदे

अदालीत्।

ञिफला विशरणे, विशरणम्—विदीर्णता, ञ्यारामावितौ। 'तृ-फल' (आ० प्र० ११३) इत्यादि फेलतुः, फेलिथ। 'फल निष्पत्तावित्यस्य तु ग्रहणम्' इति प्रसादकारः (पा ६।४।१२२)। 'द्वयोरपि ग्रहणम्' इति तु कालापाः ॥१६५॥

ष्ठिवु निरसने, निरसनम्—थुत्कारः उराम इत्-

१६६। नामधातुष्टचे-ष्वष्क[1]-ष्ठिवां सत्वनत्वनिषेधः।

ष्ठीवति। 'धातो रवप्रागिदुतो' (वि० प्र० ११७) इति ष्ठीव्यते ॥१६६॥

१६७। ष्ठिवेर्नर-ठरामस्य तरामो वा।

१। 'हरे⋯विकल्पः'—इति ख ग घ पाण्डुलिपिषु नास्ति।

१। ष्वष्क (ग घ)

तिष्ठेव, टिष्ठेव ॥१६७॥

जि जये—जयति, भावे-जीयते विधातरि—

१६८ । जेस्त्वन्त्वोस्त्यन्ती ।

जयति, जयन्ती । 'सर्व्वत्र' (आ० प्र० ४०) ग्रहणात् तातङ्-पक्षे—जयतात् ॥१६८॥

१६९ । जेर्गिः सन्नधोक्षजयोः, चेः किर्व्वा ।

जिगाय ॥१६९॥

कृष् विलखने, आकर्षणे च—कर्षति—

१७० । कृष्-स्पृश्-मृश्-तृप्-दृप्-सृपः सिर्व्वा ।

१७१ । षढोः कः से ।

षत्वम्—अकार्क्षीत्, अकार्ष्टाम्, अकर्षि । 'ऋद्वयाद्' (आ० प्र० १०४) इत्यादिना कपिलत्वम्—अकृक्षाताम् अकृक्षत, अकृष्ठाः । कविधौ समात्रस्य निमित्तत्वेनाप्रत्यय-रूपनिमित्तत्वान्महाहरत्वम्—अकृड्ढ्वम् ॥१७०-१७१॥

१७२ । ऋरामोद्धवसहजानिटोऽम् वा वैष्णवादावकपिले ।

म् इत्, 'ऋद्वयं रः' (म० प्र० ६१) वृष्णीन्द्रः (आ० प्र० १०१) अक्राक्षीत्, अक्राष्टाम् । 'सहज' इति किम् ? वृहू उद्यमे, तुदादिः, 'अवार्ड्ढ' इति काशिकाभाषावृत्त्योः ।

'तनोऽम्राक्षीत्' इति तु प्रक्रिया चिन्त्या । 'अमागमोऽप्यस्य न दृश्यते—इति ह्यनिड्गणे काशिका ॥१७२॥

सेरभावपक्षे—

१७३ । ईशोद्धवादनिटो हरिगोत्रान्तात् सक् भूतेशे दृशि विना ।

'क्मः' पा (३।१।४५) क इत्, कत्व-षत्वादि (आ० प्र० १७१, वि० प्र० २३) कपिलत्वान्नाम्—अकृक्षत्, अकर्षि ॥१७३॥

१७४ । सकोऽन्तहरः सर्व्वेश्वरे ।

अकृक्षाताम्, अकृक्षत । 'न तु बहुत्वे' इति कालापाः । अकृक्षन्त, अकृक्षथाः, अकृक्षि । चकर्ष, चकृषे । कृष्यात्, कृक्षीष्ट ।

रुष् रिष्—हिंसायाम्, भूतेशे—अरोषीत्, अरोषि, अरोषिषाताम् ॥१७४॥

१७५ । इषु-सह-लुभ-रुष-रिष इड्वा ते ।

रोषिता, रोष्टा ॥१७५॥

उष् दाहे—

१७६ । उष-वेत्ति-जागृभ्य आमधोक्षजे वा

ओषाम्बभूव, उवोष ॥१७६॥

मिह् सेचने—सक्, हस्य ढ, कत्वषत्वे—अमिक्षत् । बालकल्कौ गोविन्दः, हस्य ढः, 'हरिघोषात्' (आ० प्र० १०३) इति धत्वं, 'षात् परस्य' (वि० प्र० १३५) इति ढत्वम्—

१७७ । ढस्य हरो ढे, पूर्व्वश्च त्रिविक्रमश्च

मेढा । अत्र तु गोविन्देन त्रिविक्रमः सिद्ध एव ॥१७७॥

१७८ । ऋरामस्य न ।

कृति—तृण्हू+क्तः—तृढः । कथं 'कंसजिड्ढौकते' ? तत्राकरणात् ।

दह् भस्मीकरणे । 'दादे' (वि० प्र० १४५) इति घत्वम्, आदौ 'जबर्ज्जहरिगदा' (वि० प्र० ११४) इत्यादिना हरिघोषत्वम्—अधाक्षीत् । हरिघोषविधौ समात्रस्य निमित्तत्वात् पूर्व्ववत् महाहरत्वम्—अदाग्धाम् । ध्वम्-शब्दे तु—अधग्ध्वम् ।

रह् त्यागे—अरहीत् ।

रहि गतौ, परत्वान्नत्वं बाधित्वा विष्णुचक्रम्—रंहति । विष्णुचक्रस्य सर्व्वेश्वरधर्म्मत्वात्तद्व्यवधानेऽपि णत्वम्—रंहाणि ।

वृहि वृद्धौ—वृंहति । 'वृंहेः स्वरेऽनिटि वा नलोपः' इति कालापाः—वर्हति, कृति च—वृंहकः, वर्हकः । येषां प्रकृत्यन्तरमस्ति, तेषां मते विष्णुजनादावपि रूपद्वये सिद्धे दोषः स्यादिति चाहुः ।

कृवि हिंसायाम्, हरिमित्रान्तोऽयम्—कृणवति । 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' इति सूत्रे (पा ८।४।२) 'नुमानुस्वारमात्र-व्यवधानं णत्वविधौ गृह्यते' इति पाणिनीयाश्च, तेनेह न णत्वम्—कृण्वानि ।

तृणहू हिंसायाम्, इत्यस्य कृति 'तृंहणम्' इत्यादौ तु स्यात् ।।१७८।।

ग्लै हर्षक्षये—ग्लायति—

१७९ । चतुर्व्यूहान्तानामारामान्तपाठोऽशिवे

यक्—ग्लायते । 'पाठ' ग्रहणात् सुगिटौ सौ (आ० प्र० १६२)—अग्लासीत्, अग्लासिष्टाम् ।।१७९

१८० । आतो युगिणि नृसिंह-कृति च ।

अग्लायि ।।१८०।।

१८१ । आरामाण्णल औ ।

जग्लौ ।।१८१।।

१८२ । आरामहरः कंसारि-सर्व्वेश्वर-रामधातुके इटि उसि च ।

आरामहरस्य स्थानिवत्त्वाद्द्विर्व्वचनम्—जग्लतुः 'उत्तम-णल्' (आ० प्र० १०८) इत्यत्र 'नृसिंहकार्य्यकरः' इति किम् ? जग्लौ, पक्षे और्नाभविष्यत् ।।१८२।।

१८३ । सत्सङ्गादेरात एरामः कपिल-कामपाले वा ।

ग्लेयात्, ग्लायात्, ग्लासीष्ट, ग्लायिषीष्ट । एवं म्लै गात्रविनामे ।।१८३।।

गै शब्दे—गायति—

१८४ । दामोदर-मास्था-गा-पिवति-जहाति-स्यतीनामीरामो विष्णुजन-रामधातुक-कंसारौ

'मा' इति मा-माङौ, 'गा' इति गै-गाङौ गृह्येते गीयते ।।१८४।।

१८५ । दामोदरादीनामेरामः कपिल-कामपाले ।

गेयात् ।

दैप् शोधने, प्‌राम इत्—दायति । कर्म्मणि—दायते । दामोदराभावान्नेत्वं, न सेर्महाहरत्वञ्च—अदासीत्, अदायि । एत्वं च न—दायात् ।।१८५।।

धेट् पाने—ट् इत् कृत ईवर्थः, धयति, धीयते—

१८६ । धेट्-श्विभ्यामङ् वा भूतेशे कर्त्तरि

ङ् इत्, अरामशेषः, 'चङ्' वा (३।१।४८, ४९) आरामान्तपाठः, आरामहरः, स्थानिवत्त्वाद्द्विर्व्वचनम्—अदधत्, अदधताम्, अदधन् ।।१८६।।

सि-पक्षे—

१८७ । घ्रा-धेट्-शा-छा-शाभ्यः सेर्महाहरो वा परपदे ।

अधात्, अधाताम् ।।१८७।।

१८८ । आरामादन उस्, भूतेश्वरस्य तु वा

अधुः । अत्रारामहरेऽपि न नैमित्तिकापायः—यं दृष्ट्वा यस्योत्पत्तिः, सस्तस्य 'सन्निपातः' 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघाताय'* इति न्यायेन, तथा 'कृष्णाय' इत्यत्र त्रिविक्रमश्च यकार-विघाताय न स्यादिति । पक्षे—अधासीत् । कर्म्मणि—अधायि, अधायिषाताम् ।।१८८।।

इण्वदिडभावपक्षे—

१८९ । स्था-दामोदरयोरिरामो वैष्णवादि-सावात्मपदे, सिश्च कपिलः ।

अधिषाताम् ।।१८९।।

पा पाने—

१९० । पः पिवः, घ्रो जिघ्रः, ध्मो धमः, स्थस्तिष्ठः, म्नो मनः, दानो यच्छः, दृशेः, पश्यः, अर्त्तेर्ऋच्छः, सर्त्तेर्जवार्थस्य धावः, शदेः शीयः, सदेः सीदः, शिवे ।

१९१ । अन्तहरे न गोविन्दवृष्णीन्द्रौ ।

पिवति, पीयते । भूतेशे—'इन्-स्था' (आ० प्र० ५३) इति अपात् ।

घ्रा गन्धोपादाने—जिघ्रति, घ्रायते । ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः—धमति । ष्ठा गतिनिवृत्तौ—

* "सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य" इति पाणिनीय-परिभाषापाठः ।

नरामजावनुस्वार-पञ्चमौ झलि धातुषु ।

सरामजः शरामश्चे रषाभ्यां टुस्तवर्गजः ॥

यथा शंस्, अञ्च्, व्रश्च्, ऊर्णु ञ्, ष्ठा इति ठनवास्य धातोरादौ सत्वे कृते 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इति न्यायेन-प निमित्तस्य ठस्य थत्वे । 'स्थस्तिठः' (आ० प्र० १९०)—तिष्ठति । भावे—स्थीयते ॥१९०-१९१॥

१९२ । उदः स्थास्तम्भोः सस्य हरः ।

उत्थीयते, द्वित्वे (स० प्र० १२०)—उत्त्थीयते । 'इन्-स्था' (आ० प्र० ५३) इति सेर्महाहरः—अस्थात् अस्यात्मपदञ्च, वक्ष्यते (का० प्र० २२०) । ततः 'स्थ-दामोदरयो' (आ० प्र० १८६) इति—अस्थित, अस्थिषाताम् । 'आरामाणणल औ' (आ० प्र० १८१) अस्थौ । दामोदरान्त्वान्नित्यमेत्वम् (आ० प्र० १८५) स्थेयात्, स्थाता । उत्थाता ।

म्ना अभ्यासे—मनति ।

दान दाने, न इत्—यच्छति, दीयते ।

दृशिप्रभृतयोऽग्रे (आ० प्र० २१५) दर्शयितव्याः ॥१९२

स्मृ चिन्तायाम्—स्मरति—

१९३ । अर्त्ति-सत्सङ्गाद्दचदन्तयोर्गोविन्दो यक्-कामपाल-ययोर्यङि च ।

स्मर्य्यते । अस्मार्षीत्, अस्मार्ष्टम्, अस्मारि ॥१९३

१९४ । ऋराम-वृ-सत्सङ्गाद्दचन्तेभ्य इड्वा सि-कामपालयोरात्मपदे ।

अस्मरिषाताम्, अस्मृषाताम्, अस्मारिषाताम् । सस्मार ॥१९४॥

१९५ । सत्सङ्गाद्दचदन्तस्य ऋच्छेर्ऋ रामान्तानाञ्च गोविन्दोऽधोक्षजमात्रे न तु वृष्णीन्द्रे ।

सस्मरतु, सस्मरुः, थलि 'ऋरामात्तु नित्यं नेट्' (आ० प्र० १४७) सस्मर्थ, 'कृ-सृ-भृ-वृ' (आ० प्र० १०५) इत्यादिनियमान्नित्यमिट्—सस्मरिव सस्मरिम सस्मरे । स्मर्य्यात् । 'य' ग्रहणात् नेह गोविन्दः—स्मृषीष्ट, स्मर्त्ता ॥१९५॥

१९६ । ऋराम-हनिभ्यामिट् स्ये स्वरतेश्च

स्मरिष्यति ।

स्वृ शब्दोपतापयोः, 'स्वरति-सूति' (आ० प्र० १००) इति वेट्—अस्वारीत्, अस्वार्षीत् । 'स्वरिष्यति' इति तु नित्यम् ॥१९६॥

सृ गतौ, 'सर्त्तेर्जवार्थस्य धावः' (आ० प्र० १९०) धावति । अजवार्थे—सरति—

१९७ । ऋरामस्य रिः श-यक्-कामपाल-येषु, न च त्रिविक्रमः ।

म्रियते ॥१९७॥

१९८ । सर्त्ति-शास्त्यर्त्तिभ्यो ङो भूतेशे कर्त्तरि ।

१९९ । ऋद्वयान्त-दृश्योर्गोविन्दो ङे ।

असरत्, म्रियात्, सर्त्ता, सरिष्यति ॥१९८-१९९

ऋ गतौ प्रापणे च—ऋच्छति—

२०० । उपेन्द्रारस्त्रिविक्रमः ।

२०१ । नामधातौ तु वा तदलश्च, न तु त्रिविक्रम-भवस्य ।

'नित्यं धातूपसर्गयोः' इति पुनः 'नित्य' ग्रहणान्निषेधः, तदनुगतो वामनश्च न स्यात्—प्रार्च्छति, परार्च्छति । अर्त्ति-सत्सङ्गाद्दचन्तयोर्गोविन्दः (आ० प्र० १९३) इति—अर्य्यते । आर्च्छत्, आरत् । समस्त्वात्मपदं वक्ष्यते (का० प्र० २२४) समारत ।

तदेतत् काशिकादावपि मतम् । 'अन्तस्य' (आ० प्र० ५६) इति वृष्णीन्द्रः, आदेशः, स्थानिवत्, तत ऋरामस्य द्विर्व्वचनम्, 'नर ऋरामस्यारामः' (आ० प्र० ११०)—आर । 'ऋद्वयं रः' (स० प्र० ५१) स्थानिवत्त्वं, द्विर्व्वचनं, त्रिविक्रमः—आरतुः, आरुः, 'अत्यर्त्ति वृ व्येञ् भ्यो नित्यम्' (आ० प्र० १४६) इति इट् थलि—आरिथ ॥२००-२०१॥

श्रु श्रवणे—

२०२। श्रुवः शपः श्नु स्तस्य शृश्च ।

'श्रुव' इति बाहुलयादुवादेशः । श् इत् ॥२०२॥

२०३ । उ-श्न्वोर्गोविन्दः ।

शृणोति, शृणुतः, शृण्वन्ति, शृणोषि, शृणुथः शृणुथ, शृणोमि ॥२०३॥

२०४ । असंयोगपूर्व्वस्य प्रत्यययोरामस्य हरो वा निर्गुण-वमोः ।

२०५ । करोतेस्तु नित्यं ये च ।

शृण्वः, शृणुवः शृण्मः, शृणुमः, श्रूयते । शृणुयात् । शृणोतु ॥२०४-२०५॥

२०६ । उरामात् प्रत्ययादसंयोगपूर्व्वात् हेर्हरः ।

शृणु, शृणवानि, शृणवाव, शृणवाम । अशृणोत् । अश्रौषीत् । शुश्राव, शुश्रुवतुः । 'कृ'-आदिनियमे 'मात्र' (आ० प्र० १०५) ग्रहणात् थलयपि नेट्—शुश्रोथ । श्रूयात् । श्रोता । श्रोष्यति । अश्रोष्यत् ॥२०२॥

षु प्रसवे—

२०७ । सुस्तुधूञ्भ्य इट् सौ परपदे ।

असावीत् ॥२०७॥

स्रु गतौ—

२०८ । णि-श्रि-द्रु-स्रु-कमिभ्योऽङ् भूतेशे कर्त्तरि ।

'धातोश्वतुःसनस्येयुवौ' (आ० प्र० १३९)—असुस्रुवत् ॥२०८॥

गम्लृ गतौ, 'इषु-गमि' (आ० प्र० १६१) इति च्छः—गच्छति, गम्यते—

२०९ । पुषादि-दुचतादि-लृदितो ङो भूतेश-परपदे ।

पुषादिरयं दिवाद्यन्तर्गणः । अगमत्, अगामि । 'गमेस्तु वा' (आ० प्र० १०४) इति सेः कपिलत्वम् ; 'हरिवेण्वन्त' (आ० प्र० १६४) इत्यादिना अगसाताम् कपिलत्वाभावे अगंसाताम् । एवम्-अगसत, अगंसत अगथाः, अगंस्थाः । जगाम ॥२०९॥

२१० । गम-हन-जन-खन-घसामुद्धवादर्शनं कंसारि सर्व्वेश्वरे ङं विना ।

जग्मतुः, जग्मुः, जगमिथ, जगन्थ ॥२१०॥

२११ । गमेरिट् सरामादि-रामधातुके नात्मपदे ।

गमिष्यति, गंस्यते ।

स्कन्दिर् गति शोषणयोः, 'इरनुबन्धान् ङो वा' (आ० प्र० ८८) 'अनिरामेतां' (आ० प्र० ९१) इति नस्य हरः—अस्कदत्, पक्षे—अस्कान्त्सीत् । प्रक्रिया (पा ८।३।७४) तु चिन्त्या ॥२११॥

तॄ प्लवन,-तरणयोः—तरति—

२१२ । ॠरामस्येर् कंसारौ ।

'धातो र-व' (वि० प्र० ११७) इति त्रिविक्रमः—तीर्य्यते । अतारीत्, अतारि ॥२१२॥

२२३ । ॠराम-वृभ्य इटस्त्रिविक्रमो वा न तु परपद-सौ कामपालाधोक्षजयोश्च ।

२१४ । इण्वदिटो न त्रिविक्रमः ।

अतरीषाताम्, अतरिषाताम्, अतारिषाताम् । 'ॠराम वृ सत्सङ्गाद्दचदन्तेभ्यः' (आ० प्र० १९४) इति पक्षे नेट्—अतीर्षाताम् । ततार । 'सत्सङ्गाद्दचदन्तस्य (आ० प्र० १९५) इति गोविन्दः, एत्वे[1], नरादर्शने तेरतुः । तीर्य्यात, तरिषीष्ट, तीर्षीष्ट, तारिषीष्ट, तरिषीध्वम् तरिषीढ्वम्, तारिषीध्वम् तारिषीढ्वम्, तीर्षीढ्वम् । अतीढ्वम्, 'ईश्वर' (अ० प्र० ६७) इति 'ढः न' इति कश्चित् । तरिता, तरीता, तारिता ।

दॄ भये, गोविन्दारामत्वान्न त्वादि—ददरतुः, ददरिथ ॥११३-२१४॥

षन्ज् सङ्गे—

---

१ । एत्वं (क) ।

२१५। दन्श-रन्ज-षन्ज-स्वञ्जां नस्य हरः शपि।

सजति, सज्यते। असाङ्क्षीत्, असाङ्क्ताम्। ससञ्ज, ससञ्जतुः ॥२१५॥

दृशिर् प्रेक्षणे, इरामस्य केवलग्रहणात् (आ० प्र० ६३) नात्र नुम्। अत्र तु 'धातोरन्त इरित्' इति पृथगेव हि इड्विधानम्। पश्यति, दृश्यते। 'इरनुबन्धान् ङो वा' (आ० प्र० ८८) ऋद्वयान्त-दृश्योर्गोविन्दो ङे' (आ० प्र० १६६) अदर्शत्।

सि पक्षे—

२१६। सृजि-दृशोरमकपिलवैष्णवे।

म् इत्, ऋद्वयं रः (स० प्र० ६१) वृष्णीन्द्रः (आ० प्र० १०१) 'छशो' (वि० प्र० १०७) इत्यादिना षत्वम् 'षढोः कः से' (आ० प्र० १७१)— अद्राक्षीत् अद्राष्टाम् भावे—अदर्शि। 'ऋद्वयाद्विष्णुजनान्तेशोद्धवाच्च' (आ० प्र० १०४) इति सेः कपिलत्वात्-अदृक्षाताम्, अदर्शिषाताम्। ददर्श। 'सृजि-दृशिभ्याञ्च' (आ० प्र० १४५) इति थलि वेट् - ददर्शिथ, दद्रष्ठ। दृश्यात्, दृक्षीष्ट, दर्शिषीष्ट। द्रष्टा। द्रक्ष्यति। अद्रक्ष्यत्। दन्श दंशने—दशति ॥२१६॥

कित् निवासे, रोगापनयने च—

२१७। गुप्-तिज्-किद्भ्यः सन्।

गुपो बधश्च निन्दायां क्षमायां सन् भवेत्तिजः।
सन्देहे रुक्-प्रतीकारे कितो मानो विचारणे ॥२१७॥

२१८। नेट् स्वार्थे सनि।

२१९। ईश-समीपाद्विष्णुजनादनिट् सन् कपिलः।

२२०। ईशाच्च।

धातोर्द्विर्वचनम्, सनाद्यन्ताश्च धातव (आ० प्र० १, १५०) पूर्व्ववधातुवत् सनः परपदादि— विचिकित्सति धर्म्मम्, चिकित्सति रोगिणम् ॥२१७-२२०॥

ऋत घृणायाम्, सौत्रधातुः, सर्व्वे सौत्राः परपदिनः —

२२१। ऋतेरीयङ्।

ङित्वादात्मपदम्—ऋतीयते। कर्म्मणि—ऋतीय्यते, 'आय ईयङ्'[1] (आ० प्र० १५२) ऋत्यते ऋतीयामासे, आनर्त्त। ऋरामैकदेशो ररामोऽपि नुड्विधिं (आ० प्र० १११) प्रति विष्णुजनो मन्तव्यः आनृततुः।

'संज्ञा' तावत् द्विविधा—(१) पूर्व्वा, (२) अवरा च। अवरा तु द्विविधा—(१) पूर्व्वस्या[2] विशेषरूपा (२) उपमर्द्दकरूपा च। तत्राश्रुता विशेषरूपा, यथा—सर्व्वेश्वरादेर्दशावतारादिः। श्रुता तूपमर्द्दिका यथा—भुवाद्यादौ श्रुता सनाद्यन्तादेर्नामत्वादुपमर्द्दिका धात्वादिरिति ज्ञेयम्। तद्वदिहापीति।

एजृ कम्पने—एजति, प्रेजति। एजाञ्चकार ॥२२१

इति भ्वादि-परपदप्रक्रिया[3]।

१। आयईयङ् विनेति किम्? (क) २। पूर्व्वस्य (क) ३। इति परपदप्रक्रिया (क, ग) इति भ्वादि-परपदम् (घ)

अथ भ्वादि-आत्मपदप्रक्रिया

एध् वृद्धौ—एधते, प्रैधते।

तिज् निशाने, क्षमायाञ्च, निशानम्—तीक्ष्णीकरणम् तत्र तेजते, क्षमायाम्—तितिक्षते।

जभ् गात्रविनामे, गात्रविनामः—जृम्भणम्—

२२२। रधि-जभोर्नुम् सर्व्वेश्वरे।

जम्भते ॥२२२॥

पण पन व्यवहारे, स्तुतौ च, 'गुपू धूप्' (आ० प्र० १५०) इति आयः, अन्यधातुत्वात् परपदम्—पणायति, एवं पनायति इत्यादि।

१२३। मूर्द्धन्यान्तादायो न व्यवहारे।

पणते ॥२२३॥

कमु कान्तौ, कान्तिरिच्छा—

२२४। कमेर्णिङ्।

अत्र ङित्त्वेऽपि वृष्णीन्द्रः (आ० प्र० १०७) ईशस्यैव निषेधेन—कामयते ॥२२४॥

२२५। णेर्हरोऽनिडादौ रामधातुके।

२२६। इण्वदिटि च।

काम्यते, कम्यते ॥२२५-२२६॥

ण्यन्तत्वादङ् (आ० प्र० २०८)

२२७। अशास्वृदित उद्धवस्य वामनः।

२२८। लघुयुक्त-धात्वक्षरपरस्य नरस्य सन्निमित्तकार्य्यम्।

२२९। नरारामस्येरामः सनि।

२३०। तत्परस्य नर-लघोस्त्रिविक्रमः।

२३१। अङ्-परे णौ, न तु दशावतारादर्शने

'णेर्हरः' (आ० प्र० २२५)—अचीकमत। णिङभावपक्षे—अचकमत ॥२२७-२३१॥

२३२। णेर्न हर आम-अन्त-आलु-आय्य-इत्नु इत्येषु।

२३३। इत्नौ तु छन्दस्येव।

कामयाञ्चक्रे ॥२३२-२३३॥

अय् गतौ अयते—

२३४। प्र-परा-परीणां ररामस्य लत्वमयतौ

प्लायते, पलायते, पल्ययते ॥२३४॥

२३५। अयास-दयेभ्य आमधोक्षजे।

अयाञ्चक्रे ॥२३५॥

ओप्यायी वृद्धौ, ओ-ई-रामावितौ, प्यायते—

२३६। दीप्-जनी-बुध्यति-पूरी-तायि-प्यायिभ्य इण् वा भूतेश ते कर्त्तरि।

२३७। पदस्तु नित्यम्।

'इणस्तो हरः' (आ० प्र० ६०) अप्यायि, अप्यायिष्ट ॥२३६-२३७॥

२३८। प्यायः पीर्यङधोक्षजयोः।

'असंयोगपूर्व्वस्या' (आ० प्र० १४१) इत्यादिना यः—पिप्ये, पिप्याते, पिप्यिरे।

काशृ दीप्तौ—काशते। 'काशाञ्चक्रे पुरी सौधैः' इति भाषावृत्तिः। कासृ कासरोग-शब्दे। 'अस्मादेवाम्' इति काशिका, अतो मतभेदात् 'उभयोरपि विकल्पः' इति केचित्।

गाङ् गतौ—गाते, गाते, गाते, गासे इत्यादि। गीयते। कालापास्तु 'दामोदर' (आ० प्र० १८४) इत्यादौ 'गायति' इति निर्द्दिश्य 'गायते' इत्येव मन्यन्ते ॥२३८॥

देङ् पालने—दयते, दीयते। 'स्था दामोदरयो' (आ० प्र० १८६) इति—अदित, अदिषाताम्।

२३९। देङः सनरस्य दिगिरधोक्षजे।

दिग्ये।

गुप् गोपन-कुत्सनयोः—गोपते, कुत्सायाम्—जुगुप्सते ॥२३९॥

मान विचारणे, पूजायाञ्च—

२४०। मान-बध-दान-शान्भ्यः सन्नीरामश्च नरस्य।

मीमांसते। पूजायाम्—मानते।

बध बन्धने, निन्दायाञ्च, बधते, निन्दायाम्—बीभत्सते। बीभत्साञ्चक्रे। वग्यादित्वात् 'शसु-दद' (आ० प्र० १३२) इति ण—बेधे ॥२४०॥

रभ् राभस्ये, कौतुके इत्यर्थः, आङ् पूर्व्वस्त्वारम्भे—

२४१। लभि रभोर्नुम् शवधोक्षजवर्ज्जित-सर्व्वेश्वरे।

आरभते, आरभ्यते। आरब्ध, आरम्भि ॥२४१

डुलभष् प्राप्तौ, डु-षावितौ, लभते, लभ्यते। अलब्ध—

२४२। लभेर्नुम् णम्विणोर्वा, सोपेन्द्रस्य तु नित्यम्।

अलम्भि, अलाभि, प्रालम्भि ॥२४२॥

द्युत दीप्तौ—द्योतते—

२४३। द्युतादिभ्यः परपदं वा भूतेशे।

'पुषादि-द्युतादि' (आ० प्र० २०६) इति ङः—अद्युतत्, अद्योतिष्ट ॥२४३॥

२४४। सपरसर्व्वेश्वर-य-व-राणामि-उ-ऋ-रामादेषः सङ्कर्षणसंज्ञः।

'संप्रसारणम्' इत्यन्ये१ ॥२४४॥

२४५। द्युति-ष्वाप्योर्नरस्य सङ्कर्षणः।

दिद्युते ॥२४५॥

वृतु वर्त्तने—वर्त्तते। द्युतादित्वात् अवृतत् अवर्त्तिष्ट—

२४६। वृतादिभ्यः परपदं वा स्य-सनोः।

२४७। कृपेर्बालकल्कौ च।

२४८। वृतु-वृधु-शृधु-स्यन्दूभ्यो नेट् सरामे आत्मपदाभावे।

वर्त्स्यति, वर्त्तिष्यते ॥२४६-२४८॥

कृपू सामर्थ्ये—

२४९। कृपेर्ऋ लृ।

कल्पते अक्लृपत्, अक्लृप्त, अकल्पिष्ट। स्थानिवत्त्वात् 'नर-ऋरामस्यारामः' (आ० प्र० १२३) चक्लृपे ॥२४९॥

२५०। कृपेर्नेट् सरामादि-बालकल्कयोरात्मपदाभावे।

कल्प्ता। आत्मपदे—कल्प्ता, कल्पिता ॥२५०॥

व्यथ् दुःखे, भये, चलने च—अव्यथिष्ट, अव्याथि

२५१। व्यथो नरस्य सङ्कर्षणोऽधोक्षजे, पुनर्न सङ्कर्षणः।

अस्य चानन्तरपाठान्नात्र 'नर विष्णुजनानामादिः शिष्यते' (आ० प्र० ८९) विव्यथे ॥२५१॥

ऊह् वितर्के—ऊहते, ऊह्यते—

२५२। उपेन्द्रादूहतेर्वामनः कपिल ये।

समुह्यते। केवलोहतेरेव। नेह—आ+ऊह्यते =ओह्यते, समोह्यते। नित्यत्वाद्वामनं बाधित्वा वृष्णीन्द्रः, 'सकृदपि विप्रतिषेधे यद्बाधितं, तद्बाधितम्' इति न्यायेन पुनर्न वामनः—समौह्यत ॥२५२॥

इति भ्वादि-आत्मपदप्रक्रिया।

१। इत्येके (क)।

२६४। वेञो वयि वाधोक्षजे।

ग्रहादित्वात् नरस्य सङ्कर्षणः—उवाय ॥२६४॥

२६५। ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वशि-व्यचि-व्रश्चि-प्रच्छि-भ्रस्जीनां सङ्कर्षणः कंसारौ।

'वयि' ग्रहणं 'वेञो न' (आ० प्र० २६३) इति निषेधात्ययार्थम् ॥२६५॥

२६६। वयो यस्य वो वा कपिले।

ऊयतुः, ऊवतुः, उवयिथ ॥२६६॥

व्येञ् संवरणे—

२६७। व्येञो नात्वमधोक्षजे।

वृष्णीन्द्रः (आ० प्र० ५६)—विव्याय, विव्यतुः। नारायणस्य सङ्कर्षणनिषेधात् 'विव्ययतुः' इति कालापाः। थलि 'अत्यर्त्ति-वृ-व्येञ्भ्यो नित्यम्' (आ० प्र० १४६) इति—विव्ययिथ। वीयात् ॥२६७

ह्वेञ् स्पर्द्धायाम्—ह्वयति, ह्वयते, हूयते—

२६८। लिपि-सिचि-ह्वो ङो भूतेशे कर्त्तरि

२६९। आत्मपदे तु वा।

आरामहरः—अह्वत, अह्वत, अह्वास्त ॥२६८-२६९

२७०। ह्वो नर-नारायणयोः सङ्कर्षणो नामधातुं विना।

जुहाव ॥२७०॥

वस् निवासे वसति—

२७१। वसि घस्योः षः।

उष्यते ॥२७१॥

२७२। सस्य तः सरामादि-रामधातुके।

अवात्सीत्, अवात्ताम्, अवात्सुः। उवास, ऊषतुः उवस्थ, उवसिथ।

वद् व्यक्तायां वाचि—अवादीत्।

टुओश्वि गति-वृद्ध्योः, 'टु ओ' इतौ, श्वयति, श्वयते, शूयते ॥२७२॥

२७३। जॄ-स्तन्भु-म्रुचु-म्लुचु-ग्लुञ्चु-ग्लुचु-शिभ्यो-ङो वा भूतेश परपदे।

ग्लुचुनैव सिद्धौ ग्लुञ्चेः पृथगुपादानान्नलोपाभावः तेन—अग्लुञ्चत् ॥२७३॥

२७४। श्वयतेरिरामहरो ङे।

अश्वत्, पक्षे सिः, 'ह-म-यान्त' (आ० प्र० १४९) इति न वृष्णीन्द्रः—अश्वयीत्, पक्षे अङ्—अशिश्वियत् ॥२७४॥

२७५। श्वेः सङ्कर्षणो वा यङधोक्षजयोः।

२७६। सन्नङ्परे णौ च।

अत्र सकृद्गतन्यायो न बाधकः। मातृवत् परिभाषेति नेष्टं हि विरुध्यते। ततो 'यावत्सम्भवस्तावद्विधिः' इति न्यायेन वृष्णीन्द्रः, ततो द्विर्वचनम्—शुशाव, शुशुवतुः, शुशविथ, शिश्वाय, शिश्वियतुः, शिश्वयिथ ॥२७५-२७६॥

इति भ्वादि—मिश्रप्रक्रिया।

भूवादिगणः समाप्तः।

अथ अदादिः

अद् भक्षणे—

२७७। अदादेः शपो महाहरः।

अत्ति, अत्तः, अदन्ति, अद्यते, अद्यात्, अत्तु ॥२७७

२७८। हु वैष्णवाभ्यां र्हेधिः।

अद्धि ॥२७८॥

२७९। अदेरट् भूतेश्वर-दि-स्योः।

२८०। रुदादेरीट् च।

आदत्, आदः ॥२७९-२८०॥

२८१। अदो घस्लृर्भूतेश-सनोरधोक्षजे तु वा।

लृराम इत्, 'पुषादि' (आ० प्र० २०१) इति ङः अघसत्, अघासि, अघत्साताम्। जघास, जक्षतुः, जघसिथ। विकल्पनमिदं ज्ञापकम्। ततः सहजानिट् घस्लृ प्रयोगो न सार्व्वत्रिक इति 'जघस्थ' इति न भवेदेव। पक्षे—आद, आदतुः। 'अत्त्यर्त्ति-वृ-व्येञ्भ्यो नित्यम्' (आ० प्र० १४६) इति थलि—आदिथ।

प्सा भक्षणे—प्साति। आरामादन उस् भूतेश्वरस्य तु वा' (आ० प्र० १८८) अप्सुः, अप्सान् 'आरामाण्णल औ' (आ० प्र० १८१) पप्सौ। प्सायात् प्सेयात् ॥२८१॥

वश् कान्तौ, कान्तिरिच्छा, वष्टि, उष्टः, उशन्ति, वक्षि, उश्यते। वष्टु। 'षस्य डः' (वि० प्र० १५०) उड्ढि।

२८२। विष्णुजनाद्धि स्योर्हरः।

अवट्, औष्टाम्। 'वष्टिश्छान्दसः' इति भाष्यम्।

हन् हिंसा गत्योः—हन्ति। 'हरिवेण्वन्त' (आ० प्र० १६४) इत्यादि हतः, 'गम-हन' (आ० प्र० २१०) इत्युद्धवादर्शनम्, 'हनो हस्य घो णिन्नयोः' (वि० प्र० १२२) घ्नन्ति, हंसि, हथः, हथ, हन्मि, हन्वः, हन्मः ॥२८२॥

२८३। उपेन्द्राद्धन्तेरराम पूर्व्वस्य नस्य णः

२८४। अन्तरस्त्वदेशे।

प्रहण्यते, अन्तर्हण्यते। नेह अन्तर्हननो देशः। 'उपेन्द्रात्' इति किम्? वृत्र हननम्, छत्र हननम्। प्रक्रिया (पा ८।४।२३) तु चिन्त्या ॥२८३-२८४॥

२८५। उपेन्द्राद्धनो णत्वं व मोर्वा।

प्रहण्मि, प्रहन्मि, प्रहण्व, प्रहन्व। हन्तु हतात् ॥२८५॥

२८६। हन्र्हेर्जहि।

जहि। तातङ् पक्षे तु—हतात्, हनानि, हनाव, हनाम। अहन्, अहताम्, अघ्नन् ॥२८६॥

२८७। हनो बधो भूतेश कामपालयोः।

२८८। भूतेशात्मपदे तु वा।

सर्व्वेश्वरान्तत्वेऽप्येकाच्त्वाभावादिट्, 'अरामहरः' (आ० प्र० १५१) 'अन्तहरे न गोविन्दवृष्णीन्द्रौ' (आ० प्र० १९१) अबधीत्, अबधि, अघानि ॥२८७-२८८॥

इण्वदिडभावपक्षे—

२८९। हनः सिः कपिलः।

अहसाताम्। इण्वदिटि—अघानिषाताम्[1]। 'अत्र हनेर्णिङ्गादेशा न भवन्ति' इति काशिकादि (पा १।२। १४] मतम् ॥२८९॥

२९०। नराद्धन्तेर्हस्य घः।

जघान, जघ्नतुः, जघ्नुः; जघनिथ, जघन्थ। बध्यात्। हनिष्यति ॥२९०॥

यु मिश्रणामिश्रणयोः—

२९१। उरामस्य वृष्णीन्द्रः शव्लुकि पृथुः विष्णुजने।[2]

२९२। ऊर्णोतेर्वा।

२९३। न तु नारायणस्य।

यौति, युतः, युवन्ति, यूयते। युयात्। अयावीत् लाक्षणिकत्वान्नारामान्तपाठत्वम् ॥२९१-२९३॥

१। 'अघानिषाताम्' इत्यस्मात् परं पक्षे—अबधिषाताम् इत्यधिकः पाठः (क) २। शव्लुकि विष्णुजने (ख ग घ)

अथ भ्वादि-मिश्रप्रक्रिया

पत्लृ गतौ—पतति[1] —

२५३ । पतः पुम ङे ।

उमावितो, अपप्तत् ॥२५३॥

सह् मर्षणे—सहते, 'इषु-सह (आ० प्र० १७५) इति वेट्—

२५४ । सहि-वहोररामस्य ओरामो ढ-लोपे

सोढा, सहिता ।

षद्लृ विशरण-गत्यवसादनेषु, 'सदेः सीदः' (आ० प्र० १९०)—सीदति, निषीदति ॥२५४॥

शद्लृ शातने, शातनम्, छेदनम्—

२५५ । शतेरात्मपदं शिवे ।

'शदेः शीयः' (आ० प्र० १९०)—शीयते ।

फण गतौ—फणति । पफाण, फेणतुः, पफणतुः

राजृ दीप्तौ—राजति, राजते । रेजतुः, रराजतुः ।

टुभ्राजृ दीप्तौ—भ्राजते । भ्रेजे, बभ्राजे ॥२५५॥

खनु अवदारणे—खनति, खनते—

२५६ । जन-खन-सनामारामो वा कंसारि-ये

२५७ । वैष्णवाद्योः कंसारि-सनोर्नित्यम् ।

खायते, खन्यते । चखान, चख्नतुः । खायात्, खन्यात् ॥२५६-२५७॥

गुहू संवरणे, ऊराम इत्—

२५८ । गोह ओ ऊ सर्व्वेश्वरे ।

गूहति, गूहते, अगूहीत्, अघुक्षत, अगूहिष्ट ॥२५८॥

२५९ । दुह-लिह्-दिह- गुहेभ्यः सको हरो वा दन्त्याद्यात्मपदे ।

अगूढ, अघुक्षत, 'सकोऽन्तहरः सर्व्वेश्वरे' (आ० प्र० १७३)—अघुक्षाताम्, अघुक्षत, अगूढाः, अघुक्षथाः अघुक्षाताम्, अघूढ्वम्, अघुक्षध्वम्, अघुक्षि, प्रत्यय-वरामस्य दन्तौष्ठ्यत्वात् अगुह्वहि, अघुक्षावहि । जुगूह, जुगुहतुः । गोढा ॥२५९॥

हृञ् हरणे—हरति, हरते, अहार्षीत् । 'ऋद्व्याद्विष्णु जनान्तेशो'(आ० प्र० १०४)इत्यादिना सेः कपिलत्वम् —अहृत, अहृषाताम् ।

२६० । हृस्य जो नरस्य ।

जहार, 'ऋरामात्तु नित्यं नेट्—(आ० प्र० १४७) जहर्थ ।

भज् सेवायाम्—भजति, भजते । बभाज, भेजतुः भेजुः, भेजिथ, बभक्थ ।

श्रिञ् सेवायाम्—'णि-श्रि' (आ० प्र० २०८) इति अङ्—अशिश्रियत् ।

रञ्ज् रागे—रजति, रज्यते ॥२६०॥

यज् देवपूजा-सङ्गतिकरणे-दानेषु—यजति, यजते—

२६१ । वचिस्वपि-यजादीनां सङ्कर्षणः कपिले ।

यजो वपो वहश्चैव वेञ्-व्येञौ ह्वयतिस्तथा ।
वद्-वसौ श्वयतिश्चैव नवैते स्युर्यजादयः । *

इज्यते । नित्यत्वात् सङ्कर्षणे सति—ऐज्यत ।
'छशो राज्' (त्रि० प्र० १०३) इति षत्वम्—अयाक्षीत् अयाष्टाम् ॥२६१॥

२६२ । वच्यादीनां ग्रहादीनाञ्च नरस्य सङ्कर्षणोऽधोक्षजे ।

ग्रहादयो वक्ष्यन्ते । इयाज, ईजतुः, ईजुः, इयजिथ, इयष्ठ । इज्यात् ।

डुवप् बीज-तन्तु-सन्ताने, डुरित्, वपति, वपते, उप्यते ।

वह् प्रापणे—वहति, वहते, उह्यते । अवाक्षीत् विशेषत्वादोरामो वृष्णीन्द्रं बाधते—अवोढाम्, अवोढ । उवाहः, ऊहतुः ॥२६२॥

वेञ् तन्तुसन्ताने—वयति, वयते, ऊयते—

२६३ । वेञो न सङ्कर्षणोऽधोक्षजे ।

ववौ, ववतुः ॥२६३॥

१, पतति, पतते (ख)

* ''यजिर्वपिर्वहिश्चैव वेञ्व्येञौ ह्वयतिः स्वपिः । वद्वसी श्वयतिर्वक्तिरेकादश यजादयः ॥' (सारस्वत-व्याकरणम्)

इण् गतौ, ण् इत्, एति, इतः, 'एति ह्रुवो' (आ० प्र० १४२) इति यः—यन्ति, ईयते । इयात् ।

२९४ । इणो गा भूतेशे ।*

'इण् स्था' (आ० प्र० ५३) इति सेर्महाहरः—अगात् । वृष्णीन्द्रः (आ० प्र० ५९) द्विर्व्वचनम् [आ० प्र० ६९] इयादेशः (आ० प्र० १२८) इयाय । 'एति' (आ० प्र० १४२) इत्यादौ 'एव' कारान्न यादेशः, ततो द्विर्व्वचने इयादेशे च कृते—ईयतुः, ईयुः, इययिथ, ईयेथ । ईयात् ॥२९४॥

२९५ । उपेन्द्रादिनो न त्रिविक्रमः कामपाले

अन्वियात् । सन्धिर्भवत्येव—अभीयात् ॥२९५॥

इक् स्मरणे— २९६ । इण्वदिक् ।*

ततो यरामादि ॥२९६॥

२९७ । इकिङौ नित्यमधि-पूर्व्वौ ।

अध्येति, अधीतः, अधियन्ति । अध्यगात् ।

मा माने—माति, मीयते । मेयात् ।.२९८॥

ख्या प्रकथने—

२९८ । अस्यति-वक्ति-ख्यातिभ्यो ङो भूतेशे कर्त्तरि ।

आरामहरः [आ० प्र० १८२]—अख्यत् ।

या प्रापणे—याति ।

वा गति गन्धनयोः, गतिर्वातस्यैव, गन्धनम्—हिंसा, सूचनं वा ।

द्रा कुत्सायाम्, निपूर्व्वो निद्रायाम्—निद्राति ॥२९८

विद् ज्ञाने * वेत्ति, वित्तः, विदन्ति इत्यादि

२९९ । वेत्ति-प्रभृतीनां वेदादयो नव निपाता वा

वेद, विदतुः, विदुः, वेत्थ, विदथुः, विद, वेद, विद्व, विद्म । अनयोस्तु विष्णुसर्गाभावेन निपातः ॥२९९॥

३०० । वेत्तु-प्रभृतीनां विदाङ्करोतु-प्रभृतीनि वा ।

विदाङ्करोतु, विदाङ्कुरुताद्वा, विदाङ्कुरुताम्, विदाङ्कुर्व्वन्तु, विदाङ्कुरु, विदाङ्कुरुताद्वा, विदाङ्कुरुतम्, विदाङ्कुरुत, विदाङ्करवाणि, विदाङ्करवाव, विदाङ्करवाम इति ॥३००॥

अवेन, अवित्ताम्, अविदुः—

३०१ । द-धोरुः सिपि वा ।

अवेः अवेत् । अवेदीत् ॥३०१॥

'उष-वेत्ति जागृभ्य आम्' (अ० प्र० १७६)—

३०२ । विदेरामि न गोविन्दः ।

विदाञ्चकार, विवेद ॥३०२॥

अस् भुवि, सत्तायामित्यर्थः—अस्ति—

३०३ । श्नमस्त्योररामहरो निर्गुणे ।

स्तः, सन्ति ॥३०३॥

३०४ । अस्तेः स-लोपः से ।

असि, स्थः, स्थ, अस्मि, स्वः, स्मः ॥३०४॥

३०५ । उपेन्द्र-प्रादुर्भ्यामस्तेः सः षो य-सर्व्वेश्वरयोः ।

निषन्ति, प्रादुःषन्ति । प्रादुरिति शब्दोऽयं पृथगव्ययं, न तु प्रादीनां समुदायः, पृथगुपादानात् । तेनोपेन्द्रकार्य्यमन्यत्रापि नास्य गम्यम् ।

क्रिया व्यतिहारे धातोरात्मपदं वक्ष्यते [का० प्र० २०३]व्यतिस्ते व्यतिषाते, व्यतिषते । प्रत्यय सरामस्य विष्णुपदादित्वान्न षत्वम्—व्यतिसे । पाणिनीयाश्च [८।३।१११] 'सात् पदाद्योः' इति सूत्रयन्ति, उदाहरणन्ति च—अग्निसाद्भवति, दधिसिञ्चति, व्यतिसे इति । व्यतिषाथे, व्यतिध्वे ॥३०५॥

---

* "इणो गा लुङि ।" (पा २।४।४५)

* "इण्वदिक इति वक्तव्यम् ॥" (वार्त्तिकम्)

* "वेत्तिरूपं (वेद ?) विद ज्ञाने विन्ते विद विचारणे । विद्यते विद सत्तायां लाभे विन्दति विन्दते ॥" इति धातुरूपकल्पद्रुमोद्धृत पाठः । "सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे । विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्नम्शेष्विदं क्रमात् ॥" (सिद्धान्तकौमुदी)

३०६। अस्तेः सस्य ह परामे।

व्यतिहे, व्यतिस्वहे, व्यतिस्महे। तत्राकरणादनुप्रयोगे तु न इन्दामासे। 'श्तिपा धातुस्वरूपनिर्द्देशान्न स्यात्' इति कालापाः ॥३०६॥

३०७। अस्तेर्भूर्ब्रुवो वची रामधातुके।

भूयते। स्यात्, स्याताम्। पत्वे—निष्यात्। अस्तु, स्तात्॥३०७॥

३०८। असहेरेधि।

एधि। पक्षे—स्तात्। असानि। 'अस्ति-सिभ्यामीट्' (आ० प्र० ८१)—आसीत्॥३०८॥

३०९। अस्तेर्नारामहरो भूतेश्वरे।

आस्ताम्, आसन्। अभूत्, भुवं प्रति महाहरोऽयं सन्निपातस्तस्य विघाताय न भवति। बभूव इत्यादि ॥३०९॥

मृजूष् शुद्धौ, ऊषावितौ—

३१०। मृजेर्वृष्णीन्द्रः।

मार्ष्टि, 'ईशस्य न गोविन्दवृष्णीन्द्रौ' (आ० प्र० ३५)—मृष्टः। 'कंसारिसर्व्वेश्वरादौ वा' इति तु भाष्यमतम्—मृजन्ति, मार्जन्ति। मार्क्षि। मृज्यते। मृड्ढि। अमार्ट्। अमार्जीत्, अमार्क्षीत्। ममृजतुः, ममार्जतुः। आदिग्रहणान्नैकसर्व्वेश्वरे—ममृजुः॥३१०

वच् परिभाषणे, 'चवर्गस्य कवर्गः' (वि० प्र० ९७)—वक्ति, वक्तः, 'वचन्ति' इति तु न स्यात्। 'न हि वचिरन्तिपरः प्रयुज्यते' इति भाष्यम्। एवं 'वचन्तु, अवचन्' इत्यपि न स्यादिति ज्ञेयम्। उच्यते।

'अस्यति-वक्ति (आ० प्र० २९८) इति ङः—

३११। वच उम् ङे।

अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन् इत्यपि। उवाच ऊचतुः, ऊचुः॥३११॥

रुदिर् अश्रुविमोचने—

३१२। रुदादिभ्य इट् कृष्णधातुके।

रोदिति, रुदितः॥३१२॥

३१३। नेट् य सर्व्वेश्वरयोः।

रुदन्ति। भावे—रुद्यते। रुद्, स्वप्, श्वस्, अन्, जक्ष्—रुदादिः॥३१३॥

३१४। दि-स्योस्तु रुदादेरीट् च।

अरोदीत्, अरोदत्, अरुदिताम्। 'इरनुबन्धान् ङो वा' (आ० प्र० ८८)—अरुदत्, अरोदीत्।

ञिष्वप् शये—स्वपिति, सुप्यते। 'कृष्णधातुक'-ग्रहणात्तत्रानिटोऽपि स्यात्, न त्वन्यत्र—स्वप्ता॥३१४

अन्, श्वस् प्राणने—श्वसिति। 'ह-म-यान्त' (आ० प्र० १४९) इति—अश्वसीत्। अनिति—

३१५। उपेन्द्रादनो णत्वमन्तस्य च, नारायणस्य च।

प्राणिति। हे प्राण्! केशववृत्तौ तु 'हे प्रान्! इति वा॥३१५॥

जक्ष् भक्ष-हसनयोः—जक्षिति—

३१६। जक्षादिरपि नारायणः।

जक्ष्, जागृ, दरिद्रा, चकासृ, शासु—जक्षादिः ॥३१६॥

३१७। नारायणादन्तो नस्य हरः।

'अन्तः' इत्यन्त्यादीनामेकदेशनिर्द्देशः, षष्ठ्यन्तः जक्षति। अजक्षुः॥३१७॥

जागृ निद्राक्षये—जागर्त्ति, जागृतः, जाग्रति—

३१८। जागर्त्तेर्गोविन्दः सर्व्वत्र, न तु इण्-णल्-निर्गुणेषु।

३१९। उत्तमणलि वा।

जागर्य्यते। अजागः, अजागृताम्॥३१८-३१९॥

३२०। ईशान्तस्य गोविन्दोऽन उसि।

अजागरुः, अजागः। गोविन्दे कृते न तु 'अरलित्यन्तस्य वृष्णीन्द्रः' [आ० प्र० १६५] न च विष्णुजनादेर्लघो' [आ० प्र० १०६] इति तद्विकल्पः, सर्व्वत्र [आ० प्र० ३१८] ग्रहणेन सर्व्वापवादत्वात्—अजागरीत्, अजागारि। जजागार, जजागरतुः। एकसर्व्वेश्वरादेव सर्व्वमप्यनिटं मन्यन्ते—जजागरिथ जजागार, जजागर। आमि—जागरामास, जागरामासतुः॥३२०॥

दरिद्रा, दुर्गतौ—दरिद्राति—

३२१ । दरिद्रातेरिरामो निर्गुण विष्णुजने

दरिद्रितः ॥३२१॥

३२२ । श्ना नारायणयोरारामहरो निर्गुण-कृष्णधातुके ।

दरिद्रति । इद्विधानादन्यत्रेदम् ॥३२२॥

३२३ । दरिद्रातेरारामहरो वैष्णवादि-सन्-युक्-टन्वर्ज्जित-रामधातुके ।

३२४ । भूतेशे तु वा ।

भावे—दरिद्रयते । आराम हर पक्षे सिः—अदरिद्रीत् । पक्षान्तरे सुगिटौ (आ० प्र० १६२)—अदरिद्रासीत् । अदरिद्रि, अदरिद्रायि । 'अनेकसर्व्वेश्वर' (आ० प्र० १५३) इति—दरिद्राञ्चकार 'ददरिद्रौ' इति कश्चित् ॥३२३-३२४॥

चकासृ दीप्तौ—चकास्ति । हौ—चकाधि, चकाद्धि, इति केचित्—

३२५ । सस्य तो दिवलोपे ।

३२६ । सिब्लोपे तु रश्च ।

अचकात्, अचकाः, अचकात् । सर्व्वेश्वरव्यवधाने 'विष्णुजनादेर्लघो' (आ० प्र० १०६) इति न मन्यन्ते अचकासीत् । चकासामास ॥३२५-३२६॥

शासु अनुशिष्टौ, अनुशिष्टिरुपदेशो दण्डनञ्च शास्ति—

३२७ । शासः शिष् कंसारि-विष्णुजन-ङयोः

शिष्टः, शासति, शिष्यते । शिष्यात् । 'आङः शासु इच्छायाम्' इत्यात्मपदिनो न शिषो ग्रहणं, धात्वन्तरतया पृथक्पाठात्, तेन—आशास्ते ॥३२७॥

३२८ । शास् हेः शाधि ।

शाधि, पक्षे—शिष्टात् । भूतेश्वरे—अशात्, अशाः, अशात् । भूतेशे—अशिषत् ॥३२८॥

चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, इङावितौ, इराम उच्चारणार्थः—

३२९ । नित्यमाङ्पूर्व्वोऽयम् ।

'स्कोः सत्गङ्गाद्योर्हरः' (वि० प्र० १०४) आचष्टे आचक्षाते, आचक्षते ॥१२९॥

३३० । चक्षिङः ख्याञ् रामधातुके ।

३३१ । अधोक्षजे तु वा ।

आख्यायते । 'भाविनि भूतवदुपचारः' इति ङप्रत्ययात् पूर्व्वमेव ख्यादेशः, ञित्वादुभयपदम्, 'अस्यति वक्ति' (आ० प्र० २९८) इत्यादौ आदेशो वचिः ख्याञोपलक्ष्यते, आख्यत्, आख्यताम्, आख्यत ॥२३०-३३१॥

३३२ । वर्ज्जने[1] तु नादेश ।

समचक्षिष्ट । आचख्यौ, आचक्ष्ये, आचचक्षे ॥३३२

ईड् स्तुतौ—ईट्टे—

३३३ । ईडीशिभ्यामिट् स-ध्वोर्न तु भूतेश्वरे ।

ईडिषे, ईडिध्वे । ऐड्ढ्वम् । ऐडिष्ट ।

ईश् ऐश्वर्य्ये—ईष्टे, ईशिषे, ईशिध्वे ।

आस् उपवेशने—आस्ते । आसाञ्चक्रे ।

वस् आच्छादने—वस्ते ॥३३३॥

षूङ् प्राणिगर्भ विमोचने—सूते—

३३४ । सुवः कृष्णधातुके न गोविन्दः ।

सुवै, सुवावहै, सुवामहै । 'सूतेर्लुग्विकरणस्येदं ग्रहणम्' इति काशिकालिखनदृष्ट्या श्तिपि च कृति—'सूतिः' । सूत्रे श्तिपा निर्द्देशाभावात् यङ् लुकि च 'सोषूति, सोषुवीति' सेत्स्यति । पाणिनीयाः (७।३।८८) हि 'भूसुवोस्तिङि' इति गुणं निषिद्ध 'बोभवीति बोभोति' इत्यत्रैव 'बोभूति' इत्यादिद्वयस्य छन्दः सूत्रे निपातज्ञापक-बलाद् गुणं साधयन्ति । असविष्ट, असोष्ट ॥३३४॥

---

१ । भूतेशे वर्ज्जने (ख)

शीङ् स्वप्ने—

३३५। शीङः शे कृष्णधातुके।

शेते, शयाते, 'अरामान्त्य'(आ० प्र० ६३) इत्यादौ 'शीङो रुट् च' (आ० प्र० ६४)—शेरते ॥३३५॥

३३६। शेतेः शय् कंसारि ये।

शय्यते ॥३३६॥

इङ् अध्ययने, नित्यमधि पूर्व्वोऽयम्, अधीते, अधीयाते, अधीयते, कर्म्मणि च—अधीयते। भूतेश्वरे—अध्यैत। 'इय्' (आ० प्र० १३९) ततो वृष्णीन्द्रः (आ०प्र० १०६) 'योगविभागेन यथेष्टसिद्धि' इति सर्व्वत्र कल्पनात्—अध्यैयाताम्।

३३७। इङो गामधोक्षजे, भूतेशाजितयोस्तु गीर्व्वा।

'येन नाव्यवधानं सम्भवति' इति न्यायेन सि-प्रभृति-व्यवधानेऽपि गीः स्यात्—अध्यगीष्ट, अध्यैष्ट, अध्यगायि, अध्यायि। अधिजगे। अध्यगीष्यत, अध्यैष्यत, गोविन्दत्वं चेदेरामः क्रियते।

द्विष् अप्रीतौ—द्वेष्टि, द्विष्टः। अद्वेट्, अद्विषन्, 'उस् वा' इति केचित्—अद्विषुः। अद्विक्षत्, अद्विक्षन्

दुह् प्रपूरणे—दोग्धि, धोक्षि, दुग्धे, धुग्ध्वम्। अधोक्। अधुक्षत, अधुक्षत। पक्षे 'दुह्-लिह्-दिह्' (आ० प्र० २५९) इति सको हरः—अदुग्ध, अधुक्षाताम्

दिह् उपचये—देग्धि, दिग्धे।

लिह् आस्वादने—लेढि, लीढे ॥३३७॥

ऊर्णुञ् आच्छादने, 'उरामस्य वृष्णीन्द्रः' (आ० प्र० २९१) इत्यादौ 'ऊर्णोतेर्व्वा' (आ० प्र० २९२)—ऊर्णौति, ऊर्णोति।

३३८। ऊर्णोतेर्गोविन्दो दिस्योः।

और्णोत्, और्णोः। 'ईशान्तस्य' इत्यादौ 'ऊर्णोतेर्व्वा' (आ० प्र० १२७)—और्णावीत् ॥३३८॥

३३९। ऊर्णोतेरिट् निर्गुणो वा।

और्णुवीत्, और्णवीत, और्णुविष्ट, और्णविष्ट ॥३३९

३४०। ऊर्णोतेर्नाम्।

'सर्व्वेश्वरादित्वे तु सत्सङ्गादि-न-व-द-र वर्ज्जस्यान्यभागस्य' (आ० प्र० ७१) इति णोर्द्विर्व्वचने प्राप्ते 'कार्य्यार्थमक्षरं विश्लेषयेत्' इति न्यायेन रराम-विश्लेषणं, ततो द्विर्व्वचनं, 'रषाभ्यां टुस्तवर्गजत्वात्' नैमित्तिकापायः—ऊर्णुनाव, ऊर्णुनुवतुः, ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ। ऊर्णुविता, ऊर्णविता।

ष्टुञ् स्तुतौ—स्तौति, स्तुतः, स्तुते, स्तूयते। 'सुस्तु-धूञ्भ्यः' (आ० प्र० २०७)—अस्तावीत्। 'कृ' (आ० प्र० १०५) आदि नियमात् तुष्टोथ।

रु शब्दे—रौति। एवं णु स्तुतौ—नौति ॥३४०

ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि—

३४१। ब्रुव ईट् कृष्णधातुक-पृथु-विष्णुजने

३४२। चक्रपाणेस्तु वा।

'तुरुस्तुशम्यमः सार्व्वधातुके' (पा ७।३।९५) इत्यत्रापृथावपीट् छन्दस्येवेति भाषावृत्त्यादौ—स्तवीति, स्तुवीतः। 'पृथावेव' इति तस्यां (पा ७।३ ९३) भ्रमः। ब्रवीति, ब्रूतः, ब्रुवन्ति ॥३४१-३४२॥

३४३। ब्रवीत्यादिपञ्चानामाहादयो वा।

आह, आहतुः, आहुः, आत्थ, आहथुः। 'ब्रूवो वचिः' (आ० प्र० ३०७)—उच्यते। अवोचत्। उवाच ॥३४३॥

इति अदादिः।

अथ ह्वादिः

हु वह्नौ दाने—

३४४। जहोत्यादेः पूर्व्वद्विर्व्वचनं शब्लुकि

'न तु नारायणस्य' (आ० प्र० २९३) इति न वृष्णीन्द्रः—जुहोति, जुहुतः, जुह्वति। जुहुधि। अजुहवुः ॥३४४॥

३४५। भी-ह्री-भृ-हुम्य ग्रामधोक्षजे वा, द्विर्व्वचनश्च।

जुहवामास, जुहाव ॥३४५॥

ञिभी भये, इराम इत्, बिभेति—

३४६। भियो वामनो वा कृष्णधातुके

बिभितः, बिभीतः, बिभ्यति। अभैषीत्, अभैषीः कथं 'मा भैः शशाङ्क मम सीधुनि नास्ति राहुः' * इति ? 'आगमशासनमनित्यम्' इति न्यायात् ईटोऽसद्भावात्।

ह्री लज्जायाम्—जिह्रेति, जिह्रीतः, जिह्रियति ॥३४६॥

पॄ पालनपूरणयो—

३४७। अर्त्ति-पिपर्त्त्योर्नरस्येरामः कृष्णधातुके

पिपर्त्ति ॥३४७॥

३४८। ओष्ठ्योद्धवस्य ॠत उर् कंसारौ।

पिपूर्त्त, पिपुरति, पूर्य्यते। 'सत्सङ्गाद्दचदन्तस्य' (आ० प्र० १९५) इत्यादिना गोविन्द एव, मात्र ग्रहणात्—पपरतुः। वामनोऽप्यस्ति—पिपृतुः, पप्रतुः ॥३४८॥

ओहाक् त्यागे, ओकावितौ, जहाति—

३४९। दामोदरं विना श्ना-नारायणारामोयोरी कृष्णधातुक-निर्गुणविष्णुजने जहातेरिश्च।

जहीतः, जहितः, जहति, हीयते ॥३४९॥

३५०। जहातेरारामहरः कृष्णधातुक-ये

जह्यात्, जहिहि, जहीहि, 'जहाहि' इत्यपि मतम्।

ऋ गतौ, अर्त्तिपिपर्त्त्योर्नरस्येरामः (आ० प्र० ३४७) 'नरेदुतोरियुवौ' (आ० प्र० १२८) इति—इयर्त्ति, इयृतः, इय्रति, अर्य्यते। इय् (आ० प्र० १३९) वृष्णीन्द्रः (आ० प्र० १०९) गोविन्दः (आ० प्र० ३९) 'विष्णुजनाद्दिस्योर्हरः' (आ० प्र० २२८) 'रात्-सस्यैव' (वि० प्र० ११०) इति नियमात् न तु सत्सङ्गान्तहरः —ऐयः, ऐयृताम्, ऐयुरुः। 'आरत्' इत्यादि भौवादिकवत् ॥३५०॥

णिजिर् शौचे—

२५०। णिजि-विजि-विषां नरस्य गोविन्दः कृष्णधातुक-मात्रे।

नेनेक्ति १ ॥३५०॥

३५१। न नारायणोद्धवस्य गोविन्दः कृष्णधातुक सर्व्वेश्वरे।

नेनिजानि। विष्लृ व्याप्तौ—वेवेष्टि। सहजषान्तत्वान्न णत्वम—प्रणिवेवेष्टि। जन्-जनने छान्दसः। अत्रापि स-ध्वोरिट्। कालापास्तु 'व्यतिजज्ञिषे' इत्यादिकं भाषायामपीच्छन्ति ॥३५२॥

डुदाञ् दाने, डुञावितौ, ददाति। 'श्ना नारायणयोरारामहरः' (आ० प्र० ३२२)—दत्तः, ददति, दत्ते, दीयते।

३५३। दामोदरस्यैत्व-नरादर्शने हौ।

देहि। अददात्। अदात्, 'आरामादन उस्' (आ० प्र० १८८) अदुः, अदित, अदायि, अदायिषाताम् ॥३५३॥

डुधाञ् धारण-पोषणयोः—दधाति—

---

* "मा भैः शशाङ्क मम सीधुनि नास्ति राहुः, खे रोहिणी वसति कातर किं बिभेषि ?
प्रायो विदग्ध-वनिता-नव-सङ्गमेषु, पुंसां मनः प्रचलतीति किमत्र चित्रम् ॥" (शीतायाः)
वागभट कृत काव्यानुशासनम् (निर्णयसागर-संस्करणम्, २०पृष्ठे) हेमचन्द्र कृत काव्यानुशासनविवेकः (निर्णयसागर-संस्करणम्, १६पृष्ठे) राजशेखर कृत काव्यमीमांसा (वरोदा संस्करणम्, ८६ पृष्ठे) केशवमिश्र कृत काव्यालङ्कार शेखर (काशी संस्करणम्' ३२पृष्ठे)।

१। 'नेनिक्ते' इति क-पाण्डुलिप्यामधिकपाठः।

३५४। अपेराधिहरो धाञ् नद्धयोर्वा।

३५५। अवस्य तंसे।

३५६। तरतौ चेत्येके।

अपिदधाति, पिदधाति, अवतंसः, वतंसः, अवतरति, वतरति ।।३५४-३५६।।

३५७। धाञो नरस्य धो निर्गुणे वैष्णवे।

हरिगदाख्यवादः। धत्तः, धत्थः, धत्से, धद्ध्वे ।।३५७

३५८। श्रदित्यव्ययमुपेन्द्रवद्धाञि।

श्रद्दधाति, निश्चिनोत्यभिलषित वेत्यर्थः ।।३५८।।

डुभृञ् धारण-पोषणयोः—

३५९। हाङ्-माङोर्नरस्येरामः कृष्णधातुके

३६०। भृञ ग्रामि च।

बिभर्त्ति। बिभराञ्चकार, बभार।

ओहाङ् गतौ—जिहीते, जिहाते। एवं माङ् माने—मिमीते, मिमाते ।।३६०।।

इत्यदादौ जुहोत्यादिः, अदादिश्च समाप्तः २।

अथ दिवादिः

दिवु क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु—

३६१। दिवादेः शपः श्यः।

श् इत्। शित्करणान्न स्थानिवत्त्वम्; तेन न पृथुः; 'धातो रव-प्रागिदुतः' (वि० प्र० ११७)—दीव्यति। एवं षिवु तन्तु-सन्ताने ।।३६१।।

नृती गात्रविक्षेपे—नृत्यति—

३६२। नृतीकृत्यादेरिड्वा से सिं विना।

नर्त्तिष्यति, नर्त्स्यति।

त्रसी उद्वेगे—त्रस्यति।

जॄष् वयोहानौ—जीर्य्यति। अजरत्, अजारीत् 'सत्सङ्गाद्द्यदन्तस्य' (आ० प्र० १९५) इति जॄ-भ्रमु' (आ० प्र० ११४) इति—जजरतुः, जेरतुः ।।३६२।।

शो तनूकरणे—

३६३। ओरामस्य हरः श्ये।

श्यति। शायात्। एवं छो छेदने—छ्यति। षोऽन्तकर्म्मणि—स्यति, सीयते। सेयात्। दोऽवखण्डने—द्यति, दीयते। देयात्।

राध् साध् संसिद्धौ—राध्यति। अरात्सीत्। 'जॄ-भ्रमु' (आ० प्र० ११४) इत्यादौ 'हिंसार्थ राधश्च वा'—अपरेधतुः, अरराधतुः।

व्यध् ताडने, 'ग्रहि-ज्या' (आ० प्र० २६५) इति सङ्कर्षणः—विध्यति।

पुष् पुष्टौ—पुष्यति। 'पुषादि' (आ० प्र० २०९) इति ङः—अपुषत् ।।३६३।।

श्लिष् आलिङ्गने—श्लिष्यति—

३६४। श्लिष आलिङ्गनार्थात् सक् भूतेशे

अश्लिक्षत्३ प्रियां कृष्णः। अर्थान्तरे तु समाश्लिषत् तुलसीं चन्दनञ्च—मिथो मिलिते इत्यर्थः, कुई क्रीडायामेव, इति 'एव' कारेण धातूनामनेकार्थत्वात् ।।३६४।।

रध् हिंसायाम्—रध्यति। नुम, 'यस्य विष्णुस्तस्य सोऽङ्गम्' इति न्यायेन धात्वङ्गत्वान्नस्य हरः—अरधत् यथा भाषावृत्तावाङोऽपीति लभेर्नुमं विधाय 'आलम्भ्यः पशुः' इति साध्यते।

२। इति जुहोत्यादिः (ख घ)। ३। आश्लिक्षत् (क)।

'आलम्भते' इत्यत्रानिदित्त्वान्न-लोपः क्रियते, तस्मात् प्रक्रिया (पा ३।१।४६, ७।१।६२) चिन्त्या।

३६५। रधादेरिड्वा।

३६६। रधेर्नुम्निषेधोऽधोक्षज-वर्ज्जितेटि

अरत्साताम्, अरधिषाताम्। अधोक्षजे तु—ररन्धिथ, ररन्धिव, नियमबलान्नित्यमिट्।

तृप् प्रीणने—तृप्यति। 'कृप् स्पृश् (आ० प्र० १७०) इति अतृपत्, अतर्पीत्, सहजानिट्सु पाठादम् वा—अतार्प्सीत्, अत्राप्सीत्*। एवं दृप् हर्षविमोचनयोः

मुह् वैचित्त्ये—मुह्यति। अमुहत्। मोग्धा, मोढा, मोहिता ॥३६५-३६६॥

नश् अदर्शने नश्यति—

३६७। नशेर्नेशिङे वा।

अनेशत्, अनशत् ॥३३७॥

३६८। मस्जि-नशोर्नुम् वैष्णवे।

नङ्क्षीष्ट। नंष्टा ॥३६८॥

३६९। नशेर्न णत्वं षत्वे।

प्रनंष्टा।

क्रम् पादविक्षेपे, 'क्रमस्त्रिविक्रमः' (आ० प्र० १५९) इत्यादि—क्राम्यति। 'शपि' इति तस्यां [पा ७।३ ७६] भ्रमः ॥३६९॥

इति रधादिः

शमु उपशमे—

३७०। शमादीनां त्रिविक्रमः श्ये।

शाम्यति। 'जनि बध्योर्मन्तानाम् (आ० प्र० १५७) —अशमि। क्लमु ग्लानौ—क्लाम्यति ॥३७०॥

असु क्षेपणे—अस्यति—

३७१। अस्यतेरस्थो ङे।

आस्थत्। निरास्थत इत्यात्मपदं वक्ष्यते (४।२२८) ॥३७१॥

यसु प्रयत्ने—

३७२। यसः श्यो वा, संवर्ज्जोपेन्द्रात्तु नित्यम्।

*यस्यति, यसति, संयस्यति, संयसति प्रयस्यति। लुभ् गार्ध्ये, गार्ध्यमाकाङ्क्षा, लुभ्यति। 'इषु-सह-लुभ' (आ० प्र० १७५) इति इड्वा—लोब्धा, लोभिता ॥३७२॥

ञिमिदा स्नेहने—

३७३। मिदेर्गोविन्दः शिवे।

मेद्यति।

इति पुषादिः

षूङ् प्राणि-प्रसवे—सूयते। असविष्ट, असोष्ट ३७३

दीङ् क्षये—

३७४। मीनाति-मिनोति-दीङामारामान्तपाठश्चतुर्व्यूहविधिस्थाने यपि च, लीयति-लीनात्योर्व्वा।

दामोदरत्वाभावान्न रामः—अदास्त ॥३७४॥

३७५। दीङो युट् कपिल सर्व्वेश्वरे।

'नरस्य वामनः' (आ० प्र० १३०)—दिदीये। 'इड् व्यवधाने' (आ० प्र० ६८) इति अन्यागम व्यवधाने तु न ढत्वम्—दिदीयिध्वे, 'स्यात्' इत्येके दिदीयिढ्वे। 'सहज हरिमित्र ग्रहणम्' इति प्रसादकारः (पा ६।४।६३)।

लीङ् श्लेषणे—लीयते। लाता, लेता ॥३७५॥

जनी प्रादुर्भावे—

३७६। ज्ञा-जनोर्जा शिवे।

जायते, भावे—जायते, जन्यते। अजनि, अजनिष्ट। 'दीप् जनी' [आ० प्र० २३६] इति इण् वा कर्त्तरि—जज्ञे।

---

* "नातृपत् करुणादृष्टिर्नात्राप्सीत् प्रापिता श्रुतिः। नातार्प्सीत् प्रार्च्छिता नासा नातर्पीदर्पितं मनः॥" (श्रीगोपालचम्पूः पू २१।६०)

* "यस्य तस्य विना षष्ठीं तेनेति करणं विना। न जगाम गमेर्धातोर्वृक्षादिति न पञ्चमी॥" इति समस्या-श्लोको धातुरूपकल्पद्रुमे (दिवादिः—६८) द्रष्टव्यः।

पद् गतौ—पद्यते। कर्त्तरि—अपादि। बुध् अवगमने—बुध्यते। अबोधि, अबुद्ध, अभूत्सातात्। णह् बन्धने—नह्यति, नह्यते। नद्धा ॥३७६॥

इति दिवादिः।

अथ स्वादिः

षुञ् अभिषवे, अभिषवः—सन्धानं मङ्गलस्नानं वा, 'पीडनम्' इत्यन्ये—

३७७। स्वादेः शपः श्नुः।

'उ-श्नवोर्गोविन्दः' (आ० प्र० २०३) सुनोति, षत्वम्—अभिषुणोति। न गोविन्दवृष्णीन्द्रौ–सुनुतः, सुन्वन्ति, सुनोषि इत्यादि, सुनुते, सुन्वाते इत्यादि, सूयते। 'सु स्तु धूञ्भ्य इट् सौ' (आ० प्र० २०७) असावीत्, असोष्ट। एवं धुञ् कम्पने।

डुमिञ् प्रक्षेपणे—मीनाति, (आ० प्र० ३७४) इत्यात्वम्—अमासीत्।

चिञ् चयने—चिनोति। अधोक्षजे--चेः किर्वा (आ० प्र० १६६) चिकाय, चिचाय।

स्तृञ् आच्छादने—'ऋरामवृभ्यः' (आ० प्र० २१३] इति वेट्–अस्तरिष्ट, अस्तृत। स्तरिषीस्ट।

वृञ् आवरणे–अवारीत्। 'ऋरामवृभ्यः' [आ० प्र० २१३] इति वेट् दीर्घः–अवरीष्ट, अवरिष्ट, अवृत। 'अत्यर्त्तिवृ' (आ० प्र० १४६) ववरिथ, ववृव ॥३७७॥

हि गतौ वृद्धौ च–हिनोति, णत्वम्–प्रहिणोति

३७८। नरतो हेर्घिर्न त्वङि।

जिघाय ॥३७८॥

कृवि जिघांसायाम्—

६७६। कृविधिव्योः कृधी श्नौ।

अन्त.स्थान्तर्गणे पठितावेतौ, कृणोति।

इदित्वान्नुम् (आ० प्र० ९३) कृण्व्यते। अकृण्वीत्। चकृण्व। कृण्विता।

धिवि प्रीणने—धिनोति।

दन्भु दम्भे, दम्भः--परवञ्चना। दम्नोति, दम्नुतः, दम्नुवन्ति। ददम्भ। 'श्रन्थि-ग्रन्थि' (आ० प्र० ८६) इत्यादिना कपिले वा देभतुः, ददम्भतुः, देभिथ, ददम्भिथ। 'आदेशहीन' (आ० प्र० ११२) इत्यादिना एवैत्वादौ प्राप्तेऽपि तत्र श्रन्थेर्दम्भेश्च पृथगुपादानं नियमार्थं नलोपिनां मध्ये तयोरेवेति तेनाधोक्षजाभे कृति 'ममथ्वान्' सेत्स्यति ॥३७९॥

अशूङ् व्याप्तौ–अश्नुते, अश्नुवाते, अश्नुवते–

३८०। अश्नोति-नरान्नुडधोक्षजे।

आनशे ॥३८०॥

इति स्वादिः।

अथ तुदादिः

तुद् व्यथने—

३८१। तुदादेः शपः शः।

तुदति, तुदते ॥३८१॥

भ्रसज् पाके, 'ग्रहि-ज्या' (आ० प्र० २६५) इति संङ्कर्षणः—

३८२। सस्य जो जे।

भृज्जति ॥३८२॥

३८३। भ्रस्जेर्भर्ज्जोऽकंसारौ वा।

अभार्क्षीत्, अभ्राक्षीत्। बभर्ज, बभ्रज्ज। कंसारौ तु—भृज्यते ॥३८३॥

मुच्लृ मोक्षणे—

३८४। *मुचादेर्नुम् शे।

मुञ्चति। लुप्लृ छेदने—लुम्पति। विद्लृ लाभे—विन्दति। लिप् उपदेहे—लिम्पति। 'लिपि-सिचि' (आ० प्र० २६८) इत्यादि—अलिपत्, अलिपत अलिप्त

षिच् क्षरणे, इरनुबन्धत्वं वहूनामसम्मतम्, सिञ्चति। षत्वम्—अभिषिञ्चति। असिचत्, असिचत, असिक्त। एते उभयपदिनः।

कृती छेदने—कृन्तति। कर्त्स्यति, कर्तिष्यति।

इति मुचादिः

षू प्रेरणे सुवति। ओव्रस्चू छेदने, 'सस्य-शश्चवर्गयोगे' (वि० प्र० १०२) वृश्चति। ऋच्छ गत्यादिषु—ऋच्छति। 'सत्सङ्गाद्दचदन्तस्य (आ० प्र० १६५) इति गोविन्दः, 'द्विविष्णुजने' (आ० प्र० १११) इति नुडिष्यते—आनर्च्छ आनर्च्छतुः। उद्धवत्वाभावान्न गोविन्दः—ऋच्छिता।

कॄ विक्षेपे, 'ऋरामस्येर्' (आ० प्र० २१२) किरति कीर्य्यते। चकरतुः। करिता, करीता ॥३८४॥

३८५। उपात् सुट् किरतौ छेदने।

उपस्किरति ॥३८५॥

३८६। अन्तर-व्यवधानेऽपि।

उपास्किरत्, उपचस्कार ॥३८६॥

३८७। उप-प्रतिभ्यां सुट् किरतौ हिंसायाम्

उपस्किरति, हिंसापूर्व्वकं क्षिपतीत्यर्थः। एवं प्रतिस्किरति इत्यादि ॥३८७॥

गॄ निगरणे, निगरणं गलाधःकरणम्—

३८८। गिरो रो लः सर्व्वेश्वरे वा, नित्यन्तु यङि।

गिरति, गिलति ॥३८८॥

गुफ् गुन्फ् ग्रन्थे—

३८९। गुन्फादेर्नलोपः शे वा।

गुफति, गुम्फति। नरामवैयर्थ्यादेव नलोपो न स्यादिति चेत्, रामधातुके सार्थकं स्यात्—गोफिता, गुम्फिता।

स्पृश् संस्पर्शने—स्पृशति। अस्प्राक्षीत्, अस्पार्क्षीत्, अस्पृक्षत्।

सृज विसर्गे, विसर्गः—सृष्टिस्त्यागो वा, सृजति अस्राक्षीत्।

टुमस्जो शुद्धौ, शुद्धिरिह स्नानम्, अवगाहे तु प्रयोगबाहुल्यम्, मज्जति। लोपविधेर्बलवत्त्वात् कृते सलोपे नुम् (आ० प्र० ३६८)—अमाङ्क्षीत्। संयुक्त-विष्णुजनमध्यत्वान्न त्वादि—ममज्जिथ, ममक्थ।

तृसर् छद्मगतौ, भौवादिकः, तृसरति। ततसरतुः।

विच्छ् गतौ—विच्छायति। तुदादित्वबलात् पक्षे विकरणश्च—विच्छति।

मृश् आमर्शने—मृशति। अम्राक्षीत्, अमार्क्षीत्, अमृक्षत्।

इषु इच्छायाम्—इच्छति। एष्टा, एषिता ॥३८९॥

कुट कौटिल्ये—

३९०। कुटादेरनृसिंहो निर्गुणः।

३९१। व्यचेस्त्वसिं विना।

---

* मुच्लृ लुप्लृ सिचिर्विद्लृ लिप्-कृिदो पिशत्रितः कृती। तुदाद्यन्तर्मुचादिः स्यान्न तृन्फादेर्नकार लुक् ॥

अकुटीत्। उत्तम-णलि नृसिंहकार्य्य-वृष्णीन्द्रविध्यभावाद् गोविन्द एव - चुकोट। कुटिता ॥३९०-३९१॥

लिख लिखने—मिल सङ्गे—

३९२। लिख-मिलौ कुटादी बहुलम्।

तेन—लिखिष्यति, लेखिष्यति, मिलिष्यति, मेलिष्यति, लिखनं, लेखनम्, मिलनं, मेलनम् इत्यादि।

स्फुर् स्फुरणे—स्फुरति।

व्यच् व्याजीकरणे, 'ग्रहि-ज्या' (आ० प्र० २६५) इति—विचति। विव्याच, विविचतुः, विविचिथ। 'व्यचेरसिवर्जितस्य कृत्प्रत्ययस्यैव निर्गुणत्वम्' इत्येके—विव्यचिथ। असिर्वक्ष्यते (कृ० प्र० ३३३) उरुव्यचाः।

णू स्तवने—नुवति। इटि न गोविन्दः—अनुविषाताम्। इणवदिटि तु वृष्णीन्द्रः-अनाविषाताम् उत्तमणलि वा - नुनाव, नुनव।

इति कुटादिः; एते परपदिनः ॥३९२॥

मृङ् प्राणत्यागे, 'ऋरामस्य रिः' (आ० प्र० १९७) म्रियते। अमृत। मृषीष्ट।

३९३। म्रियतेः परपदं शिव-भूतेश-कामपालेभ्योऽन्यत्र।

ममार। मरिष्यति।

ओविजी भय चलनयोः—विजते ॥३९३॥

३९४। विजेरिट् निर्गुणः।

अविजिष्ट ॥३९४॥

इति तुदादिः।

अथ रुधादिः

रुधिर् आवरणे, इरनुबन्धः—

३९५। रुधादेः शप्खण्डी श्नम्।

अन्त्य सर्व्वेश्वरात् परं मितः स्थानम्। शराम इत१, 'श्नान्नस्य हरः' (आ० प्र० ३९७) इति विशेषणार्थः।

रुणद्धि। 'श्नमस्त्योररामहरः' (आ० प्र० ३०३) 'विष्णुजनादविष्णुदासस्यादर्शनम्' (स० प्र० १२५) रुन्धः, रुन्द्धः, रुन्धन्ति, रुणत्सि, रुन्धः, रुन्द्धः, रुन्ध, रुन्द्ध, रुणध्मि, रुन्ध्वः, रुन्ध्मः, रुन्धे, रुध्यते रुन्ध्यात्। अरुणत्। सिपि—अरुणत्, अरुणश्च। अरुधत्, अरौत्सीत्।

शिष्लृ विशेषणे—शिनष्टि। 'हेर्धि' (आ० प्र० २७८) शिण्ढि, शिण्ड्ढि ॥३९५॥

तृह् हिंसायाम्—

३९६। तृहः श्नमो नेः पृथु विष्णुजने।

तृणेढि, तृण्ढः, तृंहन्ति, तृणेक्षि ॥३९६॥

हिसि हिंसायाम्, इदित्त्वान्नुम्—

३९७। श्नान्नस्य हरः।

हिनस्ति ॥३९७॥

अन्जू म्रक्षणादिषु—अनक्ति—

३९८। अन्जेरिट् सौ।

आन्जीत् ॥३९८॥

भन्जो आमर्द्दने—भनक्ति। अभाङ्क्षीत्—

३९९। भन्जेर्नलोप इणि वा।

अभाजि, अभञ्जि। ञिइन्धी दीप्तौ—इन्धे ॥३९९॥

१। 'शराम इत्' इत्यत्र 'शरामः' इति (ग घ)।

अथ तनादिः

तनु विस्तारे—

४००। तनादेः शपोऽपवाद उः।

'उ-श्न्वोर्गोविन्दः' (आ० प्र० २०३)—तनोति, तनुतः, तन्वन्ति, तनुवः तन्वः, तनुमः तन्मः, तनुते, तन्वाते, तन्वते ॥४००॥

४०१। तनोतेराराामो वा यकि।

तायते, तन्यते। तनुयात् ॥४०१॥

४०२। तनादेः सेर्महाहरो वा त-थासोः।

४०३। कृञस्तु नित्यम्।

भूतेशस्य कृष्णधातुकत्वादिडभावः—अतत, अतनिष्ट। अतथाः, अतनिष्ठाः।

षणु दाने—सनोति, सनुते। 'जन-खन-सनाम्' (आ० प्र० २५६) इत्यादौ 'वैष्णवाद्योः कंसारि सनोर्नित्यम्' (आ० प्र० २५७)—*असात, असनिष्ट ॥४०२-४०३॥

क्षिणु, क्षणु, हिंसायाम्—

४०४। नोद्धवस्य गोविन्द उ-विकरणे।

४०५। ऋरामस्य तु वा।

क्षिणोति, क्षिणुतः। क्षणु—'ह-म यान्त' (आ० प्र० १४६) इति—अक्षणीत्।

तृणु अदने—तृणोति, तर्णोति ॥४०४-४०५॥

डुकृञ् करणे, करोति—

४०६। करोत्यरामस्य उर्निर्गुणे।

कुरुतः, कुर्व्वन्ति, करोषि इत्यादि।

'असंयोगपूर्व्वस्य' (आ० प्र० २०४) इत्यादौ 'करोतेस्तु नित्यं ये च' (आ० प्र० २०५) कुर्व्वः, कुर्म्मः, कुरुते, क्रियते। कुर्य्यात्, कुर्व्वीत। करोतु, कुरुताम्, हौ—कुरु। अकरोत्: अकुरुत। अकार्षीत्, अकृत। चकार, चक्रे। क्रियात, कृषीष्ट। कर्त्ता, कर्म्मणि—कर्त्ता, कारिता। करिष्यति, करिष्यते। अकरिष्यत् अकरिष्यत ॥४०६॥

४०७। संपर्य्युपेभ्यः सुट् करोतौ संस्काराद्यर्थेषु।

४०८। अन्तर-व्यवधानेऽपि।

४०९। तत्र संपरिभ्यां भूषणे समवाये च

संस्करोति। 'इह समो मलोपः' इति भाष्यम्। ततः स-क-रामयोर्यथेष्टं द्वित्वं विकल्पेन, तत्र विष्णुचक्र-विष्णुचापयोरागमयोः सतोः-संस्स्करोति संस्क्करोति, सँस्स्करोति, सँस्क्करोति इत्यादिरूपाणि भवन्ति। 'विष्णुचक्रादिद्वयं विना' इत्यपि केचित्—सस्स्करोति।

'अस्तिसत्सञ्ज्ञाहृयदन्तयोः' (आ० प्र० १९३) इत्यत्र सहज सत्सञ्ज्ञादित्यमेव गृह्यते, लाक्षणिक प्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम् इति न्यायेन न गोविन्दः—संस्क्रियते। एवमिडभावश्च—समस्कृषाताम्। समस्करोत्। सञ्चस्कार, अत्र प्रतिपदोक्तमात्रग्रहणं नेष्यते—सञ्चस्करतुः ॥४०७-४०९॥

४१०। ससुट्कात् कृञ इडधोक्षजे।

सञ्चस्करिथ, सञ्चस्करिव। शास्त्रीयभाषार्थः, 'संस्कृत' शब्दः, कार्य्यपर्य्यायस्तच्छब्दः, संस्कारशब्दश्चाव्युत्पन्नः। षत्वं वक्ष्यते (आ० प्र० ५७१) परिष्करोति ॥४१०॥

४११। उपाद्भूषण-समवाय-प्रतियत्न-विकृतीकरण-वाक्याध्याहारेषु।

अत्र सतो गुणान्तराधानम्—'प्रतियत्नः' गम्यमानार्थस्य वाक्यस्योपादानम्—'वाक्याध्याहारः' उपस्करोति, उपस्कुरुते ॥४११॥

इति तनादिः।

---

* 'सायते, सन्यते' इत्यधिकः पाठः (क)।

अथ क्र्यादिः

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये, विनिमयः—परिवर्त्तनम्—

४१२ । क्र्यादेः शप् श्ना ।

४१३ । स्तन्भ-स्तुन्भ-स्कन्भ-स्कुन्भ-स्कुभ्यः श्नुश्च ।*

स्कुञ् आप्लवने, अन्ये सौत्रा बोधने, श् इत्, क्रीणाति, 'दामोदरं विना श्नानारायणारामयोरी' (आ० प्र० ३४९) क्रीणीतः, 'श्ना-नारायणयोरारामहरः' (आ० प्र० ३२२) क्रीणन्ति, क्रीणीते, क्रीयते । एवं प्रीञ् तर्पणे—प्रीणाति । मीञ हिंसायाम्—मीनाति । 'हिनुमीनानिपाच्च' आ० प्र० ४५) इति णत्वम्—प्रमीणाति । 'मीनाति' (आ० प्र० ३७४) इति आत्वम् अमामीत् । ममौ, मिम्यतु ।।४१२-४१३।।

पूञ् पवने—

४१४ । प्वादीनां वामनः शिवे ।

पुनाति, पुनीते, पूयते । गोविन्दस्थान्यरामत्वान्नैत्वादि पुपविथ ।

लूञ् छेदने—लुनाति । धूञ् कम्पने—धुनाति । ग्रह् उपादाने, 'ग्रहि-ज्या' (आ० प्र० २६५) इति सङ्कर्षणः—गृह्लाति, गृह्लीते, गृह्यते ।।४१४।।

४१५ । विष्णुजनात् श्न आनो हौ ।

गृहाण ।।४१५।।

४१६ । ग्रहेरिटस्त्रिविक्रमोऽनधोक्षजे ।

अग्रहीष्टाम् । इण्वदिटो न त्रिविक्रमः—अग्राहिषाताम् । जग्राह, जग्रहिथ । एते उभयपदिनः ।।४१६।।

श्टॄ हिंसायाम्—श्टृणाति—

४१७ । श्टॄ दॄ इत्येतयोर्वामनो वाधोक्षजे

नित्यौ गोविन्द वृष्णीन्द्रौ तु न बाधते—शशार, शश्रतुः, शशरतुः, शशरिथ ।

दॄ विदारणे—ददार, दद्रतुः इत्यादि ।

ज्या वयोहानौ, 'ग्रहि-ज्या' (आ० प्र० २६५) इति सङ्कर्षणः—जिनाति । प्वादिर्ल्वादिश्च गणः । ज्ञा अवबोधने, 'ज्ञा-जनोर्जा (आ० प्र० ३७६) जानाति । ग्रन्थ सन्दर्भे—ग्रन्थाति । अश् भोजने—अश्नाति ।।४१७।।

कुष् निष्कर्षे, निष्कर्षो निष्काशनम्, कुष्णाति

४१८ । निरः कुषो वेट् ।

निरकुक्षत्, निरकोषीत् ।।४१८।।

क्षुभ सञ्चलने—

४१९ । क्षुभ्नादिषु न णत्वम् ।

क्षुभ्नाति, क्षुभ्नीतः, इत्यादि । उक्ते वक्षमाणे च निषेधोऽयम् ।

तृपु तर्पणे—तृप्नोति, तृप्नुतः इत्यादि ।४१९।।

४२० । नरान्नृतिश्च ।

नरीनृत्यते, नरीनर्त्ति इत्यादि । परिनदनम्, दुर्नद्धः दुर्नद्धिः, दौर्भागिनेयः, आचार्य्यानी, आचार्य्यभोगिनः संज्ञायाम्—हरिनन्दी, हरिनगरम्, स्वर्भानुः, सूत्रनटः दुर्नामा नरवाहनः, त्रिनयनम्, नृनमनम्१, पुनर्नवा, आकृति गणोऽयम् ।।४२०।।

खव् भूति प्रादुर्भावे—

४२१ । छस्य शो, वस्य उठ् हरिवेणौ, क्वौ, कंसारि-वैष्णवे च ।

४२२ । ज्वर-त्वर स्रिव्व-मवान्तु स-सर्व्वेश्वरस्य ।

खौनाति, नामप्रकरण-वृष्णीन्द्रत्वात् कंसारो न निषेधः । 'वैष्णवात्' इत्यकरणात् 'आन' एव बलवान् कालापाश्च श्नोऽपवादमेव त कुर्व्वन्ति, तस्माद्धो—खवान । वृङ् संभक्तौ*, आरामहरः (आ० प्र० ३२२) "सहसा विदधीत न क्रिया,-मविवेकः परमापदां पदम् वृणते हि विमृष्यकारिणं, गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः इति किराते (२।३०) सम्यग् भजन्तीत्यर्थ ४२१-४२२

इति क्र्यादिः ।

---

* "यो क्रीणाति जयश्रियं रणमुखे धर्म्मं वृणीतेऽध्वरे, तेजोभिर्जगदावृणोति वरति ज्ञातीन् यथार्हैर्धनैः । सत्कीर्त्तिञ्च वृणाति यो वरयति क्षेमं यशो व्रीयते, युद्धे वारयति द्विषो निवरते नित्यं प्रियोपद्रवम् ।। (कविरहस्यम्-११)

* "स्तम्भु-स्तुम्भु-स्कम्भु-स्कुम्भु-स्कुञ्भ्यः श्नुश्च ।।" (पा ३।१।८२) १ । नृगमनम् (क घ)

अथ चुरादिः

चुर स्तेये—

४२३ । चुरादेर्णिः ।

'णिच्' पा (३।२।२५) । ण इत्, 'लघूद्धवस्य गोविन्दः' (आ० प्र० ८०) सनाद्यन्तत्वाद् धातुत्वम्—चोरयति ।।४२३।।

४२४ । णेरुभयपदम् ।

इदं न चुरादौ प्रवर्त्तते धातुपाठे चुरादावपि पृथक्परपद्यादिगणनात्२, 'प्रवर्त्तते' इत्यन्ये, णेरनित्यत्वेन तद्गणन-साफल्यात्, चोरयते, चोरयति चोरति, चोर्य्यते । द्विर्व्वचने कार्य्ये णौ कृतं स्थानिवत्—अचूचुरत् । चोरयामास । चोर्य्यात् । चोरयिता ।।४२४।।

कृत संशब्दने—

४२५ । उद्धव-ॠरामस्येर् ।

कीर्त्तयति ।।४२५।।

४२६ । उद्धव-संज्ञस्य ॠद्वयस्य ॠर्वा अङ्परे णौ ।

अचीकृतत्, अचिकीर्त्तत् ।

अथ निर्विष्णुचापा अदन्ताः—कथ वाक्यप्रबन्धे, 'अरामहरः' (आ० प्र० १५१) 'अन्तहरे न गोविन्द-वृष्णीन्द्रौ' (आ० प्र० १६१) अरामहरस्य स्थानिवत्त्वम् पा (१।१।५७) यथोक्तम्—

अग्लोपित्वं स्थानिवत्त्वं चादन्तत्वप्रयोजनम् ।
यत्र त्वेते न विद्येते तत्राल्लोपविकल्पनम् ३ ।। इति

अग्लोपित्वं दशावतारादर्शनम्, तेन सन्निमित्तकार्य्याद्यभावः, स्थानिवत्त्वेनोद्धवस्य वृष्णीन्द्र-गोविन्दाभावः, तथार्थादीनां सारामस्यैव थरामादेर्द्विर्व्वचनमित्यभिप्रायः, वक्ष्यति । अचकथत्

गण संख्याने गणयति । अजगणत्, अजीगणत्, इति चान्द्रमतम् ।

स्पृह ईप्सायाम्—स्पृहयति । अपस्पृहत् ।।४२६।।

अर्थ याच्ञायाम्—अर्थयते । अल्लोपविकल्पनात् अन्त्यारामस्य च वृष्णीन्द्रो, णाविणि च इति पाणिनिमतम् (७।२।११५) ।

४२७ । अर्त्ति-ह्री-व्ली-री-क्नुयी-क्ष्माय्यारामेभ्यः पुक् य लोपो गोविन्दश्च णौ, दरिद्रां विना ।

अर्थापयते । णाविणि च इति किम् ? कृति तु गोपायकः । अङि 'सर्व्वेश्वरादित्वे तु' (आ० प्र० ७१) इत्यादि, 'अशास्वृदित' (आ० प्र० २२७) इति, लघुपरत्वात् सन्-निमित्तकार्य्यम् (आ० प्र० २२८) आर्त्तीथपत, 'आर्त्तथपत' इति काशिकादिमतम् (पा ७।३।३६) । 'अरामहरस्य द्विरुक्तौ न स्थानिवत्त्वम्' इति तु वोपदेवः, ततः सर्णेद्विर्व्वचने 'अर्त्तिथत' इति

अङ्क लक्षणे—अङ्कयति । 'नरामजावनुस्वार' इत्यादेः 'अनृक' इत्येव धातोः स्वरूपम्, ततः कस्य द्विर्व्वचने—आञ्चीकपत्, पक्षे आञ्चकत्, आञ्चिकत् । एवं सर्व्वेषामदन्तानां तत्र कविकल्पद्रुमे अनुसन्धेयम्१ ।।४२७।।

युज संयमने—

४२८ । युजादेर्णिर्वा ।

योजति, योजयति । * भू प्राप्तौ भावयते, भवते, भवति इत्यप्येके ।।४२८।।

इति चुरादिः

---

२ । प्रहणात् (ख घ) ३ । 'तद्बलादन्त्यदीर्घश्च पुक् चेत्यङ्क्वापयत्यतः' इति वोपदेवः (मुग्धबोधे चुरादौ दुर्गादासः)

१ । एतद्वाक्यं ख-ग-घ-पाण्डुलिपिषु नास्ति ।

* "भवते दुरितक्षयं यथोक्तैः, क्रतुभिर्भावयते च नाकलोकम् ।
भवति त्रिदशैश्च पूजितो यः, स्तृणवद् भावयति द्विषश्च सर्व्वान् ।।" (कविरहस्यम्—५०)

अथ णिप्रत्ययान्ताः

४२९। णि प्रेरणादौ *।

प्रेरणादिर्हेतुकर्त्तृव्यापारः। कुर्व्वन्तं प्रेरणादिना प्रवर्त्तयति। 'णेरुभयपदम्' (आ० प्र० ४२४) डुकृञ् करणे—कारयति, कारयते, कार्य्यते, अचीकरत्। कारयामास।

जागर्त्तेरिण्णलोर्गोविन्दनिषेधान्नात्रोद्धवस्य वृष्णीन्द्रः जागरयति। लघुयुक्तधात्वक्षरपरत्वाभावान्न सन्निमित्तता—अजजागरत्, 'अजीजागरत्' इति चान्द्रमतम्—'जागृगणोर्व्वा' इति तल्लक्षणम्। इह तु स्यात्—अचीचकासत्, अचिक्षणत्। 'उपेन्द्रादनः' (आ० प्र० ३१५) इत्यादि—प्राणिनत्॥४२९॥

चोरयन्तं प्रेरयति स्म—

४३०। णोर्णौ हरे न दशावतारादर्शनत्वं मन्तव्यम्।

तत उद्धवस्य वामनादि—अचूचुरत्। 'रभिलभोर्नुम्' (आ० प्र० २४१) रम्भयति। णिलोपस्यासिद्धत्वान्न नलोपः अररम्भत्। ह्निोतेरजीह्रयत्॥४३०॥

४३१। घटादीनामुद्धवस्य वामनो णौ, णि-पूर्व्वयोर्णम्विणोस्तु त्रिविक्रमो वा।

णमुः कृत्। घटयति। अजीघटत्। इणि अघटि अघाटि॥४३१॥

ञित्वरा सम्भ्रमे—त्वरयति—

४३२। त्वर-स्पश-स्मृ-म्रद-प्रथ-दॄ-स्तृणां नरस्य अरामोऽङ्परे णौ।

४३३। वेष्टि-चेष्टयोर्वा।

त्वरादीनां सन्निमित्तापवादः अतत्वरत्। अत्वरि, अत्वारि। द्वितीये णावपि तद्वत्।

घटादिपाठादनुद्धवस्यापि त्रिविक्रमः,—अक्रान्दि, अक्रन्दि। चुरादि णेः सहजत्वादिण्वदिट् (आ० प्र० ६२) अशामिषाताम्, अशमिषाताम् इति त्रिविक्रम-विकल्पनात्, अशमयिषातामिति त्विट्पक्षे। स्पश अपस्पशत्—एते घटादौ द्रष्टव्याः। 'अशास्वृदित' (आ० प्र० २२७) इति निषेधात् अशशासत्। आङः शासु इच्छायामित्यस्य तु न निषेधः—आशीशसत्, अरराधत्। एजृ ऋरामेत्करणान्न वामनः, ततो मायोगे—मैजिजत्। एधतेः प्रथमं वामनस्ततो द्विर्व्वचनम्—मेदिधत्, तदयोगे तु—ऐजिजत्, ऐदिधत्। न-ब-द-र-सत्सङ्गे—औन्दिदत्, औब्जिजत्। अट्ड् अभियोगे भौवादिकः—आड्डिडत्, एवम् आर्च्चिचत्। श्विधातोर्णिः, 'भाविनि भूतवदुपचारः' 'श्वेः सङ्कर्षणो वा' (आ० प्र० २७५) इत्यादि, केवलणौ कृतस्य स्थानिवत्त्वात् शोर्द्विर्व्वचनम्, अङ्परे णौ वामनस्त्रिविक्रमश्च (आ० प्र० २२७, २३०)—अशूशवत्, पक्षे—अशिश्वयत्। स्मृ आध्याने आध्यानम्—सोत्कण्ठस्मरणम्, असस्मरत्। म्रद—अमम्रदत्। प्रथ—अपप्रथत्। दॄ—अददरत्। स्मृ-प्रभृतयश्च घटादयः। स्तृञ्—अतस्तरत्। 'वेष्टिचेष्टयोर्व्वा'—अववेष्टत्, अविवेष्टत्, अचचेष्टत्, अचिचेष्टत्॥४३२-४३३॥

४३४। भ्राज-भाष-दीप-जीव-मील-पीड-रण-भण-श्रण-ह्वे-लप-लुप-लुठादीनामुद्धवस्य वामनो वाङ्परे णौ।

अबभाषत्, अबीभषत्। भ्राजभ्रासोर्ऋरामेत्त्वात् केवलत्वाच्च अबभ्राजत्, अबिभ्रजत्। अत्रालघुपरत्वान्न सन्निमित्तकार्य्यम्। आटिटदित्यत्र णौ परे लघुयुक्तपरत्वाभावान्न त्रिविक्रमः। एवं मैजिजत् इत्यादि च। 'मा भवानटिटत्' इत्यत्रापि द्विर्व्वचनमुद्धववामनात् पश्चादेव स्यात्। ओणृधातोर्ऋदित्करणात्तत्र मा भवानोणिणत्।

---

* उक्तेऽर्थे धातुना लोटा शब्देन वा न णिङ्विधिः। धातोश्चार्थान्तरे वृत्तौ वृषलो यजते यथा॥ प्रेषणाध्येषणे कुर्व्वन् तत्सम्बन्धानिवाचरन्। प्रयोजको भवेत् कर्त्ता क्रिया तस्य णिङोच्यते॥

※ आदि शब्देन अध्येषणादेर्ग्रहणम्, आराध्यस्य गुर्व्वादेः सत्कार पूर्व्वकनियोजनमध्येषणम्, यथा—भोजयति गुरुं वैष्णवः। (श्रीहरेकृष्णाचार्य्यविरचित 'बालतोषणी' टीका)

तदेवम् अटिटदित्यादिसिद्धये 'नरलघोः' इत्यस्य 'विष्णुजनात्' इति विशेषणं यत्तस्यां (पा ७।४।१४) कल्पितं, तद्व्यर्थमेव स्यात्, और्णु नवत्। आर्त्तीथपत इत्यादौ त्रिविक्रमः (आ० प्र० २३०) स्यादेव। 'उद्धवसंज्ञस्य' (आ० प्र० ४२६) इत्यादि—अवीवृतत् अमीमृजत्। पक्षे गोविन्दवृष्णीन्द्रौ (आ० प्र० ३०, ३१०) अववर्त्तत्, अममार्ज्जत् ॥४३४॥

ञिष्वप् शये—

४३५। स्वापेः सङ्कर्षणोऽङि।

ततो द्विर्व्वचनम्—असूषुपत् ॥४३५॥

४३६। शा-छा-सा-ह्वा-व्या-वे-पाभ्यो-युक् णौ

'पा' इति पा पै च गृह्येते, रक्षणार्थस्तु न, 'सन्देहे तु न लुग्विकरणस्य ग्रहणम्' इति न्यायात्, शाययति इत्यादि। 'ह्वो नरनारायणयोः' (आ० प्र० २७०) इति सङ्कर्षण एव, न तु युक् अन्तरङ्गत्वात्—अजूहवत् ॥४३६॥

४३७। सनरस्य पिवतेरङ्परे णौ पिप्यः, तिष्ठतेस्तिष्ठिपः, जिघ्रतेश्च जिघ्रिपो वा।

अपीप्यत् इत्यादि। ऋ गतिप्रापणयोः, ऋ सृ गतौ, 'अर्त्ति-ह्री' (आ० प्र० ४२७) इति—अर्पयति, ह्रेपयति। री रीङ्—रेपयति। 'यलोपः' (आ० प्र० ४२७) क्नोपयति, स्थापयति ॥४३७॥

४३८। पातेः पाल् णौ, वातेः कम्पनार्थे वाज्, धूञो धून् * प्रीणातेः प्रीण्।

पालयति इत्यादि ॥४३८॥

४३९। लियो लीन्, लातेर्लाल् वा णौ स्नेहद्रावणे।

लिय इति लीलीङोर्ग्रहणम्, घृतं विलीनयति। 'लीयति लीनात्योर्व्वा' (आ० प्र० ३७४) इति आत्वेऽपि विलीनयति। लीनादेशादन्यत्र-विलापयति विलाययति। लातेस्तु विलालयति, विलापयति घृतम्। स्नेहेति किम्? 'लियो' विलापयति विलाययति, लातेस्तु विलापयति लोहम् ॥४३९॥

४४०। लियोरारामो णौ पूजाभिभवप्रतारणेषु आत्मपदञ्च।

वैष्णवत्वेन लापयते, आत्मानं पूजितं करोति इत्यर्थः। कृष्णः कंसमुल्लापयते। बालकृष्णमुल्लापयते गोपी। काशिका भाषावृत्त्यादिसम्मते णावित्यत्रापि शितीति तु प्रक्रिया (पा १।३।७०) चिन्त्या ॥४४०॥

४४१। भियो-भीष्-भापौ णौ प्रयोजकाद्भयं चेदात्मपदञ्च, स्मयतेः स्मापः सभयविस्मयश्चेत्

भीषयते भापयते, कंसं हरिः, विस्मापयते च। 'प्रयोजकात्' इति किम्? गजदन्तेन भाययति, विस्माययति च तम् ॥४४१॥

स्फायी, ओप्यायी वृद्धौ—

४४२। स्फायः स्फार्, शदेरगतौ शात्, इणो गमिरबोधने, क्रीञः क्राप्, अधीङोऽध्याप्, जेर्जाप्, सिध्यतेः साध्—न तु पारलौकिके, दुषो दूष् चित्तकर्म्मत्वे तु वा णौ।

स्फारयति, शातयति, छिनत्तीत्यर्थः। इण् गतौ गमयति, इण्वदिक् अधिगमयति, बोधने प्रत्याययति साधयति अन्नम्, पारलौकिके सेधयति परलोकम् ॥४४२॥

४४३। रुहो रोप्, चिञश्चाप्, स्फुरः स्फार्, वेते प्रजने वाप् णौ वा।

रोपयति, रोहयति, चापयति, चाययति, स्फारयति स्फोरयति। आदेशसद्भावे णौ कृतस्य स्थानिवत्त्वाद् द्विर्व्वचनम् अपुस्फरत्, अपुस्फुरत्। वी प्रजनादौ—वापयति, वाययति, गर्भं ग्राहयतीत्यर्थः ॥४४३॥

४४४। इङो गाङ् सन्नङ्परे णौ वा।

अध्यजीगपत्, अध्यापिपत् ॥४४४॥

---

* "धुनोति चम्पकवनानि धुनोत्यशोकं, चूतं धुनाति धुवति स्फुटितातिमुक्तम्। वायुर्विधूनयति चम्पकपुष्परेणून्, यत्कानने धवति चन्दनमञ्जरीश्च ॥" (कविरहस्यम्…८)

४४५। नरोद्धवस्य इः पवर्गहरिमित्र-जरामेष्वद्वयपरेषु[1] सनि।

४४६। स्रवति-शृणोति-द्रवति-प्रवति-प्लवति-च्यवतीनां वा।

ततः सन्निमित्तकार्य्येण अबीभवत्, अपीपवत्। जु गतौ सौत्रः—अजीजवत्। असिस्रवत्, असुस्रवत् इत्यादि ।।४४६।।

४४७। रञ्जेर्नस्य हरो णौ मृगरमणे।

रजयति मृगान्, अन्यत्र—रञ्जयति कृष्णम्। एवमन्येऽपि ।।४४७।।

४४८। हन्तेस्तो नृसिंहे।

'हनो हस्य घो णिन्नयोः' (वि० प्र० १२२)—घातयति। 'गत्यर्थस्य तु णौ तो न स्यात्' इति दुर्गः घानयति।।४४८।।

इति ण्यन्तप्रक्रिया

अथ सनन्ताः

४४९। सन् क्रियेच्छायाम्।

४५०। उद्वयग्रहगुहेभ्यो नेट् सनि, ईशसमीपाद्विष्णुजनादनिट्सन् कपिलः, ईशाच्च, मृजेर्नेति केचित्।

उद्वयग्रहणं रुस्वादीनां ग्रहणार्थम्। भवितुमिच्छति बुभूषति, बुभूष्यते। बुभूषाञ्चकार। मुख्यत्वाद् यस्यैव क्रिया, तस्यैवेच्छा गम्यते, तेनान्यस्य भवनमिच्छतीत्यर्थे न स्यात्। क्रियाया इच्छा क्रियेच्छा, न तु क्रिययेच्छेति, इच्छायाः कर्म्मान्तरसापेक्षत्वं स्यात्। गमनेनेच्छतीत्यत्र च न भवेत् ।।४४९-४५०।।

४५१। उपासनेऽपि श्रुवः।

हरिं शुश्रूषते। 'उद्वय' इति किम्? जिजागरिषति गङ्गाकूलं पिपतिषति इत्याद्युपचारात्।४५१।।

४५२। दीङ आ वा सनि।

दिदासते, दिदीषते ।।४५२।।

४५३। ईशान्तहन्त्योरिङादेश-गमेश्च त्रिविक्रमः सनि।

'ओष्ठ्योद्धवस्य' (आ० प्र० ३४८) इत्युर्, ततो द्विर्वचनम् (आ० प्र० ६९) अत्र म्रियतेः शिवाभावेन परपदित्वे सनन्तस्यापि परपदित्वम्—मुमूर्षति। जुहूषति। 'स्वरति' (आ० प्र० १००) इत्यादि—सिस्वरिषति, सुस्वूर्षति। 'अदो घस्लृः' (आ० प्र० २८१) 'सस्य तः' (आ० प्र० ३२५)—अत्तुमिच्छति जिघत्सति। वृतु वर्त्तने, वर्त्तितुमिच्छति विवृत्सति आत्मपदे तु—विवर्त्तिषते। वृधु—विवृत्सति, विवर्द्धिषते ।।४५३।।

४५४। ऋरामवृभ्य इड् वा सनि।

'ऋरामस्येर्' (आ० प्र० २१२)—तरितुमिच्छति तितीर्षति, तितरीषति, तितरिषति। चिचीषति, 'चेः किर्व्वा' (आ० प्र० १६८) चिकीर्षति। 'ओष्ठ्योद्धवस्य' (आ० प्र० ३४८) इत्युर्—वुवूर्षति, विवरीषति, विवरिषति। 'जेर्गिः' (आ० प्र० १६९) जिगीषति। जिघांसति ।।४५४।।

४५५। इणो गमिरबोधने सनि।

४५६। इङश्च।

जिगमिषति। बोधने तु 'सर्व्वेश्वरादित्वे तु' (आ० प्र० ७१) इत्यादि, तत्र 'सन्यङोस्तु

---

[1] जरामेषु सनि (ख ग घ)

तत्सम्बन्धिनः सर्व्वेश्वरस्य च' (आ० प्र० ७२) इति द्विर्व्वचनम्—प्रतीषिषति, एवमिकोऽपि। इटश्च तत्सम्बन्धिसर्व्वेश्वरत्वात्—उन्दिदिषति। उब्ज आर्ज्जवे—उब्जिजिषति इत्यादि ।।४५५-४५६।।

४५७। ईषर्चो यिः सन् वा द्विः।

इति चान्द्रसूत्रम् (५।१।७)

ईर्ष्यियिषति, ईर्ष्यिषिषति। इङ्—आत्मपदविषयत्वाद्गमे रिट् न, अधिजिगांसते। कृ लाक्षणिक ऋरामत्वान्न वेट्, चिकीर्षति ।।४५७।।

४५८। रुद-वेत्ति-मुष-ग्रहि-स्वपि-प्रच्छः—क्त्वासनौ कपिलौ।

'ग्रहि ज्या' (आ० प्र० २६५) 'आदौ हरिघोषत्वम्' (वि० प्र० ११४) जिघृक्षति ।।४५८।।

४५९। य-व-वर्ज्जितविष्णुजनान्ताच्चतुःसनो-द्धवादविष्णुजनादेः सेट्क्त्वासनौ कपिलौ वा

'द्युतिष्वाप्योर्नरस्य सङ्कर्षणः' (आ० प्र० २४५) दिद्युतिषते, दिद्योतिषते। परत्वात् चुकुटिषति, चुकोटिषति इत्यपि। य-वान्तात्तु—क्नुयी, चुक्नोयिषते, दिवु—दिदेविषति। 'विष्णुजनादेः' किम्? इषु—एषिषिषति। 'श्वेः सङ्कर्षणो वा' (आ० प्र० २७५) इत्यादि—शुशावयिषति, शिश्वाययिषति ।।४५९।।

४६०। ऋ-पूङ्-स्मि-अनज्-अशू-कृ-गृ-दृङ्-धृङ्-प्रच्छ इत्येतेभ्य इट् सनि।

ऋ गतौ प्रापणे च, ऋ सृ गतौ—अरिरिषति। चिकरिषति, जिगरिषति इत्यनयोरिटस्त्रिविक्रमत्वं नेष्टम्। क्रादयस्तोदादिका एव, प्रच्छसाहचर्य्यात्, अन्येषान्तु चिकीर्षति इत्यादि, कृञ् हिंसायामिति क्र्यादावस्ति ।।४६०।।

४६१। इवन्त-ऋध-भ्रस्ज्-दन्भु-श्रि-ऊर्णु-यौति-भरति-ज्ञपि-सनि-तनि-पति-दरिद्राभ्य इड् वा सनि।

ज्ञपिश्चौरादिको हेतु ण्यन्तश्च। 'छस्य शो' (आ० प्र० ४२१) इत्यादि दिवु, 'द्विर्व्वचननिमित्त-सर्व्वेश्वर' इत्युक्तत्वादूठि षत्वे च कृते द्विर्व्वचनम्, न तु स्थानिवत्—दुद्यूषति, दिदेविषति। भ्रस्ज्—बिभ्रज्जिषति, बिभ्रक्षति। श्रि—'ईशान्तहन्त्यो' (आ० प्र० ४५३) इति शिश्रीषति, गोविन्दस्य नित्यत्वात्—शिश्रयिषति। तितनिषति ।।४६१।।

४६२। तनोतेरुद्धवस्य त्रिविक्रमो वैष्णवादि सनि वा।

तितांसति, तितंसति ।।४६२।।

४६३। दम्भो धीप्स-धिप्सौ।

४६४। ऋध ईर्त्सः।

४६५। ज्ञपेर्ज्ञीप्सः।

४६६। आप ईप्सः।

४६७। मीनाति-मिनोति-मानां मित्सः।

४६८। दमोदराणां दित्स-धित्सौ।

४६९। रभलभो रिप्सलिप्सौ।

४७०। शकः शिक्षङ्।

४७१। राधो रित्सो हिंसायाम्।

४७२। पतपदोः पित्सः।

४७३। मुचोऽकर्म्मकत्वे मोक्षङ्मुमुक्षङावनिट् सना सह।

दिदम्भिषति, धिप्सति, धीप्सति, अर्दिधिषति, ईर्त्सति, ज्ञपेश्चुरादित्वं घटादित्वञ्च—जिज्ञपयिषति ज्ञीप्सति, ईप्सति, डुमिञ्, मीञ्—मित्सति मित्सते, मा—मित्सति, माङ् मेङ्—मित्सते, ङित्त्वात्—शिक्षते इत्यादि, राध—प्रतिरित्सति। हिंसायां किम्? लृ आरिरात्सति। मुच—मोक्षते वत्सः, बन्धान्निष्क्रमितुमिच्छति इत्यर्थः, एवं मुमुक्षते, सकर्म्मकत्वे तु—मुमुक्षति वत्सः कृष्णः, बन्धान्निष्क्रमयितुमिच्छतीत्यर्थः।

दरिद्रा—दिदरिद्रिषति, दिदरिद्रासति। द्वयमपीदं भाष्यमतम् (पा ६।४।११४)।

वैष्णवादिसन्यप्यालोप इत्येके, किन्तु दुरुच्चारणत्वान्नोदाहरन्ति। षणु दाने—'जन-खन-सनाम्' (आ० प्र० २५६) इत्यादि, सिषासति इत्यादयो ज्ञेयाः। भू-णि-सन्—वृष्णीन्द्रस्थानिवद्भावाद्भूद्विवचनम् (आ० प्र० ६९) 'नरोद्वयस्य' (आ० प्र० ४४५) इतीत्वम्—बिभावयिषति। पु—पियावयिषति। स्रु—सिस्रावयिषति, सुस्रावयिषति। अद्वयपरत्व एव, न १ त्विह—बुभूषति, सुस्रूषते ॥४६३-४७३॥

४७४। नरात् स्तौति-ण्यन्तयोरेव षत्वं सनः षे।

४७५। न तु सह-स्वद-स्विदाम्।

तुष्टूषति। 'द्युतिस्वाप्योर्नरस्य सङ्कर्षणः' (आ० प्र० २४५) सुष्वापयिषति। नान्यत्र षत्वम्—सिचिर् क्षरणे, सिसिक्षति। नरनिमित्त एव निषेधादिह तु स्यादेव— प्रतीषिषति, परिषिषिक्षति, पूर्वत्र 'ईश्वर हरिमित्र' (वि० प्र० २३) इत्यादि प्रवर्त्तते, परत्र च परिनिमित्तकमुभयोः षत्वं वक्ष्यते (आ० प्र० ५६९) 'सनः षे' इति किम्? तिष्ठासति। सहादेस्तु ण्यन्तत्वेऽपि न स्यात्—सिसाहयिषति इत्यादि ॥४७४-४७५॥

४७६। इच्छासनन्तान्न सन्।*

स्वार्थसनन्तात् स्यादेव—जुगुप्सिषते। 'अनरस्य' (आ० प्र० ७०) इति विशेषणान्न द्विर्वचनम् ॥४७६॥

इति सनन्ताः।

अथ यङन्ताः

४७७। विष्णुजनाद्येकसर्व्वेश्वराद्यङ् पौनःपुन्यातिशययोः।

'चेक्रीयित' * संज्ञोऽयमित्येके ॥४७७॥

पुनःपुनरतिशयेन वा भवतीत्यर्थे भूधातोर्यङ् 'धातोर्द्विर्व्वचनम्' (आ० प्र० ६९)

४७८। नरस्य गोविन्दो यङि विष्णुरहितारामान्तस्य तु त्रिविक्रमः।

'धातु' संज्ञा (आ० प्र० १) तिवादयः, ङित्त्वादात्मपदम्—बोभूयते, बोभूय्यते, अबोभूयिष्ट, अबोभूयि। 'मिनाति-मिनोति' (अ० प्र० ३७४) इत्यादेर्वर्णान्तविधित्वान्नरस्यारामो न स्यात्, तेन 'प्रमेमीयते' इति दुर्गः। 'विष्णुजनादि' इति किम्? 'भृशमीक्षते प्रेक्षते वा'। 'एकसर्व्वेश्वरात्' किम्। भृशं जागर्त्ति ॥४७८॥

४७९। न शुभ-रुच-गृणातिभ्यो यङ्।

मुहुः शोभते ॥४७९॥

४८०। सूचि-सूत्रि-मूत्रि-अटि-अर्त्ति-अश ऊर्णोतिभ्यश्च यङ्।

सोसूच्यते। अश भोजने—अशाश्यते, अशूङोऽपीत्येके ॥४८०॥

४८१। विष्णुजनात् सारामयस्य हरो रामधातुके।

४८२। कयस्य तु वा।

सोसूच्यते, असोसूचिष्ट, सोसूचाञ्चक्रे, ऊर्णोनूय्यते

---

* शेषिकान्मतुवर्थीयात् शैषिको मतुवर्थिकः। सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ॥ (प्रक्रियाकौमुदी, सन्प्रक्रिया)

* धातोर्यशब्दश्चेक्रीयितं क्रियासमभिहारे ॥ इति कलापः (आख्यातवृत्तिः २।४८) १। नेह (क)

'अन्तहरे न गोविन्दवृष्णीन्द्रौ' (आ० प्र० १९१) बोभुजिता, बेभिदिता। 'साराम' ग्रहणान्नेह— ईर्ष्यिता ।।४८१-४८२।।

४८३। गत्यर्थाद्यङ् कौटिल्य एव।

कुटिलमटति—अटाट्यते। नेह—भृशमटति प्राटति वा ।।४८३।।

'अर्त्ति-सत्सङ्गाद्द्यदन्तयोः' (आ० प्र० १९३)—

४८४। यरामपरो रराम न द्विर्व्वचने वर्ज्जते।

अरार्य्यते। 'दामोदर' (आ० प्र० १८४) इत्यादिना ई, ततो द्विर्व्वचनम् (आ० प्र० ६९) देदीयते ।।४८४।।

४८५। ऋरामस्य री क्ययङोः।

'क्य' इति क्यङ्क्यनोः। कृ—चेक्रीयते ।।४८५।।

४८६। लुप-सद-चर-जप-जभ-दह-दंश-गॄभ्यो भावगर्हायामेव यङ्।

गर्हितं लुम्पति—लोलुप्यते। सासद्यते। चरादिप्रयोगोऽग्रे (आ० प्र० ४८९, ४९६)। 'गिरो रो लः' (आ० प्र० ३८८) जेगिल्यते। गॄ शब्दे इत्यतस्तु यङ् न प्रयुज्यते, इह प्रोर्णोनूयते सञ्चेस्क्रीयते, निजेगिल्यते, उपपनीपद्यते इत्यादिकं तैरपि प्रयुज्यते, अतः सोपसर्गान्न स्यादित्यन्यैरुपेक्षितम् ।।४८६।।

४८७। कवतेर्नरस्य न चो यङि।

कोकूयते ।।४८७।।

४८८। वञ्चु-श्रंसु-ध्वंसु-भ्रंसु-कस-पत-पद-स्कन्द-नरतो नी यङि।

वनीवच्यते, शनीश्रस्यते इत्यादि ।।४८८।।

४८९। हरिवेण्वन्तानां जप-जभ-दह-दंश-भञ्जाञ्च नरादरामतो विष्णुचक्रं यङि।

यंयम्यते, तंतन्यते, जंजप्यते, जंजप्यते। जभ जृभि गात्रविनामे—जञ्जभ्यते ।।४८९।।

४९०। ल-व-यान्तस्य तु वा इति वक्तव्यम्

चंचल्यते, चाचल्यते, मंमव्यते, मामव्यते, दंदय्यते, दादय्यते ।।४९०।।

४९१। अत्र हरिवेणु-विधिर्व्वा वक्तव्यः।

तन्तन्यते, जञ्जन्यते ।।४९१।।

४९२। अरामादन्यतो न।

बाभाम्यते, 'भामो वा' इति जुमरमतम् (संक्षिप्तसारः २।५६२) तेतिम्यते ।।४९२।।

४९३। हिंसार्थस्य हन्तेर्घ्नी यङि।

जेघ्नीयते, गत्यर्थस्य तु—जंघन्यते ।।४९३।।

४९४। ऋमध्यधातु-नरतो री यङि।

जरीजृभ्यते, जरीगृह्यते ।।४९४।।

४९५। यङन्तादिटो दीर्घो न।

जरीगृहिता। क्षुभ्नादित्वान्न णत्वम् (आ० प्र० ४१९) नरीनृत्यते। वरीवृश्चयते। तृणु अदने—तरीतृण्यते, परविधेर्बलवत्त्वादत्र विष्णुचक्रं बाध्यते। 'शेतेः शय्' (आ० प्र० ३३६) शाशय्यते ।।४९५।।

४९६। कृपेश्चलीक्लृप्यः, स्वपः सोषुप्यः, व्येञो वेवीयः, वशो वावश्यः, चायश्चेकीयः, घ्रो जेघ्रीयः, ध्मो देध्मीयः, चरेश्चञ्चूर्य्यः, फलेः पम्फुल्य इति यङा निपाताः।

चलीक्लृप्यते, सोषुप्यते इत्यादि। 'धातो र-व' (वि० प्र० ११७) इत्यादि—चञ्चुर्य्यते, यलोपे तु—चञ्चुरिता ।।४९३।।

इति यङन्ताः १।

१। इति यङन्तप्रक्रिया (ग)

अथ चक्रपाणयः[२]

४९७। यङो महाहरो बहुलम्।

बाहुलयात् क्वचिद्भाषायां क्वचिच्छन्दसि च, तथा द्विर्वचनात् पूर्वं महाहरः। नरं प्रति हरत्वं, धातुत्वं प्रति, सङ्कर्षणं प्रति, निपातं प्रति च इत्यादि ज्ञेयम् ॥४९७॥

४९८। तदन्तश्चक्रपाणिसंज्ञः।

'चर्करीति' संज्ञश्चायमदादौ परपदिषु गण्यते※। 'ब्रुव ईट्' (आ० प्र० ३४१) इत्यादि, 'चक्रपाणेस्तु वा' (आ० प्र० ३४२)अनन्तहरे न गोविन्दवृष्णीन्द्राविति निषेधश्चक्रपाणेः कृष्णधातुके न स्यात्—बोभवीति, बोभोति, बोभूतः, बोभुवति। बोभूयात्। बोभवीतु, बोभोतु, बोभूताम्। अबोभवीत्, अबोभोत् अबोभूताम्' 'ईशान्तस्य गोविन्दः' (आ० प्र० ३२०) अबोभवुः। भूतेशे तु—अबोभूत्, अबोभूताम्, अबोभवुः इत्यत्र तु भुवो न गोविन्दः, (आ० प्र० ५५) इत्यपि बाध्यते (३।३२० सूत्रेण) अत्रकीय बाहुलयात् आम् तु वा—बोभुवाञ्चकार। धातुनिर्द्देशे तु चक्रपाणेऽपि ग्रहणम्। 'भुवो भूव' (आ० प्र० ५६) हरत्वाद्यङ्-व्यवधाने भूनरस्य भो' (आ० प्र० ७५) न—बभूव। 'तद्ग्रहण वा इत्येके—बोभाव।

तत्रापवादमाहुः—

'सूत्रे श्तिपानुबन्धेन निर्द्दिष्टं यद्गणेन च। यच्चैकाज् ग्रहणं कृत्वा चत्वारि स्युर्नयङ्लुकि※ इति

यथा श्तिपानिर्द्देशात् 'नराद्धन्तेर्हस्य घः' (आ० प्र० २९०) न जंहनीति, जंहन्ति। अत्र च घत्वमिति तस्यां (पा ८।२।६५) चिन्त्यम्। हन् हेर्जहि (आ० प्र० २८६) इति च न स्यात्, बाहुलयात् जंहंहि। शेशयीति, शेशीति, 'शीङ शेः' (आ० प्र० ३३५) न स्यात्—चोकोटिता, न निर्गुणत्वम्। रोरोत्ति, इट् न स्यात्। पापचिता, अनिट् प्रकरणे शकादिष्वप्येकाचत्वमनुवर्त्तनीयम्, तत इट् स्यात् ॥४९८॥

४९९। तन्तनेस्तसि न हरिवेणुहरः।

५००। हरिवेण्वन्तोद्धवस्य त्रिविक्रमः क्वौ कंसारि-वैष्णवे च।

५०१। क्विव तु क्रमो वा।

तन्तान्त इत्यादि। जंगमीति, जङ्गन्ति, जङ्गतः 'उद्धवादर्शनम्' (आ० प्र० २१०) जग्मति, एकेषां पक्षे जंगमति। 'धातोर्मो नो' (वि० प्र० १२९) जंगन्मि, जंगन्वः। चञ्चूर्य्यतेरीटि वामनः निमित्ताभावात्, 'न नारायणोद्धवस्य' (आ० प्र० ३५२) इति गोविन्दनिषेधः—चञ्चूरीति। गोविन्दोऽकंसारिप्रत्ययमपेक्षत इति वहिरङ्गः, त्रिविक्रमस्तु प्रत्ययं नापेक्षत इत्यन्तरङ्गः, तेन चंचूर्त्ति। चंखनीति, चंखन्ति, 'जन-खन-सनाम्' (आ० प्र० २५६) इति चंखातः। मूर्च्छा—मोमूर्च्छीति मोमूर्ष्टि ॥४९९-५०१॥

५०२। राच्छवयोर्हरः क्वौ कंसारिवैष्णवे च

मोमूर्त्तः। विच्छु—वेविच्छीति, वेविष्टि, वेवेश्मि, वेविछ्वः। दिवु—देदिवीति ॥५०२॥

विष्णुजने तु गोविन्दः—

५०३। यवयोर्हरो बले।

देदेति, ऊठ्-पत्वे देद्यूतः, गोविन्दश्च—देद्योमि। 'उरामस्य वृष्णीन्द्रः' (आ० प्र० २९१) इत्यादौ 'न तु नारायणस्य' (आ० प्र० २९३) इति—योयवीति, योयोति। नोनवीति, नोनोति। तुर्वी—तोतूर्वीति, तोतोर्त्ति, तोतूर्त्तः। ओहाक्—जाहाति, जाहीतः। श्तिपा-निर्द्देशान्न 'जहातेरिश्च' (आ० प्र० ३४९) इत्याद्यके ॥५०३॥

५०४। दशो नलोपो वा चक्रपाणौ।

दन्दशीति, दन्दंशीति इत्यादि। सोषुपीति, सोषोप्ति, सास्वपीति, इत्याद्यके। टुओश्वि—शोशवीति, शेश्वयीति ॥५०४॥

※ "चर्करीतीति अयं यङ्महाहरान्तः" इति बालतोषणी टीका, "चर्करीतं च" इति गणसूत्रम् (सिद्धान्तकौमुदी) "प्राचा तु चर्करीतमिति यङ्लुगन्तं परस्मैपदमित्युक्तम्" इति तत्त्वबोधिनी टीका।

※ श्तिपा शपाऽनुबन्धेन निर्द्दिष्टं यद्गणेन च। यत्रैकाजग्रहणं किञ्चित् पञ्चैतानि न यङ्लुकि ॥

२। अथ चक्रपाणिप्रक्रिया निरूप्यते (ग)।

५०५। श्या-श्वि-व्या-ज्या-ह्वां सङ्कर्षणस्य त्रिविक्रमः, वेञस्तु क्विपि।

शोशूतः ॥५०५॥

५०६। ऋरामान्त-तदुद्धवयोर्नरतो रिरीरो विष्णवश्चक्रपाणौ।

महाहरत्वान्न रीरामादेश इरुरौ च। डुकृञ् करणे—'नरस्य गोविन्दः यङि' (आ० प्र० ४७८) 'नरविष्णुजनानामादिः शिष्यते' (आ० प्र० ८९) 'विष्णुरहित' (आ० प्र० ४७८) इति विशेषणान्नात्र त्रिविक्रमः—चरिकरीति, चरीकरीति, चर्करीति इत्यादि। ऋ गतौ—अर्य्यर्त्ति, अर्य्यर्त्ति, अरर्त्ति, अर्य्यरीति, अर्य्यरीति, अररीति, अर्यृतः, अर्यृति इत्यादि। वरिवृतीति, वरीवृतीति' वर्वृति इत्यादि कृ विक्षेपे—'विष्णुरहितारामान्तस्य तु त्रिविक्रमः' (आ० प्र० ४७८) चाकरीति। पॄ पालनपूरणयोः—पापरीति। उद्धवस्य गोविन्दस्थानीयस्य वृष्णीन्द्रस्यापि निषेधः—मरिमृजीति, मरिमार्ष्टि ॥ ॥५०६॥

५०७। न नृत्यादेरीट्।

नरिनर्त्ति, नरिनर्त्सि, सर्व्वत्रैवेटि कार्य्ये रामधातुकपरत्वं ज्ञेयम्, तेन 'नृतीकृत्यादे' (आ० प्र० ३६२) इति नेट्। वृञ् वरणे—वरिवर्त्ति। तृणु—ऋद्वये ररामांशसद्भावाद्रषाभ्यां दुस्तवर्गजः, 'नवर्ज्जतवर्गस्थस्य' (वि० प्र० १२८) इत्यादिना भूतपूर्व्वस्य च मूर्द्धन्यस्यापायात् तरितर्न्ति, हरिवेण्वन्तोद्धवस्य' (आ० प्र० ५००) इत्यादि—तरितृन्तः ॥५०७॥

५०८। णटाभ्यां सः षः।

तरितर्ण्षि। घट—जाघट्षि ॥५०८॥

५०९। तथा केवलेन सरामेण व्यवधानेऽपि षत्वमिष्यते, सरामस्य च तस्य।

पिसृ—पेपेष्षि। 'केवलेन' इति किम्? नेनिस्सि। 'ग्रहि-ज्या' (आ० प्र० २६५) जरिगृहीति सङ्कर्षण-ढत्व-घत्व-टवर्गत्व-गोविन्द-ढलोपाः (३।२६५ २।१४५, ३।१०३, २।१३५, ३।३०, ३।१७७) जरिगर्ढि 'न सङ्कर्षणः' इत्येके—जाग्रहीति। ढत्व-घत्व-टवर्गत्व ढलोप-त्रिविक्रमाः (२।१४५, ३।१०३, १३५ ३।१७७) जाग्राढि। आदौ सङ्कर्षणः (आ० प्र० २६५) ततो द्विर्व्वचनम् (आ० प्र० ६९) रिरीरः, जरिगृढः, जरिगृहति। गृधु अभिकाङ्क्षायाम्—जरिगृधीति, जरिगर्द्धि, अजरिगृधीत्, गोविन्दः (आ० प्र० ३०) 'दिस्योर्हरः' (आ० प्र० २८२) अत्र गोविन्द-रिरीर-हरिघोषत्वम् (३।३०, ५०६, २।११४) हरिकमल-हरिगदे (२।१०६, १।९६) अजरिघर्त्त, अजरिगृद्धाम्, अजरिगृधुः, 'दधोरुः सिपि वा' (आ० प्र० ३०१) 'रो रे लोप्यः पूर्व्वश्च' (स० प्र० १४७) अजरिघाः, अजरिघर्त्त इत्यादि। दरिदृशीति, अम् (आ० प्र० १७२) दरिद्रष्टि इत्यादि। किञ्च, षत्वे सुवत्यादिवत् स्यति स्तोभति-स्यन्दति-स्फुरतिस्कभ्नातयोऽपि सङ्कर्षणे च श्यादयोऽपि[१] श्तिवन्ता ज्ञेयाः। नेर्णत्वे हन्त्यादिवत् स्यति-याति-वपति[२]-वहति-शाम्यति-चिनोति देग्धयः। इति चक्रपाणयो बहुलमन्येऽपि संग्राह्याः ॥५०९॥

इति चक्रपाणयः।

१। स्कभ्नातयोऽपि श्तिवन्ता ज्ञेयाः (ख ग घ) २। वयति (क)

अथ विभुः

५१० । नामविष्णुपदात् प्रत्ययः ।

५११ । विभुरयम् ।

५१२ । यमिच्छति तस्मात् क्यन् ।

'क्यच्' पा (३।१।८, ७।४।३३) । पुत्रमिच्छतीति क्यनि 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इति न्यायेनेच्छतेरप्रयोगः पुत्रं क्यन्, कनाविनौ, पुनः क्यनादिना सहैकपदत्वं भविष्यति, पुनर्विष्णुभक्तिसिद्धत्वात्, ततश्च—

५१३ । अन्तरङ्गस्वादेर्महाहर एकपदत्वारम्भे

पुत्र-य इति स्थिते—

४१४ । अद्वयस्य ई क्यनि ।

पुत्री, धातुसंज्ञा, तिप्-शवादि—पुत्रीयति । एकवचनमतन्त्रम् । पुत्राविच्छति—पुत्रीयति इत्यादि आत्मार्थैवेच्छा गम्यते । अन्यपदसापेक्षतायां न स्यात् भ्रातुः पुत्रमिच्छति, महान्त पुत्रमिच्छति इति, भ्रातुष्पुत्रीयतीति तु समस्तत्वात् । 'पुत्रीयति श्रीकृष्णम्' इति तु पश्चाद्योगेन 'लक्ष्मणं सा वृषस्यन्ती' इति भट्टिवत् (४।३०) । उपेन्द्रार-स्त्रिविक्रमः' (आ० प्र० २००) इत्यादि—प्रर्षभीयति, प्रार्षभीयति, उपल्कारीयति, उपाल्कारीयति । नेह —उपऋकारीयति उपर्कारीयति । 'उपेन्द्राद्व्यहरः' (आ० प्र० १२६) इत्यादि— उपेकीयति, उपैकीयति ।।५१४।।

एवं गामिच्छति, गो-य इति स्थिते—

५१५ । ओद्वयस्यावावौ प्रत्यय-ये ।

५१६ । धातुसम्बन्धिनस्तु नान्यनिमित्तस्य

गव्यति । नावमिच्छति—नाव्यति । धातोः कृति—लव्यम्, भाव्यम् । अन्यनिमित्तत्वान्नेह— आ-ऊयते ओयते, औयत ।।५१५-५१६।।

५१७ । युष्मदस्मदौस्त्वन्मदावुत्तरपद-प्रत्यययोरेकत्वे ।

समासस्य परपदमुत्तरपदम् । त्वामिच्छति—त्वद्यति । मामिच्छति—मद्यति । द्वित्व बहुत्वयोः —युष्मद्यति, अस्मद्यति । 'न कुरच्छुर-नामधातूनाम्' (वि० प्र० ११७) चतुर इच्छति—चतुर्य्यति दिव्यमिच्छति—दिव्यति । एवं गिर्य्यति, धुर्य्यति । तथा च भाष्यम्—'असुि' इत्येव, तच्चेह षष्ठ्या विपरिणम्यते, तेन सुबधातोर्न भवतीति । वामन एव खलु काशिका भाषावृत्ति-कातन्त्र-रसवती-सुपद्मादिषु मन्यते । प्रक्रिया प्रमादौ (पा ७।४।३३) तु चिन्त्यौ । 'ऋरामस्य री क्य-यङोः' (आ० प्र० ४८५)—कर्त्रीयति ।।५१७।।

५१८ । नान्तमेव विष्णुपदं क्ये ।

राजानमिच्छति— विष्णुपदत्वान्न-लोपादिः, नरामादिहरो नासिद्धस्तुगादिविधेरन्यत्र१, राजीयति अर्हयनि । कंसहस्यामित्यत्र त्वसिद्धस्ततः पृथावपि क्विपि न तुक्, नियमान्नेह विष्णुपदत्वम्— वाच्यति 'विष्णुजनात्' (आ० प्र० ४८१) इत्यादौ 'क्यस्य तु वा' (आ० प्र० ४८२) समिधिता, समिधिचता ।।५१८

५१९ । मान्ताव्ययाभ्यां न क्यन् ।

किमिच्छति, उच्चैरिच्छति ।।५१९।।

५२० । अशनाय बुभुक्षायाम् ।

५२१ । उदन्य पिपासायाम् ।

५२२ । धनायातिलोभे * ।

५२३ । अश्वस्य-वृषस्यौ मैथुनेच्छायाम् ।

५२४ । क्षीरस्य-लवणस्यौ, दधिस्य-दध्यस्यौ, मधुस्य-मध्वस्यौ, पतिस्य-पत्यस्यावित्यादयो लालसायाम् ।

अशनोदकादीनां क्यन्नन्ता निपाताः । वृषोऽश्व पुंमालो वृषभश्च, "वृषस्यन्ती तु कामुकी"—इत्यमरः (२।६।९) । दधिस्यादयस्तु दन्त्यमध्या एव

---

१ । 'नरामादि......रन्यत्र' इति क-पाण्डुलिप्यां सूत्ररूपेण पठ्यते,

* "अर्थितस्तु न महान् समीहते, जीवितं किमु धनं धनायितुम् ।।" (किरातार्ज्जुनीयम् १३।५६)

बुभुक्षयाशनमिच्छति—अशनायति इत्यादि ।।५२०-५२४।।

५२५ । काम्यश्च पूर्व्वक्यन्नर्थे ।

उच्चारणार्थत्वाद्यमागान्न कित् । धात्वधिकार एवेटो रामधानुकत्वस्य च विधानादिडादिप्राप्तौ द्वयङ्गवैकल्यम् । पुत्र काम्यति कृष्णम् । ५२५।।

५२६ । यमिवाचरति यस्मिन्निव च तस्मात् कचन् ।

पुत्रमिवाचरति—पुत्रीयति रामम्, पुत्रवन्मन्यत इत्यर्थः । वृन्दावने इवाचरति—वृन्दावनीयति निजोपवने, वृन्दावने यथा व्यवहरति तथेत्यर्थः ५२६

५२७ । ङौ नलोपनिषेधः क्ये ।

राजनीवाचरति—राजन्यति गोपाले । एवं पथिन्यति गृहे ।।५२७।।

५२८ । विष्णुजनादपत्यस्य यो हरः क्यव्योः

विस्तद्धिनः, गर्गस्यापत्यमित्यर्थे यरामष्टणित्तद्धितः 'आदिसर्व्वेश्वरस्य वृष्णीन्द्र नृसिंहे' (त० प्र० १) इति गार्ग्यः । ततः क्यनि यरामहरेऽरामशेषः, 'अद्वयस्य ई क्यनि' (आ० प्र० ५।४)—गार्गीयति ।।५२८।।

५२९ । य इवाचरति तस्मात् क्यङ् ।

५३० । अजोऽप्सरसोः सस्य च हरः ।

५३१ । पयसस्तु वा ।

'वामनस्य' (आ० प्र० १४८) इति सामान्यग्रहणादधातोरपि वामनस्य त्रिविक्रमः, कृष्ण इवाचरति—कृष्णायते । क्यङपि क्य इति विष्णुपदत्वम्—श्रीदामायते ।।५२९-५३१।।

५३२ । वाच्यलिङ्गलक्ष्मीः पुरुषोत्तमवत् क्यङ्मानिनोर्णौ च ।

गोपीव आचरति—गोपायते पुलिन्दः२ । एतादिशब्दानां लक्ष्म्यामेण्यादयः साधयिष्यन्ते (त० प्र० २२३) एणीवाचरति—एतायते । एवं श्येनी—श्येतायते । संज्ञापूरणिकरामोद्धवादीनां समासे (२५४ संख्यक सूत्रे) यो निषेधो वक्ष्यते, स इहाप्याप्यति । तत्राख्यातकृतोरप्युपादानात्—रुक्मिणीयते, पञ्चमीयते, गोपिकायते । ओज इति ओजायते, अप्सरायते, पयायते, पयस्यते ।।५३२।।

५३३ । क्वचित् कचङः क्विप् ।

ततः क्यङ्वन्नान्तमेव विष्णुपदम् कचाविती ।।५३३

५३४ । केवलस्य प्रत्ययवेर्हरः ।

कृष्णति गोपी । विधवति तन्मुखम् । भूरिवाचरति गोधुगिवाचरति—भुवति, गोदुहति, अत्र गोविन्दाभावः, सहजधात्ववस्थायां कृतस्य क्विपो यत् कंसारित्वं, तस्यान्तर्विद्यमानत्वात्, विधवति इत्यत्र तु धात्वधिकारसामर्थ्येन नाम्नो विहितस्य कितः कंसारित्वाभावात् । भूतेशे-- अविधावीत्, 'अविधवीत्' इत्येके । नान्तस्य तु विष्णुपदत्वम्—राजति, 'राजनति' इति कश्चित्, तत्तु दुर्गादीनामसम्मतम्, क्यङ् स्थानीयस्य तदीयविप्रत्ययस्यैव लोपः क्रियते, न तु क्विप् क्रियते ततः पदकार्य्यत्वमस्त्येव, न चात्र दीर्घ । भुवाञ्चकार इति प्रत्ययान्तत्वादामिति केचित् ।।५३४।।

५३५ । गल्भादेरात्मपदश्च ।

गल्भते, क्लीवते, अत्र च विष्णुपदत्वाभावात् 'तरामहर ए-अयोः' (आ० प्र० ३२) ।।५३५।।

५३६ । भृषादिभ्यः क्यङ्, अन्तविष्णुजनहरश्चाभूततद्भावे ।

अभृशो भृशो भवति—भृशायते । शश्वत्—शश्वायते । उन्मनायते, सुमनायते, दुर्म्मनायते ।।५३६।।

५३७ । लोहितादेरुभयपदत्वञ्च ।

लोहितायति, लोहितायते, चर्म्मायति, चर्म्मायते 'क्विप् च' इत्येके—लोहितति, चर्म्मति, इति प्रक्रियायामपि (पा १।३।९०) । तद्धिते तु भृशीस्यात् लोहितीस्यात् इत्यपि ।।५३७।।

---

२ । एतद्वाक्यं ख-ग-घ पाण्डुलिपिषु नास्ति ।

५३८। आच्प्रत्ययान्ताच्च ।

पटपटायति, पटपटायते, पटपटाति, पटपटीस्यात् इति च पूर्व्ववत् ॥५३८॥

५३९। कष्ट-सत्र-कक्ष-कृच्छ्र-गहनेभ्यो गम्यकर्म्मणो विशेषणेभ्यस्तादर्थ्यचतुर्थ्यन्तेभ्यः क्यङ् पापवृत्तौ क्रमणे ।

कर्म्मात्र कृतिरुच्यते । कष्टाय कर्म्मणे क्रामति—कष्टायते, कष्टेन कर्म्मणा पापं चिकीर्षतीत्यर्थः । एवं सत्रायते इत्यादि । पापवृत्तेरन्यत्र—कष्टाय तपसे क्रामति ॥५३९॥

५४०। रोमन्थमुद्वर्त्तयति अस्मिन्नर्थे क्यङ् एवमुत्तरेष्वपि । रोमन्थायते गौः उद्गीर्य्यमाणं चर्व्वयतीत्यर्थः । हनुचलन एव, नेह—कीटो रोमन्थमुद्वर्त्तयति ॥५४०॥

५४१। वाष्पादिकमुद्वमति ।

वाष्पायते, फेनायते, मेघायते, धूमायते ॥५४१॥

५४२। शब्दादिकं करोति ।

शब्दायते, वैरायते, कलहायते, अभ्रायते, मेघायते, सुदिनायते, दुर्द्दिनायते, लीलायते ॥५४२॥

५४३। नम आदिभ्यः परपदश्च ।

नमस्यति, वरिवस्यति, तपस्यति ॥५४३॥

५४४। सुखादिकं वेदयते ।

सुखायते । आत्मनः सुखादिवेदन एवेष्टिः, नेह—परस्य सुखं वेदयते ॥५४४॥

५४५। चित्रात् क्यन्नात्मपदं चाश्चर्य्ये ।

चित्रीयते हेममृगः ॥५४५॥

५४६। *अनेक-सर्व्वेश्वरस्य संसारहरः, पृथुमृद्वादेर्ऋ रामस्य रश्च, क्षिप्रस्य क्षेपः, दीर्घस्य द्राघः, बहुलस्य वंह-, क्षुद्रस्य क्षोदः, गुरोर्गरः, उरोर्वरः, प्रियस्य प्रः, बहोर्भूः, णीष्ठेमेयःसु । णौ इष्ठे इमणौ ईयसौ चेत्यर्थः ॥५४६॥

५४७। *भूतो युट्, तथा प्रशस्यस्य श्रज्यौ, वृद्धस्य वर्षज्यौ। स्थिरस्य स्थः, स्फिरस्य स्फः, अन्तिकस्य नेदः, बाढस्य साधः, स्थूलस्य स्थवः, दूरस्य दवः, यूनो यवकनौ, तृप्रस्य त्रपः, वृन्दारकस्य वृन्दः, विन्मत्वोर्हरः, अल्पस्य तु कनो वा णीष्ठेयःसु

णौ इष्ठे यस्वाश्चेत्यर्थः ॥५४७॥

५४८। श्वेताश्वतरस्य श्वेतः, गालोडितस्य गालोडः, ह्वरकस्य ह्वरो णौ ।

गालोडितं वाचां विमर्शः, ह्वरकमपवारकम्, तदेवं स्थिते ॥५४८॥

५४९। पुच्छाण्णिङ् उत्क्षेपादौ ।

संसारहरः, णौ पदत्वाभावः, ण्यन्तत्वाद्धातुसंज्ञा पुच्छमुत्क्षिपति—उत्पुच्छयते, परिक्षिपति—परिपुच्छयते, विक्षिपति—विपुच्छयते । अत्रोपेन्द्रयोगश्च पश्चादेव क्रियते, तेन उदपुच्छयत इत्यादौ मध्यत एवाडागमः ॥५४९॥

५५०। भाण्डाण्णिङ् समाचयने ।

५५१। चीवरादर्ज्जने परिधाने च ।

भाण्डानि समाचिनोति – संभाण्डयते, चीवराणि अर्ज्जयति परिदधाति वा--चीवरयते । 'सम्माऽर्ज्जने च' इति कश्चित्—संचीवरयते ॥५५०-५५१॥

५५२। अङ्गाण्णिङ् निरसने ।

निरसनमत्र छेदनम्, हस्तौ निरस्यति—हस्तयते 'णिः' इति कश्चित्—हस्तयति ॥५५२॥

५५३। व्रताण्णिस्तन्मात्रभोजन-तन्निवृत्त्योः

विष्णुनिवेदितमवैष्णवान्नञ्च व्रतयति, विष्णुनिवेदितमात्रं भुङ्क्ते, अवैष्णवान्नञ्च न भुङ्क्ते इत्यर्थः ॥५५३॥

---

* "द्राघिष्ठ-क्षेपिष्ठ-प्रेष्ठ वरिष्ठ-स्थविष्ठ-वंहिष्ठा । अस्मन्नृपतेः पुरतः, सर्व्वे गर्व्वेण रिच्यन्ते ॥
वृन्दिष्ठ-क्षोदिष्ट,-ज्येष्ठ-गरिष्ठ-ह्रसिष्ठ-साधिष्ठाः । अस्मन्नृपतेरग्रे, विपरीताभापरीताः स्युः ॥"
(श्रीगोपालचम्पूः पूः ३०।१८-१९)

५५४। वस्त्राण्णिः समाच्छादने परिधाने च

वस्त्रेण समाच्छादयति—संवस्त्रयति, वस्त्रं परिदधाति—परिवस्त्रयति ॥५५४॥

५५५। हल्यादिभ्यो ग्रहणाद्यर्थे णिः।

हलिं गृह्णाति—हलयति, कलिं—कलयति, अजहलत् अचकलत्, हलिर्महद्धलम्। त्वचं—त्वचयति, अरामान्तोऽपि त्वचशब्दोऽस्ति, त्वचः पश्चात् संपूर्व्वे—संत्वचयति। एवं वर्णयति, कृतयति, एवं तूस्तानि विनिहन्ति—वितूस्तयति, तूस्तं पापं धूलिर्वा, संहता जटा वा। पाशं विमोचयति—विपाशयति। पाशं संयच्छति—संपाशयति। लोमान्यनुमार्ष्टि—अनुलामयति। रूपं पश्यति—रूपयति ॥५५५॥

५५६। तृतीयान्तविशेषात् धात्वर्थविशेषे।

वीणया उपगायति—उपवीणयति। तूलैरवकुष्णाति—अवतूलयति, एवमन्यच्च। श्लोकैरुपस्तौति—उपश्लोकयति। सेनया अभिमुखं याति, षत्वम्—अभिषेणयति। वर्म्मणा संनह्यति—संवर्म्मयति। चूर्णैरवध्वंसयति—अवचूर्णयति ॥५५६॥

५५७। तेनातिक्रमणे च।

हस्तिना अतिक्रामति—अतिहस्तयति ॥५५७॥

५५८। मुण्ड-मिश्र-श्लक्ष्ण-लवण-लघु-पटु-प्रभृतिभ्य स्तत्करोत्यर्थे पृथ्वादेरन्येभ्यश्च तत्करोति तदाचष्टे इत्यर्थे णिः।

मुण्डं करोति—मुण्डयति इत्यादि। वहधातोः क्तिः—ऊढिः, ऊढिमाचष्टे करोति वा—ऊढयति अङि तु द्विर्व्वचनं प्रति ढत्वादीनामसिद्धत्वं तद्धितकार्य्यान्ते वक्तव्यम्। ततश्च ढिस्थानस्य हसाङ्गितोत्यस्य द्विर्व्वचने जाते नरविष्णुजनानामादिः (आ० प्र० ८९) 'हस्य जः' (आ० प्र० २६०) नारायण हस्य च पुनर्ढत्वादि, तेन औजिढत् इति सिध्यति। क्तान्तस्योढशब्दस्य तु णौ दशावतारादर्शने सति सन्निमित्तकार्य्याभावादौजढदिति काशिका (पा ३।१।२१)। अत्रापि औजिढत् इत्येके। केचित्त्वसिद्धत्वं न मन्यन्ते—औडिढत् ॥५५८॥

५५९। सत्यार्थवेदेभ्य आपुक् च।

सत्यापयति। 'नामधातु-छच् च्वक-छिवां सत्वनत्वनिषेधः' (आ० प्र० १६६) षष्ठं करोति तदाचष्टे वा—षष्ठयति, एवं नरामयति। कविं—कवियति। अधिकारस्य प्राप्तस्य गोविन्दे धातुग्रहणस्यानर्थक्यान्नाम्नोऽप्यन्तस्य वृष्णीन्द्रो नृसिंहे ॥५५९॥

५६०। प्रकरणे त्वत्र वृष्णीन्द्रे जात एव संसारहरो वाच्यो हलिकली विना।[१]

ततो न तु दशावतारादर्शन इति न सन्निमित्तकार्य्यनिषेधः। अचीकवत्। अत्र तु वृष्णीन्द्रत्वेऽपि दशावतारत्वमेवेति। राधामाख्यत्—अरराधत्। 'ह्वो' (आ० प्र० २७०) इत्यादौ नामधातु विनेति किम्? ह्वायकमाचष्ट स्म—अजुह्वायकत्। ह्वायकयितुमिच्छति—जिह्वायकयिषति। एवं स्वापेरपि इष्यते, स्वापक इवाचरति—स्वापकायते सिष्वापकायिषते ॥५६०॥

५६१। नामधातु-हनो न घत्वम्।

क्यन्—जिहननीयिषति। णि, अग्निचितं—अग्निचयति। प्रत्यञ्चं—प्रत्ययति। उदञ्चं—उदयति। गोनावौ आचष्टे—गोनयति। आशिषयतीत्यादौ तु संसारहरं नेच्छन्ति। एतः कर्व्वुरवर्णः, स्त्रीत्वं चेदीप्प्रत्ययस्तस्य च नः, तत्र णौ चेति पुंवद्भावात् एणीं करोति—एतयति। ररामभावात् संसारहराच्च पृथ्वादेः-प्रथयति।

पृथुं मृदुं भृशं चैव कृशञ्च दृढमेव च।
परिपूर्व्वं वृढं चैव षडिमान् रविधौ स्मरेत् ॥

क्षिप्रादेः क्षेपयति इत्यादि। प्र-श्र-ज्य-स्थ स्फादेशे वृष्णीन्द्रः पुगागमश्च-प्रापयति। वहोर्भूः, युट्—भूययति। प्रशस्यादेः—श्रापयति, ज्यापयति, वर्षयति इत्यादि। तृप्रः—पुरोडाशः ररामान्तोऽयम्, त्रपयति विन्मतोर्हरात् स्रग्विणः—स्रजयति।

१। एतत् सूत्रं क-पाण्डुलिप्यां वृत्तिरूपेण पठ्यते।

ईश्मनः—ईशयति। तथा अल्पयति, कनयति। श्वेताश्वतरादेः—श्वेतयति इत्यादि। किन्तु प्रथमस्य तेनातीक्रामतीत्यप्यर्थो ज्ञेयः ॥५६१॥

५६२। कण्ड्वादिभ्यो यक् करोत्यर्थे।

कण्डुयति, असूयति, वल्गूयति, मन्तूयति। एवं सुख-दुःख-खेला-भिक्षु-भिषक् प्रभृतयः। किन्तु कण्डूयङ्-असूयङ्-वल्गूयङ्-मन्तूयङ् कण्डूयत्याद्यर्थे हृणीयङ्-महीयङौ घृणापूजयोर्धातुविशेषा एव। कण्डूयते इत्यादि ॥५६२॥

४६३। कण्डूयादीनां येर्द्विर्व्वचनम्।

कण्डूयियिषति ॥५६३॥

५६४। नामधातूनां यथेष्टम्।

पुपुत्रीयिषति, पुतित्रीयिषति, पुत्रीयियिषति, पुत्रीयिषिषति, पुपुतित्रीयियिषति, पुपुतित्रीयियिषिषति कृष्णम्। सर्व्वेश्वरादीनान्तु नत्सङ्गादि न-ब-द-र वर्ज्जस्य तत्परस्यैव ज्ञेयम्। ईशिशीयिषति ईशीयियिषति, ईशीयिषिषति, ईशिशीयियिषिषति कृष्णम्। एवम् इन्दिद्रीयिषति कृष्णमित्यादि। 'सर्व्वेश्वरादेरन्यत्रापि न-ब-द-रादिवर्ज्जस्य' * इति प्रक्रियाकारः (पा ३।१।२७)। चन्दिद्रीयिषति इत्यादि ॥५६४॥

इति विभुप्रक्रियाः।

अथ उपेन्द्रविधौ कश्चिद्विशेषः*

५६५।

अन्तःशब्दो णत्वविधौ धाञो ङाप् किविधौ तथा।
भवेदुपेन्द्रोऽथ नैते षत्वार्थं यान्त्युपेन्द्रताम् ॥१

५६६। सुः पूजायागतिस्तद्वदतिक्रान्तौ अथो अपिः।
स्तोकता-योग्यता-स्वरानुज्ञा-गर्हा-समुच्चये॥

अन्तरिति—अन्तर्णयति, अन्तर्धा, अन्तर्द्धिः। अथ नैत इति—सुस्तुहि, अतिस्तुहि। अथो अपिरिति—सर्पिषोऽपि स्यात्, अपिस्येत् पर्व्वतं सिंहः, अपिसिञ्चेत् तुलसीम्, अपिसिञ्चेत् पलाण्डुम्, अपिसिञ्च, अपिस्तुहि ॥५६५-५६६॥

५६७। धात्वर्थमात्रवाचिनावधिपरी अपि नोपेन्द्राविति वाच्यम्।

"अधिपरी अनर्थकौ" इति हि भगवान् पाणिनिः (१।४।९३)। तदिदञ्च, कर्म्मप्रवचनीयसंज्ञाविधानमुपसर्गसंज्ञाबाधकमिति। अधिकार्थवाचित्वे तु—अधिस्यति, परिणीय ॥५६७॥

अथोपेन्द्रादपि षोपदेशस्य षत्वं क्वचिदित्यत्र विशेषः—

५६८।

उपेन्द्रात् सुवतेः षत्वं सुनोतेः सोस्तुभस्तुवाम्
स्था-सेनय-स्वनुज्-सञ्जां सेधतेस्त्वगतौ स्मृतम्

५६९। सिचेरपि तथा षत्वम्।

५७०। सदेः प्रतिविवर्ज्जितः।

५७१। उपेन्द्रात् क्रियते तद्वद्वचवाभ्यां भोजने स्वनः।

---

* "यत्र संयोगे नदराः सन्ति, तत्र आदेरेव न द्वित्वम्" (पा ३।१।२७ सूत्रे प्रक्रिया कौमुदी)

* अस्मिन् प्रकरणे ५६७ संख्यक सूत्रं विना सर्व्वाण्येव सूत्राणि अनुष्टुभ्-छन्दो-निबद्धानि, तानि च खण्डशः निबद्धानि मिलितानि सन्ति श्लोका भवन्ति। १। २६५ संख्यक-सूत्रात् प्राक् 'अत्रैकबिन्दुदानं सूत्रस्य समाप्त्यर्थं, द्विबिन्दु-दानमधिकारस्य, यथा— इत्यधिकः पाठः (क ख ग घ)

५७२।
उपादपि मतं स्तम्भेः षत्वं यत्राङ् न दृश्यते ।
अवपूर्व्वस्य सामीप्ये तद्वदेवावलम्बने ॥

५७३। परेर्निविभ्यां सेवस्य सितस्य च सयस्य च
सिवोः सहः सुटस्तद्वद्विना सोढं षता मता ॥

५७४। अता व्यवायेऽप्यासेवम् ।

५७५। नरेण स्थादिकस्य तु षत्वं वाच्यम्

५७६। तदा तस्य, नरस्य च तदिष्यते ।

५७७। वेः स्कम्भेः ।

५७८।
वा परेः स्कन्देः वेस्तु निष्ठां विना भवेत् ।
विपर्य्यन्वभिनिभ्यो वा स्यन्देरप्राणिकर्त्तरि ॥

५७९। निर्निविपूर्व्वस्य स्फुरोऽपि स्याद्विभाषया

५८०। सुविनिर्दुः पूर्व्वसूतिसमयोः षत्वमिष्यते
तत्पूर्व्वत्वे नरस्यापि कृतसङ्कर्षणस्वपेः ॥

५८१।
परेर्निविभ्याञ्च सिवोः स्तुस्वन्जोः सुट्सहोरपि ।
अता व्यवाये षत्वं स्याद्विकल्पेनेति सम्मतम् ॥ *

५८२। न सुञः स्यसनोः षत्वम् । *

५८३। न च षत्वं सिचेर्यङि । *

५८४। सुस्थादिषु ।

५८५। न षत्वञ्च प्रादेः सिवुसहोरङि ।

५८६। नारायणे सदिस्वन्जोर्न षत्वं
स्यादधोक्षजे ।

उपेन्द्रात्—परिषुवति, अभिषुणोति, परिष्यति, विष्टोभते, परिष्टौति, अधिष्ठाता, अभिषेणयति, परिष्वजते, अभिषजति । षेध—निषेधति, गतौ तु—परिषेधति । सिचेः-अभिषिञ्चति । सदेः—निषीदति नेह—प्रतिसीदति । व्यवा—विष्वणति, अवष्वणति भक्तम् । उपात्—स्तन्भु रोदने सौत्रः – उपष्टभ्नाति नेह—उपातस्तम्भत्, अव—अवष्टभ्नाति सेना, अवष्टभ्नाति दण्डम्, नेह—अवातस्तम्भत् परेः—परिषेवते, परिषितम्, विषयः—द्वाविमौ कृदन्तौ । निषीव्यति, विषहते । परिष्करोति । नेह—परिसोढा परिसोढं, परिसोढुम्, क्तस्तुमुश्चायं कृत् । अता—एषां सुवतीत्यादीनां सेवपर्य्यन्तानामदागमव्यवधानेऽपि षत्वं भवेदित्यर्थः, यथा—न्यषुवदित्यादि । नरेणेति तत्रैव स्थादीनान्तु नरव्यवधानेऽपि षत्वं भवेदित्यर्थः- अधितष्ठौ इत्यादि । तदेति तत्समये नरस्य च षत्वम् —अभिषिषेणयिषति इत्यादि । वेः भ्वादित्वे—विष्कम्भते, सौत्रत्वे तु विष्कभ्नाति, विष्कभ्नोति, स्कभ्नातेरेवेति पाणिनीयाः, कातन्त्रपरिशिष्टे (षत्वप्रकरणम् ३६) त्वविशेषेणैव । वा परेः—परिष्कन्दति, परिस्कन्दति, विष्कन्दति, विस्कन्दति निष्ठा कृद्विशेषः—विस्कन्नम् । वि-परि-स्यन्द—परिष्यन्दते, विष्यन्दते वा गङ्गा, नेह—विस्यन्दन्ते मत्स्याः । निर्नि—निःष्फुरति, निःस्फुरति । सु-वि—सूतिसमौ समासकार्य्ये १ (कृ० प्र० ४६४) वक्ष्येते, तत्पूर्व्वत्वे—सुषुप्यते, सुषुषुपतु, नेह—सुस्वपिति । परे—पर्य्यषीव्यत्, पर्य्यसीव्यत् इत्यादि । न सुञः—परिसोष्यति, परिसुसूषति । स्तौतिण्यन्तयोरेवेति षत्वाभावेऽपि सार्थकता तु क्विपि प्रतिसुसूरित्यत्रैव । न च निसेसिच्यते सेसिच्यते । सुस्था—सुस्थः, दुःस्थः प्रतिस्तब्धः, निस्तब्धः, परिस्थित इत्यादि ।

---

* सि वुसहसुट्स्तुस्वन्जां विभाषाटः—परिनिविभ्यः सिव्वादीनामटः परस्य सस्य षो भवति वा, पर्य्यषीव्यत्, पर्य्यसीव्यत्, पर्य्यषहत, पर्य्यसहत, पर्य्यष्करोत्, पर्य्यस्करोत्, पर्य्यष्टौत्, पर्य्यस्तौत्, पर्य्यष्वजत, पर्य्यस्वजत स्तुस्वन्जोः प्राप्ते विभाषा । * स्ये च सुञः—सुञोऽभ्यासे च परतः षो न भवति, अभिसुषाव, अभिसुसूषति । षणि नियमात् पूर्व्ववत् । स्ये च अभिसोस्यते, अभ्यसोष्यते, अभिसुसूषतीति । क्विप् दृश्यते चेत्, अभिसुसुरिति षूसरादित्वात् । * सिचश्केक्रीयते—सिचश्चेक्रीयते परे सस्य षो न भवति, सेसिच्यते । उपसर्गाश्रयोऽपि बाध्यते—अतिसेसिच्यते । (कलापव्याकरणम्, आख्यातवृत्तिः, ८म-पादः, परिशिष्टम्)

१ । कृत्प्रकरणे इति ग-धृतं क्वचित् पाठान्तरम् ;

न प्रादेः—पर्य्यसीषिवत्, न्यसीसहत् । उपेन्द्रत एव निषिध्यते, अन्यतर२ ईश्वरादिकृतं तु स्यादेवेति परस्य षत्वम् । नारा--निषसाद, परिषस्वजे ॥५६८-५९६॥

इति उपेन्द्रविधिः ।

इति श्रीश्रीहरिनामामृताख्ये वैष्णवव्याकरणे आख्यातप्रकरणं तृतीयं समाप्तम् ।



[चतुर्थम्]

अथ कारकप्रकरणम्

१] यः कर्त्ता कर्म्म करणं सम्प्रदानमशेषतः ।
अपादानाधिकरणे तत्सम्बन्धो भवेदिह ※
अथ विष्णुभक्तचर्य्याः, तत्र कारकाणि च निरूप्यन्ते

१ । एकद्विबहुत्वेष्वेकद्विबहुवचनानि ।

कृष्णः, कृष्णौ, कृष्णाः ; भवति, भवतः, भवन्ति ॥१

२ । युष्मदो गौरवे त्वेकत्वे द्वित्वे बहुवचनम्

हे पितर्यूयं वदत । हे पितरौ ! यूयं पश्यत ॥२॥

३ । द्विवर्ज्जतदादिमात्राच्च ।

स कुत्र तव गुरुरित्यत्राह,—'तत्र ते विराजन्ते' ॥३॥

४ । पूज्यवाचिभ्यस्त्वादराधिक्ये ।

यथा—गुरवः समादिशन्ति इत्यादि ॥४॥

५ । अस्मदस्त्वगौरवेऽपि ।

अहं ब्रवीमि, आवां ब्रूवः—इत्युभयत्रापि वयं ब्रूमः । सविशेषणत्वे तु न—वैष्णवोऽहं ब्रवीमि । व्यभिचरति च—"सा बाला वयमप्रगल्भमनसः, सा स्त्री वयं कातराः ।" ※ इत्यादि ॥५॥

६ । जात्याख्यायामेकवचने बहुवचनं वा ।

संपूज्य तुलसी, सपूज्यास्तुलस्यः, गौरयं, गाव इमे । 'जात्याख्यायाम्' इति किम् ? भारद्वाजस्य प्रतिकृतिर्भारद्वाजः, न त्वत्र जातिराख्यायते । किं तर्हि ? प्रतिकृतिरिति१ । एवं जयादित्यानामपि (काशिका १।२।५८) एवं फल्गुन्योः प्रोष्ठपदयोश्च द्वितारयोरपि बहुवचनं ज्ञेयं वा । कदा पूर्व्वाः फल्गुन्यः, पूर्व्वे फल्गुन्यौ वेत्यादि । तथा तिष्य एकः पुनर्व्वसू द्वौ, तथापि द्वन्द्वे द्विर्व्वचनं तिष्यपुनर्व्वसू इत्यादि ॥६॥

※ "अशेषतः अपरिच्छिन्नलीलत्वाद् यः कृष्णो महाविष्णुरूपत्वेन कर्त्ता भवति, विराड्रूपेण कर्म्म भवति, ब्रह्मविष्णुरुद्र-गुणावताररूपेण करणं भवति, यज्ञपुरुषरूपेण सम्प्रदानं भवति, गर्भोदशायि-शेषरूपाभ्याम् अपादानाधिकरणे भवतः, तस्य श्रीकृष्णस्य सम्बन्धः षट्कारकरूपत्वेनान्वय इह संसारे भवेत् ।।" (बालतोषणी टीका)।

※ सा बाला वयमप्रगल्भमनसः सा स्त्री वयं कातराः, सा पीनोन्नतिमत्पयोधरयुगं धत्ते सखेदा वयम् । साक्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्ता वयं, दोषैरन्यजनाश्रयैरपटवो जाताः स्म इत्यद्भुतम् ॥

(साहित्यदर्पणः, दशम-परिच्छेदः) १ । प्रत्याख्यानमिति (क) २ । अन्यत्र (क) ।

७। प्रथमा नाममात्रार्थे।

यन्नाम यद्वाचि, तन्मात्रे वाच्ये नाम्नः प्रथमा विष्णुभक्तिर्भवति, वक्ष्यमाणसम्बन्धनिरपेक्षत्वम्—तन्मात्रत्वम्। ततः स्वभावसिद्धत्वाल्लिङ्गञ्च नामविशेषार्थ एव। वाच्यलिङ्गानाञ्च तादृश एव स्वभावः। तत्र लिङ्गं विना, यथा—उच्चैः, नीचैः। लिङ्गम्-स्त्री-पुं-नपुंसकशब्दवाच्यम्, तच्च 'संस्त्यानप्रसरौ लिङ्गम्' इति भाष्ये लक्षितम्, तच्च संस्त्यानं संहतिः, एकीभावादपचयो लक्ष्यते. प्रसरो विस्तारस्तस्मादुपचयः। अयमर्थः—स्तनादिचिह्नैः प्रसिद्धेषु स्त्रीपुंनपुंसकेषु अपचयोपचयद्विसाम्यरूपो यो धर्म्मक्रमो दृश्यते, तं क्रममवलम्ब्य बहुलमीश्वरपरिभाषितो वस्तुनो धर्म्मविशेषो लिङ्गमिति। तच्चोपचारान्नाम्नि प्रवर्त्तते। तदात्मकं यथा—स्त्री, पुमान्, नपुंसकं, वापी, तडागः कुण्डम् क्वचिन्नाम्नि च परिभाषितं लिङ्गं वस्तुन्युपचर्य्यते—सुन्दराः दाराः, सुन्दरी देवता, सुन्दरं दैवतम्। अथ तत्र परिमाणात्मकं यथा—खारी, द्रोणः, आढकम्, तत्परिमितश्च—खारी, द्रोणः, आढकम्। उपचारेणाभेदात् यथा—मञ्चे स्थिता जनाः—मञ्चाः संख्यात्मकं यथा—एकः, द्वौ, बहवः, अत्र प्रकृत्यर्थः सदृशप्रत्ययेनानूद्यते मात्रं, केवलाप्रयोगित्वात्, कृष्णौ कृष्णाः—इत्यादौ द्वित्वाद्यर्थाधिक्येऽपि प्रथमान्तःपातात्। नारी, यादवः, दृष्टकृष्णः इत्यादौ स्त्रीप्रत्ययादिनार्थाधिक्येऽपि पुनर्नामत्वप्राप्तेः॥७॥

८। सम्बोधने च।

सम्बोधनमामन्त्रणं, तच्च नाम्ना नामिनः आभिमुख्यभावनम्, तच्च हेशब्दादिद्योत्यं, क्वचित् तद्विनाभावेऽपि गम्यश्च, तद्रूपस्यार्थाधिक्ये नाम्नः प्रथमा स्यात्। कृष्णनाम्नस्तवाभिमुख्य भवत्वित्यर्थे हे कृष्ण, गम्यत्वेऽपि कृष्ण॥८॥

९। सम्बन्धे तदाश्रयात् षष्ठी।

सम्बन्धो भेदेन विवक्षितयोर्द्वयोर्योगः, स च द्विनिष्ठ एव। तस्मिन् सम्बन्धे गम्ये यस्मादितरत्र सम्बन्धः प्रवर्त्तते, तस्मात् षष्ठी स्यात्, तत्प्रवृत्तिश्च विवक्षावशात्। इतरतस्तु यथास्व प्रथमादयः। प्रथमा त्वेकयैव षष्ठ्या द्वयोरपि सम्बन्धस्योक्तत्वेन नाममात्रार्थाविशेषात्, यथा कृष्णस्य भक्तः, कृष्णात् प्रवर्त्तमानेन सम्बन्धेन भक्तसम्बन्ध इत्यर्थः। एव भक्तस्य कृष्णः, तथा कृष्णस्य सौन्दर्य्यमित्यादि। भेदेन विवक्षितयोरिति किम्? श्यामो रामः। अन्ये चाहुः

भेद्यभेदकयोः श्लिष्टः सम्बन्धोऽन्योऽन्यमिष्यते।
द्विष्ठो यद्यपि सम्बन्धः षष्ठ्युत्पत्तिस्तु भेदकात्* इति

भेद्यस्य विष्णुभक्त्यान्तरविषयत्वादिति भावः स च सम्बन्धश्चतुर्व्विधः, यतः

स्वस्वामी जन्यजनकोऽवयवावयवी तथा।
स्थान्यादेश इति प्रोक्ताः सम्बन्धाश्चोपचारतः॥
विष्णोर्भक्तो हरेः पुत्रः श्रीकृष्णस्य पदाम्बुजम्।
त्रिविक्रमोऽप्युद्धवस्य चतुर्धेयमुदाहृतिः॥९॥

अथोपपदविष्णुभक्तिं व्याप्य सम्बन्धभेदाः कथ्यन्ते—

---

* "विशिष्टबुद्धिहेतुः स्यादुपश्लेषो य उच्यते। स सम्बन्धः स चानेकविधः स्वस्वामिकादिकः॥
नृपस्य धनमित्यादौ स्वस्वामिक उदाहृतः। हरेर्वदनमित्यत्रावयवावयवी मतः॥
अध्यापकस्य व्याख्यानमित्यत्र वाच्यवाचकः। गङ्गाया जलमित्यादावाधाराधेयसंज्ञकः॥
पितुस्तनय इत्यादौ योनिसम्बन्ध उच्यते। भट्टस्य शिष्य इत्यादौ विद्यासम्बन्ध ईरितः॥
अश्वस्य घास इत्यादौ भक्ष्यभक्षक उच्यते। वस्त्रस्य तन्तुरित्यादौ कार्य्यकारणमुच्यते॥
एवमन्येऽपि सम्बन्धा इष्टा व्याहृतिकोविदैः। संयोगः समवायश्च सम्बन्धो द्विविधः स्मृतः॥
यथा राज्ञो धनं गन्धः पुष्पाणामिति केचन। भेद्यभेदकयोः श्लेषः सम्बन्धः स चतुर्व्विधः॥
स्वस्वामी जन्यजनकोऽवयवावयवी तथा। स्थान्यादेश इति प्रोक्तः सम्बन्धश्चोपचारतः॥
विप्रस्य कम्बलः पुत्रो ममेत्यादीनि केचन। कर्म्मादि-विषयेऽपि स्यात् कर्म्मादावविवक्षिते॥
सम्बन्धस्य विवक्षायां षष्ठीत्याहुर्म्मनीषिणः। उदाहृतं हि माषाणामश्नीयादिति कोविदैः॥"

(कारकोल्लासः—९९-१०४)

१० । क्रियासम्बन्धविशेषि कारकम् ।

क्रिया सत्त्वादिलक्षणो धात्वर्थः, तस्याः जन्यजनकान्तर्भूतक्रियाया कर्त्तृत्वादिसम्बन्धविशेषो यत्र विवक्ष्यते, तत्क्रियाकारकमुच्यते, यथा—वैष्णवो भवति । अत्र सत्तासम्बन्धविशेषी वैष्णवः कारकम् । सम्बन्धसामान्ये तु सम्बन्ध्येवेत्यर्थः, यथा—कृष्णसम्बन्धेन पाकः, कृष्णस्य पाकः, एवं कृष्णस्य पचतीति । कारकमित्यव्युत्पन्नं नाम । क्रियानिमित्तं लोकतः सिद्धमित्यन्ये । तस्य च कारकस्य विशेषताव्यञ्जका आख्याताद्या द्वितीयाद्याश्च प्रत्यया भवन्ति । यत्र क्रियासम्बन्धो मुख्यस्तत्राख्यातादयः, यत्र तु तत्सम्बन्धो गौणः, क्रियैव वा मुख्या, तत्र द्वितीयाद्या इति, यथा—वैष्णवो भवति इति कर्त्तर्य्याख्यातं, न तु तृतीया । मालां करोतीति कर्म्मणि द्वितीया । वैष्णवेन भूयते इति कर्त्तरि तृतीया न त्वाख्यातम् । कारकञ्च कर्त्रादिषड्विधम्, तच्च पुनः प्रत्येकं द्विविधमु—उक्तमनुक्तञ्च ॥१०॥

११ । आख्यातादयो यत्र क्रियन्ते तदुक्तम्

तथाहि 'प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थं सह ब्रूतः' इति न्यायेन प्रत्ययार्थस्यैव प्राधान्यात् कर्त्तृकर्म्मादिषु विहितानामाख्यातादीनां यो यत्र विहितस्तेन तदुक्तं स्यात् । अत उक्तात् नाममात्रार्थे द्योत्ये प्रथमैव, यदि बाधकान्तरं न स्यात् ॥११॥

१२ । उक्तादन्यदनुक्तम् ।

यो यत्र न विहितस्तेन तदनुक्तं स्यात् । तत्र द्वितीयाद्या विधीयन्ते । यथा—वैष्णवो मालां करोतीत्यत्र कर्त्तर्य्याख्यातेन कर्त्ता वैष्णव उक्तः, मालारूपं कर्म्म पुनरनुक्तमेव । बाधकान्तरे तु यथा—वैष्णवं मालां कुर्व्वन्तं पश्य इत्यत्र कर्त्तृविहितेन शतृप्रत्ययेनोक्तो वैष्णवः कर्त्ता पश्येत्यस्य कर्त्तरि विहितस्य[१] कर्म्म तेनानुक्तश्चेति । तदेवं द्वितीयाद्या भागशो[२] विधातुं कारकभेदानाह ॥१२॥

१३ । स्वतन्त्रं तत्प्रयोजकश्च कर्त्तृ ।

यस्यैव व्यापारतया क्रिया विवक्ष्यते, तत् स्वतन्त्रं यच्च तस्यापि प्रेरकतया तत् प्रयोजकम् । तच्च कारकं कर्त्तृसंज्ञं स्यात् । अर्थविशेषणत्वे तु कर्त्तेति पुंलिङ्गत्वम् । 'यः करोति, स कर्त्ता'; 'कारयति यः, स हेतुश्च' इति कालापाः (चतुष्टयवृत्तिः २२०-२२१) कृञर्थस्य धातुष्वनुगतत्वात् । किन्तु तद्द्वयमिदमुदाहरणमेव, न तु लक्षणम् । अथ स्वतन्त्रस्य केवलस्वातन्त्र्येण प्रयोजकमात्राधीनत्वेन च द्विधात्वम् । ततश्च—

कर्त्ता स्वतन्त्र इत्युक्तो हेतुकर्त्ता प्रयोजकः ।
प्रयोजकाधीनकर्त्ता प्रयोज्य इति स त्रिधा ॥*

तथ कर्त्तरि परपदादिविधानात्तेनोक्तं तत्र प्रयोगं दर्शयति । तत्र चोक्तकारकसम्बन्धेन क्रियापदस्य नानारूपत्वमाह—उक्तानुरूपमेव पुरुषवचनादिकं क्रियापदे, यथा—उक्तत्वेन विवक्षिते नाम्नि प्रथमः पुरुषः, युष्मदि मध्यमः, अस्मद्युत्तमः, वचनानि च तद्वदिति । वर्त्तमाने काले तिवादयः । कर्त्तरि परपदादिकम् । वैष्णवो भवति, वैष्णवो वर्त्तमानसत्ताक्रियायाः कर्त्तेत्यर्थः, तदनुकूलव्यापारत्वेन तत्र स्वातन्त्र्यात् । अत्र क्रियायाः कर्त्तृसम्बन्धो मुख्यः, कर्त्तुरेव वाच्यत्वात् एवं वैष्णवौ भवतः, वैष्णवा भवन्ति । एवं भवान् भवतीति । हे वैष्णव ! त्वं भवसि, युवां भवथः, यूयं भवथ, अहं भवामि, आवां भवावः, वयं भवामः युष्मदाद्यप्रयोगेऽपि लभ्यते, भवसीत्यादि । अस्मि इत्यव्ययमहमित्यस्य निपातोऽस्ति, तेन तद्योगेऽप्युत्तमः, यथा—'त्वामस्मि वच्मि विदुषां समवायोऽत्र तिष्ठति' इति । 'घटो भवति' इत्यादावचेतनेऽपि स्वातन्त्र्यमुपचारात् ॥१३॥

---

१ । कर्त्तृविहितस्य (ख ग घ) २ । विभागशो (क)

* प्रवृत्तावप्रवृत्तौ वा कारकाणां य ईश्वरः । अप्रयुक्तः प्रयुक्तो वा स कर्त्ता नाम कारकम् ॥
कर्त्ता च त्रिविधो ज्ञेयः कारकाणां प्रवर्त्तकः । केवलो हेतुकर्त्ता च कर्म्मकर्त्ता तथाऽपरः ॥

१४। नञ्प्रयोगेऽपि कर्त्तृत्वादि।

वैष्णवो न भवतीत्यादौ ॥१४॥

१५। वाच्यलिङ्गानां तुल्याधिकरणविशेषणानां विशेष्यवल्लिङ्गादि।

उत्तमो वैष्णवो भवति, उत्तमौ वैष्णवौ भवतः, वैष्णवस्त्वं भवसि। युष्मदाद्यप्रयोगेऽपि वैष्णवो भवसीत्यादौ। उक्तानां पृथङ्निर्द्देशे प्रत्येकं समुदायस्य वा संख्यामपेक्ष्य वचनानि स्युः, यथा— ब्रह्मरातश्च विष्णुरातश्च भवति भवतो वा। युगपद्वचने पुरुषाणां प्रथम[1]-मध्यमोत्तमसंज्ञानां युगपद्वचने प्राप्ते तेषां मध्ये यो द्वयोर्बहूनां वा परः स एव स्यात्, वचनन्तु समुदायसंख्यापेक्ष्यम्, यथा— कृष्णश्च त्वञ्च भवथः, तौ च अहञ्च भवामः। वैपरीत्यनिर्द्देशेऽपि—अहञ्च त्वञ्च स च भवामः ॥१५

अथ भावे आत्मादप्रथमपुरुषैकवचनम्। तेन अनुक्ते कर्त्तरि यथा—

१६। अनुक्ते कर्त्तरि करणे च तृतीया।

अनुक्त इति कारकान्तरविष्णुभक्तिविधानेऽपि योज्यं, स्पष्टार्थमेतत्, उक्ते तदभावस्य न्यायसिद्धत्वात्। वैष्णवेन भूयते, वैष्णवस्य वर्त्तमानसत्ता क्रियेत्यर्थः। अत्र क्रियैव मुख्या, तस्या एव वाच्यत्वात्; एवं वैष्णवाभ्यां भूयते इत्यादि। कथं द्वौ वैष्णवौ भवतः इत्यत्र द्विशब्देन न द्विवचनमुक्तार्थकं[2] स्यात्? उच्यते— द्विशब्दोऽत्रावधारणार्थमेव प्रयुज्यते, न तु द्वित्ववाचित्वमिति। इति स्वतन्त्रः कर्त्ता।

प्रयोजकस्तु यथा—कृष्णो भावयति, भवन्तं प्रेरयतीत्यर्थः। तथा विध्यादिप्रयोगा अपि ज्ञेयाः। वैष्णवो भवेत्, वैष्णवो भवेताम् इत्यादयः। अजितप्रयोगस्त्वेवम्। भूते—यदि कृष्णावतारो न अभविष्यत्, तदा दैत्या मुक्ता न अभविष्यन्। भविष्यति च—यदि कृष्णभक्तिरभविष्यत्तदाहं कृतार्थोऽभविष्यम् ॥१६॥

१७। क्रिया यत्साधिका तत् कर्म्म।

क्रिया यस्य साधनार्थं प्रवर्त्तते, तत् कारकं कर्म्मोच्यते। साधिकेति क्रियायाः स्वातन्त्र्याभावेऽपि स्वातन्त्र्यारोपात् कर्त्तृत्वप्रयोगः 'साधकतमं करणम्' इतिवत्, तेन—भ्रमाद्विषं भक्षयति इत्यत्र कर्त्तुरनीप्सिततमस्यापि विषस्य कर्म्मत्वं स्यात्। 'यत् क्रियते, तत् कर्म्म' इति कालापाः (चतुष्टयवृत्तिः २१६)। तत्र साधनं तयैव क्रियया प्रकारविशेषेण सम्पादनम्—उत्पाद्यतया, विकार्य्यतया, संस्कार्य्यतया, प्राप्यतया, त्याज्यतया चेति ॥१७॥

१८। कर्म्मणि द्वितीया।

अनुक्त इत्येव। वैष्णवो मालां करोति, वैष्णवो मालाया वर्त्तमानकृतिक्रियायाः कर्त्तेत्यर्थः। अत्र क्रियायाः कर्म्मसम्बन्धो गौणः, कर्त्तुरेव वाच्यत्वात्। एवमन्नं पचति जलं वासयति, कृष्णमन्दिरं गच्छति, स्वगृहं त्यजतीति, कृष्णं स्पृशति, पश्यति, शृणोति इत्यादिष्वपि प्राप्यता। एवं मालां करोषीत्यादि। अहं मालां करोमीत्यादि-भावेऽपि प्रत्यये सकर्म्मस्य धातोः कर्म्मापेक्षा चेत्, कर्म्मसम्बन्धो भवत्येव, यथा—गम्यते मया ग्राममिति भाषावृत्तिर्भागवृत्तिश्च। कर्म्मप्रत्ययेन तस्मिन्नुक्ते तु वैष्णवेन माला क्रियते, वैष्णवस्य माला वर्त्तमानकृतिक्रियायाः कर्म्मेत्यर्थः। अत्र क्रियायाः कर्म्मसम्बन्धो मुख्यः, कर्म्मण एव वाच्यत्वात्। वैष्णवेन माले क्रियेते इत्यादि। युष्मदस्मदोरुक्तयोः —वैष्णवेन त्वं क्रियसे इत्यादि। वैष्णवेनाहं क्रिये इत्यादि। यत्र त्वेकस्यां क्रियायां कर्त्तृत्वमन्यस्यां कर्म्मत्वं, तत्रोभाभ्यां प्रत्ययाभ्यामुक्तत्वे यथा— श्रीकृष्णो भक्तान् पश्यति, भक्तैर्दृश्यते च। कर्म्मतुल्याधिकरणस्यापि कर्म्मत्वं, तदपि क्रिया साधयतीति यथा-उत्तमां मालां करोति, ताञ्चोत्तमां करोतीति सम्बन्धः। एवमन्यत्रापि ॥१८॥

अथ क्रियाविशेषणञ्च द्विविधम्—व्यधिकरणं तुल्याधिकरणञ्च। तत्राद्ये लक्षणात्तृतीया वक्ष्यते (का० प्र० ११४)। अन्तिमे त्वाह—

१। पुरुषाणां परः, पुरुषाणां प्रथम- (ख), २। द्विवचनोक्तार्थकं (ग घ)

१६। क्रियाविशेषणं कर्म्म, तच्च ब्रह्मैकवचनं सदानुक्तञ्च।

शीघ्रं मालां करोति, शीघ्रं माला क्रियते, शीघ्रं यथा स्यात् तादृशमित्यर्थः। कर्त्रादिवाचित्वात् प्रत्ययस्य सत्तादिक्रियावाचिभूप्रभृतिधातुरूपमन्तर्भूतं कर्म्म, तस्य विशेषणं शीघ्रादिशब्दः क्वचित् क्रियते, स च तस्यालिङ्गस्य विशेषणमिति ब्रह्म, सामान्यमित्येकवचनम्, मुख्यकारक एव प्रत्ययविधानादनुक्तञ्चेति भावः। अत्र केवलमेकवचनमिति तस्यां भ्रमः, सामान्यतः प्रथमायां 'याति युष्मानथो पश्यति शीघ्रं वः' इत्यादौ सपूर्व्वपदादित्यादिना वसाद्यादेशविकल्पे सति दोषश्च ॥१६॥

२०। भावकृदन्तानां[1] क्रियायान्तु कृदन्तवदेव स्यात् तस्यैव प्राधान्यात्।

यथा—शीघ्रः पाकः, शीघ्रा पक्तिः, शीघ्रं पचनम् ॥२०॥

किञ्च—

क्रियमाणन्तु यत् कर्म्म स्वयं सिद्धं प्रतीयते।
अत्यन्तसुकरत्वेन कर्म्मकर्त्तेति तद्विदुः॥ ❊

२१। कर्म्मकर्त्तरि कर्म्मवदात्मपदादि। ❊

तस्मिन्नात्मपद-यक्-इण्-इण्वदिट् स्यात्। हन्यते संसारः स्वयमेव वैष्णवानाम्। एवमघानि घानिष्यते कर्त्तरि प्रयोगोऽयं दर्शितः। भावे तु—हन्यते संसारेण इत्येव ॥२१॥

२२। तपःकर्म्मकस्य तपेः कर्त्तरि च तद्वत्

तप्यते तपो नारायणः, अर्ज्जयतीत्यर्थः ॥२२॥

२३। अत्रेणो निषेधः।

अतप्त तपो नरः। नान्यकर्म्मकस्य—तपति श्रीकृष्णप्रतापो दैत्यान् ॥२३॥

२४। कुषिरञ्जिभ्यां श्यः कर्म्मकर्त्तरि, कृष्णधातुके परपदन्तु वा।

कुष्यति कुष्यते व नन्दकः, स्वयमेव रज्यति रज्यते वा वंशी ॥२४॥

२५। सर्व्वेश्वरादिण्वा कर्म्मकर्त्तरि दुहश्च

अकारि, अकृत, अदोहि, अदुग्ध ॥२५॥

२६। न रुध इण्।

अरुद्ध ॥२६॥

२७। दुहो न यक्।

दुग्धे ॥२७॥

२८। स्नु-नमिभ्यामात्मपद्यकर्म्मकेभ्यो णेः श्नन्थि-ग्रन्थि-ब्रू-किरति-गिरति-श्रि-भूषार्थेभ्यः सनन्ताच्च न यगिणौ।

प्रस्नुते, प्रास्नोष्ट गौः, नमते, अनंस्त दण्डः, विकुरुते, व्यकृत पयः स्वयमेव—अन्तर्भूतण्यर्था इमे एवमन्यत्रापि कारयते अकारयिष्ट इत्यादि।

तच्च पूर्व्वोक्तं कर्म्म पुनस्त्रिविधम्—कर्त्तुरीप्सिततममनीप्सितमीप्सितञ्च, यथाह भगवान् पाणिनिः (१।४।४६-५१) 'कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म्म' 'तथायुक्तञ्चानीप्सितम्', 'अकथितञ्च' इति। ❊ प्रथमं दर्शितम्—वैष्णवो मालां करोतीत्यादिना, मध्यमन्तु द्वेष्यमनपेक्ष्यञ्च—प्रमादेन पापं करोति विष्णुभक्तः, मथुरां गच्छन् देशान् पश्यति।

१। भावकृदन्तायां (क ख ग घ)।

❊ क्रियमाणन्तु यत् कर्म्म स्वयमेव प्रसिध्यति। सुकरैः स्वैर्गुणैः कर्त्तुः कर्म्म कर्त्तेति तद्विदुः। (दौर्गश्लोकः)

❊ कर्म्मस्थः पचतेर्भावः कर्म्मस्था च भिदेः क्रिया। अस्त्यादिभावः कर्त्तृस्थः कर्त्तृस्था च गमेः क्रिया।
(उमापतेः स्वकीयपरकीयश्लोकः)

❊ अथ यत् कथनीयतोचितं, कथितं तत् प्रथितं च किञ्चन। यदथाकथितं द्विकर्म्मकं, स्मृतिरीत्या तदवेहि पाणिनेः।
(श्रीगोपालचम्पूः, पूः, २४।२७)

तथेप्सितं यदीप्सिततमोपयोगि ।
अकथितत्वमपादानादित्वेन पूर्व्वोक्तकर्म्मद्वयेन चाविवक्षितकारकत्वम् । तत्रैकस्यामेव क्रियायामीप्सिततममीप्सितञ्चेति कर्म्मद्वयं स्यात् । तथाहि धातवस्तावत्त्रिविधाः—अकर्म्मकाः, सकर्म्मकाः, द्विकर्म्मकाश्च ।
अत्रान्तर्भूतण्यर्थशून्यत्वाद्वस्त्वन्तरं साधयितुमसमर्थाः अकर्म्मकाः, यथा—सत्तामात्राद्यर्थाः भवत्यादयः । अन्तर्भूतण्यर्थत्वात्तत् साधयितुं समर्थाः सकर्म्मकाः अतएव 'क्रियाव्याप्यं कर्म्म' इति सौपद्याः (२।१।३) यथा—उत्पादनाद्यर्थाः करोत्यादयः । तत्रैव द्विवृत्तयो द्विकर्म्मकाः, यथा—दुहादयो नीवहादयश्च एते उभयमेव कर्म्म स्ववृत्तिविशेषाभ्यां साधयन्ति, आकर्षणविशेषपूर्व्वकनिष्कासनादिरूपार्थत्वात् । तत्र दुग्धादिकमीप्सिततमं मुख्यं, तदुपयोगि गवादिकमीप्सिततमं गौणम्, तेन दुहादयो नीवहादयश्च धातवो द्विकर्म्मकाः, तद्वृन्दं यथा—

> दुहि याचि-रुधि-प्रच्छि-भिक्षि-चिञो
> ब्रुवि-शासि-जि-दण्डि-वृ-मन्थि वदः ।
> इति तूभयकर्म्म दुहादि भवे-
> दथ नी-वहि-हृञ्-कृषि मुख्यमपि ॥ *

एषां वृत्ती यथा—दुहेराकर्षणविशेषो निष्कासनम्, याचे स्वस्मै दाने प्रेरणं वाञ्छा च, रुधेर्वेष्टनमन्तःस्थापनम्, पृच्छेः स्वोपदेशे प्रेरणं जिज्ञासा, भिक्षेर्याचिवत्, चिञोऽवशेषणमादानम् । ब्रूञः श्रावणं प्रतिपादनम्, शासेश्च, जेरतिक्रमो वशीकरणम्, दण्डेर्निग्रहो ग्रहणम्, वृञो याचिवत्, मन्थेः सञ्चालनमुत्थापनम्, वदः ब्रूञ्वत्, नीञः संयोजनं प्रेरणम्, वहः संयोजनं धारणम्, हृञः संयोजनमाकर्षणम्, कृषश्चेति, एतत् क्रमेणोदाहरणानि, यथा—कृष्णो गां दुग्धं दोग्धि, मातरं नवनीतं याचते, गोष्ठं गा अवरुणद्धि, पितरमिन्द्रमखं पृच्छति, यज्ञपत्नीरन्नं भिक्षते, वृन्दावनं पुष्पाण्यवचिनोति, पितरं गोवर्द्धनमखं ब्रूते लोकांस्तद्भक्तिं शास्ति, दैत्यान् युद्धं जयति, दैत्यान् प्राणान् दण्डयति, गोवर्द्धनं वरं वृणुते, दधि नवनीतं मन्थाति, सखीर्नर्म्म वदति, तत्र गां दोग्धि, दुग्धं दोग्धि इत्यादिरन्वयः । दुग्धं निष्कासयन्नङ्गुलिद्वयेन स्तनेषु गामाकर्षति । एवं नवनीतं वाञ्छन् मातरं स्वस्मै तद्दाने प्रेरयति । गाः अन्तः स्थापयन् गोष्ठं वेष्टयति । इन्द्रमखं जिज्ञासमानः पितरं स्वोपदेशे प्रेरयति । अन्नमिच्छन् यज्ञपत्नीः स्वस्मै तद्दाने प्रेरयति । पुष्पाण्याददानो वृन्दावनमवशेषयति । गोवर्द्धनमखं प्रतिपादयन् पितरं श्रावयति । तद्भक्तिं प्रतिपादयन् लोकान् श्रावयति । युद्धं वशीकुर्व्वन् दैत्यानतिक्रामयति । प्राणान् गृह्णन् दैत्यान् पीडयति वरं वाञ्छन् गोवर्द्धनं स्वस्मै तद्दाने प्रेरयति । नवनीतमुत्थापयन् दधि सञ्चालयति । नर्म्म प्रतिपादयन् सखीः श्रावयति । १ इत्यादिरर्थो ज्ञेयः । भिक्षिरर्थपरस्तेन प्रार्थयति इत्यपि, याचिस्त्वविनयार्थेऽपि, तेन, दुष्टं शतं याचते राजा अत्र ब्रूवि शासि वदीनाञ्च प्रतिपाद्यमानं मखादिकमेवेप्सिततमं, तत्प्रतिपादनेन सम्पाद्यमानं पित्रादिकं त्वीप्सिततममिति ज्ञेयम् । तदर्थानामपि दृश्यते—"जगाद मारीचमुच्चैर्व्वचनं महार्थम्" इति भट्टिः (२।३२) 'गिरमत्युदारां, द्वैपायनेनाभिदधे नरेन्द्रः' इति भारविः (३।१०) किन्त्व कर्म्मप्रत्यये तु दुहादेर्गौणं कर्म्मोक्तं स्यान्नीवहादेस्तु मुख्यम् । यदुक्तम्—

> यत्राख्यातादिरुक्तं तत् स णेस्तत् कर्त्तृकर्म्मणोः ।
> स चेत् कर्म्मणि दुह्यादेर्गौणं न्यादेस्तु मुख्यके ॥

अस्यार्थः—यत्र कारके आख्यातादिः प्रत्ययः क्रियते, तत् कारकमुक्तं स्यात्, स चाख्यातादिर्यदि णेः स्यात्, तदा तस्य णेरेव कर्त्तृकर्म्मणोः स्यात्,

---

* दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिक्षचिञो, ब्रूविशासिजिदण्डिवृमन्थिवदः । इति चोभयकर्म्म दुहादि विदुः, कृषिनीवहिहृप्रभृतीति परम् ॥ (सुपद्मव्याकरणम्)

* दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम् । कर्म्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥ (पाणिनि-सम्प्रदायस्य श्लोकः)

१ । एवं नवनीतं···श्रावयति इति ग-घ पुस्तकयोर्नास्ति ।

न तु पूर्व्वकर्त्तृकर्म्मणोः। स चाख्यातादिर्यदि दुह्यादेः स्यात्, तदा गौण एव कर्म्मणि स्यात्, न तु मुख्ये। नीवह्यादेर्यदि स्यात्, तदा मुख्य एव स्यात्, न तु गौण इति, यथा—कृष्णेन गौर्दुग्धं दुह्यते इति माता नवनीतं याच्यते इत्यादि। अथ नीवहादिः—कृष्णो गा व्रजं नयति। श्रीदामानं भाण्डीरं वहति वस्त्रं कदम्बाग्रं हरति। गोपीर्वनं कर्षति। अन्वयार्थौ पूर्व्ववत्।

अथ नीवहीत्यादौ मुख्यग्रहणात्। करोत्यादयोऽपि क्वचित्। कृष्णः पुष्पाणि मालां करोति, मालामुत्पादयन् पुष्पाणि ग्रथ्नाति। गोपीर्मनो मुष्णाति, मनो हरन् गोपीर्वञ्चयतीत्यर्थः। गोपीर्हारान् गृह्णाति, हारानाच्छिन्दन् गोपीर्धर्षयतीत्यर्थः। गोप्यस्तण्डुलानोदनं पचन्ति, तानोदनं साधयन्त्यो विक्लेदयन्तीत्यर्थः। कर्म्मप्रत्यये—कृष्णेन गावो व्रजं नीयन्ते। श्रीदामा भाण्डीरमुह्यते इत्यादि। यदा त्वेकमेव कर्म्म प्रयोज्यते, तदा गौणं मुख्यं वा तदेवोक्तं स्यात्, यथा—दुग्धानि दुह्यते इत्यादि।

अथ प्रेरणाद्यर्थण्यन्तप्रयोगे कर्त्तृकर्म्मविवेकः। तत्र ण्यन्तात् कर्त्तृप्रत्यये ण्यन्तकर्त्तैवोक्तः स्यात्, पूर्व्वकर्त्ता त्वनुक्तः, यथा—विष्णुमित्रो वैष्णवेनान्नं पाचयति। पुनर्णौ तु तत्कर्त्तैवोक्तः, पूर्व्वकर्त्ता त्वनुक्तः यथा—वैष्णवाचार्य्यो विष्णुमित्रेण वैष्णवेनान्नं पाचयति। ण्यन्तकर्म्माभावे सति पूर्व्वकर्म्मण्येव प्रत्यये तदेवोक्तं स्यात्, कर्त्तृमात्रं त्वनुक्तमेव, यथा—विष्णुमित्रेण वैष्णवेनान्नं पाच्यते इत्यादि ॥२८॥

अकर्म्मकादिधातुषु पूर्व्वकर्त्तुः कर्म्मत्वमाह—

२९। अकर्म्मक-गति-ज्ञान-शब्द-भोजनवाचिनाम्।
अणिकर्त्ता कर्म्म णौ स्यात् कृञ्-हृञादेर्विभाषया॥

३०। नी खाद्यदि-ह्वा-शब्दाय क्रन्दो भक्षेरहिंसने।
अयन्तृकवहिश्चैषां णौ कर्म्मत्वं निषिध्यते॥

तत्र कर्त्तृप्रत्यये अण्यन्ते—वैष्णवो भवति, ण्यन्ते वैष्णवाचार्य्यो वैष्णवं भावयति। अण्यन्ते—गावो वनं गच्छन्ति, ण्यन्ते तु—कृष्णो गा वनं गमयति। एवं गोपान् गां ज्ञापयति, दर्शयति, उपलम्भयति वा गोपान् गीतं गापयति। अत्र जल्पविलापावप्युदाहार्य्यौ एवं श्रवणस्यापि शब्दात्मकत्वात्तदन्तर्भावः। श्रावयति गोपान् गीतं, गास्तृणं भोजयति, गा जलं पाययतीत्यादि। कथम् 'अयाचितारं न हि देवदेवमद्रिः सुतां ग्राहयितुं शशाक' (कुमारसम्भवम् १।५२) इति? 'अजिग्रहत्तं जनको धनुस्तत्' (भट्टिः १।४२) इति च? अत्रोपादानार्थस्य ग्रहेः प्राप्त्यात्मकत्वेन गत्यर्थत्वात्। एवं त्यागोऽपि गत्यात्मक इति—'त्याजितैः फलमुत्खातैर्भग्नैश्च बहुधा द्रुमैः" इति सिध्यति। पुनर्णौ णिकर्त्तुर्न कर्म्मत्वम्—पिता कृष्णेन गा वनं गमयति इत्यादि कृञादेस्तु—कारयति स्वभक्तिं भक्तं कृष्णः, भक्तेन वा। विकारयति वैष्णवं कृष्णप्रेमा, वैष्णवेन वेत्यपि केचित्। हारयति मुरलीं गोपी सखीं, सख्या वा ॥२९-३०॥

३१। अभिवादि-दृशोरात्मपदे।

अभिवादयते गर्गं कृष्णं श्रीनन्दः, कृष्णेन वा। एवं दर्शयते स्वकार्य्यं पिता कृष्णं, कृष्णेन वा। पचत्यादीनामपि विकल्पं केचिदाहुः। श्रुदृशोर्न कर्म्मत्वमिति कश्चित्। कर्म्मप्रत्यये कर्त्तृवत् णेः कर्म्मैवोक्तं स्यात्—वैष्णवाचार्य्येण वैष्णवो भाव्यते कृष्णेन गावो वनं गम्यन्ते। पुनर्णौ पित्रा कृष्णेन गावो वनं गम्यन्ते इत्यादि। नीखाद्यदीनान्तु कर्त्तृप्रत्यये—कृष्णो गोपैर्गा व्रजं नाययति। एवं खाद्यदी, तथा—आह्वाययति गोपैर्गाः कृष्णः। शब्दं करोति—शब्दायते, अयमकर्म्मकः। शब्दार्थश्च तस्मात् णौ—शब्दाययति वंश्या कृष्णः। अयतेश्च निषेध इत्येके। ह्वा-शब्दाय-क्रन्दानां न निषेध इति कश्चित्। भक्षेः—भक्षयति नवनीतं कृष्णेन माता, हिंसायान्तु—भक्षयति गरुडं दैत्यान् विष्णुः, भक्षयति यादवानां भोज्यं दैत्यान् कंस इत्यपि। वहेः—वाहयति वन्यभोजनं गोपैः कृष्णः, सयन्तृककर्त्तृकत्वे तु—वाहयति शकटं वृषभान् गोपः कर्म्मप्रत्यये—कृष्णेन गोपैर्गावो व्रजं नाय्यन्ते इत्यादि—अत्र मुख्यत्वादगवामेवोक्तत्वम्। उक्ता ण्यन्ताः।

किञ्च—

कालाध्वभावदेशानामन्तर्भूतक्रियान्तरैः।
सर्व्वैरकर्म्मकैर्योगे कर्म्मत्वमुपजायते॥
(वाक्यपदीयम्)

अध्वशब्देनात्र तत्परिमाणमुच्यते। मासमास्ते, एकादशीमुपवसन्ती, व्याप्तिपूर्व्वकमिति ज्ञेयम्। एवं क्रोशत्रयं गोवर्द्धनोऽस्ति' गोदोहं तिष्ठति हरिः, माथुरान् विराजते कृष्णः। कर्म्मप्रत्यये—मास आस्यते, एकादश्युपोष्यते इत्यादि। अत्र णौ कृते पूर्व्वकर्त्तुः कर्म्मत्वमेव मन्यन्ते। मासमासयति वैष्णवं वैष्णवः। कर्म्मप्रत्यये तु यथेष्टमुक्तत्वं कर्म्मण एकस्य—मासमास्यते वैष्णवः, मास आस्यते वा वैष्णवं वैष्णवेन। गतिज्ञानादीनामपि विकल्पमिति केचित्, ततः कृष्णेन गा वनं गम्यते इत्यपि। किञ्च, प्रेरणाद्यसम्भवेऽपि क्वचित्तदुपचर्य्य णिः क्रियते। यथा—भिक्षा मथुरायां वासयति, दीपो गृहामध्यापयति। किञ्च, तदाचष्टे इत्याद्यर्थे समस्तादपि कृदन्ताण्णौ कर्त्तव्ये प्रेरणादिणेर्यद्वाक्यं, तदेव प्रयुज्यते, तत्र पुरावृत्ते—सीतां हर्त्तुं प्रेरयतीत्यत्र यथा सीतां हारयतीति वाक्यं प्रयुज्यते, तथा सीताहरणमाचष्टे इत्यत्र तु सीतां हारयतीति प्रयोक्तव्यम्। एवं रावणवधमाचष्टे रावणं घातयति, रामागमनमाचष्टे, राममागमयति। कालात्यन्तसंयोगे यथा—आरात्रिविवासमाचष्टे, रात्रिं विवासयति, आङित्यभिव्याप्तौ, तस्याप्रयोगश्च विवासो वासातिक्रमे वर्त्तते, अन्यस्त्वाह—रात्रिमतिक्रमयतीत्यर्थः, इति। आदिग्रहणादन्यत्रापि, तत्राध्वमर्य्यादायामाश्चर्य्यत्वे यथा—सन्ध्यायां पुष्करात् प्रस्थितो मथुरायां सूर्य्योद्गमनं सम्भावयति सूर्य्यमुद्गमयति। ज्योतिर्ज्ञानेऽपि—विधुना रोहिणीयोगं जानाति, रोहिण्या योजयति विधुम्। धर्म्मे सूत्रं करोति, धर्म्मं सूत्रयति, इति तु सूत्रिक्रियासाध्यत्वाद्धर्म्मस्य कर्म्मत्वमिति। केवलकृदन्तादपि—कर्त्तारमाचष्टे, कारयति, पाकं करोति, पाचयति, वादितवन्तं प्रयोजितवान्, अवीवदद्वीणां परिवादकेन इत्यादि॥३१॥

३२। संज्ञः कर्म्मणि तृतीया वा।

कृष्णेन संजानीते, कृष्णं संजानीते, अवेक्षते इत्यर्थः। आत्मपदं वक्ष्यते (का० प्र० २४०) स्मरणार्थे तु षष्ठी वक्ष्यते (का० प्र० ६२)—कृष्णस्य संजानाति॥३२॥

३३। तृलादिकृति तु षष्ठ्येव वाच्या।

कृष्णस्य संज्ञाता॥३३॥

३४। परिमाणाद्वीप्सायां कर्म्मणि वेति केचित्।

शतं शतं वत्सान् पाययति हरिः, शतेन शतेन वत्सानिति वा॥३४॥

३५। मन्यतेरनादरार्थात् कर्म्मोपमानाच्चतुर्थी वा, न तु काकादेः।

नावैष्णवं त्वा तृणाय मन्ये, तृणं वा, ततोऽपि निकृष्टत्वादिति। मनोतेर्न १ स्यात्—न त्वा तृणं मन्वे२। 'उपमानान्निकृष्टत्वे एव स्यादिति नञ् प्रयुज्यते'—एतच्च भाष्यवार्त्तिकचान्द्रमतम्, तेन तत्साम्ये तु "हरिमप्यमंस्त तृणाय" (माघकाव्यम् १५।६१) इति "तृणाय मन्ये जगतां प्रभुत्वम्" (रघुवंशम्) इत्यादयो न साधव इति वर्द्धमानमिश्राः, प्रत्युदाहरन्ति च—'सुवर्णं तृणं मन्ये' इति। 'तृणाय मत्वा रघुनन्दनोऽपि, वाणेन रक्षः प्रधनान्निरास्थत्'३ इति भट्टिः (२।३६)। मन्यकर्म्मण्यनादरे उपमाने विभाषाऽप्राणिषु इत्येवापिशलसूत्रञ्च। जयादित्यादयस्तूपमानादिति च नाद्रियन्ते, प्रत्युदाहरन्ति च—

"अश्मानं दृषदं मन्ये मन्ये काष्ठमुदूखलम्।
अन्धायास्तं सुतं मन्ये यस्य माता न पश्यति॥"
(काशिका २।३।१७)

—इति स्वरूपाख्यानं खल्वेतत्। काकादिनिषेधः किम्? न त्वा काकं मन्ये, न त्वान्नं मन्ये, यावद्भुक्तं श्राद्धे। न त्वा नावं मन्ये यावत्तीर्णं नाव्यमिति। मिश्रास्तु भाष्यादिवदेव

१। मनुते (क) २। मनुवे (ख) ३। 'पूतनां निरास' इति पाठान्तरम्।

कर्म्मोपमानाच्चतुर्थीं विदधति, ततोऽर्थान्तरं कार्य्यम् यथा—तृणायेति तृणादतिनिकृष्टमित्यर्थः। दृषदमिति यथा दृषदन्तरं तथैवेत्यर्थः४। तथा न काकं मन्ये, ततोऽप्यतिकदर्य्यत्वात्। नान्नं, ततोऽपि निगरीतुं सुशक्यत्वात्। न नावं, ततोऽपि बहुपुरुषसङ्गिनीत्वात् न शुकं शिक्षितकथनेऽप्यशक्तेः। न शृगालं मन्ये, ततोऽपि भीतत्वादिति। काकान्ननौशुकशृगाला एते तु 'प्राणि' संज्ञाः प्राचीनानाम् ॥३५॥

३६। अध्ववर्ज्जिते गत्यर्थकर्म्मणि चतुर्थी वा चेष्टायाम्।

व्रजं व्रजाय वा व्रजति कृष्णः। अत्र कृति षष्ठी च न स्यादित्येके—व्रजं गन्ता, व्रजाय गन्ता। षष्ठी चेति चन्द्रगोपी। षष्ठ्येवेति भागवृत्तिः—व्रजस्य गन्ता। अध्वशब्दोऽत्रार्थपरः, स चाध्वान्तरापेक्षारहितः तद्वर्जिते इति किम्? अध्वानं गच्छति, पन्थानं वा, आक्रम्य यातीत्यर्थः, इहैव प्रतिषेधः। इह तु स्यात्—उत्पथेन पथे गच्छति। चेष्टायां किम्? मनसा कृष्णं गच्छति। अर्थग्रहणं किम्? प्रेयसीं गच्छति हरिरुपभुङ्क्त इत्यर्थः। अथ कृत्प्रयोगाः। ते च तत्र स्युर्यत्र क्रियान्तराकाङ्क्षाः क्रियाः। आख्यातप्रयोगास्तु निराकाङ्क्षाः, अतः कर्त्तृत्वादिसाधनत्वे तुल्येऽप्युक्तम्—
'क्रियाप्रधानमाख्यातं, साधनप्रधानं कृत्' इति ॥३६

३७। कर्त्तृकर्म्मणोः षष्ठी कृद्योगे।

अत्र कृत्सूत्राणि कानिचिदुद्देश्यानि। भावे क्तिः—कृष्णस्य कृतिः, अत्रास्तीत्यादिक्रियान्तरं गम्यम्। कर्त्तरि तृल् लीलायाः कर्त्ता कृष्णः। व्यभिचरति च—"घ्रायेगामोदमुत्तमम्" इति भट्टिः (६।८०) आमोदं दद्द्भिरित्यर्थः। "तदर्हम्" इति पाणिनिसूत्रे (५।१। ११७) च, तदर्हतीत्यर्थः। द्विकर्म्मकत्वे—दोग्धा दुग्धस्य गवाम्। प्रधान एवेति केचित्। दुहादेस्तु गौण इति युक्तम्। कृद्योगे इति किम्? तद्धितयोगे तु—कृतपूर्व्वी सृष्टिं कृष्णः, कृतं पूर्व्वमनेनेत्यर्थे तद्धित-इनिः। अत्र कृतमिति भावे क्तः, सृष्टेः कर्म्मत्वं, कृतिक्रियासाध्यत्वात्, कर्त्तुरीप्सिततमत्वादित्यन्ये। कर्म्मणोऽनुक्तत्वञ्च, कर्त्तरि तद्धितस्य विहितत्वात्, कृतश्च भावे विहितत्वात्। प्रत्ययार्थगुणीभूतायाः क्रियायाः सम्बन्धस्य तु सर्व्वत्रार्थिकत्वादेव। तदेवं सति कृत्प्रत्ययः क्तः गुणीभाव्यः, कर्त्तरि विहितस्तद्धितेनिप्रत्यय एव मुख्यस्तस्मात्लीलायाः कर्त्ता कृष्णः इनिवदस्य कर्म्मणो न योग इति विवेचनीयम् ॥३७॥

३८। क्रियाविशेषणस्य न षष्ठी।

कर्त्तरि णकः! साधु पाचकः ॥३८॥

३९। कर्त्तृकर्म्मणोः प्राप्तौ कर्त्तरि षष्ठी वा

भावे घण्। गोविन्देन गवां दोहः, गोविन्दस्य वा ॥३९॥

४०। लक्ष्मी-णकङापोः प्रयोगे तु कर्त्तरि षष्ठ्येव।

लक्ष्म्यां भावे णकङापौ। रुद्रस्य जगतो भेदिका विभित्सा वा ॥४०॥

४१। अच्युताभ-विष्णुनिष्ठाधोक्षजाभ-खलर्थाव्ययोरामान्ततृणां योगे न षष्ठी।

वर्त्तमानादौ शतृशानावच्युताभसंज्ञौ। तत्र शतृ परपदं शान आत्मपदं, यथा—कृष्णः क्रीडां कुर्व्वन् हसति, एवं कुर्व्वाणः ॥४१॥

४२। द्विषः शतुर्व्वा।

कंसस्य द्विषन् कंसं वा। आख्यातस्य मुख्यत्वात्तेनानुक्ते कर्त्तरि तृतीयैव।
'गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्य्यसम्प्रत्ययः' इति न्यायेन एतदेवोक्तं, यदि बाधकान्तरं न स्यादिति। कृष्णेन क्रीडां कुर्व्वता हस्यते। एवं कृतानुक्तेऽप्याख्यातेनोक्ते कर्म्मणि प्रथमा, यथा—ताम्बूलं भोजयता कृष्णेन गोपी वाच्यते। तथा खादि कर्म्मत्वनिषेधेऽपि कर्म्मत्वमेव—ताम्बूलं खादयतेत्यादि। कथं पश्य दृश्यते कृष्णः? पश्येत्यस्य वाक्यार्थेनैवान्वय इति ॥४२॥

४। अश्मानमिति तत्तुल्यमित्यर्थः (क)।

४३ । अतो मुगाने ।

कृष्णेन क्रीडा क्रियमाणा विराजते । कृष्णेन क्रियमाणां क्रीडां पश्येति पूर्व्ववद्द्वितीयैव ॥४३॥

४४ । अतीतादौ क्तक्तवतु विष्णुनिष्ठासंज्ञौ, क्तः प्रायो भावकर्म्मणोः, क्तवतुः कर्त्तर्य्येव ।

कर्म्मणि—कृष्णेन क्रीडा कृता । कर्त्तरि—कृष्णः क्रीडां कृतवान् । विष्णुनिष्ठाः विष्णुकृत्यादयश्चाख्यातवन्मुख्याः, कृदन्तरेष्वाकाङ्क्षापूरकत्वात् । दृश्यमानेन कृष्णेन गोवर्द्धनो धृतः, पश्यन्तं कृष्णं दृष्टवान् ॥४४॥

४५ । परोक्षातीते क्वसु-कि–काना अधोक्षजाभसंज्ञाः, अत्र क्वसु-कि परपदे, कान आत्मपदम् ।

यथा—कृष्णः क्रीडां चकृवान्, चक्रिः, चक्राणः, कृष्णेन क्रीडा चक्राणा ॥४५॥

४५ । अकृच्छ्र-कृच्छ्रार्थे खल्, तदर्थाश्चान्ये खलर्थाः, ते च भावकर्म्मणोः ।

कृष्णेन सा क्रीडा सुकरा, अकृच्छ्रेण क्रियते इत्यर्थः । अन्येन दुष्करा, कृच्छ्रेण क्रियते इत्यर्थः । कृष्णेनेषद्दानममृतम्, अकृच्छ्रेण दीयते इत्यर्थः ॥४६

४७ । क्त्वा मान्ताश्च कृदव्ययम् ।

४८ । एककर्त्तृकयोः क्रिययोः पूर्व्वकालस्थधातोः क्त्वा ।

४९ । क्रियार्थत्वे तुमुः ।

कृष्णः क्रीडां कृत्वा व्रजमाजगाम । कृष्णः क्रीडां कर्त्तुं वनं जगाम । अनयोः कर्म्मणः प्रत्ययान्तरेणोक्तत्वञ्च—कृष्णेन क्रीडा कृत्वा समाप्यते, कृष्णेन क्रीडा कर्त्तुमारभ्यते ॥४७-४९॥

५० । क्वचित् कृत्तुल्यार्थेनाव्ययेन च ।

यथा—"विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्" (कुमारसम्भवम् २।५५) अयोग्यमित्यर्थः ॥५०॥

५१ । उरामान्ताः कर्त्तरि शीलार्थे प्रायः ।

कृष्णः क्रीडां कारुः, करिष्णुरित्यादि ॥५१॥

५२ । शीलार्थे तृल्[1] कर्त्तरि ।

कृष्णः क्रीडा कर्त्ता । अच्युताभादियोगे वारकषष्ठ्या एव निषेधः । सम्बन्धविवक्षायान्तु षष्ठ्येव— क्रीडायाः कुर्व्वन्नित्यादि । किमेषामस्ति दुष्करमिति ॥५२॥

५३ । उकस्यापि योगे कर्म्मणि न षष्ठी कर्मीं विना ।

५४ । उकण् कर्त्तरि ।

दैत्यान् घातुको हरिः । कर्मेस्तु—गोपीनां कामुकः ॥५३-५४॥

५५ । आधमर्ण्य-तुमु-भविष्यदर्थणक[2]–णिन्योर्योगे न षष्ठी ।

आधमर्ण्ये—शतं दायकः, शतं दायी, शतस्य ऋणस्य प्रतिदातेत्यर्थः । तुम्वर्थे – हरिं सेवको व्रजति भविष्यदर्थे—व्रजं गामी, व्रजं गमी । व्यभिचरति च—पुत्रपौत्राणां दर्शको विष्णुमित्रो वर्षशतस्य पूरको जीवति ॥५५॥

५६ । वर्त्तमाने भावे च क्तस्य योगे कर्त्तरि षष्ठी वा ।

वैष्णवानां ज्ञातोऽयं वैष्णवैर्व्वा । तृतीया तु न साधुरिति भागवृत्तिः ॥५६॥

५७ । शीलितादौ षष्ठी नेष्यते ।

कृष्णेन शीलितः, रक्षितः, क्षान्तः । भावे वैष्णवानां ज्ञातं, वैष्णवैर्व्वा ॥५७॥

५८ । अधिकरणवाचिक्तस्य योगे कर्त्तरि कर्म्मणि च षष्ठी ।

अत्राधिकरणमेवोक्तम् । कृष्णस्य वृन्दावनमासितम् भुक्तं फलानाम्, आस्यते भुज्यते यत्रेति ॥५८॥

५९ । विष्णुकृत्यानां कर्त्तरि षष्ठी वा ।

---

१ । तृन् (क) २ । आधमर्ण्ये तुमु-भविष्यदर्थे णक (क)

६० । विध्याद्यर्थे तव्यानीय-यत्-क्यप्-ण्यत्-केलिमा विष्णुकृत्य-संज्ञाः[३], ते च प्रायो भावकर्म्मणोः ।

मया सेवितव्यो हरिः, मम वा । एवं सेवनीयो हरिः ॥५९-६०॥

६१ । उभयप्राप्तौ विष्णुकृत्ये षष्ठी न ।

कृष्णेन व्रजं गावो नेतव्याः ॥६१॥

इति कृत्प्रयोगाः ।

६२ । स्मृत्यर्थदयेशां कर्म्म वा ।

पक्षे सम्बन्धविशेषे षष्ठ्येव, कृष्णं स्मरति, कृष्णस्य स्मरति । भक्तिं दयते कृष्णः, भक्तेर्व्वा, ददातीत्यर्थः । जगदीष्टे, जगतो वा, यथेष्टं विनियुङ्क्त इत्यर्थः । कर्म्मपक्षे एव कर्म्मप्रत्ययः—कृष्णः स्मर्य्यते, इत्यादि । अतएवोक्तं विस्तरेण—मातुः स्मर्य्यते इति सम्बन्धे षष्ठ्या भाव्यमेवेति । एवमुत्तरेष्वपि ॥६२॥

६३ । कृञः कर्म्म वा प्रतियत्ने ।

गङ्गोदकमुपस्कुरुते, तस्य वा ॥६३॥

६४ । भावकर्त्तृकाणां रुजार्थानां कर्म्म वा ज्वरि-सन्तापिवर्ज्जम् ।

अवैष्णवं रुजतु रोगः, तस्य वा । अभावकर्त्तृकाणान्तु न—यमुना कूलं रुजति, श्लेष्मा हरिपराङ्मुखं रुजतु । रुजार्थानां किम् ? 'एति जीवन्तमानन्दः' इति वृद्धाः । न चेह—अवैष्णवं ज्वरयतु ज्वरः, सन्तापयतु सन्तापः । अत्र भावपदं यद्धातुयोगे षष्ठी तदर्थपरम्, तेन पाको रुजति भिक्षुम् इत्यादौ षष्ठी न भवेत्, अनभिधानात् ॥६४॥

६५ । नाथतेः कर्म्म वा कामनायाम् ।

विष्णुभक्तिं नाथते, तस्या वा । आत्मपदं चात्र वक्ष्यते (का० प्र० २१६) । याच्ञायान्तु—तां नाथति ॥६५॥

६६ । पिष-निप्रहनोन्नाट्य् ज्जास्युनक्राथ्यादीनां कर्म्म वा हिंसायाम् ।

नट-जसु-क्रथश्चुरादौ ज्ञेयाः । तृणावर्त्तं पिपेष । निजघान, प्रजघान, निप्रजघान, प्रणिजघान, उन्नाटयामासेत्यादि तृणावर्त्तस्य वा । हिंसायाम् किम् ? धानाः पिनष्टि ॥६६॥

६७ । व्यवहृञ्-पण-दिवां कर्म्म वा व्यवहारे ।

अत्र व्यवहृञ्-पणद्यूतग्लहे क्रयविक्रयलक्षणे च, दिवस्तु द्यूतग्लह एव मन्यन्ते । त्रयाणामपि द्यूतग्लह एवेति तस्यां भ्रमः । धान्यं व्यवहरते पणते तस्य वा तद्ग्लहं करोति तद्विनिमयते वेत्यर्थः । वंशीं कृष्णो दीव्यति, तस्या वा । एवं प्रदीव्यति, तां ग्लहं करोतीत्यर्थः । अन्यत्र तु—चक्रं व्यवहरति, विक्षिपतीत्यर्थः । पणायतीति कश्चित् । कृष्णं पणति स्तौतीत्यर्थः । अत्र परपदमेवेति वर्द्धमानः ॥६७॥

६८ । क्तस्येनन्तस्य योगे कर्म्मणि सप्तमी ।

अधीती श्रीभागवते । कृतपूर्व्वी सृष्टिमित्यत्र तु न क्तस्येनन्तत्वमिति । अत्र द्वितीयैव । अत्राप्यधिकरणविवक्षायां स्यादित्यन्ये ॥६८॥

इति कर्त्तृकर्म्मणी ।

६९ । कर्त्तृकर्म्मणोराधारोऽधिकरणम् ।*

क्रियया सह वा क्रियाद्वारा वा कर्त्तृकर्म्मणी यदाश्रित्य विषयीकृत्य वा वर्त्तेते, स आधारस्तद्रूपं कारकमधिकरणसंज्ञं स्यात् । तत्र यदालम्ब्य वर्त्तेते स आश्रयः, रूपादिकं विषयः, यथा राज्ञोऽन्तःपुरमाश्रयः, छात्रस्यासनमाश्रयः पुस्तकं विषय इति ॥६९॥

७० । अधिकरणे सप्तमी । *

७१ । प्रसितोत्सुकाभ्यां कालवाचिनक्षत्रेण च योगे तृतीया च ।

तत्र क्रियया सह आश्रये—आसने आस्ते, ललाटे तिलकं करोति कृष्णः । क्रियाद्वारा आश्रये—कृष्णे

---

३ । संज्ञाः इति प्राच्यः (क) ।

* "कर्त्तृकर्म्मव्यवहितामसाक्षाद्धारयत् क्रियाम् । उपकुर्व्वत् क्रियासिद्धौ शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम् ॥" (२.२.१०:)

मोदते, कृष्णे सुखं लभते लोकः। अत्र लोकस्य या मोदक्रिया, या च सुखलाभक्रिया, ते द्वे कृष्णमाश्रित्य जायते इत्यर्थः। विषये—कृष्णो प्रीणाति, कृष्णे प्रीतिं करोति, तं प्रति प्रीतिं प्रवर्त्तयतीत्यर्थः। व्रजसुखे निपुणः, कृष्णः इत्यत्र तु गम्यमत्तादिक्रियायाः सम्बन्धेन कारकत्वम्। आश्रयः पुनस्त्रिविधः—औपश्लेषिकः, सामीपिको, व्याप्त इति। * उपश्लेष एकदेशस्तत्र भवे—आसने आस्ते। सामीपिके—यमुनायां घोषः। मुख्यया वृत्त्या येन नदीविशेष उच्यते, लक्षणया वृत्त्या तेन यमुनाशब्देनैव तत्सम्बन्धि तटमुच्यते। यथा गौण्या वृत्त्या पुरुषः, सिंह इत्यन्ये। व्याप्ते—विष्णुः सर्व्वत्रास्ति। एवं विषयोऽपि। प्रसितेति—कृष्णे कृष्णेन वा प्रसितं मनोबद्धमित्यर्थः। एवमुत्सुकम्। तथा रोहिण्यां कृष्णमभिषिञ्चेत्, रोहिण्या वा। अकालवाचित्वे तु रोहिण्यां विधुः ।।७०-७१।।

७२। अधिशीङ्स्थासामाधारः कर्म्म, अभिनिविशो वा।

गोवर्द्धनमधिशेते अधितिष्ठति अध्यास्ते हरिः। अभिनिविशते कृष्णभक्तिं कृष्णभक्तौ वा। अत्र विशेरात्मपदं वक्ष्यते (का० प्र० २०७) ।।७२।।

७३। उपान्वध्याङ्भ्यो वस आधारः कर्म्म

वृन्दावनमुपवसति हरिः। एवम् अनु अधि आङ् ।।७३।।

७४। अभोजनार्थस्योपवसेर्न।

कालीयह्रदे उपवसन्ति। 'लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्यैव ग्रहणम्' इति न्यायेन वस्तेर्न ग्रहणम् ।।७४।।

अथ अपादानम् [1]

७५। अपायादिष्ववधिरपादानम्।

प्रभुरयम्। अपायादिषु क्रियासु साध्यासु यदवधिभूतं, तत् कारकमपादानसंज्ञं स्यात् *। कर्त्तुः कर्म्मणो वा पूर्व्वयोः क्रियाज्ञानोर्विषयाऽवधिः ।।७५।।

७६। अपादाने पञ्चमी।

अपायो विश्लेषः, अत्रादिमर्य्यादावधिः। मथुराया आगतः, रथादवतीर्णः, द्रवतो रथात् पतितः परस्परस्मात् कृष्णचाणूरावपसर्पतः ।।७६।।

७७। प्रभवे तत्स्थानम्।

हिमवतो गङ्गा प्रभवति ।।७७।।

७८। जनने प्रकृतिः।

विष्णोर्जगज्जायते। प्रभवः प्रथमदर्शनम्, जननमुत्पत्तिरिति भेदः ।।७८।।

७९। अन्तर्द्धौ शङ्कास्पदम्।

अवैष्णवादन्तर्धत्ते, एते कर्त्तुः पूर्व्वस्याः स्थितिक्रियाया विषयाः ।।७९।।

८०। अथासहनार्थपराजेः सोढुमशक्यः।

कृष्णात् पराजयते कंसः, तं सोढुं न शक्नोतीत्यर्थः नेह—कंसं पराजयते कृष्णः, अभिभवतीत्यर्थः ।।८०।।

८१। प्रमादे जुगुप्सायाञ्च तद्विषयः।

प्रमादोऽनवधानता, गर्हयाश्चित्तनिवृत्तिर्जुगुप्सा। हरिभक्तेः प्रमाद्यति, अवैष्णवमार्गाज्जुगुप्सते। एते कर्त्तुर्ज्ञानस्य ।।८१।।

८२। अथ विरामे त्याज्यः।

अवैष्णवमार्गाद्विरमति ।।८२।।

८३। भये हेतुः।

कृष्णाद्बिभेति कंसः। एतौ कर्त्तुर्ज्ञानक्रिययोः ।।८३

---

* औपश्लेषिकमेकं स्यात्तथा वैषयिकं परम्। अभिव्यापकमित्येतत् त्रिधाधिकरणं मतम् ।।

"तथाधिकरणं पञ्चधाभिव्यापकमीर्य्यते। औपश्लेषिकं वैषयिकं सामीप्यञ्चौपचारिकम् ।।" (चाङ्गसूत्रम्)

* "सामीप्यको वैषयिक आभिव्यापक एव च। औपश्लेषिक इत्येवं स्यादाधारश्चतुर्व्विधः ।।" (अग्निपुराणम्)

१। एष पाठः ख-ग-घ-पाण्डुलिपिषु नास्ति।

* "अपाये यदुदासीनं चलं वा यदि वाऽचलम्। ध्रुवमेवातदावेशात्तदपादानमुच्यते ।।" (हरिकारिका)

८४। अथ वारणे रक्षितुमिष्टः।

वैष्णवपाकादवैष्णवं वारयति नदीतीरे, रक्षितुमनिष्टत्वात् तत्तीरन्तु नावधिः। रक्षेर्वारणार्थत्वे तु ततस्तं रक्षतीती च स्यात् ॥८४॥

८५। प्रतिग्रहे दाता।

वैष्णवादन्नं गृह्णाति ॥८५॥

८६। त्राणे भयहेतुः।

संसाराद्वैष्णवं त्रायते, त्राणार्थत्वे वारयति च। एते कर्म्मणः क्रियायाः ॥८६॥

८७। अथ शिक्षायां गुरुः।

वैष्णवाद्गीतामधीते। अशिक्षायान्त्वनभिधानम्—नटस्य गीतं शृणोति। एव कर्म्मणो ज्ञानस्येति ॥८७॥

अथ सम्प्रदानम् १

८८। प्रदेयाभिसंबध्यमानं सम्प्रदानं।

प्रभुरयम्। प्रदेयमात्यन्तिकं देयं, तेन यदभिसंबध्यते यद्द्येयतया सम्पाद्यते, तत् कारकं सम्प्रदानसंज्ञं स्यात् ॥८८॥

८९। सम्प्रदाने चतुर्थी।

वैष्णवः कृष्णाय सर्व्वस्वं ददाति, श्रीकृष्णश्चानूराय प्रहारमदात्, कंसाय भयमदात्। प्रदेयत्वं विना तु न—रजकस्य वस्त्रं ददाति, हन्तुः पृष्ठं ददाति ॥८९॥

९०। रुच्यर्थै रिच्छन्।

रुचिरत्र रुचधातुः, स चानेकार्थत्वात् सविषयेच्छादानमाह। स च तदर्थश्च रुच्यर्था धातवस्तैर्योगे इत्यर्थः। कृष्णाय रोचते स्वदते वा दुग्धं, स्वाद्यत्वेन सम्पद्यत इत्यर्थः। रुच्यर्थैरिति किम्? कृष्णो दुग्धमभिलषति। स्पष्टतार्थोऽयं योगः ॥९०॥

९१। स्पृहेरभीष्टम्।

कृष्णाय स्पृहयति गोपी ॥९१॥

९२। धारेर्धनिकः।

विष्णुमित्राय शतं धारयते, शतं गृहीत्वा देयत्वेन स्वीकुर्व्वन्नास्ते इत्यर्थः ॥९२॥

९३। क्रुधाद्यर्थानां यं प्रति कोपः।

कृष्णाय क्रुध्यति द्रुह्यति असूयति ईर्ष्यति कंसः। क्रोधोऽपराधासहनम्, द्रोहोऽपकारः, असूया गुणेऽपि दोषारोपणी दृष्टिः। ईर्ष्या परोत्कर्षासहनी दृष्टिः। चन्द्रगोमी तु कर्म्मत्वमप्याह। 'यं प्रति कोपः' इति किम्? प्रणयेन प्रियागीर्ष्यति कृष्णः, ईर्ष्यतीवेत्यर्थः ॥९३॥

९४। क्रुधद्रुहोः सोपेन्द्रयोः कर्म्मैव।

कंसमभिक्रुध्यति, प्रतिद्रुह्यति ॥९४॥

९५। राधीक्षोर्यस्य विप्रश्नः।

शुभमशुभं वा दैवनिरूपणं विप्रश्नः। कृष्णाय राध्यति, राध्नोति वा गर्गः, विविधं पृष्टो गर्गः कृष्णार्थं दैवं पर्य्यालोचयतीत्यर्थः। एवमीक्षते। पुरुषोत्तमस्त्वाह (पा १।५।३९)—'किमयं करोति नेति' पृच्छतीत्यर्थः।

"संक्रुध्यसि मृषा किं त्वं दिदृक्षुं मां मृगेक्षणे।
ईक्षितव्यं परस्त्रीभ्यः स्वधर्म्मो रक्षसामयम्॥"
(भट्टिः ८।७६)

इति का कीदृशी भवति इति विविधप्रश्नेन विचार्य्यमित्यर्थः ॥९५॥

९६। श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञापयितुमिष्टः

कृष्णाय श्लाघते, कृष्णं श्लाघमानस्तां श्लाघां कृष्णं ज्ञापयितुमिच्छतीत्यर्थः। आत्मश्लाघामेव कृष्णं ज्ञापयितुमिच्छतीति कश्चित्। एवं कृष्णाय ह्नुते, कृष्णं निह्नुवानस्तां निह्नुतिमित्यादि पूर्व्ववत्। इदमहं ह्नुवे इति कृष्णं ज्ञापयतीति कश्चित्। कृष्णाय तिष्ठते, कृष्णं प्रति स्वाभिरुचिं प्रकाशयतीत्यर्थः। कृष्णाय शपते, कृष्णं प्रति शपथं कुर्व्वन् सत्यमिदमिति ज्ञापयतीत्यर्थः। आभ्यामात्मपदञ्च प्रकाशनशपथयोर्वाच्यम्। "द्विषद्भ्यश्चाशपंस्तथा" इति भट्टिः (१७।४), त्वाक्रोशेऽपि दृश्यते। 'ज्ञापयितुमिष्टः' इति किम्?

१। एष पाठः ख-ग-घ पाण्डुलिपिषु नास्ति।

कृष्णं श्लाघते ।।९६।।

९७ । प्रत्यङ्-श्रुवः प्रार्थयिता ।

भक्तायाभीष्टं प्रतिश्रृणोति कृष्णः, आश्रृणोति वा, प्रार्थयन्तं तं प्रति प्रतिज्ञां करोतीत्यर्थः । प्रार्थयितात्र प्रतिज्ञावाचकः । 'पूर्व्वस्य प्रार्थनादेः कर्त्ता सम्प्रदानम्' इति पुरुषोत्तमः (पा १।४।४०), तेन "श्रृणव द्रुचः प्रतिश्रृण्वन्ति" इति भट्टिः (८।७७) ।।९७।।

९८ । अनुप्रतिगृणः प्रशस्यमानवचनः ।

गीताविदेऽनुगृणाति, प्रतिगृणाति, तां शंसन्तं प्रोत्साहयतीत्यर्थः । 'शब्देनानुगच्छति' इति तु पुरुषोत्तमः (पा १।४।४१), तेन "गृणद्भ्योऽनुगृणन्त्यन्ये" इति भट्टिः (८।७७) । श्नानिर्द्देशान्नेह—गीताविदमनुगिरति ।।९८।।

९९ । अशिष्टव्यवहारे सम्प्रयच्छतेः सम्प्रदाने तृतीया ।

विष्णुर्वहिर्म्मुखैस्तत्प्रसादं संप्रयच्छते, तेभ्य ददानीत्यर्थः । कथं पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थे पशुना रुद्रं यजते ? पशुना देयेन रुद्रं प्रीणयतीति सोपानं कर्त्तव्यम् ।।९९।।

अथ करणम्

१०० । कर्त्तुरधीनं प्रकृष्टं सहायं करणम् अनुक्ते कर्त्तरि करणे च तृतीया ।

कृष्णो गा वनाद् यमुनातीरे वंशीवाद्येन आह्वयते हस्तेनोत्तरीयं भ्रमयति । 'कर्त्तुरधीनम्' इति किम् ? कृष्णप्रसादात् सुखं लभते । पञ्चमी वक्ष्यते (का० प्र० १३२) ।।१००।।

१०१ । दिवः करणं कर्म्म वा ।

अक्षान् दीव्यति कृष्णः, अक्षैर्वा । अत्र केचित् युगपदेव संज्ञाद्वयं मन्यन्ते, तेन मनसादेवीत्यत्र कर्म्मोपपदे प्रत्ययः सिध्यति । अक्षैर्देवयते कृष्णो राधया इत्यत्र प्रयोज्यस्य कर्म्मत्वं न भवतीति । अस्मन्मते तु भवत्येव, "तेनादुद्यूषयद्रामं मृगेण मृगलोचना" इति भट्टिप्रयोगः (५।४९) ।।१०१।।

१०२ । परिक्रयणे करणं सम्प्रदानं वा ।

शतेन शताय वा परिक्रीतः । शतेन वेतनेन नियते काले वशीकृत इत्यर्थः ।।१०२।।

१०३ । स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयेभ्यः करणे पञ्चमी वा असत्ववचने ।

स्तोकान्मुक्तः स्तोकेन वेत्यादि । सत्वं द्रव्यं, तन्न तु—स्तोकेन विषेण हतः । स्तोकात् विषादित्यपि केचित् ।।१०३।।

१०४ । तृप्त्यर्थकरणे षष्ठी वा ।

नवनीतानां तृप्तो बालगोपालः, नवनीतैर्वा ।।१०४।।

१०५ । अज्ञानार्थस्य ज्ञः करणं वा ।

पक्षे सम्बन्धषष्ठ्येव । गङ्गाजलेन जानीते, तस्य वा । तद्बुद्ध्या जलान्तरे प्रवर्त्तत इत्यर्थः ।।१०५

१०६ ।

अपादान-सम्प्रदान-करणाधार-कर्म्मणाम् ।
कर्त्तुश्चान्योऽन्यसन्देहे परमेकं प्रवर्त्तते ।। ※

(क्रमदीश्वरीय-कारिका)

कृष्णाय निवेद्य गृह्णाति, शार्ङ्गेण शरान् विक्षिपति[१], उपविश्योत्तिष्ठति कृष्णसमीपे, यमुनां प्रविश्य निःसरति, अस्त्येष कृष्णः पश्य । निवेद्य कृष्णाद्गृह्णाति इत्यादिके[२] तु कृष्णाय निवेद्य इत्यर्थाद्गम्यते । क्व गच्छसि, क्व गतः—इत्यादौ गमनपूर्व्विका स्थितिर्बोध्यते ।।१०६।।

इति कारकाणि ।

---

१ । निक्षिपति क) २ । इत्यादिकं (क)

※ "अपादान-सम्प्रदान-करणाधार-कर्म्मणाम् । कर्त्तुश्चोभयसम्प्राप्तौ परमेव प्रवर्त्तते ।।" (भर्त्तृहरिः)

अथ उपपद-विष्णुभक्तयः

१०७। अथ कृष्णप्रवचनीयैर्योगे द्वितीया।

ते चैते—

लक्षणवीप्सेत्थम्भूतेष्वभिर्भागे परिप्रती।
अनुरेषु सहार्थे च हीने तूपश्च कथ्यते॥ ※

कर्म्मप्रवचनीया इति प्राञ्चः। लक्षणं चिह्नम्, वीप्सा युगपत् सजातीयानां व्याप्तिः, इत्थम्भूतं प्रकारविशेषप्राप्तिः। एतेष्वभिः कृष्णप्रवचनीयः। तत्र लक्षणे—कृष्णमभि पतति पुष्पवृष्टिः। वीप्सायाम्—गोपीं गोपीमभि क्रीडति कृष्णः। इत्थम्भूते—कृष्णमभि भक्तोऽसौ, भक्तत्वप्रकारविशेषं प्राप्त इत्यर्थः। लक्षणादिषु भागे च परिप्रती, तत्र त्रिषु 'कृष्णं परि' इत्यादि पूर्व्ववत्। एवं प्रति भागे—यत् कृष्णं परि स्यात्, यत् कृष्णं प्रति स्यात्, तद् हि अत्र धातुयोगाभावेनोपेन्द्रत्वाभावात् षत्वाभावः। अनुर्लक्षणादिषु चतुर्षु, सहार्थे च। अत्र चतुर्षु 'कृष्णमनु' इत्यादि पूर्व्ववत्। सहार्थे—कृष्णमनु गच्छन्ति गोपाः। चकाराद्धेतौ च—हरिभक्तिमनु सुखम्। अनुश्चोपश्च हीने—अन्वर्ज्जुनं योद्धारः, उपार्ज्जुनम् ॥१०७॥

१०८। अतिरतिक्रमणे।

सर्व्वानतिराजते कृष्णः। राधिकामधि वचनजातमित्यपि दृश्यते ॥१०८॥

१०९। कालाध्वनोरत्यन्तव्याप्तौ द्वितीया, अपवर्गे तु तृतीया।

तत्र गुणेन व्याप्तौ—सर्व्वायुर्विष्णुभक्तः, क्रियया—यामं हरिपूजकः, द्रव्येण—सर्व्वदिनं हरिर्नैवेद्यम्। एवं क्रोशं यमुना कुटिलेत्यादि। जन्म जन्म यदभ्यस्तमिति तत्सम्बन्धमरणपर्य्यन्तमित्यर्थः। अत्र तु कर्म्मत्वाभावात् कालाध्वभावदेशानामित्यादिवन्न तत्प्रत्ययाः। तु—मासमास्यते, क्रोशं सुप्यते। फलप्राप्तया क्रियासमाप्तिरपवर्गस्तस्मिंस्तु तृतीया—अहोरात्रैश्चतुःषष्टया सर्व्वमध्यैष्ट माधवः ॥१०९॥

११०। अभित आदिभिर्योगे द्वितीया

अभितः कृष्णं, परित कृष्णम्, उभयतः कृष्णं सर्व्वतः कृष्णं, समया कृष्णं, निकषा कृष्णं गोपाः—एतद्द्वयं निकटार्थे। हा कृष्णविमुखं, धिक् कंसं, तस्मै तस्मै च कुत्सास्तु इत्यर्थः, अत्रैवार्थे हाशब्दय[illegible] क्षीरस्वामिना द्वितीया-दर्शितत्वात। कथं 'हा रमणीनां गतः कालः? 'हा देवी! धीरा भव' ※ पूर्व्वत्र वाक्यार्थेनैव सम्बन्धात्। उत्तरत्र सशोकसम्बोधने हाशब्दात्। कथं 'धिगास्तां मम वीर्य्यस्य'? तत्र तादर्थ्ये एवेष्टिः, अत्र तु सम्बन्धविवक्षा। 'धिग् जाल्म' इत्यादौ धिक्शब्देन न योगः, किन्तु प्रथमं कुत्सयित्वा पश्चात् सम्बोध्यते उपर्य्युपरि सर्व्वं हरिः। एवमध्यधि। कथम् 'उपर्य्युपरि बुद्धीनां चरन्तीश्वरबुद्धयः'? उपर्य्युपर्य्यादिषु सामीप्यार्थ एवेष्टिः, अत्र तु वीप्सामात्रमिति। अधोऽधो गोवर्द्धनं वृक्षाः। हरिभक्तिं यावत् सुखम्। 'बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्' तस्मै न किञ्चिद्रोचते इत्यर्थः। अन्तरेण हरिं न सुखं, तं विना न सुखमित्यर्थः। अन्तरा त्वां मां हरिः, तव मम मध्ये हरिरित्यर्थः। षष्ठ्यपवादत्वाद्युष्मदस्मद्भ्यामेव द्वितीया, हरेस्तु नाममात्रार्थस्यान्तरङ्गत्वात् प्रथमैव। एवमन्यत्रापि ॥११०॥

१११। सहार्थैरप्रधाने तृतीया।

सहार्थो द्विविधः। क्रियागुणद्रवैस्तुल्ययोगिता विद्यमानतामात्रञ्च। आद्यो यथा—रामेण सह

※ "वीप्सेत्थम्भावचिह्नेऽभिस्तेषु भागे परिप्रती। अनुस्तेषु सहार्थे च हीनेऽनूपौ मताविह॥"

मुग्धबोध-व्याकरणे (२८६) त्वेवं दृश्यते।

※ "स्निग्धश्यामलकान्तिलिप्तवियतो वेल्लद्बलाका घना, वाताः शीकरिणः पयोदसुहृदामानन्दकेकाः कलाः। कामं सन्तु दृढं कठोरहृदयो रामोऽस्मि सर्व्वं सहे, वैदेही तु कथं भविष्यति हहा हा देवी धीरा भव॥"

(ध्वन्यालोकः २, काव्यप्रकाश: ११७)

क्रीडति कृष्णः, रामेण सह सुन्दरः, रामेण सह गोमानिति च। कृष्णस्यात्र क्रियादिसम्बन्धः साक्षादेव, रामस्य तु प्रतीयमान इति रामस्याप्राधान्यम्। किन्तु प्रथमाद्वये कर्त्तृ सहभावेऽपि यथा—गानेन सह नृत्यं करोतीत्यादि। एवं समं, सार्द्धं, साकं, सजुः। सहार्थे गम्येऽपि—रामेण क्रीडति। 'अप्रधाने' इति किम्? रामेण सह कृष्णस्य गौः, गोसम्बन्धे प्राधान्यात् कृष्णान्न स्यात्। सहोभौ चरतो धर्म्ममिति तु द्वयोरपि प्राधान्यात्। अन्त्या यथा—बालकृष्णेन सह दधि मथ्नाति यशोदा इत्यादि ॥१११॥

११२। तुल्यार्थैः षष्ठी च, तुलोपमाभ्यान्तु षष्ठ्येव।

रामेण तुल्यः कृष्णः, रामस्य तुल्यो वा। एवं सदृश इत्यादि। नेह—रामस्य तुला लक्ष्मणः। 'तुलोपमाशब्दाविह तुल्यार्थौ' इति भाषावृत्तिः (२।३।७२) अर्थग्रहणाद्द्योतकत्वे तु न—कृष्ण इव प्रद्युम्नः ॥११२॥

११३। येनाङ्गेन निन्दा तस्मात्तृतीया।

दन्तेन वक्रः कारूषः। अङ्गधर्म्मोऽत्राङ्गिन्यारोप्यते किन्तु षष्ठीस्थानापवादः सर्व्वम्, तेन नेह—दन्ता वक्रा अस्य ॥११३॥

११४। विशेषलक्षणात्तृतीया।

विशेषप्राप्तिचिह्नादित्यर्थः। कौस्तुभेन भगवन्तमद्राक्षीत्। क्रियाविशिष्टज्ञापकत्वेनऽपि—न्यक्षेण वीक्षते कृष्णम्, कार्त्स्न्येन भजति प्रियाम्, "न्यक्षं कार्त्स्न्यनिकृष्टयोः" (अमरकोषः ३।३।२२५) सुखेन भजति। सुखं भजतीत्यादिकन्तु गुणगुणित्वविकल्पात् ॥११४॥

११५। प्रकृत्यादिभ्यस्तृतीया।

प्रकृत्या कृष्णः, जात्या गोपालः, जनुषा करुणः, रामेणानुजः, नाम्ना अर्ज्जुनः, आत्मना द्वितीयः, स्वभावेनोदारः, प्रकृत्यादिसम्बन्धेनेत्यर्थः। तृतीयेयं भवत्यादिक्रियया हेतुत्वं गमयतीति कश्चित् एवं समेन चलति, विषमेण धावति, समादौ देश इत्यर्थः। समे चलतीत्यादि च दृश्यते। कर्म्मणी इमे इति केचित्, क्रियाविशेषणे इति कश्चित्। प्रायेण वैष्णवः, वैष्णवताभिव्यञ्जकधर्म्मप्राचुर्य्यसम्बन्धेनेत्यर्थः। गोत्रेण गार्ग्यः, अन्वय-सम्बन्धेनेत्यर्थः। एवं भक्त्या पूर्व्व इत्यादि। तथा द्विःप्रसृतेन फलं क्रीणाति, द्विद्विप्रसृतं फलं क्रीणातीत्यर्थः। पञ्चकेन वत्सान् गृह्णाति कृष्णः, पञ्च पञ्च तान् गृह्णातीत्यर्थः। सतामर्थो हरिभक्त्या सेवार्थ इत्यर्थः ॥११५॥

११६। यदर्थमन्यत्तस्माच्चतुर्थी।

'तादर्थ्ये चतुर्थी' इति प्राञ्चः। उभयत्रापि कार्य्यरूपात् प्रयोजनाच्चतुर्थीत्यर्थः। मालायै तुलसी रन्धनाय यमुनोदकम्, हरिप्रीतये हरिं भजति। एवं हरिभक्तिः सुखाय कल्पते, हरेरभक्तिर्दुःखाय सम्पद्यते, तत्तद्रूपेण परिणमत इत्यर्थः। सेवायै गोविन्दं याति, सेवितुमित्यर्थः। एवं पाकाय व्रजतीत्याद्यपि। सम्बन्धविवक्षायाम्—मालायास्तुलसीत्याद्यपि। अभेदविवक्षायाम्—हरिभक्तिः सुखं कल्पते। अत्र सम्पद्यमानात् क्लृप्यर्थयोगे इति पृथग्लक्षणं केचिद् विदधति, तदकिञ्चित्करम्, तादर्थ्येनैवेष्टसिद्धेः। अवधिविवक्षायां पञ्चमीति कश्चित्—हरिभक्तेः सुखं कल्पते ॥११६॥

११७ उत्पातेन ज्ञाप्याच्चतुर्थी।

शुभाशुभसूचकमाकस्मिकदर्शनमुत्पातः। वाताय कपिलिका विद्युत्, आतपाय लोहिनी विद्युत् * ॥११७॥

११८। तुम्वन्तक्रियान्तरे गम्ये तत्कर्म्मणश्चतुर्थी।

कृष्णाय गोकुलं याति, कृष्णं द्रष्टुं, सेवितुं, वेत्यर्थः। कृष्णशब्देनात्र दर्शनादिकं लक्ष्यत इत्येके। एवं युद्धाय संनह्यते कृष्णः, युद्धं कर्त्तुं सन्नाहं बध्नातीत्यर्थः। पत्ये शेते लक्ष्मीः, पतिं

* "वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी। पीता भवति सस्याय दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ॥" (महाभाष्यम्)

रमयितुमित्यर्थः । हर्य्यभक्तये निन्दति, तां त्याजयितुमित्यर्थः ॥११८॥

११९ । नम आदिभिर्योगे चतुर्थी ।

कृष्णाय नमः, तं प्रति नमस्कार इत्यर्थः । १ कृष्णाय स्वस्ति, तस्य मङ्गलं भूयादित्यर्थः । गोविन्दाय स्वाहा, तं प्रति समर्पयामीत्यर्थः । एवं पितृभ्यः स्वधा, इन्द्राय वषट्, कृष्णः कंसायालं, तं प्रति समर्थः । एवं समर्थः, प्रभुः, पर्य्याप्तो वा कृष्णः कंसाय । प्रादीनामुर्य्यादीनामपि क्रिययैकार्थ्यं मन्यन्ते । पाणिनीयान्तु (२।१।४) 'सुप्-सुपेत्यनुवृत्तेस्तिङापि समासः' इति । अतः कृञि नमनार्थं समर्प्य गुणीभूतेन नमःशब्देन कृष्णं नमस्करोतीति कृञ्योगात् कर्म्मत्वम् *, कृष्णं नमनीत्यर्थः, वृन्दावनं प्रतिष्ठते, कृष्णमुरीकरोति इतिवत् । 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी' इति न्यायादित्येके । नारायणाय नमः कुर्य्यात् इति नमःशब्दस्यैव कर्म्मत्वेनागुणीभूतत्वात् । स्वयम्भुवे नमस्कृत्येति तु तदर्थ्यात् । वारणार्थे त्वलं योगे तृतीयैव—कृष्णवैमुख्येनालं, तेन न किञ्चित् प्राप्यमिति हेतुत्वकरणत्वयोरेकतरावगमात् ॥११९॥

१२० । चतुर्थी हिताद्यर्थैः ।

सर्व्वस्मै हिता हरिभक्तिः । हरये बलिः ॥१२०॥

१२१ । आशिषि चतुर्थी कुशलाद्यैः ।

वैष्णवाय कुशलं भूयात् । आयुष्य भूयादित्यादि ॥१२१॥

१२२ । गम्यस्य यवन्तस्य कर्म्मणोऽधिकरणाच्च पञ्चमी ।

यप्क्त्वादेशः । 'ल्यवलोपे पञ्चमी' * इति पाणिनीयाः । गोवर्द्धनात् प्रेक्षते कृष्णः, तमारुह्य, तत्रोपविश्येति वा । श्रीकृष्णमुखाब्जात् विराजते हासः, तत्र निःसृत्य इत्यर्थः ॥१२२॥

१२३ । अन्यार्थादिभिर्योगे पञ्चमी ।

अन्यः कृष्णात्, भिन्नो रामात् । एवम् इतरः, प्रतियोगी, इतरोऽर्ज्जुनात् । ऋते इत्यव्ययं वर्ज्जनार्थे । ऋते कृष्णात्, ऋते कृष्णमित्यपि चन्द्रगोमी * । आराद्दूरसमीपयोः । तत्र दूरान्तिकार्थेति वक्ष्यमाणषष्ठ्यपवादः, आराद्वृन्दावनात् । आरभ्यार्थ-योगेऽपि केचित् । भवादारभ्य विष्णुभक्तः, मासात् प्रभृति दीक्षितः । दिक्शब्दा अञ्चूत्तरपदा आदाहिप्रत्ययान्ताश्चान्यादयः पूर्व्वो व्रजात् । शब्दग्रहणात्—रामः कृष्णात् पूर्व्वः, प्राग्दिनकतिपयात् । अतस्यर्थयोगे षष्ठी चेति वक्ष्यमाणापवादोऽयम् । आदाही तद्धितावदूरदूरयोः तदन्ते चाव्यये ज्ञेये । दक्षिणा व्रजात्, दक्षिणाहि व्रजात् ॥१२३॥

१२४ । पृष्टाख्याताभ्यामवधिभ्यां पञ्चमी ।

कुतो भवान् ? वृन्दावनात् । अवधिभ्यां किम् ? कस्यायं शालग्रामः ? मम ॥१२४॥

१२५ । अपपरियुक्तात् पञ्चमी वर्ज्जने ।

अप वैकुण्ठात्, परि वैकुण्ठात् संसारः ॥१२५॥

१२६ । आङ्युक्तात पञ्चमी मर्य्यादाभिविध्योः

अभिविधिरभिव्याप्तिः । आ सागराद्गङ्गा, आ समस्ताद्विष्णुः ॥१२६॥

१२७ । प्रतियुक्तात् पञ्चमी प्रतिनिधिप्रतिदानयोः ।

श्रेष्ठस्य सदृशः प्रतिनिधिः । प्रतिदानं मूल्यम् । प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति । तुलसीपत्रात् आत्मानं प्रतियच्छति हरिः ॥१२७॥

---

१ । 'इत्यर्थः । नम इति सान्तमव्ययं विशेष्यं प्रणाममाचष्टे, यत्तु दानवाचि, तन्त्रेण तदपि गृह्यते । दानार्थसम्प्रदाने चतुर्थी इति कश्चित्, स भ्रमी, तस्य कारकत्वात् क्रियापदापेक्षा । नास्ति अस्ति इत्यादिवत् तिङन्तप्रतिरूपकमव्ययमेतत् स्वस्ति-पदम् ।' (क) पाठोऽयं न सर्व्वत्र, किन्तु साधुः ।

* नमो-योगे क्रियाशून्ये चतुर्थी सम्मता बुधैः । करोत्यर्थ-विवक्षायां द्वितीया तत्र निश्चला ॥

* 'ल्यब्लोपे कर्म्मण्यधिकरणे च' (पा २।३।२८ सूत्रस्य वार्त्तिकम्, सिद्धान्त-कौमुदी ५९४) ।

* 'ऋते द्वितीया च' (चान्द्रसूत्रम् २।१।८४) ।

१२८। यतः कालाध्वनोर्मानं तस्मात् पञ्चमी, कालात्तु सप्तमी, अध्वन प्रथमा च।

शयन्याः प्रबोधनी मासचतुष्टये। मथुरायाः गोवर्द्धनो योजनद्वयं योजनद्वये वा ॥१२८॥

१२९। पृथङ्नानायोगे पञ्चमी तृतीया च विनायोगे द्वितीया च।

आद्यौ वहितार्थौ, विना त्वन्यार्थः। पृथक् कृष्णात्, पृथक् कृष्णेनेत्यादि। विना कृष्णात्, कृष्णेन, कृष्णं वा। त्रिष्वपि द्वितीयेति केचित् ॥१२९॥

१३०। हेतोस्तृतीया।

विवक्षान्तररहितः फलसिद्धौ योग्यो हेतुः। कृष्णेन सुखं, सुखसिद्धौ कृष्णो योग्य इत्यर्थः। एवं श्रद्धया हरिभक्तिः ॥१३०॥

१३१। ऋणात् पञ्चमी।

परार्द्धादिव बद्धोऽसौ भवेद्भक्तिलवाद्धरिः। कथं शतेन बन्धितः? हेतुकर्त्तृतया विवक्षितत्वात् ॥१३१॥

१३२। गुणाद्धेतोः पञ्चमी तृतीया वा।

अवैष्णवत्वात् संसारी, अवैष्णवत्वेन वा। अव्यभिचारेण ज्ञापकश्च हेतुः। गोवर्द्धनोऽयं कृष्णवान् सर्व्वाकर्षिवेणुशब्दात्, तच्छब्देन वा। अत्र कृष्णो नास्ति अनुपलब्धेः, अनुपलब्ध्या वा। द्रव्यादपि दृश्यते—'पर्व्वतोऽयं वह्निमान् धूमात्' इति ॥१३२॥

१३३। राधागोपीसंज्ञाभ्यान्तु न पञ्चमी

श्रीकृष्णकृपया सुखं, तन्माधुर्य्या वा ॥१३३॥

१३४। हेतुशब्दप्रयोगे हेतौ षष्ठी।

कृष्णस्य हेतोर्वसति। वेति केचित्। यत्र हेतुशब्देन समासस्तत्र समस्तादेव षष्ठी—प्रेमहेतोः कृष्णं भजति ॥१३४॥

१३५। कृष्णनामयोगे निमित्तकारणहेत्वर्थाद्द्वितीयावर्ज्जं सर्व्वा विष्णुभक्तयः।

कृष्णो मथुरां गतः किं निमित्तं, केन निमित्तेनेत्यादि एवमुभे निमित्ते, उभाभ्यां निमित्ताभ्यामित्यादि। कृष्णोनामायोगेऽपि तृतीयादय इत्येके। कंसघातेन निमित्तेनेत्यादि ॥१३५॥

१३६। एनप्रत्ययान्तयोगे द्वितीयाषष्ठ्यौ।

अदूरे एनोऽपञ्चम्यास्तद्धितः। दक्षिणेन वृन्दावनमक्रूरतीर्थं, वृन्दावनस्य वा ॥१३६॥

१३७। दूरान्तिकार्थवहिर्योगे षष्ठी पञ्चमी च, दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीयातृतीयापञ्चमी-सप्तम्यो नाममात्रार्थे।

दूरं दूरेण दूरात् दूरे वा व्रजस्य व्रजाद्वा तिष्ठन्ति पुलिन्दाः। एवमन्तिकमन्तिकादन्तिकेनान्तिके वा वसन्ति ब्राह्मणा इत्यादि असत्ववचन एव स्यात्; अन्यत्र समानाधिकरणत्वे तु दूरो व्रजो मधुरायाः, व्रजाद्दूरा मथुरा ॥१३७॥

१३८। आशिषि हिताद्यर्थयोगे च षष्ठी-पञ्चम्यावेव।

दूरं जातु व्रजस्य दुःखं, व्रजाद् वा। अन्तिकं हितं भवतु व्रजस्य, व्रजाद्वा ॥१३८॥

१३९। अतस्यर्थयोगे षष्ठी।

दक्षिणतो व्रजस्य, पुरस्ताद्गोवर्द्धनस्य। अवधित्वविवक्षायां पञ्चमीति चन्द्रगोमी* ॥१३९॥

१४०। सामान्यतो विशेषस्य निर्द्धारणे षष्ठीसप्तम्यौ, विशेषतश्चेत् पञ्चम्येव।

निर्द्धारणं धर्म्मविशेषेण पृथक्करणम्। यदूनां वृष्णयः श्रेष्ठाः यदुषु वा। माथुरा श्रौघ्नेभ्य आढचतरा ॥१४०॥

१४१। आयुक्तकुशलयोगे षष्ठीसप्तम्यौ तात्पर्य्ये।

आयुक्तः कृष्णभक्तेः कृष्णभक्तौ वा ॥१४०॥

१४२। एकस्थक्रिययोर्मध्ये यः संख्यातमकः कालः कारकयोर्मध्ये यश्चाध्वा ताभ्यां सप्तमी पञ्चमी च।

* "अवधेः पञ्चमी" (चान्द्रसूत्रम् २।१।८१)।

अद्य हरिं दृष्ट्वा, द्व्यहे हरिंद्रष्टा द्व्यहाद्वा। तत्र दर्शनयोर्मध्ये द्व्यहः। इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा पश्यति। अत्र कर्त्तृकर्म्मणोर्मध्ये अध्वा ॥१४२॥

१४३। उक्तस्य यस्य क्रियाकालोऽन्यस्य क्रियावकाशस्तस्मात् सप्तमी।

उक्तस्येति सामान्यनिर्द्देशात् कारकमात्रं गृह्यते। गोषु तिष्ठन्तीषु दुह्यमानासु वा गायति कृष्णः ॥१४३

१४४। अर्हानर्हयोश्च।

वैष्णवेषु भुञ्जानेषु वैष्णवा आहूयन्ते। वैष्णवेषु भुञ्जानेषु अवैष्णवा आहूयन्ते। उक्तस्येति किम्? गवां दोहे गायति। अन्यस्येति किम्? दुहन् गीतवान् कृष्णः। आत्मना दुह्यमानासु गोषु गायतीत्यर्थः तु स्यादेव। गोरुक्तकर्म्मरूपाया दोहः गानन्तु कर्त्तुरिति। अत्र तु सूत्रं न प्रवर्त्तेयम्१— तुलसीमालाया सह तु भुङ्क्ते, यो भुङ्क्ते स वैष्णवः२ ॥१४४॥

१४५। अत्रानादरे षष्ठी च।

रुदति कुटुम्बे, रुदतः कुटुम्बस्य वा मथुरां गतः तदनादृत्येत्यर्थः ॥१४५॥

१४६। साधुनिपुणाभ्यां योगेऽर्च्चायां सप्तमी।

साधुः कृष्ण, निपुणः कृष्णभक्तौ। अर्च्चायां किम्? कंसस्य साधवो दैत्याः ॥१४६॥

१४७। असाधुनानर्च्चायां सप्तमी।

असाधुः कृष्णे ॥१४७॥

उप परार्द्धे हरेर्गुणाः, परार्द्धादधिकाः इत्यर्थः। परार्द्धादिति गम्ययवन्तात् पञ्चमी। किन्तु विस्तरे कर्त्तरि कर्म्मणि चाध्यारूढस्य क्तान्तस्याधिकादेशः, ततः कर्म्मणि—अधिका खारी द्रोणेनेति, कर्त्तरि—त्वधिकः खारीं द्रोणः। अधिकः खार्य्यां द्रोण इति त्वधिकरणस्यैव विवक्षेति। यद्येवं गम्ययप्पञ्चम्यपि दुर्निवारा ॥१४८॥

१४९। निमित्तात् कर्म्मसंयोगे सप्तमी।*

सौरभ्ये तुलसी जिघ्रति ॥१४९॥

१५०। ऐश्वर्य्यार्थेनाधिना युक्तात् सप्तमी, स्वात् स्वामिनो वा विष्णुभक्तिः।

अधि भुवि रामः, रामो भुव स्वामीत्यर्थः। अधि रामे भूः, भूः, रामस्य स्वामीत्यर्थः।

विवक्षातश्च कारकादीनि भवन्ति, दर्शितानि तत्र तत्र। यथा च क्रिया जायते, ओदनः पचति, सिध्यतीत्यर्थः। तण्डुलः पचति, विक्लिद्यतीत्यर्थः। ओदनं पचति वैष्णवः, साधयतीत्यर्थः। तण्डुलं पचति विक्लेदयतीत्यर्थः, तण्डुलमोदन पचतीति द्विकर्म्मकं व्याख्यातम्। कृष्णो वंशीवाद्ये न सुखं ददाति, वंशीवाद्ये वा। व्रजं प्रविशति, व्रजे वा। गोपीभ्यः स्पृहयति गोपीर्गोपीषु गोपीनां वा। गां दुग्धं दोग्धि, गोभ्यः गवां वा। अक्षैर्दीव्यति, अक्षेषु, अक्षाणां वा गवां स्वामी, गोषु वा। एवमीश्वराधिपतिदायादसाक्षि प्रति-भुवः। तथा व्रजस्य राजा, व्रजे वा। पञ्चकृत्वो दिनस्य दिनेन दिने वा भुङ्क्ते। एवं द्विरह्न इत्यादि तथा शतं दायी, शतस्य दायीत्यादि मन्यन्ते। तथाहि "माषाणामश्नीयात्" इति भाष्यम्। 'न च स्निह्यति कस्यचित्" इति भट्टिः (१८।१९) "प्रामाद्यद् गुणिनां हितम्" (भट्टिः १७।३९) इति च। "सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्" इति किरातः (७।२८) 'नारायणस्यानुकरोति' १ इत्याद्यपि बहुल। यत्र तु करणं वेति, कर्म्म वेति प्रोच्यते, पक्षे सम्बन्धो विवक्ष्यते, तत्र तु तस्य तस्यैव सम्बन्धिता, नान्यस्येति नियम्यते। ततः शुभ्रत्वेन गङ्गाजलस्य जानीते इत्यादौ शुभ्रत्वादीनां तद्विवक्षा न स्यात्, दुर्बोधत्वात् चान्द्राः कालापाश्च विवक्षयैव प्रायः सर्व्वं साधयन्ति तदुक्तं वर्द्धमानमिश्रैः—"कल्पना प्रसवानां नास्त्यन्तः" इति। कृष्णप्रवचनीयैर्योगे तु नान्यां विवक्षां मन्यन्ते तत्र संज्ञाकरणे प्रयत्नविशेषावगमात्, यथा—कृष्णं प्रति साधुः, साधुनिपुणाभ्यामिति न सप्तमी। गोपीं

१। प्रवर्त्तते (क); २। तुलसीमालाया यः संभुङ्क्ते, स वैष्णवः (क)

* "चर्म्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्। केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्पलको हतः ॥" —महाभाष्यधृतः श्लोकः।

१। वाणभट्टकृत-कादम्बरी-कथामुखे द्वितीय प्रघट्टके।

गोपीं प्रति प्रेमास्ति, नाधारसप्तमी। गाः प्रति स्वामी, सम्बन्धविषययोर्न षष्ठीसप्तम्यौ। कृष्णं प्रत्युत्सुकः, प्रसितोऽनुत्सुकाभ्यामिति न तृतीयासप्तम्यौ। कंसं प्रति हरिः क्रुद्धः, न सम्प्रदानचतुर्थीति ॥१५०॥

इत्युपपद-विष्णुभक्तयः।

अथ अच्युताद्यर्था विवक्ष्यन्ते

१५१। वर्त्तमानेऽच्युतः।

वर्त्तमानो बहुविधः *। तत्र वचनसमकालत्वे—वैष्णवो भवति। क्रियाकालभावेषु सदातनत्वे—भगवान् विराजते। बहुकालत्वे—स्रवति गङ्गा। तच्चरितत्वे—भगवन्तं पूजयत्ययम्। पौनःपुन्ये च—'त्वामेव पृच्छति हरिः सखि मद्विलोके' * तस्माद्व्यक्त्या जात्या चैकक्रियाव्याप्तत्वेन भूतभविष्यदतिरिक्ततया विवक्षितः कालो वर्त्तमानः ॥१५१॥

१५२। भूते भूतेशः।

श्रीकृष्णावतारोऽभूत् ॥१५२॥

१५३। अनद्यतनभूते भूतेश्वरः।

प्रभुरयम्। पूर्व्वापरनिशयोर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां यामाभ्यां सह दिवसमद्यतनकालस्तद्भिन्नोऽनद्यतन।* तस्मिन् इत्यधिक्रियते। कृष्णावतारोऽभवत् ॥१५३॥

१५४। स्मरणोक्तौ कल्किर्न तु यत्प्रयोगे, साकाङ्क्षे वक्तरि तु वा।

स्मरसि भ्रातर्वृहद्वने वत्स्यावः। नेह—भ्रातर्जानासीह यद्बृहद्वनेऽवसाव। अत्र तु यत्प्रयोगेऽपि वा—स्मरसि यद्वृन्दावने वत्स्यावः अवसाव वा, तत्र क्रीडां करिष्यावः अकुर्व्व वा। वासोऽत्र लक्षणं, क्रीडाकरणं लक्ष्यं, तयोः सम्बन्धे ह्यत्र प्रयोक्तुराकाङ्क्षा मता ॥१५४॥

१५५। परोक्षानद्यतनभूतेऽधोक्षज।*

कृष्णश्चीक्रीड। हरिप्रेममत्तोऽहं किं विललाप इति परोक्षवद्भानात्। नाहमवैष्णवमन्त्रं जजाप इत्यपरोक्षत्वेऽप्यपह्नवात्। अहन् कंसमित्यादयः आधुनिकजल्पास्त्वनद्यतनभूतमात्रविवक्षया ॥१५५॥

१५६। हान्त-शश्वतोर्योगेऽधोक्षजस्य भूतेश्वरो वा, पञ्चवर्षाभ्यन्तरप्रश्ने[१] च।

इति हाकरोत् शश्वदकरोत् कृष्णः, चकार वा। तथा पृच्छामि त्वामागच्छत् कृष्ण आजगाम वा १५६

१५७। पुरायोगे भूतेश्वरादित्रयमच्युतश्च।

पुरा इह कृष्णोऽक्रीडत्, अक्रीडीत्, चिक्रीड, क्रीडीत वा ॥१५६॥

१५८। स्मेन योगे त्वपरोक्षे चाच्युतः।

भजति स्म कृष्णं परस्वात्, पश्यति स्म पुरा रामम् ॥१५८॥

---

* प्रवृत्तोपरतश्चैव वृत्ताविरत एव च। नित्यप्रवृत्तः सामीप्यो वर्त्तमानश्चतुर्व्विधः॥

* वसन्ततिलकं छन्दः।

* शेषो गतायाः प्रहरो निशाया, आगामिनी या प्रहरश्च तस्याः। दिनस्य चत्वार इमे च यामाः, कालं बुधा

* पूर्व्वापर-निशा-यामौ दिनेनाद्यतनं विदुः। (क्रमदीश्वरः) ह्यद्यतनं वदन्ति॥ (सौपद्माः)

* कृतस्यास्मरणे कर्त्तुरत्यन्तापह्नवेऽपि च। दर्शनादेरभावेऽपि त्रिषु विद्यात् परोक्षताम्॥

१। पञ्चवर्षाभ्यन्तरक्रियायाः प्रश्न (क)।

१५९। प्रश्नस्योत्तरे ननुयोगे भूतेष्वच्युतो, नुनाभ्यां वा।

अपश्यः कृष्णम्? ननु पश्यामि। तथा नु पश्यामि, नु अपश्यम्। एवं न पश्यामीत्यादि। प्रश्नोत्तर इति किम्? नन्वकार्षीविष्णुमित्र। भूता निवृत्ताः ॥१५९

१६०। भविष्यति।

प्रभुरयम्। कल्किः—बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥१६०

१६१। अनद्यतने बालकल्किराशङ्कायामद्यतने च।

श्वः कृष्णं द्रष्टा परश्वो वा। तथा इयं ननु कदा गन्ता या कृष्णं वीक्ष्य रोदिति ॥१६१॥

१६२। यावत्पुराभ्यामच्युतः कदाकर्हिभ्यां कल्किश्च। *

यावत् पश्यामि, पुरा पश्यामि कृष्णम्। तथा कदा पश्यामि, द्रष्टास्मि, द्रक्ष्यामि वा। एवं कर्हि। अत्र यावदित्यव्ययमेव गृह्यते, नेह—यावदासिष्यते तावत् द्रक्ष्यामि ॥१६२॥

१६३। किं-कतर कतमैर्लिप्सायाञ्च ते।

कृष्णदर्शनं लब्धुकामः पृच्छति—कः कृष्णः दर्शयति, दर्शयिता, दर्शयिष्यति वा। प्रश्नोत्तरे च—तं प्रति निर्वक्ति, कस्ते कृष्णं दर्शयति, दर्शयिता, दर्शयिष्यति वा। एवं कतर-कतमौ ॥१६३॥

१६४। वाञ्छितादन्यसिद्धौ च ते।

यो दध्योदनं ददाति, स कृष्णं पश्यति। इति दातारं कृष्णदर्शनसिद्धौ प्रोत्साहयति। पक्षे कल्किद्वयम् ॥१६४॥

१६५। विधात्रर्थस्य लक्षणाच्च ते।

गुरुश्चेत् कृपयति, कृपयिता, कृपयिष्यति वा, अथ त्वं कृष्णं सेवस्व। विधातुरर्थोऽत्र कृष्णसेवाप्रेरण तस्य लक्षणं गुरुकृपा ॥१६५॥

१६६। मुहूर्त्तोपरितनत्वे तु विधिश्चात्र।

कृपयेद्वेति। भविष्यतीति निवृत्तम् ॥१६६॥

१६७। वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा भूते भविष्यति च।

कदा त्वं कृष्णमद्राक्षीः, द्रक्ष्यसि वा? तत्राह—एष पश्यामि। पक्षे यथाप्राप्तम् ॥१६७॥

१६८। आशंसायां भविष्यति वर्त्तमानवद्भूतवच्च वा।

क्षिप्रार्थ उपपदे कल्किः। आशंसार्थे विधिः। कृष्णश्चेदागच्छति, आगमत्, आगमिष्यति वा, सुखं पश्यामः, अद्राक्ष्म, द्रक्ष्यामो वा। तथा, कृष्णश्चेत् क्षिप्रमागमिष्यति, त्वरितं द्रक्ष्यामः। तथा कृष्णश्चेदागच्छेत्तर्ह्याशंसे त्वरितं पश्येयम् ॥१६८॥

१६९। क्रियासातत्यसामीप्ययोर्यथाकालमनद्यतने भूतेशकल्की।

क्रियासातत्ये यथा—यावज्जीवं हरिमसेविष्ट, सेविष्यते वा। येयं द्वादश्यतिक्रान्ता, तस्यां हरिमपूजयत्, आगामिन्यां पूजयिष्यति च ॥१६९॥

१७०। सीमोक्तावावरस्मिन् विभागे भविष्यदनद्यतने कल्किः, कालविभागे चाहोरात्रसम्बन्धहीने परस्मिंस्तु वा।

योऽयम् आ गोवर्द्धनादगन्तव्यः पन्थाः, तस्य यदवरं राधाकुण्डं, तत्र तदाराधनं करिष्यामः। तथा आगामिवत्सरस्य योऽवरो वैशाखस्तत्र हरिमाराधयिष्यामः। नेह – आगामिमासस्य योऽवरः पञ्चदशरात्रस्तत्र श्रीभागवतमध्येतास्महे। अत्र तु वा—आगामिवर्षस्याग्रहायण्याः परस्मिन् गीतां श्रोष्यामः, श्रोतास्मः। क्षिप्रार्थ इत्यादिना नियमा उक्ताः ॥१७०॥

१७१। विधिः तद्विषयक्रियातिपत्तौ त्वजितो भूतभविष्यतोः।

विभु इमौ, क्रियाया अनिष्पत्तिः क्रियातिपत्तिः ॥१७१॥

२। कर्हिभ्याञ्च (ख ग घ)।

१७२। हेतुतत्फलयोर्विधिस्तद्विषये कल्किश्च

प्रभू चेमौ। ततन्मात्रे विधिकल्की।
विधिविषयक्रियातिपत्तौ त्वजित इत्यर्थः।
कल्किश्चात्र विधिविषय एव। एवमुत्तरत्रापि।
वृन्दावनं चेत् गच्छेत्, कृष्णं पश्येत्। एवं कल्किः।
नेह—कृष्णं पश्यतीति नमस्कुरुते, इति शब्देनैव
हेतुतत्फलद्योतनात्। एवं कृष्णं पश्यतीति
तस्मान्नमस्करोतीत्यादि। क्रियातिपत्तौ—श्रीवृन्दावनं
चेदगमिष्यत्, कृष्णमद्रक्ष्यत्।
हेतुतत्फलयोरित्यधिकारमात्रं विधानसूत्रमपेक्षते,
तेन सम्भावनायां यो विधिर्वक्ष्यते,
तमपेक्ष्यदमुदाहृतम्॥१७२॥

१७३। सम्भावनार्थधातूपपदे यदित्यस्य प्रयोगे तु तद्विधिरेव।

सम्भावयामि अवकलयामि भवान् वृन्दावनं
चेद्गच्छेत्, कृष्णं पश्येत्, द्रक्ष्यति वा। यत्प्रयोगे
तु—सम्भावयामि यत् मथुरां गच्छेत्, कृष्णं
पश्येदित्येव। क्रियातिपत्तावद्रक्ष्यात्। एवमुत्तरेष्वपि
अजित-प्रयोगा मन्तव्याः॥१७३॥

१७४। वाढार्थोताप्योर्योगे विधिः शक्तिसम्भावने चालंशब्दाप्रयोगे तथा।

उत कृपयेत्, अपि कृपयेत् कृष्णः। तथा अपि
कृष्णं वशं कुर्य्यात्। नेह विधिः किन्त्वधिकारात्
कल्किरेव। अलं कृष्णं वशीकरिष्यति॥१७४॥

१७५। इच्छार्थाद्वर्त्तमाने विध्यच्युतौ।

इच्छेदिच्छति कृष्णम्॥१७५॥

१७६। इच्छार्थधातुसत्त्वे,
*विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टिसंप्रश्नप्रार्थनेषु च विधिविधातारौ।

इच्छामि कृष्णं पश्येयं पश्यानि वा।
विधिरज्ञातज्ञापनं प्रेषणञ्च। स च पुनर्द्विविधः—
दृष्टार्थादृष्टार्थतया, यथा—स्ववृत्तिं कुर्य्यात्, कृष्णं
भजेत्। निमन्त्रणम्—नियोगकरणम्, इह भुञ्जिथाः
वैष्णव। आमन्त्रणम्—कामचारकरणम्, इहासीथाः
अधीष्टिः—सत्कारपूर्विका व्यापारणा, गुरो मां
कृष्णमुपदिशेः। संप्रश्नोऽनुज्ञाप्रार्थनम्, किं
गीतामधीयीय श्रीभागवतं वा? प्रार्थने—लभेय
हरिभक्तिम्। एवं स्ववृत्तिं करोतु इत्यादि॥१७६॥

१७७। प्रैषातिसर्गप्राप्तकालत्वेषु विधातृविष्णुकृत्यौ।

प्रैषोऽत्र प्रेरणमात्रम्। अतिसर्गः कामचाराभ्यनुज्ञा।
कृष्णं भज त्वं, कामं भज त्वं कृष्णम्। कृष्णभक्तौ
कालस्ते प्राप्तः कृष्णं भज। त्रिष्वपि कृष्णो भजनीय
इत्यादि। पृथग्विधातृग्रहणं प्राप्तकालत्वे प्राप्तचर्थम्
॥१७७॥

१७८। मुहूर्त्तस्योपरि प्रैषादिषु विधिश्च स्मयोगे त्वधीष्टौ च विधातैव।

मुहूर्त्तस्योपरि कृष्णं भजेरित्यादि। तथा, कृष्णं
भज स्म, कृष्णमुपदिश स्म॥१७८॥

१७९। कालसमयवेलाप्रयोगे यच्छब्देन योगे विधिः।

कालोऽयं यत् सेवेथाः कृष्णम्। एवं
समयोऽयमित्यादि॥१७९॥

१८०। अर्हशक्त्योर्विधिविष्णुकृत्यतृणः[1]

कृष्णो रुक्मिणीमुद्वहेत्, हरेदित्यादि॥१८०॥

१८१। आशिषि कामपालविधातारौ।

कृष्णः कल्याणं क्रियात्, करोतु, कुरुताद्वा॥१८१

१८२। माङ्योगे सर्व्वापवादी भूतेशः।

मा कृष्णं परित्याक्षीः। कथं मा भवतु तस्य
पापं करिष्यति। निरनुबन्धोऽयं माशब्द इति॥१८२

१८३। मास्मयोगे भूतेश्वरश्च।

मास्म कृष्णं त्यजः, मास्म त्याक्षीः। व्यस्तेऽपीच्छन्ति
केचित्—स्म करोन्मा, स्य कार्षीन्मा। पृथग्योगात्
केवल 'मा' योगे तु न स्यात्—मा कृष्णं त्वाक्षीरित्येव
॥१८३॥

---

* प्रैष्यादिर्वाथ संकल्पभेदोऽथेष्टाभ्युपायता। शब्दव्यापारभेदो वा कार्य्यभेदोऽथवा विधिः॥ (संक्षिप्तसार-व्याकरणम्)

१। तृणः (क)

१८४। कालसामान्ये।

विभुरयम् ॥१८४॥

१८५। अपिजात्वोर्योगे गर्हायामच्युतः।

अपि भवान् अवैष्णवं श्राद्धे भोजयति ? एवं जातु। तदेतत्पर्य्यन्तं क्रियातिपत्तौ भाविनि च नित्यत्वेनाजितो ज्ञेयः। अथ भूते विकल्पेन भविष्यति तु नित्यत्वेन॥१८५॥

१८६। विधिविषयक्रियातिपत्तौ भूतेऽजितो वा।

विभुरयम् ॥१८६॥

१८७। कथं-योगे गर्हायां विध्यच्युतौ वा

स कथमवैष्णवमन्त्रं जपेत, जपति वा। पक्षे यथा-विहितश्च। कथं जपिष्यति, अजापीदित्यादि। विधिविषयेति। स कथमवैष्णवं मन्त्रमजपिष्यत्, जपेत्, जपति वा। भविष्यति तु अजपिष्यदित्येव ॥१८७॥

१८८। किंकतरकतमैर्योगे गर्हायां विधिकल्की

को नामावैष्णवं मन्त्रं जपेत्, जपिष्यति वा। एवं कतर नामेत्यादि। क्रियातिपत्तौ भूते अजपिष्यत् पक्षे जपेत, जपिष्यति वा। भविष्यति तु अजपिष्यत् एवमुत्तरत्राप्यजितो दृश्यः॥१८८॥

१८९। अश्रद्धामर्षयोर्विधिकल्की।

प्रभुरयम्। नश्रद्दधे कृष्णान्योऽग्रपूजां लभते, लप्स्यते वा। एवं न मर्षयामीत्यादि। सर्व्वत्राश्रद्धामर्षयोर्गम्यमानत्वेऽपि प्रयोगा ज्ञेया १८९

१९०। किंकिलास्त्यर्थयोर्योगे तु कल्किः।

विध्यपवादः। नावकल्पयामि किं किल कृष्णेतरोऽग्रपूजां लप्स्यते। एवं न मर्षयामि, न प्रत्येमि अस्ति नाम कृष्णेतर इत्यादि ॥१९०॥

१९१। यद्-यदि-यदा-जातुयोगे विधिः।

कल्क्यपवादः। नश्रद्दधे न क्षमे भवानपि कृष्णवत् यत् पूज्येत, यदि पूज्येत। एवं यदा, जातु ॥१९१॥

१९२। यच्च-यत्रयोश्च विधिः।

कल्क्यपवादः। न श्रद्दधे न क्षमे यच्च कृष्णवदितरः पूज्यते, यत्र वा। अश्रद्धामर्षौ निवृत्तौ ॥१९२॥

१९३। यच्च-यत्रयोगे गर्हायां विधिराश्चर्य्ये च।

सर्व्वापवादः। यच्च भवान् कृष्णपक्षं विमुञ्चेत्तदेतदन्याय्यम्। यत्रेत्यादि, तथा यच्चेत्यादि तदेतदाश्चर्य्यम् ॥१९३॥

१९४। यच्च-यत्राभ्यामन्यत्रोपपदे त्वाश्चर्य्यावगतौ कल्किर्यदिं विना।

चित्रं कृष्णेतरः सर्व्वं वशयिष्यति। यदि प्रयोगे तु—चित्रं यदि स वशयेत्। उक्तोऽजितविकल्पः। अत्र पूर्व्वत्र च यत्र विधिविषयत्वाभावस्तत्र क्रियातिपत्तौ नाजितस्तद्विषयत्वे तु यथोचितं ज्ञेयम्। इति कालसामान्यं निवृत्तम् ॥१९४॥

१९५। धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः।

द्वयोर्धात्वर्थयोर्विशेषणविशेष्यभावे सति भिन्नकाला अपि प्रत्ययाः साधवो भवन्ति। कृष्णोऽयं मथुरां, गतः, श्वो भविता। मथुरायां वसन् यादवान् ददर्श। एवं वर्त्तमाने तद्धितमतौ—कृष्णभक्तिमानयं भविता अत्रास्य गमनक्रिया श्वःसत्तायुक्ता भविष्यति, इत्याद्यर्थेषु लब्धेषु गमनादेर्विशेष्यत्वं, सत्तादेर्विशेषणत्वं सिध्यति। सोमयाजी तव पुत्रो जनिता—इत्यत्र च जनिना जननक्रियानन्तरसत्तोच्यते ॥१९५॥

१९६। क्रियासमभिहारे कालत्रयेऽपि विधाता, तस्य हिस्वावेव, तौ च तध्वंविषये वा

ततः इत्येव शब्द प्रयुज्यते। तदनन्तरं यथार्हं तद्धातुपदानुप्रयोगः। कर्त्तृकर्म्मणोः प्रयोगास्तु तत्पूर्व्वतस्तत्परतो वा। क्रियायाः समभिहारः पौनःपुन्यमतिशयश्च। तत्र द्विरुक्तिर्वाच्या। पश्य पश्य इत्येवायं पश्यति कृष्णम्। एवमद्राक्षीत् द्रक्ष्यति वा। सेवस्व सेवस्व इत्येवायं सेवते, एवमसेविष्ट, सेविष्यते वा। अर्थस्तु—कृष्णं मुहुर्भृशं वा पश्यतीत्यादिको ज्ञेयः। यङ्प्रत्ययस्तस्मिन्नेवार्थे विधीयमानोऽपि स्वयमेव समर्थत्वाद्द्विरुक्तिं नापेक्षत इति भेदः। युष्मदस्मदोः

कर्त्तोस्तु, पश्य पश्य इत्येव त्वं पश्यसीत्यादिकमुदाहार्य्यम्। तो च त-ध्वं-विषये वा, यथा, पश्यत पश्यत इत्येव यूयं पश्यथ कृष्णम्। पक्षे—पश्य पश्येत्यादि। तथा सेवध्वं सेवध्वमित्येव यूयं सेवध्वे कृष्णम्। पक्षे—सेवस्व सेवस्वेत्यादि ॥१९६॥

१९७। समुच्चितक्रियावचनाद्विधात्रादिकं वा

कृष्णं पश्य, रामं पश्य, श्रीदामानं पश्य इत्येवायं पश्यति, इमौ पश्यतः, इमे पश्यन्ति। अथवा कृष्णं पश्यति, रामं पश्यति, श्रीदामानं पश्यति इत्येवायं पश्यतीत्यादि। एवं युष्मदादिकर्त्तृषु सर्व्वेषु कालेषु वचनेषु चोन्नेयम् ॥१९७॥

१९८। अत्र समानार्थनानाधातुप्रयोगे सामान्यवचनधातुरनुप्रयुज्यते।

कृष्णं पश्य राममीक्षस्व, श्रीदामानं विलोकयेत्येवं निभालयतीत्यादि ॥१९८॥

१९९। प्रहासे मन्यत्युपपदाद्धातोरुत्तमस्य मध्यमो, मन्यतेश्च मध्यमस्योत्तमैकवचनम्।

एहि मन्ये कृष्णं द्रक्ष्यसि दृष्टोऽसौ तव पित्रेति। प्रहासे इति किम्? एहि मन्यसे, कृष्णं द्रक्ष्यामि, साधु मन्यसे। एवं मन्येथे, मन्यध्वेऽपि। एहीत्यव्ययं सम्बोधने। तदेवं वैष्णवो भवति। इत्याद्युदाहरणैर्वाक्यानि दर्शितानि ॥१९९॥

इति अच्युताद्यर्थाः।

अथ आत्मपद-परपदप्रक्रियाविशेषौ* ज्ञेयौ

२००। भावे कर्म्मणि सर्व्वस्माद्धातोः स्यादात्मनेपदम् ङिद्भ्य आत्मपदिभ्यश्च कर्त्तर्य्यपि विधीयते॥

अत्रात्मनेपदं, विभुश्च। भूयते, क्रियते, कामयते एधते ॥२००॥

२०१। ञिद्भ्य उभयपदिभ्यो णेः कर्त्तृगामिक्रियाफले।

कुरुते, यजते, कारयते। अत्र स्वार्थमिति गम्यम् नेह—करोति, यजति, कारयति। अत्र परार्थमिति गम्यम् ॥२०१॥

२०२। शब्दान्तरद्योतिते तु तत्फले स्याद्विभाषया।

स्वार्थम्—कृष्णं यजते यजति वा। कर्त्तृगामीति निवृत्तम् ॥२०२॥

२०३। धातोः क्रियाव्यतीहारे आत्मनेपदमिष्यते।

व्यतिसिञ्चते, परस्परं सिञ्चतीत्यर्थः ॥२०३॥

२०४। हसि-जल्पि-पठादिभ्यो गतिहिंसार्थकाच्च न।

व्यतिहसन्ति, व्यतिजल्पन्तीत्यादि। 'शब्दार्थमात्रान्न' इति कातन्त्रस्तद्धिस्तराख्यातचन्द्रिकासु। व्यतिगच्छन्ति, व्यतिघ्नन्ति ॥२०४॥

२०५। हरतेर्न निषेध स्याद्वहेऽपि च कुत्रचित्

संप्रहरन्ते, संविवहन्ते ॥२०५॥

२०६। परस्परेतरेतरान्योऽन्ययोगे निषेधनम्

परस्परं व्यतिलुनन्तीत्यादि। क्रियाव्यतिहारो निवृत्तः, आत्मनेपदन्त्वनुवर्त्तते ॥२०६॥

२०७। नेर्विशः।

निविशते ॥२०७॥

२०८। विपराभ्यां जेः।

विजयते, पराजयते ॥२०८॥

---

* अस्मिन् प्रकरणे सर्व्वाण्येव सूत्राणि अनुष्टुभ्छन्दो-निबद्धानि, तानि च खण्डशः प्रयुक्तानि मिलितानि सन्ति श्लोका भवन्ति

२०९। क्रीञः पर्य्यववेः परात्।

परिक्रीणीते। एवम् अव वि ॥२०९॥

२१०। आङो दाञो, न चेद्वक्त्रादिकस्य स्यात् प्रसारणम्।

आदत्त मृत्तिकां कृष्णो मुखं व्यादाच्च मायया।
आदिग्रहणादास्यप्रसारणसमानक्रियायामपि स्यात्—
विपादिकां व्याददाति, नदी कूलं व्याददादि।
स्वीयाङ्गकर्म्मकादेव निषेधः, तेन—

अन्यच्च किञ्चिद्वदनं व्यादेहीति दिशन्निव।
व्याददे स हरिर्वक्त्रं वकस्यामरवैरिणः॥

अकर्त्रभिप्रायार्थोऽयमारम्भः, तेन—'किं व्यादत्से विहग वदनम्' इति। अप्राप्तिपक्ष एव सूत्रविधानात् 'कर्त्तृगामिक्रियाफले भविष्यतीति पुरुषोत्तमः (पा १।३।२०) ॥२१०॥

२११। क्षान्तौ ण्यन्तागमेः।

आगमयतेऽपराधं कृष्णः, क्षमते इत्यर्थः।
कालहरणेऽपि केचित्, आगमयस्व साधुमिति उदाहरन्ति च ॥२११॥

२१२। नौतेः, पृच्छेश्चाङ् यदि पूर्व्वतः।

आनुते, क्रोशतीत्यर्थः। आपृच्छते, अनुज्ञार्थं याचते इत्यर्थः ॥२१२॥

२१३। अन्वाङ्परिभ्यः क्रीडश्च।

अनुक्रीडते। एवम् आ परि। अत्र सर्व्वत्रोपेन्द्रा एव गृह्यन्ते, न तु कृष्णप्रवचनीयादयो गौणमुख्यन्यायेन, तेन, नेह कृष्णमनुक्रीडति ॥२१३॥

२१४। समोऽकूजन इष्यते।

संक्रीडते। कूजने तु संक्रीडति शकटः॥

२१५। शकेः सनन्तात् पृच्छायाम्।

हरिभक्तिं शिक्षेत १ ॥२१५॥

२१६। नाथेराशिषि तन्मतम्।

विष्णुभक्तेर्नाथते। याच्ञायान्तु—तां नाथति। यदा तु द्विक्रियता प्रेरणं वाञ्छा रूपं च, तदा वाञ्छाया आशीरूपतया आत्मपदं भवत्येव।

"मार्गणैरथ तव प्रयोजनं
नाथसे किमु पतिं न भूभृतः।"

इत्यादि महाकविप्रयोगात् (किरातः १३।५९) २१६

२१७। हर्षे च जीविकायाञ्च, कुलायकरणेऽपि च, अपस्किरः।

चतुष्पाच्छकुनिकर्त्तृकत्व एव ज्ञेयम्। निपातात् सुट्। अपस्किरते, हृष्यन्, जीविकां, कुर्व्वन्, नीडं कुर्व्वन् वा किञ्चिन् प्रक्षिपतीत्यर्थः ॥२१७॥

२१८। अनुहरतेर्गतिताच्छील्य इष्यते।

पवनमनुहरते हनुमान्। 'ताच्छील्यमात्र' इति तु भर्त्तृहरि-पुरुषोत्तमौ ॥२१८॥

२१९। शपेस्तु शपथे तत् स्यात्।

गुरवे शपते ॥२१९॥

२२०। स्थो निर्णीतौ प्रकाशने प्रतिज्ञायाम्

स्थ इति प्रभुश्च। वैष्णवाचार्य्ये विचारस्तिष्ठते कृष्णाय तिष्ठते गोपी, कृष्णं परमातिष्ठते, श्रेष्ठां प्रतिज्ञां करोतीत्यर्थः ॥२२०॥

२२१। प्रावसंवेश्च।

प्रतिष्ठते। एवमव-सं-वि ॥२२१॥

२२२। अथोदोऽनूर्द्ध्वचेष्टने।

हरिसेवायामुत्तिष्ठते, तत्रोत्सहते इत्यर्थः।
अनूर्द्ध्व इति किम्? आसनादुत्तिष्ठति कृष्णः।
अचेष्टामात्रेऽपि न—हरिभक्तेः सुखमुत्तिष्ठति ॥२२२॥

२२३। देवार्च्चासङ्गतिकृतिमैत्रीषु पथि कर्त्तरि मन्त्रस्य करणत्वे चाकर्म्मत्वे चोपपूर्व्वकात्

भक्तो हरिमुपतिष्ठते। गङ्गा यमुनाम्, अर्ज्जुनः कृष्णं, पन्था मथुरां, वैष्णवो मन्त्रेण कृष्णं, हरिरनुव्रते उपतिष्ठते। लिप्सायामित्येके—
भिक्षुरन्नमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा। स्थ इति निवृत्तम् ॥२२३॥

२२४। समः पृच्छति-गमृच्छि-स्वृ-श्रुभ्यो वेत्तितस्तथा दृशोऽर्त्तेश्चाकर्म्मकत्वे।

१। शिशक्षते (क)

अकर्म्मकत्वे इति प्रभुश्च। संपृच्छते, संगच्छते, समृच्छिष्यते इत्यादि। अर्त्तेस्तु समारत। 'अरामान्य' (आ० प्र० ६३) इत्यादौ 'वेत्ते रुट् तु वा' (आ० प्र० ६५)—संविद्रते, संविदते ॥२२४॥

२२५। आङ्पूर्व्वात्तु यमेर्हने।

आयच्छते, आहते स्वयमेव। सकार्मकत्वे तु—आयच्छति, आहन्ति कंसम् ॥२२५॥

२२६। उद्विभ्यां तपतेः।

उत्तपते, वितपते। सकर्म्मकत्वे तु—उत्तपति कंसम्। अकर्म्मकत्वं निवृत्तम् ॥२२६॥

२२७। स्वाङ्गकर्म्मकाच्च यमादितः।

प्राण्यङ्गं मूर्त्तिमत् स्वाङ्गं विना द्रवविकारजे।
तद्वत् प्राणिप्रतिकृतेरङ्गं स्वाङ्गमितीर्य्यते॥

आयच्छते पाणिम्। विच्छिद्य पतितत्वेऽपि आयच्छते छिन्नपाणिं वा। द्रवत्वे विकारत्वे च न—आयच्छति रक्तं, शोथं वा। अमूर्त्तिमत्वे च न—आयच्छति बुद्धिम्। प्राणिप्रतिमायामपि तु स्यादेव—आयच्छते प्रतिमा पाणिम्। एवं हनि-तपी-उदाहार्य्यौ ॥२२७॥

२२८। प्रादेरूहास्यतिभ्यां वा।

समूहति, समूहते, निरस्यति, निरस्यते ॥२२८

२२९। ह्वः संनिव्युपतः सदा।

संह्वयते इत्यादि ॥२२९॥

२३०। आह्वः स्पर्द्धे।

कंसः श्रीकृष्णमाह्वयते ॥२३०॥

२३१। गन्धने तु भर्त्सने यत्नसेवयोः।
प्रकथे चोपयोगे च साहसे तु कृञो भवेत् ॥

कंसः कृष्णार्थमुत्कुरुते, उदाकुरुते वा हिंसापूर्व्वकं सूचयतीत्यर्थः। कृष्णपक्षमुनकुरुते, भर्त्सयतीत्यर्थः वैष्णवो गङ्गाजलस्योपस्कुरुते, सौगन्ध्यादिनाभिरुचितं करोतीत्यर्थः। भक्तः कृष्णमुपस्कुरुते, प्रकुरुते वा, सेवते इत्यर्थः। कृष्णो गीतां प्रकुरुते, प्रकर्षेण कथयतीत्यर्थः। असंख्यं धनं प्रकुरुते, धर्म्मार्थं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः। गोप्य कृष्णं प्रकुर्व्वते, तत्र साहसात् प्रवर्त्तन्ते इत्यर्थः ॥२३१॥

२३२। पूजाचार्य्यकृतिज्ञानोत्क्षेपणेषु भृतौ व्यये।
नीञो विगणने कर्त्तृस्थिते चामूर्त्तकर्म्मणि ॥

कृष्णः शास्त्रेषु नयते१, स तेषु पदार्थान् सर्व्वमसमान्वितान् कुर्व्वन् स्थापयतीत्यर्थः। उद्धवमुपनयते, आत्मानमाचार्य्यीकुर्व्वन् तत्समीपं प्रापयतीत्यर्थः। सर्व्वं नयते, निश्चिनोतीत्यर्थः। चक्रं दुष्टेषु उन्नयते, उत्क्षिपतीत्यर्थः। स कामानुपनयते, कामदान-वेतनेनात्मसमीपीकरोतीत्यर्थः सर्व्वमुपनयते, धर्म्मार्थं सर्व्वं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः सङ्कल्पं विनयते, तद्रूपमृणं निर्य्यातयतीत्यर्थः। क्रोधं विनयते, दूरीकरोतीत्यर्थः। पुरुषोत्तमस्त्वाह—'पूजायां शास्त्रार्थं२ नयते, युक्तिभिः समानयतीत्यर्थः' आचार्य्यकृतौ—उद्धवमुपनयते, आत्मवदाचार्य्यीकरोतीत्यर्थः इति ॥२३२॥

२३३। वृत्तुत्साहस्फीततासु क्रमेः।

क्रमेरिति प्रभुश्च। हरौ बुद्धिः क्रमते, तद्भक्तस्य वर्त्तते, न प्रतिहन्यते, इत्यर्थः। कृष्णभक्तये क्रमते, उत्साहं करोतीत्यर्थः। वैष्णवानां श्रीः क्रमते, वर्द्धत इत्यर्थः ॥२३३॥

२३४। नोपेन्द्रत विना परोपाभ्याम्।

हरौ बुद्धिः प्रक्रामतीत्यादि। इह तु स्यात्—पराक्रमते, उपक्रमते ॥२३४॥

२३५। तथाङ्पूर्व्वाज्ज्योतिरुद्गम इष्यते।

आक्रमते भानुः। उद्गमे किम्? आक्रामति गिरिं रविः, अवष्टभ्नातीत्यर्थः ॥२३५॥

२३६। वेः पादविहृतौ तद्वत्।

विक्रमते त्रिविक्रमः ॥२३६॥

२३७। आरम्भे प्रादुपात्तता।

प्रक्रमते, उपक्रमते ॥२३७॥

२३८। अनुपेन्द्राद्विभाषा।

क्रामति, क्रमते। क्रमिर्निवृत्तः ॥२३८॥

१। उपनयते (क) २। शास्त्रेषु (क)।

२३६। ज्ञोऽकर्म्मकापह्नवार्थतः।

गङ्गाजयस्य जानीते। तत्त्वमपजानीते गोपते इत्यर्थः ॥२३६॥

२४०। संप्रतिभ्यां समुत्कण्ठापूर्व्वकस्मरणं विना।

संजानीते जनं हरिः, भक्तायाभीष्टं प्रतिजानीते प्रतिज्ञां करोतीत्यर्थः। उत्कण्ठापूर्व्वकस्मरणे तु—हरिं संजानाति भक्तो, हरेर्वा ॥२४०॥

२४१। यत्नोपसान्त्वनज्ञानभासनेषूपमन्त्रणे विमतौ चापि वदतेः।

वदतेरिति प्रभुश्च। भक्तौ वदते वैष्णवः। हरिर्भक्तानुपवदते। भक्तो हरिं वदते। भासने तु—हरिर्भक्तौ वदते, तत्र प्रकाशमानस्तां व्यनक्तीत्यर्थः। उपमन्त्रणे—हरिर्गोपीमुपवदते, रहस्युपच्छन्दयति, लोभयतीत्यर्थः, पृच्छतीति वा। तथा विवदन्ते तर्कनिष्ठाः ॥२४१॥

२४२। व्यक्तवाचां सहोक्तिषु।

संप्रवदन्ते वैष्णवाः। नेह—संप्रवदन्ति मयूरा ॥२४२

२४३। अनोरकर्म्मकात्तत्र।

अनुवदते श्रीशुकस्य सूतः ॥२४३॥

२४४। विप्रलापे विभाषया।

विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वा स्मार्त्ताः। विदतेर्निवृत्तः ॥२४४॥

२४५। सृजेः श्रद्धावतः श्यश्च।

वैष्णवो मालां सृज्यते। श्रद्धां विना तु—सृजति इति भट्टमल्लः। 'भूतेशे तनि इण्' इति वर्द्धमानः—असर्जि मालां वैष्णवः ॥२४५॥

२४६। अवाद्ग्रः[१]।

अवगिरते। गृणातेर्नेष्यते—अवगृणाति ॥२४६॥

२४७। आङ्गीकृतौ समः।

संगिरते ॥२४७॥

२४८। उदः सकर्म्म-चरतेः।

कर्म्मोच्चरते विष्णुभक्तः, उत्क्रम्य तिष्ठतीत्यर्थः अकर्म्मकत्वे तु—वंशीध्वनिरुच्चरति ॥२४८॥

२४९। तृतीयायोगतः समः।

रथेन सञ्चरते हरिः ॥२४९॥

२५०। दाणः सा चेच्चतुर्थ्यर्थे।

सेति तृतीया। विष्णुप्रसादं तद्विमुखैः संप्रयच्छते ॥२५०॥

२५१। स्वीकारे तुपयच्छते।

रुक्मिणीमुपयच्छते। स्वीकार इति दारकर्म्मण्येवेति काशिकादय *। स्वीकारमात्र इति तु—पुरुषोत्तमः (ग १।३ ५६) 'उपायंसत नास्त्रम्' इति भट्टिः (८।३३) ॥२५१॥

२५२। अथ स्मृ-ज्ञा-पश्यतीनां सनः।

सुस्मूर्षते, जिज्ञासते, दिदृक्षते ॥२५२॥

२५३। अनुज्ञां विना।

अनुजिज्ञासति ॥२५३॥

२५४। तथा, प्रत्यङ्पूर्व्वं वर्ज्जयित्वा श्रुव आत्मपदं सनः।

शुश्रूषते, प्रशुश्रूषते। नेह—प्रतिशुश्रूषति, आशुश्रूषति ॥२५४॥

२५५। अयज्ञपात्रे तुयुजेरजाद्यन्तादुपेन्द्रतः।

उदयुङ्क्ते, प्रयुङ्क्ते। नेह—प्रयुनक्ति यज्ञपात्रम् ॥२५५॥

२५६। समः क्ष्णौतेः।

संक्ष्णुते ॥२५६॥

२५७ अनवने भुनक्तेः।

भुङ्क्ते उपभुङ्क्ते। अवने तु—भुनक्ति पृथिवीं रामः, पालयतीत्यर्थः ॥२५७॥

१। अवाद्गुः (ख ग घ)। * पाणिग्रहणविशिष्टमिह स्वीकरणं गृह्यते, न स्वीकरण-मात्रम् (काशिका १।३।५६)

२५८। अथ णेरणौ यत् कर्म्म णौ स कर्त्ता चेद्धवेदाध्यानवर्ज्जिते *।

अण्यन्ते यत् कर्म्म, तद्यदि ण्यन्ते कर्त्ता स्यात्तदा णेरात्मपदमित्यर्थः। अण्यन्ते—हरिरारोहति तार्क्ष्यम् ण्यन्ते तु—हरिमारोहयते तार्क्ष्यः। एवं हरिं पश्यति यस्तं स्वयमात्मानं दर्शयते हरिः। आध्यानमुत्कण्ठापूर्व्वकस्मरणं, तत्र तु—स्मारयति भक्तान् हरिः ॥२५८॥

२५९। मिथ्याशब्दोपपदतः पौनःपुन्ये कृञो णितः।

पदं मिथ्या कारयते, मुहुरशुद्धमुच्चारयतीत्यर्थः ॥२५९॥

२६०। प्रलम्भे गृधिवञ्चोर्णेः।

बालकृष्णं गर्द्धयते, वञ्चयते वृद्धा। 'प्रलम्भे' किम्? अहिं वञ्चयति ॥२६०॥

२६१। कर्त्तृगामिफले त्वथ।

प्रभुरयम् ॥२६१॥

२६२। अपाद्वदः।

अपवदते ॥२६२॥

२६३। समुदाङ्भ्यो यमेरग्रन्थगौरवे।

मनः संयच्छते। हरिभक्तिमुद्यच्छते। आयच्छते। सुवनार्थादित्यादि—उदायसत१। ग्रन्थगौरवे तु—गीतामुद्यच्छति भगवद्धर्म्मं वा ॥२६३॥

२६४। ज्ञ उपेन्द्र-विनाभावात्।

कृष्णं जानीते भक्तः। उपेन्द्रे तु—प्रजानाति। अकर्त्तृगामिफले तु परस्य गां जानाति। इतः परं निषेधः स्यात् सामान्यवचने यथा—'धरित्रीं दुदुहुः केचित्, स्वार्थं परार्थं च' इति सामान्यवचनत्वम् ॥२६४॥

२६५। परानुभ्यां कृञस्तद्वत्।

पराकरोति, अनुकरोति ॥२६५॥

२६६। क्षिपोऽभिप्रत्यतेः परात्।

अभिक्षिपति। एवं प्रति, अति ॥२६६॥

२६७। प्राद्वहः।

प्रवहति। परितो भट्टमल्ल आह—परिवहन्ति २६७

२६८। परेर्मृषः।

परिमृष्यति ॥२६८॥

२६९। व्याङ्परिभ्यो रमः।

विरमति। एवम् आ, परि ॥२६९॥

२७०। उपात्।

विष्णुदत्तमुपरमति, उपरमयतीत्यर्थः ॥२७०॥

---

* णेरणौ यत् कर्म्म णौ चेत् स कर्त्ताऽनाध्याने (पा १।३।६७)—ण्यन्तादात्मनेपदं स्यादणौ या क्रिया सैव चेत् ण्यन्तेनोच्यते, अणौ यत् कर्म्मकारकं स चेण्णौ कर्त्ता स्यान्न त्वनाध्याने। णिचश्चेति सिद्धेऽकर्त्रभिप्रायार्थमिदम्। कर्त्रभिप्राये तु विभाषोपपदेनेति विकल्पेऽणावकर्म्मकादिति परस्मैपदे च परत्वात् प्राप्ते पूर्व्वविप्रतिषेधेनेदमेवेष्यते। कर्त्तृस्थभावकाः कर्त्तृस्थक्रियाश्चोदाहरणम्, तथाहि पश्यन्ति भवं भक्ताः, चाक्षुषज्ञानविषयं कुर्व्वन्तीत्यर्थः। प्रेरणांशत्यागे—पश्यति भवः, विषयो भवतीत्यर्थः, ततो हेतुमण्णिच्—दर्शयन्ति भवं भक्ताः, पश्यन्तीत्यर्थः। पुनर्ण्यर्थस्याविवक्षायां दर्शयते भवः। इह प्रथमतृतीययोरवस्थयोर्द्वितीयचतुर्थ्योश्च तुल्योऽर्थः। तत्र तृतीयकक्षायां न तङ् क्रियासाम्येऽप्यणौ कर्म्मकारकस्य णौ कर्त्तृत्वाभावात्। चतुर्थ्यां तु तङ् द्वितीयामादाय क्रियासाम्यात्, प्रथमायां कर्म्मणो भवस्येह कर्त्तृत्वाच्च। एवमारोहयते हस्तीत्युदाहरणम्। आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः, न्यग्भावन्तीत्यर्थः। तत आरोहति हस्ती, न्यग्भवतीत्यर्थः। ततो णिच्—आरोहयन्ति, आरोहन्तीत्यर्थः। तत आरोहयते, न्यग्भवतीत्यर्थः। यद्वा—पश्यन्त्यारोहन्तीति प्रथमकक्षा प्राग्वत्। ततः कर्म्मण एव हेतुत्वारोपाण्णिच्—दर्शयति भवः। आरोहयति हस्ती पश्यत आरोहतश्च प्रेरयतीत्यर्थः। ततो णिग्भ्यां तत्प्रकृतिभ्यां च उपात्तयोरपि प्रेषणयोस्त्यागे—दर्शयते, आरोहयते इत्युदाहरणम्। अर्थः प्राग्वत्। अस्मिन् पक्षे द्वितीयकक्षायां न तङ्, समानक्रियत्वाभावाण्णिजर्थस्याधिक्यात्। अनाध्याने किम्? स्मरति वनगुल्मं कोकिलः। स्मरयति वनगुल्मः, उत्कण्ठापूर्व्वकस्मृतो विषयो भवतीत्यर्थः। (सिद्धान्तकौमुदी, आत्मनेपदप्रक्रिया)

१। उदायच्छत (क)

२७१ । विभाषा चेदकर्म्मकः ।
उपरमति, उपरमते, निवर्त्तते इत्यर्थः ॥२६१॥

२७२ । बुधेर्युधेर्नशिजनोः प्रुद्रुस्रू णामिङोऽपि णेः ।

बोधयतीत्यादि । इङ् अध्यापयति ॥२७२॥

२७३ । कम्पाहारार्थणेस्तद्वत् ।
वृक्षं कम्पयति, अन्नं भोजयति ॥२७३॥

२७४ । अणौ ये स्युरकर्म्मकाः ।
सचित्तकर्त्तृकाश्चैव तेषां णेः, सूत्रयुग्मके ।
आस्ते शेते च कृष्णः । आसयति शाययति च कृष्णं माता । अचित्तकर्त्तृकत्वे तु—नश्यति संसारः नाशयते संसारं हरिः ॥२७४॥

२७५ । अत्ति-पिबति-दम्यादीन् विनैव स्यान्निषेधिता ।

आदयते, पाययते, दमयते मनो वैष्णवोः । आदिना आयासयते, आयामयते, परिमोहयते, रोचयते, नर्त्तयते, वादयते, वस निवासे वासयते, धापयते । अकर्त्तृगामिफले—विप्रानादयति सूपकारः ॥२७५॥

इति श्रीश्रीहरिनामामृताख्ये वैष्णवव्याकरणे
विष्णुभक्तयर्थप्रकरणं चतुर्थं कारकं समाप्तम् ।



[पञ्चमम्]

अथ कृदन्तप्रकरणम्

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

**१] धातुं सर्व्वमुपादायसर्व्वं रूपं करोति यः ।
कृत् स एवेति विस्मित्य तद्धर्म्मा कृत् प्रशस्यते ॥**

१ । धातोः कृद् बहुलं कर्त्तरि ।
धातोरुत्तरे कृत्प्रत्ययो बहुलं स्यात् । स च कर्त्तरीत्यधिक्रियते । वासुदेवोऽयम् ॥१॥

२ । वर्त्तमानादौ शतृशानावच्युताभौ फलान्तरप्रयोगे परपदात्मपदयोः ।
'सत्' इत्यन्ये, अशावितो, शवादिः, ततश्च 'भवत्' इति स्थिते नामसंज्ञायां प्रत्ययेषु विष्णुभक्तिमात्रवर्ज्जनात् कृत्तद्धितयोरपि नामत्वं सिद्धम् । ततश्च 'प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थं सह ब्रूतः' इति न्यायेन धात्वंशस्यापि तदन्तर्भूतत्वात् तेन मिलित्वा नामत्वं सिद्धम् । ततो वैष्णवो भवन् विराजते, वैष्णवौ भवन्तौ विराजेते, वैष्णवो भवन्तो विराजन्ते । एवं मालां कुर्व्वन् विराजते कुर्व्वाणः । श्रीकृष्णं भजतो जितम् । श्रीकृष्णं भजतः शिवम् । सम्बोधने च—हे कुर्व्वन् । पा पाने—पिवन्, भौवादिकस्यैव पिबादेशो घ्रादीनां साहचर्य्यात् । पा रक्षणे—पान्, पान्तौ । 'फलान्तर' इत्यादि किम् ? वैष्णवः करोति । अकर्म्मकात्तदप्रयोगेऽपि क्वचित्—सन्, विद्यमानो, घटमानोऽसौ ॥२॥

३ । अतो मुगाने ।
पचमानं वैष्णवं पश्य ॥३॥

४। मायुक्ताच्छतृशानावाक्रोशे।*

मा पचन्नवैष्णवो विष्णोर्नैवेद्यम्, मा पचत्वित्यर्थः ॥४॥

५। क्रियायाश्चिह्ने हेतौ च शतृशानौ।

तिष्ठन् हरिं स्तौति। हरिं भजन् मोदते ॥५॥

६। आत्मपदस्थानीयत्वाद्बाहुल्याच्च शान-कानौ भावकर्म्मणोश्च, भावकृदब्रह्माणि, उपेन्द्रात् कृन्नस्य सर्व्वेश्वरात् परस्य णत्वं, भा-भू-पुना-कमि-गमि-प्यायि-वेप-वर्ज्जम्।

७। णेर्व्वा ख्यातेश्च, नरामोद्धवादीश्वरादेरेव विष्णुजनादेरीश्वरोद्धवाद्वा।

वैष्णवेन प्रगीयमाणं वर्त्तते। वैष्णवेन प्रगीयमाणो हरिः प्रीणाति। 'भा' आदि निषेधः (कृ० प्र० ६) किम्? प्रभायमानम् ॥७॥

८। ण्यन्ते च न।

प्रभाप्यमानम्। 'पुना' (कृ० प्र० ६) इति श्ना-निर्द्देशः, ततः पूञः प्रपूयमानम् पूङस्तु णत्वमेव—प्रपवमाणम्। णेस्तु प्रगाप्यमाणः, प्रगाप्यमानो वा। एवं 'ख्या-नरामो' (कृ० प्र० ७) इति प्रेङ्ख्यमाणमित्यत्रैव णत्वं, न तु प्रकम्प्यमानमित्यत्र णौ कृते तु नरामोद्धवधातुत्वं न स्यात, तत्र तु विकल्प एव—प्रेङ्ख्यमाणः, प्रेङ्ख्यमानो वा। 'उम्भ पूरणे' इत्यस्य प्रोम्भणमित्यत्रापि नित्यमिति काशिकादिमतम्। इवेरन्तस्थान्तस्य तु प्रेण्वनमित्यत्र न णत्वं, पूर्व्वोक्तनिमित्तत्वाभावात।१ 'विष्णु' (कृ० प्र० ७ इति प्रगूहमाणः, प्रगूहमानो वा ॥८॥

९। आसः शानस्य ईनः।

आसीनः ॥९॥

१०। परपदिनश्च शानस्ताच्छील्य-वयः-शक्तिषु।

भक्तं भजमानः, कवचं बिभ्राणः, रावणं निघ्नानः ॥१०॥

११। वेत्तेः शतुर्वसुर्वा।

विदन् विद्वान् कृष्णम्। अकर्म्मकत्वेऽपि—विद्वान् पण्डितः ॥११॥

१२। शतृशानौ भविष्यति च, तत्पूर्व्वं स्यश्च

करिष्यन्, करिष्यमाणः ॥१२॥

१३। अर्हः शतृ पूज्ये।

अर्हन् ॥१३॥

१४। इङ्-धारिभ्यां शत्रकृच्छ्र-कर्त्तरि।

अधीयन् श्रीभागवतम्, धारयन् वेदान्। कृच्छ्रत्वे तु—कष्टेनाधीयानः ॥१४॥

१५। द्विषः शतृ शत्रौ।

द्विषन्। अर्हदादयश्च फलान्तरं नापेक्षन्ते, रूढत्वात्।

मुख्यो लाक्षणिको गौणः शब्दः स्यादौपचारिकः।
रूढो वा योगरूढो वा यौगिकः शब्द एव च ※ ॥१५

१६। न नारायणाच्छतुर्नुम् कृष्णस्थाने, ब्रह्मणस्तु वा।

ददत्, ददती, जक्षत्, जक्षती, ददन्ति, ददति ॥१६॥

१७। शप्-शाभ्यां शतुर्नुम् ई-प्रत्यये, शेषाद्वयात्तु वा।

चतुर्भुजानुबन्धाल्लक्ष्म्यामीप् वक्ष्यते (त० प्र० १६०)। ब्रह्मण औ ई त्रोक्तः (वि० प्र० ६४) क्रीडन्ती दीव्यन्ती गोपश्रेणी, गोपकुले वा। न दृश्यते च—

---

* मा जीवन् जस्य कृष्णाय क्रमते चक्षुरादि न। म्रियमाणश्च मा यस्य तस्मै तन्न प्रवर्त्तते ॥ (श्रीगोपालचम्पूः पू:२२।३८)

१। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (पा ८।४।२) इत्यत्र पाणिनि-सूत्रेऽपि काशिकादावित्थमाह नुम्ग्रहणमात्रानुस्वारोपलक्षणार्थम्, तेन तृण्हइत्यस्य तृंहणमित्यत्र णत्वं स्यात्, न तु प्रेण्वनमित्यत्रापि नुमोऽनुस्वारत्वाभावेन णत्वाभावात्।' इत्यधिकः पाठः (क)

※ मुख्यो यथा—घटपटादिः, लाक्षणिकः—गङ्गातटादिः, गौणः—अग्निर्माणवकादिः, औपचारिकः—सत्या (सत्यभामादिः), रूढः—डित्थडवित्थादिः, योगरूढः—पङ्कजादिः, यौगिकः—पाचकादिः।

"गतेऽर्द्धरात्रे परिमन्दमन्दं
गर्ज्जत्यसौ प्रावृषि नीलमेघः।
'अपश्यती' वत्समिवेन्दुबिम्बं
विभावरी गौरिव हुङ्करोति ॥"

—इति पाणिनिमुनेः काव्यम् (पातालविजयम्)

अरामहरस्य निमित्तमरामः पूर्व्ववच्च। तुदती तुदन्ती, भाती भान्ती, करिष्यती करिष्यन्ती वा, ते वा। अन्यत्र तु—अदती, कुर्व्वती ॥१७॥

१८। जीर्य्यतेरतृ भूते च।

जरन्, जरन्तौ ॥१८॥

१९। परोक्षातीते क्वसु-कि-काना अधोक्षजाभसंज्ञाः परपदात्मपदयोः।

प्रायश्छान्दसा एते। उकावितौ। अधोक्षजाभत्वाद् द्विर्व्वचनादि ॥१९॥

२०। नरे कृतेऽप्येकसर्व्वेश्वरादारामान्ताद् घसेश्चैवेड् वसौ नान्येभ्यः।

एष भेजिवान् कृष्ण, भाजयाञ्चकृवान्। आदिवान् तन्नैवेद्यम् आदयाञ्चकृवान्। वमोर्वस्य उत्वे निषेधप्राप्ते गिटोऽपायो निमित्तत्वाभावात्। भेजुषः, आदुषः। ददिवान् दरिद्रामासिवान्। मतान्तरे—ददरिद्रवान्। तन्मते अत्रेटश्च निषेधः। जक्षिवान् ॥२०॥

ऋ गतौ, द्विर्व्वचनादि—

२१। अर्त्तेर्गोविन्दः क्वसौ।

आरिवान्। नान्येभ्य इट्—बभूवान्। वसोर्वस्य उर्भगवति (वि० प्र० १४२) 'भुवो भूव्' (आ०प्र० ५६) बभूवुषः। शृ, दृ इत्येतयोर्वामनो वेति—शश्रुवान्, शशर्वान्। जागृ—जजागर्वान्, 'जजागृवान्' इत्येके भन्जो—बभज्वान्। अत्र छवयोः शोठौ (आ० प्र० ४२१) विकल्पयन्ति—विच्छ—विविच्छवान्, विविश्वान्। सङ्कर्षण एव—पपृच्छवान्।

कलापमतन्तु चिन्त्यम्। दिव—'यवयोर्हरो बले' (आ० प्र० ५०३) दिदिवान्, भगवति—दिदिवुषः इत्यादि, मतान्तरे—दिद्युषः ॥२१॥

२२। गम-हन-विन्द-दृश-विशिभ्य इड् वा वसौ जग्मिवान्, जगन्वान्, जग्मुषः। 'धातोर्मो नः' (वि० प्र० १२९) जगन्वान्, जग्मुषः। जघ्निवान्, जघन्वान्, जघ्नुषः इत्यादि। 'विन्दः' इति नुमा निर्द्देशः—विविद्वान्, विविदिवान् ॥२२॥

२३। ईयिवस्-प्रभृतयः।

इटा त्रिविक्रमादिना चैते क्वस्वन्ता निपात्यन्ते। इनुर्ईयिवान्। स पेन्द्रत्वेऽपि—समीयिवान् ईयुषः। दाशृ-सह-मिहां दाश्वान्, साह्वान्, मीढ्वान् निपात्यते। रध—रेधिवान्।

अथ कानः। चक्राणः रासं कृष्णः। कर्म्मणि—कृष्णेन चक्राणो रासः। भावे—कृष्णेन चक्राणम्। जजागराणम्, जजाग्राणम्' इत्यपि केषाञ्चित् ॥२३॥

२४। अनूचानः कर्त्तरि।

अनुवचो निपातः ॥२४॥

२५। क्तवतुर्भूते।

उकावितौ क्रीडितवान् कृष्णः। कृतवान् क्रीडाम् क्रीडीतवन्तौ रामकृष्णौ ॥२५॥

२६। क्तो भूते भावकर्म्मणोः।

स्नातं कृष्णेन। स्तुतो विष्णुर्वैष्णवैः ॥२६॥

२७। अतीतादौ क्त-क्तवतू विष्णुनिष्ठासंज्ञौ।

'निष्ठा' इत्यन्ये ॥२७॥

२८। क्षियस्त्रिविक्रमो विष्णुनिष्ठायां कर्त्तरि, आक्रोशदैन्ययोस्तु वा, तस्मात्तरामस्य नः।

क्षिधातुर्द्विविधः—अन्तर्भूत-ण्यर्थ, केवलश्च। क्षीणवान् कामं वैष्णवः ॥२८॥

२९। क्तः कर्त्तरि च वाच्यः।

क्षीणायुर्भव, क्षितायुर्वा। क्षीणोऽयं वैष्णवः, क्षितो वा। भावकर्म्मणोस्तु—क्षित कामेन वैष्णवस्य क्षितः कामो वैष्णवेन ॥२९॥

३०। श्रिञो जागृवर्ज्जं चतुर्भुजान्ताच्च नेट् कपिले।

श्रितः, भूतः, ऊर्णुतः, क्षुतः। जागृस्तु—जागरितः ॥३०॥

३१ । र-दाभ्यां विष्णुनिष्ठा-तस्य पूर्व्वदस्य च नो दां विना, नुद-विनत्ति-त्रा-घ्रा-ह्री-उन्दीभ्यो वा ।

शॄ—शीर्णः, भिन्नः, नुन्नः, नुत्तः, विन्नः, वित्तः त्राणः, त्रातः, घ्राणः, घ्रातः, ह्रीणः, ह्रीतः ।।३१।।

३२ । आ-ईरामानुबन्धाद्विकल्पितेटः श्वयतेराश्वसेर्वमेश्च नेड् विष्णुनिष्ठायाम् ।

उन्नः, उत्तः । 'नवर्ज्जतवर्गस्थस्य' (वि० प्र० १२८) इत्युक्तेरत्र तु मुर्द्धन्यत्वम्—क्षुण्णः ।।३२।।

३३ । हरिमित्रयुक् सत्सङ्गाद्यारामान्त—ल्वादिभ्य ओरामेतश्च विष्णुनिष्ठा-तस्य नः, दुनोति-ग्वोस्त्रिविक्रमश्च ।

द्राणः, ग्लानः, लूनः ।।३३।।

३४ । पूञो विनाश एव ।

पूनः, नष्ट इत्यर्थः । अन्यत्र तु—पूतः । ज्या—'ग्रहि ज्या' (आ० प्र० २६५) इति सङ्कर्षणः, 'श्या-श्वि-व्या-ज्या' (आ० प्र० ५०५) इति त्रिविक्रमः—जीनः । टुदु उपतापे—दूनः । 'दु गतौ' इति प्रसादे भ्रमः, अमरकोष* कविकल्पद्रुमादि* (उकारान्तवर्गे तृतीयः श्लोकः) विरोधात् गूनः । विष्णुनिष्ठादेशस्य षत्वादन्यत्र स्थानिवद्भाव इष्टः, तेन चवर्गस्य कवर्गे—भुजो भुग्नः । ओव्रश्च सङ्कर्षणः, विष्णुनिष्ठा-तस्य नः, 'स्कोः सत्सङ्गाद्योर्हरः' (वि० प्र० १०४) 'छ्शो राज्' (वि० प्र० १०३) इत्यादिना प्राप्तं षत्वमत्र तु न स्यात् । ततश्चवर्गस्य कवर्गो, णत्वम्—वृक्णः । ओहाक्—प्रहीणः । दिवादौ षूङादयो व्रीङन्ता आरामेतः—सूनः, दूनः ।।३४।।

३५ । डीङो नेट् च ।

डीनः, लीनः, दीनः ।।३५।।

३६ । स्फायः स्फीर्व्वा विष्णुनिष्ठायाम् स्फीतः, स्फातः । उच्छी विवासे, व्युष्टा रजनी*, अतिक्रान्तेत्यर्थः ।।३६।।

३७ । श्यैङः सङ्कर्षणो द्रवकाठिन्ये हिमत्वे च, प्रतेस्त्वन्यत्र च, अभ्यवाभ्यामेव वा विष्णुनिष्ठायां, विष्णुनिष्ठा-तस्य नो, न तु हिमत्वे ।

शीनं घृतम्, हिमत्वे तु—शीतं जलम् । द्रवेत्यादिभ्यामन्यत्र—संश्यानो गौः, शीतात् सङ्कुचित इत्यर्थः । प्रत्यादिभ्यस्तु—प्रतिशीनो गौर्द्रवो वा । अभिश्यानः, अभिशीनः । एवमव । एवकारात्—समवश्यानः ।।३७।।

३८ । दिवो विष्णुनिष्ठा-तस्य नो, न तु विजिगीषायाम्, अश्चोऽनपादाने ।

इवन्तत्वात् सनि विकल्पितेट्—द्यूनः । विजिगीषायाम्—द्यूतम् । अश्च—समक्नः । अपादाने तु—उदक्तः कूपः आसनात् ।।३८।।

ञिफला आरामानुबन्धः —

३९ । चरफलयोरस्य उस्ते ।

प्रफुल्तः । 'ते' इति किम् ? फलिता । फल निष्पत्तौ—फलितः । 'किति' इति तस्यां भ्रमः ।।३९

४० । फुल्लोत्फुल्लसंफुल्लक्षीव१ कृशोल्लाघाः ञिफलादीनामेते निपाताः ।

प्रकरणाद्विष्णुनिष्ठोपलक्षणमिदं, तेन यथासम्भवं क्तवतावपि—फुल्लः, फुल्लवान् । क्षीवृ—क्षीवः, क्षीववान् । कृशेः—कृशः, कृशवान् । लाघृङ् सामर्थ्ये उल्लाघः, उल्लाघवान् । तान्योपेन्द्रात्—प्रफुल्तः इत्यादि । कथं 'प्रफुल्लपुण्डकाक्षं याः पश्यन्ति हरेर्मुखम्' इति ? पश्चात् समासेन ।।४०।।

४१ । निर्वो निर्वाणो, न तु वाते ।

वा गति-गन्धनयोः । निर्वाणो वह्निर्मुनिर्वा ।

---

* सन्तापितश्तु तप्तो धूपित-धूपायितौ च दूनश्च । इत्यमरकोषः (३।१।१०२) ।

* "टुदुवोऽनुतापे" इति कविकल्पद्रुमः ।

* सा व्युष्टा रजनी तत्र पितुर्वेश्मनि भामिनी । विश्रान्ता मातरं राजन्निदं वचनमब्रवीत् ।। (महाभारतम्, नलोपाख्यानम्)

१ । क्षीवृ (क)

वाते तु—निर्वातो वातः ।।४१।।

४२ । निर्विण्णो निर्विद्यते ।

कृतमूर्द्धन्यो निपात्यते ।।४२।।

४३ । सिनः कर्म्मकर्त्तरि बन्धे ग्रासे ।

सिञ्‌ बन्धने, सिनो ग्रासः स्वयमेव ।।४३।।

४४ । शुषो विष्णुनिष्ठा तस्य कः, पचो वः, क्षायो मः ।

शुष्कः, पक्वः । क्षै क्षये—क्षामः ।।४४।।

४५ । प्रस्तीमादयः प्र-पूर्व्वस्य स्त्यायो निपात्यन्ते ।

प्रस्तीमः, प्रस्तीमवान्, प्रस्तीतः प्रस्तीतवान् ।।४५

४६ । न ध्या-ख्या-पॄ-मदि मूर्च्छिभ्यो नः ।

ध्यातः, ख्यातः, पूर्त्तं, मत्तः । 'राच्छवयं हरः क्वौ कंसारिवैष्णवे च' (आ० प्र० ५०२)— मूर्त्तः । ॠ गतौ क्र्यादिः, 'ओष्ठ्योद्धवस्य' (आ० प्र० ३४८) इति धातुविशेषणत्वात् समीर्णः ।।४६।।

४७ । वित्तं भोग्ये प्रतीते च ।*

वित्तं धनम्, वित्तः कृष्णः ।।४७।।

४८ । भीम भीष्मौ भयानके साधु ।

४९ । निरः कुष इड्‌ विष्णुनिष्ठायाम् ।

'निरः कुषो वेट्' (आ० प्र० ४१८) इति विकल्पितेऽयम्—निष्कुषितः ।।४९।।

५० । वसति क्षुधिभ्यामिट् क्त्वा-विष्णुनिष्ठयोः, लुभो व्याकुलीकरणे, अञ्चेः पूजायां, क्लिशपूङ्भ्यां वा ।

उषितः, क्षुधितः । कृष्णेन विलुभितानां गोपीनां केशा विलुभिताः । गार्ध्ये तु—लुब्धः । अञ्चितः । गतौ—अक्तः । क्लिशितः, क्लिष्टः ।।५०।।

५१ । पूङः सेड्‌विष्णुनिष्ठा न कपिलः

पवितः, पूतः ।।५१।।

५२ । शीङ्-ष्विदि-मिदि-क्ष्विदि-धृषः-सेड्‌विष्णुनिष्ठा न कपिलः ।

यितः ।।५२।।

५३ । आरम्भे च विष्णुनिष्ठा, तत्र क्तस्तु कर्त्तरि च, आरामानुबन्धादिड् वा विष्णुनिष्ठायामारम्भभावयो जपि-वमोश्च

ञिष्विदा घृतादौ, ष्विदा पुषादौ, 'ञिष्विदा घृतादौ पुषादौ च' इत्येके । प्रस्वेदितवान्, प्रस्वेदितः कृष्णः । स्वेदित गोपीभिः । ञिमिदि स्नेहने—प्रमेदित इत्यादि । पक्षे—प्रस्विन्नः, स्विन्नमित्यादि ।।५३।।

५४ । क्षमार्थान्मृषो विष्णुनिष्ठा न कपिलः

मर्षितः । अक्षमार्थात्—अपमृषितं वाक्यमाह । अपमृष्टमशुद्धमिति यावत्, धातूनामनेकार्थत्वात् ।।५४

५५ । उरामोद्धवाद्भौवादिकाद्भावारम्भयोः सेड्-विष्णुनिष्ठा वा कपिलः ।

द्योतितं कृष्णेन, प्रद्योतितः रामः । पक्षे—द्युतितं प्रद्युतितः । 'सेड्' इति किम् ? म्रुचु म्रुक्तः एवं म्लुचु प्रभृतयः ।।५५।।

५६ । णेर्हरो विष्णुनिष्ठायाम् ।

भावितः । 'श्वयतेराश्वसेर्वमेश्च' (कृ० प्र० ३२) इति नेट्, सङ्कर्षण-त्रिविक्रमौ—शूनः, आश्वस्तः, अत्र 'विश्वस्तः' इत्यपि केचित् । विश्वासयुक्ते विश्वस्तस्त्रिषु, 'स्त्री विधवास्त्रियाम्' इति रुद्रकोषात् पक्षे वम—वान्तः, गुहू—गूढः । ननु 'उदितो वेट् क्त्वि' इति वक्ष्यते (कृ० प्र० ८२) तत नेट् 'हरिवेण्वन्त-सहजानिटाम्' (आ० प्र० १६४) इत्यादि वतः ततः । नृतीकृत्यादेरीरामत्वं विकल्पितेट् (कृ० प्र० ३२) इत्यस्यानित्यत्वे ज्ञापकम्, तेन धावु गतिशुद्धयोः धावितः, धावितवान, शुद्धौ तु—धौतः धौतवान् । पतॢ—पतितः, पतितवान् । मनु—मनितः, मनितवान् । अनेकसर्व्वेश्वरत्वादिट्—संज्ञपितः, दरिद्रितः इत्यादि ।।५६।।

५७ । क्षुब्धादयो मन्थादौ साधवः ।

क्षुभ—क्षुब्धो मन्थे । लगे—लग्नः सक्ते । म्लेच्छ—म्लिष्टमस्पष्टे । रेभृ शब्दे—रिब्धं स्वरे ।

---

* वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते । वेत्तेर्विन्नश्च वित्तश्च भोगे वित्तश्च विन्दतेः ।

फण गतौ—फाण्टमुदकसम्पर्काद्विभक्तरसे, ईषदुष्णे कषाये च। त्रिघृषाशसोर्धृष्ट-विशस्तावविनीत एव। दृहेर्दृढः स्थूलबलिनोः। कषेः कष्टं कृच्छ्रगहनयोः। सं वि नि पूर्व्वस्यार्द्देः समर्ण-व्यर्ण-न्यर्णाः अभ्यर्णस्तु निकटे। श्रा इत्यस्य शृतं क्षीरादिपाके। परिवृंहेः परिवृढोऽधिपे। ण्यन्तस्य वृत्तेर्वृत्तमध्ययने, वृत्तं श्रीभागवतम्, अधीतमित्यर्थः। घुष्टमविशब्दने, घुष्टा रज्जुर्घृष्टेत्यर्थः। विशब्दने तु—घुषितं वाक्यम्, शब्देन प्रकटिताभिप्रायमित्यर्थः ॥५७॥

५८। दान्त-शान्त-पूर्ण-च्छन्न-ज्ञप्त-दस्त-स्पष्टा णौ वा निपात्यन्ते।

पक्षे—दमितमित्यादि। तथा दसु—दासितः, स्पश—स्पाशितः ॥५८॥

५९। रुष्यम-वम-त्वर-संघुषास्वनेभ्यो वेड् विष्णुनिष्ठायाम्।

रुष्टः, रुषितः। अम गतौ—हरिवेण्वन्त' (आ० प्र० ५००) इत्यादि दीर्घः। आन्तः, अमितः वान्तः, वमितः, 'छ्श्य शः' इत्यादौ 'ज्वर-त्वर-स्रिव्यव-मवान्तु ससर्व्वेश्वरस्य' (आ० प्र० ४२२)—तूर्णः, त्वरितः, संघुष्टः, संघुषितः, आस्वान्तः, आस्वनितः ॥५९॥

६०। हृष्ट-हृषितौ विस्मये प्रतिघाते लोम्नो हर्षे च, अपचितापचायितौ पूजायां निपात्यन्ते

जलकेलौ हृष्टस्य कृष्णस्य हृष्टं लोम, विस्मितस्य प्रतिहतस्य वेत्यर्थः, हृषितस्य इत्यादि वा। चायृ, गोपीभिरपचितः कृष्णः, अपचायितो वा ॥६०॥

६१। अध्यारूढस्याधिको वा साधुः।

६२। प्यायः पीर्विष्णुनिष्ठायाम्।

पीनं मुखम्। स्वाङ्गादन्यत्र वा—प्यानः पीनः स्वेदः। सोपेन्द्रस्य न—प्रप्यानः ॥६२॥

६३। आङ्पूर्व्वस्यान्धूधसोः स्यादेव।

आपीनोऽन्धुः, आपीनमुधः ॥६३॥

६४। ह्लादेर्वामनः क्ति-विष्णुनिष्ठयोः।

ह्लन्नम् ॥६४॥

६५। द्यति-स्यति-मा-स्थामिः, शाछोर्वा, दधातेर्हिः, दामोदरस्य दो दद्, उपेन्द्रसर्व्वेश्वरात्त्वारामहरः चतुःसनोपेन्द्रस्य च त्रिविक्रमः कपिलतरामे।

दितः, सितः, मितः, स्थितः, शितः, शातः, छितः छातः ॥६५॥

६६। श्यतेः शंशितं व्रते वाच्यम्।

हितः, दत्तः, प्रत्तः, नीत्तः, सूत्तः। 'सुविन्यवानुभ्य आरामहरः क्ते वा' इति केचित्—सूत्तं, सुदत्तम्। 'अपेरादि' (आ० प्र० ३५४) इति—पिनद्धम्, अपिनद्धम्। धेट् 'दामोदर-मास्था' (आ० प्र० १८४) इतीत्वं—धीतं, गीतं, पीतम्। 'जन-खन-सनाम्' (आ० प्र० २५६) इत्यादि जातं, खातं सातम् ॥६६॥

६७। अदो जग्धिः कपिल तरामे यपि च।

इराम इत्। जग्धम् ॥६७॥

६८। अन्नमोदने साधुः।

६९। गत्यर्थाकर्म्मक-श्लिष-शीङ्-स्थास-वस-जन-रुह-जीर्य्यतिभ्यः क्तः कर्त्तरि च। *

मथुरां गतः, मथुरां प्राप्तः। यमुनायां स्नातोऽसौ गोपीमाश्लिष्टः कृष्णः। गोवर्द्धनमधिशयितः, वृन्दावनमधिष्ठितः, गा उपासितः, तदभोजनमुपोषितः राममनुजातः, कदम्बमारूढः कालियविषमनुजीर्णः ॥६९॥

७०। क्वचिदन्यत्रापि।

यथा—भुक्ताः, पीताः, विभक्ताः, वैष्णवाः। व्यवसिताः, प्रतिपन्नाः, आश्रिताः इत्यादयः। पक्षे मथुरा गता इत्यादि ॥७०॥

७१। अकर्म्मक-गति-भोजनार्थेभ्यः क्तोऽधिकरणे च।

कृष्णस्यासितं, गतं, भुक्तं वृन्दावनम् ॥७१॥

---

* क्तस्त्वधिकरणे प्रोक्तः क्तः कर्त्तर्य्यपि जायते। गत्यर्थादि विधानेन तथा स्यादादिकर्म्मणि ॥

७२। जिरामेतो बुद्धीच्छा पूजार्थेभ्यश्च क्तो वर्त्तमाने च।

ञिक्षिदा—क्षिण्णः, ञिइन्धी—इद्धः, वैष्णवाणां वृद्धः, मतः, ज्ञातः, इष्टः, वाञ्छितः, पूजितः, अर्च्चितः। चादनुक्तादपि—

शीलितो रक्षितः क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि।
रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि।
प्रक्रान्तः शयितो गुप्तस्तृप्त इत्यादयो स्मृताः ॥७२

७३। अलं-खल्वोः प्रतिषेधार्थयोर्योगे क्त्वा वा भावे।

क्त्वा मान्तश्च कृदव्ययम्। अत्र यथाह पुरुषोत्तमः (भाषावृत्तिः ३।४।१८)—'तुमर्थ इत्यनुवर्त्तते, यावदव्ययकृतां विधानम्' (पा ३।४।६६) तुमर्थश्च भाव इत्युक्तम्। अलं कृत्वा, खलु कृत्वा, न कर्त्तव्यमित्यर्थः। भावेऽपि हि प्रत्यये सकर्म्मकाद्धातोः पश्चात् कर्म्मसम्बन्धो भवत्येव—खलूक्त्वा खलु वाचिकमिति। तदेवमप्युदाह्रियते। 'दामादरस्य दो दद्' (कृ० प्र० ६५) अवैष्णवाय विष्णुनिर्माल्यमलं दत्त्वा, दत्त्वालं, खलु दत्त्वा, दत्त्वा खलु, तस्य दानं न कर्त्तव्यमित्यर्थः। अवैष्णवगृहे अलं भुक्त्वा वैष्णवेन, खलु भुक्त्वा वा। तत्र वैष्णवस्य भोजनेन न भवितव्यमित्यर्थः। पक्षे—तस्य दानेनालं, दानेन खल्वित्यादि ॥७३॥

७४। एककर्त्तृकयोः क्रिययोः पूर्व्वकालस्थधातोः क्त्वा।

'हरिवेण्वन्त' (आ० प्र० १६४) इत्यादि, कृष्णं नत्वा स्तौति वैष्णवः। द्वित्वमेकत्वं वा न तन्त्रम्—नत्वा स्तुत्वा भजति। कथं 'यदयं तुलसीं गृह्णाति, तस्मात् कृष्णं पूजयिष्यति' इति न क्त्वा? हेतुप्रयोगेणैव पूर्व्वकालप्रतीतेः ॥७४॥

७५। परावरत्वे गम्ये च।

बाल्यमतिक्रम्य हरेः पौगण्डम्, ततः परमित्यर्थः क्त्वो यप् वक्ष्यते (कृ० प्र० ८५) अलब्ध्वा गिरिं गङ्गा, गिरेरवग इत्यर्थः। 'श्रित्रो जागृवर्ज्जं' (कृ० प्र० ३०) इत्यस्य परत्वाद्विशेषत्वाच्च नित्यमिडभावः स्मृत्वा, धृत्वा ॥७५॥

७६। तत्कालेऽपि क्त्वा क्वचित्।

मुखं प्रकाश्य हसति हरिः ॥७६॥

७७। व्यतिहारार्थान्मेङोऽपूर्व्वकालेऽपि वा क्त्वा।

पूर्व्वं याचते, ततोऽपमयते—अपमित्य याचते, याचित्वा अपमयते वा ॥७७॥

७८। स्कन्ध-स्यन्दयोर्नरामहरो न क्वि।

स्कन्त्वा, स्यन्त्वा वा स्यन्दित्वा ॥७८॥

७९। सेट्क्त्वा न कपिलो मृड-मृद-कुश-क्लिश वदवसो विना।

शयित्वा मृडित्वा। गुधमपि पठन्ति—गुधित्वा 'रुदवेत्ति' (आ० प्र० ४५८) इति कपिलः—रुदित्वा ॥७९॥

८०। नरामोद्धवादेव थ-फान्तात् सेट्क्त्वा कपिलो वा, वञ्चि-लुञ्चृचति-तृषि-मृषि-कृशेश्च।

श्रथित्वा, श्रन्थित्वा, गुफित्वा, गुम्फित्वा, वचित्वा, वञ्चित्वा, ऋतित्वा, अर्त्तित्वा। कृश तनूकरणे—कृशित्वा, कर्शित्वा नियमोऽयम्। ततो नरामोद्धवत्वाभावे तु 'य-व-वर्जित-विष्णुजनात्' (आ० प्र० ४५६) इति पक्षेऽपि न कपिलः। कुथ पूतीभावे—कोथित्वा। रिफ हिंसादौ—रेफित्वा। थ-फान्तादेव नियमादन्यत्र तु सेट्क्त्वा न कपिल इति प्रवर्त्तते। स्रंसित्वा। इह तु 'य-व वर्ज्जित' (आ० प्र० ४५६) इति विकल्प एव—द्योतित्वा, द्युतित्वा। 'वसनिक्षुधिभ्याम्' (कृ० प्र० ५०) इत्यादि—क्षोधित्वा, क्षुधित्वा इत्यादि ॥८०॥

८१। जॄव्रश्चिभ्यामिट् क्वि।

जरित्वा। 'ऋरामवृभ्य इटस्त्रिविक्रमो वा, न तु परपदसौ कामपालाधोक्षजयोश्च' (आ० प्र० २१३) इति जरीत्वा, व्रश्चित्वा ॥८१॥

८२। उरामेतो वेट् क्वि।

शमित्वा, 'हरिवेण्वन्तोद्धवस्य त्रिविक्रमः क्वौ

कंसारिवैष्णवे च (आ० प्र० ५००) 'क्ति्व तु क्रमो वा (आ० प्र० ५०१) शान्त्वा। क्रान्त्वा, क्रन्त्वा, क्रमित्वा। 'क्लिश-पूङ्भ्यां वा (कृ० प्र० ५०) इति वेट्—क्लिष्ट्वा, क्लिशित्वा। पूत्वा, पवित्वा ॥८२

८३। जान्त-नशोरुद्धव-नरामोहर वा वैष्णवादिक्त्वि।

अक्त्वा, अङ्क्त्वा, भक्त्वा, भङ्क्त्वा, नष्ट्वा, नष्ट्वा। वैष्णवादि इति किम्? अञ्जित्वा 'जन-खन-सनाम् (आ० प्र० २५६) इत्यादि—खात्वा, खनित्वा। 'द्यति-स्यति (कृ० प्र० ६५) इतीत्वम्—दित्वा। 'दधातेर्हिः' (कृ० प्र० ६५) हित्वा ॥८३॥

८४। जहातेर्हिः क्त्वि।

हित्वा। 'अदो जग्धिः' (कृ० प्र० ६७) जग्ध्वा ॥८४॥

८५। क्त्वो यवनञ्पूर्व्वसमासे।

'ल्यप्' इति पाणिनिः। अन्तर्भिन्नपदत्वेऽप्येकनामत्वेन योजनं समासः ॥८५॥

८६। उपेन्द्रोर्य्यादि-व्यन्ताजन्त-पूर्व्वपदानि कृदन्तेन समस्यन्ते, पूर्व्वपदन्त्वमेवाव्ययकृदन्तेन

कृत्सामान्यग्रहणात् पूर्व्वत्रापीदमारोहति। उदाहरणानि तु ज्ञेयानि। अन्तरङ्गस्वादेर्महाहर एकपदत्वारम्भे ॥८६॥

८७। वामनात्तुक् पृथौ।

उपेन्द्रे—प्रकृत्य, पराभूय।

उर्य्यादिगणः—उरीकृत्य, उररीकृत्य, उरी उररी, चाङ्गीकारविस्तारयोः।
श्रदित्यादयोऽनुकरणशब्दा न चेदितिशब्दपराः।
कारिका शास्त्रार्थसमाधानपद्ये। पुरोऽग्रादौ।
सदसच्छब्दावादरानादरयोः। अलं भूषणे। हस्ते पाणौ चोपयमने। प्राध्वं बन्धनहेतावानुकूल्ये।
जीविकोपनिषदौ तत्साहश्ये। अदस्तत्पूर्व्वं यदि परं प्रति न ज्ञाप्यते, नोच्यते वा। अस्तमदर्शनार्थम् एतत् सर्व्वं कृत्रि, कृत्रि परे सति उर्य्यादिः।
अन्तर्हन्तौ, न तु परिग्रहे। कणेमनसी हन्तौ तृप्त्याम् अच्छेत्याभिमुख्यवचनमभिशब्दार्थं वा गत्यर्थे, वदे च। तिरोऽन्तर्द्धिवचनं कृत्रि तु वा। इतः कृत्रि विकल्पः, कृत्रि परे एतेषां वक्ष्यमाणानाम् अनञ्पूर्व्वसमासो वा स्यात्। उपाजे अन्वाजे च सामर्थ्याधाने। साक्षात्, मिथ्या, लवणं, वशे, प्रादुर्, आविश्, नमश्च प्रसिद्धार्थाः। उरसिमनसी अन्तःकरणे। मध्ये पदे, न तु स्पर्शे। निवचने वचनाभावे इति।
एते उपेन्द्रवदाख्याते कृति च धातोः प्राक् प्रयोज्या गति-संज्ञाः।

तत्र दुर्गमोदाहरणानि—'श्रदिति'—श्रत्कृत्य, स्नित्कृत्य। नेह—श्रदिति कृत्वा। प्राध्वमिति—"प्राध्वङ्कृत्य स्थितो रामः सर्व्वानुत्तरकोशलान्" आनुकूल्येन बद्ध्वा इत्यर्थः। जीविकाकृत्य, जीविकामिव कृत्वेत्यर्थः। अदःकृत्य गच्छति। नेह—'अदः कृत्वा गच्छ त्वम्', अदः कृत्वा गच्छति' इति वा, परं प्रति वक्ति। अन्तर्हत्य मध्ये हत्वेत्यर्थः, नेह—अन्तर्हत्वा, परिगृह्येत्यर्थः। कणेहत्य कृष्णं पश्यति, मनोहत्य कृष्णं पश्यति, तृप्ति यावदित्यर्थः। उरसिकृत्य कृत्वा वा निश्चित्य इत्यर्थः। एवं मनसि श्रुतिं मध्येकृत्य गीतां व्याचष्टे, कृत्वा वा। एवं—श्रीकृष्णस्य पदेकृत्य मनः शेते। नेह—हस्तं मध्ये पदे वा कृत्वा कृष्णं भूषयति। एवं निवचनेकृत्येति अथ व्याच्यौ तद्धितौ—अवैष्णवं वैष्णवं कृत्वेत्यर्थे विः, कृत्रनुप्रयोगः वेर्हरः पूर्व्वारामस्य ईरामः—वैष्णवीकृत्य। आच्—सत्याकृत्य। पूर्व्वपदं वक्ष्यते (समा० प्र० २०३) ॥८७॥

८८। मिलितवादेशः परवत्तुकि।

अधीत्य, प्रेत्य ॥८८॥

नञ्पूर्व्वात्तु—

८९। नञोऽरामशेषः सर्व्वेश्वरे तु नुट् च समासे, आख्याते त्वाक्षेपे।

अकृत्वा अनीक्षित्वा। आख्याते—हरिमभजसि मूर्ख, अनेधि त्वम् ॥८९॥

९०। हरिवेणुहरविधिर्वा यपि नान्तवर्ज्जम्

आगत्य, आगम्य, प्रणत्य, प्रणम्य। नान्तानान्तु नित्यमेव—प्रहत्य, वितत्य, संमत्य। कथं 'तृणु

वितृत्य, क्षिणु विक्षित्य' इति न विकल्पः ? अद्वये ररामांशमद्भावात् सर्व्वेश्वरादिव्यवधानेऽपि रषयोर्निमित्तत्वाद् 'रषाभ्यां दुस्तवर्गजः' इति हि प्रवर्त्तते। 'अदो जग्धिः'—प्रजग्ध्य। 'जन-खन-सनाम्' (आ० प्र०२५६) इति प्रजाय प्रजन्य। अन्तरङ्गत्वात् प्राग् जग्धौ प्राप्तेऽपि निमित्तापायाद् यवग्रहणम्, तेन 'जहातेर्हिः' (कृ० प्र० ६५) इत्यादयो न स्युः—विहाय ॥९०॥

९१। दामोदरादेरीरामो न यपि क्विपि च।

विधाय, निपाय। 'निपीय' इति पीङो रूपम्। 'मीनाति-मिनोति' (आ० प्र० ६७४) इत्यादि—प्रमाय निमाय। 'दामोदरादेः' किम् ? विलाय विलीय, निलीय। 'अजेर्व्वी' (आ० प्र० १३४) इत्यादि—उदज्य, उद्वीय। णेर्हरः—विचार्य्य ॥९१॥

९२। लघुपूर्व्वात् परस्य णेरय् यपि आप्नोतेर्व्वा।

विगणय्य, प्रणमय्य, प्रापय्य, प्राप्य। परिवृढमाचष्टे इति विगृह्य वृढशब्दादेव णिः क्रियते। संग्राम युद्धे इति चुरादिपाठात्तस्मादेव सोपेन्द्राण्णेरुत्पत्तिः, ततश्च परिशब्दस्य क्त्वान्तेन पश्चात् समासात् परिव्रढय्य १ इति सिद्धम्। परेर्धातुत्वाभावात् 'पर्य्यव्रढयत्' इत्यादि च। संग्रामयतेस्तु—असंग्रामयत् 'लघुपूर्व्वात्' किम् ? संप्रधाय्य, निगृह्य। ९२॥

९३। क्षियस्त्रिविक्रमो मयतेरिरामो वा यपि

प्रक्षीय प्रक्षित्य, अपमित्य अपमाय ॥९३॥

९४। वेञ-व्येञ-ज्यानां न सङ्कर्षणो यपि परि-संभ्यां व्येञो वा।

प्रवाय, प्रव्याय, प्रज्याय, परिव्याय। नित्यत्वात्तुकं बाधित्वा 'श्या-श्वि-व्या-ज्या' (आ० प्र० ५०५) इति त्रिविक्रमः। परिवीय, संव्याय, संवीय

९५। क्त्वार्थे णमुश्चाभीक्ष्ण्ये।

'णमुल्' इति पाणिनिः (३।४।२२) आभीक्ष्ण्यं पौनःपुन्यम् ॥९५॥

९६। आभीक्ष्ण्ये वीप्सादिषु च द्वित्वं वाच्यम्।

स्मारं स्मारं कृष्णं नमति। 'घटादीनाम् (आ० प्र० ४३१) इत्यादौ णिपूर्व्वयोर्णम्विणोस्तु त्रिविक्रमो वा—गमं गमं, गामं गामं वा। 'लभेर्नुम्' (आ० प्र० २४२) इत्यादि—लम्भं लम्भं, लाभं लाभं, प्रलम्भं प्रलम्भं, भोजं भोजं, पायं पायम्। पक्षे स्मृत्वा स्मृत्वेत्यादि ॥९६॥

९७। अपाद्गुरो गार वा णमौ।

अपगारम् अपगारम्, अपगोरम् अपगोरम् वा, मुहुरुद्यम्येत्यर्थः ॥९७॥

९८। कृतसूत्राद्यं सप्तम्यन्तं पूर्व्वपदम्।

'उपपदं' प्राञ्चः। परिभाषेयम् ॥९८॥

९९। अमन्त-स्वद्वर्थे णमुरमश्च न महाहरः

* स्वादुङ्कारं हरयेऽर्पयति। एवं मिष्टङ्कारं लवणङ्कारम्। स्वादुशब्दस्तु त्रिविक्रमो नेष्यतेऽत्र। स्वादूकृत्य यवागूं भुङ्क्ते ॥९९॥

१००। कृतो बाहुल्यान् क्त्वा च।

किन्तूत्सर्गसिद्धत्वात् पूर्व्वपदं नापेक्षत इति न समासः। स्वादुं कृत्वा ॥१००॥

१०१। अभूततद्भावे पुम्वच्च।

अस्वाद्वीं स्वाद्वीं कृत्वा भुङ्क्ते-स्वादुङ्कारम् ॥१०१

१०२। अग्रे-प्रथमं-पूर्व्वं-सु-क्त्वा-णमू।

कृष्णम् अग्रे नत्वा, अग्रे नामं वा व्रजति। एवं प्रथमं पूर्व्वम्। अत्र 'अग्रे नत्वा' इत्यत्र पूर्व्वपदन्त्वमन्तमेवेति नियमान्न समासः। प्रथममित्यादिशब्दो मान्ताव्ययरूपत्वारमो महाहरः, इति नामन्तौ ॥१०२॥

१०३। कर्म्मणि डुकृञः खमुण्णाक्रोशे।

ख उ णा इतः, अम् शेषः ॥१०३॥

१। परिवृढय्य (क) एषः पाठो लिपिकार-प्रमादकृतः, रविधानस्यापरिहार्य्यत्वात्।

* "शङ्के स्वादुङ्कारमित्थं सदा त्वं, यज्ञाङ्गीयं लेक्षि हैयङ्गवीनम्। एवं चोरङ्कारमम्बा शिशुं तं, प्रत्याक्रोशन्त्यार्द्रचित्ता बभूव॥" (श्रीगोपालचम्पूः पूः ८।२७)

१०४। सर्व्वेश्वरान्त-पूर्व्वपदस्यानव्ययस्य मुम् वामनश्च खिति।

उमाश्रितो महेशः। 'उपेन्द्रोर्य्यादि' (कृ० प्र० ८६) इत्यादिना समासः। अवैष्णवङ्कमाक्रोशति। अवैष्णवोऽसीत्युक्त्वाक्रोशतीत्यर्थः। करोतिरिहोच्चारणे॥१०४॥

१०५। णमुः।

विभुरयम्॥१०५॥

१०६। अन्यथैवं-कथमित्थंसु डुकृञस्तत्तन्मात्रार्थे।

हरिमन्यथाकारमर्च्चयति, अन्यथार्च्चयतीत्यर्थः एवङ्कारमित्यादि। कृञोऽर्थे तु—विधिमन्यथा कृत्वा हरिमर्च्चयति॥१०६॥

१०७। यथातथयोर्डुकृञोऽसूयाप्रतिवचने।

यथाकारं तथाकारमर्च्चयतु किं तवानेन? तत्तन्मात्रार्थ एव। विधिं यथाकृत्वाऽयमर्च्चयतु, किं तवात्र?॥१०७॥

१०८। कर्म्मणि।

प्रभुरयम्॥१०८॥

१०९। दृशि-विदिभ्यां साकल्ये।

वैष्णवदर्श प्रणमति, वैष्णववेद भोजयति, यान् तो वैष्णवान् पश्यति, वेत्ति, विन्दति, विन्ते वा तावत् इति, सर्व्वानेवेत्यर्थः॥१०९॥

११०। यावति विद्ल-जीवाभ्याम्।

यावद्वेदं भुङ्क्ते, तत्र नाग्रह करोतीत्यर्थः। यावज्जीवं हरिं भजति॥११०॥

१११। चर्म्मोदरयोः पूरेः, वृष्टिप्रमाणे ऊरामहरश्च वा, वस्त्रार्थे क्नोपे।

चर्म्मपूरं तिलान् ददाति। उदरपूरं वैष्णवान् भोजयति। गोष्पदप्र वृष्टो देवः, गोष्पदपूरं वा। वस्त्रक्नोपं, चेलक्नोपं वा वृष्टः। इत उपमानार्य्यन्तं णमन्तधातवोऽनुप्रयुज्यन्ते॥१११॥

११२। निमूल-समूलयोः कषः।

निमूलकाषं कषति, निमूलं हिंसति इत्यर्थः॥११२

११३। शुष्क-चूर्ण-रूक्षेषु पिषः।

शुष्कपेषं पिनष्टीत्यादि॥११३॥

११४। समूले हनः, अकृते डुकृञः, जीवे ग्रहः

समूलघातं निजघान कंसम्, अकृतकारं चकार, जीवग्राहं जग्राह। 'पूर्व्वपदन्त्वमन्तम्' (कृ० प्र० ८६) इत्यादिना समासः। 'अमन्तम्' इत्युपलक्षणमेव, तेन औशसोरपि ग्रहणम्। 'समूलघातं न्यवधीदरींश्च' इति भट्टिः (१।२)। कर्म्मणीति निवृत्तम्॥११४॥

११५। करणे।

प्रभुरयम्॥११५॥

११६। हनः।

चक्रेण हन्ति। चक्रघातं हन्ति॥११६॥

११७। स्नेहद्रव्ये पिषः।

स्नेहद्रव्यगार्द्रताहेतुः। घृतपेषं पिनष्टि॥११७॥

११८। हस्तार्थे वर्त्ति-ग्रहिभ्याम्।

हस्तवर्त्तं वर्त्तयति। करग्राहं गृह्णाति॥११८॥

११९। स्वे पुषः।

स्वेन पुष्णाति—स्वपोषं पुष्णाति। 'स्वे' इत्यनेनेह आत्मात्मीय-धन-गो-ज्ञाति-पित्रादिष्वप्युदाहार्य्यम्। करण इति निवृत्तम्॥११९

१२०। चक्रे बन्धः।

चक्रबन्धं बद्धः, गुप्तो बध्नाति—गुप्तिबन्धं बध्नाति इत्यादयस्तु संज्ञायां ज्ञेयाः। इह 'मयूरिकाबन्धं बद्धः चाण्डालिकाबन्धं बद्धः, इत्युपमाने कर्म्मणि णमुरिति भाष्यम्॥१२०॥

१२१। कर्त्रोर्जीव:पुरुषयोर्नशि-वहिभ्याम् *

जीव एव सन्नष्टः—जीवनाशं नष्टः। पुरुषः सन् वहति—पुरुषवाहं वहति। पुरुषः प्रेष्यो भूत्वा वहतीत्यर्थः इति जयादित्यः (काशिका ३।४।४३) १२१

१२२। ऊद्ध्वेकर्त्तरि शुषि-पूरिभ्याम् *

* अजनाशमसौ नष्टो जीवनाशं ननाश च। ऊद्ध्वंशोषं स चाशुष्यत् कृष्ण यस्त्वत्पराङ्मुखः॥
(श्रीगोपालचम्पूः पूः ३३।६६)

ऊर्द्ध्वः शुष्यति—ऊर्द्ध्वशोषं शुष्यति। एवम् ऊर्द्ध्वपूरं पूर्य्यते। पूरी आप्यायने दिवादावात्मपदी ॥१२२॥

१२३। कर्म्मकर्त्तुपमाने।

रत्नमिव निहितः—रत्ननिधायं निहितः कृष्णः। अज इव नष्टः—अजनाशं नष्टः कंसः। व्यवधानेऽपि दृश्यते—घृतनिधायमुदकं निदधाति। निवृत्तोऽनुप्रयोगः ॥१२३॥

१२४। इतो विकल्पेन समासः।

विभुरयम् ॥१२४॥

१२५। तृतीयामामुपदंशेर्द्वितीयधात्वेककर्म्मकाच्च हिंसार्थात्।

आमलकोपदंशं भुङ्क्ते, आमलकेनोपदंशं भुङ्क्ते भक्तम्। दण्डोपघातं, दण्डेनोपघातं वा गाः कालयति। 'एककर्म्मकात्' इति किम्? दण्डेनोपहत्य व्याघ्रं गाः कालयति। १२५॥

१२६। सप्तमी-तृतीययोरुप-पीडाद्रुधि-कृषिभ्याश्च, धातुमात्रात्तु सन्निधानगतावायामगतौ च।

पार्श्वोपपीडं शेते। "हस्तरोधं दधद्धनुः" इति भट्टिः (५।३२)। पाणिकर्षं कंसं निन्ये। 'विशेषानुपादानात् पाण्युपकर्षमित्यपि' इति पुरुषोत्तमः (भाषावृत्तिः ३।४।४९)। सर्व्वत्रैवोपपूर्व्वत्वे सति। इति जयादित्यः (काशिका ३।४।४९)। पक्षे—पार्श्वे, पार्श्वेन वा उपपीडमित्यादि। उत्तरत्र चासमासो ज्ञेयः। एवं हस्तग्राहं नृत्यति रासे। द्व्यङ्गुलोत्कर्षं दण्डिकां छिनत्ति ॥१२६॥

१२७। अपादाने कर्म्मणि च त्वरायाम्।

शय्योत्थायं गां दोग्धि। शृङ्गग्राहं गां वारयति हरिः। अत्वरायाञ्च दृश्यते। 'एकवर्ज्जम्' इति धातुविभक्तिवर्ज्जमिति च ॥१२७॥

१२८। जीवनाहेतौ परिक्लिश्यमाने च स्वाङ्गकर्म्मणि।

अक्षिनिकोचं हसति—उरःपेषं युध्यते। नेह—शिर उत्क्षिप्य पश्यति ॥१२८॥

१२९। कर्म्मणि विशि-पति-पदि-स्कन्दिभ्यो द्रव्यस्य व्याप्तिश्चेत्, क्रियायाश्च नित्यता चेत्

गेहप्रवेशमास्ते। असमासे द्विरुक्तिः—गेहं गेहं प्रवेशमास्ते हरिः। एवं प्रत्यादयः ॥१२९॥

१३०। क्रियाव्यवधाने काले कर्म्मण्यस्यतितृषिभ्याम्।

द्व्यहात्यासं भुङ्क्ते, द्व्यहतर्षं पिबति, द्व्यहमतिक्रम्येत्यर्थः। १३०॥

१३१। नामशब्दे १ कर्म्मण्यादिशिग्रहिभ्याम्

नामादेशमाचष्टे। नामग्राहं स्तौति हरिम् ॥१३१॥

१३२। उपात् किरतौ सुट् च विक्षिप्य लवने।

उपस्कारं लुनाति ॥१३२॥

१३३। क्त्वा—णमू।

प्रभुरयम् ॥१३३॥

१३४। अव्यये करोतेरयुक्ताख्यायां, तिर्य्यचि क्रियासमाप्तौ।

'व्रजेश्वर! पुत्रस्ते जातः' इति नीचैः कृत्वाचष्टे नीचैःकृत्य, नीचैःकारवा। उच्चैराख्यानमिह युक्तम्

"आवेदयन्तः क्षितिपालमुच्चैः-
कारं मृतं रामवियोगशोकात्।" (भट्टिः ३।४९)

अत्र क्त्वापक्षौ च ज्ञेयौ। नीचैरिहाख्यानं युक्तम् प्रियत्वेऽप्ययुक्तं दृश्यते, यथा—कृष्ण! काचित्त्वय्यनुरक्तास्ति' इत्युच्चैःकारमाचष्टे, उच्चैः कृत्वा, उच्चैःकृत्य वा। प्रक्रिया (पा ३।४।५९) तु चिन्त्या। तथा, तिर्य्यक्कृत्य गतः इत्यादि ॥१३४॥

१३५। तस्प्रत्ययान्त-स्वाङ्गे कृभूभ्याम्।

मुखतःकृत्य गतः इत्यादि॥

१३६। नानेत्यव्यये धार्थप्रत्यये चाभूततद्भावे।

१। संज्ञाशब्दे (क)

अनाना नाना कृत्वेत्यर्थे ननाकृत्य गतः इत्यादि। तथा द्विधाकृत्येत्यादि। एवं द्वेधा, द्वैधम् ॥१३६॥

१३७। तूष्णीमि भुवः।

तूष्णीम्भूयास्त इत्यादि ॥१३७॥

१३८। अन्वच्यानुकूल्ये।

अन्वग्भूयास्त इत्यादि। उक्ता विकल्पसमासाः क्त्वा णमू च निवृत्तौ ॥१३८॥

१३९। तुमु-णकौ तत्क्रियार्थत्वे।

क्रिया धात्वर्थः। उणावितौ। यस्माद्धातोस्तुमुणकौ क्रियेते, तस्यैव धातोरर्थो यदि प्रयोजनं, तदा तुमुणकौ भवतः। 'तुमुण्-ण्वुलौ' इति पाणिनीयाः (३।३।१०)। ते हि वोरकं, योरनं, झस्यान्तमादिशन्ति द्रष्टुं सेवितुं हरिं व्रजति, दर्शकः सेवको व्रजति, दर्शनार्थं, सेवनार्थमित्यर्थः ॥१३९॥

१४०। इच्छार्थे शक्यादौ कालादौ च योज्ये तुमुरेव।

'योज्य' ग्रहणं पूर्व्वपदत्वनिरासार्थम्। द्रष्टुमिच्छति वष्टि, वाञ्छति वा, तथा द्रष्टुं शक्नोति, धृष्णोतीत्यादि। शकधृष-ज्ञा-ग्ला-घट-रभ-लभ-क्रम-गम-सह-अर्ह-सत्तार्थः शक्यादिः।

कालादौ तु योज्ये दर्शनादिधात्वर्थो यदि कालादेः प्रयोजनं स्यात्, तदा तत्तद्धातोस्तुमुर्मन्तव्यः। कालोऽयं द्रष्टुं समयो वेला वा। आदिशब्दान्मन्तुं मनः, द्रष्टुं चक्षुः, श्रोतं श्रवणमित्यादि। वक्तुं जडः इति च 'मशकार्थोऽयं धूमः' इतिवद्दृश्यते। तथा समर्थपर्य्याये—समर्थो भोक्तुं, पर्य्याप्तो भोक्तुम्, अलं भोक्तुमित्यादि च ॥१४०॥

१४१। कर्म्मण्यण् तुम्वर्थे।

कृष्णसेवो याति, कृष्णगायो याति। बाहुल्यात् कृष्णं सेवितुमित्यादि ॥१४१॥

१४२। प्रादिव्यवहितेऽपि कृच्छ्रार्थ-दुरि खल् भावकर्म्मणोः, अकृच्छ्रार्थे ईषति सौ च अरामशेषः ॥१४२॥

१४३। उपेन्द्राल्लभेर्नुम् खल्-घणोर्न सुदुर्भ्यामन्योपेन्द्र-रहिताभ्याम्।

कृच्छ्रे—दुष्प्रलम्भं दुर्लभं भवता, दुष्प्रलम्भं, दुर्लभः कृष्णो भवता १। अकृच्छ्रे—ईषत्प्रलम्भम्, ईषल्लभम्, सुप्रलम्भं, सुलभं भवता। ईषत्प्रलम्भः ईषल्लभः, सुप्रलम्भः, सुलभः कृष्णो भक्तिमता। अन्योपेन्द्ररहिताभ्यामिति किम्? अतिसुलम्भः, अतिदुर्लम्भः। कथम् 'अतिसुलभः, अतिदुर्लभः'? पश्चादतिना समासः। अन्येति किम्? सुदुर्लभः ॥१४३॥

१४४। मि-मी लियां खललोरात्वनिषेधः

दुर्निमयः इत्यादि ॥१४४॥

१४५। दुरादौ कर्त्तृपूर्व्वपदाद्भुवः कर्म्मपूर्व्वपदात् डुकृञश्चाभूततद्भावे पूर्व्ववत् खल्।

कर्त्तृकर्म्मणी अत्र तत्तद्विशेषणे ज्ञेये। तत्र कर्त्तृपूर्व्वभुवः—अदुर्भक्तेन दुर्भक्तेन भूयते इत्यर्थे दुर्भक्तम्भवं भवता पूर्व्वमकृच्छ्रं भक्तस्य भवतः सम्प्रति कृच्छ्रेण भक्तिरित्यर्थः। एवमनीषद्भक्तेन ईषद्भक्तेन भूयते ईषद्भक्तम्भवम्, सुभक्तम्भवम्। कर्म्मपूर्व्वात् डुकृञः-अदुर्भक्तो दुर्भक्तः क्रियते-दुर्भक्तङ्करः, एवमीषद्भक्तङ्करः। असुभक्तः सुभक्तः क्रियते-सुभक्तङ्करो वैष्णवो भवता ॥१४५॥

१४६। आरामादनः खलर्थे, न तु खल्

दुर्याणं हरिपदं भवता। दीङश्चारामान्तपाठात् दुरुपादानम् ॥१४६॥

१४७। अदरिद्रातेरिति वाच्यम्।

ईषद्दरिद्रं भवता, अकृच्छ्रेण भवतो दारिद्रचमित्यर्थः ॥१४७॥

१४८। शासि-युधि-दृशि-धृषि-मृषिभ्यश्चानो वा खलर्थे।

दुःशासनः, दुर्य्योधनः इत्यादि ॥१४८॥

१। 'दुष्प्रलम्भमित्यादौ कस्तपकेषु बिष्णुसगं-घरबं वाच्यम्।' इत्यधिकः पाठः (क)।

१४९। विध्याद्यर्थे तव्यानीय-यत्-क्यप्-ण्यत्-केलिमा विष्णुकृत्य-संज्ञा भावकर्म्मणोः।

'कृत्य' संज्ञा इति प्राञ्चः। 'प्रैषातिसर्ग' (का० प्र० १७७) 'अर्हशक्त्यो' (का० प्र० १८०) इत्यादि। तव्यानीयौ एतौ सामान्यौ। एधितव्यम्, एधनीयं वैष्णवेन। भक्तव्यो, भजनीयस्त्वया कृष्णः ॥१४९॥

१५०। सर्व्वेश्वरान्तधातोर्यत्।

चेया भक्तिस्त्वया हरेः ॥१५०॥

१५१। वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्।

अस्त्रियां विहितोऽसरूपो भिन्नाकारावशेष उत्सर्गापवादन्यायेन बाध्योऽपि कृद्वा स्यात् ॥१५१॥

१५२। क्त-अन-तुमु-खलर्थेषु तु वाऽसरूपो विधिर्नेति वाच्यम्।

अतस्तव्यादयोऽपि। चेतव्या। धातुग्रहणात् प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्, नेह—पिपिक्षितव्यम् ॥१५२

१५३। प्रतिपदोक्तसर्व्वेश्वरान्तात्तु भूतपूर्व्वादपि।

दित्स्यम्, धित्स्यम् ॥१५३॥

१५४। आ ए यति।

देयम्, गेयम्। 'परत्वाद्दृग्द्रेयम्' इति कालापाः ॥१५४॥

१५५। शकादिभ्यश्च यत्।

वक्ष्यमाण-ण्यदपवादोऽयम्। शक्यं, यज्यं, शस्यं यत्यं गह्यम् ॥१५५॥

१५६। हनो यद्वा तस्य बधश्च।

बध्यम्। पक्षे ण्यद् वक्ष्यते (कृ० प्र० १६६) ॥१५६॥

१५७। पवर्गान्ताद् यत्।

जप्यं, कोप्यम् ॥१५७॥

१५८। आङो लभेर्नुम् यति, उपात् स्ततौ

आलम्भ्यः पशुः, यज्ञे घात्य इत्यर्थः। उपलम्भ्यो हरिः ॥१५५॥

१५९। अनुपेन्द्राद्गद-मद-चर-यमेभ्यो यत्।

गद्यम्। कथं नियम्यम्? चौरादिकणेरण्यौत्पत्तिकत्वेन प्रतिपदोक्तसर्व्वेश्वरान्तत्वाद्यत् ॥१५९॥

१६०। नञ्पूर्व्वस्य वदेरवद्यं गर्ह्ये, वृङ्-वृञोर्वर्य्या प्रतिबन्धं विना स्वीकार्य्यायाम्।

पतिम्वरायाम्' इत्येके। आवन्तोऽयं यत्प्रत्ययः प्रतिबन्धे तु—वृञ् वरणे क्यप् वक्ष्यते (कृ० प्र० १७८) वृत्या कन्या। लक्ष्मीनिर्द्देशः किम्? वृङ् संभक्तौ ण्यद्वक्ष्यते (कृ० प्र० १६६) वार्य्याः, ऋत्विजः। व्यभिचरति च 'सुग्रीवो नाम वर्य्योऽसौ भवता चारुविक्रमः' इत्यत्र (भट्टिः ५ ५१)। मुख्येऽपि दृश्यते 'वृष्णिवर्य्यः' इत्यादौ च ॥१६०॥

१६१। वह्यं वहनस्य करणे।

सुगमत्वादत्र धातुनिर्द्देशो न कृतः। एवमुत्तरत्रापि ॥१६१॥

१६२। पण्यं विक्रये, अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः, उपसर्य्या प्राप्तगर्भावसरायाम्, अजर्य्यः कर्त्तरि सङ्गमाक्षयत्वे।

अजर्य्यः कृष्णसङ्गमः, न जीर्य्यतीत्यर्थः ॥

१६३। आचर्य्यमगुरौ।

गुरौ तु—आचार्य्यः ॥१६३॥

१६४। क्रय्यं क्रयार्थ-प्रसारिते।

अन्यत्र क्रेयम् ॥१६४॥

१६५। क्षय्य-जय्यौ शक्यार्थे।

अन्यत्र—क्षेयजेयौ ॥१३५॥

१६६। ऋद्वयविष्णुजनाभ्यां ण्यत्।

कार्य्यं, वाह्यम्। 'हनो हस्य घः' (वि० प्र० १२२) 'हन्तेस्तः' (आ० प्र० ४४८)—घात्यम् ॥१६६॥

१६७। चजोः कगौ घिण्णचतोरज-वज-व्रज—कवर्गादिवर्ज्जम्।

पाक्यं, रोग्यम्। नेह—वाज्यं, व्राज्यं, गर्ज्यम्। अजेर्वीभावात् ण्यति नोदाहरणम् ॥१६७॥

१६८। न क-गावावश्यकार्थ-ण्यति अवश्यमो मस्य हरो विष्णुकृत्ये, तेन तस्य समासः।

अवश्यपाच्यम्। संहितायामेव। 'अवश्यं वक्तव्यम्' इति भाष्यसंस्कृतम् ॥१६८॥

१६९। मोच्य-रोच्य-शोच्य-याच्य-त्याज्य-याज्य-वर्ज्यार्च्य-पूज्याः साधवः, प्रयोज्य-नियोज्यौ शक्यार्थे, वञ्च्याञ्च्यौ गतौ, वाच्यमपदसङ्घाते, भोज्यं भक्ष्ये निपात्यन्ते।

अन्यत्र 'प्रयोग्य' इत्यादिषु यथास्वं क-गौ ॥१६९

१७०। उद्वयाण्णाचदावश्यके।

'ओद्वयस्यावावौ प्रत्यय ये' (आ० प्र ५१५) अवश्य याव्या भागवताः, अवश्यलाव्या दैत्याः। गम्यत्वेऽपि—वैष्णवैः शुचिभिर्भाव्यम् ॥१७०॥

१७१। यु-रपि-वपि-लपि-त्रपि-चमिभ्य आसुनोतेश्च ण्यत्, दम्भेर्नस्य च ह्रः।

याव्यं, राप्यमित्यादि। षुञ—आसाव्यम्। 'दम्भिश्चौरादिकः' इति पाणिनीयाः। 'दम्भुः सौवादिकः' इति कालापाः—दाभ्यम् ॥२७२॥

१७२। भज-जप-यजानमिभ्यो यद्वा।

भाग्यम्, भज्यम्। आनाम्यम्, आनम्यम् ॥१७२

१७३। माङः पाय्यं परिमाणे।

परामाय्यमिदम् ॥१७३॥

१७४। कुण्डपाय्य-सञ्चाय्यौ क्रतौ, प्रणाय्यो दुर्मतिनिष्कामयोः, सन्नियः सान्नाय्यं हविर्विशेषे, आनयतेरानाय्यो दक्षिणाग्नौ, निचिञो निकाय्यो निवासे, चित्यश्चेतव्ये वह्नौ अग्निचित्या तच्चयने, अमापूर्व्ववसेरमावास्यामावस्ये तिथिविशेषे।

अमा सह वसतश्चन्द्रसूर्य्यावस्यामिति ण्यद्यद्भ्यामावन्ताभ्यां सिध्यतः ॥१७४॥

१७५। गुपेः कुप्यम् अहेमरूप्ये धने, भिद्योद्ध्यौ नदभेदे कर्त्तरि।

भिनत्ति कूलं भिद्य इति गोविन्दाभावो निपातः। उज्झति कूलम् उद्ध्य इति द-ध मध्यत्वात् सिध्यति ॥१७५॥

१७६। पुष्य-सिद्ध्यौ नक्षत्रविशेषे, विपूयो मुञ्जे, विनीयः कल्के, जित्यो महति हले[१], युग्यं वाहने, दधातेर्धाय्या सामिधेन्यामृचि, परिचाय्योपचाय्यसमूह्या अग्निविशेषेषु, अञ्जेराज्यं घृते, गृह्योऽस्वैरिणि साधवः।

१७७। अनुपेन्द्रे वदो यत्-क्यपौ, भुवः क्यप् भावे, हनस्तश्च।

कृष्णेनोद्यन्ते—कृष्णवद्या गीताः, कृष्णोद्याः। बाहुल्यात् कर्त्तरि च। "सत्यवद्यो रघूत्तमः," ब्रह्मणो भावः ब्रह्मभूयम्। ब्रह्मणो हननं ब्रह्महत्या, स्त्रीत्वमभिधानात् ॥१७७॥

१७८। एति-स्तु-शासु-वृञो-दृ-जुषः क्यप्।

'वामनात्तुक्' (कृ० प्र० ८७) इत्यः, स्तुत्यः। आवश्यकेऽपीष्यते—अवश्यस्तुत्यः। 'शासः शिष्' (आ० प्र० ३२७) शिष्यः, वृत्यः, आदृत्यः, जुष्यः। आङः शास्वित्यादेराख्यातदर्शितत्वान्न शिषादेशः—आशास्यम्। ईङ् गतौ – उपेयम् ॥१७८॥

१७९। शंसि-दुहि-गुहिभ्यो वा क्यप्।

शस्यं, शंस्यम्, दुह्यं, दोह्यम् ॥१७९॥

१८०। ऋरामोद्धवादक्लृपः क्यप्।

वृतु—वृत्यम्। वृधु—वृध्यम्। कृपेस्तु—कल्प्यम् ॥१८०॥

१८१। खनः खेयं निपात्यते, पाणौ सृजेर्ण्यत समवपूर्व्वाच्च।

पाणिसर्ग्या माला। समवेति संघातेनैव प्रयोगः—समवसर्ग्या रज्जुः ॥१८१॥

१८२। भृञः क्यप् न तु पत्न्यां संभृञो वा, कृ-वृषिभ्याञ्च।

भृत्यः। संभृत्यः, संभार्य्यः। कृत्यं कार्य्यम्। वृष्यं वर्ष्यम्। पत्न्यान्तु—भार्य्या ॥१८२॥

१८३। मृजेः क्यप् वा।

मृज्यः। गत्वम्—मार्ग्यः ॥१८३॥

१। जित्या महति हले आवन्तोऽयम् (क)

१८४। मृषोद्यादयः कर्म्मादौ साधवः।

मृषा उद्यते—मृषोद्यम्। रोचते—रुच्यः। कृष्टे पचति, पाकमाप्नोति—कृष्टपच्यो ब्रीह्यादिः। न व्यथते—अव्यथ्यः ॥१८४॥

१८५। राजसूयादयस्तु संज्ञाशब्दाः।

१८६। अनुपेन्द्रे ग्रहेः क्यप् वाह्यायां पक्षे च

लक्ष्मीनिर्द्देशात्तस्यामेव। मथुरागृह्या सेना ततो वाह्येत्यर्थः। कृष्णगृह्यः, तत्पक्षाश्रितः इत्यर्थः ॥१८६

१८७। इज्या-व्रज्या-कृत्या भावे क्यबन्ताः साधवः, समज्यादयः संज्ञायां साधवः।

समजन्त्यस्याम्—समज्या सभा, निषद्या आपणः निपत्या पिच्छिलभूमिः। विदन्त्यनया—विद्या, सूयते अस्यां सोमः—सूत्या, शय्यते अस्याम्—शय्या ॥१८७

१८८। ईत्या भाव-करणयोः साधुः, भृत्यादयो भावे साधवः।

भरणं भृत्या। आसनम् उपवेशनम् आस्या इत्यादि ॥१८८॥

१८९। भव्य-गेय-प्रवचनीयोपस्थानीय-जन्याप्लाव्यापात्याः कर्त्तरि च।

वैष्णवो मथुरायां भव्यः, भवतीत्यर्थः इत्यादि। हरेर्गेयः, हरिं गायतीत्यर्थः। पक्षे मथुरायां भव्यमित्यादि ॥१८९॥

१९०। धेनुम्भव्या साधुः।

धेनुषु भवतीति ॥१९०॥

१९१। केलिमः कर्म्मकर्त्तरि।

भिदेलिमा माषाः। पचेलिमास्तण्डुलाः। * उक्ता विष्णुकृत्याः ॥१९१॥

१९२। बाहुल्यान करणादौ च ते।

स्नायते येन तत्—स्नानीयमामलक्यादि। दीयते यस्मै सः—दानीयो विप्रः। आपतति यस्मात् सः—आपत्यो भृगुः। रम्यते यस्मिन् तत्—रमणीयं वृन्दावनम्। तिष्ठते निर्णीयते विवादो यत्र सः—स्थेयः ॥१९२॥

१९३। वास्तव्यो वासकर्त्तरि वृष्णीन्द्रेण साधुः।

कर्त्तरि प्रभुग्यम् ॥१९३॥

१९४। णक-तृनौ।

'ण्वुलतृचौ' पाणिनिः (३।१।१३३)। करोतीति कारकः, कर्त्ता जगतः। वह—वोढा। हन—घातकः ॥१९४॥

१९५। नामधातु-हनो न घत्वं, न च तत्वम्।

हननीयकः। 'आतो युक्' (आ० प्र० १८०) दायकः। एवमाख्यातसूत्रेभ्यः—कुटिता कोटकः, शमकः, यमेस्तु यामकः। पापचकः इत्यत्रापि अन्तहरान्न वृष्णीन्द्रः, पापच्यस्थाने पापचादेशात् तस्य स्थानिवद्भावाद् न वृष्णीन्द्र इत्यन्ये। 'स्थानिवद्भावात्' *—इति प्रमादेऽपि, प्रक्रिया (पा ३।१।१३३) तु चिन्त्या। चक्रपाणेस्तु—पापाचकः पापचिता, दरिद्रायकः, दरिद्रिता इत्यादि ज्ञेयम्। क्रमि-गमि-कृपि-वृत्वादीनामिट् सूत्रेषु आत्मपदेन तत्कारणं गृह्यते इति बहूनां मतम्। 'गम्यादीनां न' इति केषाञ्चित्, क्रमेस्तु कर्त्तर्य्येवेट् नेष्यते—प्रक्रन्ता उपक्रन्ता। अकर्त्तरि तु प्रक्रमितव्यम्। गम्यादेः खलपि—सञ्जिगसिता, संजिगमिषिता, चिक्लृप्सिता चिकल्पिषिता, विवृत्सिता, विवर्त्तिषिता ॥१९५॥

१९६। बाहुल्यात् कर्म्मण्यपि णकः।

पादाभ्यां ह्रियते—पादहारकं नूपुरादि ॥१९६॥

१९७। नन्द्यादेरनः।

'ल्युः' पाणिनिः (३।१।१३४)। नन्दनः, जनार्द्दनः, मधुसूदनः, मदनः, तपनः, पतनः, विरोचनः दर्पणः, संक्रन्दनः, सङ्कर्षणः पवनः विभीषणः, रमणः। 'ल्युरयं संज्ञायाम्' इति काशिका (पा ३।१।१३४)। तत्र च 'ल्युः कर्त्तरि' इति पुंस्त्वविधौ अमरः (३।५।१५

* केलिमात्रेण ते दैत्या यद्भिदेलिमतां गताः। पचेलिमस्तेन तापात् कंसः प्रध्वंसमेष्यति ॥ (श्रीगोपालचम्पूः पूः ३३।२६)

* "अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वान्न वृद्धिः" इति पा ३।१।१३३सूत्रे प्रसादः।

तत्र च 'नन्द्यादेर्ल्युः' इति सर्व्वापि तट्टीका, किन्तु 'नन्दनं वनम्' (अमरकोषः १।१।४५) इत्यत्र नन्दयतीति ल्युरिति क्षीरस्वामी।

'नन्दनानि मुनीन्द्राणां रमणानि वनौकसाम्।'
—इति नन्द्यादि प्रकरणे भट्टिः (६।७३) ॥१९७॥

१९८। ग्रहादेर्णिनिः।

आदेर्ण इन, इन् इति स्थिते, इन् हन' (वि० ग्र० १२१) इत्यादि त्रिविक्रमः—ग्राही, स्थायी ॥१९८॥

१९९। गमि गाम्यादयस्तु भविष्यति साधवः।

व्रजं गमी, गामी, स्थायी, प्रतिबोधी, प्रयायी, भावी इत्यादि ॥१९९॥

२००। पचादेरत्।

'अच्' पाणिनिः (३।१।१४३)। पचः, देवः, मेषः सेवः, चरः, वदः, चलः, पनः, हनः ॥२००॥

२०१। चरादीनामत्प्रत्ययान्तानां द्विर्व्वा नरस्यारामश्च।

चराचर इत्यादि ॥२०१॥

२०२। हन्तेर्हस्य घत्वञ्च।

घनाघनः। पट विस्तारे चुरादिः, अस्य तु—पट पटः। पक्षे पटश्च, णेरनित्यत्वात्, जुमरमते * तु—पाटः, पटापटः इत्यादि ॥२०२॥

२०३। रात्रिमट-रात्र्यट-तिमिङ्गिलादयः साधवः।

२०४। ईशोद्धव-किरति-प्रीणाति-गॄ-ज्ञाभ्यः कः।

कः इत्, अरामः शेषः। क्षिपः, बुधः, भूरुहः, किरः, प्रियः, गिरः, ज्ञः। बाहुल्यात् क्षेपकः, क्षेप्ता ॥२०४॥

२०५। उपेन्द्रे आरामान्तात् कः।

सुग्लः, प्रज्ञः। बाहुल्यात् गोर्हन्यते यस्मै सः—गोघ्नोऽतिथिः ॥२०५॥

२०६। धेट-पा-घ्रा-ध्मा-दृशिभ्य शः।

श इत, अरामः शेषः। शित्वात् कृष्णधातुकत्वम् धयः, पिबः, जिघ्रः, धमः, पश्यः। धेट्संयोगात् पिबतेरेव, पातेस्तु—पाता ॥२०६॥

२०७। अनुपेन्द्रे लिपि-विद्ल्ट-धारि-पारि-वेद्युदेजि-चेति-साति-साहेः शः, ददाति-दधातिभ्यां णश्च, ज्वलादेर्णौ प्रादेस्त्वत्, भू-दु-नीभ्यश्च।

लिम्पः, विन्दः, धारयः इत्यादि। सातिः सौत्रः सातयः। तथा—ददः, दायः, दधः, धायः। तथा—ज्वालः, ज्वलः, चालः, चलः, प्रज्वलः, प्रचलः विपुलमित्यादि। भावः, भवः। दुनोतेरेव- दावः, दवः। नायः, नयः ॥२०७॥

२०८। नौ च लिपे शः।

निलिम्पा देवाः ॥२०८॥

२०९। गवादौ विन्दतेः शः संज्ञायाम्।

गोविन्दः, अरविन्दम् ॥२०९॥

२१०। आरामान्ताद्व्यधादेश्च णः, आसंभ्यां स्रुवः, अवतो हृषोः अतेरिणः।

हायः, व्याधः, श्वासः, देहः, लेहः, श्लेषः। को न स्यात्। अव्ययायः स्रु गतौ—आस्रावः, संस्रावः। शृणोतेस्तु— वचनेस्थित आश्रव' इत्यमरः (३।१।२४) विपरीतस्तु भ्रमः। अवहार, अवसायः अत्यायः। प्रत्यायः इत्यपि दृश्यते, 'अवतानौवितानौ' इति च ॥२१०॥

२११। ग्राहो जलचरे साधुः।

२१२। नृती खन्योष्टकः शिल्पिनि, रञ्जेश्च
'ष्वुन्' पाणिनिः (३।१।१४५) नर्त्तकः, खनकः ॥२१२॥

२१३। गायनस्थक-टणनौ।

तथा—गाथकः, गायनः ॥२१३॥

२१४। रञ्जेर्नस्य हरः असि अके अने घिणुनि च।

---

* "पाटः पटापटश्च" (संक्षिप्तसार-व्याकरणे कृदन्तपादस्य ३११ तम सूत्रम्)।

रजकः। अशिल्पिनि तु—नर्त्तिना, गाना इत्यादि २१४

२१५। प्रु-सृ-लूभ्योऽकः साधुकारिणि।

सरूपत्वान्न तु णकः। प्रवकः, सरकः, लवकः। 'श्रवतेश्च' इति कालापाः—श्रवकः। 'द्रवतेस्तु द्रवकः' इत्यपि जुमरमतम् ।।२१५।।

२१६। अक आशिषि।

जीवतात्—जीवकः ।।२१६।।

२१७। कर्म्मण्यण्, ह्वे-ञ-वेञ-माभ्यश्च।

'उपेन्द्रो' (कृ० प्र० ९६) इत्यादिना समासः, विश्वकारः। कृष्णं शृणोति, गच्छति, पश्यतीत्यादौ बाहुलयान्न, सापेक्षत्वेऽपि न—महान्तं घटं करोति। कृष्णह्वायः, तन्त्रवायः, विश्वमायः ।।२१७।।

२१८। सत्यङ्कारादयः साधवः।

सत्यं करोति, सत्यस्य कारो वा—सत्यङ्कारः, अगदङ्कारः, अस्तुङ्कारः, लोकम्पृणः, भ्राष्ट्रे इन्धे—भ्राष्ट्रमिन्धः, अग्निमिन्धः ।।२१८।।

२१९। कर्म्मण्यनुपेन्द्रादारामात् कः।

मुक्तिदः। त्रैङ् पालने—भक्तत्रः। नेह—भक्तिसम्प्रदायः ।।२१९।।

२२०। अकर्म्मण्यारामात् कः, स्थो भावे तु पुंसि।

पादपः वृन्दावनस्थः। "दरीमुखोत्थेन समीरणेन" (कुमारसम्भवम् १।८)। तथा वैष्णवानामुत्थानं—वैष्णवोत्थो वर्त्तते। 'गोष्ठः' इति भावे, गवां स्थानमित्यर्थः, 'कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते' इति, गावस्तिष्ठन्त्यत्रेति निर्गलितार्थः, "गोष्ठं गोस्थानकं तत्तु" इत्यमरशासनात् (२।९।१४)। 'ल्युः कर्त्तरीमनिज् भावे कः' (३।५।१५) इत्यत्र 'भावे क-प्रत्ययान्तः पुंसि' इति हि क्षीरस्वामी। "आखूत्थशलभोत्थादि तदुत्थानेऽस्थि, न द्वयोः" इति तु शब्दार्णवः ।।२२०।।

२२१। कर्म्मणि शोकापनुदः सुखदे, तुन्दपरिमृजस्त्वलसे साधुः, मूलविभुजादयश्च साधवः।

२२२। कर्म्मणि प्र-पूर्व्वाभ्यां दा-ज्ञाभ्यां कः

कृष्णप्रदः, भक्तिप्रज्ञः ।।२२२।।

२२३। कर्म्मणि समः ख्यः कः।

कृष्णधेनुसंख्यः ।।२२३।।

२२४। कर्म्मण्यनुपेन्द्रगायतेष्टक्।

कृष्णगः। टित्त्वादीप्—कृष्णगी। उपेन्द्रात्तु—कृष्णसंगायः ।।२२४।।

२२५। सुरा-सीध्वोः कर्म्मणोः पिवतेष्टक्

सुरापः, सुरापी ।।२२५।।

२२६। कर्म्मणि हरतेरदनुत्क्षेपे वयसि च आङस्तु ताच्छिल्ये।

संसारहरः। तथा—कवचहरः समाजगाम रामः कवचधारणयोग्यवया इत्यर्थः। तथा कृष्णोच्छिष्टाहरः तत्स्वभाव इत्यर्थः। उत्क्षेपे तु भारहारः ।।२२६।।

२२७। शक्त्यादिषु कर्म्मसु ग्रहेरत्।

शक्तिग्रहः, लाङ्गलग्रहः। एवमङ्कुश-यष्टि-तोमर-घट-घटी-धनुःषु ।।२२७।।

२२८। सूत्रग्रह इत्यवधारणे।

सूत्रग्राहोऽन्यत्र ।।२२८।।

२२९। कर्म्मण्यर्हतेरत्।

कृष्णार्हः, कृष्णार्हा ।।२२९।।

२३०। शस्त्रे कर्म्मणि धृञोऽत्, न तु सूत्रदण्डयोः।

चक्रधरः। नेह—सूत्रधारः, दण्डधारः। सूत्रनिषेधात् अशस्त्रेऽपि—भूधरः ।।२३०।।

२३१। स्तम्भेरमो हस्तिनि, कर्णेजपः सूचके साधु।

२३२। शमि धातोरत् संज्ञायाम्।

शङ्करः। शम्वरो दैत्यः ।।२३२।।

२३३। अधिकरणे शेतेरत्, करणे पार्श्वादौ च

क्षीरोदशयः। तथा पार्श्वाभ्यां शेते—पार्श्वशयः उदरशयः, पृष्ठशयः ।।२३३।।

२३४। उत्तानादिषु च।

उत्तानः शेते—उत्तानशयः। अवमूर्द्धा शेते—अवमूर्द्धशयः ॥२३४॥

२३५। दिग्धसहाच्च।

दिग्धसहशयः ॥२३५॥

२३६। गिरौ तु गिरिशः साधुः।

२३७। अधिकरणे भिक्षा-सेना-दायेषु च चरेष्टः।

वृन्दावने चरति—वृन्दावनचरः। भिक्षां चरति—भिक्षाचरः। सेनां चरति—सेनाचर इत्यादि। 'कथं सहचरीति ? चिन्त्यम् ※ इति पुरुषोत्तमः (भाषावृत्तिः ३।२।१६)। कालिकविशेषपरत्वात् सह एकस्मिन् काले चरतीति चिन्तनीयम् ॥२३७॥

२३८। रात्रिचर-रात्रिञ्चरौ द्वावपि साधु।

२३९। पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सरतेष्टः पूर्व्वे कर्त्तरि च।

पुरःसरः, अग्रतःसरः, अग्रेसरः। पूर्व्वं सरतीति पूर्व्वसरः ॥२३९॥

२४०। शब्द-श्लोक-कलह-गाथा-वैर-चाटु-सूत्र-मन्त्र-पद-वर्ज्जं कर्म्मणि डुकृञोष्टो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु।

सर्व्वार्थकरी हरिभक्तिः। ताच्छील्ये—व्यसनकरः आनुलोम्ये—प्रीतिकरः। 'पितुर्व्वचकरं रामम्' इति भट्टिः (५।६८)। नेह—शब्दकारः, श्लोककारः इत्यादि ॥२४०॥

२४१। आद्यन्तानन्त-बहु-नान्दी-लिपि-लिवि-भक्ति-वलि-कर्त्तृ-चित्र-क्षेत्र-जङ्घा-बाहु-धनुररुस् संख्यादि-दिवादि-तदादिषु कर्म्मसु डुकृञष्टः, किंयत्तद्बहुष्वत्।

अत्रापि विकल्पस्तस्यां (पा ३।२।२१) भ्रमः। आदिकरः, अन्तकरः, अनन्तकर इत्यादि। सङ्ख्यायाम्—एककरः, द्विकर इत्यादि। दिवादौ—दिवाकरः, निशाकरः, विभाकरः, भास्करः, प्रभाकरः। तदादौ-तत्करः, यत्कर इत्यादि। तथा-किङ्करः, किङ्करा, किङ्करी इत्यपि दृश्यते ॥२४१॥

२४२। कर्म्मकरो भृत्ये, दृतिहरि-नाथहरी-पशौ, आत्मम्भर्य्युदरम्भरि-कुक्षिम्भर्य्यादयः, स्तम्वकरिशकृत्करी व्रीहि-वत्सयोः, फलेग्रहिरबन्ध्यवृक्षे।

'कर्म्मादि'-कर्म्मणि पूर्व्वपदे कृञादीनामेते निपात्यन्ते। 'स्यादबन्ध्यः फलेग्रहिः' इत्यमरः (२।४।६) 'फलेग्रहीन् हंसि वनस्पतिनाम्' इति भर्त्तृहरिविप्रः (भट्टिः २।३३)। २४२॥

२४३। स्तनो-शुन्योः कर्म्मणोर्धेटः, नासिकादिषु धमश्च, शर्द्धे जहातेः, विधु-तिलयोस्तुदः खश्।

स्तनन्धयः। 'वामनश्च' (कृ० प्र० १०४) शुनिन्धयः नासिकन्धयः नासिकन्धमः नाडिन्धयः, नाडिन्धमः एवं मुष्टिघटी-खारि-वातेषु। 'मुञ्जकूलास्य-पुष्पेषु धेटो वा' इति केचित्-मुञ्जन्धय इत्यादि। शर्द्धञ्जहः, विधुन्तुदः, तिलन्तुदः ॥२४३॥

२४४। अरुन्तुद-जनमेजय-कूलमुद्रुज-कूलमुद्वहाभ्रंलिहा।

'अरुस् इत्यादिकर्म-पूर्व्वपदत्वे तुदादिधातूनामेते साधवः। 'बाहुंलिहोऽपि' इत्येके ॥२४४॥

२४५। मित-नख-परिमाणेषु कर्म्मसु पचः खश्।

मितम्पचः, नखम्पचः, प्रस्थम्पचः, द्रोणम्पचः। 'मितार्थस्यापि' इत्येके। अल्पम्पचः। "पान्तावल्पम्पचान्मुनीन्" इति भट्टिः (६।९७) २४५

२४६। असूर्य्यम्पश्य-ललाटन्तप-प्रियम्वद-परन्तप-वाचंयम-सर्व्वंसहादयश्च।

※ "प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीं व्यवधाय देहम्" इति रघुकाव्ये। पचादिषु पठितस्य चरडित्यस्य सुप्सुपेति समास सहचरीति

कर्म्मपूर्व्वपदत्वे दृश्यादीनामेते साधवः। सूर्य्यमपि न पश्यति—असूर्य्यम्पश्य इत्यादि। भिन्नक्रमोऽयं नञ् अन्यत्रापि दृश्यते—अपुनर्गेयाः श्लोकाः, अश्राद्धभोजीत्यादि। 'आदि' ग्रहणात् अरिन्दमः। उग्रं यथा स्यात् तथा पश्यति—उग्रम्पश्यः ॥२४६॥

२४७। अन्यपूर्व्वत्वे [१] च।

इरया माद्यति—इरम्मदः। वशः सन् वदति—वशंवदः इत्यादि ॥२४७॥

२४८। अधिकरणे च।

पाणयो ध्मायन्ते यत्र सः—पाणिन्धमः पन्थाः। नाड्यो ध्मायन्ते यत्र—नाडिन्धमः पन्थाः। 'मणिन्धम-करन्धमौ' च केषाञ्चित्। द्विषन्तं तपति द्विषन्तं तापयति वा द्विषन्तपः, 'द्विषत्तापः' इत्यपि केचित् ॥२४८॥

२४९। हृदय-मित-सुतेभ्यो गमेः खः।

हृदयङ्गमं वचनम्, मितङ्गमो हस्ती, सुतङ्गमो राजभेदः। "हृदयङ्गमेतत्त्वां ब्रवीमि" इति भट्टिः (६।१०६)। 'हृदयङ्गमा वाक्' इति चुल्लिभट्टिः २४९

२५०। पुरन्दर-भुजङ्गमादयो भुजग-भुजङ्गादयश्च संज्ञाशब्दा।

२५१। सर्व्व-कूलाभ्र-करीषेषु कर्म्मसु कषः खः।

सर्व्वङ्कषः ॥२५१॥

२५२। भयर्त्तिमेघेषु कर्म्मसु कृञः खः

भयङ्करः, ऋतिङ्करः, मेघङ्करो वातः ॥२५२॥

२५३। क्षेम-प्रिय-मद्रेषु कर्म्मसु डुकृञः खाणौ।

क्षेमङ्करः, क्षेमकारः ॥२५३॥

२५४। वृत्र-कृत-गो-ब्रह्म-शत्रु-चौरेषु कर्म्मसु हन्तेष्टक्।

वृत्रघ्न इत्यादि। बाहुल्यात्—चौरघातः, नगरघातश्च। एतत्पदद्वयेन हस्तुयच्यते ॥२५४॥

२५५। कर्म्मणि हन्तेष्टक् अमनुष्यकर्त्तृत्वे।

संसारघ्नी हरिभक्तिः, चौरघातो गजः, शस्यघातो वृषः इति च। अनभिधानात् वेण्वादौ च वाच्ये टक् न स्यात्, वृषघातो वेणुः ॥२५५॥

२५६। आशिते कर्त्तरि भवतेः खः करणभावयोः।

आशितास्तृप्ता भवन्ति येन स आशितम्भवः ओदनः, ओदनेनाशितम्भवं भवति, तृप्तिर्भवतीत्यर्थः ॥२५६॥

२५७। विश्वम्भरादयः संज्ञाशब्दाः।

२५८। अन्तात्यन्ताध्व-दूर-पार-सर्व्वानन्त-सर्व्वक्षेत्रेषु कर्म्मसु गमेरच्।

'डः' पाणिनिः (३।२।४८)। 'संसारस्य हरश्चिति' (वि० प्र० ३९)—अन्तग इत्यादि ॥२५८॥

२५९। सुदुरोर्गमेरजधिकरणे।

सुगं वृन्दावनम्। दुर्गो वदरिकाश्रमः ॥२५९॥

२६०। ग्रामगः कर्त्तरि च, अगो नगश्च शैलवृक्षयोः साधु, कर्म्मणि हस्तिघ्न-कपाटघ्नौ शक्ते साधू।

'बाहुघ्नः' इति चैके। 'शक्ते' किम्? हस्तिघातो विषप्रदः ॥२६०॥

२६१। करणे कर्म्मणि वा पाणिघ-ताडघौ शिल्पिनि साधू।

ताड आघातः। 'शिल्पिनि' किम्? ताडघातः ॥२६१॥

२६२। कर्म्मणि राजघ-क्लेशापह-तमोपह-कुमारघाति-शीर्षघातिनः साधवः।

१। अन्यपूर्व्वपदत्वे (क)

१। सुतेषु कर्म्मसु गमेः खः (क)

२६३। कर्म्मण्याशिषि हन्तेरच् स्यादिति वक्तव्यम् ।

शत्रुं बध्यात्—शत्रुहः, तिमिहः, दस्युह इत्यादि ॥२६३॥

२६४। लक्षणे जायापत्योष्टग् वक्तव्यः ।

जायाघ्नो हस्तः, पतिघ्नी पाणिरेखा ॥२६४॥

२६५। आढ्य-सुभग-स्थूल-पलित-नग्नान्ध-प्रियेष्वभूततद्भाववत्सु कर्म्मसु डुकृञः खनट् करणे *।

'ख्युन्' पाणिनिः (३।२।५६)। खटावितौ, अनः शेषः ॥२६५॥

२६६। तेषु कर्त्तृषु तादृशेषु भुवः खिष्णुखुकञौ कर्त्तरि *।

अनाढ्यमाढ्यं कुर्व्वन्ति येन तत्—आढ्यङ्करणम्, सुभगङ्करणम् ॥२६६॥

२६७। तद्धित-च्विप्रत्यये तु नेति वाच्यम् ।

आढ्यीकुर्व्वन्त्यनेनेति न तथा, किन्तु अनेन भाव्यम्—आढ्यीकरणो रसविधिः, स्थूलीकरणमन्नम् तथा च भाष्यम् (पा ३।२।५६)—"ख्युनि च्वि-प्रतिषेधोऽनर्थकः, ल्युट्-ख्युनो-रविशेषात् ।" अनाढ्य आढ्यो भवति—आढ्यम्भविष्णुः, आढ्यम्भावुकः। सुभगम्भविष्णुः, सुभगम्भावुकः इत्यादि ॥२६७॥

२६८। समाने कर्म्मण्यन्यतदादिषु च कर्म्मोपमानेषु दृशः क-क्विप्-सकः कर्म्मणि सामान्यस्य च सः ।

समानो दृश्यते सदृशः। 'स्रज्-दिश्-दृश्' (वि० प्र० १०८) इत्यादिना कः—सदृक्। सदृक्षश्छान्दस इत्येके ॥२६८॥

२६९। अन्यादेरिवेन सह संसारस्यारामः काद्यन्तेषु दृशादिषु, इदम ईश्, किमः कीश् अदसोऽमूश् ।

अन्य इव दृश्यते—अन्यादृशः। एवम् तादृशः, ईदृशः, कीदृशः, अमूदृशः इत्यादि ॥२६९॥

२७०। क्रुञ्च्-दधृष्-स्रज्-उष्णिगहश्च क्विबन्ताः ।

क्रुञ्च-धृष-सृज-उत्पूर्व्वस्निहामेते पक्षिविशेष-धृष्ट-मालाच्छन्दोविशेषेषु क्विबन्ता निपात्यन्ते। क्रुङ् दधृक् ॥२७०॥

२७१। नाम्नि-सद्ल्ट-सू-द्विष-द्रुह-दुह-युज-लाभार्थ-विद-भिद-छिद-जि-नी-राजिभ्यः क्विप्

उपनिषत्, शुचिषत्। षत्वं वाच्यम् (समा० प्र० ३०९) प्रसूः, कृष्णप्रसूः, कंसद्विडित्यादि। मृदु यथा स्यात् तथा नयति—मृदुनीः, मृदुन्यौ ॥२७१॥

२७२। अग्र-ग्रामयोः कर्म्मणोर्नियः क्विप् णत्वञ्च ।

अग्रणीः, ग्रामणीः ॥२७२॥

२७३। धी-प्रधीप्रभृतयः साधवः ।

ध्यायते अनया—धीः। एवं जुहूः। प्रकृष्टं ध्यायति—प्रधीः। एवं द्योतते—दिद्युत्। गच्छति—जगत्। दीर्य्यते—दृदृत्। दृन्निति हिंसार्थेऽव्ययं हिंसायां भवतीति, यद्वा दृढो भयतीति ढस्य नः। दृन्भूः स्त्री सर्परुद्रयोः, तरुसर्पजातिभेदो वा। आप्यायते—आपीः ॥२७३॥

२७४। उपेन्द्रे कर्म्मणि च भजेर्ण्विः ।

ण इत्। प्रभाक्, कृष्णभाक् ॥२७४॥

२७५। तुरासाह्-जलासाह्-पृष्ठवाह् परिव्राज इत्येते च साधवः ।

'अनकारान्ते उपसर्गे चोपपदे वहेर्ण्णिर्नास्ति' इति भाष्यम्, तेन 'भूवाह्, वारिवाह् निर्वाह् इत्यादयोऽपप्रयोगाः' इति पदचन्द्रिकायाम् ॥२७५॥

२७६। अनो वहेरनडुह् साधुः ।

२७७। अनन्ने कर्म्मण्यदः क्विप् ।

तुलसीपत्रात्। नेह—अन्नादः ॥२७७॥

---

* नग्नादिषु च यः ख्युट् स्यात् करणे कारके स हि। भुव खिष्णुच्-खुकञौ च भवेतां कर्त्तृकारके ॥

२७८। क्रव्यादादयश्च साधवः।
चात् क्रव्यादपि ॥२७८॥

२७९। नाम्न्यारामात् मनिप् क्वनिप् वनिप् विश्च।
सुष्ठु ददाति – सुदामा, श्रीदामा, 'दामोदर मास्था' (आ० प्र० १८४) इतीत्वम्—सुपीवा, हरिभक्तिदावा, विश्वपाः। प्रायश्छन्दस्येव विधिरयमिति। यथादृष्टमेवोदाहार्य्यम् ॥२७९॥

२८०। अन्येभ्योऽपि मनिवादयः।
सुशर्म्मा, देवशर्म्मा, सुत्वा—याज्ञिकः, धीवा—धारकः ॥२८०॥

२८१। हरिवेणोरारामो वनिपि।

२८२। नेड् वन्-ति-आदौ भणादिवर्ज्जम्
ओण्—अवावा। दैत्यवृश्चमाचष्टे इति ण्यन्तात् क्विप्—दैत्यव्। क्विप्, धातुमात्रादयं विधिः। करोति कृत्, भक्तिकृत्। ऋतौ यजति ऋत्विक्। 'क्विपि च' (कृ०प्र० ९१) इति ईरामनिषेधात् संस्थाः 'श्या-श्वि-व्या-ज्या' (आ० प्र० ५०५) इति त्रिविक्रमः—मित्रं ह्वयते मित्रहूः। 'वेञस्तु क्विपि' ऊः, उवौ। 'हरिवेणवन्तोद्धवस्य त्रिविक्रमः' (आ० प्र० ५००) 'धातोर्मो नः' (वि० प्र० १२९) प्रशान्। 'इन्-हन्' (वि० प्र० १२१) इति निर्द्देशान्न दीर्घः– कंसहनौ। 'ज्वर-तर' (आ० प्र० ४२२) इत्यादि—जुः, जुरौ, तूः, तूरौ, स्रूः, स्रुवौ, ऊः उवौ। 'अद्वयादूठो वृष्णीन्द्रः' (वि० प्र० १४७) गोपानवति गोपौः, गोपावौ ॥२८२॥

२८३। एरामान क्वौ वस्य हरः।
देवृ—देः दयौ। सेवृ— सेः, सयौ। 'एआवामनेभ्यो बुद्धस्यादर्शनम्' (वि० प्र० २५)—हे से। 'राच्छवयोर्हरः' (आ० प्र० ५०२) मूर्च्छा—मूः, मुरौ धुर्व्वी हिंसायां—धूः, धुरौ।

२८४। गमादेर्हरिवेणुहरः क्वौ।
गच्छति—गत्, संयत्, सुनत्। 'सुमद्व' इति क्वचित् ॥२८४॥

२८५। उपेन्द्रस्य पूर्व्वपदस्य च त्रिविक्रमो नहि-वृति-वृषि-व्यधि-रुचिषु क्विवन्तेषु।
उपानत्, नीवृत् प्रावृट् मृगावित्, मर्म्मावित्, नीरुक्। 'उपेन्द्रादेः' किम्? तिग्मा रुक् यस्य सः—तिग्मरुक् ॥२८५॥

२८६। कृष्णनाम-विष्वग्-देवानां संसारस्याद्रिरचि।
लुप्तनकार-क्विवन्ताञ्चताविदर्थः। सर्व्वमञ्चति—सर्व्वद्रचङ्, विष्वद्रचङ्, देवद्रचङ् ॥२८६॥

२८७। अदसस्त्वचि अमुमुयच्, अदमुयच् अमुद्रचच्, अदद्रचच् इति चत्वारीच्छन्ति।
अमुमुयङ्, अमुमुयञ्चावित्यादि ॥२८७॥

२८८। भगवति तु मुपूर्व्वस्य यस्य ई सन्धिनिषेधश्च।
अमुमुईचः, अमुमुईचा। द्रिपूर्व्वस्य तु—अमुद्रीचः ॥२८८॥

२८९। सहस्य सध्रिः, समः समिस्तिरसस्तिरिरचि।
सध्र्यङ्, सम्यङ्, तिर्य्यङ्। आशासनम् आशीः, मित्राणि शास्ति—मित्रशीः। आशीर्वद्वाच्यः घृतं श्च्योतति—घृतश्च्युत्। तत् समाचष्टे इति णिः संसारहरः, क्विप्, 'यवयोर्हरो बले' (आ० प्र० ५०३) नामत्वात् स्वादयः, सरामजः शरामश्चे इति दन्त्यादित्वात् 'स्कोः सत्सङ्गाद्योर्हरः' (व० प्र० १०४) 'चवर्गस्य कवर्गः' (वि० प्र० ९७) घृतक्, घृतश्चौ ॥२८९॥

२९०। युष्मदस्मदोर्णिक्विवन्तयोर्युष्म-स्मौ
त्वां, युवां, युष्मान् वाचष्टे, एवं माम्, आवाम् अस्मान् वा इति णौ संसारहरे क्विपि—युष्म् अस्म् इति मान्तौ साधू ॥२९०॥

२९१। तयो रूपाणि सु-जस्-ङे-ङस्सु प्रकृतवदेव वाच्यानि, अन्यत्र तु क्विवन्तयोर्युषसौ त्यक्त्वा, प्रकृतयोर्व-म-

पर्य्यन्तभागं त्यक्त्वा क्विबन्तपदशिष्टं प्रकृतपदशिष्टवत् कार्य्यम्, तत्र टौस्ङिषु वमौ त्यागे सारामौ ग्राह्यौ, अन्यत्र तु निररामौ।

यथा—त्वां, युवां, युष्मान् वाचक्षाण आचक्षाणौ इत्यादिषु त्वं, युवां, यूयम्, युषां, युषां, युष्मान्, युष्या, युषाभ्यां युषाभिः, तुभ्यं, युषाभ्यां युषभ्यम्, युषत्, तव, युष्योः, युषाकम्, 'युष्माम्' इत्येके। युष्यि, युष्योः, युषासु। एवमस्मदः—अहम्, असां वयमित्यादि। कौमारास्तु टापरत्वे—युष्मा, अस्मा चतुर्थी-भ्यसि युष्मभ्यम्, अस्मभ्यम्, सुपि—युष्मासु, अस्मासु इति मन्यन्ते, किन्त्वपाणिनीयम्

२९२। असिः।

सर्व्वधातुभ्योऽसिः स्यात्। उरुव्यचाः, नृचक्षाः ॥२९२॥

२९३। अजातावनुपेन्द्रोपपदे णिनिस्ताच्छील्ये जातावपि व्रताभीक्ष्ण्ययोश्च, कर्त्रुपमाने च।

२९४। मन्यतेः खश्-णिनी आत्ममनने।

कृष्णसेवी। जातौ तु—विप्रसेवः। अजातौ व्रते—हरिनिर्माल्यभोजी। अत्राभीक्ष्ण्ये—हरिनामग्राही जातौ—तुलसीदेवी। एवमजातौ कृष्ण इव गायति—कृष्णगायी। जातौ तु—कृष्णे गोपस्नेही।

शिवत्वात् श्यः, वैष्णवमात्मानं मन्यते—वैष्णवम्मन्यः, वैष्णवमानी। 'वाच्यलिङ्गलक्ष्मीः पुरुषोत्तमवत् क्यङ्-मानिनो-णौ च' (आ० प्र० ५३२) इति—वैष्णवमानिनी। आभीक्ष्ण्ये कथं कुलमाषखादः? बाहुलयात् ॥२९४॥

२९५। एकसर्व्वेश्वरान्तस्य द्वितीयैकवचनवत् प्रयोगः खिदन्ते।

गाम्मन्यः, नावम्मन्यः, स्त्रियम्मन्यः, श्रियम्मन्यं स्त्रिकुलम्, भुवम्मन्यः ॥२९५॥

२९६। अतीते।

प्रभुरयं 'ङ्वनिप्' पर्य्यन्तः ॥२९६॥

२९७। करणे यजो णिनिः।

सोमेनेष्टवान्=सोमयाजी ॥२९७॥

२९८। कर्म्मणि हनो णिनिर्निन्दायाम्।

वैष्णवघाती। नेह—कंसं हतवान् ॥२९८॥

२९९। ब्रह्म-भ्रूण-वृत्रेषु कर्म्मसु हनः क्विप्

ब्रह्महा। तत्राकरणान्न तुक्—ब्रह्महभ्याम्। ब्रह्मादिष्वेव हन्तेः क्विप्, 'वचनं नियमार्थम्' इति भाष्यम्। भूते नियमार्थकान्न कालसामान्ये, तेन वीरं हन्तीति—वीरहा। हिमहा। 'यत्र तिष्ठति कंसहा' इत्यादिप्रयोगादन्यत्रापि कंसहा, मधुहा ॥२९९॥

३००। सुकर्म्म-पाप-मन्त्र-पुण्येषु कर्म्मसु डुकृञः क्विप्।

सुकृत् ॥३००॥

३०१। अन्यत्र च।

शास्त्रकृत् ॥३०१॥

३०२। सोमसुदग्निचितौ साधू।

३०३। कर्म्मणि दृशेः क्वनिवेव।

श्रीकृष्णदृश्वा ॥३०३॥

३०४। राजयुद्ध-राजकृत्व-सहयुद्ध-सहकृत्वानः साधवः।

युधिरत्र ण्यन्तः। राजानां योधितवान्—राजयुद्धा ॥३०४॥

३०५। सप्तम्यन्ते जनेरच्।

वृन्दावनजः। बाहुलयात् द्वाभ्यां जातः—द्विजः ॥३०५॥

३०६। समासे ङेर्न महाहरः कृति बहुलम्

दिविष्ठः, दिविषदित्यादि—षत्वं वाच्यम्। हृदिस्पृक् ॥३०६॥

३०७। प्रावट्शरत्कालदिवां जे।

प्रावृषिज इत्यादि। वर्षासुजः, अप्सुज इत्यादि च ॥३०७॥

३०८ वर्ष-क्षर-वर-मनोभ्यो वा।

वर्षेजः, वर्षज इत्यादि। 'शरात्' इत्यपि जुमरमतम् ॥३०८॥

३०९। सरसो रुहे च।

सरसिजं, सरोजम्। 'उद्भासीनि जलेजानि' इति भट्टिः (६।७५)। सरसिरुहम्, सरोरुहम्, शिरसिरुहः, शिरोरुहः। पङ्केरुहमित्यादौ तु नित्यम् ॥३०९॥

३१०। अकालाच्छय-वासि-वासेषु वा।

खेशयः, खशय इत्यादि। 'अकालात्' किम्? पूर्वाह्णशयः ॥३१०॥

३११। विष्णुजनारामाभ्यामेव।

वारिशयः ॥३११॥

३१२। इनस्ते तु न।

जलशायी ॥३१२॥

३१३। स्थे न च क्वचित्।

समस्थः ॥३१३॥

३१४। सु-यजभ्यां ङ्वनिप्।

सुत्वा, यज्वा। अतीत इति निवृत्तम् ॥३१४॥

३१५। क्विप् पर्य्यन्तास्तच्छील-तद्धर्म्म तत्साधुकारिषु।

एष्वर्थेषु वक्ष्यमाणा ज्ञेयाः ॥३१५॥

३१६। तृन्।

सृष्टिं कर्त्ता ॥३१६॥

३१७। अलंकृञ-निराकृञ-प्रजन-उत्पत-उत्पच-उन्मद-रुचि-अपत्रप-वृतु-वृधु-सह-चर इत्येभ्य इष्णुः।

कृष्णमलङ्करिष्णुः, निराकरिष्णुः, प्रजनिष्णुरित्यादि ॥३१७॥

३१८। भविष्णु-भ्राजिष्णू साधू।

३१९। ण्यन्ताच्च।

कारयिष्णुः ॥३१९॥

३२०। जि-भूभ्यां स्नुक्।

जिष्णुः, भूष्णुः ॥३२०॥

३२१। ग्ला-स्थाभ्यां स्नुः।

ग्लास्नुः, स्थास्नुः ॥३२१॥

३२२। त्रसि-गृधि-धृषि-क्षिपिभ्यः क्नुः

'नेड्-वन्-ति-त्रादौ' (कृ० प्र० २८२) त्रस्नुरित्यादि ॥३२२॥

३२३। शमादेर्णिनिः।

शमी, भ्रमी। अकर्म्मकादेव, नेह—वनं भ्रमिता ॥३२३॥

३२४। अनुरुधादेर्णिनिः।

अनुरोधी, आयामी, आयासी, संज्वारी, दोषी, द्रोही, दोही, आक्रीडी, अतिचारी, अपचारी, अनुचारी, व्यामोषी, अभ्याघाती। 'आमोषी' इत्येके ॥३२४॥

३२५। परेर्दिवि-क्षिप-रट-वद-दह-मुहो णिनिः

परिदेवी ॥३२५॥

३२६। वेः कष-लस-कत्थ-स्रम्भो णिनिः

कष हिंसायाम् विकाषी, विलासी ॥३२६॥

३२७। अप-विभ्यां लषो णिनिः।

लष कान्तौ—अपलाषी ॥३२७॥

३२८। प्रात् सृ-द्रु-लप-मन्थ-वद-वसो णिनिः

प्रसारी ॥३२८॥

३२९। मन्थो नलोपश्च।

प्रमाथी ॥३२९॥

३३०। संपृच-विविच-रन्ज-संसृज-युज-त्यज-भज-भन्जो घिणुन्।

सम्पर्की, विवेकी। 'वन्जेर्नस्य हरः' (कृ० प्र० २१४)—रागी ॥३३०॥

३३१। भन्जेर्नलोपश्च।

भागी ॥३३१॥

३३२। निन्द-हिंसा-क्लिश-खादि-विनाशि-व्याभाषा-सूयेभ्यो णकः, अनेकसर्व्वेश्वराच्च कालापानां *, परेः क्षिप-रट-वादिभ्यः, उपेन्द्राद्दिवि-क्रुशाभ्याम्।

निन्दकः, क्लिश—क्लेशकः ॥३३२॥

* कृद्वृत्तिः २७३।

३३३ । चलनशब्दार्थादिकर्म्मकादनः ।

चलनः, कम्पनः, शब्दनः, रवणः ॥३३३॥

३३४ । असि उसि अने च चक्षिङः ख्याञ् नेति वाच्यम् ।

विचक्षणः विद्वानित्यर्थः, कर्म्मानपेक्षणात् । अकर्म्मकात् किम् ? पठिता गीताम् ॥३३४॥

३३५ । विष्णुजनाद्यात्मपदिनश्चानः ।

वर्त्तनः । अकर्म्मकादित्येव । वसिता पीताम्बरम् ॥३३५॥

३३६ । जु-चङ्क्रम्य-दंद्रम्य-सृ-वृधि-गृधि-ज्वल-शुच-लष-पत-पदश्चानः ।

जवनः चङ्क्रमणः ॥३३६॥

३३७ । क्रोधभूषार्थेभ्यश्चानः ।

क्रोधनः, कोपनः, भूषणः, मण्डनः ॥३३७॥

३३८ । यराम-सूद-दीप-दीक्ष्येभ्यो नानः ।

आप्यायिता, क्ष्मायिता, सूदिता ॥३३८॥

३३९ । लष-हन-पत-पद-स्था-भू-वृष-कम-गम-शॄभ्य उकण् ।

लाषुकः, घातुकः, ॥३३९॥

३४० । जल्प-भिक्ष-कुट्ट-लुण्ठ-वृङ आकट् ।

'षाकन्' पाणिनि (३।२।१५५) जल्पाकः ॥३४०॥

३४१ । स्पृहि-गृहि-पति-कृपि-दयि-निद्रा-तन्द्रा-श्रद्धा-शीभ्य आलुः ।

स्पृहयालुः, ग्रह ग्रहणे—गृहयालुः, पतयालुः । एते त्रयश्चुरादावरामान्ताः । कृपालुः, दयालुः । निपूर्व्वो द्रा—निद्रालुः । तत्पूर्व्वो द्रा, नकारो निपातात्—तन्द्रालुः । श्रत्पूर्व्वो धा—श्रद्धालुः ॥३४१॥

३४२ : सृ-घस्यादिभ्यः क्मरः ।

सृमरः ॥३४२॥

३४३ । भन्ज-भास-मिदिभ्यो घुरः, भन्जेः कर्म्मकर्त्तरि च ।

अनङ्गमानभङ्गुरम् । तथा—भङ्गुरं काष्ठम् ॥३४३

३४४ । वेत्ति-भिदि-छिदिभ्यः कुरः ।

विदुरः ॥३४४॥

३४५ । भिदि-छिदिभ्यां कर्म्मकर्त्तरि च

दोषान्धकारभिदुरं ज्ञानम् । "करीन्द्रदर्पच्छिदुरो मृगेन्द्रः" । तथा—भिदुरं काष्ठम् । छिदुरा रज्जुः ॥३४५॥

३४६ । इण-णश-जि-शर्तिभ्यः क्वरप् ।

इत्वरः । क्वरपो गौरादित्वाल्लक्ष्म्यामीप् (त० प्र० २०७) इत्वरी, नश्वरी ॥३४६॥

३४७ । यङन्तादपि क्वचित् ।

'यवयोर्हरो बले' (आ० प्र० ५०३) इति यस्य हरः—यायावरः ॥३४७॥

३४८ । गत्वरः साधुः । ३४९। जागर्त्तेरूकः ।

जागरूकः ॥३४९॥

३५०। यज-जप-दन्श-वदिभ्यो यङन्तेभ्यः ऊकः

'विष्णुजनात् साराम यस्य हरो रामधातुके' आ० प्र० ४८०) यायजूकः, जञ्जपूकः, दन्दशूकः, वावदूकः ॥३५०॥

३५१ । नमि-कम्पि-स्मि-कमि-हिंसि-दीपादिभ्यो रः ।

नम्रः ॥३५१॥

३५२ । सनन्ताशंस-भिक्षिभ्य उः ।

हरिभक्ति चिकीर्षुः ॥३५२॥

३५३ । विन्दुरिच्छुश्च साधू ।

वेदनशीलो विन्दुः ज्ञातेत्यादि ॥३५३॥

३५४ । धाञ-कृ-सृ-जनि-गमि-नमिभ्यः किः

अधोक्षजाभत्वाद्द्विर्व्वचनादि— दधिः, चक्रिः, सस्रिः, जज्ञिः, जग्मिः, नेमिः ॥३५४॥

३५५ । साहसिमुखा यङन्ताः कौ साधवः ।

* सासहिः, चाचलिः, वावहिः, पापतिः ॥३५५॥

---

* वावहिः पर्व्वतं बालः साहहिर्न तु चाचलिः । वहिरेव यथा वृष्टिः पापतिर्न तदन्तरे ॥ (श्रीगोपालचम्पूः पूः १९।१)

३५६। स्वपि-तृपि-धृपिभ्यो नजिङ्।

इङावितौ। स्वप्नक् ॥३५६॥

३५७। शृ-वन्धिभ्यामारुः।

शरारुः ॥३५७॥

३५८। भीरु-भीरुक-भीलुकाः साधवः।

३५९। स्था-ईश-भास-पिस-कसिभ्यो वरः

स्थावरः, ईश्वरः। पिसृ-कस-गतौ—पेस्वरः, विकस्वरः ॥३५९॥

३६०। भ्राजादिभ्य क्विप्।

विभ्राट्, भाक्, भाः, ऊर्क्, धूः, विद्युत्, पूः, सूरित्यादय ॥३६०॥

३६१। अन्येभ्योऽपि।

ग्रावस्तुत्, भित्, छित् ॥३६१॥

३६२। प्रच्छादीनां त्रिविक्रमो, न च संङ्कर्षणः।

प्राट्, कटप्रूः। ज्वरति—जूः, श्रयते—श्रीः, स्त्रियाम् ॥३६२॥

३६३। वि-प्र-शंभ्यो भुव उच् संज्ञायाम्।

विभुरित्यादि। समाप्तस्तच्छीलाद्यधिकारः ॥३६३॥

३६४। दाप-नी-शस्-यु-युजिर्-स्तु-तुद-सिञ-सिच-श्वि-मिह-पत-दन्श-नहस्त्रः[1] करणे, छदादिभ्यश्च गोश्च नाम्नि, अर्त्ति-लू-धू-सू-खन-सह-चर-इत्रः।

दात्रं,नेत्रमित्यादि तथा—छत्त्रं, दंष्ट्रं,नद्धं, शास्त्रं, वस्त्रं, गोत्रम्। अरित्रं, लवित्रं, धूविधूनने कुटादिः—धुवित्रं, सू प्रेरणे—सवित्रमित्यादि ॥३६४॥

३६५। द्रंष्ट्रा नद्ध्री च साधू।

[अत कृदन्ते उणादयः]

३६६। उणादयो बहुलम्।

करोतीति कारुः। साध्नोतीति साधुः ॥३६६॥

३६७। सिञादेस्तु।

सेतुः ॥३६७॥

३६८। अवि-तृ-स्तृ-तन्द्रिभ्य ईर्लक्ष्म्याम्।

अवीरित्यादि ॥३६८॥

३६९। लक्षेर्मुट् च।

लक्ष्मीः ॥३६९॥

३७०। स्त्यायतेरीवन्ता स्त्री।

३७१। मण्डि-जनि-नन्देरन्तुः।

मण्डयन्तः ॥३७१॥

३७२। स्पृह्यादेराय्यः।

स्पृहयाय्यः, गृह्याय्यः ॥२७२॥

३७३। स्तन्यादेरित्नुः।

स्तनयित्नुः, दूषयित्नुः, गदयित्नुः, मदयित्नुः। एते ण्यन्ताः। इत्याधिका उणादयः ॥३७३॥

३७४। चक्षादेरुसिः।

चक्षुः ॥३७४॥

३७५। गम ओच्।

संसारहरः—गौः। इत्यादिका उणादयः ॥३७५

३७६। घण्।

विभुरयम्। 'घञ्' पाणिनिः ॥३७६॥

३७७। घणलथुकयः पुंसि।

घण् अल् अथु कि—एते पुंस्येव स्युः ॥६७७॥

३७८। पद-रुज-विशः।

पद्यते पादः, रुजति रोगः, विशति वेशः ॥३७८

३७९। स्पर्श उपतप्तरि, सारः स्थिरे बले च अतिसारो व्याधौ, विसारो मत्स्ये, प्रासारो बले, दारेर्दारा भार्य्यायां, जारेर्जार उपपतौ साधवः।

३८०। भावे, प्रासादेः कर्त्तृवर्ज्जिते च कारके संज्ञायाम्।

प्रभू चेमौ। यथा प्रास्यते प्रास इत्यादि, प्रासः—शस्त्र-विशेषः। तथा पाकः, त्यागः, रोगः ॥३८०॥

३८१। क्वचिदसंज्ञायामपि।

---

[1]। पत-दन्श-नहस्त्रः (क)

'दाश्रृ' दाने, दाश्यते यस्मै स दाशः, "गुणज्ञो ब्राह्मणो दाशः" इति हि दृश्यते ॥३८१॥

अथ वक्ष्यमाणानि बाधकानि लक्षणानि

३८२ । संख्यापरिमाणाख्यायाञ्च ।

एकस्तण्डुलनिचायः, द्वौ सूर्पनिष्पावौ, किन्तु 'तिङोऽष्टादशप्रत्ययाः' 'पञ्चोपद्रवाः', 'नैकोऽपि तव निश्चयः' इति च दृश्यते ॥३८२॥

३८३ । इङश्चाकर्त्तरि ।

अधीयते अध्यायः, उप समीपे अधीयते यस्मादुपाध्यायः ॥३८३॥

३८४ । शारो वायुकर्त्तृरयोः, नीशारः प्रावरणे, शृणाते साधुः ।

३८५ । समो यु-दु-द्रुभ्यः ।

संयावः । 'अत्र दुनोतेरेव ग्रहणम्' इति दुर्गः । संदावः, संद्रावः, दवतेस्तु संदवः ॥३८५॥

३८६ । अनुपेन्द्र-श्रि-नी-भूभ्यः ।

श्रायः, नयनं नायः । 'प्रभावः' तु पश्चात् समासेन ॥३८६॥

३८७ । वेः क्षु-श्रुभ्याम् ।

विक्षावः ॥३८७॥

३८८ । अवोद्भ्यां नियः ।

अवनायः । अवनयोन्नयौ बाहुल्यात् ॥३८८॥

३८९ । प्रात् स्तु-द्रु-स्रुभ्यः ।

प्रस्तावः । कथं 'स्रावो, गर्भस्रावः,' ? बाहुल्यात् ॥३८९॥

३९० । निरः पुरः अभेर्लुवः ।

निष्पावः, अभिलावः ॥३९०॥

३९१ । उन्निभ्यां ग्रः ।

उद्गारः ॥३९१॥

३९२ । उत्तकार-निकारौ धान्यक्षेपे साधू

नेह—पुष्पाणां निकरः ॥३९२॥

३९३ । समः स्तुवो यज्ञविषये ।

संस्तावश्छन्दोगानाम् । अन्यत्र 'संस्तवः' ॥३९३

३९४ । प्रात् स्तृणातेरयज्ञे ।

पुष्पप्रस्तारः । नेह – बर्हिष्प्रस्तरश्छन्दोगानाम् ॥३९४॥

३९५ । वेरशब्दप्रथने ।

विस्तारोऽशब्दस्य—भक्तेर्विस्तारः । वेदादिशब्दस्य तु—विस्तरः ॥३९५॥

३९६ । उद्ग्राह-मुष्टिसंग्राहौ साधू ।

मुष्टिर्दार्ढ्यम् ॥३९६॥

३९७ । परिणायः शारीणां समन्तान्नयने, न्यायः स्थित्यनतिक्रमे साधू ।

३९८ । पर्य्यायोऽनुपात्यये ।

परीणः साधुरयम् । नेह—विपर्य्ययः ॥३९८॥

३९९ । उपशाय-विशायौ पर्य्यायेण शयनाशयनयोः साधू ।

रुक्मिण्या आद्योपशायः, सत्याया विशायः ॥३९९

४०० । चेर्हस्तादाने, न तु स्तेये ।

तुलसीचायः, 'हस्तेन तुलसीचायः' इति स्पष्टार्थमेव । 'हस्तादाने' किम् ? यष्ट्यामलकोच्चयः स्तेये तु तुलसीचयः ॥४००॥

४०१ । निकायो गृहे, निचिते, राशौ च, तथा सधर्म्म-प्राणिनां बहुत्वे, न तु सङ्गमे साधुः ।

प्राणिनां सङ्गमस्तु 'निचयः' ॥४०१॥

४०२ । अवग्राह-निग्राहावाक्रोशे साधू ।

अवैष्णवस्यावग्राहो भूयात् ॥४०२॥

४०३ । प्रग्राहो लिप्सु कर्त्तृके, परिग्राहो यज्ञाङ्गग्रहणे साधू ।

४०४ । उदः श्रि-यौति-नी-पू-द्रुभ्यः ।

उच्छ्रायः ॥४०४॥

४०५ । अवतारावस्तारौ साधू ।

४०६ । विभाषा ।

प्रभुरयम् ॥४०६॥

४०७। आङो रु-प्लूभ्याम्, अवाद्ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे, प्रात् तुलासूत्रे हयरज्जौ च प्राद्वृणोतेराच्छादने, परेर्भुवोऽवज्ञाने।

आरावः, आरव इत्यादि। विभाषा निवृत्ता। 'जनिबध्योर्मन्तिनाश्च' (आ० प्र० १५७) इति न वृष्णीन्द्रः—शमः, विश्रमः। आचमादेस्तु आचामः, कामः, विश्राम इत्यपशब्दः' इति काशिकाः। केचित्तु 'चमः' 'अमः' इत्यपीच्छन्ति। 'उपेन्द्राल्लभे' (कृ० प्र० १४३) इति प्रलम्भः। नेह—सुलाभः, दुर्लाभः ।।४०७।।

४०८। स्फुरते-स्फार साधुः।

४०९। रन्जेर्नस्य हरो भावकरण-घणि।

रञ्जनं, तत्साधनं या रागः। नेह—रजत्यस्मिन् 'रङ्गः' ।।४०९।।

४१०। स्यन्देः स्यदो जवे, अवोन्देरवोदः, प्र-हिमाभ्यां श्रन्थेः प्रश्रथ-हिमश्रथौ साधू।

४११। उपेन्द्रस्य त्रिविक्रमो घणि बहुलं, तत्रेशस्य काशे।

नीकाशः, अनूकाशः ।।४११।।

४१२। प्रासादो गृहे, प्राकारः प्राचीरे।

४१३। क्वचिद्वा।

प्रतिवेशः, प्रतीवेशः, प्रतिहारः, प्रतीहारः ।।४१३

४१४। क्वचिन्न।

प्रवाहः, प्रहारः, प्रवादः। 'अपेरादिहरः' (आ० प्र० ३५४) इत्यादि, 'अवस्य तंसे' (आ० प्र० ३५५) अवतंसो, वतंसः ।।४१४।।

इति घणन्ताः

४१५। अथ घणोऽपवादोऽल् घणर्थे।

विभुरयम् ।।४१५।।

४१६। ईशात्।

चयनं चयः, निश्चयः, शिलोच्चयोः, प्रश्रयः। 'मि-मी-लियाम्' (कृ० प्र० १४४) इति ज्ञापकादल् च—नियमः, विनयः[1]। दीङस्तु 'मीनाति' (आ० प्र० ३७४) इत्यादिना आरामान्तपाठत्वाद् घणेव—उपदायः ।।४१६।।

४१७। ग्रह-वृ-दृ-गम-वश-रणेभ्यः।

ग्रहः। बाहुल्यात् 'स्वयङ्ग्रहः'। वरः, आदरः वृद्रोरेवेति नियमात् न ऋरामान्तरात् हारः, कारः। दीर्घ ऋरामात्तु कीर्य्यतेऽनेनेति करः ।।४१७।।

४१८। उपेन्द्राददः, नेर्णश्च, अदो घस्ल्र्घण्णलोः।

विघसः, निघसः, न्यादः ।।४१८।।

४१९। अनुपेन्द्राद्व्यधिजपिभ्यां, वा स्वनहसाभ्यां, समुपविनिभ्यश्च यमः, नेर्गद-नद-पठ-स्वनेभ्यः[2]।

व्यधः, स्वनः, स्वानः, संयमः, संयामः, 'च' कारात् यमः, यामः, निगदः, निगादः ।।४१९।।

४२०। क्वाण-क्वण-निक्वाण-निक्वणाः, वीणाशब्दे तु प्रक्वाणप्रक्वणादयः साधवः।

४२१। पणः परिमाणे।

शाकस्य पणः। 'पणः' किम्? परिमिता मुष्टिः "नराः क्षीणपणा इव" इति भट्टिः (७।५८) ।।४२१।।

४२२। अनुपेन्द्रान्मदः।

विद्यामदः। बाहुल्यात् उन्मदः ।।४२२।।

४२३। प्रमदसन्मदौ हर्षे, समजः पशुसङ्घे उदजः पशुसङ्घप्रेरणयोः साधवः।

अन्यत्र—समाजः, उदाजः ।।४२३।।

४२४। ग्लहोऽक्षस्य पणे, उपसरो गर्भादाने साधू।

४२५। ह्वयतेर्निहवाभिहवोपहवविहवः साधवः, हव आह्वाने, आहवो युद्धे, आहावस्तु निपाने, हवो भावे, सोपेन्द्रत्वे तु प्रहावः, हनो बधश्च भावे।

१। विलयः (क) २। मद-पचःस्वनेभ्यः (क) नदपचस्वनेभ्यः (ख घ)।

चकाराद्घणपीष्यते—घातः। सोपेन्द्रत्वे तु—प्रघातः, विघातः ॥४२५॥

४२६। घनः काठिन्यकठिनयोः।

एते साधवः ॥४२६॥

४२७। अन्तर्घणो देशे।

णत्वेन साधुः। "तस्मिन्नन्तर्घणे देशे" * इति भट्टिः (७।६३) अन्तस्थिते इत्यर्थः ॥४२७॥

४२८। अयोघन-प्रघन-विघन-द्रुघणाः करणे अयोहननी द्रुहननी च स्त्रियां, स्तम्बघन-स्तम्बघ्नौ च, निघस्तु परिमिते साधवः।

४२९। गोचर-सञ्चर-वह-व्रज-व्यजापण-निगमादयो घान्ताः करणाधिकरणयोः संज्ञायां साधवः।

गावश्चरन्त्यत्र—गोचरविषयः। प्रत्यासत्तिरत्र लक्ष्यते। सञ्चरन्त्यनेन—सञ्चर इत्यादि। अन्ये च संज्ञाशब्दा अमरकोषादौ ज्ञेयाः ॥४२९॥

४३०। छादेर्घः प्रायेण करणाधिकरणयोः, एकोपेन्द्रस्य छादेर्वामनो घे।

उपच्छदः, प्रच्छदः। अनेकोपेन्द्रत्वे—समुपाच्छादः ॥४३०॥

४३१। उरश्छदादयश्च वामनेन साधवः।

४३२। व्यवादिपूर्व्वाण्णः क्रियाव्यतीहारे लक्ष्म्यां, संपूर्व्वादिन् न क्रियाभिव्याप्तौ ब्रह्मणि, आदिसर्व्वेश्वरस्य च वृष्णीन्द्रस्तयोः

चकाराद्धातोस्तु यथाप्राप्तं स्यादेव, गौरादित्वादीप् (त० प्र० २०७) मिथो हसनमित्यर्थे—व्यावहासी, व्यावक्रोशी, व्यावहारी, व्यात्युक्षी। बाहुल्यात् व्यवकृष्टिरित्यादि कलापे। सर्व्वतोरव संपूर्व्वाद्रौतेः—सांराविणम् ॥४३२॥

४३३। डुरामेत क्त्रिमः क्रियानिवृत्ते।

करणेन निर्वृत्तम्—कृत्रिमम्। एवं पाकेन निर्वृत्तम् पक्त्रिमम् ॥४३३॥

४३४। दुरामेतोऽथुर्भावे पुंसि।

वेपथुः, श्वयथुः ॥४३४॥

४३५। यज्ञ-यत्न-विश्न-प्रश्न-स्वप्ना भावे पुंसि याच्ञा लक्ष्म्यां न-प्रत्ययेन साधवः।

४३६। सोपेन्द्र-दामोदरात् किर्भावादौ।

अन्तर्धिः, आदिः, आधिः ॥४३६॥

४३७। उदध्यादयश्च साधवः।

४३८। क्तिर्लक्ष्म्यां भावे।

कृतिः। 'नेड् वन्-ति' (कृ० प्र० २८२) इति भूतिः। 'चरफलयोरस्य उस्ते' (कृ० प्र० ३९) चुर्णिः 'ह्लादेर्वामनः क्ति-विष्णुनिष्ठयोः' (कृ० प्र० ६४) प्रह्लत्तिः। अविष्णुपदान्तत्वान्न टवर्गत्वनिषेधः—घट्टिः ॥४३८॥

४३९। चायतेश्चिः क्तौ, अपचितिः पूजा, वनतेर्वतिः, दरिद्रातेर्द्दरिद्रातिः, कण्डूयतेः कण्डूतिः साधवः।

'दरिद्रातेरालोपो याचारेवेति रासवता *। वकारेऽपि दृश्यते ददरिद्रवानित्यत्र ॥४३९॥

४४०। हरिवेण्वन्त-सहजानिटादीनामाशीर्विषये कर्त्तरि क्तिर्हविवेगुहश्च न।

बध्यात् हन्तिः, वन्यात वन्तिः, तन्यात् तन्तिः। भणादेस्तु भणितिः, निपठितिः, निगृहीतिः, उपस्निहितिः, निकुचितिः, प्रथितिरित्यादि ॥४४०॥

४४१। ऋरामान्तलवादिभ्यां क्तेर्निः ग्ला-हा-ज्या-म्ला-त्वरिभ्यश्च, न तु पृणातेः।

कॄ विक्षेपे—कीर्णिः, लूनिः, ग्लानिः। 'छश्य शः' (आ० प्र० ४२१) इत्यादौ 'ज्वर-त्वर' इत्यादि तूर्णिः। पृणातेस्तु पूर्त्तिः ॥४४१॥

४४२। सम्पदादेः क्विप्-क्ती भावे लक्ष्म्याम्

सम्पत्, विपत्, प्रतिपत्। पक्षे—सम्पत्तिरित्यादि आकृतिगणोऽयम् ॥४४२॥

---

* 'तस्मिन्नन्तर्घणेऽपश्यन्' इति तु भट्टिकाव्ये (७।६३) पाठो दृश्यते। * रासवता जौमराः।

४४३ । ऊत्यादयः साधवः ।

वेञ्—ऊतिरिति पुरुषोत्तमः (भाषावृत्तिः ३।३।९७) यु—यूतिः, जु—जूतिः, षो षिञ वा—सातिः, हि हन् वा—हेतिः । 'ज्वर-त्वर' (आ० प्र० ४२२) इत्यूठ्—ऊतिः । 'जन-खन-सनाम्' (आ० प्र० २५६) इत्यात्वम्, षणु—सातिः ॥४४३॥

४४४ । इज्यादीनां क्तिर्नेति वाच्यम् ।

इज्या, व्रज्या, क्रिया, कृत्या, इच्छा, चर्य्या परिचर्य्या, परिसर्य्या, मृगया, अटाटचादयः । एते लक्ष्म्यां क्यबन्ता ज्ञेयाः । आदिग्रहणात् बाहुल्याच्च—समजन्त्यस्यां समज्या सभा, निषद्या आपणः, निपत्या पिच्छिलभूमिः, विदन्त्यनया—विद्या, सूयते अस्यां सोमः—सूत्या, शय्यतेऽस्याम्—शय्या, भरणं भृत्या, अयनम् एत्यनयेति वा इत्या, जागरणं जागर्य्या, उपवेशनम् आस्या, इष्टिः इत्यादयोऽपि दृश्यन्ते ॥४४४॥

४४५ । विष्णुनिष्ठासेट्क-गुरुमद्विष्णुजनान्तात् प्रत्ययान्ताच्च भावे लक्ष्म्यां ङाप्, न तु क्तिः ।

'आङ्' पाणिनिः (३।३।१०२) । ईहा, ऊहाः इन्दा, शिक्षा, व्यतीहा, 'व्यतीक्षा' इत्यपि ।

बाहुल्यान्न तु णः । चिकीर्षा, अटाटा, कण्डूया । 'विष्णुनिष्ठासेट्क'-इति किम् ? दीप्तिः, आप्तिः, राद्धिः । गुरुमदिति किम् ? गृहीतिः । विष्णुजनादिति किम् ? शीतिः । बाहुल्यात् ऊहः, राधः, ऊढिरित्यादयः । आशंसा, प्रशंसेत्यपि दृश्यते ॥४४५॥

४४६ । षिद्भिदादिभ्यश्च ।

'त्रपुष' लज्जायाम्, षित्—त्रपा, क्षमा ॥४४६॥

४४७ । जागृ-शुभ-जॄषां गोविन्दश्च ।

जागरा, शोभा, जरा । भिदादिः—भिदा, छिदा, तृषा, पीडा, चिन्ता, पूजा, कथा, अर्च्चा, चर्च्चा ॥४४७॥

४४८ । कृपादौ ल्त्वं नेष्यते ।

कृपा । 'पचा' इत्यपि पुरुषोत्तमः (भाषावृत्तिः ३।३।१०४) । 'पक्तिः' इति तन्न्ये ॥४४८॥

४४९ । गुहादयोऽधिकरणादौ साधवः ।

४५० । सोपेन्द्राराामाच्च ।

उपधा, श्रद्धा, अन्तर्द्धा, अवस्था, संस्था, व्यवस्था आस्था । संस्थितिः, प्रस्थितिः, सङ्गीतिः, इत्यादौ तु न, बाहुल्यात् ॥४५०॥

४५१ । ण्यन्तादासः श्रन्थादेश्चानो भावे लक्ष्म्यां, न तु कृतेः ।

'कृष्णादाप् लक्ष्म्याम्' (त० प्र० १८४) कारणा, भावना, घट्टना, मार्गणा, आसना, श्रन्थना, देवना वन्दना, वेदना, अन्वेषणा, पर्य्येषणा, एषणा । परीष्टिश्च दृश्यते । कृतेस्तु कीर्त्तिः ॥४५१॥

४५२ । णको लक्ष्म्यां भावे, इरामो वाच्यः

आसिका, शायिका ॥४५२॥

४५३ । प्रच्छर्द्दिकादयो रोगे ।

४५४ । इक्-श्तिपौ धातुनिर्द्देशे ।

पचिः, पचधातुः । एवं भवतिः । कर्त्तृप्रयोगाभावेऽत्र शप्प्रत्ययः, 'ऊहतेः' इत्यादि-ज्ञापकात् । क्वचिन्न दृश्यते च—'अर्त्तेर्ऋच्छः' (आ० प्र० १९०) इत्यादौ ॥४५४॥

४५५ । इण् च भावे लक्ष्म्यां प्रश्नोत्तरयोः ।

चाद्यथास्वमन्येऽपि । कां कारिमकार्षीः ? कृष्णस्य कारिमकार्षम् । एवं कारिकां, क्रियां, कृत्यां, कृतिमिति च ॥४५५॥

४५६ । नञचनिराक्रोशे भावे लक्ष्म्याम् ।

कंसस्याजीवनिर्भूयात् ॥४५६॥

४५७ । अनो भावे ।

ज्ञानं, भवनं, कीर्त्तनं, णत्वम्—बृंहणम् । 'लिखमिलौ' (आ० प्र० ३९२) इत्यादि—लिखनं, लेखनम्, लिखनीयं लेखनीयम्, नित्यं लेखनी, मिलनं, मेलनम् ॥४५७॥

४५८ टनः करणाधिकरणयोः ।

दैत्यव्रश्चनं चक्रम् । व्याक्रियन्ते, व्युत्पाद्यन्ते, अर्थपर्य्यवसानाः, क्रियन्ते शब्दा अनेनेति—व्याकरणं, शब्दानुशासनं शास्त्रम् । अधिकरणे—गोदोहनी, शयनी, रमणी ॥४५८॥

४५९। अपादाने च।

प्रपतनः, भृगुः ॥४५९॥

४६०। उष्णङ्करण-भद्रङ्करणे।

एते करणे निपात्येते ॥४६०॥

४६१। अजेर्वी वा टने।

प्रवयणं, प्राजननम्। कुटादित्वात्—स्फुरणम् ॥४६१॥

४६२। दशनो दन्ते साधुः।

४६३। ष्ठीवन-सीवते वा निपात्येते।

पक्षे—ष्ठेवनादि ॥४६३॥

४६४। टनः कर्म्मादौ च।

कृष्णेन भुज्यन्ते—कृष्णभोजनाः शालयः। कृष्णमाच्छादयति कृष्णाच्छादनं वासः ॥४६४॥

अथात्र षत्वानि

४६५। अम्बष्ठादय।

षत्वेन साधवः। अम्बष्ठः, आम्बष्ठः, भूमिष्ठः, सव्येष्ठः, परमेष्ठी, वर्हिष्ठः, दिविष्ठः इत्यादि। 'सु-वि-नि-दुः-पूर्व्वसूति-समयोः' (आ० प्र० ५८०) इति—सुषुप्तं, दुःषुप्तं, विषूतिः, निषूतिः, सुषमं, दुःषमम् ॥४६५॥

४६६। गोष्ठं व्रजे, निष्णात-नदीष्णौ कौशले, प्रतिष्णातं सूत्रे, अग्निष्टुदादयो यज्ञे, विष्टारश्छन्दसि, अभिनिष्टानो विष्णुसर्गे विष्टरो वृक्षासनयोः।

इति श्रीश्रीहरिनामामृताख्ये वैष्णवव्याकरणे पञ्चमं कृदन्तप्रकरणं समाप्तम्।



[षष्ठम्]

अथ समास—प्रकरणम्

श्रीश्रीराधानाथाय नमः

१] कृष्णस्य विग्रहे भाति समासेनाखिलं पदम्।
इतीव स्मारकं वक्ष्ये समासपद-विग्रहम्॥

२] सबहुव्रीहि-द्विगुता-मात्रे लुब्धोऽस्मि सद्वन्द्वः।
तत्पुरुष कर्म्मधारय भक्त्येनाव्ययीभावः॥

१। समासा बहुलम्।

वासुदेवोऽयम्। अत्र समासा वक्तव्याः। ते च बाहुल्येन ज्ञेयाः ॥१॥

२। तत्र श्यामराम-कर्म्मधारयौ, त्रिरामी-द्विगू, कृष्णपुरुष-तत्पुरुषौ, पीताम्बर-बहुव्रीही रामकृष्ण-द्वन्द्वौ समानार्थौ ज्ञेयौ, अव्ययीभावस्तु षष्ठः।*

३। अन्तर्भिन्नपदत्वेऽप्येकनामत्वेन योजनं समासः।*

४। स च परस्परसम्बन्धार्थानां स्वाद्यन्तानाम्

परस्परग्रहणमन्यसापेक्षतानिरासार्थम् ॥४॥

* "द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः। तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः॥" (उद्भटश्लोकः)
द्विगुर्द्वन्द्वोऽव्ययीभावः कर्मधारय एव च। पञ्चमस्तु बहुव्रीहिः षष्ठस्तत्पुरुषः स्मृतः॥

* सुपां सुपा तिङा नाम्नाऽथ तिङां तिङा। सुबन्तेनेति च प्रोक्तः समासः षड्विधो बुधैः॥
नित्योऽनित्यो विकल्पश्च समासस्त्रिविधः स्मृतः। न विधेयं नं च स्वान्य-सापेक्षक-विशेषणैः॥

५। समासवाक्यं विग्रहः।

६। सूत्रे तृतीयान्तेन प्रथमान्तं समस्यते तच्च पूर्व्वम्।

समासविधानसूत्रे तृतीयान्तेन सह प्रथमान्तं पदं समस्यते। इति सर्व्वत्र ज्ञेयम्। तच्च पूर्व्वं निपात्यम् ॥६॥

तत्र समासविशेषो यथा—

७। विशेषणं तुल्याधिकरणेन।

तुल्याधिकरणेन सह विशेषणं समस्यते। एवं सर्व्वत्र वृत्तिः कल्प्या ॥७॥

८। पीताम्बरात् प्राक् समासाः कृष्णपुरुषसंज्ञाः।

तत्पुरुषा इति प्राञ्चः ॥८॥

९। तेष्वयं श्यामरामसंज्ञा।

'कर्म्मधारयः' इति प्राञ्चः। श्यामश्चासौ रामश्चेति, रामश्चासौ श्यामश्चेति वा विग्रहे, प्रथमान्ततया सूत्रनिर्द्दिष्टस्य विशेषणस्यैव पूर्व्वनिपाते प्राप्ते श्यामपदस्यैव पूर्व्वस्थितिः। च शब्दाद्यर्थ समासेनैवोच्यते इति तदप्रयोगः, उक्तार्थानामप्रयोगः इति न्यायेन ॥९॥

१०। अन्तरङ्गस्वादेर्महाहर एकपदत्वारम्भे

नामान्तरत्व प्राप्त्या समस्तात् पुनः स्वादयस्ततोऽवान्तरानेकपदत्वेऽप्येक-पदत्वम्। श्यामरामः—अत्र वर्णान्तररामौ व्यावर्त्तय विशेषकथनात् श्यामपदस्य विशेषणत्वम्। यत्रैव श्यामत्वं, तत्रैव रामसंज्ञत्वमिति तुल्याधिकरणत्वम्, न तु कृष्णस्य पुरुष इत्यादौ कृष्णादिशब्दानामेव विशेषणत्वेऽपि व्यधिकरणत्वम्, यदुक्तम्— भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तयोरेकस्मिन्नर्थे वृत्तिः सामानाधिकरण्यम् ※ इति। एवं परमपुरुषः। सन् पुरुषः—इत्यत्र शत्रन्तात् कृतहरस्य सोः पुनर्महाहरे नुमः सत्सङ्गान्तहरस्य चापाये सत्पुरुष इत्यादि। एकवैष्णवः, पुराणवैष्णवः केवलवैष्णव इत्यादि। जगदेकवीर इत्यसाधुरिति जुमरः ॥१०॥

११। तदेकधर्म्मत्वे तु न समासः।

शङ्खः पाण्डरः, लोहितस्तक्षकः, वृक्षः शिंशपा "स देवदारुद्रुम-वेदिकायाम्" इति तु स्यादेव, द्रुमस्य देवदारुत्वैकधर्म्मत्वाभावात्। करिकलभ इति तु सप्तमीसमासात् ॥११॥

१२। समासान्तनाम्नः प्रत्यावृत्तिः।

परमप्रत्यङ्, परमप्रत्यञ्चौ। वाय्व्यर्थमक्षरविश्लेपात् सन्धि निवर्त्तर्यादेशः परमाहं, परमायं, परमानेन। अन्यसापेक्षत्वे श्यामो रामो महानित्यत्र न समासः। एवं विग्रहसमासयोर्विकल्पः ॥१२॥

१३। बाहुल्यात् क्वचिन्नित्यसमासः।

कृष्णसर्पः सर्पजातिविशेषः। लोहितशालिर्धान्यजातिभेदः। स्तोक-कृष्णस्तन्नामा श्रीकृष्णस्य सखा। समासेनैव तत्तत्प्रतिपत्तेर्नित्यत्वम् ॥१३॥

१४। क्वचिन्न समासः।

रामो जामदग्न्यः, व्यासः पाराशर्य्यः, अर्ज्जुनः कार्त्तवीर्य्यः। तदेवं विशेष्येण विशेषणस्य समास उक्तः ॥१४॥

१५। क्वचिद्विशेषणेन च विशेषणं समस्यते

कृष्णलोहितो, धूम्रवर्ण श्यामसुन्दरः ॥१५॥

१६। किञ्चित्त्वेन विभागे गम्येऽपि।

किञ्चिदङ्गं नरः, किञ्चित् सिंहः—नरसिंहः। शुक्लकृष्णः, कृताकृतं[1], यातानुयातम् ॥१६॥

१७। क्रयाक्रयिकादयः।

त्रिविक्रमेण साधवः। क्रयेषु महान् क्रयः, क्रयिका स्वल्पा—तयोः समुदायः, क्रयाक्रयिका। पुटापुटिका, फलाफलिका, मानोन्मानिका ॥१७॥

अथ पूर्व्वनिपाताद्यर्थं वक्तव्यान्तराणि

१८। पूर्व्वक्तान्तं पश्चात् क्तान्तेन।

पूर्व्वं स्नातः, पश्चादनुलिप्तः—स्नातानुलिप्तः ॥१८॥

※ संक्षिप्तसार-व्याकरणे समासपादस्य ८६ तम सूत्रस्य वृत्तौ।

१। कृतापकृतं (क)

१९। ईषदकृदन्तेन।

ईषत्कृष्णः। तद्धिते—ऐषत्कृष्णः। कृदन्तेन तु न—ईषत् कुर्व्वाणः ॥१९॥

२०। श्रेण्यादयः कृतादिभिरभूततद्भावे।

अश्रेणयः श्रेणयः कृताः—श्रेणिकृताः ※ ॥२०॥

२१। विशेष्यं तदर्थकुत्सनेन।

याज्ञिककितवः, वैयाकरणखसूचिः, खसूर्विनिष्णतिभः। ※ तदर्थे किम्? वैयाकरणश्चौरः नात्र चौरत्वेन वैयाकरणत्वं कुत्स्यते, किन्तु पुरुष एव ॥२१॥

२२। पापादीनि निन्द्यैः।

पापकंसः, हतचैद्यः, अणकनापितः ॥२२॥

२३। क्वचिन्निन्दचश्च।

चैद्यहनकः ॥२३॥

२४। किं क्षेपे।

किंजीवो यः कृष्णं न भजति ॥२४॥

२५। कुः पापेषदर्थयोः।

कुब्राह्मणः, कदुष्णम्। कोः कद्वक्ष्यते (समा० प्र० २८०)। समासकार्य्यस्य वक्ष्यमाणत्वात्तदादिकं तत्रैव साधनीयमिति ॥२५॥

२६। उपमेयं व्याघ्रादिभिरुपमानैः।

पुरुषो व्याघ्र इव—पुरुषव्याघ्रः। पुरुषो व्याघ्र इव शूर इति तु सापेक्षत्वात् ॥२६॥

२७। उपमानमुभयस्थधर्म्मवचनैः।

मेघ इव श्यामः मेघश्यामः। लक्ष्म्याः पुरुषोत्तमत्वेऽपि—मृगीव चपला मृगचपला। अनुभयस्थत्वे तु कृष्ण इव प्रद्युम्नः ॥२७॥

२८। पूज्यं वृन्दारकाद्यैः।

वैष्णववृन्दारकः, विप्रवृषभः, पुरुषोत्तमः ॥२८॥

२९। जातिः प्रशंसावचनैर्नियतलिङ्गसंख्यकैः।

गोपप्रकाण्डं, गोपमतल्लिका ॥२९॥

३०। जातिर्युवत्यादिभिः।

गोयुवतिः, गोधेनुः, दधिकतिपयम्। एवं पोटास्तोक-गृष्टि-वशा-वेहद्-वस्कयनी-प्रवक्तृ-श्रोत्रियाध्यापकधूर्त्ताः। 'उभयप्राप्तौ त्विष्टं समस्यते' इति जुमरः—वृन्दारकयुवतिः, युववृन्दारिका ॥३०॥

३१। पशुजातिर्गर्भिण्या।

गोगर्भिणी ॥३१॥

३२। युवा खलत्यादिभिः।

युवखलतिः। 'नामग्रहणे लिङ्गविशिष्टग्रहणम्' युवपलिता, युववलिनः। तुल्याधिकरणे पुंवद्भावो वक्ष्यते (समा० प्र० २४९) ॥३२॥

३३। कुमारी श्रमणादिभिः।

कुमारश्रमणा तु प्रव्रजितोच्यते : एवमध्यापिका-तापसी गर्भिणीभिः ॥३३॥

३४। कुमारश्चाध्यापकादिभिः।

कुमाराध्यापकः। एवं पण्डितनिपुणादिभिः ॥३४॥

३५। विष्णुकृत्यं तुल्यार्थश्चाजात्या।

भोज्योष्णं, भोज्यलवणम्। तुल्यार्थत्वे—तुल्यश्यामः कृष्णेन, प्रद्युम्नः सदृशकृष्णः। न जातित्वे—भोज्य ओदनः। विशेषणसमासोऽपि बाध्यते ॥३५॥

※ श्रेणिः पटुर्ब्राह्मणश्च पण्डिताः श्रमणोदकाः। निपुणश्च पणो मुण्डो मुकः कुङ्कुमराशयः।
इन्द्रकुटाध्यापकाश्च निधनं निचयो दशत्। वदान्यश्च विशिष्टश्च कृत्रिमः पूग एव च।
देवश्च कुसुमञ्चैव चतुर्विंशतिसंख्यकाः। पदार्थविषयौ क्वापि मृदुः कृपण एव च।
कृतं मतं भूतं मुक्तं निराकृतगते तथा। सम्भावितावधारित-कल्पितान्यवकल्पितम् ॥
उपाकृतं चोपकृतं समाङ्पूर्व्वाणि त्रीणि वै। ज्ञातं ख्यातं तथा स्नातं कृतादीदं सदा भवेत् ॥ इत्यधिकः पाठः (क)

※ "एवं 'बकधूर्त्तः जनयति कुमुदभ्रान्तिम्'। 'धूर्त्तबको हि बालमत्स्यादीनाम्' इत्यसाधुरिति जुमरः ॥"
इत्यधिकः पाठः (क)

३६। कतरकतमौ जातिप्रश्ने।

कतरब्राह्मणः ॥३६॥

३७। षष्ठचन्तेन।

प्रभुरयम् ॥३७॥

३८। पूर्व्वापराधरोत्तरादीन्यवयविनैकद्रव्यत्वे

पूर्व्वं कायस्य पूर्व्वकाय इत्यादि। अत्र पूर्व्वाह्ण-मध्याह्न-अपराह्ण-पराह्ण-सायाह्नाः। पश्चिमरात्र-मध्यरात्रादयश्च ज्ञेयाः। भिन्नद्रव्यत्वे तु—पूर्व्वो वैष्णवानाम्। षष्ठीसमासापवादोऽयम्, तेन कायपूर्व्वं इति न स्यात् ॥३८॥

३९। अर्द्धं समविभागे वा।

"पुंस्यर्द्धोऽर्द्धं समेऽंशके" (अमरकोषः १।२।१६) अर्द्धमामलक्याः अर्द्धामलकी। पक्षे षष्ठीसमासः, आमलक्यर्द्धम्। असमत्वे—आमलक्यर्द्ध इत्येव। भिन्नत्वे तु—अर्द्धमामलकीनाम् ॥३९॥

४०। अर्द्धजरत्यादयोऽसमविभागेऽपि।

अर्द्धं जरत्याः अर्द्धजरती, अर्द्धम् उक्तस्य अर्द्धोक्तम्, जरत्या अर्द्धमिव अर्द्धजरतीयस्तत्कामुकः इवार्थे—कुशाग्रादित्वात्तद्धित-ईयः ※ ॥४०॥

४१। द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-तुर्य्य-तुरीय-तलाग्रादयश्च।

द्वितीयं पूजायाः—द्वितीयपूजा, पूजाद्वितीयमित्यादि तलपादं, पादतलं हरेः। हस्ताग्रम्, अग्रहस्तः। षष्ठचन्तेनेति निवृत्तम् ॥४१॥

४२। मयूरादयो व्यंसकादिभिः।

व्यंसको धूर्त्तः। मयूरव्यंसकः, कम्बोजमुण्डः, यवनमुण्डः। एषां न समासान्तरम्, परमो मयूरव्यंसकः ॥४२॥

४३। कुप्रादयो मध्यपदलोपश्च।

कुत्सितश्चासौ पुरुषश्च कुपुरुषः। मध्यपदलोपो यथा—प्रगतो वैष्णवोः प्रवैष्णवः, प्रतिकूलो नायकः प्रतिनायकः, दुर्गतः, पुरुषः, दुष्पुरुषः। षत्वं वाच्यम् (समा० प्र० ३२६)—स्वचिर्च्चतो राजा सुराजा, अतिशयितो राजा अतिराजा ॥४३॥

४४। योगविभागात् मध्यपदलोपश्च १।

गोवर्द्धननामा गिरिः गोवर्द्धनगिरिः। शाकाः शकसंवत्सराः, शाकेषु प्रधानरूपाः पार्थिवाः शाकपार्थिवास्ते च तत्प्रवर्त्तका युधिष्ठिराद्याः ॥४४॥

४५। तुल्याधिकरणेत्यनुवृत्ते कृष्णप्रवचनीयानां समासो न।

कृष्णं परि ॥४५॥

४६। इवेन नित्यं समासो विष्णुभक्तचलोपश्च

मेघ इव। अत्र या इच्छा यदृच्छा, उदक् च अवाक् च उच्चावचम्, उच्चैश्च नीचैश्च उच्चनीचम् आचितञ्च उपचितञ्च आचोपचम्, अपचितञ्च पराचितञ्च आचपराचम्, निश्चितञ्च प्रचितञ्च निश्चप्रचम्, परमकृत्वा, स्नात्वाकालकः, पीत्वास्थिरकः, भुक्त्वासुहितकः, निपत्यरोहिणी, प्रोष्यपापीयान् इत्यादयश्च बाहुल्यात् साधवः ॥४६॥

इति कृष्णपुरुषेषु श्यामरामः।

४७। दिक्संख्ये तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारेषु

स्वाद्यन्तेन च सहेत्यर्थाद्गम्यते। एवमुत्तरत्रापि दिक्संख्यावाचिनी विष्णुपदे स्वाद्यन्तेन सह समस्येते तद्धितार्थे विषये, उत्तरपदे परतः समाहारे वा वाच्ये—पूर्व्वास्यां शालायां भव इति वाक्ये तद्धिताणप्रत्ययः, उक्तार्थत्वाद्भवस्याप्रयोगः, अन्तरङ्गत्वादेर्महाहरः, पूर्व्वपदस्य पुम्वद्भावः, आदिसर्व्वेश्वरस्य वृष्णीन्द्रः, अ-इद्वयस्य हरः, पुम्वद्भावादयो वक्ष्यन्ते—पौर्व्वशालः। अत्राप्यन्तःश्यामरामत्वमस्ति समानाधिकरणसमासादिति पाणिनीयाः ※। उत्तरपदे—पूर्व्वो गौः, प्रियो यस्येति विग्रहे प्रथमं पूर्व्वस्य गवा समासः, ततो 'गोरतद्धितलुकि' (त० प्र० ११७) इति तद्धितः, समासान्तष्टप्रत्ययः समुदायेनान्यपदार्थत्वे पीताम्बरः,

---

※ 'कुशाग्राच्छरामः' इति तु तद्धितसूत्रम् (७।१०६५)

१। एतत् सूत्रं ख-ग-घ पाण्डुलिपिषु वृत्तिरूपेण पठ्यते। ※ "तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च" (पा २।१।५१)

उक्तार्थत्वाद्गवस्येतास्याप्रयोगः—पूर्व्वगवप्रियः ।।४७।।

इति दिक्कृष्णपुरुषाः ।

४८ । संख्यापूर्व्वोऽसौ त्रिरामीसंज्ञः ।

द्विगुरिति प्राञ्चः । तत्र तद्धितार्थे—
दशभिरवतारैर्जयति दाशावतारिकः । उत्तरपदे—
पञ्चगवप्रियः । समाहारे तु संख्येयेनैव समासः ।।४८

४९ । समाहारे त्रिराम्यामेकत्वं ब्रह्मत्वञ्च

पञ्चगोप्यः हृताहृता इति पञ्चानां गोपीनां
समाहार इति विग्रहे पञ्चगोपि ।।४९।।

५० । अरामान्ता त्रिरामी लक्ष्मीः, आवन्ता वा, त्रिराम्या ईप् ।

त्रिरामी, पञ्चाध्यायी । 'एकापूपीति तु
कल्पितबहुत्वात् समाहारः' इति जुमरः ।
रामाशब्दस्य त्रिरामी, त्रिरामम् ।।५०।।

५१ । अन्नन्ता वा नलोपस्तूभयत्र ।

त्रिब्रह्मं, त्रिब्रह्मी ।।५१।।

५२ । पात्राद्यन्ता न ।

द्विपात्रं, त्रिभुवनं, चतुर्युगम् । मुखान्ता वेति
वक्तव्यम्—चतुर्म्मुखं, चतुर्म्मुखी । तथा च मुरारिः

"धातुश्चतुर्मुखीकण्ठशृङ्गाटकविहारिणीम् ।
नित्यं प्रगल्भवाचालमुपतिष्ठे सरस्वतीम् ।।"

('अनर्घराघव' नाटके प्रस्तावनायामेकादश श्लोकः)

अन्यत्र –

"धातुश्चतुर्मुखतडागसरागहंसीं
वाणीं भजामि भवभीतिहरां त्रिनेत्राम् ।" इति

सप्तर्षयः पञ्चाम्राश्चतुर्विद्या इत्यादयस्तु
संज्ञाशब्दाः । समाहाराविवक्षया श्यामरामः ।
चतुर्वर्णाः द्वीन्द्रिये इत्यादय संज्ञेतरा अपि ।।५२।।

इति त्रिरामीकृष्णपुरुषाः ।

५३ । नञ् ।*

समस्यते, अराम इत् । न वैष्णव इति विग्रहे
'नञोऽरामशेषः' (कृ० प्र० ८९) इति अवैष्णवः न
अवैष्णव अनवैष्णवः ।।५३।।

नञ्कृष्णपुरुषोऽयम् ।

५४ । कालाः षष्ठ्यन्तेन तत्परिमाणिजातादिना ।

जातस्य मासः मासजातः । जातस्य जनक्रियायाः
मासः परिच्छेदहेतुः, जननादूर्ध्वमस्य मासो गत
इत्यर्थः । एवं संवत्सरजातः ।।५४।।

५५ । प्राप्तापन्ने द्वितीयया ।

प्राप्तः सखायं प्राप्तसखः । अत्र सख्युष्टस्तद्धितः ।
प्राप्तजीविकः । कथं जीविकाप्राप्तः, सुखापन्नः ?
'द्वितीया श्रितादिभिः' (समा० प्र० ५७) इति वचनात्
।।५५।।

५६ । गोरीप आप ऊङश्चान्तस्याप्रधान्यस्य वामनः, नार्द्धामलक्यादौ, न चेयस्याः पीताम्बरे ।

गोष्टस्तद्धितः, 'उद्वयस्य गोविन्दो' वक्ष्यते (त० प्र० ५१)—प्राप्तगवः, प्राप्तगोपिकः, प्राप्तक्षमः
प्राप्तकरभोरुः । अन्तस्येति किम् ? गोपीप्रियः ।
अप्रधानस्येति किम् ? गोपकुमारी । श्रीधीप्रभृतयो
नेवन्ताः, तेन प्राप्तश्रीरित्यादि ।।५६।।

पूर्व्वपदप्रधानोऽयं द्वितीयाकृष्णपुरुषः ।

अथोत्तरपदप्रधानाः

५७ । द्वितीया श्रितादिभिः ।

कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः । संसारातीतः,
सत्सङ्गपतितः, वैकुण्ठगतः इत्यादि । तथा व्रजगमी
व्रजगामी, कृष्णदिदृक्षुः इत्यादि । आदिग्रहणात्
खट्वारूढो दुर्म्मानिनि ।।५७।।

५८ । कालः क्तेन ।

"एकापूपीति तु दानसंभ्रमाभ्यामेकस्याप्यध्यारोपितबहुत्वात् समाहारः"—संक्षिप्तसार-व्याकरणे समासपादस्य ११९ तम-सूत्रवृत्तौ ।

* प्रधानत्वं विधेर्यत्र प्रतिषेधेऽप्रधानता । पर्युदास स विज्ञेयो यत्रोत्तरपदेन नञ् ।।
अप्राधान्यं विधेर्यत्र प्रतिषेधे प्रधानता । प्रसज्यप्रतिषेधोऽसौ क्रियया सह यत्र नञ् ।।
तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता । अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्त्तिताः ।।

ग्रहसंक्रान्तः ॥५८॥

५९ । ग्रत्यन्तसंयोगे च ।

मुहूर्त्तभक्तः ॥५९॥

६० । तृतीया ।

प्रभुरयम् ॥६०॥

६१ । तृतीयार्थकृतगुणवचनेनार्थादिभिश्च

गुणमुक्त्वा यो गुणिनि वर्त्तते, स गुणवचनः । चक्रेण कृतः खण्डः चक्रखण्डः । अत्र तृतीयान्तार्थश्चक्राख्यमन्त्रम्, तेन कृतो गुणः खण्डितत्वं, तदुक्त्वा गुणिति खण्डिते वर्त्तमानः खण्ड इति । अर्थादिभिः खल्वपि—कृष्णेनार्थः कृष्णार्थः, भक्तिपूर्व्वः, कृष्णसदृश इत्यादि । तृतीयार्थकृतेति किम् ? अक्ष्णा काणः । अक्षिकाण इति भागवृत्तिः । 'येनाङ्गेन निन्दा' (का० प्र० ११३) इति तृतीया ॥६१॥

६२ । कर्त्तृकरणे कृता ।

कृष्णहतः, चक्रछिन्नः ॥६२॥

६३ । विष्णुक्त्यैस्तु निन्दास्तुत्यर्थातिशयोक्तौ

निश्वासभेद्या दैतेयाः, पुष्पमर्द्ये पदाम्बुजे ॥६३॥

६४ । क्वचिदकृतापि ।

आत्मना द्वितीयः । अलुगयम् । एकेन न विंशतिः एकान्नविंशतिः इत्यादयो निपाताः ॥६४॥

६५ । ग्रथ मध्यपदलोपिनः ।

प्रभुरयम् ॥६५॥

६६ । ग्रर्द्धं चतसृभिः ।

अर्द्धेन कृताश्चतस्रः अर्द्धचतस्रो मात्राः ॥६६॥

६७ । व्यञ्जनमन्नेन ।

दध्नोपसिक्त ओदनो दध्योदनः ॥६७॥

६८ । संस्कारद्रव्यं भक्ष्येण ।

भक्ष्यं चर्व्यम् । गुडेन मिश्रा धाना गुडधानाः ॥६८

६९ । वाहनं यानेन ।

अश्वेन युक्तो रथः—अश्वरथः ॥६९॥

७० । पूरणद्रव्यं पात्रेण ।

गङ्गाजलेन पूर्णो घटः गङ्गाजलघटः । अन्यत्रापि—श्रिया युक्तः कृष्णः श्रीकृष्णः । तुलस्युदकमित्यादि ॥७०॥

इति तृतीयामध्यपदलोपिनः ।

७१ । चतुर्थी ।

प्रभुरयम् ॥७१॥

७२ । प्रकृत्या ।

हरिमन्दिराय इष्टकाः हरिमन्दिरेष्टकाः ॥७२॥

७३ । क्वचित्तदविवक्षायाञ्च ।

अनन्ताय दधि अनन्तदधि ॥७३॥

७४ । इदम्वाच्यार्थशब्देन च ।

नित्यसमासोऽयं वाच्यलिङ्गता च, नित्यसमासानां स्वपदविग्रहो नास्ति । कृष्णायेदं कृष्णार्थं सर्पिः । कृष्णार्थः सूपः, कृष्णार्था रसाला * ॥७४॥

७५ । बलिहितादिभिश्च ।

कृष्णाय बलिः कृष्णबलिः, कृष्णाय हितं कृष्णहितम् ॥७५॥

७६ । कृता यथाभिधानम् ।

कृष्णदेयम् । नेह—कृष्णाय दातव्यम् ॥७६॥

७७ । पञ्चमी ।

प्रभुरयम् ॥७७॥

७८ । भय-भीत-भीति-भीतिरानीतादिभिश्च

कृष्णभयं, वृन्दावनानीतं, यमुनाहृतमित्यादि ॥७८

७९ । ग्रपेतादिभिः प्राशयः ।

कृष्णापेतः, भक्तयपोढः, स्वर्गपतितः । प्रायशः किम् ? प्रासादात् पतित इत्यादि ॥७९॥

८० । स्तोकान्तिकदूरार्थाः कृच्छ्रञ्च क्तेन ।

स्तोकादागतः, अल्पान्मुक्त इत्यादि । कृच्छ्रान्निर्गतः । अलुगयम् ॥८०॥

८१ । द्वित्वबहुत्वयोर्न समासः ।

स्तोकाभ्यां मुक्तः, स्तोकेभ्य मुक्तः । शतात् परा इत्यादौ परःशता इत्यादयो निपाताः ॥८१॥

८२ । षष्ठी ।

* रसाला···शर्करामरिचादि-मिलितं दधि ।

प्रभुरयम् ।।८२।।

८३ । परपदेन ।

कृष्णस्य पुरुषः कृष्णपुरुषः । तव प्रभुः त्वत्प्रभुः युवयोर्युष्माकं वा प्रभुः—युष्मत्प्रभुः । स्वाद्यभावान्निपाताभावः ।।८३।।

८४ । न दिव उराम उद्वयवर्ज्जितसर्व्वेश्वरे ।

दिवीशः । उद्वयेति किम् ? दुर्णुत् यदूनां वृष्णयः श्रेष्ठा इत्यत्र सापेक्षत्वान्न ।।८४।।

८५ । तरान्तगुणेन तरलोपश्च ।

सर्व्वेषां मध्ये कृष्णतरः सर्व्वकृष्णः । एवं सर्व्वमहान् ।।८५।।

८६ । सदा गुणवाचिनैव गुणेन ।

मुरलीध्वनिः, कृष्णामोदः कृष्णस्पर्शः ।।८६।।

८७ । एवं तद्धितभावेनापि ।

वैष्णवसामर्थ्यम् । "सीमेव पद्मासनकौशलस्य" इति भट्टिः (१।६) । "अधिकरणैतावत्त्वे च" इति पाणिनिसूत्रञ्च (२।४।१५) ।।८७।।

८८ । न तु गुणिन्युपलक्षितेन ।

रामस्य शुक्लः । तुलस्यास्तीव्रं, धात्र्या मृदु च संख्याया त्विष्यते—वैष्णवशतम् ।।८८।।

८९ । न च ततो भावप्रत्ययेन ।

रामस्य शौक्ल्यम् । वस्त्रपीतिमा इत्यादिकन्तु प्रयुक्तमपि वैयाकरणैर्नात्याद्दतम् । पूरणप्रत्ययादिभिनिषेधस्तु सव्यभिचारः । कारकोपपदषष्ठीसमासस्तु सम्बन्धविवक्षायां दुर्निवार इति तन्निषेधोऽपि नास्माभिर्विवृतः । स्वरभेद एव हि तत्र फलमिति, यथोक्तमत्र भर्त्तृहरिणा—

लौकिकव्यवहारेषु यथेष्टं चेष्टतां जनः ।
वैदिकेषु तु मार्गेषु विशेषोक्तिः प्रवर्त्तताम् ।।८९।।
(वर्द्धमानोपाध्याय-कृते गणरत्नमहोदधौ)

९० । सप्तमी शौण्डादिभिः ।

भक्तिशौण्डः, भक्तिप्रवीणः, समरसिंह इत्यादि । ऋणेऽधमोऽधमर्णः, ऋणग्रहीता । एवमुत्तमर्णः ऋणदाता । राजदन्तादित्वात् पूर्व्वनिपातः ।।९०।।

९१ । तीर्थकाकादयः पात्रेसमितादयश्च क्षेपे साधवः ।

तीर्थे काक इव तीर्थकाकः, तद्वदनवस्थित इत्यर्थः । पिण्डीशूरः—भोजनमात्रसमर्थः । एवं कूपमण्डूकः, उडुम्बरकृमिः, अल्पज्ञे । पात्रेसमितः प्रतिग्रहमात्रपरे । गोष्ठेप्रवीरः, गेहेशूरः शूरम्मन्ये । एवं क्ष्वेडिन्-नर्द्दिन्-विजितिन्-व्याड-पण्डित-प्रगल्भ इत्येभिश्च । तथा उदकेविशीर्णं, भस्मनिहुतं, प्रवाहेमूत्रितम् अतिव्यर्थकर्म्मणि । गर्भेसुहितः अनुचितचेष्टे, पितरिशूरः, मातरिपुरुषः सदाचारभेत्तरि । कर्णेटिरिटिरा कर्णेचुरुचुरेति द्वयं चापलेनानुचितचेष्टायां साधु । टिरिटिरीति गत्यनुकरणम्, चुरुचुरिति वाक्यानुकरणम् । तत्करोतीति तथा णौ निपातोऽयम् ।।९१।।

९२ । अत्र द्वितीयादिकृष्णपुरुषेष्वाधोक्षजाभक्तवतुभ्यां समासो नेष्यते ।

कृष्णं जगन्वान्, कृष्णं दृष्टवान् ।।९२।।

९३ । अच्युताभाव्ययकृद्भ्यश्च न ।

कृष्णं पश्यन्, सेवां कुर्व्वाणः, सुखं लब्धुं लब्ध्वा वेत्यादि । यत्र यत्र समासेन विष्णुभक्तचर्थो गुप्तः स्यान्नातिव्यक्तश्च स्यात्तत्र तत्र च न समासः इष्टः, यथा—हेतुचिह्नसहार्थतृतीयाम्, यथा च अज्ञानार्थ-ज्ञायोगादितः षष्ठ्यां कृष्णेन सुखं, कौस्तुभेन भगवान्, कृष्णेन गतः, गङ्गाजलस्य ज्ञातं, वैष्णवानां मतो बुद्धः पूजितो वा, कृष्णस्यासितं, कृष्णस्यासिका, कृष्णस्य शायिकेत्यादि ।।९३।।

इत्युत्तरपदप्रधाना द्वितीयादिकृष्णपुरुषाः ।

९४ । अन्यपदार्थात् प्राङ्मध्यपदाप्रयोगिणः प्रभुरयम् । अत्यादीनामेवातिक्रान्ताद्यर्थत्वात् ।।९४

९५ । अत्यादयो द्वितीयया ।

अतिक्रान्तो गङ्गामतिगङ्गः । 'गोरीप आप' समा० प्र० ५५ इत्यादिना वामनत्वं, लक्ष्म्यां पुनराप् अतिगङ्गा । ईवन्तस्य अतिगोपिः,

अतिप्रेयमिः : नेह वामनः—अतिश्रीः । अत्यादित्वात् अभिप्रपन्नो मुखम् अभिमुखः, आक्रम्य व्रजम् आव्रजं तं व्याप्येत्यर्थः । एवमन्येऽपि ॥९५॥

९६ । अवादयस्तृतीयया ।

अवक्रुष्टं वंश्या अववंशि वृन्दावनम् । अधिकरणे क्तः, कृतो बाहुल्यात् । परिणद्धं वीरुधा परिवीरुदित्यादि ॥९६॥

९७ । पर्य्यादयश्चतुर्थ्या ।

परिग्लानो हरिकीर्त्तनाय परिहरिकीर्त्तनः । अलं जातो लक्ष्मैच अलंलक्ष्मीरित्यादि ॥९७॥

९८ । निरादयः पञ्चम्या ।

निष्क्रान्तो मधुपुर्य्याः निर्मधुपुरिः, अपगतमर्थात् अपार्थम् अवैष्णवशास्त्रमित्यादि ॥९८॥

इति मध्यपदाप्रयोगिणः पूर्व्वपदप्रधाना कृष्णपुरुषाः

९९ । एहीहादयोऽन्यपदार्थे साधवः ।

एहि इहेति यत्र कर्म्मणि काले वा तत् एहीहम् । एवम् एहि यवैरिति यस्यां क्रियायां तत् एहियवम् । अनयोर्ब्रह्मत्वमेव । अथ एहि स्वागतमिति यस्यां क्रियायां सा एहिस्वागता । एवम् अपेहिस्वागता, एहिविघसेत्यादि । एवमेहि वाणिजेति यस्यां क्रियायां सा एहिवाणिजेत्यादि । तथा इहद्वितीया, इहपञ्चमी, आहोपुरुषिका, अहम्पूर्व्विका, अहम्प्रथमिका, अहमहमिका । विकृतञ्च प्रकृतञ्च यस्यां सा विचप्रचा, निश्चितञ्च प्रचितञ्च यस्यां सा निश्चप्रचा इत्यादि । तथा कृन्धि विचक्षणेति विचक्षणमिति वा यस्यां सा कृन्धिविचक्षणा । केवलद्वितीयान्तेन तु—भिन्धिलवणा, आहरवसना आहरवनिता इत्यादि ॥९९॥

१०० । अथाख्यातमाख्यातेन नियोजने

यजत नमतेति यत्रोच्यते सा नियोजनक्रिया यजतनमता, उद्धरोत्सृजा, ऊद्धमविधमा, उत्पतनिपता ॥१००॥

१०१ । हिप्रत्ययान्तं कर्म्मणाभीक्ष्ण्यतद्वक्तरि

स्तुहि कृष्णमित्याभीक्ष्ण्यमाह या स स्तुहिकृष्णः एवं जहिजोहः, जोहो दासः क्षारं वा, इत्यादयो ज्ञेयाः ॥१०१॥

इत्यन्यपदार्थप्रधानः कृष्णपुरुषः ।

इति कृष्ण-पुरुषप्रकरणमुद्दिष्टम् ।

१०२ । अनेकमन्यपदार्थे पीताम्बर ।

प्रभुश्चायम् । अनेकं नामपदन्तु अन्यपदार्थे अभिदेये परस्परं समस्यते, स च पीताम्बरसंज्ञः । बहुव्रीहिरिति प्राञ्चः । अन्यपदार्थवदेव लिङ्गमस्य, अन्यपदार्थश्च यच्छब्देनेदंशब्देन चोद्देश्यः[१] । *द्वयोस्त्रयाणां चतुर्णामेव वा अभिधानम् । अत्र षष्ठ्याद्यन्यपदार्थो यथा – तत्र समासार्थेनोक्तत्वात् प्रथमा । पीतमम्बरं यस्य स पीताम्बरः, पीतं सूक्ष्मं चाम्बरं यस्य स पीतसूक्ष्माम्बरः ।

एवमुज्ज्वलपीतसूक्ष्माम्बरः । प्राप्तः कृष्णो यत्तत् प्राप्तकृष्णं गोकुलम् । कृष्णः प्राप्तो येन स प्राप्तकृष्णो वैष्णवः । प्राप्तः कृष्णो यया सा प्राप्तकृष्णा भक्तिः ।

दत्तं सर्व्वस्वं यस्मै सः दत्तसर्व्वस्वः कृष्णः । प्राप्तो वरो यस्मात् स प्राप्तवरः कृष्णः । न्यस्तं मनो यस्मिन् स न्यस्तमनाः कृष्ण इत्यादयः ॥१०२॥

१०३ । अव्ययञ्च ।

नीचैर्मुखमस्य नीचैर्मुखः ॥१०३॥

सेवितुं कामोऽस्येति विग्रहे—

१०४ । तुमो मस्य हरः काममनसोः ।

सेवितुकामः, सेवितुमनाः, अस्तिभक्तिरस्य अस्तिभक्तिर्वैष्णवः, नास्तिभक्तिरवैष्णवः ।

समस्तस्याममस्तेन नित्यापेक्षेण सङ्गतिः ।
बाहुल्यादिह तत्रापि समासो वा विधीयते ॥

भक्ताय दत्तार्थः, अत्र दानक्रियया नित्यं सम्प्रदानमपेक्ष्यते, अतो यद्यपि गुणीभूतेन दत्तपदेन साक्षादन्वयस्याभावस्तथापि तात्पर्य्यतः सङ्गम्यते, यथा—कृतपूर्व्वी सृष्टिम्, असूर्य्यम्पश्य इत्यादौ । किञ्च, प्रायः समानाधिकरणानामेव पीताम्बरस्तेन नेह हृते कृष्णे न गतं येनेति[२], वैष्णवैर्भुक्तं यस्येति प्रायो ग्रहणात् क्वचिद्व्यधिकरणानाञ्च—यदुकुले

---

१ । वा निर्द्देश्यः (क) * "यत्रानेकं परस्यार्थे बहुव्रीहिः स उच्यते ॥" (चाङ्ग सूत्रम्) २ । गते कृष्णे न गतं येनेति (क)

जन्म यस्य सः यदुकुलजन्मा, कण्ठेकालः—अलुगयम् ॥१०४॥

१०५। न च प्रथमान्यपदार्थत्वे।

सुच्छाये वृन्दावने यः, गते कृष्ण गतो य इत्यत्र तु अन्यपदार्थतैव नास्ति, गतस्यैव वाच्यत्वात् ॥१०५

१०६। न क्तवत्वाद्यन्तस्य।

वैष्णवा भुक्तवन्तोऽस्य, वैष्णवो जग्मिवानस्य ॥१०६

१०७। क्वचिन्मध्यपदलोपः।

सिंहस्येव मुखमस्य, सिंहमुखमिव मुखमस्येति बा सिंहमुखः ॥१०७॥

१०८। क्वचिद्वा।

अविद्यमानः पाप्ना यस्य सोऽपाप्ना, अविद्यमानपाप्ना। प्रपतितानि पर्णानि यस्य स प्रपर्णः, प्रपतितपर्णः ॥१०८॥

१०९। क्वचिदाख्यातलोपः।

पीतमम्बरमस्त्यस्य स पीताम्बरः ॥१०९॥

११०। अव्ययादूराधिकासन्नाः संख्येयवाचिसंख्यया।

दशानां पदार्थानां समीपे उपदशाः। अज् वक्ष्यते (त० प्र० १४६)। सामीप्यप्राधान्ये त्वव्ययीभावः। उपदशम्। एवं दशानामदूरा अदूरदशाः। एवमधिकदशाः, आसन्नदशाः। अष्टादशपर्य्यन्ताः संख्या संख्येये वर्त्तन्ते, ततः पराः संख्याः संख्याने च यथा—एको वैष्णवो, द्वौ वैष्णवौ, त्रयो वैष्णवा इत्यादि, यथा च—ऊनविंशतिर्गवामित्यादि१। ततः ऊनविंशत्यादीनां समासो वा। अचि कृते चिति तेर्हरो वक्ष्यते (त० प्र० १४७) अदूरोनविंशा गावः, अदूरोनविंशतिर्गवाम् इत्यादि ॥११०॥

१११। संख्या गुणितत्वे वार्थे च।

त्रिगुणिता दश त्रिदशाः। द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः अज् वक्ष्यते (त० प्र० १४६)। 'न चेयस्याः पीताम्बरे' वामनत्वादि—बहु-प्रेयसी कृष्णः। तत्र ते पीताम्बरा द्विविधाः—(१) समासपदस्य अन्यपदार्थसङ्गित्वे तद्गुणसंविज्ञानाः, (२) तदसङ्गित्वे तु अतद्गुणसंविज्ञानाश्च, यथा—धृतकृष्णनिर्म्माल्यमानय, दृष्टकृष्णमानय ॥१११॥

११२। तत्र तत्र गृहीत्वा, तेन तेन प्रहृत्य वा युद्धं वृत्तमिति च सरूपे क्रियाव्यतीहारे पीताम्बरः, तस्मादिरामस्तद्धितः स चाव्ययम् पूर्व्वपदस्य त्रिविक्रमः, ईशान्तस्य त्वारामो वा विष्णुजनादौ तस्मिन्।

केशेषु केशेषु गृहीत्वा युद्धं वृत्तं केशाकेशि। दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य युद्धं वृत्तं दण्डादण्डि। युद्धौपाधिकत्वेऽपि—'हस्ताहस्ति व्यासज्जताम्' इति विस्तराः। मुष्टामुष्टि, मुष्टीमुष्टि, बाहाबाहवि, बाहूबाहवि। नेहात्वम्—अस्यसि। युद्धमिति किम्? हस्तेन हस्तेन सख्यं वृत्तम्। सरूप इति किम्? हलैश्च मुसलैश्च इत्यत्र न स्यात् ॥११२॥

११३। द्विदण्ड्यादयश्च।

इमे चार्थविशेषेषु निपात्यन्ते। द्वाभ्यां दण्डाभ्यां प्रहरति द्विदण्डि प्रहरति, उभाहस्ति, उभयाहस्ति। एवमुभाञ्जलीत्यादि ॥११३॥

११४। खड्गकर्णदन्तैश्च तथा।

नेह—द्विदण्डा शाला। गणपाठात् समासान्तेऽपि—निकुच्यकर्णि धावति, कर्णौ निकुच्येत्यर्थः। प्रोह्यपादि हस्तिनं वाहयति ॥११४॥

११५। सहशब्दस्तृतीयान्तेनैकक्रियायोगे।

रामेण सह सहरामो वर्त्तते गच्छति वा कृष्णः। अत्र सहस्य स-भावो वक्ष्यते (समा० प्र० २६७), सरामः। एकक्रियायोगाभावे तु—सह शिशुना दधि मथ्नाति यशोदा, विद्यमानार्थोऽत्र सहशब्दः, शिशौ विद्यमाने सति इत्यर्थः। कथं सकर्म्मकः सरति२, सलोमकः पचति३? कर्म्मणा सह यो वर्त्तते, स सकर्म्मकः, सरतीति४ पश्चादन्वयः ॥११५॥

१। ऊनविंशतिर्वैष्णवाः, ऊनविंशतिर्वैष्णवानामित्यादि (क)। २। नन्दति (क)
३। पठति (क) ४। नन्दतीति (क)

११६ । दक्षिणपूर्व्वादयस्तदन्तराले ।

दक्षिणस्याश्च पूर्व्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं सा दक्षिणपूर्व्वा विदिक् । देवतासम्बन्धे—ऐन्द्रयाम्यादयस्तु नेष्यन्ते ॥११६॥

इति पीताम्बरः ।

११७ । इतरेतरयोग-समाहारयो रामकृष्णः

* चशब्दस्य समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोग-समाहाररूपार्थाश्चत्वारः । तेषूद्भूतावयवसंख्य इतरेतरयोगः, तिरोहितावयवसंख्य संहतिप्रधानः समाहारः । तयोर्गम्ययोः पदद्वयस्य पदानां वा समासो वाच्यः, स च रामकृष्णसंज्ञः । द्वन्द्व इति प्राञ्चः । तत्रेतरेतरयोगे प्रायः परवदेव लिङ्गम् । तत्र रामश्च कृष्णश्चेति विग्रहे रामकृष्ण इति द्वाविति चशब्दार्थः, रामकृष्णौ । एवं बहुत्वे—रामकृष्णश्रीदामानः । समुच्चये तु रामश्च भुङ्क्ते कृष्णश्च वा, रामः कृष्णः प्रत्येकमित्यर्थः । अन्वाचये तद्वदर्थत्वेऽप्यन्तिमस्यानाग्रहविषयत्वमिति भेदः । कृष्णमनुगच्छ बलञ्च पश्य इतिवत् । रामश्च कृष्णश्च पश्येतादौ सापेक्षत्वात् न समासः । किञ्च, द्वन्द्वात् परः पूर्व्वो वा श्रूयमाणः शब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । रामकृष्ण-सौन्दर्य्यम्, अ-इ-द्वयम् ॥११७॥

११८ । समाहारे ब्रह्मत्वमेकत्वञ्च ।

वक्ष्यमाणापवादोऽयं, यथा समाहारः । प्रभुरयम् ॥११८॥

११९ । शाखाभेदानां तद्विदाञ्चानुवादे स्थेणोर्भूतेशप्रयोगे ।

प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम्, उदगात् कठकालापम्, सा सा शाखा तद्वेत्ता वा पूर्व्वोक्तमेव कथयामासेत्यर्थः ॥११९॥

१२० । यजुर्विहित-ससोमक-यागानामक्लीवानाम् ।

अर्काश्वमेधम् । क्लीवे तु—राजसूयवाजपेये ॥१२०

१२१ । समीपाध्ययनानाम् ।

पदकक्रमकम् ॥१२१॥

१२२ । अप्राणिद्रव्यजातीनाम् ।

आराशस्त्रि, तुलसीमरुवकम् । अजातित्वे—नन्दकपाञ्चजन्यौ । जातित्वेऽपि नियतद्रव्यविवक्षायां न एतौ—तुलसीमरुवकौ ॥१२२॥

१२३ । नदीदेश-नगराणां भिन्नलिङ्गानाम्

गङ्गाशोणं, शोणनर्म्मदम्, कुरुकुरुक्षेत्रं, मथुरापाटलिपुत्रम् ॥१२३॥

१२४ । नित्यवैरिणाम् ।

गरुडनागम् । कार्य्यवैरे तु—देवासुराः ॥१२४॥

१२५ । कारुणाम् ।

तक्षायस्कारम् ॥१२५॥

१२६ । शूद्राणामवहिष्कृतानाम् ।

रजकतन्त्रवायम् । नेह—चाण्डालमृतपाः ॥१२६

१२७ । गवाश्वादीनाम् ।

गवाश्वं, गवाविकम्, अवश्चानयोर्नित्यः, गवैडकम्, तजाविकम्, अजैडकं, कुब्जवामनं, पुत्रपौत्रं, दर्भशरं, भागवतीभागवतं, स्त्रीकुमारं, दासीमाणवकं, दासीदासं, शाटीप्रच्छदम्, उष्ट्रखरं श्वचाण्डालं, मूत्रपुरीषमित्यादि ॥१२७॥

१२८ । प्राण्यङ्गानाम् ।

पाणिपादम् ॥१२८॥

१२९ । तुर्य्यावादकानाम् ।

मार्द्दङ्गिकपाणविकम् ॥१२९॥

१३० । सेनाङ्ग-क्षुद्रजन्तुफलानां बहुत्वे ।

हस्तिनश्च अश्वाश्च हस्त्यश्वम् ।
क्षुद्रजन्तुरनस्थिः स्यात् सहस्रेणाञ्जलिर्यतः ।
यद्गोचर्म्मप्रमाणस्य हननान्नैव पातकम् ।
अशोणितः क्षुद्रजन्तुर्नकुलावधिः कथ्यते ॥
इति स्मृतेः । दंशमशकं, बदरामलकम् ॥१३०॥

---

* अन्वाचये समाहारेतरेतरसमुच्चये । विनियोगे तुल्ययोगितावधारणहेतुषु ॥
पादस्य पूरणेऽप्युक्तं नवस्वर्थेषु चाव्ययम् ॥

१३१। वृक्ष-मृग-शकुनि-तृण-धान्यविशेषाणाञ्च वा वहुत्वे।

प्लक्षवटं, रुरुपृषतं, हंसचक्रवाकं, कुशकाशं, व्रीहियवम्। पक्षे—प्लक्षवटा इत्यादि ॥१३१॥

१३२। व्यञ्जनानां वा।

दधिघृतं, दधिघृते ॥१३२॥

१३३। विरोधिनामद्रव्यानां वा।

सुखदुःखं, सुखदुःखे ॥१३३॥

१३४। न दधिपय आदीनाम्।

दधिपयसी, मधुसर्पिषी, सर्पिर्मधुनी, शुक्लकृष्णौ ऋक्सामे, वाङ्मनसे इत्यादि। अनयोरत् तद्धितः ॥१३४॥

१३५। संख्याप्रयोगे तु न।

दश मार्द्दङ्गिकपाणविकाः ॥१३५॥

१३६। विभाषा समीपे।

उपदशं दन्तौष्ठम्, उपदशा दन्तौष्ठाः ॥१३६॥

१३७। सर्व्वेऽपि रामकृष्णा विभाषयैकवद्भवन्ति।

यथा "ह्रस्वदीर्घप्लुतः" * इति पाणिनीयसूत्रम् ॥१३७॥

प्रसङ्गात् समासान्तरलिङ्गान्यपि निरूप्यन्ते

१३८। उत्तरपदवल्लिङ्गं रामकृष्ण-कृष्णपुरुषयोः।

तत्र रामकृष्णे—राधाकृष्णाविमौ, कृष्णराधे इमे। कृष्णपुरुषे—अर्द्धामलकी, कृष्णभार्य्या, मुखचन्द्रः ॥१३८॥

१३९। त्रिरामी-प्राप्तापन्नालंपूर्व्वगतिसमासेषु वाच्यलिङ्गतैव।

पञ्चकपालः, सूपः, प्राप्तजीविकः, आपन्नजीविकः, अलंकुमारिः, प्रतिगतोऽक्षं प्रत्यक्षः कृष्णः, निर्मधुपुरिः ॥१३९॥

१४०। पूर्व्ववदश्ववडवानाम्।

अश्ववडवान् ॥१४०॥

१४१। रात्राह्लाहाः पुंसि।

अहोरात्राविमौ पुण्यौ। अहोरात्रमिति तस्यां हठः। पूर्व्वाह्णः, द्व्यहः, एकाहः ॥१४१॥

१४२। अर्द्धर्चादयः ब्रह्मणि च१।

अर्द्धर्च्चम्, अर्द्धर्च्चः। यूथं यूथ इत्यादि ॥१४२

१४३। पुण्यसुदिनाभ्यामहो ब्रह्म, संख्याव्ययाभ्यां पथः।

पुण्याहं, सुदिनाहम्, द्विपथं चतुष्पथम्, विपथम् उत्पथम्, अपथम्। पीताम्बरे तु—विपथ इत्यादि। 'व्यध्वो दुरध्वो विपथः कदध्वा कापथः समाः।" इति त्वमरकोषे (२।१।१७) यत् पुंस्त्वं, तत्तु काशिकाभाषावृत्तिक्षीरस्वामीनामसम्मतम्, स्वयमपि लिङ्गादिसंग्रहे "पथः संख्याव्ययात् परः" इति नपुंसकवर्गे स्वीकृतम् ॥१४३॥

१४४। नञ्श्यामरामौ विना कृष्णपुरुषो ब्रह्म।

प्रभुरयम् ॥१४४॥

१४५। उपज्ञोपक्रमौ तयोरादेराख्या चेत्।

उपज्ञोपक्रमान्तौ कृष्णपुरुषौ ब्रह्मलिङ्गौ स्यातामित्यर्थः। कर्म्मसाधनाविमौ। श्रीभागवतोपज्ञे कृष्णतद्भक्तौ, श्रीभागवतादेव एतौ प्रथमं ज्ञातावित्यर्थः। एवम् उपज्ञायते इत्युपज्ञा। सर्व्वज्ञस्योपज्ञा सर्व्वज्ञोपज्ञं वेदः, सर्व्वज्ञनादावुपज्ञायते इत्यर्थः। श्रीकृष्णोपक्रमं भक्तकृपा, श्रीकृष्णेनैव प्रथमं सा प्रारब्धेत्यर्थः ॥१४५॥

१४६। छाया छायावतां बाहुल्ये।

तुलसीनां छाया तुलसीच्छायम्। नेह—तुलस्याश्छाया तुलसीच्छाया ॥१४६॥

१४७। राजशब्दं राजविशेषनाम च विनेश्वरवाचकात् रक्षःपिशाचादिवाचकाच्च सभा

* "ऊकालोऽज्ह्रस्वदीर्घप्लुतः" (पा १।२।२७)

सभात्र शाला। ईश्वरसभम्, इनसभं, नृपतिसभम्। नेह—राजसभा, युधिष्ठिरसभा। रक्ष आदेः—रक्षःसभं, पिशाचसभम्। नेह—मनुष्यसभा देवसभा ॥१४७॥

१४८। अशालार्था च[२]।

गोपीनां सभा समूहः गोपीसभम् ॥१४८॥

१४६। संघातार्थे सर्व्वतः सभा इति वक्तव्यम्।

राज्ञां सभा राजसभम्, श्रीसभम् ॥१४६॥

१५०। सेनासुराच्छायाशालानिशा वा

कृष्णस्य सेना कृष्णसेनमित्यादि, पक्षे—कृष्णसेनेत्यादि ॥१५०॥

इति रामकृष्णनिर्णयस्तदादिलिङ्गनिर्णयश्च

१५१। अव्ययीभावः।

प्रभुरयम् ॥१५१

१५२। तस्याव्यत्वं ब्रह्मत्वञ्च।

१५३। अव्ययं सप्तम्याद्यर्थेषु नित्यम्।

नामपदेन नित्यमव्ययं समस्यत इति ज्ञेयम्। हरिमधिकृत्य प्रवृत्तेति विग्रहे हरिमधीति स्थिते सूत्रे तृतीयान्तेनेत्यादिषु प्रथमान्तस्य पूर्व्वनिपातात् अधिहरि कथा प्रवर्त्तते। आदिगणनात् समीपादिषु ॥१५३॥

तत्र समीपे, कृष्णस्य समीपमिति विग्रहे—

१५४। अरामान्तादव्ययीभावान्न स्वादेर्महाहर किन्त्वम्, स च पञ्चमीवर्ज्जम्

उपकृष्णम्, पञ्चम्यास्तु उपकृष्णात् ॥१५४॥

१५५। तृतीयासप्तम्योस्तु वा।*

उपकृष्णेन, उपकृष्णम्, उपकृष्णे, उपकृष्णम्। एवं समृद्ध्याद्यर्थेषु, तत्र समृद्धौ—माथुराणां समृद्धिः सुमाथुरम्। अत्र तु सप्तम्यां नित्यमम्-भावः ॥१५५॥

१५६। सम्प्रत्युपयोगाभावे।

अन्नस्य सम्प्रत्युपयोगाभावः अत्यन्नम् एकादश्याम् ॥१५६॥

१५७। अतिक्रमे।

संसारस्यातिक्रमः अतिसंसारम् ॥१५७॥

१५८। अभावे।

संसारस्याभावः निःसंसारम् ॥१५८॥

१५६। ऋद्धिविगमे।*

अवैष्णवानामृद्धेर्विगमः दुर्वैष्णवम् ॥१५६॥

१६०। ख्यातौ।

हरेस्तन्नाम्नो वा ख्यातिः इतिहरि, तद्धरि ॥१६०॥

१६१। पश्चाद्योग्ययोः।

कृष्णस्य पश्चाद्योग्यो वा अनुकृष्णं प्रद्युम्नः ॥१६१॥

१६२। सादृश्ये।

सहस्य सभावो वाच्यः (समा० प्र० २७०) हरेः सादृशं सहरि-प्रद्युम्ने ॥१६२॥

१६३। सम्पत्तौ।*

शर्म्मणः सम्पत्तिः सशर्म्मं वैष्णवानाम् ॥१६३॥

१६४। यौगपद्ये।

चक्रेण सहैककालं सचक्रं शार्ङ्गं निधेहि ॥१६४॥

१६५। साकल्ये।

सपत्रमत्ति विष्णुनैवेद्यम् ॥१६५॥

१६६। अन्तार्थे।

सद्वादशस्कन्धमधीते ॥१६६॥

१६७। अनतिक्रमे।

शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति। एवमन्येऽपि ॥१६७

१६८। अनुक्रमे।

अनुज्येष्ठं प्रवेशय, ज्येष्ठं ज्येष्ठमनुक्रमेण इत्यर्थः ॥१६८॥

१६६। तथा यावदियत्तायाम्।

समस्यते। यावत्पात्रं वैष्णवानामन्त्रयस्व ॥१६६॥

१। पुंसि च (ख ग घ) २। आशालार्थाच्च (क)

* उपकृष्णं कृष्णघोषः सुगोगोपं तदाप्स्यति। अतिदुःखं दुष्प्रतीपं तद्गोलकं सशर्म्मं च ॥ (श्रीगोपालचम्पूः पूः ३३।८८)

१७०। स्वाद्यन्तं प्रतिना लेशार्थे।

न सुखप्रति संसारे। न दुःखप्रति विष्णुभक्तौ। तत्र तत्र तत्तल्लेशोऽपि नास्ति इत्यर्थः ॥१७०॥

१७१। अक्ष-शालका-संख्या परिणा द्यूतव्यवहारे।

अक्षपरि, शलाकापरि, एकेनाक्षेण शलाकया वा उत्तानम् अवाग्वा पतितेन न तथा जयो वृत्तो यथा सर्व्वोत्तानादिपातेनेत्यर्थः। एवमेकपरि, द्विपरि ॥१७१॥

इत्यव्ययीभावेषु नित्यसमासाः।

अथ विभाषिताः

१७२। अनुर्यस्य समीपमाह यस्य च दैर्घ्यं तेन।

अनुवृन्दावनं यमुना, तत्समीपेत्यर्थः। अनुयमुनं वृन्दावनं, तद्वद्दीर्घमित्यर्थः। पक्षे—वृन्दावनमनु यमुनेत्यादि। लक्षणाद्यन्तर्भावादनयोर्द्वितीयैव ॥१७२

१७३। अभिप्रती लक्षणेनाभिमुख्ये।

हरिमाभि१-मुख्येन अभिहरि वैष्णवो याति। लक्षणेति किम्? भ्रान्त्या हरिमभियाति चेत्तदा न स्यात् ॥१७३॥

१७४। अप-परि-वहिरञ्चताः पञ्चम्या, आङ् तु मर्य्यादाभिविध्योः।

अपमाथुरं परिव्रजं, तांस्तं वर्ज्जयित्येत्यर्थः। वहिर्गोष्ठं प्राग्वृन्दावनम्। तथा आवैकुण्ठं संसारः। आवैकुण्ठं व्याप्तकीर्त्तिः। पक्षे—अप माथुरेभ्यः १७४

१७५। पारे मध्ये इत्येतौ षष्ठ्या।

यमुनायाः पारे पारेयमुनम्, एवं मध्येयमुनम्। सप्तम्यलुग्निर्द्देशात्—एवमग्रेवणमन्तर्वणमित्यपि, णत्वं तु वाच्यम् (समा० प्र० ३१३) ॥१७५॥

इति पूर्व्वपदप्रधानाव्ययीभावः।

१७६। संख्या विद्यायोनिसम्बन्धिना समाहारे।

द्वौ मुनी द्विमुनि व्याकरणस्य। एकविंशतिभारद्वाजं तद्वंशस्य। अभेदविवक्षायां द्विमुनि व्याकरणमित्यापि स्यात् ॥१७६॥

१७७। नदीभिश्च समाहारे।

अन्य कृष्णपुरुषत्वं वाच्यम्, ततोऽज्वक्ष्यते१ त० प्र० ९४)। सप्तगोदावरं, द्वियमुनम् ॥१७७॥

इति समाहारप्रधानाव्ययीभावाः।

१७८। तिष्ठद्गुप्रभृतीनि कालविशेषादौ।

अव्ययीभावे निपात्यन्ते। तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले स तिष्ठद्गु। एवं वहद्गु। आयन्ति गावो यस्मिन् आयतीगावम्। तथा खलेयवं, संस्कृतयवं संह्रियमाणयवं, खलेबुषम् इत्यादि। तथा शोभना समा संवत्सरोऽस्मिन् सुसमम्। एवं विनिर्दु रायती पाप-पुण्यानुचदाहार्य्याणि, विषममित्यादि। तथा समा भूमिरत्र काले क्रियायां वा समभूमि। एव समंपदाति। प्रक्रान्तमहोऽत्र प्राह्णम्, प्रगता रथा अत्र प्ररथम्। एवं प्रमृगम्। प्रकृता दक्षिणात्र प्रदक्षिणं कालः क्रिया वा। तिष्ठद्ग्वादीनां नान्यः समासः। परमं तिष्ठद्गु। अव्ययीभावस्तु स्यादेव, "आतिष्ठद्गु जपन् सन्ध्याम्" इति भट्टिः (४.१४) ॥१७८॥

इत्यन्यपदार्थप्रधाना अव्ययीभावाः समाप्ताः।

१७९। समाससाङ्कर्य्ये तु।

कमले इव लोचने यस्य स कमललोचनः, कमललोचनश्चासौ कृष्णश्च कमललोचनकृष्णः पीताम्बरगर्भश्यामरामः। शारदश्च तत् सरसिजश्च शारदसरसिजं, शारदसरसिजे इव नयने यस्य सः शारदसरसिजनयन इति श्यामरामगर्भपीताम्बरः ॥१७९॥

इति समासविशेषाः।

१८०। केवलसमासश्च दृश्यन्ते।

भूतः पूर्व्वः भूतपूर्व्वः, विस्पष्टपटुः, तत्प्रथमः, पुनर्नवः, अध्वगन्तव्य इत्यादयो भाषावृत्तौ (पा २। ४।७१) ॥१८०॥

१। हरेराभि- (क)। १। ततोऽद्वक्ष्यते (ख ग घ 'अत्र च अरामो वक्ष्यते' इति पाठः ज्ञेयः, तद्धितप्रकरणे ९४ 'अरामः' इति प्रभुसूत्रस्य वक्ष्यमाणत्वात्।

१८२। अथ समासकार्य्यविशेषाः।

वासुदेवोऽयम् ॥१८१॥

१८२ पूर्व्वनिपातः।

विभुरयम् ॥१८२॥

१८३। राजादीनां दन्तादीभ्यः।

पूर्व्वनिपातः स्यात्। दन्तानां राजा राजदन्तः। राजविद्या, राजगुह्यम्। अन्तवर्णम्, अधोभुवनं, सपत्नीमाता, ऋणे अधमः अधमर्णः। एवमुत्तमर्ण इत्यादि ॥१८३॥

१८४। रामकृष्णे ।

प्रभुरयम् ॥१८४

१८५। हरिसंज्ञस्य, सर्व्वेश्वराद्यरामान्तस्य अल्पसर्व्वेश्वरस्य, लघ्वक्षरस्य, पूजितस्य च स्वगणे तु यथोत्तरम्।

हरिसंज्ञादेः पूर्व्वनिपातः स्यात, तत्र स्वगणे यथोत्तरं स्यात्। सिन्धुशैलम्, अगतरु, धरासनम्, शकाशनम्, मातापितरौ, अत्र सख्युर्हरित्वं न मतम् तेन हितसखायावित्यपि। व्यभिचरति च—नरनारायणौ, उलूखलमुषले, भार्य्यापति, जायापति ॥१८५॥

१८६। अनेकप्राप्तावेकस्य नियमो नान्यस्य

हरिगुरुहराः, गुरुहरिहराः, हरिहरगुरवः ॥१८६

१८७। धर्म्मार्थादिषु यथेष्टम्।

धर्म्मार्थौ, कामार्थौ, शब्दार्थौ, अन्तादी, मधुसर्पिषी, गुणवृद्धी, इन्द्राग्नी, इत्यादी। तथा अर्थधर्म्मावित्यादि ॥१८७॥

१८८। ऋतु-नक्षत्र-संख्यावर्णानां क्रमेण।

हेमन्तशिशिरवसन्ताः, पुष्याश्लेषामघाः, पञ्चषट् विप्रक्षत्रविट्शूद्राः, अनेकेष्वनियमो न स्यात् ॥१८८॥

१८९। संख्यायामल्पीयसश्च।

एकञ्च दश च एकादश ॥१८९॥

१९०। पीताम्बरे।

प्रभुरयम् ॥१९०॥

१९१। सप्तमी-विष्णुनिष्ठा-विशेषण-कृष्णनाम-संख्यानां दण्डहस्तादिवर्ज्जम्।

पूर्व्वनिपात स्यात्। कण्ठेकालः, उरसिलोमा—द्वयमध्यलुक्। कृतहरिभक्तिः, कृत्तिवासाः, तथा सर्व्वकृष्णः सप्तरक्तः। नेह—दण्डहस्तः, चक्रपाणिः आदिना—गडुकण्ठः, अरुःशिराः, दुहितृगर्भा इत्यादि ॥१९१॥

१९२। जाति-काल-सुखादिभ्यः क्तस्य परनिपातः।

ना जग्धोऽनेन नृजग्धः, सारङ्गजग्धी, जातो मासोऽस्य मासजातः, सुखहीनः, कृच्छ्रजातः ॥१९२

१९३। आहिताग्न्यादिषु वा।

अग्न्याहितः, अस्युद्यतः, पुत्रजातः, दन्तजातः, श्मश्रुजातः, घृतपीतः, भार्य्योढः, प्रियगूढः, इत्यादि पक्षे आहिताग्नि इत्यादि ॥१९३॥

इति पूर्व्वपरनिपाताः।

१९४। एकस्य शेषो रामकृष्णे।

प्रभुरयम् ॥१९४॥

१९५। तुल्यशब्दानां भिन्नार्थनामापि एकस्य शेषः स्यात्।

गोपी च गोपी च गोप्यौ। सर्व्वत्रावशिष्ट एव लुप्तस्य शक्त्यारोपो दृश्यते, यथा व्यतिसे इत्यादौ। तद्वद्इहापीति गोपीशब्देन द्वयमुच्यते। द्वौ च द्वौ च इत्यादौ न अनभिधानात्। भिन्नार्थनामपि—कृष्णो वासुदेवः, कृष्णश्चार्ज्जुनः, तौ कृष्णौ। एवं रामाः ॥१९५॥

१९६। समानार्थानाञ्च भिन्नरूपाणां क्वचित्।

वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च वक्रदण्डौ ॥१९६॥

१९७। लक्ष्म्या सहोक्तौ पुरुषोत्तमस्य तन्मात्रञ्चेद्विशेषः।

गोपश्च गोप्यश्च गोपाः। नदीदेशनगराणामिति ज्ञापकात्तु—नदाश्च नद्यश्च नद्यः ॥१९७॥

१९८। यूना सहोक्तौ वृद्धस्य लक्ष्मीश्च पुरुषोत्तमवत्।

तन्मात्रञ्चेद्विशेषः। गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च गार्ग्यौ। गार्गी चागार्ग्यायणश्च गार्ग्यौ, श्यामी—गार्ग्याभ्याम्। तथा भ्रातृस्वसारौ भ्रातरौ, पुत्रदुहितरौ पुत्रौ, मातापितरौ पितरौ, श्वश्रूश्वशुरौ श्वशुरौ इत्यादि ज्ञेयम् ॥१९८॥

१९९। अन्यैः सहोक्तौ तदादेस्तदादिभिस्त परपरस्य।

स च वैष्णवश्च तौ, यश्च कश्च कौ, स च त्वञ्च युवाम्, स च त्वञ्च अहञ्च वयम् ॥१९९॥

२००। अतरुणेऽनेकशफ[1] ग्राम्यपशुसङ्घे लक्ष्म्याः।

गाव इमाः, अजा इमाः। अग्राम्यपशुसङ्घे तु इमा रुरवश्च, इमे रुरवश्च रुरव इमे। असङ्घे तु—गौश्चायं गौश्चेयं गावाविमौ। एकशफत्वे तु—अश्वा इमे। तरुणे तु—वत्सा इमे ॥२००॥

२०१। समरूपाणां ब्रह्मणा सहोक्तौ ब्रह्मणः, तत्रैकत्वञ्च वा।

श्यामः कृष्णः, श्यामा यमुना, श्यामं वृन्दावनं तानि श्यामानि। तदिदं श्यामं वा ॥२०१॥

इत्येकशेषः।

२०२। पूर्व्वपदान्महाहरनिषधः।

विभुरयम् ॥२०२॥

२०३। समासे सर्व्वादिपदं पूर्व्वपदं, सर्व्वान्तपदमुत्तरपदम्।

२०४। ओजोऽञ्जःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयाया

ओजसाकृतमित्यादि। तपसऽवेत्येके, "तपसाप्तसिद्धिम्" इति व्योषकाव्ये * (काश्मीरिक-श्रीभट्टभीमविरचिते रावणार्ज्जुनीयकाव्ये १६।२)। पूर्व्वपदादेव। 'ओजसो मध्यपदत्वे तु महौजःकृतम्' इति भाषावृत्तिः (६।३।३) ॥२०४॥

२०५। आत्मनस्तृतीयायाः पूरणे।

आत्मनापञ्चमः ॥२०५॥

२०६। मनस आज्ञायिनि।

मनसाज्ञायी। मनसादेव्यादयस्तु संज्ञाः ॥२०६॥

२०७। पुंसानुज-जनुषान्धौ।

साधू ॥२०७॥

२०८। स्तोकादिभ्यः पञ्चम्याः क्ते।

स्तोकान्मुक्तः कृच्छ्रान्मुक्तः २०८॥

२०९। ब्राह्मणाच्छंसी ऋत्विग्भेदे।

साधुः ॥२०९॥

२१०। अपः सुपो योनि-मति-येषु।

अप्सुयोनिरग्निः, अप्सुमतिः। यस्तद्धितः, गोविन्द वक्ष्यते (त० प्र० ५१), 'ओद्वयस्याबावौ' (आ० प्र० ५१५) अप्सव्यः ॥२१०॥

२११। अन्तेगुरु-मध्येगुरू।

साधू ॥२११॥

२१२: त्वचिसारादयः संज्ञायाम्।

साधवः ॥२१२॥

२१३। विष्णुजनारामान्तात्।

प्रभुरयम् ॥२१३॥

२१४। साङ्गादमूर्द्धमस्तकात ङेरकामे।

उरसि लोमान्यस्य उरसिलोमा। एवं कण्ठेकालः नेह—अङ्गुलित्राणः, मूर्द्धशिखः, मस्तकमणिः, मुखकामः ॥२१४॥

११५। अस्वाङ्गादपि बन्धे वा।

हस्तेबन्धो, हस्तबन्धः, चक्रेबन्धः, चक्रबन्धः विष्णुजनारामान्तादेव। नेह—गुप्तिबन्धः ॥२१५॥

२१६। हलादौ प्राच्यकरनाम्नि।

हले हले द्विपदिका हलेद्विपदिका, हलद्विपदिका वामनमते तु नित्यम्। पूर्व्वदेशकरनाम्नि वाच्ये हलादौ पूर्व्वपदे सति, तस्मात् हलादेर्ङेर्महाहरो वा भवतीति ज्ञेयम् ॥२१६॥

२१७। कालान् ङेर्व्वा तर-तम-काल-तनेषु

१। शफत्वे (क)। * "यथा व्योषे—तमोजसानिर्जितदेवराजं, दृष्ट्वा रथस्थं तपसाप्तसिद्धम्। जग्राह राजा सहसात्तकोप,-श्चापानि चारूणि सशायकानि ॥" भाषावृत्तिः (६।३।३)

विधिबलात् सप्तम्यन्तात्तरतपौ तनश्च। एते तद्धिताः। पूर्व्वाह्लेतरे गायति हरिः। एवं पूर्व्वाह्लेतमे पुर्व्वाह्लेकाले हुतं, पूर्व्वाह्लेतनी हरिगाथा। पक्षे—पूर्व्वाह्लतर इत्यादि। विष्णुजनारामान्तादेव। नेह—रात्रितरायां जागर्त्ति ॥२१७॥

२१८। अकालाद्वास-वासि-शयेषु।

खेवासः, खवासः ॥२१८॥

२१९। षष्ठ्याः।

प्रभुरयम् ॥२१९॥

२२०। संज्ञाभर्त्सनयोः।

दिवोदासः, चौरस्यकुलं, देवानांप्रियश्छागः ॥२२०

२२१। पुत्रे वा।

दास्याःपुत्रः, दासीपुत्रः ॥२२१॥

२२२। वाचोयुक्ति-दिशोदण्ड-पश्यतहराः*

साधवः ॥२२२॥

२२३। अदस आयन-कुलिकादिषु।

तद्धितप्रयोगोऽयम्। आमुष्यायणः। भावे—आमुष्यकुलिका, आमुष्यपुत्रिका, अमुष्यपुत्रता २२३

२२४। ऋरामाद्विद्या-योनिसम्बन्धे, स्वसृपत्योस्तु वा।

होतुःशिष्य, पितुःपुत्रः, तथा मातुःस्वसा, मातृष्वसा, दुपितुःपतिः, दुहितृपतिः। उभयोरेव तत्सम्बन्धे स्यात्। नेह--होतृधनं, पितृधनम् ॥२२४

इत्युलुक्समासाः।

२२५। रामकृष्णे।

प्रभुरयम् ॥२२५॥

२२६। ऋरामस्याराम ऋरामान्तापुत्रयोर्विद्यायोनिसम्बन्धे।

होतापोतारौ, मातापितरौ, मात्रापुत्रौ ॥२२६॥

२२७। इन्द्रादेररामस्याराम उत्तरपदे यज्ञप्रसिद्धयुग्मत्वे।

इन्द्रावृहस्पती, मित्रावरुणौ ॥२२७॥

२२८। अग्नीषोमावग्नीवरुणौ च।

त्रिविक्रम-षत्वाभ्यां साधू ॥२२८॥

२२९। वृष्णीन्द्रे त्रिविक्रमाभावः।

ततः षत्वाभावश्च। 'एकयोगनिर्द्दिष्टाणां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः' इति न्यायेन—आग्निसोमम् ॥२२९॥

२३०। आग्नावैष्णवद्यावादयश्च।

साधवः। आग्नावैष्णवी क्रिया, आग्नावैष्णवं हविः, आग्नेन्द्रो यागः, द्यावाधरण्यौ, द्यावाभूमी, दिवस्पृथिव्यौ, द्यावापृथिव्यौ, उषसानक्तम्, उषसासूर्य्यम्, मातरपितरावित्यादि, मातापितरावित्ति पूर्व्वेण। अदन्तत्वान्निपातस्य 'मातरपितरम्याम्' इति भाष्यम् (पा ६।३।३२-३३)। मातरपितृभ्यामित्यन्ये। कुशलवौ, कुशीलवौ वा ॥२३०॥

२३१। जायायाः पत्यौ जम्भावो दम्भावश्च वा।

जम्पती, दम्पती, जायापति ॥२३१॥

रामकृष्ण इति निवृत्तम्।

२३२। त्रिविक्रमः।

प्रभूरयम् ॥२३२॥

२३३। लक्षणस्य कर्णे, न तु रिष्टाष्ट-पञ्च-भिन्नच्छिन्न-च्छिद्र-स्रव-स्वस्तिकादीनाम्

लक्षणमिह कृत्रिमं गृह्यते। दात्राकृती कर्णौ। यस्य स दात्राकर्णः। द्वयङ्गुलाकर्णः। नेह—रिष्टकर्णः ॥२३३॥

२३४। कोटरावणादयः संज्ञायाम्।

कोटरावणं, मिश्रकावणं, सिधूकावणं, पुरगावणं, शारिकावणम्। किंशुलुकागिरिरित्यादि ॥२३४॥

२३५। ईशान्तस्य वहे न तु पीलोः।

ऋषीवहं कपीवहम्। नेह—पीलुवहम् ॥२३५॥

---

* वाचोयुक्तिपटुर्यत्र त्वं ववावदतां गतः। वाचस्पतिश्च तत्र स्यान्न वाचःपतिरण्वपि ॥ (श्रीगोपालचम्पूः पूः २२।६)

२३६ । शुनो दन्त-दंष्ट्रा-कर्णेषु, पद-पुच्छयोर्वा ।

श्वादन्त इत्यादि । तथा श्वापदं, श्वपदम् ॥२३६

२३७ । अष्टनः संज्ञायाम् ।

अष्टावक्र ऋषिः, अष्टापदं सुवर्णम् ॥२३७॥

२३८ । विश्वस्य वसुराटोः ।

विश्वावसुः, विश्वाराट्, विश्वाराट्सु ।
टान्तनिर्द्देशान्नेह— विश्वराड्, विश्वराजौ ॥२३८॥

२३९ । विश्वानरो नाम्नि, विश्वामित्र ऋषौ साधू ॥२३९॥

उक्तस्त्रिविक्रमः ।

२४० । अथ वामनः ।

प्रभुरयम् ।

२४१ । ईशस्य वोत्तरपदे ईवव्ययसेयुवो विना

विश्वनिभक्तः, विश्वनीभक्तः, गोपबधुरमणः, गोपबधूरमणः ब्रह्मबन्धुपुत्रः, ब्रह्मबन्धूपुत्रः । ईवादेस्तु गोपीनाथः, कृष्णीभूतं, श्रीकुलं, भ्रूकुलम् ॥२४१॥

२४२ । ईवापो संज्ञायां बहुलम् ।

रोहिणिपुत्रः, रोहिणीपुत्रः, वैदेहिपुत्रः, वैदेहीपुत्रः, शिलवहं, शिलावहं नाम नगरम् । क्वचिन्नैवनान्दीघोषः । क्वचिदसंज्ञायाञ्च—मन्दुरजः कलज्ञः । क्वचिदन्यथा च—"भ्रुकुंशश्च, भ्रूकुंसश्च, भ्रूकुंसश्चेति नर्त्तकः" ※ । एवं भ्रुकुटिर्भ्रुकुटिर्भ्रूकुटिरित्यादि ॥२४२॥

२४३ । इष्टकेशीका-मालानां चित-तुल-भारिषु ।

इष्टकचितम्, इषीकतूलं मालभारी । एवं पक्वेष्टकचितमित्यादि ॥२४३॥

२४४। उक्तपुरुषोत्तमस्येवन्तस्यानेकसर्व्वेश्वरस्य ब्रुव-मत-हत-गोत्रेषु ।

ब्रुवो निन्दयः, ब्राह्मणिब्रुवा, वैष्णविमता, वैष्णवविहता, गोपीगोत्रा । नेह–तुलसीमाता ॥२४४

२४५ । अनीवन्तगोप्या एकसर्व्वेश्वरेवन्तस्य च ब्रुवादिषु वा ।

गोपवामोरुमता, गोपवामोरूमता, स्त्रिमता, स्त्रीमता, एवं इत्यादौ ॥२४५॥

२४६ । कृद्गोप्या निषेधः ।

लक्ष्मीमता ॥२४६॥

२४७ । चतुर्भुजानुबन्धगोप्याः पुरुषोत्तमवत्त्वञ्च वा ।

विदुषिमता, विदुषीमता, विद्वन्मतेत्यादि ॥२४७

उक्तो वामनोः ।

२४८ । अथ पुरुषोत्तमवत् ।

प्रभुरयम् ॥२४८

२४९। वाच्यलिङ्गलक्ष्मीस्तुल्याधिकरणलक्ष्म्यां न तूङ् न च पूरणीप्रियादिषु ।

पुरुषोत्तमवत् स्यात् । तत्र श्यामरामे—उत्तरगोपी पीताम्बरे—वैष्णवभार्य्यः । सन्निहितस्यैव स्यात्— मृद्वीपट्वौ भार्य्ये यस्य स मृद्वीपटुभार्य्यः । वाच्यलिङ्गेति किम् ? वनमालाशोभः । तुल्याधिकरणेति किम् ? कल्याणीमाता गोपीनां सखी गोपीसखी । लक्ष्म्यामिति किम् ? गोपीजनः । 'न तूङ्' किम् ? गोपवरोरूरमणीकः । न च पूरण्यादिषु—कृष्णा पञ्चमी रात्रिर्यासां रात्रीणां ताः कृष्णापञ्चमा रात्रयः । तुल्यार्थान्यपदार्थत्व एव निषेधः, समासान्तोऽत्प्रत्ययश्च । अन्यत्र तु न तौ किन्तु कप्प्रत्ययः— कृष्णा पञ्चमी रात्रिर्यत्र पक्षे स कृष्णपञ्चमीकः पक्षः । प्रियादौ – कृष्णा श्यामवर्णा प्रिया यस्य स कृष्णाप्रियः ।
प्रियादयस्तु—

प्रिया कान्ता दृढा भक्तिर्वामना दुहिता क्षमा ।
सुभगा दुर्भगा तद्वद्विदुषी चपलादयः ॥२४९॥

२५०। श्लिष्ट-प्रियादिषु च पुरुषोत्तमवत्

※ अमरकोषे प्रथमकाण्डे नाट्यवर्गे ।

पूर्व्वनिषेधापवादोऽयम् । श्लिष्टप्रियः, विमुक्तकान्तः, दृढभक्तिः, प्रियदुहिता ।।२५०।।

२५१ । कृष्णनाम वृत्तिमात्रे ।

वृत्तिमात्रमेकपदत्वं, तत्र पुंवत् । सर्व्वासां प्रियः सर्व्वप्रियः । एवम् अन्यतनयः, तन्मुखम्, एकक्षीरम् 'न कृष्णनाम द्वन्द्वे' (वि० प्र० १८०) इति कृष्णनामत्व-निषेधात् कथं 'दक्षिणोत्तरपूर्व्वाणां, पूर्व्वदक्षिणपश्चिमाः'? तत्र न पुंवद्भाववर्ज्जं कार्य्यमिति कातन्त्रविस्तारः । भवतीप्रसादादित्यत्र व्यभिचारोऽपीष्यते ।।२५१।।

२५२ । कुक्कुट्यादयोऽण्डादिषु ।

कुक्कुट्या अण्डं कुक्कुटाण्डम् । एवं मृगपदं, मृगक्षीरं, काकशावकः ।।२५२।।

२५३ । प्राप्तापन्ने अपि ।

प्राप्ता गोपीकां प्राप्तगोपीका । एवम् आपन्नगोपिका अपि शब्दात् द्वितीया भिक्षायाः द्वितीयभिक्षा इत्याद्यपि ।।२५३।।

२५४ । न संज्ञा-पूरणौ णकस्तद्धितकरामोद्धवश्च ।

आख्यातकृत्तद्धितेषु च * निषेधोऽयम् । एवमुत्तरत्र—दत्ता भार्य्या यस्य स दत्ताभार्य्यः । योगरूढिरेषा दत्तेति । एवं गुप्ताभार्य्यः । दत्तायते । तद्धिते (८४ तम सूत्रे) तु वक्ष्यमाणविधेर्निषेधः । एवं दत्ताकल्पा, दत्तापाशा । एवं पञ्चमीभार्य्य इत्यादि । णकः—गोपीकाभार्य्यः । तद्धितः—मुद्रिकाभार्य्यः । णकस्तद्धित इति किम्? जलपाकभार्य्यः ।।२५४।।

२५५ । न वृष्णीन्द्रहेतु-तद्धित[1] लक्ष्मीररक्तविकारयोः ।

यादवीभार्य्यः, माथुरीमानिनी । वृष्णीन्द्रेति किम्? मध्यमभार्य्यः । अरक्तविकारयोरिति किम्? कौङ्कुमपटीकः, हैममुद्रिकः, लौहेशो रथः ।।२५५।।

२५६ । न जाति-स्वाङ्गाभ्यामीप् ।

गोपीभार्य्यः, सुकेशीभार्य्यः, गोपीयते ।।२५६।।

२५७ । मानिनि न निषेधः ।

ब्राह्मणमानिनी, सुकेशमानिनी ।।२५७।।

२५८ । अनूङो न ते निषेधाः श्यामरामे, जातीय-देशीययोश्च ।

कृष्णपञ्चमी, कृष्णप्रिया, दत्तभार्य्या, पञ्चमभार्य्या गोपकभार्य्या, मद्रकभार्य्या, यादवभार्य्या, गोपभार्य्या सुकेशभार्य्या । जातीय देशीयौ-तद्धितौ, कृष्णजातीयेत्यादि, कृष्णदेशीयेत्यादि । ऊङस्तु निषेध एव । गोपवरोरुरमणी ।।२५८।।

इति पुंवद्भावः ।

२५९ । गोत्रयाप ईः पुत्रपत्योः कृष्णपुरुषे न च वामनः, पीताम्बरे तु बन्धौ, मातृक-मातृ-मातेषु वा ।

कारीषगन्ध्यायाः पुत्रः कारीषगन्धीपुत्रः । एवं कारीषगन्धीपतिः । कृष्णपुरुषे किम्? कारीषगन्ध्यापतिर्ग्रामः । तथा कारीषगन्धीबन्धुः । हे कारीषगन्धीमातृक, हे कारीषगन्ध्यामातृकेत्यादि मातृपक्षे—कप्रत्ययाभावस्तु निर्द्देशबलादेव ।।२५९।।

२६० । महतः संसारस्याराम एकाधिकरणजातीययोः, घास-करविशिष्टेषु च, पुरुषोत्तमवच्च ।

महांश्चासौ पुरुषश्च महापुरुषः, महादेवः, महान् भुजोऽस्य महाभुजः, महाजातीयः, महती प्रिया यस्येत्यादौ नेष्यते, लिङ्गविशिष्टग्रहणस्य प्रायिकत्वादिति जुमरः, महतीप्रियः ।।२६०।।

२६१ । अभूततद्भावे व्यभिचारः ।

महद्भूतो विधुः । घासादौ—महतो महत्या वा घासः महाघासः ।।२६१।।

२६२ । द्व्यष्टनोः संसारस्यारामो दशादौ प्राक् शतात्, त्रिस्त्रयस् नवतिपर्य्यन्त-चत्वारिंशदादिषु तु वा, न तु पीताम्बराशीत्योः

---

* आख्यातकृदित्यत्र 'आख्यात-तद्धितयोश्च' इत्येव पाठो ज्ञेयः, यतः कृत्प्रकरणे कृदन्ते परे पुरुषोत्तमवत्त्वस्य विधिसूत्रं न दृश्यते ।

[1] तद्धितान्त (क) ।

द्वादश, अष्टादश, त्रयोदश, द्वाविंशतिरित्यादि, तथा द्वाचत्वारिंशत, द्विचत्वारिंशदित्यादि । नेह—द्विशतं, द्विदशाः, द्व्यशीतिरित्यादि ॥२६२॥

२६३ । संज्ञायाञ्च नेष्यते ।

द्विविंशतिः कश्चित् ॥२६३॥

२६४ । षोडशैकादश च निपातौ ।

२६५ । अष्टन् वा कपाले हविषि, गवि तु युक्ते ।

अष्टसु कपालेषु संस्कृतम् अष्टाकपालं हविः, अष्टौ गावो युक्ता यत्र तत् अष्टागवं ब्राह्मणशकटम् ॥२६५॥

२६६ । सहस्य सः ।

विभुरयम् ॥२६६॥

२६७ । पीताम्बरे वा ।

प्रभुर्विधिश्चायम् । सकृष्णः, सहकृष्णः ॥२६७॥

२६८ । आशिषि गोवत्स-हलेष्वेव ।

स्वस्ति सगवे सहगवे इत्यादि । नेह—स्वस्ति सहकृष्णाय ॥२६८॥

२६९ । नित्यं ग्रन्थान्ताधिकानुमेयेषु ।

साङ्गं श्रीभागवतमध्यैष्ट, अन्तपर्य्यन्तमित्यर्थः । सद्रोणा खारी, द्रोणादधिकेत्यर्थः । सविष्णुभक्तिर्वैष्णवसङ्गः, वैष्णवसङ्गात् सा भवेदित्यनुमीयते ॥२६९॥

२७० । अव्ययीभावे चाकाले ।

सचक्रं निधेहि शङ्खम् । अकाले किम् ? सहापराह्णम् ॥२७०॥

इति सहस्य सः ।

२७१ । सामान्यस्य सः ।

प्रभुरयम् ॥२७१॥

२७२ । ज्योतिर्गण-जनपद-रात्रि-नाभि-बन्धु-गन्ध-पिण्ड-लोहित-कुक्षि-वेणी-पत्नि-पक्षेषु ।

सज्योतिरित्यादि ॥२७२॥

२७३ । सब्रह्मचारी वेदाध्ययनार्थं समानव्रतचारिणि ।

साधुः ॥२७३॥

२७४ । सतीर्थः समानगुरुकुलवासिनि ।

साधुः ॥२७४॥

२७५ । विभाषा रूप-गोत्र-नाम-स्थान-वर्ण-धर्म्म-वयो-वचनोदर्य्यगर्भ-जातीयेषु ।

सरूपः, समानरूप इत्यादि । विस्तारादिम्मतं प्रयुक्तञ्चेदम् ॥२७५॥

२७६ । अन्यस्यान्यत् कारकशब्दे ।

२७७ । अषष्ठी-तृतीयास्थस्य तु आशीः आशा आस्था आस्थित उत्सुक ऊति राग इत्येषु च ।

२७८ । अर्थे तु वा ।

अन्यत्कारकः, अन्यदाशीः इत्यादि । तथा अन्यदर्थः, अन्यार्थः । नेह—अन्यस्य अन्येन वा आशीः अन्याशीः ॥२७८॥

२७९ । कृष्णपुरुषे ।

प्रभुरयम् ॥२७९॥

२८० । कोः कत् सर्व्वेश्वर-त्रि-वद-रथेषु ।

कदन्नं, कत्त्रयः, कद्वदः, कद्रथः ॥२८०॥

२८१ । कोः का पथ्यक्षयोरीषदर्थे च ।

कापथं, काक्षम्, अनयोस्तद्धितोऽद्वाच्यः (त० प्र० ९५) । ईषदर्थे -काम्लम् ॥२८१॥

२८२ । कापुरुष-कुपुरुषौ ।

साधू ॥२८२॥

२८३ । कोष्ण-कवोष्ण-कदुष्णा मन्दोष्णे साधवः ।

२८४ । हृदयस्य हृल्लेख-लासयोर्याणोश्च ।

लेख इत्यणन्तो गृह्यते । हृल्लेखः, हृल्लासः हृद्यं हार्दम् । घणि तु—हृदयलेखः ॥२८४॥

२८५ । शोक-रोगयोर्व्वा ।

हृच्छोकः, हृपयशोक इत्यादि ।।२८५।।

२८६ । नाशिकाया नस् य-तसि-क्षुद्रेषु-न तु वर्णनगरयोः ।

नस्यं, नस्तः, नःक्षुद्रः । नेष—नासिक्यमक्षरं नगरं वा ।।२८६।।

२८७ । पादस्य गादिषु पद्ग-पदाजि-पदाति-पदोपहताः, पद्धिम-पत्काषि-पद्धति-पद्याश्च, पद्घोष-पन्मिश्र-पच्छब्द-पन्निष्कास्तु वा ।

साधवः ।।२८७।।

२८८ । उदकस्योदः ।

प्रभुरयम् ।।२८८।।

२८९ । धि-पेष-वास-वाहनेषु ।

उदधिः, उदपेषं पिनष्टि ।।२८९।।

२९० । मन्थौदन-शक्तु-विन्दु-वज्र-भार-हार-विविध-वीरुध-गाहेषु वा ।

उदमन्थः, उदकमन्थः ।।२९०।।

२९१ । तत्पूर्य्येकविष्णुजनादौ च वा ।

उदकुम्भः, उदककुम्भः । अपूर्य्यत्वे तु—उदकगिरिः । एकेति किम् ? उदकस्थाली ।।२९१।।

२९२ । उदमेघ क्षिरोदादयः ।

साधवः ।।२९२।।

२९३ । पश्चाच्छब्दस्य पश्चभावोऽर्द्धे ।

पश्चार्द्धः ।।२९३।।

२९४ । मांस्पचन-मांस्पाकौ वा ।

निपातौ । पक्षे—मांसपचनं, मांसपाकः ।।२९४।।

२९५ । समो मस्य हरो वा ततहितयोः ।

सततं, सन्ततम्, सहितं, संहितम् । सातत्यमित्यत्र तु नित्यम् ।।२९५।।

२९६ । अद्वयस्य हर एवेऽनवधारणे ।

'अनवधारणे' इति काश्मीरिकमतम् । अतः 'एव इवार्थे इति कातन्त्रपरिशिष्टम् (सन्धिप्रकरणं १७) 'अनियमार्थ एव' इति पदचन्द्रिका । एकार्थश्च सर्व्वैर्मन्तव्यम्, 'एवौपम्येऽवधारणे' इति विश्वप्रकाशात् (२।६३) तथैव तात्पर्य्यात् । कृष्णनाम एव कृष्णनामेव रामनाम, तदुपममित्यर्थः । 'अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य' इति न्यायान्नेह—अथ एवेत्याह अथैवेत्याह एवेतिशब्दमनुक्तवानित्यर्थः अवधारणे तु कृष्णनामैव परमम्, ममैव कृष्णः ।।२९६

२९७ । औपम्ये तु नियोगेऽप्यद्वयहरः स्यात्

राधा एव राधेव कृष्णं भज । अतः 'चानियोगे' (६।१।९४) इति वार्त्तिकेऽप्यनियोगपदस्यानवधारण एव तात्पर्य्यं मन्यन्ते ।।२९७।।

२९८ ।ओतवोष्ठयोस्तु वा ।

श्यामोतुः, श्यामौतुः कृष्णोष्ठं, कृष्णौष्ठम् । अनयोस्तु समास एव, नेह—तवौष्ठम् ।।२९८।।

२९९ । ऋण-प्र-वसन-वत्सर-वत्सतर-दश-कम्वलानां मिलित्वा वृष्णीन्द्र ऋणे ।

ऋणार्णं, प्रार्णं, वसनार्णं, वत्सतरार्णं, वत्सतरार्णम् 'वत्सतरमनादृत्य वत्सरश्चान्द्रकाशिकादौ पठ्यते तदिहासम्मतं, पतञ्जलिशाकटायनादीनां वत्सतरस्यैवेष्टत्वात्, तथा तरप्रत्यययोऽत्र भाष्यदावुक्तः' (कातन्त्र-परिशिष्टे सन्धिप्रकरणम् ८) ।।२९९।।

३०० । अद्वयस्य मिलित्वा वृष्णीन्द्रः, ऋते तृतीयासमासे ।

कृष्णेन ऋतः कृष्णार्त्तः, अश्वेन ऋतः अश्वार्त्तः इति ।।३००।।

३०१ । गोररामे वा सन्धिः ।

गो अग्रं, गोऽग्रम् ।।३०१।।

३०२ । गोरोरवः सर्व्वेश्वरे वा ।

गवेशः, गवीशः । गवाग्रमित्यपि । वस्य हरे ग ईशः । गामञ्चति गवाङ्*, गवाञ्चौ, शसि

---

* "गवाच्शब्दस्य रूपाणि क्लीवेऽर्च्चागतिभेदतः । असन्धावङपूर्व्वरूपैर्नवाधिकशतं मतम् ।। स्वमसुप्सु नवषड् भादौ षट्के स्युस्त्रीणि जस्शसोः । चत्वारि शेषे दशके रूपाणीति विभावय ।।" इति प्राचीनमतम्

"गवाच् शब्दस्य रूपाणि एकाशीतिरुदीरिता ।" इत्यपि कस्यचिन्मतम् ।

'कार्य्यार्थमक्षरम्' इत्यादि न्यायेन पुनर्विश्लेषात्, गव अच् इति स्थिते अचोऽरामहरो नैमित्तिकापायश्च—गोचः। उत्तरपद इत्येव, पञ्चगवप्रियः ॥३०२॥

३०३। गवाक्षो गृहरन्ध्रे, गवेन्द्रो गवेशे।

अवेन साधू ॥३०३॥

३०४। गव्यूतिः क्रोशयुग्मे।

साधुः। अन्यत्र – गोयूतिः॥३०४॥

३०५। अक्षौहिणी सेनासंख्याविशेषे।

मिलित्वा वृष्णीन्द्रेण साधुः ॥३०५॥

३०६। शकन्ध्वादयश्च।

अरामहरेण साधवः। शकस्य अन्धुः, शकन्धुः कूपः। सीमानमन्तति बध्नाति सीमन्तः केशविन्यासरेखायाम्, अन्यत्र सीमन्तः। कुलान्यटति कुलटा, रूढचा भिक्षुकी असती चोच्यते। भाष्ये (पा ६।१।९४) एतदेवोदाहृतम्। आकृतिगणत्वमिति नोक्तम्। अन्ये तूदाहरन्ति—शुद्धोदनः, समनन्तरम्, समशनं, अर्द्धशनं, हलीशा, लाङ्गलीशा ॥३०६॥

३०७। पुत्रतरामस्य न द्वित्वं हत-जग्धयोरादिनि पुत्रादिनि चाक्रोशे।

पुत्रहती, पुत्रजग्धी, पुत्रादिनी, पुत्रपुत्रादिनी ॥३०७

३०८। भीरुष्ठान-गविष्ठिर-युधिष्ठिरादयः संज्ञायाम्।

एते पत्वेन साधवः ॥४०८॥

३०९। सुषामादयश्च।

सुषामा, दुःषामा, सुषन्धिः, दुःषन्धिः, अङ्गुलिषङ्गः। दुन्दुभिषेवणम्, हरिषेणः, विविषत इत्यादि। तथा पितृष्वसा, मातृष्वसा ॥३०९॥

३१०। अलुकि वा।

मातुःष्वसा, पितुःष्वसा, मातुःस्वसा, पितुःस्वसा तथा रोहिणीषेण इत्यादि ॥३१०॥

३११। पूर्व्वपदान्नस्य णः।

प्रभुरयम् ॥३११॥

३१२। संज्ञायां न तु गात्।

नारायणः। प्रत्ययमात्रस्य भिन्नपदत्वाभावात् पूर्व्वपदान्तर्भाव एव, लक्षणः। संज्ञायां किम्? दीर्घनयना। न तु गात्—ऋगयनम्। पूर्वोक्तनिमित्तत्वे सत्येव, नेह—अर्द्धनसः ॥३१२॥

३१३। अग्रे-प्रभृतिभ्य एव वनस्य संज्ञायाम्

अग्रेवणं, सारिकावणम्। एवं पुरगा-मिश्रका-सिध्रका-कोटराभ्यः। नेह—भद्रवनम् ॥३१३॥

३१४। प्र-निरन्तः-शर-कार्श्याम्र-खदिरेक्षु-प्लक्ष-पीयूक्षाभ्यो वनस्य संज्ञायाञ्च।

प्रवणमित्यादि। कार्श्यवणमिति तालव्यव्यवधानेऽपि ॥३१४॥

३१५। वृक्षौषधिभ्यो वनस्य वा, न तु त्र्यधिकसर्व्वेश्वरात् तिमिरादेश्च १।

धात्रीवणं धात्रीवनम्, धात्रिकावणं, धात्रिकावनम्, दूर्व्वावणं, दूर्व्वावनम्। नेह—देवदारुवनं, तिमिरवनम्२, इरिकावनं, हरिद्रावनं३ भद्रिकावनम् ॥३१५॥

३१६। अरामान्तादह्नस्य।

पूर्व्वाह्णः। अह्नस्येत्यरामान्तनिर्द्देशः किम्? दीर्घाह्नी प्रावृट् ॥३१६॥

३१७। त्रि-चतुर्भ्यां हायनस्य वयसि।

त्रिहायणो वत्सः, त्रिहायणी गौः, चतुर्हायणः, चतुर्हायणी। वयसी किम्? त्रिहायनं गृहम् ॥३१७

३१८। परादेरयनस्य अन्तरस्त्वदेशे।

परायणं, पारायणम्, अन्तरयणम्, देशे तु अन्तरयना माथुराः ॥३१८॥

३१९। आहित-वोढव्याद्वाहनस्य।

उह्यते येन स वाहनः औणादिकष्टनण्, रामवाहणो रथः। नेह—रामसम्बन्धी वाहनः रामवाहनः ॥३१९॥

३२०। पानस्य देशे भावकरणयोस्तु वा।

१। तिमिरिकादेश्च (क) २। तिमिरिकावनम् (क) ३। हरिद्रिका-वनं (क)

क्षीरपाणाः माथुराः। क्षीरपाणं क्षीरपानं वा कृष्णस्य। क्षीरपाणी क्षीरपानी वा पात्री ॥३२०॥

३२१। प्रादेर्नसः।

'नासिकाया नस्' वक्ष्यते (त० प्र० १६०) प्रणसं, दुर्णसम् ॥३२१॥

३२२। गिरिनद्यादिषु वा।

गिरिणदी, गिरिनदी, एवं वक्रणदी वक्रनदी, वक्रणितम्बः, गिरिणितम्बः, गिरिणद्धः मापोणः णत्वेन साधवः ॥३२२॥

३२३। नामान्तविष्णुभक्तयोर्व्वा, न तु युवादेः, एकसर्व्वेश्वरे कवर्गवति चोत्तरपदे सति नित्यम्।

पूर्व्वमप्यारोहत्ययम्। हरिभाविणौ, हरिभाविनौ नुम् चात्र नामान्तः, हरिभव्याणि, हरिभव्यानि, हरिभावेण, हरिभावेन। अत्र तु नित्यं वृत्रहणौ। हरियोग्याणि, हरियोग्येण। समासावस्थायां यन्नामान्तत्वं, तदिह गृह्यते, तेन हरेर्भगिनी हरिभगिनीत्यत्र न। हरिभगोऽस्यामस्तीति हरिभगिणीत्यत्र तु स्यादेव, र-ष-ऋद्वयेभ्यः' (वि० प्र० २६) इत्यनेनैव। विष्णुसर्गस्य सर्व्वेश्वरधर्म्मत्वात्तद्व्यवधानेऽपि, यथा—उरसा कायति उरःकः, तेन उरःकेण। तदेकोद्भवत्वाज्जिह्वामूलीयस्यापि तद्रूपत्वम्, उर×केण, एवमुरःपेण, उर⌒पेण। हन्तेरत् पूर्व्वस्येति वाच्यम्। नेह—असुरघ्नः, शत्रुघ्नः। 'धादेशे प्रतिषेधो वाच्यः' इति भाष्यम्, 'हो घि हनः' इति कातन्त्रपरिशिष्टे (णत्वप्रकरणम् ३२) निषेधसूत्रञ्च। युवादेस्तु—आभीरयूना, हरिपक्षेन, अग्रगामिनौ, शास्त्रवाक्यानि, छात्रगामिना, 'आङोऽन्येन विष्णुपदेन व्यवधानेन णत्वं न (आ० प्र० ४८) इति—हरियागयोगेन तद्धिते तु न निषेधः—हरिवाङ्मयेण ॥३२३॥

इति षत्वणत्वे।

३२४। पुमः सरामो हरिकमल-हरिखडगयोर्यादवेतरपरयोः, स च विष्णुचक्रपूर्व्वो विष्णुचापपूर्व्वो वा तत्र कखपफेषु विष्णुसर्ग-निषेधश्च।

पुंस्कृष्णः, पुंश्चतुर्भुजः, पुंष्टिट्टिभः पुंस्तारकः पुंस्परमः, पक्षे—पुँस्कृष्ण इत्यादि। यादवपरत्वे तु—पुंक्षीरम्। यदा तु सुपुंस् इत्यनुकृत्य यादवपरता तदा शब्दानुकरणे यादवे सलोप वा—सुपुंकृष्णभजनं सुपुंस्कृष्णभजनं वा ॥३२४॥

३२५। विष्णुसर्गस्य स, ईश्वरात्तु षः कखपफेषु, तौ स्थानिवच्च।

प्रभुरयम् ॥३२५॥

३२६। निर्दुर्वहिः-प्रादुराविश्चतुराम्।

निष्कृष्णः, दुष्कर्म्मा, स्थानिवत्त्वाड्डत्वाभावः तथा निष्पानमित्यादि णत्वाभावश्च ॥३२६॥

३२७। ईश्वरारामाभ्यां पाशकल्पकेष्वनव्ययस्य।

पाशादयस्तद्धिताः। ज्योतिष्पाशः, यशस्कल्पः, सर्पिष्कम्। अव्ययस्य तु—स्वःपाशः, उच्चैःकल्पम् ॥३२७॥

३२८। काम्ये तु नररामजविष्णुसर्गं विना

पयस्काम्यति, सर्पिस्काम्यति। अतएव 'सजुष्' (वि० प्र० १३६) इत्यादौ इसुसन्तधातोरित्यत्र धातुग्रहणं कृतम्—हविस्काम्यति। काम्यादिग्रहणात् प्रकरणमिदं पूर्व्वत्राप्यारोहति, निष्करोति इत्यादौ स्यात्। नेह—अहःकाम्यति, गीःकाम्यति, सुपूकाम्यति ॥३२८॥

३२९। अनन्तस्य कृ-कमि-कंस-कुशी-पाश-कर्णी-कुम्भ-पात्रेष्वनुत्तर-पदस्थस्यानव्ययस्य समासे।

वेधस्कृतिः, विष्टरश्रवस्कामः, अम्भस्कुम्भः, अम्भस्कुम्भीत्यपि। उत्तरपदस्थत्वे तु—परमवेधःकृतिः ॥३२९॥

३३०। नमः पुरसोर्गतिसंज्ञयोः कृञि।

नमस्कृत्य, नमस्कारः, नमस्कुरु ॥३३०॥

३३१। तिरसस्त्वगतौ च वा।

तिरस्कृत्य, तिरःकृत्य,। 'केचित् गतिग्रहणं नानुवर्त्तयन्त' इति भाषावृत्तौ (८।३।४२) नित्यं तु तिरस्कार साधुः ॥३३१।

३३२। द्वि-त्रि-चतुरां वारार्थवृत्तीनां वा।

द्विष्कृत्वा, द्विःकृत्वा, त्रिष्कृत्वा, त्रिःकृत्वा, चतुष्कृत्वा, चतुःकृत्वा, अथ वारार्थे तद्धितः सुः। द्विष्कृष्णं पश्य, द्विःकृष्णं पश्य, द्विष्पूजय, द्विःपूजय, चतुष्पठ, चतुःपठ। अवारार्थे चतुष्पार्श्वमिति नित्यं पूर्व्वेण ॥३३२॥

३३३। इसुसोः क्रियापेक्षायां वा।

सर्पिष्कुरु, सर्पिःकुरु, यजुष्पठ, यजुःपठ। इसुःसोरत्रौणादिकयोरेव, तेन नेह—पितुःकृतिः, मुहुःपक्तिः। क्रियापेक्षामिति परस्थितायाः कखपफादिक्रियायाः सम्बन्धे सतीत्यर्थः। तस्यामिति किम्? स्थापय सर्पिः पिबोदकम् ॥३३३॥

३३४। अनुत्तरपदस्थयोरिसुसोः समासे, अधःशिरसो पदे।

सर्पिष्कुण्डं, यजुष्पाठः, अधस्पदं, शिरस्पदम्। उत्तरपदस्थत्वे तु – महासर्पिकुण्डं, परमसर्पिःकुरु। परमाधःपदम् ॥३३४॥

३३५। कस्क आदिषु च।

कस्कः, कौतस्कुतः, भास्करः, अहस्करः, तमस्काण्डं, मेदस्पिण्डः, वाचस्पतिः, अयस्कील इत्यादि ॥३३५॥

उक्तौ षसौ

३३६। अहरादीनां पत्यादौ रो वा।

अहर्पतिः, अहःपतिः, धूर्पतिः, धूःपतिः, गीर्पतिः गीःपतिः। कस्क आदित्वात्—गीष्पतिः, स्वःपतति, स्वर्पतति ॥३३६॥

३३७। उषर्बुधोऽग्नौ निपात्यते, नार्प्रतादयश्च वृष्णीन्द्रे।

नृपतेरिदं नार्पतम्, नार्कटं, नार्कपालं, नार्पतमिति जुमरः ॥३३७॥

३३८। उत्तरपदस्य[1] पीताम्बरे।

विभुरयम् ॥३३८॥

३३९। जायाया जानिः।

रुक्मिणीजानिः ॥३३९॥

३४०। धनुषो धन्वन्, संज्ञायास्तु वा।

दृढधन्वा, शार्ङ्गधन्वा, शार्ङ्गधनुः। धनुरुदन्तः पुंलिङ्गोऽप्यस्ति, तेन—

स्वयमतनुः कुसुमधनुस्त्रिभुवनविजयी कथं मदनः। यदि सरसिरुहनयना न किरति नयनाञ्चलान्दोलनम्। संज्ञात्वमपि नास्तीति ॥३४०॥

३४१। प्रसंभ्यां जानुनो ज्ञुः।

प्रगते जानुनी यस्य स प्रज्ञुः, संहते जानुनी यस्य स संज्ञुः ॥३४१॥

३४२। ऊर्द्ध्वात्तु।

ऊर्द्ध्वज्ञुः, ऊर्द्ध्वजानुः ॥३४२॥

३४३। सुसंख्याभ्यां दन्तस्य दतृर्वयसि।

सुदन् कुमारः, सुदती कुमारी, द्विदन् वत्सः। वयसि किम्? द्विदन्तो गजः ॥३४३॥

३४४। अग्रान्त-शुद्ध-शुभ्र-श्यावारक-वृष-वराहाहि[1]-गर्द्दभ-शिखरेभ्यो दन्तस्य दतृर्व्वा

कुशाग्रदन्, कुशाग्रदन्तः, शुद्धदन्, शुद्धदन्तः ॥३४४

३४५। संख्यासूपमानेभ्यः पादस्यान्तहरः।

द्विपात्, सुपात्, सिंहपात् ॥३४५॥

३४६। न हस्त्यादेः।

हस्तिपादः, कण्डोलपादः ॥३४६॥

३४७। कुम्भपद्यादयः।

साधवः। कुम्भपदी, शतपदी, गोधापदीत्यादि ॥३४७॥

३४८। पूर्णादेः ककुदस्य ककुदवस्थायाम्

पूर्णककुत्, अजातककुत्। अवस्थायां किम्। श्वेतककुदः ॥३४८॥

---

[1] उत्तरपदस्यादेशः (क)

[1] वृष-मूषिक-वराहाहि (क)

३४९। त्रिककुत् गिरौ।

साधुः ॥३४९॥

३५०। उद्विभ्यां काकुदस्य काकुदवस्थायां पूर्णाद्वा।

उत्काकुत, विकाकुत, पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदो वा, काकुदं तालु ॥३५०॥

३५१। सुहृन्मित्रे दुर्हृच्छत्रौ।

साधू ॥३५१॥

३५२। युष्मदो गौणस्य त्वद-युवद-युष्मद एकत्वादिषु, अस्मदो मदावदस्मदः।

गौणस्येति कृष्णपुरुषेऽपि गृह्यते, ततः अतित्वत्, अतियुवदित्यादि। नाम्नः स्वादौ रूपाणि दर्शितान्येव ॥३५२॥

३५३। द्व्यन्तर्भ्यामप ईपः, अद्व्यान्तादन्यतः प्रादेश्च।

द्वयोर्गता आपोऽस्मिन् द्वीपः। एवम् अन्तरीपः, दुरीपः, अन्वीपः। अद्व्यान्तात्तु—प्रापं, परापम् ॥३५३॥

३५४। अनूपो देशे।

साधुः। "जलप्रायमनूपं स्यात्" अमरकोषः (भूमिवर्ग) ॥३५४॥

इत्युत्तरपदादेशाः।

अथ सुटा निपाताः

३५५। अपरस्परा क्रियासातत्ये, गोष्पदं गोभिः सेविते गोपदप्रमाणे च, प्रतिष्कशो वार्त्तावह-पुरुषे सहाये पुरोयायिनि च, पारस्करप्रभृतीनि संज्ञायामिति, इतरेतरान्योन्यपरस्परा ब्रह्मैकवचनान्ताः कर्म्मव्यतीहारे।

अन्योन्यं वैष्णवा न स्पर्द्धन्ते, किन्तु नमन्ति। अन्योन्येन वैष्णवैर्न स्पर्द्धयते, किन्तु नम्यते। अन्योन्यस्मै, अन्योन्यस्मात्, अन्योन्यस्य, अन्यन्यस्मिन् वा साधवः। एवं परस्परम्, इतरेतरञ्च ॥३५५॥

३५६। लक्ष्मीब्रह्मणोरमादीनामाम् वा।

अन्योन्याम्, अन्योन्यं वा वैष्णव्यौ नमतः, वैष्णवकुले वा। एवमन्योन्यामन्योन्येन वेत्यादि। निपातोऽयं समासे सत्येव, तं विना तु द्वित्वमात्रम्—अन्यमन्यमिमे वैष्णवा नमन्तीत्यादि ॥३५६॥

३५७। पृषोदरादयः।

निपातेन साधवः। पृषदुदरमस्य पृषोदरः, पृषद्वानित्यर्थः। मह्यां रौति मयूरः, ब्रूवन्तः सीदन्त्यस्यां वृषी, मनष ईषा मनीषा, पतन्नञ्जलिर्यस्य पतञ्जलिः, संराजते सम्राट्, तत् करोति तस्करश्चौरे, वृहतां पतिर्वृहस्पतिर्देवगुरौ, वारिवाहो वलाहकः पूर्य्यते गलति च पुद्गलः, रतेस्तननमस्मात् स्तनम्, वाहितं पापमनेन ब्राह्मणः कौ जीर्य्यती कुञ्जरः हिनस्ति सिंहः, केन जलेन उभ्यते पूर्य्यते कुम्भः, आगच्छन्त्यत्र अङ्गनम्, प्राङ्गणन्तु मूर्द्धन्यान्तम्, जीवतीति जीमूतः, शवानां शयनं श्मशानम्, षट् दन्ता अस्य षोडतृ—षोडन्, षोडन्तौ। तृतीयं पिष्टपं त्रिपिष्टपम्, द्विगुणा त्रिगुणा वेदिः—द्विस्तावा, त्रिस्तावा, वेदितोऽन्यत्र—द्विस्तावती रज्जुः। गवामिन्द्रो गोविन्दः, केशिनं हतवान् केशवः, अक्षस्य अधो जातो इव अधोक्षजः मन्दमभिजाति, मुक्तिं ददातीति वा मुकुन्दः। आकृतिगणोऽयम्। अत्र चाहुः—

वर्णागमो वर्णविपर्य्ययश्च
द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योग-
स्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ॥३५७॥*

इति समासकार्य्याणि।

---

* वर्णागमो गवेशादौ सिंहे वर्णविपर्य्ययः। षोडशादौ विकारः स्यात् वर्णनाशः पृषोदरे॥ भवेद् वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्य्ययात्। गूढात्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात् पृषोदरम्॥ इति च (न्यासोद्धृत-कारिका) वर्णविकारनाशाभ्यां धातोरतिशयेन यः। योगः स कथ्यते प्राज्ञैर्मयूर-जीमूतादिषु॥

अथ द्विरुक्तिप्रकरणम्

३५८। सर्व्वस्य द्विरुक्तिः।

प्रभुरयम् ॥३५८॥

३५९। आभीक्ष्ण्यवीप्सयोः।

भजति भजति, नत्वा नत्वा स्तौति, नामं नामं वा। वीप्सायाम्—गृहे गृहे वैष्णवाः, वैष्णवो वैष्णवो रमणीयः। इह सत्तमं सत्तममानयेति जातप्रकर्षस्य द्विरुक्तिरिष्यते। किञ्च[१] आख्यातस्य द्विरुक्तिरेव प्राक्, ततः प्रकर्षार्थस्तद्धितः, भजति भजतितराम्। क्वचिद्वृत्तावुक्तार्थद्विरुक्तिर्निवर्त्तते। द्वौ द्वौ पादौ ददाति—द्विपदिकां ददाति, द्विपदिकां देहि[२], द्वौ द्वौ देहि—द्विशो देहि। सप्त सप्त पर्णान्यस्य—सप्तपर्णः कुलं कुलमटति—कुलटा। क्वचिदुक्तार्थस्यापि प्रयोगः—एकैकशो देहि ॥३५९॥

३६०। परेर्व्वर्ज्जने वा, न तु समासे।

परि परि माथुरेभ्यः, परि माथुरेभ्यः। नेह—परित्रिगर्त्तम् ॥३६०॥

३६१। उपर्य्यध्यधसां सामीप्ये।

उपर्य्युपरि, अध्यधि, अधोऽधो गोवर्द्धनम्। सामीप्ये किम्? सर्व्वस्योपरि कृष्णः ॥३६१॥

३६२। वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूया-सम्मति-कोप-कुत्सन-भर्त्सनेषु।*

तत्रासूयायाम्—वैष्णव वैष्णव वृथा ध्यायसि। सम्मतौ—वैष्णव वैष्णव शोभतां खल्वपि। एवं कोपादौ ॥३६२॥

३६३। एकस्य पीताम्बरवत्त्वञ्च।

ततः सुप्लोपः पुम्वच्च, एकैकशः।

'एकैकशो विनिघ्नन्ति विषया विषसन्निभाः।'

एकैकमक्षरं जयति (जपति वा)। एकैकयाहुत्या जुहोति ॥३६६॥

३६४। पीडायाञ्च तद्वत्।

गतगता, नष्टनष्टा ॥३६४॥

३६५। श्यामरामवदुत्तरेषु।

प्रभुर्यम् ॥३६५॥

३६६। सादृश्ये गुणस्य क्रियायाश्च।

पटुपटुः, पटुतोऽन्यूनगुण इत्यर्थः, एवं मन्दमन्दमभियाति मुकुन्दः, पटुपट्वी, पण्डितपण्डिता। श्यामरामवत्त्वान्निषेधविषयेऽपि पुम्वत्—कालककालिका। इदञ्च द्विर्व्वचनं गुणविशिष्टद्रव्यवृत्तेर्गुणमात्रवृत्तेश्चेष्यते—श्यामश्यामोऽयम्, श्यामः श्यामोऽस्य वर्णः। क्रियाया यथा—'भ्रमरैर्भीतभीतेन गोपीवृन्देन खेलितम्॥'

॥३६६॥

३६७। अकृच्छ्रे प्रियसुखयोर्व्वा।

प्रियप्रियेण, सुखसुखेन वा भजति हरिम्। पक्षे—प्रियेण सुखेन च ॥३६७॥

३६८। आनुपूर्व्वे च।

मूले मूले स्थूला शुण्डा। ज्येष्ठं ज्येष्ठं वैष्णवमानय ॥३६८॥

३६९। आधिक्ये तु।[१]

अहो भाग्यं भाग्यम्। 'अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्' (श्रीमद्भागवतम् १०।१४।३२) इत्यपि भाग्यस्याधिक्यमत्र द्विर्व्वचने प्रतीयते ॥३६९

३७०। चापले यावद्बोधम्।

कृष्णः कृष्णः कृष्णः पश्य पश्य पश्य ॥३७०॥

३७१। आचि बहुलम्।

आच् तद्धितः, पटपटा भवति। बहुलं किम्? मन्त्राकरोति ॥३७१॥

३७२। पूर्व्वप्रथमयोरतिशये।

पूर्व्वा पूर्व्वा तुलसी स्निग्धा। पूर्व्वतरा पूर्व्वतमेत्याद्यपि ॥३७२॥

३७३। यथास्वे यथायथं द्वन्द्वं कलहयुग्मादौ साधू। द्वौ द्वौ द्वन्द्वम् ॥३७३॥

इति श्रीश्रीहरिनामामृताख्ये वैष्णवव्याकरणे समासादिप्रकरणं षष्ठं समाप्तम्।

---

* विस्मये च विवादे च तथा दैन्येऽवधारणे। प्रसादने तथा हर्षे वाक्यमेकं द्विरुच्यते।

१। किन्तु (ख ग घ) २। 'द्विपदिकां देहि' इति क-पाण्डुलिप्यां नास्ति। १। आधिक्ये च (क)

श्रीश्रीराधानाथः शरणम्

[सप्तमम्]

अथ तद्धित-प्रकरणम्

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

[१] अर्द्धचर्चादिप्रयोगाश्च यन्निमित्तमिहोदिताः।
इयं मे तद्धितव्याख्या तद्धितत्वाय कल्पताम् ॥

अथ तद्धितकार्य्याणि

१। आदिसर्व्वेश्वरस्य वृष्णीन्द्रो नृसिंहे।

विभुरयम्। गर्ग-यण्—'अ-इद्वयस्य हरो' (त० प्र० ४९) वक्ष्यते—गार्ग्यः। दक्ष-इण्—दाक्षिः। उपगु-अण्—'उद्वयस्य गोविन्दो' (त० प्र० ५१) वक्ष्यते—औपगवः ॥१॥

२। प्रलयादीनां यादेरीयश्च।

अण्—प्रालेयं, कैकेयः ॥२॥

३। देविका-शिंशपा-दीर्घसत्र-श्रेयसामारामः

एषामारामः, एषामारामरूप एव वृष्णीन्द्रः, अण्—दाविकं, शांशपं, दार्घसत्रं, श्रायसम् ॥३॥

४। वृष्णीन्द्रस्थान-चतुःसनादेश-विष्णुपदान्तयोर्द्वारादिस्थयोश्च वृष्णीन्द्रं निषिध्य यवरामयोरैयौवौ, न तु स्वागतादेः

वृष्णीन्द्र स्थानीयश्चतुःसनन्तस्यादेशयोर्विष्णुपदान्तयोस्तथा द्वारादिगणस्थयोश्च यवयोर्वृष्णीन्द्रं निषिध्य यथासंख्यमैयौवौ भवतः। अणि वैयाकरणः इणि सौवश्विः। 'वृष्णीन्द्रं निषिध्य' इति किम्? 'सौवाश्विः' इति स्यात्। वृष्णीन्द्रस्थानेति किम्? दाध्यश्विः, माध्वश्विः। विष्णुपदान्तयोरिति किम्? इनु-शत्रन्तस्य यतश्छात्रा इत्यणि याताः। द्वारादिस्थयोः खल्वपि, टिकण्—दौवारिकः। द्वार-श्वन्-श्वस्-स्वरादिर्द्वारादिः ॥४॥

५। न्यग्रोधश्च केवलोऽत्र।

नैयग्रोधम्। नेह—न्याग्रोधमूला वैष्णवाः ॥५॥

६। श्वापदो वा।

श्वापदं, शौवापदम्। स्वागतादेस्तु—स्वागतिकः व्यवहारिकः। इणि—व्याडिः ॥६॥

७। न श्वपूर्व्वस्येरामे।

इण्—श्वादंष्ट्रिः, श्वाभस्त्रिः, श्वागणिकः ॥७॥

८। उत्तरपदस्य।

प्रभुरयम्। 'आदिसर्व्वेश्वरस्य' इति विभुरनुवर्त्तते एव ॥८॥

९। गुरुलघ्वादेः।

गुरुलाघवं, पितृपैतामहं, वातपैत्तिकं, वातश्लैष्मिकम्, एकपौरुष्यमित्यादि ॥९॥

१०। अवयवादृतोः।

पूर्व्ववर्षासु भवः—पूर्व्ववार्षिकः, वर्षाणां पूर्व्वभागे जात इत्यर्थः। एवम्—अपरशारदम्। 'अवयवात्' किम्? पूर्व्वासु गतासु वर्षासु भवः—पौर्व्ववर्षिकः ॥१०॥

११। सुसर्व्वार्द्धेभ्यो देशनाम्नः।

सुशौरसेनकः सर्व्वशौरसेनकः, अर्द्धशौरसेनकः ॥११

१२। दिशस्त्वमद्राणाम्।

पूर्व्वशौरसेनकः। मद्राणान्तु—पौर्व्वमद्रः ॥१२॥

१३। संख्यातः संवत्सर-संख्ययोः।

द्विसांवत्सरिकः। संख्यायाः—त्रिसाप्ततिकः ॥१३

१४। संख्याया वर्षस्याभाविनि।

द्विवार्षिकः, पञ्चवार्षिकः। 'अभाविनि' किम्? द्विवर्षे भविष्यति—द्वैवर्षिकम् ॥१४॥

१५। संख्यायाः परिमाणस्याशाणस्य

द्विनैष्किकम्। शाणस्य तु—द्वैशाणम् ॥१५॥

१६। प्रोष्ठपदा-भद्रपदयोर्जातार्थे।

प्रोष्ठपादो बालः, भाद्रपादः। भवार्थे तु—प्रौष्ठपदो मेघः ॥१६॥

१७। उभयोः पदयोः।

प्रभुरयम् ॥१७॥

१८। हृद्भगसिन्ध्वन्तानाम्।

सौहार्द्दं, सौभाग्यं, सौरसैन्धवम्। हृदिति प्रतिपदोक्तग्रहणाद्धृदयादेशस्य सौहृद्यमित्येके। ते खलु क्वचित्तद्धितेऽपि हृदाद्यादेशं मन्यन्ते ॥१८॥

१९। अनुशतादीनाञ्च।

आनुशातिकम्, आनुसांवत्सरिकः ॥१९॥

२०। एवम् इहलोक-परलोक-सर्व्वभूमि-पुष्करसद्-अधिदेव-अधिभूत-अध्यात्म-अनुहोड-अवहोडादीनाम्।

२१। देवताद्वन्द्वे च।

सौर्य्याचान्द्रमसं सूक्तं, हविर्वा। सूक्तहविषोरेवाभिधानम्, नेह—ब्राह्मविशाखो देशः नेन्द्रस्य परस्य—सौमेन्द्रश्चरुः ॥२१॥

२२। न च त्रिविक्रमाद्वरुणस्य।

ऐन्द्रावरुणम्। 'त्रिविक्रमात्' किम्? आग्निवारुणम् ॥२२॥

२३। प्राच्यनगरान्तस्य।

उभयपदवृद्धिः। पौण्ड्रनागरः, सौह्मनागरः ॥२३॥

२४। जङ्गल-धेनु-बलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम्।

कौरुजाङ्गलः, वैश्वधेनवः, सौवर्णबालजः। पक्षे कौरुजाङ्गल इत्यादि ॥२४॥

२५। अर्द्धात् परिमाणस्य पूर्व्वस्य तु वा।

आर्द्धद्रौणिकम्, अर्द्धद्रौणिकम् ॥२५॥

२६। नार्द्धात् परिमाणस्थस्यारामस्य पूर्व्वस्य तु वा।

आर्द्धप्रस्थिकम्, अर्द्धप्रस्थिकम् ॥२६॥

२७। नञः शुचीश्वर-क्षेत्रज्ञ-कुशल-निपुणादीनां पूर्व्वस्य तु वा।

उत्तरपदस्य वृद्धिरेव—आशौचम्, अशौचम्, आकौशलम्, अकौशलम्, आनैपुणम्, अनैपुणम्। अनीश्वराक्षेत्रज्ञौ तत्पुरुषावेव ब्राह्मणादित्वाद्भाव-यणन्तौ—आनैश्वर्य्यम्, अनैश्वर्य्यम् ॥२७॥

२८। नञो यथायथ-यथापुरयोः पर्य्यायेण।

अयाथातथ्यम्, आयातातथ्यम् ॥२८॥

वृष्णीन्द्रो निवृत्तः।

२९। संसारस्य हरौ भगवति।

प्रभुरयम् ॥२९॥

३०। नान्तस्य, न त्वनीपोः।

आग्निशर्म्मिः। नेह—सामनः, सुप्रेम्नी ॥३०॥

३१। अह्नष्ट-खरामयोरेव।

द्व्यहः। 'ख ईनः', द्व्यहीनः। नियमान्नेह—आह्निकम् ॥३१॥

३२। इनो नानपत्याणि, न चेपि, न च गाथि-विदथि-केशि-गणि-पणि-सत्सङ्गादीनाम्।

मैधाविनं कर्म्म, मेधाविनी, गाथिनः पुत्रः, एवं पाणिनः, साग्विणः। इह तु स्यात्—मैधावः पुत्रः ॥३२॥

३३। मनश्च न तयोर्न च वर्म्मणः।

वैष्णुशर्म्मणं कुलम्, सुनाम्नी, वैष्णुवर्म्मणः पुत्रः। इह तु स्यात्—वैष्णुशर्म्मः पुत्रः ॥३३॥

३४। सब्रह्मचार्य्यादिः समूहाद्यणि च, न त्वीपि।

संसारहर इत्येव। साब्रह्मचारम्। नेह—सब्रह्मचारिणी। सब्रह्मचारिन्, पीठसर्पिन्, कलापिन्, कुथुमिन्, तैत्तिलिन, जाज्वलिन्, लाङ्गलिन्, शिलालिन्, शिखण्डिन्, शूकरसद्मन्, सुपर्व्वन् इति गणः। 'न त्वीपि' इति किम्? सुपर्व्वणी ॥३४॥

३५। शुनः सङ्कोच-विकारयोरेव।

शौवः सङ्कोचः, शौवं मांसम् ॥३५॥

३६। अश्मनो विकारे वा।

आश्मः, आश्मनः। तस्येदमपि आश्मन एव ॥३६

३७। चार्म्मः कोषे।

साधुः। अन्यत्र चार्म्मणः ॥३७॥

३८। औक्षमनपत्ये।

साधु। अपत्ये तु—औक्ष्णो वत्सः ॥३८॥

३९। आत्माध्वनोरखरामे।

प्रत्यात्मम्, प्राध्वम्। नेह—आत्मनीनः, अध्वनीनः ॥३९॥

४०। अनो ये तु भावकर्म्मणोरेव।

राज्ञो भावः कर्म्म वा—राज्यम्। नेह—राज्ञोऽपत्यं राजन्यः। 'न ते ये' (वि० प्र० ८९) इति निषेधादनोऽरामहराभावश्च, अध्वानमलं गामी—अध्वन्यः ॥४०॥

४१। यूनो, न तु भावविहितेऽणि वुरामे च

यौवः। नेह—यौवनं, यौवनकम्। वुरामस्त्वक उच्यते ॥४१॥

४२। ब्राह्मो न तु जातौ।

तस्यान्तु ब्राह्मणः ॥४२॥

४३। कार्म्मः कर्म्मशीले।

अन्यत्र कार्म्मणः ॥४३॥

४४। आथर्व्वनिकादयश्च।

साधवः। अत्राथर्व्वन् कथादौ—आथर्व्वणिकः जिह्माशिन् शुभ्रादौ—जैह्माशिनेयः, दण्डिन् हस्तिन् नडादौ—दाण्डिनायनः, हास्तिनायनः, वासिन् तिकादौ—वासिनायनिः। भ्रूणहन्, धीवन्, भावे—भ्रौणहत्यं, धैवत्वम्। एते च तत्तत्प्रत्ययार्थं पठिष्यन्ते ॥४४॥

४५। शिरसः शीर्षोऽणि।

स्थौलशीर्षम् ॥४५॥

४६। शिरसः शीर्षन् ये, केशे तु वा।

शिरसि भवः शिर्ष्यण्यः। केशे तु शिरस्यश्च ॥४६॥

४७। अन्तिकस्य कादेर्हरस्तसि वा तादेश्च तमे।

अन्तितः, अन्तिकतः, अन्तमः, अन्तितमः अन्तिकतमः ॥४७॥

४८। अव्ययस्यारादादिवर्ज्जम्।

संसारहरः। सायम्प्रातिकः, पौनःपुनिकः। नेह—आरातीयः, शाश्वतः, शाश्वतिकः ॥४८॥

संसारहरो निवृत्तः।

४९। अ-इद्वयस्य हरः।

'भगवति' इत्यनुवर्त्तते। 'विष्णुजनात्' (त० प्र० ५५) इति यस्य हरो वक्ष्यते। गार्ग्यः, गार्ग्यी। बलेरयम्—बालेय इत्यादि। एवम् अस्यापत्यम्—इः ॥४९॥

५०। लक्ष्मीप्रत्ययस्य महाहरस्तद्धितमहाहरे

आमलक्याः फलम्—आमलकम्। तद्धितेति किम्? गार्ग्याः कुलम्—गार्गीकुलम्। महाहरेति किम्? गार्गीत्वम्। 'तद्धितमहाहरे' इति परसप्तमी तस्मात्, अवन्ती, कुन्ती, कुरुरित्यत्र कुर्व्वादेर्ण्यस्य, 'अवन्तिकुन्ति' (त० प्र० ३१४) इत्यादिना महाहरस्तु लक्ष्मीप्रत्ययात् पूर्व्व इति न तस्य महाहरः ॥५०॥

५१। उद्वयस्य गोविन्द, न तु धातोर्न च स्त्रीप्रत्यये।

माधवः, बाभ्रव्यः। धातस्तु 'सुधीभुवोरियुवौ' (वि० प्र० ५२) इत्युव्—स्वायम्भुवम्। 'वर्षापुनट्टन्' (वि० प्र० ५३) इति—पौनर्भ्वम्। एवं खालप्वम्। कथं पौनर्भवम्? 'पुनर्भव'-शब्दोऽप्यस्ति ॥५१॥

५२। उद्वयस्य हरो ढरामे, न तु कद्रूपाण्ड्वोः

'ढराम एयः', कामण्डलेयम्। नेह—काद्रवेयः ॥५२॥

५३। जनपद-पाण्डोश्च नृसिंहये।

पाण्ड्यः ॥५३॥

५४। सारवैक्ष्वाकहिरण्मयानि।

साधूनि। सरय्वा इदम्—सारवम्। इक्ष्वाकोरपत्यम्—ऐक्ष्वाकः। हिरण्यस्य मयटि हिरण्मयम् ॥५४॥

५५। विष्णुजनात्तद्धितयस्य हरो भगवत्यारामं विना, तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि,

सूर्य्यागस्त्ययोरीपि छे च, मत्स्यस्येपि, न राजन्यस्य बुरामे, मनुष्यस्येपि च ।

गार्गी । विष्णुजनादिति किम् ? कैकेयी । तद्धिते किम् ? वैद्यस्य भार्य्या—वैद्यी । 'आरामं विना किम् ? गार्ग्यायण । तिष्येति—तैषः, पौषः । सूर्य्येति—सूर्य्यस्य भार्य्या सूरी । एवम् अगस्ती । सूर्य्याददेवता-भार्य्यायां णीप् वक्ष्यते (त० प्र० २२३) सूरीयः । नामधेयत्वाच्छैषिकश्छः 'छ ईयः' एवम् अगस्तीयः । कथं सौरी आगस्ती, सौरीयम्, आगस्तीयम्' ? सूर्य्यादेरणन्ताच्छेपौ, अरामहरः, ततः सूर्य्यस्यैव यरामोऽयमिति तस्यापि हरः । मत्स्येति—मत्सी, नेह—'मात्स्यो न्यायः प्रवर्त्तते' (कामन्दकीयनीतिसारः २।४०) * । न राजेति—राजन्यकम् । मनुष्येति—मानुष्यकं, मानुष्यी ।।५५।।

५६ । ईराम एवानपत्य-यस्य हरः ।

तेन साङ्काश्यकः ।।५६।।

५७ । षन्-हन्-धृतराज्ञामेवानन्तानामण्यरामहरः ।

औक्ष्णः, वार्त्रघ्नः, धार्त्तराज्ञः । नेह—सामनः ।।५७

५८ । अद्वय-माभ्यां तदुद्धवाभ्यां विष्णुदासाच्च मतोर्मो वो, न तु यवादेः । *

गुणवान्, मालावान्, किम्वान्, पयस्वान्, भास्वान्, लक्ष्मीवान् । कुमुद्वान् । नेह—बुद्धिमान् । न तु यवादेः—यवमान्, ऊर्म्मिमान्, भूमिमान्, कृमिमान् । 'तसाभ्यां मत्वर्थीया' इति गरुत्मान्, हरित्मान्, विदुष्मान्—एते यवादिषु ज्ञेयाः ।।५८।।

५९ । मरुत्वान् ककुद्मान् ।

साधू । एवं ककुद्मती ।।५९।।

६० । अहीवत्यादयः संज्ञायाम् ।

साधवः । अहीवती, कपीवती, मुनीवती, मणीवती ।।६०।।

६१ । अष्ठीवदादयश्च ।

अष्ठीवान्, 'अस्थि' शब्दस्य 'अष्ठी'भावः । अष्ठीवान्नाम ग्रामः । चक्रीवान्, 'चक्र'शब्दस्य 'चक्री' भावः । चक्रीवान् गर्द्दभः । कक्षीवान् इत्यादि ।।६१

६२ । चतुर्भुजान्तादिसन्तात्तान्ताद्दोषश्च ठस्य कः, न तु शश्वदादेः ।

नैषादकर्षुकः, पैतृकः, सार्पिष्कः, धानुष्कः, औदश्वित्कः, दोर्भ्यां तरति—दौष्कः । शश्वदादेस्तु—शाश्वतिकः ।।६२।।

६३ । भ्वादेशादिमेयोसोस्त्वादिहरः ।

'बहोर्भूः' (आ० प्र० ५४६) भूमा—भूयान् । 'भूतो युट्' (आ० प्र० ५४७) इष्ठे—भूयिष्ठः ।।६३।।

६४ । ऋरामस्य रो ये ।

पित्र्यम् ।।६४

६५ । अनन्तस्य वामनः के, न तु कपि, आपः कपि वा ।

ज्ञका, गोपिका, वधुका, ग्रामणिकः, नैषादकर्षुकः आपः—बहुरमकः, बहुरमाकः ।।६५।।

६६ । तर-तम-कल्प-चेलेषु ब्रुवादिष्विव वामनः ।

ततो ब्राह्मणिब्रुवेत्यादिवद् ब्राह्मणितरत्याद्युहरणीयम् ।।६६।।

६७ । सर्व्वाव्ययाभ्यामेकवर्ज्यं संख्यासंख्यातैक-देशेभ्यश्चाहःशब्दस्याह्नः समाहारवर्ज्जे टे ।

सर्व्वाह्णः, निरह्णः । द्वयोरह्नोर्भवः, भवार्थप्रत्ययस्य लुक्, द्व्यह्नः, संख्याताह्नः, पूर्व्वाह्णः । एकवर्ज्जमिति किम् ? एकाहः । समाहारवर्ज्जमिति किम् ? द्व्यहः ।।६७।।

६८ । संख्या-वि-सायेभ्योऽह्नस्याहन् वा ङौ ।

द्व्यह्ने, द्व्यहनि, व्यह्ने, व्यहनि, 'ईङ्योस्तु वा' (वि० प्र० ८९) द्व्यह्नि । एवं सायादपि १ ।।६८

---

* परस्परामिषतया जगतो भिन्नवर्त्मनः । दण्डाभावे परिध्वंसी 'मात्स्यो न्यायः प्रवर्त्तते ।। (कामन्दकीय-नीतिसार २।४०)

* अवर्णान्तान्मकारान्तादवर्णोपध-मोपदात् । पञ्चमभिन्न-वर्गान्तान्मतुपो वतुरिष्यते ।। १ । व्यह्नि एवं सायादपि (क)

६९। प्रत्ययस्थात् कात् पूर्व्वस्यारामस्येराम आपि, न तु स्त्राद्यन्तादापि, क्षिपकादेश्च न।

णकः—कारिका, पाचिका। प्रकारार्थे कः—जटिलिका। प्रत्ययस्थादिति किम्? शक्नोतीति शका। न त्विति—बहुपरिव्राजका काशी। स्वाद्यन्तत्वमत्र भूतपूर्व्वां गतिमाश्रित्य। बहुशर्म्मिका विष्णुभक्तिः इत्यत्र तु केवलाद्वक्ष्यमाण-कवन्ता-देवापो, न तु स्वाद्यन्तादितीरामः स्यादेव ॥६९॥

७०। ममक-नरकयोश्च वक्तव्यम्।

ममेयमित्यण्, ममकादेशः अजादिपाठात्, मामिका। नरान् कायति—नरिका, कै शब्दे। नरान् कामयते इति, डप्रत्ययादिति च वर्द्धमानः ७०

७१। त्यण्त्ययोश्च।

वक्ष्यमाणविकल्पापवादः। दाक्षिणात्यिका, इहत्यिका। क्षिपकादेस्तु—त्रिपका, ध्रुवका, चटका उपत्यका, अधित्यका, देवदत्तका ॥७१॥

७२। उत्तरपदलोपे च न।

देवदत्तैव—देवका ॥७२॥

७३। तारका नक्षत्रे।

अन्यत्र तारिका ॥७३॥

७४। अष्टका पितृदैवत्ये काले च।

अन्यत्र अष्टिका खारी ॥७४॥

७५। वर्णका प्रावरणविशेषे।

अन्यत्र वर्णिका। साधवः ॥७५॥

७६। यत्तददसाश्च।

यका, सका, असकौ, यकाभ्यां, तकाभ्यां, अमुकाभ्यां ॥७६॥

७७। आशिषि २।

जीवतात्, जीवका, नन्दका। क्षिपकादिराकृतिगणः ॥७७॥

७८। सूतकादीनां वा।

सूतका, सूतिका, वर्त्तका, वर्त्तिका—शकुनिः पुत्रका, पुत्रिका, सत्पुत्रका, सत्पुत्रिका, वृन्दारका वृन्दारिका ॥७८॥

७९। यकपूर्व्वस्यापश्च वा।

इभ्यका, इभ्यिका, चटकका, चटकिका। आप इति किम्? शशकायते क्विप्, ततः कः—शशकिका नित्यम् ॥७९॥

८०। धात्वन्तयकपूर्व्वस्यापो नित्यम्।

सुनायिका। सुष्ठु पच्यते सुपाकिका यवागूः ॥८०॥

८१। द्वयेषयोश्च वा।

द्वके, द्विके, एषका, एषिका। नञ्पूर्व्वयोस्तु समासे सति जातस्वादित्वान्न—अद्वके, अनेषका ॥८१॥

८२। भस्त्राजाज्ञास्वानां जातस्वादीनामपि वा

भस्त्रका, भस्त्रिका, अजका, अजिका, ज्ञका, ज्ञिका, स्वका, स्विका, अभस्त्रकेत्यादि च ॥८२॥

८३। स्वभावलक्ष्मीतः कपूर्व्वस्यापो वामनश्च वा आपि।

रमाका, रमिका, रमका। एवम् अरमाका इत्यादि। स्वभावेति किम्? शोभनिका। तथा अविद्यमाना रमा यस्याः सा, अल्पत्वादौ को वाच्यः (त० प्र० १०४९)—अरमिका, बहुरमिका, अतिरमिका ॥८३॥

इरामो निवृत्तः।

८४। वाच्यलिङ्गलक्ष्मीः पुरुषोत्तमवत् त्रादिषु न तूङ्।

त्र-तसौ, तरतमौ, चरट् जातीयौ, कल्पदेश्यदेशीया रूपपाशौ—त्रादयः। सर्व्वस्याम्—सर्व्वत्र। तस्यास्ततः। एवं वैष्णवतरा, वैष्णवतमा, वैष्णवचरी, वैष्णवजातीया, वैष्णवकल्पा, वैष्णवदेश्या, वैष्णवदेशीया वैष्णवरूपा वैष्णवपाशा ॥८४॥

८५। बह्वल्पार्था शसि।

२। आशिष्यकश्च (क)

बह्वीभ्यो देहि—बहुशो देहि। एवमल्पशः ॥८५

८६। गुणवचनी त्वतापोः।*

पट्व्या भावः—पटुत्वं, पटुता। गुणवचनीति किम्? कठीत्वम्। कथं 'व्यभिचारित्वं युक्तीनाम्' इति? सामान्योपक्रमेण। कातन्त्रविस्तरे तु विशेषः गुणग्रहणेऽत्र जातिसंज्ञयोर्निवृत्तिः क्रियते, न तु पटुशुक्लादि-विशेषप्रतिपत्तिः, तेन पाचिकायाः पाचकत्वं, मद्रिकायाः, मद्रकत्वम्, अनुकूलिकायाः, अनुकूलकत्वम्, आक्षिक्या, आक्षिकत्वं, द्वितीयायाः, द्वितीयत्वं, पञ्चम्याः, पञ्चमत्वं, माथुर्य्याः, माथुरत्वं, श्रौघ्न्याः, श्रौघ्नत्वं, चन्द्रमुख्याः, चन्द्रमुखत्वम्। दृश्यते च—'कामिनां मण्डनश्रीर्व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन' (शिशुपालबधम् ११।३३) 'कन्याः श्रियामनुपभोगनिरर्थकत्वम्' (शिशुपालबधम् ५।२८) 'बभौ १ बहुच्छत्रतया पताकिनी' (शिशुपालबधम् १२।३३) 'व्याकोशकोकनदतां दधते नलिन्यः' (शिशुपालबधम् ४।४६) 'इयेष सा कर्त्तुमबन्ध्यरूपताम्' (कुमारसम्भवम् ५।२) 'सा मुमोच रतिदुःखशीलताम्' (कुमारसम्भवम् ८।१३) 'यदङ्गनारूप-सरूपतायाः' (शिशुपालबधम् ३।४२) 'निरीक्ष्य मेने शरदः कृतार्थता' (किरातार्ज्जुनीयम् ४।९) 'वपुरन्वलिप्त परिरम्भसुखव्यवधानभीरुकतया न बधूः' शिशुपालबधम् ६।५१) 'भर्त्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः' (शाकुन्तलम् ४।१८) 'शिष्यतां निधुवनोपदेशिनः शङ्करस्य रहसि प्रपन्नया:' (कुमारसम्भवम् ८।१७) 'बद्धकोपविकृतावपि रामा चारुतामभिमतामुपनिन्ये' (किरातार्ज्जुनीयम् ६।६४) 'धृष्टता रहसि भर्त्तृषु ताभिः' (शिशुपालबधम् १०।७१) 'क्षीवतामुपगतास्वनुवेलम्' ((शिशुपालबधम् १०।३४) इति। जातिसंज्ञायोस्तु व्यावृत्तिः। कठीत्वं गार्गीत्वं, दत्तात्वम्। त्वतापोरिति किम्? पट्वीमयम्। अनूङित्येव, पङ्गुत्वम् ॥८६॥

८७। भगवति, न तु ढरामे।

हस्तिनीनां समूहः—हास्तिकम् ॥८७॥

८८। भवत्याष्ठच्छरामयोः।

भवत्याश्छात्राः—भावत्काः, भवदीयाः ॥८८॥

८९। तिथटि च दृश्यते।

बह्वीनां पूरणी—बहुतिथी ॥८९॥

निवृत्तं पुरुषोत्तमवत्।

९०। वामनात् सस्य षस्त्वादौ, न त्वाख्यातात्।

यजुष्ट्वम्। वामनात् किम्? गीस्त्वं, धूस्त्वम् आख्यातात्—भेजुस्तराम् ॥९०॥

९१। पुंस्त्वमित्यादौ षत्वनिषेधो वाच्यः

पुंस्त्वं, पुंस्ता ॥९१॥

उक्तानि तद्धितकार्य्याणि।

९२। अथ तद्धिताः।

वासुदेवोऽयम् ॥९२॥

९३। तत्र समासान्ताः।

महाविभुरयम् ॥९३॥

९४। अरामः।

प्रभुरयम् ॥९४॥

९५। ऋक्पथिपूरपः।

अरामः समासान्तः स्यात्। अर्द्धमृचः, पुंस्त्वम्—अर्द्धर्च्चः। 'नान्तस्य' (त० प्र० ३०) इति संसारहरः मथुरापथः। पुरः कृष्णपुरुषे ब्रह्मण्यभिधानम्—यदुपुरम्। त्रिराम्यान्तु—द्विपुरी, त्रिपुरी। अपः—विमलापं सरः ॥९५॥

९६। अनृचो माणवके, बह्वृचश्चरणविशेषे साधू। न त्वन्यत्र—अनृक्कं साम, बह्वृक्कं सूक्तम्, त्रिपुरन्तु क्वचित्। 'बह्वपानि सरांसि'। कथं 'बह्वाम्पि'? समासान्तविधेरनित्यत्वात्। गङ्गाप इत्यादिकं पुंस्येकवचनं चेति पद्मनाभः ॥९६

९७। अनक्षस्य धुरः।

द्विधुरं, कृष्णधुरा। अक्षस्य तु अक्षधूः ॥९७॥

---

* सत्त्वे निविशतेऽपैति पृथग्जातिषु दृश्यते। उत्पादनीयो नित्यश्च सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुणः॥

१। शिशुपालबधे (१२।३३) 'बभौ' इत्यत्र 'अभूद्' इति पाठो दृश्यते।

९८। प्रत्यन्ववेभ्यः सामलोमभ्याम्।

प्रतिसामं, प्रतिलोमम् ॥९८॥

९९। संख्यातो नदीगोदावरीभ्याम्।

द्विनदं, सप्तगोदावरम् ॥९९॥

१००। संख्याकृष्णपाण्डूदग्भ्यो भूमेः।

दशभूमो देशः, कृष्णभूमः, पाण्डुभूमः, उदग्भूमः

१०१। अक्ष्णोऽप्राण्यङ्गे।

गवाक्षः पुंसि। प्राण्यङ्गे तु—गवाक्षि ॥१०१॥

१०२। ब्रह्म-राज-हस्ति-पल्येभ्यो वर्च्चसः

ब्रह्मवर्च्चसम् ॥१०२॥

१०३। अवसमन्धेभ्यस्तमसः।

अवतमसम्, 'क्षीणेऽवतमसं तमः' (अमरकोषः १।७।३) ॥१०३॥

१०४। निःश्वोभ्यां श्रेयसः।

निःश्रेयसं, श्वःश्रेयसम्—शिवं, भद्रमिति ॥१०४

१०५। श्वसो वसीयसः।

श्वोवसीयसम् ॥१०५॥

१०६। अन्ववतप्तेभ्यो रहसः।

अनुरहसम् ॥१०६॥

१०७। प्रादेरध्वनः।

प्रगतोऽध्वानम्—प्राध्वः, दुरध्वः ॥१०७॥

इति सामान्यसमासान्तः।

१०८। जातमहद्वृद्धेभ्य उक्ष्णः श्यामरामे

जातोक्षः ॥१०८॥

१०९। द्वित्रिभ्यामायुषस्त्रिराम्याम्।

द्व्यायुषं, त्र्यायुषम् ॥१०९॥

११०। कृष्णपुरुषे।

प्रभुरयम् ॥११०॥

१११। संख्याव्ययाभ्यामङ्गुलेः।

अराम इत्यनुवर्त्तते। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्येति तद्धितार्थे त्रिरामी, तद्धितश्च मात्रट् (त० प्र० ८८४) तस्य लुक् (त० प्र० ८८५) च वक्ष्यते। द्व्यङ्गुलम्, निर्गतमङ्गुलिभ्यः—निरङ्गुलम् ॥१११॥

११२। पुरुषादायुषः।

पुरुषायुषम् ॥११२॥

११३। वर्षा-दीर्घ-संख्यात-सर्व्व-पुण्यैकदेशाव्यय-संख्याभ्यो रात्रेः।

वर्षारात्रः, एकदेशादयस्तद्विशेषाः, पूर्व्वरात्रः, नीरात्रः, पञ्चरात्रः। रात्राह्नाहाः, पुंस्येव। ॥११३॥

अरामो निवृत्तः।

११४। टित् केशवसंज्ञः।

अथ केशवारामः। प्रभुरयम्। अयमेव 'ट' इत्युक्तः ॥११४॥

११५। राजाहःसखिभ्यः।

केशवारामः स्यात्। यदुराजः, राजानमतिक्रान्ता—अतिराजी ॥११५॥

११६। न तु राज्ञ्याः।

यदुराज्ञी—'अह्नष्टख' (त० प्र० ३१) इति द्व्यहः कृष्णसखः, अतिसखी ॥११६॥

११७। गोरतद्धितलुकि।

केशवारामः स्यात्। पञ्चगवम्। स्त्रीगवी। तद्धितलुकि तु पञ्चभिर्गोभिः क्रीतः—पञ्चगुः पटः ॥११७॥

११८। ग्रामकौटाभ्यां तक्ष्णः।

केशवारामः स्यात्। ग्रामतक्षः, कौटतक्षः—स्वतन्त्रः ॥११८॥

११९। अतिगोष्ठाभ्यां शुनः।

अतिश्वः, गोष्ठश्वः ॥११९॥

१२०। मृगपूर्व्वोत्तरेभ्यः सक्थ्नः।

मृगसक्थम् ॥१२०॥

१२१। उपमानाभ्यां ताभ्यामप्राणिनि

फलकः श्वेव—फलकश्वः, फलकसक्थम् ॥१२१

१२२। उरसः प्रधानार्थात्।

हस्त्युरसं, गवोरसम् ॥१२२॥

१२३। कुमहद्भ्यां ब्रह्मणो वा।

कुब्रह्मः, कुब्रह्मा ॥१२३॥

१२४। काशिब्रह्मादयो देशे।

साधवः ॥१२४॥

कृष्णपुरुषो निवृत्तः।

१२५। त्रिराम्याम्।

प्रभुरयम् ॥१२५॥

१२६। नावः।

केशवाराम इत्येव स्यात्। द्विनावं, द्विनावप्रियः द्विनावरूप्यं काष्ठम् ॥१२६॥

१२७। अर्द्धपूर्व्वाच्च।

अयन्तु श्यामरामः। अर्द्धनावी, अर्द्धनावञ्च, ब्रह्मत्वं, लोकात्। पुंस्त्वमपीति जुमरः—अर्द्धनावः ॥१२७॥

१२८। खार्य्या वा।

द्विखारं, द्विखारि ॥१२८॥

१२९। द्वयञ्जल-त्रयञ्जले।

साधुनी। त्रिराम्यामित्येव। द्वयोरञ्जलिः द्वयञ्जलिः ॥१२९॥

१३०। नावादेर्न तद्धितमहाहरे।

पञ्चभिर्नौभिः क्रीतः पटः—पञ्चनौरित्यादि ॥१३०॥

त्रिरामी निवृत्ता।

१३१। रामकृष्णे।

प्रभुरयम् ॥१३१॥

१३२। ह-ष-द-चवर्गेभ्यः समाहारे।

केशवारामः स्यात्। कंसकंसद्रुहं, केशिकेशिद्विषम् भक्तिसम्विदं, लक्ष्मीवाचम् ॥१३२॥

१३३। धेन्वनडुह-स्त्रीपुंसादयश्च।

साधवः। आदिग्रहणात्—ऋग्यजुषम्, ऋक्सामे, अक्षिभ्रुवम्, दारगवम्, उर्व्वष्ठीवं, पदष्ठीवं, नक्तन्दिवम्, अहोरात्रौ, रात्रिन्दिवम्। अहर्द्दिवन्तु प्रतिदिनमित्यर्थः ॥१३३॥

रामकृष्णो निवृत्तः।

१३४। अव्ययीभावे।

प्रभुरयम् ॥१३४॥

१३५। शरदादेः।

केशवारामः स्यात्। उपशरदम्, उपविपाशम्, उपदिवम्, उपदृशम्, प्रतिदिशं, प्रतिदृशम्, उपचतुरम् ॥१३५॥

१३६। प्रतेरुरसः सप्तम्यर्थे।

उरसि वर्त्तते—प्रत्युरसम् ॥१३६॥

१३७। समनुप्रतिभ्योऽक्ष्णः।

समक्षम, अन्वक्षं, प्रत्यक्षम्—कृताव्ययीभावे निपात्यन्ते। अक्ष्णः परम्—परोक्षम् ॥१३७॥

१३८। नदी-गिरी-पौर्णमास्याग्रहायणीभ्यो वा।

उपनदम्, उपनदी ॥१३८॥

१३९। उपशुनोपजरस-सरजसानि, अनुगवमायामे।

साधूनि ॥१३९॥

१४०। अनश्च।

उपशार्ङ्गधन्वम् ॥१४०॥

१४१। ब्रह्मणि तु वा।

उपकर्म्मम्, उपकर्म्म ॥१४१॥

१४२। विष्णुदासाद्वा।

उपमुरभिदम्, उपमुरभित् ॥१४२॥

अव्ययीभावो निवृत्तः।

१४३। स्वतिभ्यां न तौ प्रत्ययौ प्रशंसायां किमस्तु क्षेपे।

तौ पूर्व्वोक्तौ त्रामकेशवारामौ। शोभना ऋक् स्वृक्। एवमतृचक्, सुराजा, अतिराजा, किंपूः, किंराजा ॥१४३॥

१४४। नञ्कृष्णपुरुषाच्च न, पथस्तु वा।

अनृक्, अराजा, अपथम्, अपन्थाः ॥१४४॥

१४५। पीताम्बरे।

विभुरयम् ॥१४५॥

१४६। सङ्ख्येयादच्, न तु वहोः।

उपदशाः ॥१४६॥

१४७। विंशतेस्तिहरश्चिति।

आसन्नविंशाः, द्वित्राः, पञ्चषाः, लक्षकोटाः, वहस्तु—उपवहवः ॥१४७॥

१४८। अव्ययादिसङ्ख्यान्तात् कृष्णपुरुषादच्।

त्रिंशतो निर्गतः—निस्त्रिंशः, निश्चत्वारिंशः ॥१४८

१४९। साङ्गाभ्यामक्षिसक्थिभ्याम्।

मण्डूकप्लुतया केशवाराम एव। कमलाक्षः कमलाक्षी, दीर्घशक्थः। अस्वाङ्गत्वे तु—दीर्घशक्थि शकटम्। स्थूलाक्षिः इक्षुः। अद्रवं मूर्त्तिमदविकारजं प्राण्यङ्गम्—'स्वाङ्गम्' ॥१४९॥

१५०। अङ्गुलेर्दारुणि।

द्व्यङ्गुलं दारु ॥१५०॥

१५१। द्वित्रिभ्यां मूर्द्ध्नः।

द्विमूर्द्धः ॥१५१॥

केशवारामो निवृत्तः।

१५२। अरामः।

प्रभुरयम् ॥१५२॥

१५३। नञ्-सु-दुर्भ्यो हलि-शक्थिभ्यां वा

अहलः, अहलिः, असक्थः, असक्थिः ॥१५३॥

१५४। लक्ष्मीपूरणप्रत्ययात् प्रमाणीशब्दाच्च

कृष्णापञ्चमा रात्रयः; वैष्णवीप्रमाणाः शक्तयः ॥१५४॥

१५५। नाभेः संज्ञायाम्।

पद्मनाभः ऊर्णनाभिरित्येके ॥१५५॥

१५६। गोधूलः कालभेदे।

गोधूलिरित्यसाधुरिति पशुपतिः ॥१५६॥

१५७। नक्षत्रेभ्य नेतुः।

मृगो मृगशिरो नेता यासां ताः—मृगनेत्रा रात्रयः ॥१५७॥

१५८। त्रि-नञ्-सु-व्युपेभ्यश्चतुरः।

त्रिगुणिताश्चत्वारो यस्मिन्—त्रिचतुरः, अचतुरः ॥१५८॥

१५९। अन्तर्वहिर्भ्यां लोम्नः।

अन्तर्लोमः, वहिर्लोमः ॥१५९॥

१६०। प्रादेर्नासिकाया नस् च।

प्रणसम्, उन्नसं मुखम् ॥१६०॥

१६१। स्थूलेतरात् संज्ञायाम्।

द्रुणसः, गोनसः। नेह—स्थूलनासिकः ॥१६१॥

१६२। कालायस-महानसादयश्च संज्ञायाम्

साधवः। खरादिपूर्व्वाया नासायाः खरणसः खुरणसो, विनस इत्येते; खरणाः, खुरणाः, विग्र इत्येते वा निपात्यन्ते ॥१६२॥

१६३। सुप्रातादयश्च।

साधवः। शोभनं प्रातरस्य—सुप्रातः। एवं सुश्वः सुदिवः। शारिरिव कुक्षिरस्य—शारिकुक्षः। चतस्रोऽश्रयोऽस्य—चतुरश्रः। एणीपदः ॥१६३॥

अरामो निवृत्तः।

१६४। नञ्-सु-दुर्भ्यः प्रजाया असिरल्पाच्च मेधायाः।

अप्रजाः, सुप्रजाः, अल्पमेधाः, अमेधाः ॥१६४॥

१६५। सूत्-पूति-सुरभिपूर्व्वाद्गन्धादिरामः अल्पार्थात्, उपमानपूर्व्वाच्च।

सुगन्धि पुष्पम्, उद्गन्धि। अल्पार्थादेः—घृतगन्धि भोजनम्, पद्मगन्धि हरेर्मुखम्। समदेतत्व एवेष्यते, नेह—सुगन्धो गन्धवाहः, 'भग्नबालसहकारसुगन्धौ' इति माघे (१०।३) ॥१६५

१६६। धर्म्मात् केवलादनिः।

वैष्णवधर्म्मा। केवलात् किम्? तदन्तत्वे तु नेष्यते। परमो वैष्णवधर्म्मोऽस्य—परमवैष्णवधर्म्मः 'साक्षात्-कृतो धर्म्मो यैस्ते—साक्षात्कृतधर्म्माणो मुनयः' इति भाष्यम्। जयादित्यस्त्वत्र (काशिका ५।४।१२४) न मन्यन्ते ॥१६६॥

१६७। सुहरित-तृण-सोमेभ्यो जम्भादनिर्व्वा

जम्भो भोजनं, दन्तभेदश्च, सुजम्भा, सुजम्भः ॥१६७॥

१६८। दक्षिणेर्मा व्याधव्रणितदक्षिणाङ्गे

साधुः ॥१६८॥

१६९। कप्।

प्रभुरयम् ॥१६९॥

१७०। ऋराम-गोपी-सर्पिरादिभ्यः।

ऋरामात् – नन्दपितृकः, गोपीसंज्ञत्वात्—सगोपीकः, सगोपबधूकः। प्रियसर्पिष्कः, श्रीवत्सोरस्कः, मुक्तपानत्कः। एवं दधि-मधु-शालयः ॥१७०॥

१७१। बुद्धे तु मातृकस्य मातादेशो वाच्यः पूज्यपुत्रे वाच्ये।

हे यशोदामात कृष्ण, नेह—'हे क्षितिमातृक नरकासुर' ॥१७१॥

१७२। नञोऽर्थात्।

अनर्थकम् ॥१७२॥

१७३। इनो लक्ष्म्याम्।

धृतशार्ङ्गिका, बहुवाग्मिका वैष्णवश्रेणी। प्रियदण्डेनेति चिन्त्यम्। केवलपूर्व्वत्व एव स्यात्। नेह यथा—'प्लवङ्गनखकोटिभिः क्षतदृढोरसो राक्षसाः' इति। कथं प्रियन्सा ? प्रत्ययाश्रितत्वेन वहिरङ्गस्य तिसृभावस्य कप् प्रत्यसिद्धत्वात् ॥१७३

१७४। लक्ष्मीः पुमान् पयो नौरनड्वान् इत्येभ्य एकवचनान्तेभ्यः, द्विवचनान्तादिभ्यस्तु वा।

सुलक्ष्मीकः, हंसानडुत्कः, द्विलक्ष्मीः, द्विलक्ष्मीकः, बहुलक्ष्मीः, बहुलक्ष्मीकः ॥१७४॥

१७५। चितेस्त्रिविक्रमश्च।

एकचितीकः, द्विचितीकः ॥१७५॥

१७६। असमासान्तविधेर्व्वा, न तूङि कार्य्ये

बहुरमाकः, बहुरमः, दृष्टशार्ङ्गी, दृष्टशार्ङ्गिकः। समासान्तविधेस्तु—कमलाक्षः। न तूङि कार्य्ये—वामोरूः। कृते तु 'गोपी'संज्ञत्वात् कप्—प्रियगोपवामोरूकः ॥१७६॥

१७७। न दक्षिणपूर्व्वादिषु।

दक्षिणपूर्व्वा ॥१७७॥

१७८। न स्वाङ्गाभ्यां नाडीतन्त्रीभ्याम्।

बहुनाडिः कायः, बहुतन्त्री ग्रीवा। अस्वाङ्गे—बहुतन्त्रीका वीणा ॥१७८॥

१७९। न संज्ञायाम्।

कृष्णो देवोऽस्य—कृष्णदेवः ॥१७९॥

१८०। निष्प्रवाणिर्नवपटे।

साधुः ॥१८०॥

१८१। नेयसः।

बहुप्रेयान्, बहुप्रेयसी कृष्णः ॥१८१॥

१८२। न भ्रातुः स्तुतौ।

सुभ्राता रामः ॥१८२॥

उक्ताः समासान्ताः।

अथ लक्ष्मीप्रकरणम्

१८३। नाम्नो लक्ष्म्याम्।

महाविभुरयम्। लक्ष्मीप्रकरणमिदं न प्राचीनास्तद्धिते पठन्ति, वयन्तु नाममयप्रत्ययसादृश्यात् पठितवन्तः ॥१८३॥

१८४। कृष्णादाप्।

'टाप्' पाणिनिः (४।१।४)। रमयतीति पचाद्यच्—रमा। एवं राधा, परमा, ईशा ॥१४॥

१८५। पाद ईप् वा।

'पाच्छब्दस्य' (वि० प्र० ११३) इति भगवती ग्रहणाद्वामनः—द्विपदी, द्विपात् ॥१८५॥

१८६। द्विपदा ऋचि, त्रिपदा गायत्र्याम्

साधू ॥१८६॥

१८७। गिरादेराप् वा।

गिरा, गीः, दिशा, दिक्, क्षुधा, क्षुत्, तृषा, तृट्, उष्णिहा, उष्णिक् इत्यादयः ॥१८७॥

१८८। अन आप् वा पीताम्बरे, मनस्त्वन्यत्रापि वा।

माथुरयज्वे, माथुरयज्वानौ पुर्य्यौ, सुपटिमे, सुपटिमानौ, अतिपटिमे, अतिपटिमानौ गोप्यौ, सीमे, सीमानौ ॥१८८॥

१८९। ईप्।

विभुरयम्। 'ङीप्, ङीष्, ङीन्' पाणिनिः (४।१।५, ४।१।२५, ४।१।७२) ॥१८९॥

१९० ।

ऋरामाच्चतुर्भुजानुबन्धान्नरामादश्वतेर्वाहश्च मन्मातृ-पश्चादिवर्ज्जम् ।

कर्त्री, भगवती, भवती, अतिभगवती, विदुषी, रुक्मिणी, प्राची, कृष्णौही ॥१९०॥

१९१ । यूनो युवतिः ।

साधुः । मनन्तादेस्तु—सीमा । मात्रादिः—माता दुहिता, स्वसः, ननन्दा, याता, तिस्रः, चतस्रः । पश्चादिर्नान्तसंख्या—पञ्च, सप्त, नव गोप्यः । तदन्तत्वेऽपि न—अतिसीमा, अतिमाता काचित् । प्रियपश्चानः, पाण्डवप्रजाः । ङिसाहचर्य्याद् 'ईङ्योस्तु वा' (वि० प्र० ८९) इत्यत्र विष्णुभक्तिरेव गृह्यते, ततो नित्यमेवारामहरः, राज्ञी, शुनी । 'अनञ्पूर्व्वस्य' (वि० प्र० १२७) इत्यादौ सुं विनेति प्रत्ययमात्रं गृह्यते—अर्वती । 'अश्वति' ग्रहणाद्धातोश्चतुर्भुजानुबन्धान्न—हिमालय-स्रत् गङ्गा ॥१९१॥

१९२ । वनो नश्च रः, पीताम्बरे तु वा ।

धीवरी, कृष्णदृश्वरी, बहुकृष्णदृश्वरी, बहुकृष्णदृश्वा मथुरा ॥१९२॥

१९३ । गोपालपूर्व्वस्य तु न तौ ।

भीष्मयुध्वा शिखण्डिनी । कथम् 'अतिशुनी' ? 'सार्थकनिरर्थकयोः सार्थकस्यैव ग्रहणम्' इति न्यायेन प्रत्ययस्यैव वनो ग्रहणात् ॥१९२॥

१९४ । पीताम्बरे ।

प्रभुरयम् ॥१९४॥

१९५ । ऊधसः सो नश्च ।

कुण्डोध्नी, चतुरूध्नी ॥१९५॥

१९६ । सङ्ख्यातो दाम्नो हायनात्तु वयसि

द्विदाम्नी, त्रिहायणी गौः ॥१९६॥

१९७ । श्रन उद्धवहरयोग्याद्वा नैवान्यस्मात्

कृष्णराज्ञी, कृष्णराज्ञ्यौ, पक्षे तु 'श्रन आप् वा' (त० प्र० १८८) इत्याप, पक्षे तस्याप्यप्राप्तिः । कृष्णराजा, कृष्णराजे, कृष्णराजानौ । नेह—सुपर्व्वाणो गोप्यः, 'अन श्राप् वा' (त० प्र० १८८) इति, पक्षे—सुपर्व्वाः । पीताम्बर एव नियमात्—अतिपर्व्वणी हरिभक्तिः ॥१९७॥

१९८ । साङ्गपूर्व्वात् क्तान्तात्, न तु जातादेः ।

ऊरुभिन्नी, शङ्खभिन्नी केशविलूनी, कर्णच्छिन्नी पाणिगृहीति तु भार्य्यायामेव, पाणिगृहीतान्यत्र । जातादेस्तु—दन्तजाता, दन्तकृता, दन्तमिता, सुखादित्वात् क्तस्य परनिपातः ॥१९८॥

१९९ । जातेर्व्वा, न त्वाच्छादनात् ।

सारङ्गजग्धी, सारङ्गजग्धा, पलाण्डुभक्षिती, पलाण्डुभक्षिता, सुरापीनि, सुरापीना । जातेरिति किम् ? मासजाता । आच्छादनात्तु—वस्त्रच्छन्ना । अजातादेरित्येव—वृक्षजाता ॥१९९॥

पीताम्बरो निवृत्तः ।

२०० । परार्थमात्रे ।

प्रभुरयम् । समासे गुणीभूतम्—'परार्थम्' ॥२००॥

२०१ । स्वाङ्गाद्वा, न तु सत्सङ्गोद्धवबहुसर्व्वेश्वरक्रोडादिभ्यो, न च सह-नञ्विद्यमानपूर्व्वेभ्यः ।

अतिकेशी, अतिकेशा, कृष्णकेशी, कृष्णकेशा, सुमुखी, सुमुखा, बहुकेशी, बहुकेशा, प्रयागवेणी । प्राणित्वोपचारात्—सुमुखी प्रतिमा । नेह—सुस्कन्धा सुजघना, सुक्रोडा । खुर-भग-गुद-गलादयः क्रोडादयः सकेशा, अकेशा, विद्यमानकेशा । अस्वाङ्गात्तु—सुज्ञाना, सुशोणिता, सुशोथा ॥२०१॥

२०२ । नासिकोदरौष्ठ-जङ्घा-दन्त-कर्ण-पुच्छ-शृङ्गाङ्ग-गात्रान्त-नेत्र-कण्ठेभ्यो न निषेधः ।

तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका ॥२०२॥

२०३ । पुंस्शब्दात् पाण्डवे नित्यं, कपं विना

प्रियपुंसी, प्रियपुंस्यौ । एवमतिपुंसी । यद्दुषु तु—प्रियपुंस इत्यादि । कपि—प्रियपुंस्का ॥२०३॥

२०४ । कवर-मणि-विष-शरेभ्यः पुच्छाप्

कवरपुच्छी ॥२०४॥

२०५ । उपमानात् पक्षपुच्छाभ्याम् ।

गरुडपक्षी, श्वपुच्छी ।।२०५।।

परार्थो निवृत्तः ।

२०६ । स्वार्थे ।

प्रभुरयम् ।।२०६।।

२०७ । अण् केशवगौरादिभ्यः ।

ईप् स्यात् । अण्—सृष्टिकारी, यादवी । केशवात्—वृन्दावनचरी गायनी, वैनतेयी शार्ङ्गिकी 'पठिता गीता' इत्यत्र तु कृतेटः क्तस्य केशवत्वाभावः, तस्यैव तत्संज्ञत्वात् । गर्गस्य स्त्र्यपत्यं गार्ग्य ईप् इति स्थिते यलोपः गार्गी, वात्सी ।।२०७।।

२०८ । गार्गी-प्रभृतेर्गार्ग्यायण्यादयो वा ।

गार्ग्यायणी, वात्स्यायनी ।।२०८।।

२०९ । माधव्यायन्यादयो नित्यम् ।

गौरादेः – गौरी, कुमारी, किशोरी, तरुणी, वर्करी, कलभी, बटूटी, चिरण्टी । अचरमवयस्काः सर्वे गौरादयः । तथा सखी इत्यादि । अशिश्वी— शिशुना विना । वर्षाभ्वी, पुत्री, कल्माषी, शवली, पिशङ्गी, सारङ्गी, पाण्डरी, मातामही, पितामही, तन्वी, हयी, गवयी, शुनी, चौरी, अनडुही । 'अनड्वाही' इत्येके । तथा नागी स्थूलायां, काली कृष्णायां, नीली वडवौषध्यो, नीली नीला च संज्ञायां, कुण्डी पात्रे, स्थली अकृत्रिमा भूमिः, भाजी श्रपायां, कुशी लौहविकारे, कामुकी मैथुनेच्छौ, गोणी आवपने, कवरी केशवेशे इत्यादि । गौरादिराकृतिगणः । अस्वार्थे तु—प्राप्तवृन्दावनचरा इत्यादि ।।२०९।।

२१० । नृसिंह-नस्नाभ्यां क्वरपश्च ।

ईप् स्यात् । स्त्रैणी, पौंस्नी, इत्वरी ।।२१०।।

२११ । सहशादिभ्यश्च ।

सदृशी, यादृशी ।।२११।।

२१२ । शोण-चण्ड-उपाध्याय-विशालाराल-विकट-विशङ्कट-कृपण-पुराण-उदार-कल्याणादिर्वा गौरादिः ।

शोणी, शोणेत्यादी ।।२१२।।

२१३ । करणपूर्व्वात् क्रीतात् ।

वस्त्रक्रीती । 'कृतसमास एवेष्यते' इति वामनः । आवन्तेन तु समासे – धनक्रीतेत्यादि ।।२१३।।

२१४ । करणपूर्व्वात् क्तादल्पाख्यायाम् ।

चन्दनलिप्ती हरितनुः, अल्पचन्दनलिप्तेत्यर्थः ।।२१४

२१५ । प्रायेणाल्पत्वविवक्षायाम् ।

अल्पं छत्रम् – छत्री । एवं पात्री, मृणाली, घटी दण्डीत्यादि ।।२१५।।

२१६ त्रिराम्याः ।

प्रभुश्चायम्, त्रिरामी, पञ्चाध्यायी, त्रिफली । धात्र्यादिके तु त्रिफलैव ।।२१६।।

२१७ । परिमाणादसंख्याकालविस्ताचित-कम्बल्या-त्तद्धितमहाहरे, काण्डादक्षेत्रे, पुरुषाद्वा ।

क्रीतार्थे तद्धितलुक् । द्वयाढकी । 'परिमाणात्' किम् ? पञ्चाश्वा । असंख्यादेः किम् ? द्विशता, द्विवर्षा, द्विविस्ता इत्यादि, विस्ताचितौ= हेमपरिमाणभेदौ । कम्बल्याम्= ऊर्णापलशतम्, द्विकम्बल्या । काण्डात्— षोडशहस्तप्रमाणवाचि काण्डम्, द्वे काण्डे परिमाणे यस्याः द्विकाण्डी तुलसी क्षेत्रे तु=द्विकाण्डा भूमिः । पुरुषात्=द्विपुरुषी, द्विपुरुषा धात्री ।।२१७।।

त्रिरामी निवृत्ता ।

२१८ । प्रधानस्य सपूर्व्वस्य पत्युर्नश्च वा, पीताम्बरे च ।

सम्पदां पतिः= सम्पत्पत्नी, सम्पत्पतिर्वा लक्ष्मीः । अप्रधाने तु पतिमतिक्रान्ता=अतिपतिः ।।२१८।।

२१९ । अथ पीताम्बरे ।

कृष्णः पतिरस्याः—कृष्णपत्नी, कृष्णपतिः ।।२१९

२२० । सपत्न्यादयः पीताम्बरे ।

समानः पतिरस्याः—सपत्नी । एकपत्नी, वीरपत्नी, भ्रातृपत्नी, पुत्रपत्नी, दासपत्नी, शिशुपत्नी ।।२२०।।

२२१। पत्नी भार्य्यायां यज्ञयोगे, व्यूढायामित्येके, पतिवत्नी सधवायाम्, अन्तर्वत्नी गर्भिण्याम्।

ईवन्ताः, साधवः ॥२२१॥

२२२। तस्य भार्य्येत्यर्थे।

ईप् स्यात्। प्रभुश्चायम्। माधवस्य भार्य्या—माधवी। क्षत्रियी, वैश्यी, गणकी, शूद्री ॥२२२॥

२२३। सूर्य्यादेराप्।

सूर्य्या, गोपालिका। सूर्य्या देवतायामेव, अन्या सूरी। ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा ॥२२३॥

२२४। क्वचिद्वा।

ईश्वरी, ईश्वरा ॥२२४॥

२२५। अग्नायीवृषाकपाय्यादयः साधवः, मनायी, मनावी, मनुः इन्द्राण्यादयश्च।

एते ईवन्ता भार्य्यार्थे साधवः। मनोर्भार्य्या मनाय्यादयः। इन्द्राण्यादिषु वरुण-भव-सर्व्व-रुद्र-मृडानार्य्याणां वरुणान्यादयो ज्ञेयाः। आचार्य्यानी—क्षुभ्नादित्वान्न णत्वम् ॥२२५॥

२२६। उपाध्यायानी-मातुलान्यौ वा।

ईवन्ते साधू ॥२२६॥

भार्य्यार्थो निवृत्तः।

२२७। अर्य्याणी-क्षत्रियाण्यौ वा जातौ।

ईवन्ते साधू। पक्षे अजादित्वात्—अर्य्या, क्षत्रिया भार्य्यायान्तु अर्य्यी ॥२२७॥

२२८। हिमाण्यरण्यान्यौ महत्त्वे, यवनानी यवनलिपौ, यवानी दुष्टयवे।

ईवन्ताः साधवः ॥२२८॥

२२९। अवृद्धायामसिक्नी असिता, वृद्धायां पलिक्नी पलिता, श्येन्यादयो वा।

साधवः। श्येनी, श्येता, एणी, एता, लोहिनी, लोहिता, हरिणी, हरिता। तत्तद्वर्णा ॥२२९॥

२३०। इरामादक्तयर्थाद्वा ईप्।

रात्री, रात्रिः, धूली, धूलिः, भूमी, भूमिः, युवती, युवतिः, पद्धती, पद्धतिः, अङ्गुली, अङ्गुलिः, षष्ठी, षष्ठिः, शक्ती, शक्तिः—शस्त्रे। 'श्रीयं लक्ष्मीयमित्यपि' इति दुर्घटवृत्तौ। पाणिनीया दीर्घमपि गृह्णति *। 'अक्तयर्थात्' इति किम्? पङ्क्तिः, हानिः, अकरणिः। लक्ष्मीविहितादेव, अतिथिर्वैष्णवी ॥२३०॥

२३१। मुनेर्व्वा।

मुनी, मुनिः ॥२३१॥

२३२। उरामान्तगुणवचनात् खरु-सत्सङ्गोद्धववर्ज्जाद्वा।

मृद्वी, मृदुः, गुर्व्वी, गुरुः, बह्वी, बहुः, लघ्वी, लघुः, तन्वी, तनुः। अगुणवचनादेस्तु—आखुः, खरुः कद्रुः ॥२३२॥

२३३। अरामान्तजातेर्नित्यलक्ष्मीवैश्यादिवर्ज्जम्।

आकृतिग्रहणा जातिर्लिङ्गानाञ्च न सर्व्वभाक्।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रञ्च चरणैः सह ॥ इति ॥
(महाभाष्यम्)

अयमर्थ उदाहरणानि च—आकृत्या आकारमात्रेण गृह्यते या, सा जातिः, यथा—हरिणी, महिषी। तथा लिङ्गानां मध्ये सर्व्वं लिङ्गं न भजते, किन्तु पुंस्त्वं स्त्रीत्वमेव या भजते, सा च जातिः, यथा—ब्राह्मणी, देवी। तथा गोत्रप्रत्ययान्तश्च जातिः, नाडायणी, चारायणी। तथा वेदशाखाध्यायी च जातिः, यथा—कठी, बह्वृची। साच साच सकृदप्याख्यातेन कथनेन निर्ग्राह्या सर्व्वत्र ज्ञेया भवतीति। नेह—वलाका, वैश्या, क्षत्रिया। प्रायो यरामोद्धव वैश्यादिः ॥२३३॥

२३४। इरामान्तान्नृजातेः।

अवन्ती, कुन्ती, दाक्षी ॥२३४॥

---

* "कृदिकारादक्तिनः", "सर्व्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके" (गणसूत्रं, सिद्धान्त-कौमुदी)।

२३५। नृनरयोर्नारी।

इवन्ता साधुः।।२३५।।

ईप् निवृत्तः।

२३६। ऊङ्।

प्रभुरयम्।।२३६।।

२३७। उपमानपूर्व्वादूरोरूङ्, सहित-संहति-वामादि-पूर्व्वाच्च।

करभोरूः, सहितोरूः।।२३७।।

२३८। अयरामोद्धवादुरामान्न जातौ।

ब्रह्मबन्धूः, कुरूः, भीरुः। 'भीरुः' इति केचित्। नेह—अध्वर्य्युर्ब्रह्मजातिः।।२३८।।

२३९। अप्राणिजातेरुरामाद्रज्ज्वादिवर्ज्जम्

अलावूः, कर्कन्धूः। नेह—रज्जुः, हनुः।।२३९।।

२४०। कद्रू-पङ्गू-श्वश्र्वादयः।

ऊङन्ताः साधवः।।२४०।।

ऊङ् निवृत्तः।

२४१। अजादेराप्।

पूर्व्वस्यापवादोऽयम्। तत्र जातीपः—अजा, अश्वा, एडका, कोकिला, क्रुञ्चा, चटकेत्यादि, अथ केशवेपः—किङ्करा, ततकरा इत्यादि। भार्य्यावय ईपः—मुग्धा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्या, मध्यमा, गोपालिका, पशुपालिका इत्यादि। वयसि—कन्या, बाला, होडा, पाका, वत्सका, मन्दा, विनता इत्यादि। अजादिराकृतिगणः।।२४१।।

२४२। शूद्रादमहत्पूर्व्वात्।

शूद्रा। नेह—महाशूद्री। ततोऽत्र प्रकरणे तदन्तविधिरिष्यते, महाजा। कथं 'पञ्चाजी'? विशेषविधेः।।२४२।।

२४३। त्रिप्रभृतीनामन्त्यमुत्तमं तत्समीपमुपोत्तमं, गुरूपोत्तमाभ्यामनार्षाभ्यां गोत्रविहिनाणिण्-प्रत्ययान्ताभ्यां याप् कौड्यादिप्रभृतेश्च।

अण्—कारीषगन्ध्या। इण्—वाराह्या, कौड्या नाड्या। 'अनार्षाभ्यां' किम्? वाशिष्ठी।।२४३

२४४। भोज्या क्षत्रियजातौ, दैवयज्ञ्याप्रभृतयो वा।

यावन्ताः साधवः।।२४४।।

पूर्णो लक्ष्म्यधिकारः।

२४५। इतः प्रत्ययपरिभाषा।

परिभाषेयमापरिसमाप्तेः। किञ्च, प्रत्यये—ख ईनः, घ इयः, छ ईयः, ठ इकः, ठीस्त्वीकः, ढ एयः ढक एयकः, फ आयनः, फिस्त्वायनिः, वुरकः। प्रत्यये कर्त्तव्ये ईनादीनां पाणिनीयवत् खादिस्थानीयता ज्ञेया। अत्र वर्णस्वरूपे रामः, यथा—खराम ईनः इत्यादि।।२४५।।

२४६। टित् केशवः, टणिन्माधव इति।

२४७। तेन दीव्यतीत्यतः प्रागर्थेषु केशव-णः

अयमेव 'अण्' इत्युक्तः। तत्र 'तस्यापत्यम्' (त० प्र० २५८) इत्यादिसूत्रैरर्था दर्शयिष्यन्ते। ततश्च मधोरपत्यमित्याद्यर्थे मधुशब्दात् षष्ठ्यन्तात् केशव-णे कृते उक्तार्थस्यापत्यपदस्याप्रयोगः, ततः अन्तरङ्गत्वादेर्महाहरः, तथापि पूर्व्वस्य विष्णुपदत्वमिति य-सर्व्वेश्वरयोर्विष्णुपदत्वाभावः, किन्तु तद्धिते यश्चेति 'भगवत्' संज्ञैव, ण इत्, आदिसर्व्वेश्वरस्य वृष्णीन्द्रः—माधवः, पक्षे वाक्यं समासश्च सर्व्वत्र, यथा—मधोरपत्यं, मध्वपत्यमित्यादि। वृत्रघ्नोऽपत्यादिः, वार्त्रघ्न इत्यत्र 'हन्तेस्तो नृसिंहे' (आ० प्र० ४४८) इति न स्यात्, केवल-हन्धातोः स्वीकारात्।।२४७।।

२४८। दित्यदित्यादित्ययमेभ्यो ण्यरामः, पत्युत्तरपदाच्चागणपत्यादेः।

दितेरपत्यादिः दैत्यः। अदितेरादित्यः। एवं याढुपत्यः, वार्हस्पत्यः। गणपत्यादेस्तु—गाणपतम्, आश्वपतम्, पाशुपतमित्यादि।।२४८।।

२४९। स्थाम्नस्त्वरामः।

अश्वत्थामः।।२४९।।

२५० । पृथिव्या णरामो वा ।

पार्थिवः, पार्थिवा, पार्थिवी ।।२५०।।

२५१ । देवान्नृसिंह-यो वा ।

दैवः, दैव्यः ।।२५१।।

२५२ । वहिषो वाह्य-वाहीकौ साधू ।

जातेरीप्, वाहिकी ।।२५२।।

२५३ । त्रिरामीतः सर्व्वेश्वरादि-प्राग्दीव्यतीयस्य महाहरोऽनपत्ये ।

पञ्चसु कपालेषु संस्कृत इत्यर्थे केशव णः—पञ्चकपालः पुरोडाशः ।।२५३।।

२५४ । धान्यानां भवने क्षेत्र इत्यतः प्रागग्निकलिभ्यां माधवः ढः ।

आग्नेयः१, आग्नेयी ।।२५४।।

२५५ । स्त्रीपुंसाभ्यां नृसिंह-न-स्नौ, भावे च वा ।

स्त्रैणं, पौंस्नम्, भावे स्त्रैणं, स्त्रीत्वम्, पौंस्नं पुंस्त्वम्, त्वो वक्ष्यते (त० प्र० ८३१) । भवनात् प्रागेव, स्त्रीवत्, पुम्वत् ।।२५५।।

२५६ । गोः सर्व्वेश्वरादिप्रत्ययप्रसङ्गे यरामः ।

'ओद्वयस्यावावौ प्रत्यय ये' (आ० प्र० ५१५) गव्यम् ।।२५६।।

इतः प्राग्दीव्यतीया अर्था दर्श्यन्ते ।

२५७ । अधिकारसूत्रे प्रथमनिर्द्दिष्टविष्णुभक्त्यन्तात् प्रत्ययः ।

परिभाषेयम् ।।२५७।।

२५८ । तस्यापत्यम् ।

त्रिभुरयम् । अत्रार्थे षष्ठ्यन्तान्नाम्नो यथाविहितं स्युः । मनोरपत्यं माधवः, एवं दैत्यः, आदित्यः, स्त्रैण इत्यादि ।।२५८।।

२५९ । अरामबाह्वादिभ्यामिनृसिंहः, दशरथादेर्व्वा ।

गर्गस्यापत्यं गार्गिः, बाहविः, दाशरथिः, "प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली" (रामायणम्, युद्धकाण्डम्, लङ्काकाण्डम् वा ६।२२,२३, महानाटकम् ६।३४) सौमित्रिः, सौमित्रश्च । अत्र 'वर्णग्रहणे सन्निपातन्यायाप्रवृत्तिः' तस्मादरामहरः—गार्गिः ।।२५९।।

२६० । व्यासादेरकिण्, स च चित् ।

वृष्णीन्द्रस्थानचतुःसनादेशयोरित्यादि, व्यासस्यापत्यं वैयासकिः, सुधातुः—सौधातकिः । वरट-चण्डाल-निषाद-विम्वादयश्च व्यासादयः २६०

२६१ । विश्रवसो वैश्रवणः ।

अपत्ये साधुः ।।२६१।।

२६२ । लोमान्तादरामो बहुत्वे ।

उडुलोम्नः पुत्रा औडुलोमाः । बहुत्वे किम् ? उडुलोम्नः पुत्रः औडलोमिः, बाह्वादित्वात् ।।२६२।।

२६३ । शिवादेः केशव णः, ऋष्यन्धकवृष्णि-कुरुभ्यश्च, अनादिवृष्णीन्द्रेभ्यो नदीमानुषीनामभ्यश्च ।

आ-ऐ-औरामा यस्यादिसर्व्वेश्वराः, स आदिवृष्णीन्द्र-संज्ञः, तद् यदादयश्च । 'वृद्ध' संज्ञा इत्यन्ये । शैवः, यास्कः, पौत्रः, दौहित्रः, नानान्द्रः ऋषिभ्यः—वाशिष्ठः, अन्धकेभ्यः—श्वाफल्कः, वृष्णिभ्यः—वासुदेवः, कुरुभ्यः—नाकुलः । कथं कार्ष्णिः, प्राद्युम्निः आर्ज्जुनिः ? बाह्वादिपाठात् । अनादीति—यामुनः, ऐरावतः । मानुषीतः—गौतमः रौहिणः । अनादिवृष्णीन्द्रेति किम् ? कौशिकेयः, कौशल्येयः ।।२६३।।

२६४ । कन्यायाः केशव-णः, कनीनादेशश्च

कानीनो व्यासादिः ।।२६४।।

२६५ । संख्यादिपूर्व्वाया मातुः केशव-णः उरादेशश्च१ ।

द्वैमातुरः बलदेवः । षाण्मातुरः, सांमातुरः,

---

१ । कालेयम्, अग्नेरपत्यमित्याद्यर्थेषु आग्नेयम् । (क)

१ । उरन्नादेशश्च (क)

भाद्रमातुरः ॥२६५॥

२६६ । लक्ष्मीशुभ्रादिभ्यां माधव-ढो बहुलम्

रौहिणेयः, सौपर्णेयः ॥२६६॥

२६७ । बडवाया वृषे ।

बाडवेयो वृषः ॥२६७॥

२६८ । बाहुल्यान् क्वचित् मानुषीनाम्नीतश्च[२] ।

रौहिणेयो रामः । क्रौञ्चः, कौकिलः । शुभ्रादेः खल्वपि—शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः, आत्रेयः, कौन्तेयः, वार्ष्णेयः । 'उद्वयस्य हरो' (त० प्र० ५२)—मार्कण्डेयः ॥२६८॥

२६९ । ऊङन्तात् ।

कामण्डलेयः ॥२६९॥

२७० । दित्यदिती वा, भ्रुवो भ्रुव् च ।

दैतेयो दैत्यः, आदितेयः आदित्यः । भ्रौवेयः । गङ्गाया गाङ्गेयो, गाङ्गो, गाङ्गायनिः । शुभ्रादिपाठेन माधवत्वात् गाङ्गेयी ॥२७०॥

२७१ । इरामान्ताद्द्विसर्व्वेश्वरान्माधव-ढः एन्नृसिंहात्तु न ।

विधेरपत्यं वैधेयः । एन्नृसिंहात्त—कार्ष्णायनो वक्ष्यते (त० प्र० ३०२) ॥२७१॥

२७२ । कल्याण्यादेर्माधवेनेयः ।

कल्याणीनेयः । 'हृद्भगसिन्ध्वन्तानाम्' (त० प्र० १८) इत्युभयपदवृद्धिः—सौभागिनेयः, दौर्भागिनेयः एवं बन्धकी-रजकी-ज्येष्ठा-मध्यमा-कनिष्ठाभ्यश्च ॥२७२॥

२७३ । परस्त्रियाः पारस्त्रैणेय-पारशवौ माधवेनेय-केशवणाभ्यां साधू ॥२७३॥

२७४ । चटकादेरण् लक्ष्म्यान्तु महाहरः ।

'नाम्नो ग्रहणे लिङ्गविशिष्टग्रहणात्, चटकाया अपि चाटकेरः, चटका ॥२७४॥

२७५ । गोधाया गौधार-गौधेर-गौधेयाः । साधवः । स्त्रियां माधवत्वात् गौधेयी ॥२७५॥

२७६ । क्षुद्रादिभ्य एरण् वा ।

अङ्गहीना अनियतपुंस्काश्च क्षुद्राः । काणेयः, काणेरः, दासेयः, दासेरः । कुलटा—पुंश्चली, भिक्षुकी च, कौलटेयः, कौलटेरः । भिक्षुक्याः सतीत्वे तु कुलटाया माधवेनेयो वा— कौलटिनेय, कौलटेयः ॥२७६॥

२७७ । स्वसुश्छरामः ।

स्वस्रीयः ॥२७७॥

२७८ । भ्रात्रीयो भ्रातृजे, भ्रातृव्यस्तु शत्रौ च ।

साधू ॥२७८॥

२७९ । पितृमातृपूर्व्वायाः स्वसुः पैतृस्वस्रीयपैतृष्वसेयादयः ।

साधवः : माधवत्वात् पैतृष्वसेयी ॥२७९॥

२८० । श्वशुराद्यरामः ।

श्वशुर्य्यः ॥२८०॥

२८१ । रेवत्यादेर्माधव-ठः ।

अयमेव टिकणित्युक्तः, रैवतिकः ॥२८१॥

२८२ । कुर्व्वादिभ्यो ण्यरामः ।

कुरुरयं मुनिवचनः । कौरव्यः, कौरव्या । पितुरपत्यं पैत्र्यः ॥२८२॥

२८३ । सेनान्त-कारु-लक्षणेभ्यो नृसिंहावियौ

हारिषेणिः, हरिषेण्यः, तान्त्रवायिः, तान्त्रवाय्यः लाक्षणिः, लाक्षण्यः ॥२८३॥

२८४ । तिकादेर्नृसिंह-फिः ।

तैकायनिः, कौरव्यायनिः, चान्द्रमासायनिः ॥२८४

२८५ । कोशल-कर्म्मार-छाग-वृषेभ्यो युडागमश्च ।

कौशल्यायनिः ॥२८५॥

---

२ । क्वचित् नाम्नीतश्च (ख, ग, घ)

२८६। पुत्रान्तादादिवृष्णीन्द्राननृसिंह-फिव्वा कुक् च वा।

गार्गीपुत्रकायणिः, गार्गीपुत्रायणिः, गार्गीपुत्रिः ॥२८६॥

२८७। राजज्ञाभ्यां यघरामौ जात्यां, मनोः ष्यषणौ।

राजन्यः, क्षत्रियः, मनुष्यः, मानुषः। जातौ किम्? राजनः, क्षात्रिः। मानवस्तु पुत्रे जातौ च साधुः ॥२८७॥

२८८। कुलस्य कुल्य-कौलेय-कुलीनाः।

सपूर्व्वत्वे यदुकुलीन महाकुलीनाः, दुष्कुलस्य दौष्कुलेय-दुष्कुलीनौ—एते साधवः। महाकुल-दौष्कुलेययोर्लक्ष्म्यां महाकुली, दौष्कुलेयी ॥२८८॥

२८९। द्विसर्व्वेश्वरात् केशव-नान्तात् फिरामः।

हौत्रायणिः, कार्ष्णायनिः, यास्वायनिः ॥२८९॥

२९०। गोत्रे।

प्रभुरयम्। पौत्र प्रभृत्यपत्यम् गोत्रम् ॥२९०॥

२९१। विदादेः केशव-णः।

वैदः, और्व्वः। एवं कश्यप-कुशिक-भरद्वाजादिभ्यः अनन्तरापत्ये तु वैदिः ॥२९१॥

२९३। गर्गादेर्माधव-यरामः।

गार्ग्यः, वात्स्यः। एवं व्याघ्रपादगस्त्य-मुद्गल-पराशर-जमदग्न्यादिभ्यः। कथं रामो जामदग्न्यः, व्यासः, पाराशर्य्यः? गोत्ररक्षकत्वेनोपचारात्। अन्यथा जामदग्नः, पाराशर इत्येव ॥२९२॥

२९३। नडादेर्माधव-फः।

नाडायनः, द्वैपायनः, ब्राह्मणायनः ॥२९३॥

२९४। अमुष्येत्यस्य षष्ठ्यलुक् च।

आमुष्यायणः—प्रशस्तकुलजन्मा ॥२९४॥

२९५। कुञ्जादेर्माधवायन्यो, बहुत्वे तु माधवायनः।

कौञ्जायन्यः, कौञ्जायन्यौ, कौञ्जायनाः। लक्ष्म्याम्—कौञ्जायनी ॥२९५॥

२९६। शारद्वतायनादयो भार्गवादिषु।

साधवः ॥२९६॥

२९७। द्रोणादेर्माधव-फो वा।

द्रौणायणः, द्रौणिः ॥२९७॥

२९८। मूलप्रकृतेरेव गोत्रप्रत्ययः।

परिभाषेयम्। यत्र तु विशेषविधानं नास्ति, तत्र सामान्यमेव। ततो मधुशब्दादेव प्रत्ययात् मधोर्माधवस्य वा पौत्रादिः सर्व्व एव माधवः। दक्षस्य दाक्षेर्वा दाक्षिः। विशेषे तु विशेष वा—वैदः, गार्ग्यः ॥२९८॥

उक्तं गोत्रम्।

२९९। पित्रादौ जीवति पौत्रादेरपत्यं युवसंज्ञं, ज्येष्ठभ्रातरि जीवति कनिष्ठश्च, अन्यस्मिन् सपिण्डज्येष्ठे तु वा।

यदि जीवन् स्यात् ॥२९९॥

३००। गोत्रं प्रशंसायां युवा वा, युवा च कुत्सायां गोत्रं वा।

स भगवान् गार्ग्यायणो गार्ग्यो वा। एवं गार्ग्यायणो जाल्मः, गार्ग्यो वा ॥३००॥

३०१। यः पितरि जीवति स्वतन्त्रः, लक्ष्म्यान्तु न युवसंज्ञा।

यून्यपत्ये विवक्षिते गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः। मधोर्माधवस्य वा युवापत्यं माधविः। नेह—मधोर्माधवस्य वास्त्र्यपत्यं माधवी। ३०१॥

उक्तं युवापत्यम्।

यश्च गोत्रादेव विधीयते, स यूनी बोद्धव्यः यथा—

३०२। इयाभ्यां नृसिंहाभ्यां गोत्रप्रत्ययाभ्यां फरामः, हरितादेश्च तादृशात्।

दक्षस्य दाक्षेर्वा युवापत्यं दाक्षायणः, गार्ग्यायणः हरितादिरयं विदाद्यन्तर्गणः। हरितस्य हारितस्य वा हारितायणः ॥३०२॥

३०३। मिमत-फाण्टाकृतिभ्यां णरामश्च सौवीरे।

मैमतः, मैमतायनः। एवं सौवीरगोत्रादन्येऽपि

विषयः सन्ति ॥३०३॥

३०४ । गोत्रलक्ष्म्या ण-माधव-ठौ बहुलं[1] कुत्सायाम् ।

गार्ग्यः, कुत्सितमपत्यं युवा—गार्गः, गार्गिकः ॥३०४॥

३०५ । आदिवृष्णीन्द्रादगोत्रान्नृसिंह-फिर्व्वा

माथुरायणिः, माथुरिः, तादायनिः, तादः ॥३०५

इति केवलापत्यानि ।

३०६ । जनपद-सनामभ्य क्षत्रियेभ्योऽपत्ये तज्जनपदनामभ्यस्तु राजनि ।

प्रभुरयम् ॥३०६॥

३०७ । कुर्व्वादिर्ण्यरामः, नरामादेश्च

कुरोरपत्यं कौरव्यः, कुरुदेशस्य राजा च । एवं निषधनाम्नः क्षत्रियस्य अपत्यं, निषधदेशस्य राजा च नैषध्यः । कथं माघे (१३।१६)—"परिरेभिरे कुकुरकौरवस्त्रियः" ? तथा संरक्ष्यन्तां कौरवाः, तस्येदमिति विवक्षायाम् । इरामान्त-कुरु-कौशलादिवृष्णीन्द्राः कुर्व्वादयः ॥३०७॥

३०८ । पाण्डोर्य्यरामनृसिंहः ।

पाण्डयः । भारतपाण्डुस्तु न जनपदसनामा, तस्यापत्यन्तु पाण्डवः ॥३०८॥

३०९ । पञ्चालादे केशव-णः ।

पाञ्चालः पुत्रो राजा च । पञ्चाल-इक्ष्वाकु-विदेह-शूरसेन-शाल्वेय-गान्धारि-कलिङ्ग-मगध-सूरमसादिद्विसर्व्वेश्वरश्च पञ्चालादिः ॥३०९॥

३१० । युगन्धरादेर्नृसिंह-इः ।

यौगन्धरिः पुत्रो राजा च । युगन्धर-उडुम्बर-प्रत्यग्रथादिरयम् ॥३१०॥

३११ । महाहरः ।

प्रभुरयम् ॥३११॥

३१२ । कम्बोजादे राजापत्ययः ।

कम्बाजः पुत्रो राजा च । चोलः, शकः, केरलः ३१२

३१३ । बहुषु लक्ष्मीं विना ।

कुरवः, पञ्चालाः । स्वार्थे बहुत्वमेवेष्यते, नेह प्रियकौरव्याः । लक्ष्म्यान्तु—पाञ्चाल्यः ॥३१३॥

३१४ । अवन्ति-कुन्ति-कुरु-शूरसेनादेर्लक्ष्म्याम्

अवन्ती, कुन्ती, कुरूः, शूरसेनी, मद्री ॥३१४॥

३१५ । केकयाद्वा ।

कैकेयी, केकयी ॥३१५॥

उक्तो राजापत्ये ।

अत्र 'तद्राज'-संज्ञा पाणिनीयानाम् * । महाहरस्त्वनुवर्त्तते ।

३१६ । यस्कादिभ्यः स्वार्थबहुत्वे बहुलं लक्ष्म्यान्तु न ।

बहुत्व इति प्रभुश्च । यस्काः, अयस्थूलाः ॥३१६

३१७ । गर्गादेः ।

गर्गाः, वत्साः ॥३१७॥

३१८ । अगस्त्यस्यागस्तिश्च ।

अगस्तयः ॥३१८॥

३१९ । कौण्डिन्यस्य कुण्डिनश्च ।

कुण्डिनाः ॥३१९॥

३२० । विदादेरगोपवनादेः ।

विदाः, उर्व्वाः । नेह—गौपवनाः ॥३२०॥

३२१ । अत्रि-भृगु-कुत्स-वशिष्ठ-गोतमाङ्गिरोभ्यः ।

अत्रयः, भृगवः ॥३२१॥

३२२ । नृसिंहेरामस्य बहुसर्व्वेश्वरात् प्राच्यभरतेषु ।

प्राच्ये—पुष्करसदाः । भरते—युधिष्ठिराः, अर्ज्जुनाः । एवमन्येऽपि ज्ञेयाः । बहुत्वस्य परार्थत्वे प्रिययास्काः, प्रियगार्ग्याः ॥३२२॥

३२३ । नृसिंह-य-केशवणयोरेकत्वे द्वित्वे च महाहरो वा वाच्यः, षष्ठीकृष्णपुरुषे ।

---

१ । 'बहुलं' इति पाठः ख ग घ-पाण्डुलिपिषु नास्ति । * "ते तद्राजाः" (पा ४।१।१७४)

गार्ग्यस्य गार्ग्ययोर्वा कुलं गर्गकुलं, गार्ग्यकुलम्। एवं वैदकुलं, विदकुलम् ॥३२३॥

३२४। प्राग्दीव्यतीयसर्व्वेश्वरादौ कर्त्तव्ये न महाहरः, बहुत्वेऽपि युवप्रत्ययं विना न महाहरः, माधव-फे नृसिंह-फिरामे च यूनि वा

गर्गाणां छात्रा गार्गीयाः, आत्रेयीयाः। असर्व्वेश्वरादित्वे तु—गर्गेभ्य आगतं गर्गरूप्यम्। बहुत्वेऽपीति। फण्टाकृतस्यापत्यं फाण्टाकृतिः, तस्यापत्यं युवा फाण्टाकृतो णप्रत्ययान्तः, ततस्तस्य छात्रा इत्यर्थे प्राग्दीव्यतीये कर्त्तव्ये णरामस्य महाहरस्ततो 'नृसिंहेरामात्' (त० प्र० ४३८) केशवणो वक्ष्यते—फाण्टाकृताः। माधवफ-नृसिंह-फिरामयोस्तु वा महाहरः, गार्ग्यायणस्य छात्राः गार्गीयाः, गार्ग्यायणीयाः। यास्कायनेः—यास्कीयाः, यास्कायनीयाः। नित्यन्तु आत्रेयीयाः ॥३२४॥

३२५। पैलादिभ्यो युवप्रत्ययस्य महाहरः

पिला वा शिवादिः। तस्या युवविहितफेर्महाहरः पैलः—पिता पुत्रश्च। आदिना वैदः पिता पुत्रश्च। एवं सात्याकिरित्यादि। अन्यत्र न—दाक्षिः, पिता, दाक्षायणः पुत्रः। एवमार्ज्जुनिः, आर्ज्जुनायनः, आसुरिः, आसुरायणः ॥३२५॥

३२६। तैकायन्यादेः केशवारामस्य महाहरः

तैकायनिः—पिता पुत्रश्च ॥३२६॥

३२७। ण्यार्षक्षत्रियेभ्यो नृसिंहेरामस्य महाहरः।

ण्यात् कौरव्यः—पिता पुत्रश्च। तिकादिपाठात् कौरव्यायणिः। आर्षात्—वाशिष्ठः पिता पुत्रश्च। क्षत्रियात्—श्वाफलकः पिता पुत्रश्च ॥३२७॥

अपत्यं पूर्णम्।

३२८। तेन रक्तं रागात्।

प्रभुश्चायम्। तेन रक्तमित्यर्थे तृतीयान्ताद्रञ्जनद्रव्यवाचिनो यथाविहित-प्राग्दीव्यतीय-प्रत्ययः स्यात्। तत्र सामान्यतः केशवण एव। कुङ्कुमेन रक्तं कौङ्कुमं कृष्णस्य वस्त्रम्। विशेषतस्तु अग्निना रक्तो घट आग्नेयः। आदित्येनादित्यं पत्रम्। रक्तमिति कर्म्मविहितक्तदन्तस्य प्रतिनिधिस्तद्धितोऽयमपि कर्म्मण्येव, ततोऽत्र वस्त्रादेः कर्म्मण उक्तत्वम्, एवमन्यत्रापि ॥३२८॥

३२९। लाक्षारोचनाभ्यां माधव-ठः।

लाक्षिकं, रौचनिकम् ॥३२९॥

३३०। शकल-कर्दमाभ्यां वा।

शाकलिकः, शाकलः ॥३३०॥

३३१। पीतात् करामः।

पीतकम् ॥३३१॥

३३२। नील्या अरामः।

नीलम् ॥३३२॥

रक्तं निवृत्तम्।

३३३। सास्य देवता।

प्रभुश्चायम्। एवमुत्तरत्रापि। सर्व्वत्रार्थमात्रनिर्द्देशे प्रभुत्वादिकं ज्ञेयम्, अस्मिन्नर्थे पूर्व्ववद्यथाविहितं स्यात्। विष्णुर्देवतास्य वैष्णवः पुरुषः, वैष्णवं हविः, वैष्णवी स्रुक्। एवमादित्यः, आग्नेयः। यागे पुरोडाशादिसम्प्रदानं मन्त्राद्याराध्यं च देवतामाहुः ॥३३३॥

३३४। शुक्रादेर्घरामादयः।

शुक्रियं सौम्यं हविः, सौमी ऋगित्यादि। 'ऋरामस्य रो ये' (त० प्र० ६४)—पित्र्यम्। कः प्रजापतिर्देवतास्य—कायम्, शतरुद्रीयं, शतरुद्रीयम् माहेन्द्रं, माहेन्द्रीयं, महेन्द्रियम्, वायव्यम्, ऋतव्यम् उषस्यं, द्यावापृथिवीयं, सुनासीरीयं, मरुत्वतीयम्, अग्नीषोमीयं, गृहमेधीयम्। पक्षे द्यावापृथिव्यं, सुनासीर्य्यमित्यादयः ॥३३४॥

३३५। कालवाचिभ्यो भवार्थवत्।

मासिकं, वासन्तं, प्रावृषेण्यम्। भवार्था वक्ष्यन्ते (त० प्र० ५००) ॥३३५॥

देवता निवृत्ता।

३३६। तस्य समूहो ब्रह्माणि।

अत्रार्थे क्लीवे यथाविहितं स्यात्। देवानां समूहो दैवं, भिक्षाणां भैक्षं, युवतीनां यौवतम्।

अत्र 'भगवती, न तु ढरामे' (त० प्र० ८७) इत्यस्य न प्राप्ति मन्यन्ते, ततो न पुंवद्भाव इति काशिका (४।२।३८)। पुंवद्भावे यौवनमिति तु भागवृत्तिः। आदित्यम्, स्त्रैणम्, आग्नेयम् ॥३३६॥

३३७। गोत्रादुक्षादेश्च वुर्नृसिंहः।

यादवकं, गार्गकम्, औक्षकम्, औष्ट्रकम्, औरभ्रकं, राजकं, राजन्यकं, राजपुत्रकं, वात्सकं, मानुष्यकम्, आजकं, वार्द्धकञ्च ॥३३७॥

३३८। केदाराण्नृसिंह-यश्च।

कैदार्य्यं कैदारकम्, कैदारिकं चेष्यते। गणिकाया गाणिक्यं, कवचिनः, कावचिकं साधुनी ॥३३८॥

३३९। ब्राह्मण-मानव-वाडव-पृष्ठेभ्य यरामः

ब्राह्मण्यम् ॥३३९॥

३४०। ग्राम-गज-जन-बन्धु-सहायेभ्यस्ताप् लक्ष्म्याम्।

ग्रामता ॥३४०॥

३४१। अह्नः खरामः क्रतुविषये।

क्रतौ अह्नां, समूहः अहीनः पुंस्ययम्, अन्यत्र आह्नम्। पर्शूनां पार्श्वं, केशस्य कैशिकं, कैश्यम्, अश्वस्याश्वीयमाश्वञ्च साधुनि ॥३४१॥

३४२। पश्यादयश्च लक्ष्म्यां यावन्तादयश्च

साधवः। पाश्या, तृण्या, धूम्या, वात्या, याम्या खल्या, वन्या, रथ्या, गव्या, ताप्, गोत्रा। वडचा आप् रथकडचा ॥३४२॥

३४३। इनीवन्ताश्च।

खलिनी, उलुकिनी, पद्मिनी ॥३४३॥

३४४। चरणेभ्यो धर्म्मवत्।

काठकं, छान्दंग्यम्, आथर्व्वणम् ॥३४४॥

३४५। अचितु-हस्ति-धेनुभ्यो नृसिंह-ठः।

आपूपिकं, हास्तिकम्। चतुर्भुजान्तादिति—धैनुकम् ॥३४५॥

उक्तं समूहे।

३४६। तदधीते वेद वा।

अत्रार्थे यथाविहितं स्यात्। व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः, ज्यौतिषः, छान्दसः ॥३४६॥

३४७। क्रतुविशेषादुक्थ-यज्ञ-लोकायत-न्याय-न्यासेभ्यो लक्षण-कल्पसूत्रान्ताच्चाकल्पपूर्व्वान् माधवठः।

आग्निष्टोमिकः, औक्थिकः इत्यादि। तथा गौलक्षणिकः, प्राथमकल्पिकः, ब्राह्मसूत्रिकः। नेह—काल्पसूत्रः ॥३४७॥

३४८। विद्यान्ताच्च, न त्वङ्गक्षत्रधर्म्मत्रिपूर्व्वात्, आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च, वसन्तादिभ्यश्च।

विद्यान्तात्—वैष्णवविद्यिकः। नेह—आङ्गविद्यः चातुर्विद्य इति तु कुशलार्थे। आख्यानेति—यावक्रीतिकः, वासवदत्तिकः, ऐतिहासिकः, पौराणिकः, वासन्तिकः ॥३४८॥

३४९। पदोत्तरपदिकः साधुः, शतपथिक-षष्ठिपथिकौ केशव ठेन साधू।

३५०। क्रमादिभ्यो वुः।

क्रमकः, पदकः। एवं शिक्षामिमांसोपनिषद्भ्यः ॥३५०॥

३५१। अनुब्राह्मणी नान्त साधुः।

३५२। सर्व्वादेः सादेस्त्रिराम्याश्च महाहरः प्रोक्तप्रत्ययान्ताच्च, सङ्ख्याप्रकृतिसूत्राच्च कोद्धवात्।

सर्व्ववेदः, सर्वार्त्तिकः, पञ्चकल्पः। पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयं, तदधीते वेद वा इति पाणिनीयः अष्टकं पाणिनिसूत्रं, तदधीते वेद वा अष्टकः ॥३५२॥

तदधीते वेदेति निवृत्तम्।

३५३। तेन दृष्टं साम।

अत्रार्थेऽपि यथाविहितं स्यात्। वशिष्ठेन दृष्टं साम वाशिष्ठम्, आग्नेयम् ॥३५३॥

३५४। वामदेव्यं साधु।

३५५ । दृष्टे सामनि जाते च केशवणो वा चिदिष्यते ।

औशनं साम, औशनसं वा । शातभिषः शातभिषजो बालः ॥३५५॥

३५६ । गोत्राद्वुन्नृसिंहः ।

गार्गकम् ॥३५६॥

दृष्टं साम निवृत्तम् ।

३५७ । तेन परिवृतो रथः ।

अत्र च यथास्वं प्रत्ययाः स्युः । वस्त्रेण परिवृतो रथः वास्त्रः ॥३५७॥

३५८ । पाण्डुकम्बलादिनिः ।

पाण्डुकम्बली ॥३५८॥

३५९ । द्वैप-वैयाघ्रचौ तच्चर्म्मणा परिवृते रथे साधू ।

'शकटाद्यपि रथत्वेन मन्यन्ते' इति क्षीरस्वामी । द्वैपी गन्त्री, द्वैपमर्णं इति । ३५९॥

परिवृतो निवृत्तः ।

३६० । नक्षत्रेण युक्तः कालः ।

अत्रापि यथास्वम् । पुष्येण युक्तं पौषमहः । एवं माघी रात्रिः । कालः किम् ? पुष्येण युक्तः शशी । ॥३६०॥

३६१ । रामकृष्णाच्छराम वा ।

राधानुराधीयः कालः, अहोरात्र वा । ६१॥

३६२ । पौषादयो मासे निपात्यन्ते ।

पौषी पौर्णमास्यत्र पौषः । एवं माघाद्याः ॥३६२

३६३ । यत्र प्रकृतिलिङ्गस्य तद्वचनस्य च प्रत्यावृत्तिः, यत्र च हरितक्यादिषु तल्लिङ्गस्यैव खलतिकादिषु वचनस्यैव, समासे तु बहुवचनविषयोत्तरपदसम्बन्धिनोरेव तयोः प्रत्यावृत्तिः, स महाहरः स्मरहरसंज्ञः ।

लुबित्यन्ये । यथा वङ्गस्यापत्यानि बहूनि वङ्गाः तेषां निवास इत्यर्थे केशवणस्य स्मरहरः । वङ्गा जनपदः । हरितक्याः फलानि हरीतक्याः । तथा खलितकस्य गिरेर्दूरभवानि वनानि खलितकम् । तथा मथुरा बहवः पञ्चालाश्च मथुरापञ्चालाः । नेह—पञ्चालमथुरे[1] ॥३६३॥

३६४ । स्मरहरार्थस्य विशेषणानि त तद्वत्

पञ्चालाः सम्पन्ना बहुविप्राः ॥३६४॥

३६५ । न तु जातेः ।

पञ्चाला जनपदो रमणीयः ॥३६५॥

३६६ । मनुष्यस्मरहरे च निषेधः ।

चञ्चामनुष्यो दर्शनीयः । चञ्चा दर्शनीया इति मा भूत् । अत्रैव प्रतिकृतौ कस्य स्मरहरः । तदेवं स्थिते ॥३६६॥

३६७ । स्मरहरः कालाविशेषे प्रागुक्तनक्षत्रप्रत्ययस्यैवेति वर्त्म ।

अद्य पुष्यः, अद्य विशाखा । पुष्यादियुक्तं कालमात्रमत्राभिधीयते, न तु तद्विशेषः । कालविशेषे तु—श्रावणी रात्रिः ॥३६७॥

३६८ । कुमारीमूढवान् कुमारः कौमारस्तत्कुमारेणोढा सा च कौमारी ।

अत्र द्वयं साधु । "उपलम्भ्यामपश्यन्तः कौमारीं पततां वर" इति भट्टिः (७।९२) ॥३६८॥

३६९ । तत्र भुक्तोत्सृष्टमित्यर्थे पात्रात् ।

अणेव । शरावे भुक्तोत्सृष्टं शारावम् । व्रतार्थं स्थण्डिले शेते स्थाण्डिलः अणन्तः साधुः ॥३६९॥

३७० । तत्र संस्कृतं भक्ष्यञ्चेत् ।

अत्रापि यथास्वम् । भ्राष्ट्रे संस्कृता भ्राष्ट्रा अपूपाः ॥३७०॥

३७१ । उख्यादयश्च ।

अत्र उख्य-शूल्य-क्षैरेय दाधिक-औदश्वित-औदश्वित्काः इत्येते यरामेण माधवढराम-ठरामाभ्यां केशवणरामेण च यथास्वं साधवः ॥३७१॥

३७२ । सोऽत्र वर्त्तत इति पूर्णमासात्

केशव-णः, अन्यायादेर्माधव-ठः ।

---

१ । 'पञ्चालमथुरे । अत्र पञ्चालशब्दस्य एकत्वे एव बहुवचनमिति मथुरासमासेन द्वित्वमेव सङ्गच्छते ।' (क)

पौर्णमासी तिथिः, आन्यायिकः, औत्पातिकः, नावयज्ञिकः १ ॥३७२॥

३७३ । पितृव्यादयः पितृभ्रात्रादौ ।

साधवः ॥३७३॥

३७४ । अविषोढाविदूषाविमरीषाण्यविदुग्धे साधूनी ॥३७४॥

३७५ । तिलपिञ्ज-तिलपेजौ निष्फलतिले ।

साधू ॥३७५॥

३७६ । तस्य विषये देशे ।

अत्र यथास्वम् । यदूनां विषयो देशो यादवः ॥३७६

३७७ । राजन्यादिभ्यो वुर्नृसिंहः ।

राजन्यको मानवको देशः ॥३७७॥

३७८ । सोऽस्यादिरिति छन्दसः प्रगाथेषु ।

अत्र च यथास्वम् । प्रगाथो मन्त्रविशेषः । पङ्क्तिरादिरस्य प्रगाथस्य पाङ्क्तः प्रगाथः । एवमानुष्टुभः ॥३७८॥

३७९ । छान्दसः स्वार्थे ।

त्रिष्टुवेव त्रैष्टुभम् । एवं जागतम् । ब्रह्मण्येवाभिधानम् ॥३७९॥

३८० । तदस्येत्यर्थे प्रयोजनाद्योद्धृभ्यश्च युद्धे ।

अत्र च यथास्वम् । सीता प्रयोजनमस्य सैतं युद्धम् । एवं सौभद्रं, स्त्रैण, पौंस्नम् । भरता योद्धारोऽस्य भारतः संग्रामः ॥३८०॥

३८१ । तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णरामः ।

दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां दाण्डा क्रीडा । एवं मौष्टा पाल्लवा ॥३८१॥

३८२ । सास्यां क्रियेति घणो णरामः ।

श्येनपातः क्रिया अस्यां श्यैनम्पाता मृगया । तैलम्पाता स्वधा । अनयोर्मुम् च । मौषलपाता भूमिः ॥३८२॥

अथ चातुरर्थिकाः ।

३८३ । तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ।

अत्र च यथास्वम् । पर्व्वता अस्मिन् सन्ति पार्व्वतो देशः ॥३८३॥

३८४ । तेन निर्वृत्तः ।

अत्र च यथास्वम् । कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी पुरी ॥३८४॥

३८५ । तस्य निवासः ।

अत्र च यथास्वम् । शिवानां निवासः शैवः ॥३८५

३८६ । तददूरभवश्च ।

अत्र च यथास्वम् । यमुनाया अदूरभवो यामुनः एतेऽर्थाः प्रभव उक्तेष्वेतेषु चतुर्षु वक्ष्यमाणा ज्ञेया इत्यर्थः ॥३८६॥

३८७ । अरीहणादेर्वुर्नृसिंहः ।

अरीहणोऽस्मिन्नस्तीत्याद्यर्थे चतुष्टयेऽपि आरीहणकम् ॥३८७॥

३८८ । कृशाश्वादेश्छो नृसिंहः ।

कार्शाश्वीयम् ॥३८८॥

३९० । ऋष्यादेः कः ।

ऋष्यकः ॥३८८॥

३८९ । कुमुदशर्करादेष्ठरामः ।

कुमुदिकं, शार्करिकम् ॥३९०॥

३९१ । काशादेरिलः ।

काशिलम् ॥३९१॥

३९२ । तृणादेः सः ।

तृणसः, नडसा नदी ॥३९२॥

३९३ । प्रेक्षादेरिनिः ।

प्रेक्षी ॥३९३॥

३९४ । अश्मादिभ्यो रः ।

अश्मरः ॥३९४॥

३९५ । सख्यादेर्माधव-ढः ।

साखेयम् ॥३९५॥

---

१ । नावयज्ञिकः (क)

३९६ । सङ्काशादेर्ण्यः ।

साङ्काश्यं, काम्पिल्यम् ॥३९६॥

३९७ । बलादेर्यः ।

बल्यम् ॥३९७॥

३९८ । पक्षादेर्माधव-फः ।

पाक्षायणः ॥३९८॥

३९९ । कर्णादेः फिन्नृसिंहः ।

कार्णायणिः ॥३९९॥

४०० । सुतङ्गमादेरिन्नृसिंहः ।

सौतङ्गमिः ॥४००॥

४०१ । प्रगदिनादेर्ण्यः ।

प्रागदिन्यः ॥४०१॥

४०२ । वराहादेर्नृसिंह-कः ।

वाराहकम् ॥४०२॥

४०३ । कुमुद-सोमवारादिभ्यो माधव-ठः ।

कौमुदिकं, सौमवारिकं, गौमठिकम् ॥४०३॥

४०४ । चातुरर्थिकस्य स्मरहरस्तन्नाम्नि देशे ।

पञ्चालाः सन्त्यस्मिन् पञ्चालाः । एवं कुरवः ॥४०४

४०५ । वरणादिभ्यश्च ।

वरणा ग्रामः । गोदौ नाम ह्रदौ ग्रामः । खलतिकं वनानि । एवं शिरीषा, शृङ्गी, गया, उज्जयनी ॥४०५॥

४०६ । शर्कराया वा ।

शर्करा, शार्करम् । माधवठश्छरामश्च—शार्करिकं, शर्करीयम् ॥४०६॥

स्मरहरो निवृत्तः ।

४०७ । नद्यां मतुः संज्ञायां त्रिविक्रमश्च ।

उडुम्बरावती नदी ॥४०७॥

४०८ । मध्वादिभ्यश्च ।

मधुमान् । अद्वयेति मतोर्मस्य वः (त० प्र० ५८) विषवान् ॥४०८॥

४०९ । कुमुद-नड-वतसेभ्यो मतुप् ।*

कुमुद्वान्, नड्वान्, वेतस्वान् ॥४०९॥

४१० । महिषाच्च ।

महिष्वान् ॥४१०॥

४११ । नडशादाभ्यां वलच् ।

नड्वलं, शाद्वलम् ॥४११॥

४१२ । शिखाया वलः ।

शिखावलम् ॥४१२॥

४१३ । उत्करादिभ्यश्छरामः ।

उत्करीयम् ॥४१३॥

४१४ । नडादिभ्यः कुक् च ।

नडकीयम् । नड-वल-प्लक्ष ॥४१४॥

४१५ । क्रुञ्चाया वामनश्च, उक्ष्णो नलोपश्च

क्रुञ्चकीयम्, उक्षकीयम् ॥४१५॥

उक्ताश्चातुरर्थिकाः ।

४१६ । शेषार्थे विधिः प्राग्विकारात् ।

उक्तेभ्योऽन्ये शेषाः । ते च द्विविधा—प्रसिद्धया प्रयुज्यमाना, वक्ष्यमाणास्तत्र जातादयश्च । पूर्व्वे यथा—चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम् । एवं श्रावणः शब्द गत्यादयः । चाक्षुषादावेतेऽपि । अश्वैरुह्यते आश्वो रथः । एवं चातुरं शकटं, दृशदि पिष्टा दार्षदा माषाः । एवमौलूखलाः शक्तवः, चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशो राक्षस इत्यादि । उत्तरे तूदाहरिष्यन्ते ४१६

४१७ । राष्ट्राद्घरामः ।

राष्ट्रे जातादिः राष्ट्रियः ॥४१७॥

४१८ । अवारपारात् खरामः ।

अवारपारीणः ॥४१८॥

४१९ । विगृहीताच्च ।

अवारीणः, पारीणः, पारावारीण इति चेष्यते ॥४१९॥

४२० । ग्रामाद्य-नृसिंहखौ ।

ग्राम्यः, ग्रामीणः । 'न वृष्णीन्द्रहेतु' (समा० प्र० २५५) इति पुरुषोत्तमवत्त्व-निषेधः—ग्रामीणाभार्य्यः

---

* सुराज्ञि देशे राजन्वान् स्यात्ततोऽन्यत्र राजवान् । कुमुद्वान् कुमुदप्राये वेतस्वान् बहुवेतसे ।

४२१। कुलकुक्षिग्रीवाभ्यो माधव-ढकः श्वखडगालङ्कारेषु।

कौलेयकः श्वा, कौक्षेयकः खड्गः, ग्रैवेयकः कण्ठालङ्कारः ॥४२१॥

४२२। कन्थाया माधव-ठः।

कान्थिकः ॥४२२॥

४२३। निसस्त्यरामो देशान्निर्गते।

निष्ट्यश्चाण्डालादिः ॥४२३॥

४२४। नित्यं ध्रुवे साधु।

४२५। कर्त्र्यादिभ्यो माधव-ढकः।

कर्त्री कार्त्रेयकः, कुम्भी कौम्भेयकः। एवं ग्रामेयकः, नागरेयकः ॥४२५॥

४२६। नद्यादिभ्यो माधव-ढः।

नादेयं जलं, वाराणसेयो जनः ॥४२६॥

४२७। दक्षिणा-पश्चात्-पुरभ्यो नृसिंहस्त्यः

दक्षिणाशब्दोऽयमव्ययम्। दाक्षिणात्यः, पाश्चात्यः पौरस्त्यः ॥४२७॥

४२८। रङ्कोरमनुष्ये माधव-फ-केशवणौ

रङ्कुर्देशः राङ्कवायणो गौः, राङ्कवं वस्त्रम् ॥४२८

४२९। द्युप्रागवागुदक्प्रतीचो यरामः।

दिव्यं, प्राच्यम्, अवाच्यम्, उदीच्यं, प्रतीच्यम् ॥४२९॥

४३०। अव्ययात् कालवाचिनः केशवस्तनः

प्राक्तनः ॥४३०॥

४३१। ऐषमोह्यःश्वसस्त्यश्च।

ऐषमस्तनः, ऐषमस्त्यः। एवं ह्यस्तनः इत्यादि माधवठेन शौवस्तिकश्चेष्यते ॥४३१॥

४३२। अमाविःक्वेहतसित्रेभ्यस्त्यरामः

अमात्यः, आविष्ट्यः, क्वत्यः, इहत्यः, इतस्त्यः अत्रत्यः ॥४३२॥

४३३। अरण्याण्णरामः।

आरण्यः ॥४३३॥

४३४। दूरादेत्यः।

दूरेत्यः ॥४३४॥

४३५। उत्तरान्नृसिंहाहः।

औत्तराहः ॥४३५॥

४३६। तीरोत्तरपदात् केशवणः रूप्योत्तरपदाण्णरामः।

गाङ्गतीरं, गाङ्गरूप्यम् ॥४३६॥

४३७। दिक्पूर्व्वपदादनाम्नि णरामः।

पौर्व्वशालः, औत्तरशालः ॥४३७॥

४३८। नृसिंहेरामादगोत्रात् केशवणः।

छरामापवादः। दाक्षेर्जाताद्दिर्दाक्षः ॥४३८॥

४३९। आदिवृष्णीन्द्राच्छरामः, नामधेयाद्वा

वैष्णवीयः, राधीयः, तदीयः, त्वदीयः। द्वित्व-बहुत्वयोर्युष्मदीय, एवं मदीयः, अस्मदीयः ॥४३९॥

४४०। तावक-तावकीन-यौष्माक-यौष्माकीनाश्च।

४४१। मामकादयश्च पूर्व्ववत् साधवः।

नामधेयाद्वा। कृष्णीयाः, कार्ष्णाः, रामीयाः, रामाः ॥४३१॥

४४२। भवतो माधव-ठः।

भावत्कः ॥४४२॥

४४३। भवदीयश्च।

तत्र साधुः स्यात् ॥४४३।

४४४। काश्यादिभ्यष्ठो नृसिंहो माधवश्च

काशिका, काशिकी, वैदिका, वैदिकी ॥४४४।

४४५। आदिवृष्णीन्द्रादपि बहुवचनविषयाज्जनपदाद्वृनृसिंहः, समुद्रान्नौमनुष्ययोः, नगरात् कुत्सा-प्रावीण्ययोः अरण्यान्मनुष्यपथ्यध्यायन्यायविहारहस्तिषु गोमये वा।

शौरसेनकः माथुरकः, सामुद्रिका नौः सामुद्रको मनुष्यः, नागरको खलकुशलो, आरण्यको मनुष्यः, आरण्यकः पन्था इत्यादि। आरण्यकम् आरण्य गोमयम् ॥४४५॥

४४६ । कौरवक-यौगन्धरकौ वा ।

साधू ।।४४६।।

४४७ । मद्रकश्च ।

साधुः ।।४४७।।

४४८ । कारामोद्धवाद्देशात् केशवराः, कच्छादिभ्यश्य ।

ऋपिकात् आर्षिकः । काच्छः, सैन्धवः । कच्छ, सिन्धु, कम्बोज, गन्धार, काश्मीर, शाल्व, कुरु, रङ्कु ।।४४८।।

४४९ । मनुष्यतत्स्थयोस्तु वुर्नृसिंहः ।

काच्छको मनुष्यः । तत्स्थे—काच्छकमस्य हसितम् । सैन्धविका चूडा ।।४४९।।

४५० । गहादिभ्यश्छरामः ।

गहीयः, नान्तरीयः । एवम्—एकग्राम-अन्तस्थ-सम-विषमेभ्यः ।।४५०।।

४५१ । मध्यस्य मध्यमश्च ।

मध्यमीयः ।।४५१।।

४५२ । पर-जन-देव-राजभ्यः कीयः ।

परकीयमित्यादि चान्द्रमतम् । स्वशब्दात्तु न दृश्यते । तस्मादप्येके, तेन स्वीय, स्वकीयम् । स्वीयमित्यसाधुरिति पशुपतिः ।।४५२।।

४५३ । वेणुकादिभ्यश्छरामो वृष्णीन्द्रश्च

वैणुकीयम्, चैत्रकीयमित्यादि ।।४५३।।

४५४ । पर्व्वताच्छरामः ।

पर्व्वतीयः ।।४५४।।

४५५ । अमनुष्ये तु वा ।

पर्व्वतीयं फलं पार्व्वतं वा ।।४५५।।

४५६ । अर्द्धाद्यरामः, सपूर्व्वान्माधव-ठः ।

अर्द्धयं, माथुरार्द्धिकम् ।।४५६।।

४५७ । परार्द्धादिर्यरामः ।

परार्द्धयम्, अवरार्द्धयम्, अधमार्द्धय, मध्यमार्द्धयम्, उत्तमार्द्धयम् ।।४५७।।

४५८ । दिक्पूर्व्वार्द्धाद्उभौ ।

पौर्व्वार्द्धिकं, पूर्व्वार्द्धयम्, दाक्षिणार्द्धिकं, दक्षिणार्द्धयम् ।।४५८।।

४५९ । ग्रामजनपदैकदेशत्वे तु केशवण-माधवठौ ।

इमेऽस्य ग्रामस्य जनपदस्य वा पौर्व्वार्द्धाः, पौर्व्वार्द्धिकाः ।।४५९।।

४६० । मध्यमादिमावमाधमाः ।

साधवः । मध्य साम्प्रतिके, नात्युच्चैर्नातिनीचैर्मध्यः ।।४६०।।

४६१ । समुद्रद्वीपजातादौ द्वैप्यः ।

साधु ।।४६१।।

४६२ । कालान्माधवठः ।

'संख्याया वर्षस्याभाविनि' (त० प्र० १४) इत्युत्तरपदवृष्णीन्द्रः—द्विवार्षिकः, सांवत्सरिकः ।।४६२।।

४६३ । शारदिकं श्राद्धे रोगातपयोर्व्वा ।

साधु ।।४६३।।

४६४ । नैषिक-प्रादोषिकौ वा ।

साधु ।।४६४।।

४६५ । सन्धिवेलादेः केशवणः, ऋतुनक्षत्राभ्याश्च ।

सान्धिवेलं, सान्ध्यम्, आमावास्यं, त्रायोदशं, चातुर्द्दशं, पौर्णमासं, प्रातिपदम् । सांवत्सरन्तु फलपर्व्वणोरेव । ऋतोः—ग्रैष्मं, शैशिरम् । नक्षत्रात्—तैषं, पौषम् ।।४६५।।

४६६ । प्रावृषेण्यः ।

साधुः ।।४६६।।

४६७ । वर्षाभ्यो माधवठः ।

वार्षिकं, पौर्व्ववर्षिकम् ।।४६७।।

४६८ । हैमन-हैमन्तौ ।

अरामणन्तौ साधू ।।४६८।।

४६९ । सायन्तन-चिरन्तन-प्राह्णेतन-प्रगेतनानि ।

सायादीनां केशवतनान्तानि साधूनि ।।४६९।।

४७० । अव्ययाद्दिवातन-दोषातन-प्रातस्तनादीनि च ।

साधूनि ॥४७०॥

४७१ । चिरत्न-परुत्ने च, अग्रिम-पश्चिमान्तिमानि च ।

साधूनि ॥४७१॥

४७२ । पूर्व्वाह्णेतन-पराह्णेतने वा ।

साधुनी । पक्षे पौर्व्वाह्णिकम् । शैषिकार्थश्चैते ॥४७२॥

४७३ । तत्र जातः ।

अत्र यथास्वं केशवणादयः—माथुरः, राष्ट्रियः, इत्यादि ॥४७३॥

४७४ । प्रावृषष्ठरामः ।

प्रावृषिकः ॥४७४॥

४७५ । शारदकादयो मुद्गादौ, पन्थकः पथि जाते ।

साधवः ॥४७५॥

४७६ । अमावास्याया अरामवुरामौ वा ।

अमावास्यः, अमावास्यकः, आमावास्यम् ॥५७६

४७७ । सिन्धोः सिन्धुक-सैन्धवौ ।

साधू ॥४७७॥

४७८ । श्रविष्ठाफलगुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसु–हस्ताविशाखाषाढाबहुलाभ्यो महाहरः ।

एतत्पर्य्यायाश्च गृह्यन्ते । लक्ष्मीप्रत्ययस्य महाहरः । श्रविष्ठः, फलगुनोऽर्ज्जुनः ॥४७८॥

४७९ । स्वार्थे त्वरामण् १ ।

फाल्गुनः ॥४७९॥

४८० चित्रा-रोहिणी-रेवतीभ्यो लक्ष्म्यां महाहरः, फलगुन्याषाढाभ्यां ठारामयोः ।

चित्रा, रोहिणी, रेवती। एवं फलगुनी, आषाढा ॥४७०॥

४८१ । श्राविष्ठाषाढीयौ वा ।

साधू ॥४८१॥

४८२ । स्थानान्त-गोशाल-खरशालेभ्यो महाहरः ।

गोस्थाने जातो गोस्थानः । एवं गोशालः ॥४८२

४८३। वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषग्भ्यो महाहरो वा ।

वत्सशालो वात्सशालः ॥४८३॥

४८४ । नक्षत्रेभ्य बहुलं महाहरः ।

रौहिणो रोहिणः, मृगशीराः मार्गशीर्षः ॥४८४॥

पूर्णो जातः ।

४८५ । कृतलब्धक्रीतकुशलाः ।

तत्रेति सर्व्वत्रानुवर्त्तते । तत्र कृतादिषु यथास्वं भवति । मथुरायां कृतो लब्धः क्रीतः कुशलो वा माथुरः । एवं राष्ट्रियः ॥४८५॥

४८६ । प्रायभवः ।

अत्रापि यथास्वम् । मथुरायां प्रायेण भवति माथुरः । एवं राष्ट्रियः ॥४८६॥

४८७ । उपजानूपकर्णोपनीविभ्यो माधवठः

औपजानुकः पाणिः । एवम् औपकर्णिकः, औपनीविकः ॥४८७॥

४८८ । स्थितः ।

अत्र च यथास्वम् । माथुरो राजा ॥४८८॥

४८९ । कोषाड्विकारे माधवढः ।

कौषेयं वस्त्रम् ॥४८९॥

४९० । कालात् ।

तत्र भवात् प्राक् । प्रभुरयम् ॥४९०॥

४९१ । साधु-पुष्प्यन-पच्यमानाः ।

साधुरित्याद्यर्थे कालात यथास्वम् । हेमन्ते साधु हैमनं वासः । वसन्ते पुष्प्यति वासन्ती लता । शरदि पच्यन्ते शारदा माषाः ॥४९१॥

४९२ । उप्तः ।

---

१ । स्वार्थे तु केशवणः (क)

अत्र च यथास्वम्। ग्रैष्मः शालिः ॥४९२॥

४९३। आश्वयुज्या वुर्नृसिंहः।

अश्वयुज्यां पूर्णिमायाम् उप्ता आश्वयुजका यवाः ॥४९३॥

४९४। ग्रीष्मवसन्ताभ्यां वा।

ग्रैष्मकं, वासन्तकम्। पक्षे ऋतवरामण् ॥४९४॥

४९५। देयमृणम्।

मासे देयमृणं मासिकम्। ऋणं किम्? मासे देया भिक्षा ॥४९५॥

४९६। ग्रीष्मावरसमाभ्यां वुर्नृसिंहः।

ग्रैष्मकम्, आवरसमकम् ऋणम् ॥४९३॥

४९७। संवत्सराग्रहायणीभ्यां नृसिंहवुमाधवठौ।

सांवत्सरकं, सांवत्सरिकम् ॥४९७॥

४९८। व्याहरति मृगः।

अत्र च यथास्वम्। निशायां व्याहरति मृगो नैशः, नैशिकः ॥४९८॥

अत्रेति निवृत्तम्।

४९९। तदस्य सोढम्।

अत्र च यथास्वम्। निशासहचरितं कर्म्म निशा तत् सोढं जितमभ्यस्तमस्येति नैशो वैष्णवः, नैशिकः 'नैशिक-प्रादोषिकौ वा' (त० प्र० ४६४) इति विकल्पः ॥४९९॥

उक्तं कालात्।

५००। तत्र भवः।

अत्र च यथास्वम्। मथुरायां भवो विद्यमानः माथुरः। एवं राष्ट्रियः। भवोऽयं प्रभुः, प्राक् तत आगतात् ॥५००॥

५०१। दिगादिभ्यो यरामः।

दिश्यं, वन्यं, रहस्यं गण्यम्, अन्त्यं, यूथ्यं, वंश्यम् ॥५०१॥

५०२। शरीरावयवाच्च।

दन्त्यं, तालव्यम्, आस्ये भवम् आस्यम् ॥५०२

५०३। विष्णुजनाद्धरिमित्रस्य हरो हरिमित्रे वा।

आस्यम् ॥५०३॥

५०४। जिह्वामूलीयाङ्गुलीयौ।

साधू ॥

५०५। दृति-कुक्षि-कलशि-वस्ति-अस्ति-अहीत्येतेभ्यो माधव-ढः।

दार्त्तेयम् ॥५०५॥

५०६। ग्रैवग्रैवेयके।

साधुनी ॥५०६॥

५०७। गम्भीर-वहिर्देव-पञ्चजनेभ्यो ण्यरामः

गाम्भीर्य्यम्। 'अव्ययस्यारादादिवर्ज्जम्' (त० प्र० ४८) इति संसारहरः—वाह्यम् ॥५०७॥

५०८। अव्ययीभावाण्ण्यरामः, न तूपकूलादिभ्यः, अन्तःपूर्व्वपदात्तु माधवठः, पर्य्यनुपूर्व्वग्रामाच्च।

पारिमुख्यं, पारिहनव्यम्। नेह—औपकूलः, औपशालः, आन्तर्देहिकः, पारिग्रामिकः ॥५०८॥

५०९। माधव-ठः।

प्रभुरयम् ॥५०९॥

५१०। अध्यात्मादेः।

आध्यात्मिकः, आधिभौतिकः, चातुर्थिकः त्रैवर्णिकः, साम्प्रतिकः, गैरिकमित्यादि ॥५१०॥

५११। समानात्तदादेश्च।

सामानिकः, सामानग्रामिकः ॥५११॥

५१२। ऊर्द्ध्वन्धमोर्द्ध्वदेहाभ्याम्।

और्द्ध्वन्धमिकः, और्द्ध्वदेहिकः ॥५१२॥

५१३। लोकोत्तरपदात्।

ऐहलौकिकः ॥५१३॥

५१४। मुखतसः पार्श्वतसश्छरामः।

मुखतीयः, पार्श्वतीयः ॥५१४॥

५१५। मध्यीय-माध्यम-मध्यमीयाः।

साधवः ॥५१५॥

५१६। मध्यस्य मध्यन्दिनं केशवणश्च।

माध्यन्दिनमुपगायति ॥५१६॥

५१७। थाम्नोऽजिनान्ताच्च महाहरः।

अश्वत्थामा, कृष्णाजिनः ।।५१७।।

५१८। वर्गान्ताच्छरामः।

कवर्गीयः ।।५१८।।

५१९। अशब्दे यराम-खरामौ वा।

कृष्णवर्ग्यः, कृष्णवर्गीणः, कृष्णवर्गीयः ।।५१९।।

५२०। कर्णिका-ललाटिके अलङ्कारे।

साधू ।।५२०।।

उक्तो भवः केवलः।

५२१। तस्य व्याख्यानमिति च व्याख्यातव्यनाम्नः।

तस्य व्याख्यानमित्यर्थे भावार्थे च व्याख्यातव्यनाम्नो यथाविहितं स्यात्। कृतो व्याख्यानं, कृत्सु भवो वा कार्त्तो ग्रन्थः ।।५२१।।

५२२। षात्वणत्विक-कार्त्ततद्धितिकादयः भवव्याख्यानयोर्माधवठान्ताः साधवः ।।५२२।।

५२३। क्रतुभ्यो यज्ञादिभ्यश्च माधवठः।

आग्निष्टोमिकः, राजसूयिकः, पाञ्चौदनिकः ।।५२३

५२४। ऋषिशब्दादध्याये।

वाशिष्टिकोऽध्यायः ।।५२४।।

५२५। पौरोडाश-पुरोडाशाभ्यां केशवठः।

पौरोडाशिकी, पुरोडाशिकी ।।५२५।।

५२६। छन्दसो यरामाणौ १।

छन्दस्यः, छान्दसः ।।५२६।।

५२७। द्विसर्व्वेश्वर-ऋराम-ब्राह्मण-ऋच्-प्रथम-अध्वर-पुरश्चरण-नामाख्यात इत्येभ्यो माधवठः।

नैष्ठिकः, चातुर्होतृकः, ब्राह्मणिकः, आर्च्चिक इत्यादि। नामाख्यातान्—नामाख्यातिकः, विगृहीताच्च नामिकः, आख्यातिकः, आख्यातनामिकः ।।५२७।।

५२८। ऋगयणादेः केशवणः।

आर्गयणः, नैरुक्तः, शैक्षः, नैगमः, वैयाकरणः, यौगः, पादः ।।५२८।।

भवव्याख्याने निवृत्ते।

५२९। तत आगतः।

अत्रापि यथास्वम्। माथुरः, राष्ट्रियः। प्रभुरयं प्रभवतीति यावत् ।।५२९।।

५३०। आयस्थानेभ्यो माधवठः, शुण्डिकादिभ्यस्तु केशवणः।

आपणादागतः आपणिकः। एवं शौविलकः। एवं शौण्डिकः, कार्कशः ।।५३०।।

५३१। विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुर्नृसिंहः, ऋरामात्तु माधवठः, पितुर्यरामश्च।

औपाध्यायकः, शैष्यकः, पैतामहकः, मातुलकः तथा हौतृकः, मातृकः, पैतृकः। 'ऋरामस्य रो ये' (त० प्र० ६४)—पित्र्यः ।।५३१।।

५३२। गोत्राद्वुर्नृसिंहः।

अपत्याधिकारादन्यत्र गोत्रमपत्यमात्रमिति काशिका। औपगवेभ्य आगतः औपगवकः कुरुभ्यः आगतः कौरवकः ।।५३२।।

५३३। हेतोर्मानवनाम्नश्च रूप्यो वा मयट् च।

समादागतः समरूप्यः, विषमरूप्यः, पक्षे गहादित्वाच्छः—समीयः, विषमीयः। तथा विष्णुदत्तरूप्यः, वैष्णुदत्तः। तथा सममयः, विष्णुदत्तमयः ।।५३३।।

तत आगतो निवृत्तः।

५३४। ततः प्रभवति।

अत्रापि यथास्वम्। हैमवती गङ्गा ।।५३४।।

५३५। विदूराण्ण्यरामः।

वैदूर्यः ।।५३५।।

५३६। तद्गच्छति पथिदूतयोः।

अत्र च यथास्वम्। माथुरः पन्थाः, द्वारकीयो दूतः ।।५३६।।

१। यराम-केशवणौ (क)

५३७। अभिनिष्क्रामति द्वारम्।

अत्रापि यथास्वम्। मथुरामभिनिष्क्रामति द्वारं माथुरम्। उपचाराद्द्वारं कर्त्तृ ॥५३७॥

५३८। अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः।

अत्र च यथास्वम्। सुभद्रामधिकृत्य कृतो ग्रन्थः सौभद्रः। एवं भैमरथी आख्यायिका। साहचर्य्यात्—वासवदत्ता, कादम्बरी ॥५३८॥

५३९। शिशुक्रन्दाद्यमसभाद्
रामकृष्णसमासादिन्द्रजननादेश्च छरामः।

शिशुक्रन्दं रोगमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शिशुक्रन्दीयः यमसभीयः, किरातर्ज्जुनीयः, इन्द्रजननीयः। आदेः—शिष्योपनयनीयोऽध्यायः, सीतान्वेषणीयं काव्यम्, प्रद्युम्नागमनीयम्। आकृतिगणोऽयम् ॥५३९॥

५४०। रामकृष्णे देवासुरादेः प्रतिषेधः।

दैवासुरं, गौणमुख्यम् ॥५४०॥

५४१। सोऽस्य निवासः।

अत्र च यथास्वम्। माथुरः, राष्ट्रियः ॥५४१॥

५४२। सोऽस्याभिजनः।

अत्र च यथास्वम्। मथुराभिजनः कुलस्थानमस्य माथुरः ॥५४२॥

५४३। पर्व्वतेभ्यश्छ आयुधजीविनि।

मन्दारः पर्व्वतोऽभिजन एषामायुधजीविनाम्—मन्दारीयाः ॥५४३॥

५४४। शण्डिकादेर्ण्यः।

शाण्डिक्यः, साङ्काश्यः ॥५४४॥

५४५। सिन्धु-तक्षशीलादिभ्यः केशवणः।

सैन्धवः, ताक्षशीलः, काश्मीरः ॥५४५॥

५४६। भक्तिः।

भज्यते सेव्यते भक्तिः। अत्रापि यथास्वम्। विष्णुर्भक्तिरस्य वैष्णवः। एवं माथुरः ॥५४६॥

५४७। अचित्तादेशकालान्माधवठः,
महाराजाच्च।

आपूपिकः। नेह—माथुरः, ग्रैष्मः। तथा महाराजिकः ॥५४७॥

५४८। वासुदेवार्ज्जुनाभ्यां वुरामः।

वासुदेवकः, आर्ज्जुनकः ॥५४८॥

५४९। गोत्रक्षत्रियाख्याभ्यां बहुलं वुर्नृसिंहः

माधवकः, यौधिष्ठिरकः। बाहुल्यात् क्वचिन्न पाणिनीयः, पौरवीयः ॥५४९॥

५५०। बहुवचनविषयाज्जनपदाद्विहितस्तत्-
सनामराजभ्यः।

अङ्गानां निवासोऽङ्गाः। तत्र जातः, आदिवृष्णीन्द्रादपीति वुर्नृसिंहः आङ्गकः। तद्वदङ्गा राजानो भक्तिरस्य आङ्गकः। भक्तिशब्दोऽत्र वेदाः प्रमाणमितिवत् ॥५५०॥

भक्तिर्निवृत्ता।

५५१। तेन प्रोक्तं।

अत्रापि यथास्वम्। अन्येन कृता, माथुरेण प्रोक्ता, व्याख्याता—माथुरी वृत्तिः ॥५५१॥

५५२। तित्तिर्य्यादिना प्रोक्तं छन्दः
आद्यधीयते विदन्ति वा।

तित्तिर्य्यादिभ्योऽस्मिन्नर्थे वक्ष्यमाणप्रत्ययाः स्युः एतद्विवरणमाह ॥५५२॥

५५३। तित्तिर-वरतन्तु—खण्डिकेभ्यो
नृसिंह-छः।

तित्तिरिणा प्रोक्तं छन्दोऽधीयते विदन्ति वा तैत्तिरीयाः ॥५५३॥

५५४। काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः,
कलापिवैशम्पायनयोरन्तेवासिभ्यश्च।

काश्यपिनः कौशिकिनः। तथा हरिद्रविणः आलम्बिन इत्यादि। एवमन्येऽपि ॥५५४॥

५५५। कठचरकाभ्यां महाहरः।

कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः ॥५५५॥

५५६। कलापिनः कालापाः।

साधवः ॥५५६॥

५५७। पाराशर्य्यशिलालिभ्यां
णिनिर्भिक्षुनटसूत्रयोः।

पाराशर्य्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते पाराशरिणो भिक्षवः। एवं शैलालिनो नटा ॥५५७॥

५५८। कर्म्मन्द-कृशाश्वाभ्यामिनिस्तयोः।

कर्म्मन्दी भिक्षुः, कृशाश्वी नटः ॥५५८॥

गतं प्रोक्ताध्ययनादि।

५५९। तेनैकदिक्।

अत्रापि यथास्वम्। सुदाम्ना पर्व्वतेन एव दिक् सौदामनी विद्युत्। एवं कार्ष्णास्तद्भक्ताः ॥५५९॥

५६०। तसिश्च।

पूर्व्वार्थे तसिश्च स्यात्। सुदामतः, कृष्णतः। वदादित्वादव्ययमिदम् ॥५६०॥

५६१। उरसस्तसियौ।

उरस्तः, उरस्यः ॥५६१॥

५६२। उपज्ञातम्।

अत्रापि यथास्वम्। तेनेत्यनुवर्त्तते तस्येदमित्यतः प्राक्। पाणिनिनोपज्ञातं प्रथमकृतं पाणिनीयम्, कालापं व्याकरणम्। एवं कार्ष्णी गीता। तद्वद्भागवतम् ॥५६२॥

५६३। कृतो ग्रन्थः।

अत्रापि यथास्वम्। भागवती चतुःश्लोकी ॥५५३॥

५६४। कृते संज्ञायाम्।

अत्रापि यथास्वम्। माक्षिकं मधु। एवं क्षौद्रमित्यादि[1] ॥५६४॥

५६५। इन्द्रियादिभ्यो वुर्नृसिंहः।

ऐन्द्रियकं ज्ञानम् ॥५६५॥

तेनेति निवृत्तम्।

५६६। तस्येदम्।

अत्र च यथास्वम्। हरेरिदं हारम्। तस्येदमित्यनुवर्त्तते विकारं यावत् ॥५६६॥

५६७। रथाद् यरामः, वाहनपूर्व्वात् केशवणः।

रथ्यं, परमरथ्यम्। तथा आश्वरथं चक्रम् ५६७

५६८। हलसीराभ्यां माधवठः।

हालिकम् ॥५६८॥

५६९। रामकृष्णाद्वुर्वैरविवहनयोर्लक्ष्म्याम्।

काकोलुकिका, अत्रिभरद्वाजिका। दैवासुरमित्यत्र तु न दृश्यते ॥५६९॥

५७०। गोत्रचरणाभ्यां वुर्नृसिंहः, न तु दण्डमानवान्तेवासिषु।

गार्गकम्। चरणाद्धर्म्माम्नाययोरेव। काठकं कालापकम्। दण्डमानवादौ तु गौकक्षाः, दण्डमानवाः। दाक्षा अन्तेवासिनः ॥५७०॥

५७१। सङ्घाङ्कलक्षणघोषेषु वैद-गार्ग्य-दाक्षि-प्रभृतिभ्यः केशवणः शाकलान्नृसिंहवुश्च

विदानां सङ्घोऽङ्को लक्षणं घोषं वा वैदः। गार्गः दाक्षः। तथा शाकलकः, शाकलः ॥५७१॥

५७२। छन्दोगौक्थिक-याज्ञिक-बह्वृच-नटेभ्यो ण्यरामः।

सामान्येन तस्येदमित्यर्थे। धर्म्माम्नाययोरित्येके छान्दोग्यम् ॥५७२॥

५७३। रैवतिकादिभ्यश्छरामः।

रैवतिकीयम् ॥५७३॥

५७४। कौपिञ्जल-हास्तिपादाभ्यां केशवणः

कौपिञ्जलं, हास्तिपादम् ॥५७४॥

५७५। आथर्व्वणिकस्येकलोपश्च।

आथर्व्वणो धर्म्मः आम्नायो वा ॥५७५॥

पूर्णः शेषाधिकारः।

५७६। तस्य विकारः।

अत्रार्थे यथाविहितं प्राग्दीव्यतीयः स्यात्। आश्मनः, आग्नेयः, स्त्रैणः ॥५७६॥

५७७। अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः।

एभ्यो विकारेऽवयवे च यथास्वं स्यात्। प्राणिनः—मयूराणां विकारोऽवयवो वा मायूरः। भक्ष्याच्छादनयोरेव, अन्यत्र तु मयूरमयञ्च,

[1]। क्षात्रमित्यादि (क)

वक्ष्यमाणानुरोधात्। ओषधेः—मौर्वं भस्म, मौर्वं काण्डम्। वृक्षात्—आश्वत्थम्। अतः परं प्राण्यादिभ्यो विकारावयवयोः प्रत्ययः, अन्येभ्यस्तु विकारमात्र इति ज्ञेयम् ॥५७७॥

५७८। त्रपु-जतुनोस्त्रापुष-जातुषे।
साधुनी ॥५७८॥

५७९। शम्याः शमीनश्च।
शमीनी स्रुक् ॥५७९॥

५८०। मयड् वा विकारावयवयोरभक्ष्याच्छादनयोः।*
विकारे—सुवर्णमयः, सौवर्णः। विकारावयवयोः—मयूरमयं, मायूरं, मूर्व्वामयं मौर्वम्। 'अभक्ष्याच्छादनयोः' किम्? मौद्गः सूपः, कार्पासं वासः ॥५८०॥

५८१। आदिवृष्णीन्द्रात् शरादेश्च मयट्
आम्रमयं, शालमयं, शरमयं, मृण्मयं, दर्भमयं, वृषमयम् ॥५८१॥

५८२। एकसर्व्वेश्वराच्च।
वाङ्मयं, त्वङ्मयं, स्रङ्मयम् ॥५८२॥

५८३। प्राणिभ्यो रजतादेश्च केशवणः।
मयडपवादः। मायूरं, राजतं, शैशं, लौहम्, औडुम्बरम्। 'पुरीं द्रक्ष्यथ काञ्चनीम्' ॥५८३॥

५८४। कौषेयं वस्त्रे, गोमयं गोः पुरीषे।
गव्यमन्यत्र ॥५८४॥

५८५। पिष्टकः पिष्टिका च संज्ञायाम्।
अन्यत्र तु पिष्टमयम् ॥५८५॥

५८६। व्रीहिमयः पुरोडाशे।
व्रैहमन्यत् ॥५८६॥

५८७। तैलं यावश्च संज्ञायाम्।
अन्यत्र तु तिलमयं, यवमयम् ॥५८७॥

५८८। तालादेः केशवणः।
मयडाद्यपवादः। तालं धनुः ॥५७८॥

५८९। सुवर्णवाचिभ्यः परिमाणे केशवणः
परिमाणरूपे विकार इति योज्यम्। हाटको निष्कः, जातरूपं कार्षापणम्। परिमाणे किम्? हाटकमयी यष्टिः ॥५८९॥

५९०। विकाराद्यर्थदैवदारवादेः केशवणः
दैवदारवस्य विकारोऽवयवो वा दैवदारवः। एवं शामीनः, कापित्थः, दाधित्थः, पालाशः खादिरः। एवमूरामप्रकृतिकाः सर्व्वे। तथा प्राणिरजतादयश्च ज्ञेयाः ॥५९०॥

५९१। परिमाणात् क्रीतवत्।
सङ्ख्याप्यत्र परिमाणतया गृह्यते, तस्माद्विकारे क्रीतस्येव प्रत्यया वाच्याः। यथा निष्केण क्रीतस्तथा निष्कस्य विकारोऽपि नैष्किकः, शत्यः, शतिकः ॥५९१॥

५९२। महाहरश्च क्रीतवत्।
द्विसहस्रः, द्विसाहस्रः ॥५९२॥

५९३। उष्ट्राद्वुर्नृसिंहः उमोर्णयोर्वा।
उष्ट्रस्यावयवो विकारो वा औष्ट्रकः, औमकम्, औमम्, और्णकम् और्णम् ॥५९३॥

५९४। एण्या माधवढः।
ऐणेयम्। एणात्तु ऐणः ॥५९४॥

५९५। गव्यपयस्ये।
साधुनी ॥५९५॥

५९६। दोर्द्रव्यं साधु, द्रोर्मानि द्रुवयं साधु

५९७। फले।
प्रभुरयम् ॥५९७॥

५९८। महाहरः।
विकारावयवयोरुक्तस्य फले महाहरः स्यात्। लक्ष्मीप्रत्ययस्येति वदर्या विकारोऽवयवो वा फलं वदरम्। एवं कुवलम्, आमलकम् ॥५९८॥

५९९। प्लक्षादेः केशवणः।
प्लाक्षं, नैयग्रोधं, काकुभं, वार्हतम्, आश्वत्थं,

---

* मयड् विकारे प्राचुर्य्ये स्वरूपे प्रस्तुतेऽपि च। भागाधिक-मूल्यमस्येत्यर्थे संख्यार्थकाद् मयट् ॥

वैणवम् ।।५६६।।

६०० । जम्ब्वा केशव-णो[1] महाहरस्मरहरौ च वा ।

जाम्बवं फलम् । महाहरे—जम्बु फलं, जम्बूनि फलानि, स्मरहरे—जम्बू: फलं, जम्ब्व: फलानि ।।६००।।

६०१ । फलपाकशुषश्च स्मरहर: ।

यवादीनां फलानि यवा: । तिला:, मुद्गा: ।।६०१

६०२ । पुष्पफलमूलेषु स्मरहरो बहुलम् ।

मल्लिका, करवोरं[2], जाती पुष्पं, क्रमुक फलं, विदारी मूलम् । एवं हरितक्यादय: । बाहुल्यात् पाटलमाशोकं पुष्पं, वैल्वानि फलानि ।।६०२।।

उक्तं विकारावयवयो: प्राग्दीव्यतीयाश्च समापिता:

६०३ । तद्वहतीत्यत: प्राङ्माधवठ: ।

विभुरयम् ।।६०३।।

६०४ । तेन दीव्यति खनति जयति जितम्

तेनेत्यनुवर्त्तते ओजोयावत् यत्नान्यन्नास्ति । चक्रेण दीव्यति खनति जयति जितं वा चाक्रिक: । अक्षैर्जितम् आक्षिकं द्रव्यमित्यपि ।।६०४।

६०५ । तदाहेति माशब्दादिभ्य: ।

मा शब्दमाह—माशब्दिक: । एवं नैत्यशब्दिक: प्रभूतात् प्राभूतिक:, पर्य्याप्तात्, पार्य्याप्तिक: ।।६०५।।

६०६ । सुस्नातादिकं पृच्छति ।

सौस्नातिक:, सौखरात्रिक: ।।६०६।।

६०७ । परदारादिकं गच्छति ।

पारदारिक:, गौरुतल्पिक: ।।६०७।।

६०८ । संस्कृतम् ।

दध्ना संस्कृतं दाधिकम् ।।६०८।।

६०९ । कुलत्थ-करामोद्भवाभ्यां केशवण: ।

कौलत्थं, तैन्तिडीकम् ।।६०९।।

६१० । तरति ।

तृणपुलेन तरति तार्णपुलिक: ।।६१०।।

६११ । नौद्विसर्व्वेश्वराभ्यां ठराम: ।

नाविक:, घटिक:, बाहुक: क्षीविक: ।।६११।।

६१२ । चरति ।

चरतिर्भक्षणे गतौ च । दाधिक:, शकटिक: ।।६१२

६१३ । आकर्षादे: केशवठ: ।

आकर्षिक:, पर्पिक:, रथिक:, आश्विक:, आकर्षिकी ।।६१३।

६१४ । श्वगणात् केशवमाधवठौ ।

श्वगणिको, श्वागणिकी ।।६१४।।

चरतीति निवृत्तम् ।

६१५ । वेतनादिना जीवति ।

वैतनीक:, जालिक:, भारिक:, वार्त्तिक: ।।६१५

६१६ । वस्नक्रयविक्रयेभ्यष्ठराम: ।

वस्नेन जीवति वस्निक:, क्रयविक्रयिक: । विगृहीताच्च क्रयिको, विक्रयिक: ।।६१६।।

६१७ । आयुधाच्छठौ ।

आयुधीय:, आयुधिक: ।।६१७।।

६१८ । उत्सङ्गादिना हरति ।

औत्सङ्गिक:, औडुपिक: ।।६१८।।

६१९ । भस्त्रादे: केशवठ: विवधवीवधाभ्यां वा

भस्त्रिकी, विवधिकी[1] ।।६१९।।

६२० । कुटिलिकाया: केशवण: ।

कुटिलिकया गत्या हरति कौटिलिक: ।।६२०।।

६२१ । अक्षद्यूतादिना निर्वृत्तम् ।

आक्षद्युतिकं वैरं, जाङ्घाघातिकम् ।।६२१।।

६२२ । भावप्रत्ययात् प्राय इम: ।

पाकेन निर्वृत्तम् पाकिम:, कुट्टिमा भूमि:, सेकिमा तुलसी । एवं करिमा । पूर्णेन पूर्णिमा ६२२

६२३ । अपमित्येत्यस्मात् नृसिंहक: ।

अपमित्येन निर्वृत्तम् आपमित्यकं कम्बलम् ।।६२३।।

६२४ । याचितात् कराम: ।

याचितकम् ।।६२४।।

---

१ । जम्ब्वा णो (ख ग घ) २ । करवीरकं (क) १ । वैवधिकी (क)

६२५। संसृष्टम्।

दध्ना संसृष्टमेकीकृतं दाधिकम् ॥६२५॥

६२६। चूर्णादिनिः।

चूर्णिनोऽपूपाः ॥६२६॥

६२७। मुद्गात् केशवणः।

मौद्गः, सूपः ॥२२७॥

६२८। लवणान्महाहरः।

लवणा यवागूः ॥६२८॥

६२९। व्यञ्जनेनौपसिक्तम्।

दाधिकम्, सार्पिष्कम् ॥६२९॥

६३०। ओज आदिना वर्त्तते।

औजसिकः, साहसिकः, आम्भसिकः ॥६३०॥

तेनेति निवृत्तम्।

६३१। द्विगुणार्थं प्रयच्छति गर्हा चेत्।

द्विगुणार्थं प्रयच्छति द्वैगुणिकः। अत्राल्पकालत्वं तेन गर्ह्यत्वञ्च गम्यम्। वृद्धये प्रयच्छति वार्द्धुषिकः साधुः ॥६३१॥

६३२। कुसीदं प्रयच्छति कुसीदिकः, एकादशार्थं दश प्रयच्छति दशैकादशिकश्च गर्हायाम्।

केशवठरामेण साधू ॥६३२॥

६३३। शब्दर्दुरौ करोति।

शाब्दिको वेणुः, दार्दुरिकः शिल्पी ॥६३३॥

६३४। पक्षि-मत्स्य-मृगान् हन्ति।

स्वरूपस्य पर्य्यायस्य तद्विशेषाणाञ्चेहेष्यते। पाक्षिकः, शाकुनिकः, मायूरिकः, मात्सिकः, मैनिकः, माद्गुरिकः, मार्गिकः, हारिणिकः, सारङ्गिकः ॥६३४॥

६३५। परिपन्थश्च तिष्ठति।

परिपन्थशब्दोऽव्ययीभावः, अतएव निपातनात् साधुः। तत्तिष्ठति चकारान्नाहन्ति वा पारिपन्थिकश्चौरादि ॥६३५॥

६३६। माथोत्तरपदं पदवीमनुपदमाक्रन्दञ्च धावति।

माथः पन्थाः। दान्तमाथिकः, पादविकः, आनुपदिकः, आक्रन्दिकः ॥६३६॥

६३७। पदोत्तरपदं प्रतिकण्ठमात्मानं ललामञ्च गृह्णाति।

पौर्व्वपदिकः औत्तरपदिकः, प्रातिपदिकः, प्रातिकण्ठिको वल्लभः, आत्मिकः, लालामिकः ६३७

६३८। धर्म्ममधर्म्मञ्च चरति।

धार्म्मिकः, अधार्म्मिकः ॥६३८॥

६३९। प्रतिपथमेति ठरामश्च।

प्रतिपथिकः, प्रातिपथिकः ॥६३९॥

६४०। समवायादीन् समवैति।

सामवायिकः, सामूहिकः, सामुदायिकः ॥६४०॥

६४१। परिषदः समवैति ण्यः, सेनाया वा

पारिषद्यः, सैन्यः, सैनिकः ॥६४१॥

६४२। यः प्रभोर्ल्ललाटमात्रं पश्यति न तु कार्य्ये व्याप्रियते, स लालाटिकः, यस्त्वविक्षिप्तदृष्टिः कुक्कुटीपातयोग्यमल्पदेशं पश्यन् गच्छति, स कौक्कुटिकः।

द्वौ च साधू ॥६४२॥

६४३। प्रतीपादिकं वर्त्तते।

प्रतीपं यथा स्यात्तथा वर्त्तते प्रातीपिकम्। एवमान्वीपिकः, प्रातिलोमिकः, आनुलोमिकः। "तां प्रातिकूलिकीं मत्वा" इति भट्टिः (५।६४)। पारिमुखिकः, पारिपार्श्विकः ॥६४३॥

६४४। तदुश्वति।

पौष्पिकः ॥६४४॥

६४५। तद्रक्षति।

सामाजिकः ॥६४५॥

६४६। तस्य धर्म्म्यम्।

शुक्लस्य धर्म्म्यमाचारः शौक्लिकः। एवमापणिकः ॥६४६॥

६४७। महिष्यादे केशवणः।

महिष्या धर्म्म्यं मूल्यं माहिषम्। तथा पौरोहितं कर्म्म। एवं प्राजापतम् ॥६४७॥

६४८ । ऋत्विग्रामात् केशवणः ।

होतुर्धर्म्म्यं हौत्रम् ॥६४८॥

६४९ । विशसितुर्वैशस्त्रं, विभाजयितुर्वैभाक्तम्

इणिलोपाभ्यां साधुनी ॥६४९॥

६५० । तस्यावक्रयः ।

शुक्लस्यावक्रयः परिभाषितं मूल्यं शौक्लिकः पशुः । एवमापणिकः ॥६५०॥

६५१ । तदस्य पण्यम् ।

मोदकाः पण्यमस्य मौदकिकः, लावणिकः ॥६५१

६५२ । किशरादे केशवठः ।

किशरादि गन्धद्रव्यं, तदस्य पण्यं किशरिकः उशीरिकः ॥६५२॥

६५३ । तदस्य शिल्पम् ।

मृदङ्गवाद्यं शिल्पमस्य मार्द्दङ्गिकः । एवं वैणविकः ॥६५३॥

६५४ । मड्डुक-झर्झराभ्यां केशवणश्च ।

माड्डुकः, माड्डुकिकः ॥६५४॥

६५५ । तदस्य प्रहरणम् ।

चाक्रिकः ॥६५५॥

६५६ । शक्तियष्टिभ्यां ठीमाधवः ।

शाक्तीकः ॥६५६॥

६५७ । अस्ति-नास्ति-दिष्टं मतिरस्य ।

आस्तीति मतिरस्य आस्तिकः । एवं नास्तिकः । दिष्टं प्रमाणं दैष्टिकः ॥६५७॥

६५८ । तदस्य शीलम् ।

अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः । परुषं शीलमस्य पारुषिकः, एवमाक्रोशिकः, कारुणिकः ॥६५८॥

६५९ । छत्रादिभ्यः केशवणः ।

गुरुदोषाच्छादनाच्छत्रं शीलमस्य छात्रः, शैक्षः तापसः, चुरा चौरः ॥६५९॥

६६० । इदं भक्ष्यं हितमस्मै ।

आपूपिकः ॥६६०॥

६६१ । कर्म्माध्ययने वृत्तमस्य ।

एकमन्यदध्ययने ष्वपपाठलक्षणं कर्म्म वृत्तमस्य तद्धितार्थेति समासः ऐकान्यिकः । एवं द्वैयन्यिकः, ऐकरूपिकः, ऐकग्रन्थिकः ॥६६१॥

६६२ । बहुसर्व्वेश्वर-पूर्व्वपदात् ठरामः

द्वादशान्यिकः, त्रयोदशग्रन्थिकः ॥६६२॥

६६३ । तदस्मै दीयते नियुक्तम् ।

नियुक्तं कल्पितमग्रभोजनमस्मै दीयते— आग्रभोजनिकः । एवं प्राथमकल्पिकः ॥६६३॥

६६४ । श्राणामांसौदनाभ्यां मांसादोदनाच्च केशवठः ।

श्राणिकः, मांसौदनिकः ॥६६४॥

६६५ । भक्तात् केशवणो वा ।

भाक्तः, भाक्तिकः ॥६६५॥

६६६ । तत्र नियुक्तः ।

दौवारिकः, सैनिकः ॥६६६॥

६६७ । आगारान्तात् ठरामः ।

देवागारिकः ॥६६७॥

६६८ । अदेशकालयोरधीते ।

श्मशानेऽधीते श्माशानिकः । एवं चातुष्पथिकः, तथा चातुर्द्दशिकः, आष्टमिकः ॥६६८॥

६६९ । कठिनान्त-प्रस्ताव-संस्थानेषु व्यवहरति ।

वंशकठिने व्यवहरति वांशकठिनिकः । एवं प्रास्ताविकः, सांस्थानिकः ॥६६९॥

६७० । निकटे वसति ।

नैकटिकः ॥६७०॥

६७१ । आवसथात् केशवठः ।

आवसथिकः ॥६७१॥

निवृत्तो माधवठः ।

६७२ । प्राग् हितादयरामः ।

तस्मै हितमित्यतः प्रागर्थे यरामो वाच्यः ॥६७२

६७३ । तद्वहति ।

प्रभुरयम् ॥६७३॥

६७४। रथान्त-युग-प्रासङ्गेभ्यः।

द्वौ रथौ वहति तद्धितार्थे त्रिरामी। द्विरथ्यः, युग्यः, प्रासङ्ग्यः ॥६७४॥

६७५। धुरो यराम-माधवढौ।

धुर्यो धौरेयः ॥६७५॥

६७६। सार्व्वधुरीणोत्तरधुरीणौ साधू, एकधुरः एकधुरीणश्च साधू।

६७७। शकटान् केशवणः।

शाकटः, द्वैशकटः ॥६७७॥

६७८। हलसीराभ्यां माधवठः।

हालिकः, द्वैहलिकः ॥६७८॥

६७९। जन्या जामातुर्वयस्येषु जनीं वधूं वहन्तीत्यर्थे।

साधवः ॥६७९॥

तद्वहतीति निवृत्तम्।

६८०। तद्विध्यति न चेद्धनुषा पादस्य पद्यः

ऊरू विध्यति ऊरव्यः। एवं पद्यः। नेह—दैत्यं विध्यति धनुषा।॥६८०॥

६८१। धनं गणं वा लब्धा।

लब्धेति तृणन्तम्। धन्यो, गण्यः ॥६८१॥

६८२। अन्नाण्णरामः।

आन्नः ॥६८२॥

६८३। वशं गतः।

वश्यः ॥६८३॥

६८४। पदमस्मिन् दृश्यं पद्यः।

साधुः। पद्यं, स्थलं, पद्या भूमिः ॥६८४॥

६८५। मूलमेषां सुखोत्पाट्यम्।

मूल्या मुद्गादयः ॥६८५॥

६८६। धेनुष्या गौर्महिषी वा या दुग्धबन्धके स्थिता।

६८७। गार्हपत्योऽग्निभेदे, नाव्यं नौतार्य्ये जले, वयस्यो वयसा तुल्ये, धर्म्म्यो धर्म्मप्राप्ये विष्यो विषेण बध्ये, मूल्यं मूलेनाभिभाव्ये मूलेन समे च, सीत्यं सीतया सम्मिते, तुल्यं तुलया सम्मिते, रथसीताहलेभ्यो यविधौ तदन्तविधिः।

६८८। धर्म्मपथ्यर्थन्यायेभ्योऽनपेते।

धर्म्म्यं, पथ्यम् ॥६८८॥

६८९। छन्दसा निर्म्मितं छन्दस्यम्।

६९०। उरसः केशवणश्च।

औरसः उरस्यः ॥६९०॥

६९१। हृदयात् प्रिये।

हृद्यः। 'पुत्रेऽनभिधानम्' इति पुरुषोत्तमः भाषावृत्तिः ४।४।९५)। वशीकरणमन्त्रे चायम् ॥६९१

६९२। मत्यो मतस्य करणे, जन्यो जनस्य जल्पे, हल्यो हलस्य कर्षे।

६९३। तत्र साधुः।

सामान्यो विप्रः। एवं ब्रह्मण्यः, सभ्यः ॥६९३॥

६९४। प्रतिजनादेर्नृसिंह-खः।

प्रातिजनीनः, सांयुगीनः ॥६९४॥

६९५। भक्ताण्णः।

भाक्तास्तण्डुलाः ॥६९५॥

६९६। परिषदो ण्यकेशवणौ।

पारिषद्यः, पारिषदः ॥६९६॥

६९७। कथादेर्माधवठः।

काथिकः, वैकत्थिकः, वार्त्तिकः। एवं गौडिकः सांग्रामिकः ॥६९७॥

६९८। पथ्यतिथि-वसति-स्वपतिभ्यो माधवढः।

पाथेयम् ॥६९८॥

६९९। सतीर्थ्यः समानगुरौ समानदर्शने च समानोदर्य्यसोदर्य्यौ समानमातृके।

७००। सगर्भादौ भवः।

सगर्भ्यं, सयूथ्यम्, अग्र्यम् ॥७००॥

७०१ । अग्रीयाग्रियौ च साधू ।

७०२ । दूताद्भावकर्म्मणोः ।

दूत्यम् ॥७०२॥

७०३ । अस्त्यर्थे मधु-माधवादयश्चैत्रादिषु

साधवः । मध्वस्त्यत्र मधुश्चैत्रः, माधवो वैशाखः नभांसि मेघाः सन्त्यत्र नभाः श्रावणः, नभस्यो भाद्रः एवं सहा मार्गः, सहस्यः पौषः, तपा माघः, तपस्यः फाल्गुनः ॥७०३॥

७०४ । इषप्रभृतयो मासि संज्ञाशब्दाः ।

इषः, ऊर्ज्जः, शुचिः, शुक्रः ॥७०४॥

७०५ । शिवातातिप्रभृतयोः शिवादिकरे ।

आदिना यमतातिः, विष्णुतातिः । षष्ठीकृष्णपुरुषेण साधवः ॥७०५॥

प्रागघिनादिति निवृत्तम्

७०६ । प्राक् क्रीताच्छरामः, उद्वयगवादिभ्यो यरामः ।

क्रीतात् प्राक् छो वाच्यः । उद्वयात् गवादेश्च पुनर्यराम इति ॥७०६॥

७०७ । गवादौ नाभेर्नभश्च, शुनः सङ्कर्षणस्तस्य त्रिविक्रमश्च वा, ऊधस ऊधनश्च ।

नाभ्यर्था प्रकृतिः काष्ठं नभ्यम्, शुने हितं शून्यं शुन्यम्, ऊधन्यम् ॥७०७॥

७०८ । हविरपूपादयश्च गवादिषु वा ।

हविष्यं, हविषीयम्, आमिक्ष्यम्, आमिक्षीयं दधि, पुरोडाश्यं, पुरोडाशीयम् । अपूपादेः— अपूप्यम्, अपूपीयम्, तण्डुल्यं, तण्डुलीयम्, स्वर्य्याः, स्वरीयाः ॥७०८॥

७०९ । कम्बल्यमूर्णापलशते साधु ।

७१० । तस्मै हितम् ।

अत्रार्थे यथाविहितं स्यात् । कृष्णीयं, विष्णव्यं गव्यम्, महिष्यमित्यादि । अतिगव्यादि च ॥७१०॥

७११ । शरीरावयवाद्यरामः ।

दन्त्यं, कर्ण्यं[1], राजदन्त्यादि च ॥७११॥

७१२ । खल-यव-मास-तिल-वृष-रथ-ब्रह्मभ्यो यरामः ।

खल्यम् ॥७१२॥

७१३ । अजाविभ्यां थ्यः ।

अजथ्यम्, अविथ्यम् ॥७१३॥

७१४ । विश्वजनात्मभोगोत्तरपदेभ्य खरामः ।*

विश्वजनीनः, आत्मनीनः, स्वभोगीनः, मातृभोगीनः—क्षुभ्नादिरयम् । "भोगः शरीरम्" इति स्मृतिः ॥७१४॥

७१५ । पञ्चजनाच्च ।

गायन-वादक-नर्त्तक-दासी-भण्डरतः खलु पञ्चजनीनः ॥७१५॥

७१६ । सर्व्वजनान्माधवठश्च ।

सार्व्वजनिकः, सर्व्वजनीनः ॥७१६॥

७१७ । महाजनान्माधवठः ।

माहाजनिकः । विश्वजनादेः, श्यामरामेऽभिधानम् ॥७१७॥

७१८ । सर्व्वात् णरामो वा ।

सार्व्वः, सर्व्वीयः ॥७१८॥

७१९ । पुरुषात् बधविकारसमूहेषु तेन कृते च माधवढः ।

पौरुषेयो बधादिः ॥७१९॥

७२० । मानवचरकाभ्यां नृसिंहखः ।

मानवीनं, चारकीणम् ॥७२०॥

हितं निवृत्तम् ।

७२१ । विकृतेस्तदर्थायां प्रकृतौ ।

---

१ । कण्ठ्यम् (क) * तस्मै विश्वजनीनाय यास्तद्भोगीनमाहरन् । ता एवासन्नात्मनीना दीनास्तु वत मादृशाः ॥ श्रीगोपालचम्पूः, पूः २२।३७)

यथाविहितं स्यात्। धूपाय इदं धूपीयमगुरु। एवं यूपीयं दारु, शङ्कव्यं काष्ठम् ॥७२१॥

७२२। छदिर्बलिभ्यां माधवढः।

छादिषेयाणि तृणानि, बालेयास्तण्डुलाः। औपधेयन्तु स्वार्थ एव।७२२॥

७२३। ऋषभोपानद्भ्यां ण्यः।

आर्षभ्यो वत्सः, औपानह्यं मुञ्जादि ॥७२३॥

७२४। चर्म्मविकृतेः केशवणः।

वाध्रं वारत्र चर्म्म।७२४॥

विकृतेरिति निवृत्तम्।

७२५। तदस्य अस्मिन् वा स्यादिति।

अत्रार्थद्वये यथोक्तं स्यात्। प्रकार आसामिष्टकानां स्यात् प्राकारीया इष्टकाः। प्रसादाऽस्यां भूमौ स्यात् प्रासादीया भूमि ॥७२५॥

७२६। परिखाया माधवढः।

पारिखेयी भूमिः ॥७२६॥

७२७। छश्च पूर्णाविधिः, प्राग्वतेर्माधवठः

वतिप्रत्ययात् प्रागर्थे माधवठो वाच्यः। गोपुच्छेन क्रीतं गोपुच्छिकम्, पारायणं वर्त्तयति पारायणिकः ॥७२७॥

७२८। अत्रार्हीयाः।

तेषु प्राग्वतीयेषु तदर्हतीति व्याप्य ये प्रत्यया ये चार्थास्ते आर्हीया उच्यन्ते इत्यर्थः ॥७२८॥

७२९। अथार्हीयेषु।

इतः परं तेन क्रीतमित्यादिषु तदर्हतीति पर्य्यन्तेष्वर्थेषु प्रत्यया वाच्या इत्यर्थः ॥७२९॥

७३०। शताट्ठराम-यरामावशतात्मके।

अस्मादार्हीयेष्वेतौ स्याताम्। शतेन क्रीतादिः शतिकः, शत्य। अशतात्मके किम्? शतमध्यायाः परिमाणमस्य शतकं निदानम्। एवं शतश्लोकपरिमाणं शतकं काव्यम्। इतः पूर्व्वं तदन्तविधिरिष्यते गव्यम्, अतिगव्यम् दन्त्यं राजदन्त्यम्। तदर्हतीत्यत उत्तरन्तु सङ्ख्यापूर्व्वपदानामलुकीति स्मृतिः। पारायणिकः, द्वैपारायणिकः। अत्रार्हीया इत्यधिकृत्य ॥७३०॥

७३१। सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः करामः

आर्हीयेषु—पञ्चकः। कतिगणबहुतावदादीनामपि सङ्ख्यात्वात् गणकः। अतिशदन्ताया किम्? साप्ततिकः, पाञ्चाशत्कः[1] ॥७३१॥

७३२। कत्यादेरप्रतिषेधः।

कतिकः ॥७३२॥

७३३। तावदादेरिको वा।

तावतिकः, तावत्कः ॥७३३॥

७३४। शतमानविंशतिकसहस्रवसनात् केशवणः।

शातमानं वासनम् ॥७३४॥

७३५। विंशतिक-विंशक-त्रिंशतिक-त्रिंशकाः साधवः ॥७३५॥

७३६। कंसार्द्धाभ्यां केशवठः।

कंसः परिमाणभेदः। कंसिकः, कंसिकी, अर्द्धिकः अर्द्धिकी ॥७३६॥

७३७। कार्षापणस्य कार्षापणिकप्रतिकौ साधू।

७३८। शूर्पात् केशवणो वा।

शौर्पं, शौर्पिकम् ॥७३८॥

७३९। अध्यर्द्धपूर्व्यात् त्रिसाम्याश्चार्हीयस्य महाहरोऽसंज्ञायाम्।

अध्यर्द्धशतेन क्रीतम् अध्यर्द्धशतम्। त्रिसाम्याः—द्विशतं, त्रिशतम्। असंज्ञायां किम्? पाञ्चकपालिकः पटः ॥७३९॥

७४०। कार्षापण-सहस्र-सुवर्णशतमानेभ्यो वा

आर्हीयस्य महाहरः। अध्यर्द्धकार्षापणम्, अध्यर्द्धकार्षापणिक, द्विकार्षापण, द्विकार्षापणिकम् अध्यर्द्धसहस्रम्, अध्यर्द्धसाहस्रमित्यादि ॥७४०॥

७४१। द्वित्रिपूर्व्वा[2] न्निष्कादिस्ताच्च वा।

१। पाञ्चाशतिकः (ख ग घ)। २। द्वित्रिबहुपूर्व्वा (क)

द्विनिष्कं द्विनैष्किकम्। एषु नरपत्कृष्णीन्द्रः।
अथ महाहरविषये प्रत्ययविशेषाः ॥७४१॥

७४२। विंशतिकात् खरामः।

अध्यर्द्धविंशतिकीनः ॥७४२॥

७४३। खारीकाकिनीभ्यामीकः।

अध्यर्द्धखारीकं, द्विकाकिनीकम् ॥७४३॥

७४४। केवलाभ्याञ्च।

खारीकं, काकिनीकम् ॥७४४॥

७४५। पण-पाद-मास-शतेभ्यो यरामः।

अध्यर्द्धपण्यम् ॥७४५॥

७४६। शाण-शताभ्यां वा।

अध्यर्द्धशाण्यम् अध्यर्द्धशाणम् ॥७४६॥

७४७। द्वित्रिपूर्व्वाभ्यां केशवणश्च वा।

द्विशाण्यं, द्विशाणं, द्वैशाणम् ॥७४७॥

महाहरविषया निवृत्ताः।

७४८। तेन क्रीतम्।

अत्रार्थे प्राग्वतीया माधवठादयो ज्ञेयाः। सप्तत्या क्रीतं साप्ततिकं, नैष्किकं, मौद्गिकः शत्य, शतिकं, द्विकं त्रिकम् ॥७४८॥

७४९। तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ।

अत्र चार्थे माधवठादयो ज्ञेयाः। शतस्य निमित्तमधमर्णेन संयोगः शत्यः, शतिकः। शुभाशुभसूचकचेष्टादिरुत्पातः। तत्र यथा सहस्रस्य निमित्तमक्षिस्पन्दनं साहस्रम् ॥७४९॥

७५०। गो-द्विसर्व्वेश्वराभ्यां यरामो न तु संख्या-परिमाणाश्वादे।

गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा गव्यः। एवं धन्यः, स्वर्ग्यः यशस्यः, आयुष्यः। सङ्ख्यादेस्तु—पञ्चानां निमित्तं पञ्चकः, प्रास्थिकः। अश्वादेः—आश्विकः, हास्तिकः ॥७५०॥

७५१। पुत्राच्छ-यरामौ।

पुत्रस्य निमित्तं संयोगे उत्पातो वा पुत्रीयः, पुत्र्यः ॥७५१॥

७५२। सर्व्वभूमिपृथिवीभ्यां केशवणः

सर्व्वभूमेर्निमित्तमित्यादि सार्व्वभौमः। अनुशतादिरयम्। पार्थिवः ॥७५२॥

७५३। ईश्वर इत्यर्थे च।

सार्व्वभौमः, पार्थिवः ॥७५३॥

७५४। लोकसर्व्वलोकाभ्यां माधवठो विदिते

लौकिकः सार्व्वलौकिकः—अनुशतादिरयम् ॥७५४

७५५। वात-पित्त-श्लेष्म-सन्निपातेभ्यः शमनकोपनयोः।

वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम् ॥७५५॥

७५६। तस्य वापः।

अत्रार्थे यथाविहितं स्यात्। उप्यतेऽस्मिन्निति वापः। प्रस्थस्य वापः क्षेत्रं प्रास्तिकम्। एवं द्रौणिकम् ॥७५६॥

७५७। पात्रात् केशवठः।

पात्रिकं क्षेत्रम्, पात्रिकी भूः ॥७५७॥

७५८। तदस्मिन् वृद्धिरायो लाभः शुल्क उपदा वा दीयते।

अत्रार्थे यथास्वम्। तत्र वृद्धिरधमर्णादधिकादानम्, आयो ग्रामादिषु स्वामिभागः। लाभो वाणिज्ययाधिकप्राप्तिः, शुल्का रक्षानिमित्तो राजभागः, उपदा तूत्कोच इति, पञ्चास्मिन् वृद्ध्यादीनामेकतरं दीयते पञ्चकः। एवं विंशतिकः ॥७५८॥

७५९। चतुर्थ्यर्थे च।

शतमस्मै वृद्ध्यादिकं दीयते शत्यो विप्रः ॥७५९॥

७६०। पूरणादर्द्धाच्च ठरामः।

द्वितीयिकः, पञ्चमिकः, अर्द्धिकः ॥७६०॥

७६१। भागाद्यरामश्च।

भाग्यं, भागिकम् ७६१॥

७६२। तं हरति वहत्युत्पादयति वंशादिपूर्व्वाद्भारान्माधवठः।

वांशभारिकः, बाल्वजभारिकः।७६२॥

७६३। वस्नद्रव्याभ्यां ठकरामौ।

वस्निकः, द्रव्यकः।७६३॥

७६४ । सम्भवत्यवहरति पठति ।

एष्वर्थेषु च यथास्वम् । प्रस्थं सम्भवतीत्यादौ प्रास्थिकः कटाहः, खारिकः । प्रमाणानतिरेकः सम्भवः, अवहारः संहरणम् ॥७६४॥

७६५ । पचतौ द्रोणात् केशवठणश्च ।

द्रौणी, द्रौणिकी स्थाली ॥७६५॥

७६६ । आढकाचितपात्रेभ्यः खरामो वा ।

सम्भवतीत्यादिषु । आढकीना, आढकिकी ॥७६६॥

७६७ । त्रिराम्याः केशवठः खरामश्च वा

सम्भवतीत्यादिषु । द्व्याढकीना द्व्याढकिकी । पक्षे अध्यर्द्धपूर्वादिति माधवठस्य महाहरः, द्व्याढकी ॥७६७॥

७६८ । कुलिजान्महाहरखरामौ वा माधवठश्च ।

सम्भवतीत्यादिषु । द्विकुलिजी, द्विकुलिजीना, द्विकुलिजिकी । पक्षे माधवठस्य स्थितिरेव— द्वैकुलिजिकी ॥७६८॥

७६९ । सोऽस्यांश-वस्न-भृतयः ।

अत्रार्थे च यथास्वम् । पञ्च अंशा वस्ना भृतयो वा अस्य पञ्चकः, शत्यः, शतिकः । अंशो भागः, वस्नो मूल्यं, भृतिर्भरणम् ॥७६९॥

७७० । तदस्य परिमाणम् ।

अत्र च यथास्वम् । प्रास्थिको राशिः । द्रौणिकः खारिकः, शत्यः, शतिकः । वार्षशतिको योगः, षष्टिर्जीवितपरिमाणमस्य षाष्टिकः । इह द्वे षष्टी जीवितपरिमाणमस्य माधवठस्याद्यवृद्धेति सोऽस्येति वर्त्तमाने तदस्येत्यर्थनिर्द्देशसामर्थ्यात् पुनः केशवठः द्विषष्टिकः । 'तस्य विधानसामर्थ्यादलुक्' इति जयादित्यः (काशिका ५।१।५७) । सङ्ख्यात इत्युत्तरपदवृद्धिः—द्विषाष्टिकः, त्रिसाप्ततिकः ॥७७०॥

७७१ । सङ्ख्यायाः सङ्घसूत्राध्ययनेषु, संज्ञायान्तु स्वार्थे ।

संख्यावाचिनः परिमाणार्थे यथास्वम् । पञ्च परिमाणमस्य पञ्चकः, सङ्घः । अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य अष्टकं पाणिनीयसूत्रम् । पञ्चावृत्तयः परिमाणमस्य पञ्चकमध्ययनम् । संज्ञायाम्—पञ्चैव पञ्चकाः ॥७७१॥

७७२ । पङ्क्ति-विंशत्यादयः साधवः ।

द्वौ पञ्चकौ परिमाणमस्य पङ्क्तिः । द्वौ दशतौ विंशतिरित्यादि ॥७७२॥

७७३ । पञ्चन्-दशतौ वर्गे वा ।

पञ्च परिमाणमस्य पञ्चतौ वर्गः । पक्षे पञ्चकः । एवं दशतः, दशकः ॥७७३॥

७७४ । तदर्हति ।

अत्र च यथास्वम् । छत्रमर्हति छात्रिकः, शत्यः शतिकः ॥७७४॥

७७५ । छेदादिभ्यो नित्यत्वे ।

छेदं नित्यमर्हति छैदिकः । एवं भैदिकः ॥७७५॥

७७६ । शीर्षच्छेदाद्यरामश्च ।

शीर्षच्छेद्यः, शैर्षच्छेदिकः ॥७७६॥

७७७ । दण्डादिभ्यो यरामः ।

दण्ड्यः, वध्यः, कश्यः, युग्यः, मुषल्यः, मधुपर्क्यः, अर्घ्यः, मेध्यः, धन्यः ॥७७७॥

७७८ । पात्राद्घरामश्च ।

पात्रियः, पात्र्यः ॥७७८॥

७७९ । दक्षिणाकडङ्गराभ्यां छरामश्च ।

दक्षिणीयः दक्षिण्यो विप्रः, कडङ्गरीयः कडङ्गर्य्यो गौः ॥७७९॥

७८० । स्थालीविलाच्छरामः ।

स्थालीविलीयास्तण्डुलाः पाकयोग्याः ॥७८०॥

७८१ । यज्ञाद्घरामः ।

यज्ञियं द्रव्यम् ॥७८१॥

७८२ । ऋत्विजो नृसिंहखः ।

आर्त्विजीनो यजमानः ॥७८२॥

७८३ । तत्कर्म्मार्हतीत्यत्रापि ।

यज्ञियो देशः, आर्त्विजीनं विप्रकुलम् ॥७८३॥

आर्हीयाः पूर्णाः ।

प्राग्वतीयोऽनुवर्त्तते—

७८४ । पारायणोत्तरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति ।

पारायणं वर्त्तयति अधीते पारायणिकः । एवं द्वैपारायणिकः ॥७८४॥

७८५ । संशयमापन्नः ।

सांशयिकः ॥७८५॥

७८६ । योजनं गच्छति ।

यौजनिकः । क्रौशशतिकयौजनशतिकावुपसङ्ख्यानात् ॥७८६॥

७८७ । पथः केशवठः ।

पथिकः, पथिकी । पान्थः साधुः । स्त्रियां पान्थी ॥

७८८ । उत्तरपथेनाहृतश्च ।

औत्तरपथिकं हरिचन्दनम् । चकारात्तेन गच्छतीत्यत्र च ॥७८८॥

७८९ । वारि-जङ्गल-स्थल-कान्तारसङ्कुलाजपूर्व्वाच्च ।

वारिपथेनाहृतं गच्छति वा वारिपथिकः ॥७७९

७९० । स्थलवारिभ्यां पथो मधुकमरिचयोः केशवणः ।

स्थालपथं मधुकं मरिचं वा ॥७९०॥

७९१ । कालात् ।

कालवाचिभ्यः प्रत्ययो वाच्यः । व्युष्टादिभ्यः केशवण इति यावत् ॥७९१॥

७९२ । तेन निर्वृत्तः ।

अत्रार्थे कालान्माधवठः । आह्निकं, द्विसांवत्सरिकम् 'संख्यानः संवत्सर' (त० प्र० १३) इत्युत्तरपदवृष्णीन्द्रः ॥७९२॥

७९३ । तमधीष्टो भृतो भूतो भावी वा ।

अत्यन्तव्याप्तौ द्वितीया । मासमधीष्टः सत्कृत्य व्यापारितः, भृतः वेतनेन क्रीतः, भूतः स्वसत्तया व्याप्तकालः, तादृश एवानागतो भावी । स च स च मासिकः । एवं सांवत्सरिकः ॥७९३॥

७९४ । मासाद्वयसि यराम-नृसिंहखौ ।

मासमधीष्ट इत्यादौ मास्यो मासीनो दारकः । वयसि किम् ? मासिकः कर्म्मकरः ॥७९४॥

७९५ । त्रिराम्या यरामः ।

द्विमास्यः, त्रिमास्यः ॥७९५॥

७९६ । षण्मासाण्ण्ययरामौ वा ।

षाण्मास्यः, षण्मास्यः, षाण्मासिकः ॥७९६॥

७९७ । अवयसि ठ-ण्यरामौ ।

षाण्मासिकः, षाण्मास्यो धर्म्मः ॥७९७॥

७९८ । निर्वृत्ताद्यर्थपञ्चके ।

प्रभुरयम् ॥७९८॥

७९९ । समायाः खरामः, त्रिराम्यान्तु वा, रात्र्यहः संवत्सरेभ्यश्च ।

समीनः, द्विसमीनः, द्वैसमिकः, द्विरात्रीणः, द्वैरात्रिकः, द्व्यहीनः द्वैयह्निकः, द्विसवत्सरीणः, द्विसांवत्सरिकः । इह द्व्यहीन इत्यत्र समासान्तविधेरनित्यत्वान्न केशवारामस्ततो नाह्लादेशश्च, तस्य तत्रैव विधानात् ॥७९९॥

८०० । वर्षात् खमाधवठौ, तयोर्महाहरश्च त्रिराम्याम् ।

द्विवर्षीणो हरिप्रासादः । द्विवार्षिकः, द्विवर्षः, 'संख्याया वर्षस्य' (त० प्र० १४) इत्युत्तरपदवृष्णीन्द्रः

८०१ । प्राणिनि तु नित्यम् ।

द्विवर्षो गोपालः ॥८०१॥

पूर्ण निर्वृत्तादि ।

८०२ । तेन परिजय्यं लभ्यं कार्य्यं सुकरं वा

अत्रार्थे कालान्माधवठः । मासिकं सांवत्सरिकम् ॥८०२॥

८०३ । तत्र दीयते कार्य्यं वा भववत् प्रत्ययाः स्युः ।

मासे दीयते मासे कार्य्यं वा मासिकम् । प्रावृषेण्यं हैमन्यम् ॥८०३॥

८०४ । तदस्य ब्रह्मचर्य्यम् ।

अत्र कालान्माधवठः । मासं व्याप्य ब्रह्मचर्य्यमस्य मासिकश्छात्रः । मासो यस्य ब्रह्मचर्य्यस्य तन्मासिकं

ब्रह्मचर्य्यमित्येके ॥८०४॥

८०५। अष्टाचत्वारिंशकाष्टाचत्वारिंशिनौ तावद्वर्षव्रतचारिणि साधू।

८०६। चातुर्मासक-चातुर्मासिनौ च तथा वुइनिभ्यां साधू ॥८०६॥

८०७। चातुर्मास्यस्तद्भवयज्ञे।

साधुः ॥८०७॥

कालाधिकारः पूर्णः।

८०८। तच्चरति महानाम्न्यादिभ्यः।

माहानाम्निकः, आवान्तरव्रतिकः ॥८०८॥

८०९। अवान्तरदीक्षि-देवव्रतिनौ तच्चारिणि साधू ॥८०९॥

८१०। आग्निष्टोमिकीप्रभृतयो यज्ञदक्षिणायां साधवः।

८११। तत्र दीयते कार्य्यं वेति व्युष्टादिभ्यः केशवणः।

व्युष्टे दीयते कार्य्यं वा वैयुष्टं नैत्यम् ॥८११॥

८१२। तेन दीयते कार्य्यं वा यथाकथाचहस्ताभ्यां णयरामौ।

यथाकथाचेत्यव्ययसमुदायोऽनादरार्थः। यथाकथाच दीयते कार्य्यं वा याथाकथाचम्। एवं हस्तेन हस्त्यम् ॥८१२॥

८१३। सम्पादिनि।

अत्र च माधवठः। 'चन्दनेन सम्पादि शोभि चान्दनिकं हरेर्वपुः'। एव "काणवेष्टनिकं मुखम्" (भट्टिः ४।२५) ॥८१३॥

८१४। कर्म्मवेशाभ्यां यरामः।

कर्म्मण्यं शरीरं, वेश्यं वपुः ॥८१४॥

८१५। तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः।

सन्तापाय प्रभवति सान्तापिकम्। एवं सांयुगिकं सांग्रामिकम् ॥८१५॥

८१६। योगाद्यरामश्च।

योगाय प्रभवति योग्यं, यौगिकम् ॥८१६॥

८१७। कार्मुकं धनुषी साधुः, सामयिकं प्राप्तसमये साधु।

८१८। आर्त्तवं प्राप्तर्त्तौ।

अणा साधु ॥८१८॥

८१९। कल्यं प्रातःकाले साधु।

८२०। कालिकं प्राप्तप्रकृष्टदीर्घकाले।

साधु। कालिकमृणं, कालिकी हरिभक्तिः ॥८२०

८२१। तदस्य प्रयोजनमत्रार्थे माधवठः।

वैष्णुमहिकं तत्कीर्त्तनम् ॥८२१॥

८२२। चूडादेः केशवणः।

चूडा प्रयोजनमस्य चौडं श्राद्धम् ॥८२२॥

८२३। अनुप्रवचनादिभ्यश्छरामः।

अनुप्रवचनीयम्, उत्थापनीयम् ॥८२३॥

८२४। विशिपूरिपदिरुहिप्रकृतेरनन्तात् सपूर्व्वपदात् समापनाच्च।

गेहानुप्रवेशनीयं, प्रपापूरणीयं, मङ्गलोत्पादनीयं, मठारोहणीयं, कर्म्मसमापनीयं, वैष्णवसत्रम् ॥८२४

८२५। स्वर्गादिभ्यो यरामः।

स्वर्ग्यं, यशस्यम्, आयुष्यं, धन्यम् ॥८२५॥

८२६। पुण्याहवाचनादिभ्यो महाहरः

पुण्याहवाचनं, स्वस्तिवाचनं कर्म्म ॥८२६॥

८२७। वैशाखो मन्थे, आषाढो दण्डे, ऐकागारिकश्चौरे, आकालिक उत्पत्तिमात्राद्विनाशिनि।

"आकालिकीं वीक्ष्य मधुप्रवृत्तिम्" इति कुमारसम्भवे (३।३४) ॥८२७॥

प्राग्वतेर्माधवठ उक्तः।

८२८। उपमानक्रियाद्वतिस्तत्क्रियातुल्यक्रियत्वे

उपमीयते येन तदुपमानम्। उपमानरूपा क्रिया यस्य तस्माद्वतिः स्यात्। उपमानभूतया क्रियया यद्युपमेययाः क्रियायास्तुल्यत्वं वाच्यं स्यात्। वैष्णववद्विष्णुं यजते, यथा वैष्णवकर्त्तृकं यजनं

तथैव यजते इत्यर्थः। प्रत्ययशक्त्या वैष्णवशब्दोऽत्र वैष्णवकर्त्तृकयजनक्रियाप्यर्थवमानः। "पुत्रं मित्रवदाचरेत्" * (वृद्ध-चाणक्यः ७५) इत्यर्थे ; इत्यत्र च यथा मित्रमाचरति तत्प्रति व्यवहरति, तथा पुत्रमाचरेदित्यर्थं। पूर्व्वधातुवत् सन इत्यत्र पूर्व्वधातोर्यथा परपदादि भवति, तथा सनन्तादपि भवतीत्यर्थः। एवं गुरुवद् गुरुपुत्रेषु प्रवर्त्तितव्यम्। यथा गुरौ प्रवृत्यते, तथा तत्पुत्रेषु प्रवर्त्तनीयमित्यर्थः ॥८२८॥

८२९। तत्रेवे तस्येव वा।

अत्रार्थे वतिः स्यात्। मथुरायामिव मथुरावत् द्वारकायां प्राचीराः॥ कृष्णस्येव कृष्णवत् प्रद्युम्नस्य रूपम् ॥८२९॥

८३०। तदर्हम्।

अत्रार्थे च वतिः। वैष्णवमर्हति वैष्णववद्वृत्तम्। कृष्णवत् चरितम्। अत्रापीवार्थ एव। वैष्णवस्य वृत्तमिव वृत्तमिति। नेह—वैष्णवमर्हति दधि ॥८३०॥

८३१। तस्य भावस्त्वतापौ ब्रह्मलक्ष्म्योः

तस्य भाव इति विभुज्य।

भवतोऽस्मादभिधानप्रत्ययाविति भावः। शब्दप्रवृत्तिनिमित्तं जात्यादिवस्तुधर्म्मः। तस्य भाव इत्यर्थे त्वतापौ स्याताम्। जातौ—गोत्वं, गोता, गुणे—शुक्लत्वं, शुक्लता, रूपत्वं, रूपता, रसत्वं, रसता, क्रियायां—क्रियात्वं, क्रियाता। समासकृत्तद्धितेषु सम्बन्ध एव प्रवृत्तिनिमित्तम्। कृष्णपुरुषत्वं, पूजकत्वम्, अनुग्राह्यत्वं, यादवत्वं, भागवतत्वम् ॥८३१॥

८३२। यदृच्छाशब्दात् स्वरूपमात्रेऽभिधानम्

डित्थत्वं, डवित्थत्वम्, एवं कवर्ग एव कुत्वम् ॥८३२॥

८३३। पक्षे त्वतापौ।

प्रभुरयम् ॥८३३॥

८३४। नृसिंहनस्नयोश्च।

पक्षे त्वतापौ स्याताम्। यथा प्रथिमा, पृथुत्वं, पृथुता, पाटवं, पटुत्वं, पटुता, स्त्रैणं, स्त्रीत्वं, स्त्रीता, पौंस्नं, पुंस्त्वं, पुंस्ता ॥८३४॥

८३५। न नञ्कृष्णपुरुषाद्वक्ष्यमाणाः, अचतुरादिवर्ज्जम्।

अगनित्वमगनिता। अत्र पठन्तीति न नृसिंहयः। अत्र तु स्यात्—आचतुर्य्यम्, आसङ्गत्यम्, आलावण्यम्, आवह्यम्, आबुध्यम्, आकरथ्यम्, आवश्यम्, आलस्यम् ॥८३५॥

८३६। पृथ्वादिभ्य इमनिर्व्वा।

वा-करणं[1] केशवनादेः समावेशार्थम्। ८३६॥

८३७। इमनिः पुंसिः।

पृथु-मृदु-पटु-महत्तनु-लघु बहु-साधु-आखु-उरु-गुरु-दक्ष-खण्ड वहुल-चण्ड-अकिञ्चन-स्वादु-ह्रस्व-दीर्घ ऋजु-क्षिप्र-क्षुद्र प्रियादिः पृथ्वादिः। प्रथिमा, म्रदिमा पटिमा, महिमा, तनिमा, लघिमा, भूमा, साधिमा, आखिमा, वरिमा, गरिमा, दक्षिमा, खण्डिमा, वंहिमा, चण्डिमा, अकिञ्चनिमा, स्वादिमा, ह्रसिमा, द्राघिमा, ऋजिमा, क्षेपिमा, क्षोदिमा, प्रेमा। पक्षे पार्थवमित्यादीनि च ॥८३७॥

८३८। वर्णाद् दृढादेश्च नृसिंहय इमनिश्च

वर्णात् शौक्लं, शुक्लिमा, कार्ष्ण्यं, कृष्णिमा, दृढादेः—दार्ढ्यं, द्रढिमा, माधुर्य्यं, मधुरिमा, वैमल्यं, विमलिमा। त्वतापौ सर्व्वत्रोदाहार्य्यौ। इह गुणवचनत्वादेव नृसिंहये सिद्धे वर्णग्रहणमिमन्यर्थम् वधिर-कृश-शीत-उष्ण-मधुरादीनां दृढादौ पाठः। पक्षे इमनिर्यथा स्यात् कर्म्मणि च नृसिंहयो माभूत् ॥८३८॥

८३९। औचित्यादयः।

ईवन्ता भावे लक्ष्म्यां साधवः। औचिती, आनुपूर्व्वी, वैदग्धी, चातुरी ॥८३९॥

---

* लालयेत् पञ्चवर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत्॥ (वृद्ध-चाणक्यः ७५)

१। वा वचनं (क)

८४० । कर्म्मणि च ।

इतः परं भावे कर्म्मणि चेति ज्ञेयम् ॥८४०॥

८४१ । गुणवचनाद्ब्राह्मणादेश्च नृसिंहयः

गुणवचनात्—जडस्य भावः कर्म्म वा जाड्यम् । एवं मौढ्यं, कार्श्यम् । ब्राह्मणादेराकृतिगणात्—ब्राह्मण्यं, दौत्यम् । लिङ्गविशिष्टग्रहणात्—दूतीनां भावादि दौत्यम् । ब्राह्मण, दूत, चौर, मध्यस्थ, कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, राजन्, दायाद, कवि ॥८४१॥

८४२ । अर्हतो नुम् च ।

आर्हन्त्यम् । आर्हन्ती साधुः ॥८४२॥

८४३ । स्तेयं स्तैन्ये, कापेय-ज्ञातेय-वाणिज्याश्च साधवः ।

८४४ । पत्यन्तात् पुरोहितादेश्च नृसिंहयः

प्राजपत्यं, पौरोहित्यं, सौन्यम् ॥८४४॥

८४५ । प्राणिजातेर्वयोवचनादुद्गात्रादेश्च केशव-णः, ईशान्ताच्च लघुपूर्व्वात् ।

प्राणिजातेः—कार्ष्णसारं हारिणम्, वयोवचनात्—कौमार, यौवनं, स्थाविरम् । उद्गात्रादेः—औद्गात्रम् औन्नेयं, पौरुषं, सौहृदं, दौर्हृदं, चापलं, नैपुणं, पैशुनं, कौतूहलम् ॥

८४६ । श्रोत्रियस्य यलोपश्च ।

श्रौत्रम् । ईशान्तादिति—हार, लाघवम्, हरितक्या—हारीतकम् । ईशान्तात् किम् ? पटुकतम् । लघुपूर्व्वात् किम् ? पाण्डुत्वम् । काव्यन्तु ब्राह्मणादित्वात् । ८४६॥

८४७ । योद्धवाद्गुरूपोत्तमान्नृसिंहवुः, रामकृष्णान्मनोज्ञादेश्च ।

रामणीयकम्, आचार्य्यकं, साहायकम्, साहाय्यम् इति जयादित्यः (काशिका ५।१।१२२) नेति भागवृत्तिः । 'गुरूपोत्तमात्' किम् ? क्षत्रियत्वम् ॥८४७॥

८४८ । रामकृष्णात्तु लक्ष्म्याम् ।

शैष्योपाध्यायिका, पैतापुत्रिका, मनोज्ञादेः—मानोज्ञकम्, प्रैयरूपकम्, आभिरूपकम्, आमुण्डपुत्रकं, कौशलपुत्रकम्, आढ्यच्छात्रकम् ॥८४८॥

८४९। गोत्रचरणाभ्यां श्लाघाधिक्षेपतत्प्राप्तिविषये नृसिंहवुर्लक्ष्म्याम् ।

भावे कर्म्मणि चेत्यनुवर्त्तत एव । गोत्रात्—गार्गिकया श्लाघते, दाक्षिकया अत्याकुरुते अधिक्षिपतीत्यर्थः । वात्सिकां मनवेतः प्राप्त इत्यर्थः चरणात् काठिकया श्लाघत इत्यादि । श्लाघादेरन्यत्र गार्गत्वम् ॥८४९॥

८५० । ऋत्विग्वाचकेभ्यश्छरामः ।

अच्छावाकीयम्, मित्रावरुणीयं, ब्राह्मणाच्छंसीयम् ॥८५०॥

८५१ । ब्रह्मणस्त्वः ।

ऋत्विग्वचनाद्ब्रह्मणस्त्वः स्यात्—ब्रह्मत्वम् । ८५१

भावकर्म्माधिकारः पूर्णः ।

८५२ । चातुर्वर्ण्यादयः स्वार्थे ।

चातुर्वर्ण्यम्, औपम्यं, सान्निध्यं, यौगपद्यं, चातुर्वैद्यं, षाड्गुण्यं, तादर्थ्यं, त्रैलोक्यम् ॥८५२॥

८५३ । धान्यानां भवने क्षेत्रे नृसिंहखः ।

भवन्त्यत्रेति भवनम् । मुद्गानां भवनं मौद्गीनम् एवं कौद्रवीणं, धान्यीनम् ॥८५३॥

८५४ । व्रीहिशाल्योर्माधवढः ।

व्रैहेयं, शालेयम् । ८५४॥

८५५ । यव-यवक-षष्टिकाभ्यो यरामः ।

यव्यं, यवक्यम् ॥८५५।

८५६ । तिल-माषोमाभङ्गाणुभ्यो यरामो वा

तिल्यं, तैलीनम् ॥८५६॥

८५७ । अधान्यानां शाकटशाकिनौ ।

इक्षुशाकट, मूलशाकिनम् ॥८५७॥

८५८ । तेन वित्तश्चुञ्चुचनौ ।

हरिभक्तिचुञ्चुः, हरिभक्तिचनः, तया प्रतीत इत्यर्थः ॥८५८॥

८५९ । सर्व्वचर्म्मणावृतः ख-नृसिंहखौ

सर्व्वचर्म्मीणः, सार्व्वचार्म्मीणो रथः ॥८५९॥

८६० । यथामुखं सम्मुखं वा दृश्यतेऽस्मिन्निति खरामः ।

खरामोऽयं प्रभुश्च । मुखस्य साद्दश्यं यथामुखम् समं मुखं सम्मुखम् । यथामुखीनः, सम्मुखीनो दर्पणादिः ॥८६०॥

८६१ । सर्व्वपूर्व्वेभ्यः पथ्यङ्गकर्म्मपत्रपात्रेभ्यस्तद्वद्व्याप्नोतीति ।

सर्व्वपथं व्याप्नोति सर्व्वपथीना हरिभक्तिः ॥८६१

८६२ । आप्रपदं व्याप्नोति ।

आप्रपदीनः ॥

८६३ । अनुपदं बद्धा ।

अनुपदीना पादुका ॥८६३॥

८६४ । सर्व्वान्नाति भक्षयति ।

सर्व्वान्नीनः ॥८६४॥

८६५ । अयानयं नेयः ।

अयः प्रदक्षिणम् अनयः, प्रसव्यं, तदुभयं नेयः, अयानयीनः शारिः ॥८६५॥

८६६ । परोवरं परस्परं पुत्रपौत्रं वानुभवति ।

परांश्च अवरांश्च अनुभवति निपातनादोत्व परोवारीणः । एवं परस्परीणः ॥८६६॥

८६७ । अवारं पारमत्यन्तमनुकामं वा गच्छति ।

अवारीणः, पारीणः, अवारपारीणः, पारावारीणः, अत्यन्तीनः, अनुकामीनः ॥८६७॥

८६८ । समांसमीना प्रत्यब्दप्रसवायाम् अद्यश्वीनासन्नप्रसवायाम् ।

'अद्यश्वीना वियोगः' इत्यपि जयादित्यः (काशिका ५।२।१३) ॥८६८॥

८६९ । आगवीनः आ गोप्रतिदानात् कर्म्मकारिणि, अनुगवीनो गोः पश्चादनुगामिनि अध्वन्याध्वनीनावध्वानमलं गामिनि, अभ्यमित्रियाभ्यमित्रीणाभ्यमित्र्या अभ्यमित्रमलं गामिनि, अश्वीनोऽश्वेनैकाहगम्ये

एते साधवः ॥८६९॥

अथ कृतवृष्णीन्द्रा दर्श्यन्ते

८७० । गोष्ठीनो भूतपूर्व्वगोष्ठप्रदेशे, शालीनकौपीने, अधृष्टाकार्य्ययोः, व्रातीनो व्रातेन जीवति ।

ये शरीरमुपास्य जीवन्ति, ते व्रातास्तत्कर्म्मापि व्रातम् ॥८७०॥

८७१ । साप्तपदीनं सख्ये, हैयङ्गवीनं ह्योगोदोहोद्भवघृते ।

एते च साधवः ॥८७१॥

खरामो निवृत्तः ।

८७२ । पीलुकुणादयः पील्वादिपाके ।

पीलूनां पाकः पीलुकुणः । पील्वाम्रबदरखदिराः पील्वादयः ॥८७२॥

८७३ । कर्णजाहादयः कर्णादिमूले ।

"कर्णजाहविलोचना" इति (भट्टिः ४।१६) तु कर्णमूलपर्य्यन्तविलोचनेत्यर्थः ।

कर्णाक्षिनखकेशपादमुखगुल्फभ्रू-शृङ्गदन्त-ओष्ठादयः कर्णादयः ॥८७३॥

८७४ । पक्षतिः पक्षमूले ।

"चन्द्रलेखेव पक्षतौ" (भट्टिः ४।१६) चञ्चत्पक्षतिभिः खगैः' ॥८७४॥

८७५ । स्नेहे तैलः ।

इङ्गुदीतैलं, शर्षपतैलम् ॥८७५॥

८७६ । गोगोष्ठादयः पशुस्थाने ।

गोगोष्ठं, महिषीगोष्ठम्, उष्ट्रगोष्ठम् ॥८७६॥

८७७। अविकटाविपटौ तत्सङ्घातविस्तारयोः

८७८ । गो-गोयुगादयः पशुद्वित्वे ।

गोगोयुगम्, अश्वगोयुगम् ॥८७८॥

८७९ । गो-षड्गवादयः पशुषट्के ।

गोषड्गवम्, अश्वषड्गवम् ॥८७९॥

८८० । अवटीटावनाटावभ्रटा नतनासिके, कर्म्मठः कर्म्मसु घटमाने ।

एते साधवः ॥८८०॥

८८१ । अलाबूतिलोमाभङ्गाणुभ्यो रजसि कटः ।

अलाबूनां रजः अलाबूकटः ॥८८१॥

८८२ । उपाधिभ्यां त्यको लक्ष्म्यामासन्नाधिरूढयोः ।

गिरेरुपत्यका वनराजिः, तदासन्नेत्यर्थः । अधित्यका गिरेः, तमधिरूढेत्यर्थः । उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूद्र्ध्वमधित्यका इत्यमरः (२।३।७) । "समुद्रोपत्यका हैमी पर्व्वताधित्यका पुरी" इति भट्टिः (५।८९) ॥८८२॥

८८३ । तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतः

तारका सञ्जातास्य तारकितं नभः, पुष्पितो वृक्षः । तारका, पुष्प, सुख, दुःख, फल, मूल, कुसुम, स्तवक, तन्द्रा, बुभुक्षा, पिपासा, भर, व्रण, रोग, व्याधि, उत्कण्ठा, गर्भोऽप्राणिनीति । तदस्येत्यनुवर्त्तते यावत्तदस्मिन् ॥८८३॥

८८४ । द्वयस-दघ्नौ केशवावूद्र्ध्वप्रमाणे, मात्रट् प्रमाणमात्रे ।

ऊरुद्वयसं जलं, गजद्वयसी नदी । एवमुरुदघ्नम् । तथा प्रस्थमात्रं घृतं, तन्मात्रं तावन्मात्रम् । ८८४॥

८८५ । प्रमाणवाचिभ्यो महाहरश्च ।

समं प्रमाणमस्य समः । एवं वितस्तिः, मुष्टिः ॥८८५

८८६ । त्रिराम्यास्तु नित्यम् ।

द्विजानु जलम् ॥८८६॥

८८७ । टच् स्तोमे ।

पञ्चदशः, स्तोमः, एकविंशः स्तोमः ॥८८७॥

८८८ । शन्नन्तविंशतिभ्य इनिच् ।

पञ्चदश प्रमाणमेषां पञ्चदशिनोऽर्द्धमासाः । एवं त्रिंशिनो मासाः, विंशिनोऽङ्गिरसः ॥८८८॥

८८९ । प्रमाणात् परिमाणात् सङ्ख्यायाश्च मात्रः संशये ।

प्रमाणात् समं स्यान्न वेति समगात्रम् । एवं हस्तमात्रम् । परिमाणात्—प्रस्थमात्रम् । सङ्ख्यायाः —पञ्चमात्रम्, दशमात्रम् । अत्रापि महाहरमिच्छन्ति ॥८८९॥

८९० । वत्वन्तात् केशवद्वयसमात्रौ स्वार्थे

तावदेव तावद्द्वयसम्, तावन्मात्रम् ॥८९०॥

८९१ । पुरुषहस्तिभ्यां केशवणश्च तत्प्रमाणे

पुरुषोऽस्य प्रमाण पौरुषम् । एवं हास्तिनम् । चकारात् द्वयसादयश्च ॥८९१॥

८९२ । यत्तदेतद्भ्यस्तत्परिमाणे आवतुच्

यत् परिमाणमस्य यावान्, एवं तावान्, एतावान् ॥८९२॥

८९३ । किमिदमोः कियदियन्तौ साधू ।

कियान्, इयान्, कियती, इयती ॥८९३॥

८९४ । का सङ्ख्यैषां कतिर्व्वा ।

अत्रार्थेऽयं साधुर्वा । कति, पक्षे कियन्तः । ८९४

८९५ । अवयववृत्तेः सङ्ख्यायाः केशवस्तयः, द्वित्रिभ्यामयश्च, उभादयः ।

पञ्चावयवा अस्य वृत्तस्य पञ्चतयं पुराणं, चतुष्टयी श्रुतिः । द्वित्रिभ्याम्—द्वयं द्वितय, त्रयं त्रितयी । तथा उभावयवावस्य उभयो नरसिंहः, उभये देवमनुष्याः, उभयी सृष्टिः ॥८९५॥

८९६ । सङ्ख्याया मयट् भागेन मूल्येन क्रेयभागके ।

यवानां द्वौ भागौ मूल्यं भागे यस्योदश्वितः तत् द्विमयम् उदश्विद् यवानाम् । एवं द्विमयी द्राक्षा गुडस्य । क्रेयभागवतो वाच्यत्वात् सामानाधिकरण्यम् ॥८९६॥

तदस्येति निवृत्तम् ।

८९७ । तदस्मिन्नधिकमिति दशान्तादच् शतसहस्रयोः ।

एकादशाधिका अस्मिन् एकादशं शतम् । एवं

द्वादश सहस्रम् ।।८९७।।

८९८ । शदन्तविंशतिभ्याञ्च ।

त्रिंश शतं, चत्वारिंश सहस्रं, विंशं शतं, षष्ठं शतमिति तु मत्वर्थीयोऽच् ।।८९८।।

८९९ । तस्य पूरणे केशवाः ।

प्रभुरयम् ।।८९९।।

९०० । अच् ।

एकादशानां पूरणः एकादशः स्कन्धः । एवं द्वादशः । एकादशी तिथी ।।९००।।

९०१ । नान्तादेसङ्ख्यादेरमचि ।

दशमः स्कन्धः । नान्तात् किम् ? विंशः, त्रिंशः असंख्यादेः किम्—एकादशः ।।९०१।।

९०२ । षट्-कति-कतिपय-चतुर्भ्यस्थुगचि ।

षष्ठः, कतिथः, कतिपयथः, चतुर्थः । षष्ठी, कतिपयथी ।।९०२।।

९०३ । चतुर्थे तुर्य्यतुरीयौ ।

साधू । अजादित्वात् तुर्य्या, तुरीया ।।९०३।।

९०४ । बहु-पूग-गण-सङ्घेभ्यस्तिथः ।

बहुतिथः, बहुतिथी ।।९०४।।

९०५ । वतोरिथः ।

तावतिथः, यावतिथः ।।९०५।।

९०६ । द्वितीयतृतीयौ पूरणे साधू ।

अजादित्वात—द्वितीया, तृतीया ।।९०६।।

९०७ । विंशत्यादेस्तमो वा ।

विंशतितमः, विंशः, त्रिंशत्तमः, त्रिंशः, एकविंशतितमी, एकविंशी ।।९०७।।

९०८ । नित्यं शतादेर्मासार्द्धमासात् संवत्सराच्च ।

शततमः, सहस्रतमः, लक्षतमः, एकशततमः, द्विसहस्रतमः, सप्तलक्षतमः । मासतमो दिवसः, अर्द्धमासतमः, संवत्सरतमः ।।९०८।।

९०९ । षष्टि-सप्तत्यशीति-नवतिभ्यश्चासङ्ख्यापूर्व्वेभ्यः ।

विंशत्यादेर्विकल्पस्य बाधा । षष्टितम इत्यादि । सङ्ख्यापूर्व्वेभ्यस्तु—एकषष्टः, एकषष्टितमः ।।९०९।।

उक्तं पूरणम् ।

९१० । स एषां ग्रामणीरिति कः ।

त्वं ग्रामणीरेषां त्वत्काः । एवं मत्काः, मत्कं मतम् देवदत्तकाः ।९१०।।

९११ । कोऽयं प्रभुश्च ।

९१२ । सस्येन सम्पन्नः ।

सस्यको मणिः, सस्यकः शालिः ।।९१२।।

९१३ । अंशं हारी ।

अंशको दायादः ।।९१३।।

९१४ । स्वाङ्गात्तदासक्ते ।

केशकः, दन्तकः ।।९१४।।

९१५ । तेन ग्रहीतरि पूरणप्रत्ययात्तस्य हरश्च ।

द्वितीयेन ग्रहीता द्विको मेधावी । एवं षट्कः ।।९१५।।

९१६ । ग्रहणे तु हरो वा ।

द्वितीयेन रूपेण ग्रन्थग्रहणं द्विकं, द्वितीयकम् । एवं चतुर्थकं, चतुष्कम् ।।९१६।।

९१७ । काले सम्भवति द्रव्येण प्रयुक्ते च रोगे ।

दिवसे सम्भवति दिवसको ज्वरः । एवं मासकः विषपुष्पेण प्रयुक्तः विषपुष्पकः ।।९१७।।

९१८ । द्वितीयकादयश्च तद्भवरोगे, शीतकादयश्च शीतादिकर्त्तृकरोगे, गूडापूपिकादयः पौर्णमास्यादिषु, पथकादयः पथ्यादिकुशले ।

पथकः, कथकः, आकर्षकः, जातकः इत्यादि ।।९१८।।

९१९ । धनकहिरण्यकौ तयोः कामे ।

देहेऽपि निस्पृहस्यास्य मुमुक्षोर्धनकः कुतः । एवं हिरण्यकः ।।९१९।।

९२०। तन्त्रको नवकर्पटे, शीतकोऽलसे, उष्णको दक्षे, अनुकाभिकाभीकाः कमितरि, पार्श्वकः शठे, शृङ्खलकः करभे, उत्क उन्मनसि, अधिरूढस्याधिकः।

एते साधवः ॥९२०॥

उक्त कः।

९२१। उदरादाद्यूने, अयःशूलात्तैक्ष्ण्येन कारिणि, दण्डाजिनाद्दाम्भिके माधवठः।

औदरिकः, उदरमात्रभरणतत्पर इत्यर्थः, आयःशूलिकः, दाण्डाजिनिकः ॥९२१॥

९२२। श्रोत्रियश्छन्दोऽधीयाने श्राद्धिकश्राद्धिनौ श्राद्धभोक्तरि।

साधवः ॥९२२॥

९२३। अनुपदादिनिरन्वेष्टरि।

"मृगस्यानुपदी रामः" (भट्टिः ५।५०) ॥९२३॥

९२४। क्षेत्रिय जन्मान्तरचिकित्स्ये।

साधुः। क्षेत्रं शरीरं, तच्च जन्मान्तरगतं गृह्यते ॥९२४॥

९२५। साक्षी साक्षाद्द्रष्टरि।

इन्नन्तः साधुः ॥९२५॥

९२६। इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमित्याद्यर्थे संज्ञायां साधु।

९२७। पूर्व्वादिनिर्भूतपूर्व्वकर्त्तरि।*

पूर्व्वमनेन स्थितं गृहीतं वा पीतं पूर्व्वी, पूर्व्विणौ ॥९२७॥

९२८। सपूर्व्वपदाच्च।*

कृतं पूर्व्वमनेन इति कृतपूर्व्वी सृष्टिं, भक्तिपूर्व्वी दधीनि ॥९२८॥

९२९। इष्टादिभ्यश्च।*

इष्टमनेन इष्टी हरियागे। अधीती श्रीभागवते। एवं निराकृती, पठिती गृहीती, कृती, श्रुती ॥९२९

९३०। तदस्यास्त्यस्मिन् वा मतुः।

अर्थोऽयं प्रत्ययश्च। गावोऽस्य सन्ति गोमान् व्रजनाथः। कृष्णोऽस्त्यस्मिन्, 'मतोर्मो वः' (त० प्र० ५८) कृष्णवान्।

अत्रार्थे नियमश्च—

भूम-निन्दा-प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।
संसर्गेऽस्ति-विवक्षायां मतुमुख्या भवन्ति ते ॥*

क्रमेण यथा—गोमान् श्रीनन्दः, दैत्यवान् कंसः, प्रशंसादौ—रूपवान् भगवान्, शार्ङ्गी दण्डी कृष्णः, अस्तिविवक्षायान्तु—क्रियावान्। इन् वक्ष्यते (त० प्र० ९५७) ॥९३०॥

९३१। गुणिवाचिभ्यो मत्वर्थस्य महाहरः

शुक्लः, पटः। यदा तु स्वभावाद्गुणिनि गुणे च शुक्लादयो वर्त्तन्ते, इत्युपगमस्तदा गुणपक्षेऽपि शुक्लवानिति न स्यात्। इत्येव मत्वर्थो महाहरः ॥९३१॥

९३२। रसादिभ्यो मतुरेव प्रायशः।

रस-रूप-गन्ध स्पर्शशब्देभ्यो मत्वर्थीयेषु प्रायशो मतुरेव स्यात्। रसवान्। प्रायशः किम्? रसिकः कृष्णः, रूपिण्यो गोप्यः, स्पर्शी वायुरित्यादि ॥९३२

९३३। प्राणिस्थादारामान्ताल्लो वा सिध्मादेश्च।

चूडालः, चूडावान्, नेह—शिखावान् प्रदीपः। तथा सिध्मलो गडुलः ॥९३३॥

९३४। पार्ष्णि-धमन्योस्त्रिविक्रमश्च।

पार्ष्णीलः, धमनीलः ॥९३४॥

९३५। जटाघाटाकालाभ्यः क्षेपे लः।

जटालः, घाटालः, कालालः ॥९३५॥

९३६। क्षुद्रजन्तूपतापेभ्यश्च।

मूषिकालः, यूकालः। उपतापात्—मूर्च्छालः, विचर्च्चिकालः। विकल्पानुवृत्तिः सर्व्वत्र—सिध्मवान्

---

* पूर्व्वी कृष्णस्य सेवयामिष्टी वा तत्र यः सदा। अधीती वा भागवते भक्तपूर्व्वी स तं भजेत् ॥ (श्रीगोपालचम्पूः पूः २२।४३)

* 'मतुमुख्या भवन्ति ते' इत्यत्र 'मन्त्वादयो भवन्त्यमी' इति कलाप-व्याकरणे (तद्धित-प्रकरणम् ३०२) पाठः।

एवमुत्तरत्रापि ॥९३६॥

९३७। वत्सलः कामवति, अंशलो बलवति

साधू ॥९३७॥

९३८। क्लिन्नेऽक्षिण तद्वति पुरुषे च

अक्ष्णश्चुत्-चित्-पित्-लश्च।

चुल्लं चुल्ल इत्यादयः ॥९३८॥

९३९। फेनिल-फेनलौ।

साधू ॥९३९॥

९४०। लोमशादयः पामनादयश्च।

साधवः। लोमशः, कपिशः, पामनः, श्लेष्मणः, हेमनः, बलिनः ॥९४०॥

९४१। लक्ष्मणो लक्ष्मीवति, अङ्गना-दद्रुण पिच्छिल-जटिलरसिलाः।

साधवः ॥९४१॥

९४२। प्रज्ञा-श्रद्धार्चा-वृत्तिभ्यो णरामः।

प्राज्ञः ॥९४२॥

९४३। तपस्वि-सहस्रिणौ, तापससाहस्रौ च

साधू। केशवणान्तत्वात् तापसी, साहस्री ९४३

९४४। ज्योत्स्नादेः केशवणः।

ज्योत्स्नः, तामिस्रः पक्षः ॥९४४॥

९४५। सिकताशर्कराभ्याश्च।

सैकती यमुना। शार्करो घटः ॥९४५॥

९४६। स्मरहर इलश्च देशे।

सिकता देशः, सिकतिलः, सैकतः ॥९४६॥

९४७। मतुश्च।

सिकतावान्। एवं शर्करादि ॥९४७॥

९४८। दन्तुर उन्नतदन्ते।

साधुः ॥९४८॥

९४९। उषर-शुषिर-पुष्कर-मधुराणि साधूनि, मुखरादयश्च।

साधवः ॥९४९॥

९५०। द्युमद्रुमौ।

साधू ॥९५०॥

९५१। केशादेर्वो वा।

केशवः, मणिवः, हिरण्यवः, इष्ठकावः। केशिककेशिकेशवन्तश्च प्रयुज्यन्ते ॥९५१॥

९५२। काण्डीराण्डीरौ।

साधू ॥९५२॥

९५३। रजःकृष्यासुतिपरिषदादिभ्यो वलः

रजस्वला ॥९५३॥

९५४। त्रिविक्रमश्च।

कृषीवलः, आसुतीवलः, परिषद्वलः। आदिना—भ्रातृवलः, पुत्रवलः, मैत्रीवलः, यात्रावलः ॥९५४॥

९५५। दन्तावलशिखावलौ हस्तिमयूरौ।

९५६। ज्योत्स्ना-तमिस्रा-शृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वल-गोमिन्-मलिन-मलीन-मलीमसाः।

साधवः ॥९५६॥

९५७। अरामादिनि-ठरामौ, व्रीह्यादेश्च

दण्डी, दण्डिकः ॥९५७॥

९५८। मतुश्चात्र परत्र च।

दण्डवान् ॥९५८॥

९५९। एकाक्षरात् कृतो जातेः सप्तम्याञ्चेनिठौ न तु।

स्ववान्, कारकवान्, ब्राह्मणवान्। सप्तम्याम्—कृष्णोऽत्रास्ति कृष्णवान् देशः। व्यभिचरति च—कार्य्यी, हार्य्यी, तण्डुली, तण्डुलिकः। व्रीह्यादे—व्रीही, व्रीहिकः, व्रीहिमान्, मायी, मायिकः, मायावान् ॥९५९॥

९६०। शिखादिभ्य इनिः।

शिखी, शिखावान्। एवं माली, मेखली, सङ्गी पातकी, कर्म्मी, चर्म्मी ॥९६०॥

९६१। नाभादिव्यष्ठरामः।

नाविकः, नौमान्, यवखदिकः, यवखदावान् ॥९६१॥

९६२ । तुन्दादेरिलस्तौ च[1] ।

तुन्दिलः, तुन्दिकः, तुन्दी, तुन्दवान्, उदरिलः, उदरिकः, उदरी, उदरवान्, एवं पिचिण्ड, यव । व्रीहेरर्थग्रहणं तुन्दादिषु । शालिनः, शालिकः, शाली ॥९६२॥

९६३ । स्वाङ्गाद्वृद्धौ च ।

स्थूलकर्णः—कर्णिलः, कर्णिकः, कर्णी ॥९६३॥

९६४ । एकगोपूर्व्वान्माधवठः, निष्कपूर्व्वेशतसहस्राभ्याञ्च ।

ऐकशतिकः, गौसहस्रिकः, एकादशीति श्यामरामादेवेष्यते । तथा नैष्कशतिकः, नैष्कसहस्रिकः ॥९६४॥

९६५ । रूप्यो दीनारे प्रशस्तरूपे च ।*

साधुः ॥९६५॥

९६६ । हिम्यादयश्च ।

साधवः । हिम्यः, गुण्यः, पद्यम् ॥९६६॥

९६७ । अस्-माया-मेधा-स्रग्भ्यो विनिः ।

तसाभ्यां मत्वर्थीया यादिवत् । पयस्वी, मायावी मेधावी, स्रग्वी । सरस्वान् सरस्वतीत्येव तु स्यात् ; विनेरनभिधानात् ॥९६७॥

९६८ । अर्श आदेरराम: ।

अर्शसः, तुन्दः, काणः, खञ्जः, पलितः, लवणः गोधूमः ॥९६८॥

९६९ । आमयावी रोगिणि ।

साधुः ॥९६९॥

९७० । शृङ्गारक-वृन्दारक-फलिन-वर्हिण-हृदयालवः ।

इत्येते साधवः । फली, वर्ही, हृदयिको, हृदयी, हृदयवानित्यपि दृश्यते ॥९७०॥

९७१ । शीतालु-तिग्मालु-वलूलु-हिमेलवस्तत्तदसहे ।

साधवः । हिमेलुरिति सन्ध्यक्षरमध्यः ॥९७१॥

९७२ । वातुलो वातासह-वातसङ्घयोः ।

साधुः ॥९७२॥

९७३ । उर्णायुर्मेषकम्बले ।

उरामान्तः साधुः ॥९७३॥

९७४ । वाग्ग्मी पण्डिते ।

द्विगकारोऽस्य साधुः ॥९७४॥

९७५ । वाचाल-वाचाटौ निन्द्यबहुभाषिणि

साधू ॥९७५॥

९७६ । स्वादीश्वरे ।

साधुः ॥९७६॥

९७७ । वातक्यतिसारकि-पिशाचकिनः ।

साधवः ॥९७७॥

९७८ । रामकृष्णादुपतापाद्गर्ह्यादप्यरामात् प्राणिस्थादिनिर्न तु मतुः ।

कटकवलयी, कुष्ठी, ककुदावर्त्ती । 'प्राणिस्थात्' किम् ? पुष्पफलवान् ॥९७८॥

९७९ । प्राण्यङ्गान्नेष्यते ।

पाणिपादवती । अरामात् किम् ? मूर्च्छावती ॥९७९॥

९८० । पूरणाद्वयसि ।

पञ्चमो मासो वर्षो वास्य पञ्चमी ॥९८०॥

९८१ । दशमी वृद्धे ।

साधुः ॥९८१॥

९८२ । सुखादिभ्यश्च ।

सुखी, दुःखी ॥९८२॥

९८३ । धर्म्मशीलवर्णान्ताच्च ।

वैष्णवधर्म्मी, वैष्णवशीली, ब्राह्मणवर्णी ॥९८३

९८४ । हस्ती जातौ ।

साधुः ॥९८४॥

९८५ । वर्णी ब्रह्मचारिणि, पुष्करिण्यादयो देशे ।

---

[1] । तुन्दादेरिल इकश्च (ख)

* दीनारो रौपकैरष्टाविंशत्या परिकीर्त्तितः । सुवर्णसप्ततितमो भागो रौपक उच्यते ॥ इति दीनार-लक्षणम् ।

साधवः ॥६८५॥

६८६ । बाहुबलि-उरुबलिनौ, सर्व्वबलि सर्व्वजीवी सर्व्ववेशी च ।

साधवः ॥६८६॥

६८७ । अर्थी याचके ।

साधुः । तदन्ताच्च—धनार्थी ॥६८७॥

६८८ । बलादेर्मतुर्व्वा ।

बलवान्, बली, उत्साहवान्, उत्साही ॥६८८

६८९ । कंयु-शंयु-शुभंय्वहंय्वादयः ।

साधवः । आदिग्रहणात्—कम्वः, शम्वः, कम्भः शम्भः, कन्तिः, शन्तिः, कन्तः, शन्तः, कन्तुः, शन्तुः, कंयः, शंयः ॥६८९॥

६९० । तुन्दि-बलि-वटिभ्यो भः ।

तुन्दिभः । पामादित्वाद् बलिनश्च ॥६९०॥

उक्ता मत्वर्थीयाः ।

अतःपरं स्वार्थिकाः

अत्र 'प्रथमनिर्द्दिष्टविष्णुभक्तयन्तात् प्रत्ययः' (त० प्र० २५७) इति निवृत्तं, विभाषा त्वनुवर्त्तते—

६९१ । कृष्णनामबहुभ्यां, न तु द्वयादिचतुर्भ्यः ।

प्रभुरयं प्राग्दिशीयः । स चायं पूर्व्वविष्णुभक्तिवन्मन्तव्यः ॥६९१॥

६९२ । पञ्चमीतस्तसिः ।

अन्तरङ्गस्वादेर्महाहरः । सर्व्वतः, विश्वतः, ततः, यतः, बहुतः ॥६९२॥

६९३ । सप्तमीतन्त्रः ।

सर्व्वत्र, बहुत्र ॥६९३॥

६९४ । एतदोऽतोऽत्र, इदम इत इह, अदसोऽमुतोऽमुत्र, किमः कुतः कुत्रेति ।

तस्त्राभ्यां त्रिष्वपि लिङ्गेषु साधवः ॥६९४॥

६९५ । कुत्रस्य क्वेति च, इतरत्रापि भवदादियोगे दृश्यते ।

सभवान्, ततोभवान्, तत्रभवान् । ततो दीर्घायुषं ब्रवीमि तत्र वा । ततो देवानां प्रियेण कृतं तत्र वा इत्यादि ॥६९५॥

६९६ । कालेऽधिकरणे सर्व्वदादयः ।

साधवः ॥६९६॥

६९७ । सर्व्वस्य सर्व्वदा सदा, तदस्तदा तदानीं तर्हि, यदो यदा यर्हि, इदम एतर्हि इदानीमधुना, किमः कदा कर्हीति विशेष्योपादाने तु न स्यात् ।

सर्व्वत्र काले ॥६९७॥

६९८ । सर्व्वेण प्रकारेणेत्यादौ सर्व्वथादयः ।

सर्व्वथा, यथा, तथा, इत्थं, कथम् ॥६९८॥

६९९ । सद्य आदयश्च ।

समानेऽहनि सद्यः, पूर्व्वस्मिन् वत्सरे परुत्, पूर्व्वतरे वर्षे परारि, परारि. अस्मिन् वत्सरे ऐषमः परस्मिन्नहनि परेद्यवि, अस्मिन्नहनि अद्य, पूर्व्वस्मिन्नहनि पूर्व्वेद्युः, उभयस्मिन्नहनि उभयेद्युः उभयद्युः ॥६९९॥

उक्ताः प्राग्दिशीयाः ।

१००० । दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमी-प्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः, पूर्व्वाधरावरेभ्योऽसिश्च, पूर्व्वादीनां पुर अध अव तयोः, अवस्त्वस्तातौ वा ।

पूर्व्वस्यां दिशि, पूर्व्वस्याः दिशः, पूर्व्वा दिक्, पुरस्तात् पुरः । एवम् अधस्तात् अधः । अवस्तात्, अवरस्तात् अवः । एवं देशकालयोरपि । धा प्रत्ययं यावदस्तातिप्रत्ययैक विषये विधिः ॥१०००॥

१००१ । दक्षिणोत्तराभ्यामतसिः ।

दक्षिणतः ॥१००१॥

१००२ । परावराभ्यां वा ।

परतः परस्तात् ॥१००२॥

१००३ । अञ्चतेर्महाहरः ।

अञ्चत्यन्ताद्दिक्शब्दादस्तातेर्महाहरः स्यात् ।

तत्र लक्ष्मीप्रत्ययस्य महाहरः प्राग्वसतीत्यादि १००३

१००४। उपर्य्युपरिष्टात्।

एतौ अस्तात्यर्थे निपात्येते ॥१००४॥

१००५। अवरस्य पश्चादस्ताती साधुः।

पश्चाद्वसत्यागतो रमणीयं वा ॥१००५॥

१००६। दिक्पूर्व्वपदस्य च।

दक्षिणपश्चात्। पश्चभावात्—पश्चार्द्धो दक्षिणपश्चार्द्धः ॥१००६॥

१००७। उत्तराधरदक्षिणेभ्य आतिः।

उत्तरात्, अधरात् ॥१००७॥

१००८। अदूरे एनोऽपञ्चम्या वा।

उत्तरात् उत्तरेण वसति रमणीयं वा। अपञ्चम्याः किम्? व्रजस्य दक्षिणत आगतः १००८

१००९। दक्षिणाददूरे आरामः।

दक्षिणा वसति रमणीयं वा ॥१००९॥

१०१०। आहिश्च दूरे।

दक्षिणाहि दाक्षिणा ॥१०१०॥

१०११। उत्तराच्च।

उत्तरा उत्तराहि वसति रम्यं वा। अपञ्चम्या इति निवृत्तम्। उक्ता अस्तात्यर्थाः। एत एवातस्यर्थाः—यैर्योगे षष्ठी एनेन द्वितीयाषष्ठ्यौ अञ्चुत्तरपदादारामाहियोगे पञ्चमी भवेत् ॥१०११

१०१२। क्रियाप्रकारवृत्तेः सङ्ख्याया धाः

पञ्चधा हरिमर्च्चयति, सप्तधा ॥१०१२॥

१०१३। द्रव्यविभागे च।

एकं द्विधा कुरु ॥१०१३॥

१०१४। एकधास्थाने ऐकध्यञ्च।

साधु। द्विधा-त्रिधा स्थाने द्वेधा द्वैधमित्यादि च। तसिमारभ्य सर्व्वमेतदन्तमव्ययम् ॥१०१४॥

१०१५। गर्ह्ये पाशः।

हीनो याज्ञिको याज्ञिकपाशः ॥१०१५॥

१०१६। षष्ठाष्टमाभ्यां णरामारामौ भागे

षाष्ठः षष्ठो भागः, आष्टमः, अष्टमः ॥१०१६॥

१०१७। पञ्चङ्ग भागे षष्ठकः।

साधुः ॥१०१७॥

१०१८। भूतपूर्व्वे केशवचरः।

भूतपूर्व्वो वैष्णवः वैष्णवचरः ॥१०१८॥

१०१९। षष्ठ्या रूप्यश्च।

वैष्णवस्य भूतपूर्व्वो वैष्णवरूप्यो ग्रामः। वैष्णवचरः ॥१०१९॥

१०२०। गुणप्रकर्षयुक्तात्तमेष्ठौ।

अयमेषां कृष्णतमः, अयमेषां पटिष्ठः। अत्र नामजन्यप्रकरणोक्तमनेकसर्व्वेश्वरस्य संसारहर इत्यादिकं स्मर्त्तव्यम् ॥१०२०॥

१०२१। आख्यातात्तमाम्।

भजतितमाम् ॥१०२१॥

१०२२। द्वयोरेकतरस्य गुणप्रकर्षे तरेयसू

अयमनयोर्वैष्णवतरः, पटुतरः, पटीयान्। द्वयोरिति द्विभाग[1]-मात्रपर, तेन पञ्चमीपक्षेऽपि श्रौघ्नेभ्यो माथुरा आढ्यतराः ॥१०२२॥

१०२३। आख्याताात्तराम्।

भजतितराम्। इष्ठेयसू गुणवचनादेव, तथैवोदाहृतम्। विन्मत्वोर्हर इति इष्ठेयस्वोरपि दर्शितत्वादगुणवचनेभ्योऽपि तौ ज्ञाप्यौ, यथा—अयमेषां स्रजिष्ठः, अयमनयोः स्रजीयान्, एवमोजिष्ठः ओजीयान्, त्वचिष्ठः, त्वचीयान्, धर्म्मिष्ठश्च ॥१०२३

१०२४। प्रशंसायां रूपः।

वैष्णवरूपः, पण्डितरूपः ॥१०२४॥

१०२५। आख्याताच्च।

पचतिरूपम्, अत्र ब्रह्मत्वमेव ॥१०२५॥

१०२६। ईषदसमाप्तौ कल्प-देश्य-देशीयाः

वैष्णवकल्पः, पण्डितदेश्यः ॥१०२६॥

१०२७। आख्याताच्च।

भजतिकल्पम्। स्वार्थिकाः, प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिक्रान्ता अपीति, विष्णुकल्पा लक्ष्मीः

---

[1] । द्विविभाग (क)

दर्शनकल्पा हरेः स्फुर्त्तिः, दृष्टिकल्पं हरेः स्फुरणम् ॥१०२७॥

१०२८। स्वाद्यन्तात् प्राग्बहुर्व्वा कल्पार्थे

बहुनारायणा लक्ष्मीः। "लघुर्बहुतृणं नरः" (माघः २।५०) पक्षे नारायणकल्पा इत्यादि ॥१०२८॥

१०२९। प्रकारवति जातीयः।

वैष्णवप्रकारवान् वैष्णवजातीयः। तथा जातीयः तज्जातीयः ॥१०२९॥

१०३०। प्रागिवीयात् कः,

अव्ययकृष्णनाम्नोस्तु संसारात् प्रागक् कस्य च दः तत्र स्वाद्यन्तस्य संसारात् प्रागक् ओराम-सराम-भरामादि-वर्ज्जम्।

प्रभुरयम्। कस्य च द इति यथासम्भवं सहजस्यान्तिमकरामस्येति ज्ञेयम्—उच्चकैः, नीचकैः धिकधकित्, पृथक्पृथकत्। सर्व्वके, विश्वके, त्वयका, मयका, त्वयकि, मयकि। ओरामादि-परत्ववर्ज्जनादिह नाम्न एव संसारात् प्रागक्—युवकयोः, आवकयोः, युष्मकासु, अस्मकासु, युष्मकाभिः, अस्मकाभिः। गौणत्वेन कृष्णनामत्वाभावादत्र णक्—त्वं पिता यस्य स तत्पितृकः, न तु त्वकत्पितृकः। नाममात्रस्य वाच्यत्वात् समासेऽन्यपदार्थप्रधानत्वाद् गौणत्वम्। आख्यातस्य च दृश्यते—जल्पतकि ॥१०३०॥

१०३१। अत्र वचेर्निजेश्च भूतेश्वरे।

अवक्, अवकक्, अनेनेक्, अनेनकेक्। अत्र कस्य च दो नेष्यते ॥१०३१॥

१०३२। तूष्णीमस्तूष्णीका साधु।

तूष्णीकामासते विज्ञाः ॥१०३२॥

अथ तत्रार्थनियमाः

१०३३। अज्ञातवैशिष्ट्ये।*

न ज्ञायते कस्यायं वैष्णवः वैष्णवकः। अज्ञात उच्चैरीदृशस्तादृशो वा उच्चकैः। अज्ञातासौ कस्य कीदृशी वा असकौ। एवं सर्व्वके, विश्वके। भजतकि। कस्य च दः—पृथकत् ॥१०३३॥

१०३४। कुत्सिते।*

अत्र च काकौ। कुत्सितोऽश्वः अश्वकः उच्चकैः, सर्व्वके, भजतकिः ॥१०३४॥

१०३५। संज्ञायाम्।*

काकौ। शूद्रक इति कस्यचिद्राज्ञो नाम ॥१०३५

१०३६। अनुकम्पायाम्।*

काकौ। वैष्णवको दुर्ब्बलकः। सर्व्वके, भजतकि ॥१०३६॥

१०३७। एवं नीतिदानमानितयोरपि।*

"गोपायकेद्धनायुषी" *। सुवर्णं गृहीत्वा सुखं तिष्ठक इति ॥१०३७॥

१०३८। बहुसर्व्वेश्वरान्नृनाम्नष्ठरामो वा, घराम इलश्च, उपादेरड्वुरामौ च।

तत्र कपक्षे—देवदत्तकः, उपेन्द्रदत्तकः ॥१०३८॥

१०३९। अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च।

व्याघ्राजिनो नामानुकम्पितः व्याघ्रकः। एवं कृष्णकः। ठादिपक्षे सूत्रान्तराणि ॥१०३९॥

१०४०। द्वितीयात् सर्व्वेश्वराच्चतुर्थादपि परभागस्य सर्व्वेश्वरे।

अनुकम्पितो विष्णुदत्तो विष्णुकः। 'चतुर्भुजान्तात्' (त० प्र० ६२) इति ठस्य कः। एवं पितृकः। अनुकम्पितो देवदत्तः देविकः। घपक्षे देवियः। इल—देविलः। चतुर्थसर्व्वेश्वरात्—लक्ष्मीपतिदत्तोऽनुकम्पितो लक्ष्मीपतिकः ॥१०४०॥

१०४१। लोपोऽसर्व्वेश्वरे क्वापि क्वापि पूर्व्वपदस्य च अप्रत्ययस्तथैवेष्ट उद्वयाल्ल इलस्य च ॥

देवकः, दत्तकः, दत्तः, विष्णुलः, उपादे खल्वपि ॥१०४१॥

१०४२। सन्ध्यक्षरस्य द्वितीयसर्व्वेश्वरत्वे तदादेर्लोपवचनम्।

*** अज्ञाने कुत्सिते चैव संज्ञायामनुकम्पने। तद्युक्तनीतावप्यल्पे वाच्ये ह्रस्वे च कः स्मृतः।**

*** "स्वेष्टमन्त्रं गुरुञ्चापि गोपायकेद्धनायुषी" इति नीतिशास्त्रम्।**

अनुकम्पित उपेन्द्रदत्तः—उपडः, उपकः ॥१०४२

१०४३। एकसर्व्वेश्वरपूर्व्वपदादुत्तरपदलोपश्च

वागाशीः वाचिकः, त्वगाशीः त्वचिकः ॥१०४३

१०४४। षडङ्गुलिदत्तकस्य षडिको निपात्यते।

१०४५। शेवल-विशालवरुणार्य्यमादीनां तृतीयसर्व्वेश्वरात परभागस्य हरः।

शेवलदत्तकः, शेवलिकः, शेवलीयः शेवलील इत्यादि ॥१०४५॥

१०४६। तूष्णींशीले तूष्णीक साधुः।

१०४७। एक-एकक-एकाकी चासहाये।

साधवः। एकाकिन्निति नान्तः ॥१०४७॥

१०४८। ह्रस्वे।*

काकावित्येव। दण्डकः, स्तम्भकः, सर्व्वके ॥१०४८

१०४९। अल्पे।*

काकौ। घृतकम्, उच्चकैः, विश्वके, भजतकि ॥१०४९॥

१०५०। संज्ञायां कः।*

वेणुकः, वंशकः ॥१०५०॥

१०५१। कुटी-शमी-शुण्डादिभ्यो रः, कुत्वा उपच्, कासूगुणीभ्यां तरट् च।

कुटीरः, शमीरः, शुण्डारः। कुटी मृतशरीरमित्येके कुतुपः। एतेषां पुंस्यभिधानम्। कासूतरी, गोणीतरी, कासूर्वस्त्रभेदः ॥१०५१॥

१०५२। वत्सोक्षाश्वतरर्षभेभ्यश्चासम्पूर्णतद्रूपत्वे

वत्सत्वेनासम्पूर्णो वत्सतरो द्वितीयवयाः। एवमुक्षतरः तृतीयवयाः। अश्वतरी खरजाता, ऋषभतरो मन्दः ।१०५२॥

१०५३। किंयत्तद्भ्यो गुणक्रियासंज्ञाभिर्द्वयोरेकस्य निर्द्धारणायामतरच्।

कतरो भवतोर्वैष्णवः? यतरो वैष्णवः, ततर आयातु। एवं कतरः पूजकः, कतरो विष्णुशर्म्मा ॥१०५३॥

१०५४। बहूनां जातिप्रश्नेऽतमजकौ।

कतमो भवतां वैष्णवः? यतमः, ततमः। अक्पक्षे—'किमः कः' इत्यादौ साकस्यापीति—कः, यकः, सकः। महाविभाषया वाक्यञ्च। जातीति किम्? यो भवतां विष्णुदत्तः ॥१०५४॥

१०५५। एकाच्च पूर्व्ववत्तरतमौ।

एकतरो भवतोरायातु। एवं भवतामेकतमः ॥१०५५

१०५६। अवक्षेपे कः।

व्याकरणकेनायं गर्व्वितः। गर्व्वोऽत्राक्षिप्यते ॥१०५६

प्रागिवीयाः पूर्णाः।

१०५७। इवार्थे कः प्रतिकृतौ संज्ञायाञ्च

इवार्थः, सादृश्य, तद्विशेष. प्रतिकृतिः। कृष्णसारप्रतिकृतिः कृष्णसारकः। संज्ञायाम्—कृष्णमृगकः। इवार्थे विधिः प्राक् पादात्। प्रतिकृतौ प्राग्वस्तेः ॥१०५७॥

१०५८। मनुष्ये तस्य स्मरहरः जीविकार्थे चापण्ये।

चञ्चेव चञ्चा मनुष्यः चञ्चा तृणप्रतिमा। जीविकार्थे य आदित्यादि-प्रतिकृतिं कृत्वा भ्रमति स आदित्यः। एवं स्कन्दः, वासुदेवः। अपण्ये किम्? वासुदेवकान् विक्रीणीति ॥१०५८॥

१०५९। देवपथादिभ्यश्च।

देवपथः, काश्यपः ॥१०५९॥

१०६०। अर्च्चासु पूजनार्थासु चित्रतद्ध्वजेऽपि च। इवे प्रतिकृतौ लोपः कस्य देवपथादिषु॥

अर्च्चासु—शिवः, विष्णुः, चित्रकर्म्मणि—दुर्य्योधनः, अर्ज्जुनः, ध्वजेषु—कपिः, गरुडः, सिंहः प्रतिकृतिर्गता ॥१०६०॥

१०६१। वस्तेर्माधवढः।

वस्तिरिव वास्तेयं, वास्तेयी ॥१०६१॥

१०६२। शिलाया ढरामश्च।

---

* अज्ञाने कुत्सिते चैव संज्ञायामनुकम्पने। तद्युक्तनीतावप्यल्पे वाच्ये ह्रस्वे च कः स्मृतः॥

शिलेव शिलेयमस्याः शरीरम्। माधवत्वात् शैलेयं दधि, शैलेयी तनुः ॥१०६२॥

१०६३। शाखादिभ्यो यः।

शाखेव शाख्यः। मुख्य, जघन्यः ॥१०६३॥

४०६४। द्रव्यं भव्ये साधुः।

भव्य अभिप्रेतानामर्थानां पात्रभूतः। 'द्रव्योऽयं माणवकः इति काशिका (५।३।१०४)। 'द्ररिव सर्व्वाश्रयत्वाद् यति द्रव्य निपात्यते भव्यञ्चेत्, 'द्रव्यमेव खलु सर्व्ववल्लभम्' इति प्रयागदर्शनात्' इति भाषावृत्तिः (५।३।१०४) ॥१०६४॥

१०६५। कुशाग्राच्छरामः।*

कुशाग्रमिव कुशाग्रीया बुद्धिः ॥१०६५॥

१०६६। काकतालीयादयः साधवः।

आकस्मिकेन तालपतनेन काकस्य बध इव केनापि देवदत्तस्य बधः—काकतालीयम्। एवं अजाकृपाणीयं बधः। ब्रह्मत्वे तत्त्वविधानम्। काकतालादिशब्देनात्राकस्मात्तालादिपतनहेतुकः काकादिबध उच्यते, अस्मिन्नर्थे समासश्चात्र समर्थ्यते, देवदत्तस्य तद्वद्वधस्तद्धितार्थं ॥१०६६॥

१०६७। शर्करादिभ्यः केशवणः।

शर्करेव शार्करं कापालम् ॥१०६७॥

१०६८। अङ्गुल्यादेर्माधवठः।

अङ्गुलीव, आङ्गुलिकः। एवं भारुजिकादि ॥१०६८॥

१०६९। एकशालायाष्ठरामो वा।

एकशालेव एकशालिकः। पक्षे—कः, माधवठ इत्यन्ये ॥१०६९॥

१०७०। कर्कलोहिताभ्यां ठीनृ सिंहः।

कर्कः शुक्लोऽश्वः तेन सदृशः कार्कीको गौः। लौहितीकः स्फटिकः। स्वयमलोहित उपाश्रयात्तथावभाषते ॥१०७०॥

उक्तमिवार्थे।

१०७१। पादशताभ्यां सङ्ख्यादिभ्यां वीप्सायां वुरामो लक्ष्म्यामन्त्यलोपश्च, दण्डदानयोश्च।

द्वौ द्वौ पादौ तद्धितार्थे समासः, अन्त्यलोपात् 'पाच्छब्दस्य वामनो भगवति' (वि० प्र० ११३)—द्विपदिका। एवं त्रिशतिका ॥१०७१॥

१०७२। अन्यतोऽपीष्यते।

त्रिगोदकिका। तथा द्विपदिकां दण्डितः। त्रिशतिकां व्यवसृजति ॥१०७२॥

१०७३। स्थूलादिभ्यः प्रकारोक्तौ कः।

वक्ष्यमाणजातीयस्य बाधा। स्थूलप्रकारः स्थूलकः। एवं यवकः, अश्मकः चञ्चासदृशः चञ्चत्कः। एवं बृहत्कः ॥१०७३॥

१०७४। अनत्यन्तगतौ क्तात्।

नात्यन्त भिन्नं भिन्नकं, छिन्नकम् ॥१०७४॥

१०७५। नार्द्धवाचिपूर्व्वात्।

अर्द्धपीतं, सामिभुक्तं, खण्डकृतं, नेमभिन्नम्। प्रतिषेधोऽयम्। स्वार्थिकस्य तस्य चास्तित्वे लिङ्गमिदमेव, तेन बहुतरकमिति जयादित्यः १०७५

१०७६। बृहतिका वस्त्रविशेषे, अषडक्षीणं तृतीयाद्यगोचरे, आशितङ्गवीनं गावो यत्राशिताः पुरा, अलङ्कर्म्मीणः कर्म्मक्षमे, अलम्पुरुषीणः पुरुषाय शक्ते।

एते साधवः ॥१०७६॥

१०७७। अञ्चेः खरामो वा स्वार्थे, न तु दिशि।

प्राक् प्राचीनं, प्राचीना ब्राह्मणी। तिर्य्यक् तिरश्चीनं, प्रत्यक् प्रतीचीनम्। नेह—प्राची दिक् ॥१०७७॥

१०७८। जात्यन्ताच्छरामो द्रव्ये।

ब्राह्मणजातीयः। अद्रव्ये तु ब्राह्मणजातिरदुष्टा ॥१०७८॥

१०७९। स्थानान्ताच्छो वा तुल्यत्वे।

* "कुशाग्रादेरीयः" इति संक्षिप्तसार-व्याकरणे तद्धित-परिशिष्ट-सूत्रम्।

भगवत्स्थानीयो भगवत्तुल्यः। एवं भगवत्स्थानः ॥१०७९॥

१०८०। किमेरामाख्याताव्ययेभ्यस्तरान्तमाश्चा द्रव्यप्रकर्षे।

किन्तरां, किन्तमाम्। अत्र क्रियाया गुणस्य वा प्रकर्षः। पूर्व्वाह्लेतरां, पूर्व्वाह्लेतमाम्। अत्राधारशक्तेः प्रकर्षः। एवं यातितरां, यातितमाम् प्रातस्तरां, प्रातस्तमाम्। नितराम्, उच्चैस्तराम्। द्रव्यप्रकर्षे प्रतिषेधः, उच्चैस्तरः कश्चित् ॥१०८०॥

१०८१। सङ्ख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तौ कृत्वसुः, द्वित्रिचतुर्भ्यः सुः।

पञ्च वारान् हरिमर्च्चयति पञ्चकृत्वः। शतकृत्वः स्तुतवान्। द्विरधीते गीतां, त्रिश्चतुर्वा ॥१०८१॥

१०८२। बहोर्धा वा निकटकालक्रियाभ्यावृत्तौ

बहुधा यजते बहुकृत्वो वा। अनिकटत्वे तु— बहुकृत्व इत्येव ॥१०८२॥

१०८३। तत्प्रकृतवचने केशवमयः।

प्राचुर्य्येण प्रस्तुतः प्रकृतः, स चासौ प्रकृतश्चेति तत्प्रकृतः, तद्वचनेऽर्थे मयट् स्यात्। अन्नं प्रकृतं प्रस्तुतमन्नमयमिह। अपर आह—अन्नं प्रकृतमस्मिन् अन्नमयो यज्ञः। अपूपमयं पर्व्व। उभयथापि प्रमाणम् ॥१०८३॥

१०८४। समूहवच्च बहुषु।

बहुषु प्रस्तुतेषूच्यमानेषु समूहवत् प्रत्ययाः स्युः। अपूपाः, प्रकृता उच्यन्ते आपूपिकमिह, अन्यपदार्थपक्षे आपूपिकं पर्व्व। चकारान्मयट्— अपूपमयम्, तुलसीमयी पात्री। मोदकाः प्रकृता उच्यन्तेऽस्मिन् मौदकिकं, मोदकमयम् ॥१०८४॥

१०८५। देवतान्तात्तादर्थ्ये यराम:, पादर्घ्याभ्याञ्च, अतिथेस्तुण्यः।

विष्णुदेवतायै इदं विष्णुदैवत्यम्। तथा पाद्यम्, अर्घ्यं, तथा आतिथ्यम् ॥१०८५॥

१०८६। स्वार्थे।

प्रभुरयम् ॥१०८६॥

१०८७। अनन्तावसथेतिह-भेषजेभ्यो ण्यः

आनन्त्यम्, आवसथ्यम्, ऐतिह्यं, भैषज्यम् ॥१०८७

१०८८। तथा नव-सूर-मर्त्त[1] यविष्ठ-क्षेमेभ्यो यः।

नव्यं, सूर्य्यं, मर्त्त्यः ॥१०८८॥

१०८९। नवस्य नूत्न-नूतन-नवीनाश्च।

साधवः ॥१०८९॥

१०९०। पुराणस्य प्रण-प्रत्न-प्रतन-प्रीणाश्च

साधवः ॥१०९०॥

१०९१। भाग-रूप-नामभ्यो धेयः।

भागधेयम् ॥१०९१॥

१०९२। देवात्ताप् लक्ष्म्याम्।

देवता: ॥१०९२॥

१०९३। यावकादयः साधवः।

यावकः, माणिकः, नान्तरीयकः, कन्दुकः, स्नातकः इत्यादि ॥१०९३॥

१०९४। लोहितको मणिभेदे वर्णे चास्थिरे लाक्षादिना रक्ते च साधुः।

अस्थिरे वर्णे लोहितिका, लोहिनिका चेति दृश्यते ॥१०९४॥

१०९५। कालकमस्थिर-तद्वर्णे स्यात्।

कालकं मुखम् ॥१०९५॥

१०९६। विनयादेर्नृसिंहठः।

विनयो वैनयिकः, समयः सामयिकः, उपचारः, औपचारिकः, मुक्ता मौक्तिकम् ॥१०९६॥

१०९७। एवमत्ययव्यवहारसमूहविशेषाच्च, उपायस्योपयिकम्, अकस्मादित्यस्याकस्मिकम् साधु ॥१०९७॥

१। सूरर्षभ-मत्त-(क)

१०९८। वाचिकं सन्देशे, कार्म्मणं वाचा प्रतिपादिते कर्म्मणि।

साधुनी ॥१०९८॥

१०९९। ओषधेः केशवणोऽजातौ।

औषधं पिब। जातौ तु—

वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः भवन्ति यत्रौषधयो रजन्या,-मतैलपूराः सुरतप्रदीपाः

—इति कुमारसम्भवम् (१।१०) ॥१०९९॥

११००। प्रज्ञादेः केशवणः।

प्रज्ञः एव प्राज्ञः, प्राज्ञी स्त्री, वणिक् वाणिजः, मरुत् मारुतः, चोरः चौरः, रक्षो राक्षसः, देवता दैवतम्, मनो मानसं, शत्रुः शात्रवः, पिशाचः पैशाचं, वयो, वायसः, बन्धुर्बान्धवः, विकृतं वैकृतं, द्विता द्वैतं, प्रतिभः प्रातिभः, चण्डालश्चाण्डालः। आकृतिगणोऽयम् ॥११००॥

११०१। मृदो मृत्तिको, मृत्सामृत्स्ने तु प्रशंसायाम्।

साधवः ॥११०१॥

स्वार्थो निवृत्तः।

११०२। तसिर्व्वा।

प्रभुर्य्यम् ॥११०२॥

११०३। प्रतिनिधौ पञ्चम्याः, अपादाने चाहीयरुहः।

प्रद्युम्नः कृष्णतः प्रति, कृष्णाद्वा। तथा व्रजत आयाति, व्रजाद्वा। अहीयरुहः किम्? वैष्णवमार्गाद्धीयते, विष्णुपदादवरोहति ॥११०३॥

११०४। अतिग्रहाचलनिन्दास्वकर्त्तरि तृतीयायाः, हीयमानपापयोगाच्च।

वृत्ततोऽतिगृह्यते, हरिभक्तितो न चलति' व्यवहारतो निन्दितः। पक्षे—हरिभक्त्येत्यादि। अकर्त्तरि किम्? वृत्तेन क्षिप्तः। तथा वृत्ततो हीयते, वृत्ततः पापः ॥११०४॥

११०५। षष्ठ्या विविधपक्षाश्रये रोगादपनयने च।

देवा अर्ज्जुनतोऽभवन्, आदित्याः कर्णतोऽभवन् अर्ज्जुनस्य पक्षे, कर्णस्य पक्षे इत्यादि। तथा हिक्कातः कुरु, प्रवाहिकातः कुरु, प्रतीकारमस्याः, कुर्व्वित्यर्थः ॥११०५॥

११०६। प्रथमाप्रभृतिभ्यश्च यथादर्शनम्।

कर्म्मगुण इत्यर्थे कर्म्मगुणतः, स्मरणात् स्मरणतः, आदौ आदितः, पृष्ठे पृष्ठतः, शरीरेण शरीरतः। "मन्त्र दुष्टः* स्वरतो वर्णतो वा" (पाणिनीय-शिक्षा ५२) ॥११०६॥

११०७। बह्वल्पार्थात् कारकाच्छस् माङ्गलिके, सङ्ख्यापरिमाणाभ्याञ्च वीप्सायाम्

बहूनि बहुभ्यो बहुभिर्वा ददाति बहुशो ददाति। एवं भूरिशः, अल्पशः, स्तोकशः। श्रद्धादौ तु मा भूदिति माङ्गलिकग्रहणम्। सङ्ख्यायाः द्वौ द्वौ ददाति द्विशः, एवं पञ्चशः। परिमाणात्—पणं पणं ददाति पणशः। एवं प्रस्थशः, पादशः। अकारकात्तु— बहुस्वामी ॥११०७॥

११०८। कृते द्विर्व्वचनेऽनेकसर्व्वेश्वरोत्तरार्द्धादव्यक्तानुकरणात् कृभ्वस्तियोगे आच्, नरस्य तलोपश्च।

पटत् पटत् करोति पटपटाकरोति। एवं दमदमायते ॥११०८॥

११०९। न त्वितौ।

पटपटदिति करोति ॥११०९॥

१११०। आच् कृञ्योगे।

प्रभुरयं वि यावत् ॥१११०॥

११११। द्वितीय-तृतीय-शम्ब-वीजेभ्यः कृषौ, सङ्ख्यायाश्च गुणान्तायाः।

द्वितीयं कर्षणं करोति द्वितीयाकरोति। शम्बाकरोति, पुनस्तिर्य्यक् कर्षतीत्यर्थः।

---

* 'दुष्टः' इत्यत्र 'हीनः' इति पाणिनीय-शिक्षायां (५२) पाठः।

तथा द्विगुणाकरोति क्षेत्रम् ॥११११॥

११६२ । समयाद् यापनायाम् ।

समयाकरोति कालं यापयतीत्यर्थः ॥१११२॥

१११३ । सपत्रनिष्पत्राभ्यामतिव्यथने ।

सपत्राकरोति मृगं, पत्रपर्य्यन्तेन शरेण तं व्यथयतीत्यर्थः । एवं निष्पत्राकरोति पत्रनिर्गमनपर्य्यन्तेन इत्यादि पूर्व्ववत् । अतिव्यथने किम् ? निष्पत्रं करोति तरुम् ॥१११३॥

१११४ । निष्कुलान्निष्कोषणे ।

निष्कुलाचकार हिरण्यकशिपूदरम्, अन्तर्भागबहिष्करणेन तद्विदारयामास इत्यर्थः ॥१११४

१११५ । सुखप्रियाभ्यामानुलोम्ये ।

सुखाकरोति वैष्णवम् ॥१११५॥

१११६ । दुःखात् प्रातिलोम्ये ।

दुःखाकरोत्यवैष्णवम् ॥१११६॥

१११७ । शूलात् पाके ।

शूलाकरोति हरिपराङ्मुखान् यमः ॥१११७॥

१११८ । सत्यादशपथे ।

सत्याकरोति वस्तूनि वणिक्, मयैतद्ग्रहीतव्यमिति निश्चिनोतीत्यर्थः । अशपथे किम् ? सत्यं करोति ॥१११८॥

१११९ । मद्रभद्राभ्यां माङ्गलिकमुण्डने ।

मद्राकरोति बालः ॥१११९॥

आच् कृञ्योगे निवृत्तः ।

११२० । अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे विः कृञि कर्म्मणि भ्वस्त्योः कर्त्तरि ।

विः सर्व्वत्र इत् ॥११२०॥

११२१ । अद्वयस्य वावीरामः, अन्यस्य त्रिविक्रमः ।

अकृष्णं कृष्णं करोति कृष्णीकरोति, अकृष्णः कृष्णो भवति कृष्णीभवति, कृष्णीस्यात्, एवं हरीकरोति, हरीभवति ॥११२१॥

११२२ । अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां सलोपश्च ।

अन्धकरोति, सुमनीभवति, उच्चक्षूस्यात् । सुचेतीकृत्य, रहीभूतं, नीरजीकृतम् ॥११२२॥

११२३ । सातिर्व्वा वि-विषये कार्त्स्न्ये ।

पापं भस्मसात्करोति भस्मीकरोति विष्णुभक्तिः ॥११२३॥

११२४ । अभिविधौ वि-विषये सम्पद्भ्वस्तियोगे सातिर्व्वा ।

अभिविधिरभिव्याप्तिः । सुखसात्सम्पद्यते हरिभक्तिः, सुखसाद्भवति, सुखसादस्ति, सुखीभवति ॥११२४॥

११२५ । तदधीनवचने कृभ्वस्तिसम्पद्योगे सातिर्व्वा ।

कृष्णाधीनं करोति कृष्णसात्करोति, कृष्णसात्सम्पद्यते ॥११२५॥

११२६ । धेयेऽधीने च सातिस्त्रा च ।

कृष्णसात्करोति कृष्णत्राकरोति, कृष्णत्रासम्पद्यते, कृष्णत्राभवति । मयेदं कृष्णत्राकृतम् ॥११२६॥

११२७ । देव-मनुष्य-पुरुष-पुरु-मर्त्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् ।

कृष्णकृपा देवत्रागच्छति, देवं गच्छतीत्यर्थः । कृष्णः कृपां मनुष्यत्राकरोति, मनुष्ये करोतित्यर्थः, एवं पुरुषत्रागच्छतीत्यादि । बाहुल्यात्—बहुत्रा जीव वैष्णव ! शसादिरव्ययं, कृत्वस्वर्थाश्च ॥११२७॥

पूरितास्तद्धिताः ।

इति श्रीश्रीहरिनामामृताख्ये वैष्णवव्याकरणे तद्धित-प्रकरणं सप्तमं समाप्तम् ।



अथ ग्रन्थोपसंहारः

१। कृष्णत्राकृतमेत,-त्तस्माद्विफला न चात्र मात्रापि।
अपि तु महाफलयुक्ता, तल्लीलाकाव्यवज्जयति ॥

२। यदत्र व्यक्तमुक्तं न भ्रान्तं वा तदशेषतः।
ज्ञेयं शोध्यञ्च विज्ञेभ्यो विज्ञशास्त्रावलोकतः ॥

३। हानोयं पाणिनीयं रसवदरसवत् काकलापः कलापः
सार-प्रत्यागि सारस्वतमपहतगीर्विस्तरो विस्तरोऽपि।
चान्द्रं दुःखेन सान्द्रं सकलमविकलं शास्त्रमन्यन्नधन्यं
गोविन्दं विन्दमानां भगवति भवतीं वाणि नो चेद्ब्रवाणि ॥

४। पानीयं पाणिनीयं रस मृदुरसवन्मुत्कलापः कलापः
सार-श्रीसारि सारस्वतमधिमधुगीर्विस्तरो विस्तरोऽपि।
चान्द्रं सौख्येन सान्द्रं सकलमविकलं शास्त्रमन्यत् प्रशस्तं
गोविन्दं विन्दतीं त्वां यदि भमवति गीर्वाणि वाणि ब्रवाणि ॥

५। भगवन्नामवलिता भगद्भक्तितत्परैः।
वृन्दावनस्थजीवस्य कृतिरेषा तु गृह्यताम् ॥

६। छन्दसाप्रचरद्रूपरूढशब्दान् विना मया।
अत्रालेखि तदिच्छा चेद् द्रश्योऽन्यः शास्त्रसंग्रहः ॥

७। हरिनामामृतसंज्ञं, यदर्थमेतत् प्रकाशयामासे।
उभयत्र च मम मित्रं, स भवतु गोपालदासाख्यः ॥

इति वेदवेदाङ्गवेदान्तेतिहास-पुराणाद्यध्ययनाध्यापन-जनित-यशस्तोमसोमधवलीकृत-
दिङ्मुखैर्महामहोपाध्याय-निकरैः परमबृहत्तमसिद्धिसङ्घैश्च निषेवितपादपङ्कजैः
परमहंस-कुल-मुकुटमणि-श्रीमज्जीवगोस्वामिपादैर्विरचितमिदं
श्रीमद्धरिनामामृताख्यं वैष्णव व्याकरणं सम्पूर्णम्



परिशिष्टम्

श्रीश्रील-जीवगोस्वामी-विरचितः

धातुसंग्रहः

श्रीकृष्णाय नमः

कृष्णलीलाकथाबीजरूप-धातुगणो मया ।
संक्षेपाद् वक्ष्यते तेन कृष्णो मह्यं प्रसीदतु ॥

भ्वादयः

भू सत्तायाम्, चिती संज्ञाने, संज्ञानं निद्रादिविगमो ज्ञानमात्रञ्च, अत सतत्यगमने, च्युतिर् आसेचने, श्च्युतिर् क्षरणे, मन्थ विलोडने, कुथि हिंसा संक्लेशयोः, षिधु गत्याम्, षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च, खाद भक्षणे गद व्यक्तायां वाचि, रद विलेखने, णद अव्यक्ते शब्दे, अर्द गतौ याचने च, नर्द गर्द शब्दे, इदि परमश्वर्य्ये, णिदि कुत्सायाम्, टुनदि समृद्धौ, चदि आह्लादने दीप्तौ च, क्रदि आह्वाने रोदने च, तकि कृच्छ्रजीवने, आङ्पूर्व्वस्त्वातङ्के बुक्क भषणे, भषणं कुक्कुरध्वनिः, उख, इख, ईखि, वल्ग, अगि, इगि, रिगि, लिगि—गत्यर्थाः, लगि गतौ, लघि अतिक्रमय, गतौ, शिघि आघ्राणे, शुच शोके, हानिस्मरणे अनुसन्धान शोकः, कुञ्च, क्रुञ्च कौटिल्याल्पीभावयोः—एतौ सकर्म्मकावकर्म्मकौ, लुञ्च अपनयने, अञ्चु गतिपूजनयोः, वञ्चु, चञ्चु, म्लुञ्चु, ग्रुञ्चु, ग्लुञ्चु, षस्ज गतौ, ग्रुचु, ग्लुचु स्तेयकरणे, अर्च पूजायाम्, चर्च परिभाषण-तर्ज्जनयोः, म्लेच्छ अव्यक्तायां वाचि, आछि आयामे, लाछि लक्षणे, वाछि इच्छायाम्, ह्रीछ लज्जायाम्, मूर्च्छा मोह-समुच्छ्राययोः, उछि उञ्छे, उच्छी विवासे, विवासो वासातिक्रमः, वज, व्रज गतौ, अज क्षेपणे च, अर्ज अर्ज्जने, खजि गतिवैकल्ये, एजृ कम्पने, टुओस्फूर्जा वज्रनिष्पेषे (वज्रनिर्घोषे), क्षि क्षये, कूज, गुजि अव्यक्ते शब्दे, तर्ज भर्त्सने, गर्ज शब्दे, शौटृ गर्व्वे, कटे वर्षावरणयोः, रट परिभाषणे, जट संघाते, नट नृतौ, नृतिर्नर्त्तनम्, लुट विलोडने, चिट पेष्ये, अट, इ गतौ, मडि भूषायाम्, मुट प्रमर्द्दने, मुडि खण्डने, खण्डनं लोमशातनम्, वटि विभजने, लुटि स्तेये, स्फुटिर् विसरणे, विसरणं विकाशः, विशरण इति पाठे विदारणम्, पठ व्यक्तायां वाचि, हठ बलात्कारे, शठ कैतवे, मठ निवासे, चुड्ड हावकरणं, शृङ्गार-चेष्टा क्रीडृ विहारे, लड विलासे, गुपू रक्षणे, तप, धूप सन्तापे, रप, लप, जल्प व्यक्तायां वाचि, जप मानसे च चुप मन्दायां गतौ, चुवि वक्त्रसंयोगे, रण, भण, मण, स्वण, स्तन, ध्वण शब्दे, वन संभक्तौ च' ओणृ अपनयने, शोणृ लौहित्ये, तुडृ ताडने, तोडनं भञ्जनम्, षण संभक्तौ, चमु, जमु अदने, क्रमु पादविक्षेपे, क्लसु ग्लानौ, यम उपरमे, णम प्रह्वत्वे शब्दे च, प्रह्वत्वं नमस्कारो नम्रता च, अम, द्रम गतौ, ईर्ष्य ईर्ष्यायाम्, हय गतौ, दल, ञिफला, विशरणे, मील निमेषणे, नील वर्णे, शील समाधौ, शूल रुजायाम्, तूल निष्कर्षे, मूल प्रतिष्ठायाम्, फल निष्पत्तौ, निष्पत्तिर्निष्पादनं प्रतिफलनञ्च, चुल्ल हावकरणे, फुल्ल विकसने, वेल्ल गतौ, स्खल चलने, चलनं विच्युतिः, गल अदने शंसने च, खेलृ विहारे, खोलृ गतिप्रतिघाते,

धोऋ गतिचातुर्य्ये, त्सर छद्मगतौ, अभ्र चरगतौ, ष्ठिवु निरसने, निरसनं थूत्कारः, जि जये, जीव प्राणधारणे, पीव स्थौल्ये, उर्वी, तुर्वी, धुर्वी हिंसार्थाः, मुर्वी बन्धने, चर्व अदने, इवि व्याप्तौ, गर्व दर्पे, अव, रक्ष पालने, घुषिर् शब्दे, णिक्ष चुम्बने, मृक्ष संघाते, तक्ष त्वचने, त्वचन संवरणम्, काक्षि काङ्क्षायाम् अक्षू व्याप्तौ संघाते च, तक्षू निर्भर्त्सने, त्वक्षू तनूकरणे, चूष पाने, तूष तुष्टौ, पूष वृद्धौ, मूष स्तेये, तसि, भूष अलङ्कारे, ऊष रुजायाम्, कृष विलेखने आकर्षणे च, कष, रुष, रिष हिंसायाम्, भष भर्त्सने (कुक्कुरध्वनि-विशेष इत्यर्थः) वृषु, उक्ष सेचने, मृषु सहने, पुष पुष्टौ, प्रुषु, प्लुषु, उष दाहे, घृषु सघर्षे, तुस, रस शब्दे, लस क्रीडायाम्, त्रसी उद्वेगे, हस हसने, घस्लृ अदने, पिसृ गतौ, शश प्लुतगतौ, णिश समगतौ, शसु हिंसायाम्, शन्सु स्तुतौ च, मिह सेचने, दह भस्मीकरणे, रह त्यागे, रहि गतौ, दृहि, वृहि वृद्धौ, वृहिर् शब्दे च, अर्ह, मह पूजायाम्, ग्लै हर्षक्षये, म्लै गात्रविनामे, कान्तिक्षय इत्यर्थः, द्रै स्वप्ने, कै, गै शब्दे, ष्ट्यै, स्त्यै शब्दसंघातयोः, क्षै क्षये, शै, श्रै पाके, पै, ओवै शोषणे, ष्टै (स्तै) वेष्टने, दैप् शोधने, धेट्, पा पाने, घ्रा गन्धोपादाने, ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः, ष्ठा गतिनिवृत्तौ, म्ना अभ्यासे, दाण् दाने, ह्वृ कौटिल्ये, स्वृ शब्दोपतापयोः, स्मृ, ध्यै चिन्तायाम् सृ गतौ, ऋ प्रापणे च, श्रु श्रवणे, स्रु, द्रु, ऋच्छ, गम्लृ, सृप्लृ गतौ, स्कन्दिर् गतिशोषणयोः, गतिरत्र स्खलनम्, यभ मैथुने, तॄ प्लवन-तरणयोः, प्लवनं जले वहनम्, तरणं नद्यादेः पारगमनम्, षु प्रसवे, त्यज हानौ, षन्ज सङ्गे, दृशिर् प्रेक्षणे, दन्श दंशने, कित निवासे, रोगापनयने, संशये च—इति परपदिनः।

एध वृद्धौ, स्पर्द्ध संघर्षे, संघर्षः स्पर्द्धा, गाधृ प्रतिष्ठायाम्, तलस्पर्श इत्यर्थः, बाधृ विलोडने, दध धारणे स्कुदि आप्लवने, आप्लवनं प्लुतगतिः, वदि अभिवादनस्तुत्योः, अभिवादनं प्रणामः, स्पदि किञ्चिच्चलने, मुद हर्षे, दद दाने, हद पुरीषोत्सर्गे, ष्वद, स्वाद, स्वर्द आस्वादने, आस्वादनं रसोपादानं रुचिश्च, कूर्द क्रीडायामेव, षूद क्षरणे, क्षरणं हिंसा, ह्राद अव्यक्ते शब्दे, ह्लादी सुखे च, पर्द कुत्सिते शब्दे, अपानशब्द इत्यर्थः, यती प्रयत्ने, नाथृ, नाधृ याच्ञोपतापैश्वर्य्याशीःषु च, श्रथि शैथिल्ये, ग्रथि, वकि कौटिल्ये, कत्थ आत्मश्लाघायाम्, शीकृ सेचने, लोकृ, लोचृ दर्शने, श्लोकृ संघाते, आनुपूर्व्या पदानां ग्रन्थनं संघातः, शकि शङ्कायाम्, अकि लक्षणे ढौकृ, त्रौकृ, ष्वष्क्, टीकृ, लघि गत्यर्थाः, अघि गत्याक्षेपे, गत्याक्षेपो वेगगतिर्गत्यारम्भो वा, लाघृ सामर्थ्ये, श्लाघृ स्तुतौ षच् समवाये, पचि व्यक्तीकरणे, भृजी भर्ज्जने, वर्च, भ्राज दीप्तौ, तिज निशाने, क्षमायाञ्च, ष्वन्ज परिष्वङ्गे, घट्ट चलने, स्फुट विकसने, चेष्ट चेष्टायाम्, वेष्ट वेष्टने, कठि शोके, भडि परिहासे, हिडि अनादरे गतौ च, मुडि मार्ज्जने, चडि कोपे, पिडि संघाते, पडि गतौ, खडि मन्थे, कडि तुषापकरणे, हेडृ अनादरे, शाडृ श्लाघायाम्, ग्लेपृ दैन्ये, टुवेपृ, कपि चलने, त्रपूष लज्जायाम्, लवि अवस्रंसने, कवृ वर्णे, क्लीवृ अधार्ष्ट्ये, क्षीवृ मदे, रेभृ शब्दे, रभि गवां शब्दे, ष्टभि, स्कभि, प्रतिबन्धे, जभ, जृभि गात्रविनामे, वल्भ भोजने, गल्भ धार्ष्ट्ये, ष्टुभु स्तम्भे, घिणि ग्रहणे, घुण, घूर्ण भ्रमणे, स्रन्सु प्रमादे, पण व्यवहारे स्तुतौ च, पन च, भामो क्रोधे, क्षमूष् सहने, कमु कान्तौ, कान्तिरिच्छा, अय, रय गतौ, णय रक्षणे च, दय-दान-गति-हिंसादानेषु च, ऊयी तन्तुसन्ताने, पूयी विशरणे दुर्गन्धे च, क्नूयी शब्दे उन्दे च, क्ष्मायी विधूनने, स्फायी, ओप्यायी वृद्धौ, तायृ विस्तारण पालनयोः, कल संख्याने, देवृ देवने, षेवृ, शेवृ सेवने, क्लेश बाधने, धुक्ष सन्दीपन-जीवन-क्लेशनेषु, शिक्ष विद्योपादाने, भिक्ष याच्ञायाम् दक्ष शीघ्रार्थे, दीक्ष मौण्ड्येज्योपनयन-नियमव्रतादेशेषु, ईक्ष दर्शने, भाष व्यक्तायां वाचि, हेषृ अश्वशब्दे, कासृ कासरोगशब्दे, भ्राशृ, भासृ दीप्तौ, आङ्-शास इच्छायाम्, ग्रसु, ग्लसु अदने, ईह चेष्टावाञ्छयोः, वहि वृद्धौ, अहि गतौ, गर्ह, गल्ह कुत्सायाम्, ऊह वितर्के, गाहू विलोडने, स्मिङ् ईषद्धसने, कुङ्, ङुङ् शब्दे, च्युङ्, प्रुङ्, प्लुङ्, गाङ्, श्यैङ् गतौ, मेङ् प्रतिदाने, देङ्, त्रैङ् पालने, प्यैङ् वृद्धौ, पूङ् पवने, डीङ् विहायसा गतौ, गुप गोपन-कुत्सनयोः, मान पूजायां विचारणे च, बध बन्धने निन्दायाञ्च, रभ राभस्ये, डुलभष् प्राप्तौ, द्युत, शुभ, रुच दीप्तौ, श्विता वर्णे, ञिमिदा स्नेहने, ञिष्विदा मोचने च,

घुट परिवर्त्तने, लुट, लुठ शोकादिना पतने, क्षुभ सञ्चलने, भ्रन्सु, स्रन्सु, ध्वन्सु अधःपतने, स्रन्भु विश्वासे वृतु वर्त्तने, वृधु वृद्धौ, शृधु अपानशब्दे, स्यन्दू प्रस्रवणे, कृपू सामर्थ्ये,—कृत्स्नं द्युतादिः, वृतादिः।

घट चेष्टायाम्, व्यथ दुःखे, प्रथ प्रख्याने, म्रद मर्द्दने, क्रदि वैक्लवे, ञित्वरा सम्भ्रमे—एते घटादिषु षितः, एधादयः आत्मपदिनः।

ज्वर रोगे, णट नृत्तौ, नृतिर्नर्त्तनम्, लगे सङ्गे, ष्टगे संवरणे, श्रण दाने, क्नथ हिंसायाम् ह्वल चलने, ज्वल दीप्तौ, स्मृ आध्याने, आध्यानं सोत्कण्ठस्मरणम्, दृ भये, श्रा पाके, मारण-तोषण-निशामनेषु ज्ञा, कम्पने चलिः, छदिर् ऊर्ज्जने, ऊर्ज्जनं प्राणनं, बलनं वा, जिह्वोन्मथने, लडिः, उन्मथनमुत्क्षेपणम्, मदी हर्षग्लेपनयोः, ध्वन शब्दे—इति घटादयः।

जनी, जॄष वयोहानौ, रञ्ज अमन्ताश्च, ज्व, ह्वल, नमोऽनुपेन्द्राद्वा, ग्ला-स्ना-वनु वमश्च, न कम्यमिचमः, शमो दर्शने, यमिरपरिवेशणे—कृत्स्नं घटादिः, फण गतौ—परपदिनः। राजृ दीप्तौ—उभयपदी।

टुभ्राजृ, टुभ्राशृ, टुम्लाशृ दीप्तौ—आत्मपदिनः, स्वन शब्दे—फणादिः।

ज्वल दीप्तौ, चल कम्पने, टल, ट्वल वैक्लव्ये, स्थल स्थाने, हल विलेखने, बल प्राणने, पुल महत्वे, पत्लृ पथे च गतौ, क्वथे निष्पाके, मथे विलोडने, टुवम उद्‌गिरणे, भ्रमु चलने, क्षर सञ्चलने—परपदिनः

सह मर्षणे, रमु क्रीडयाम्—आत्मपदिनौ।

षद्लृ खेदनगत्यवसादनेषु, शद्लृ शातने, शातनं पातनम् क्रुश आह्वाने, कुच कौटिल्ये, बुध अवगमने, रुह जन्मनि प्रादुर्भावे च, कस गतौ, कृत्स्नं ज्वलादिः—परपदिनः।

हिक्क हिक्कायाम्, धावु गतिशुद्धयोः, अञ्चु गतौ, अस दीप्त्यादानयोश्च, टुयाचृ याच्ञायाम्, प्रोथृ पर्याप्तौ, पर्याप्तिः पूर्णता सामर्थ्यं वा, मेधृ मेधा हिंसयोः, णिदृ णेदृ कुत्सा-सन्निकर्षयोः, बुधिर् बोधने, खनु अवदारणे, चायृ पूजानिशामनयोः, स्पश बाधन-स्पर्शनयोः, दाशृ, दासृ दाने, भ्रेषृ चलने, लष कान्तौ भक्ष भक्षणे, गुहू संवरणे—इति हिक्कादयः।

हृञ् हरणे, हरणं देशान्तरप्रापणम्, अपनयनञ्च, भृञ् भरणे, धृञ् धारणे, णीञ् प्रापणे, दान अवखण्डने शान तेजने, डुपचष् पाके, भज, श्रिञ् सेवायाम्, रन्ज रागे, शप आक्रोशे, त्विष दीप्तौ, यज देवपूजा-सङ्गतिकरण दानेषु, डुवप बीजतन्तुसन्ताने, वह प्रापणे, वेञ् तन्तुसन्ताने, व्येञ् संवरणे, ह्वेञ् स्पर्द्धायां शब्दे च—उभयपदिनः।

वस निवासे, वद व्यक्तायां वाचि, टुओश्वि गतिवृद्धयोः, कृत्स्नं यजादिः—परपदिनः।

इत्यौत्सर्गिक-शव्‌विकरणा भूवादयः॥१॥

अदादयः

अद, प्सा भक्षणे, वश कान्तौ, कान्तिरिच्छा, हन हिंसागत्योः, यु मिश्रणामिश्रणयोः, णु स्तुतौ, क्ष्णु तेजने, ष्णु प्रस्रवणे, टुक्षु, रु, कु शब्दे, षु प्रसवे, इक् स्मरणे, इण् गतौ, वी प्रजन-कान्त्यसन-खादनेषु च, प्रजनं गर्भग्रहणम्, भा दीप्तौ, या प्राप्तौ, वा वायुगतौ, ष्णा शौचे, श्रा पाके, द्रा कुत्सायां गतौ, पा रक्षणे, रा, ला दाने, दाप् लवणे, ख्या प्रकथने, प्रा पूरणे, मा माने, विद ज्ञाने, अस् भुवि सत्तायामित्यर्थः, मृजुष् शुद्धौ, वच परिभाषणे, रुदिर् अश्रुविमोचने, ञिष्वप् शये, श्वस् प्राणने, अन् च (प्राणनार्थः) जक्ष भक्ष-हसनयोः—कृत्स्नं रुदादिः।

जागृ निद्राक्षये, दरिद्रा दुर्गतौ, चकासृ दीप्तौ, शासु अनुशिष्टौ—कृत्स्नं जक्षादिः, यङ्‌लुक् च—परपदिनः।

चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, ईर गतौ, कम्पने च, ईड स्तुतौ, ईश ऐश्वर्य्ये, आस उपवेशने विद्यमानतायाञ्च आङ्-शासु इच्छायाम्, वस आच्छादने, कसि गति शासनयोः, णिसि चुम्बने, णिजि शुद्धौ, शिजि भूषण, ध्वनौ, वृजी वर्ज्जने, पृची सम्पर्के, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने, शीङ्, स्वप्ने, इङ् अध्ययने, ह्नुङ् अपनयने

आत्मपदिनः।

द्विष अप्रीतौ, दुह प्रपूरणे, दिह प्रलेपे, लिह आस्वादने, ऊर्णुञ् आच्छादने, ष्टुञ् स्तुतौ, ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि—उभयपदिनः।

हु वह्नौ दाने, ञिभी भये, ह्री लज्जायाम्, पॄ पालनपूरणयोः, वामनोऽप्यस्ति, ओहाक् त्यागे, ऋ सृ गतौ—परपदिनः।

णिजिर् शौचे, विजिर् पृथग्भावे, विषॢ व्याप्तौ, डुदाञ् दाने, डुधाञ्, डुभृञ्, धारणपोषणयोः—उभयपदिनः। माङ् माने, ओहाङ् गतौ—आत्मपदिनौ।

जुहोत्यादिः।

इति शब्लुकोऽदादयः ॥२-३॥

दिवादयः

दिवु क्रीडा-विजीगिषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-कान्ति-गतिषु, षिवु तन्तुसन्ताने, स्रिवु गतिशोषणयोः, ष्ठिवु निरसने, नृती गात्रविक्षेपे, त्रसी उद्वेगे, कुथ पूतीभावे, पुथि हिंसायाम्, क्षिप प्रेरणे, पुष्प विकसने, तिम, ष्टिम, ष्टीम आर्द्रीभावे, व्रीड लज्जायाम्, इष गतौ, षह शक्तौ, जॄष वयोहानौ, शो तनूकरणे, छो छेदने, षो अन्तकर्म्मणि दो अवखण्डने, राध, साध संसिद्धौ, मृग अन्वेषणे, त्रुट छेदने, व्यध ताडने, लष कान्तौ, पुष पुष्टौ, शुष शोषणे, दुष वैकृत्ये, वैकृत्यं शुद्धयभावः, श्लिष आलिङ्गने, ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे, क्षुध बुभुक्षायाम्, शुध शौचे, षिधु संराद्धौ।

रध हिंसायाञ्च, तृप प्रीणने, दृप गर्व्वे, मुह वैचित्त्ये, द्रुह जिघांसायाम्, ष्णुह उद्गिरणे, ष्णिह प्रीतौ णश अदर्शने—कृत्स्नं रधादिः।

क्रमु पादविक्षेपे, शमु, दमु उपशमे, तमु ग्लानौ, श्रमु तपसि खेदे च, भ्रमु अनवस्थाने, क्षमू सहने, क्लमु ग्लानौ, मदी हर्षे—शमादिः।

असु क्षेपणे, यसु प्रयत्ने, जसु मोक्षणे, दसु उपक्षये, प्लुष दाहे, लुठ विलोडने, उच समवाये, भृशु, भ्रंशु अधःपतने, कृश तनूकरणे, ञितृषा पिपासायाम्, तुष, हृष तुष्टौ, कुप कोपे, रुप रुपे, ष्टूप समुच्छ्राये लुभ गार्द्ध्ये, क्षुभ सञ्चलने, क्लिदू आर्द्रीभावे, ञिमिदा स्नेहने, ञिक्ष्विदा मोचने च, ऋधु वृद्धौ, गृधु अभिकाङ्क्षायाम्, कृत्स्नं पुषादिः—परपदिनः।

षूङ् प्राणिगर्भविमोचने, दूङ् परितापे, दीङ् क्षये, धीङ् अनादरे, मीङ् हिंसायाम्, रीङ् स्रवणे, लीङ् श्लेषणे, डीङ् गतौ, व्रीङ् वरणे—स्वादयः ओरामेतः।

पीङ् पाने, माङ् माने, ईङ् गतौ, प्रीङ् प्रीतौ, जनी प्रादुर्भावे, दीपी दीप्तौ, पूरी आप्यायने, जूरी जीर्णे, तूरी त्वरणहिंसयोः, गूरी हिंसायाम्, चूरी दाहे, तप ऐश्वर्य्ये वा, वृतु वरणे, क्लिश उपतापे, टुभ्राश्टृ दीप्तौ, वाश्टृ तिरश्चां ध्वनौ, पद गतौ, खिद दैन्ये, विद सत्तायाम्, बुध अवगमने, युध संप्रहारे, अनौ रुध कामे, अनावुपपदे रुधिः कामे दिवादिरित्यर्थः, मन ज्ञाने, युज समाधौ, सृज विसर्गे, लिश अल्पीभावे—आत्मपदिनः। शक, मृष क्षमायाम्, ई शुचिर् पूतीभावे—उभयपदिनः।

इति श्य-विकरणा दिवादयः ॥४॥

स्वादयः

षूञ् अभिषवे, अभिषवः सन्धानं मज्जनं स्नानं वा, षिञ् बन्धने, शिञ् निशाने, डुमिञ्, प्रक्षेपणे, चिञ् चयने' स्तृञ् आच्छादने, कृञ् हिंसायाम्, वृञ् वरणे, धुञ् कम्पने—उभयपदिनः।

टुदु उपतापे, हि गतौ वृद्धौ च, पृ प्रीतौ, आप्ॡ व्याप्तौ, शक्ॡ शक्तौ, राघ, साध संसिद्धौ, कृवि, द्र जिघांसायाम्, ञिधृषा प्रागल्भ्ये, दम्भु दम्भे, ऋधु वृद्धौ, धिवि प्रीणने, अक्षू व्याप्तौ संघाते च, तक्ष

तनू करणे—परपदिनः। अशूङ् व्याप्तौ—आत्मपदी।

इति श्नु-विकरणाः स्वादयः ॥५॥

तुदादयः

तुद व्यथने, णुद प्रेरणे, दिश अतिसर्ज्जने, अतिसर्जनं दानमाज्ञापनं वा, कथनेऽप्ययम्, भ्रस्ज पाके, क्षिप प्रेरणे, कृष विलेखने, मुच्लृ छेदने, विद्लृ लाभे, लिप उपदेहे, षिच क्षरणे—उभयपदिनः।

कृती छेदने, खिद परिघाते, कृत्स्नं मुचादिः। धि करणे, क्षि निवासो गत्योः, ओव्रश्चू छेदने, ऋच्छ गतीन्द्रिय-प्रलयमूर्त्तिभावेषु, कॄ विक्षेपे, गॄ निगरणे, चर्च परिभाषणे, उब्ज आर्जवे, उद्झष उत्सर्गे, गुफ गुन्फ, दृभी ग्रन्थे, शुभ, शुन्भ शोभार्थे, उभ, उन्भ पूरणे, विध विधाने, ताडनेऽपि, मृड सुखने, पुण शुभे (कर्म्मणि) घुण घूर्ण भ्रमणे, प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्, सृज विसर्गे, टुमस्जो शुद्धौ, रुजो भङ्गे, भुजो कौटिल्ये, छुप, स्पृश संस्पर्शे, रुश, रिश हिंसायाम्, विच्छ गतौ, विश प्रवेशने, मृश आमर्शने, आमर्शनं स्पर्शः विमर्शः, आलोचनञ्च, शद्लृ शातने, षद्लृ विशरणे, क्षुर विलेखने, खुर छेदने, घुर भीमार्थशब्दयोः, तृण्ह्ह हिंसायाम्, वृह्ह उद्यमे, इषु ईच्छायाम्, कुट कौटिल्ये, मिल सङ्गे, लिख विलेखने, कुच सङ्कोचे, व्यच व्याजीकरणे, गुज शब्दे, छुर, त्रुट छेदने, स्फुट विसरणे, घुट प्रतिघाते, तुड उपहनने, वुड, व्रुड मज्जने, स्फुर स्फुरणे, णू स्तवने, धू विधूनने, विधूननं कम्पनम्, गु पुरीषोत्सर्गे, ध्रु गतिस्थैर्य्ययोः—परपदिनः। गुरी उद्यमे, कुङ् कूङ् शब्दे—कृत्स्नं कुटादयः। पृङ् व्यायामे, व्यायामश्चेष्टा, मृङ् प्राणत्यागे, दृङ् आदरे, धृङ् अवस्थाने, जुषी प्रीतिसेवनयोः, ओविजी भयचलनयोः, ओलजी, ओलस्जी व्रीडायाम्—आत्मपदिनः।

इति श-विकारणस्तुदादयः ॥६॥

रुधादयः

रुधिर् आवरणे, भिदिर् विदारणे, छिदिर् द्विधाकरणे, रिचिर् विरेचने, रिचिर् पृथगभावे, क्षुदिर् संपेषणे, युजिर् योगे—उभयपदिनः।

कृती वेष्टने, शिष्लृविशेषणे, पिष्लृ संचूर्णने, भन्जो आमर्द्दने, भुज पालनाभ्यवहारयोः, तृह, हिंसि हिंसायाम्, उन्दा क्लेदने, अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु, ओविजी भयचलनयोः, वृजी वर्जने, पृची सम्पर्के परपदिनः। ञिइन्धी दीप्तौ, खिद दैन्ये, विद विचारणे—आत्मपदिनः।

इति श्नम्-विकरणा रुधादयः ॥७॥

तनादयः

तनु विस्तारे, षणु दाने, क्षणु, क्षिणु हिंसायाम्, तृणु अदने, डुकृञ् करणे—उभयपदिनः।
वनु याचने, मनु बोधने—आत्मपदिनौ।

इति उ-विकरणास्तनादयः ॥८॥

क्र्यादयः

डुक्रीञ् द्रव्य विनिमये, प्रीञ् तर्पणे इच्छायाञ्च, श्रीञ् पाके, षिञ्, षुञ् बन्धने, स्कुञ् आप्लावने, क्नुञ् शब्दे, मीञ्, द्रञ् हिंसायाम्, पूञ् पवने, लूञ् छेदने, स्तॄञ् आच्छादने, कॄञ् हिंसायाम्, वॄञ् वरणे, धूञ् कम्पने, ग्रह उपादाने—उभयपदिनः।

शॄ, सॄ हिंसायाम्, पॄ पालन-पूरणयोः, क्लीवॄ वरणे, दॄ विदारणे, जॄ वयोहानौ, री रेषणे

रेषणं वृकध्वनिः, ली श्लेषणे—कृत्स्नं प्वादि, ल्वादिः।

वी वरणे, भ्री भरणे, ज्ञा अवबोधने, ग्रन्थ मोचने, बध बन्धने, मन्थ विलोडने, ग्रन्थ सन्दर्भे, कुन्थ संक्लेशे, मृद क्षोदे, भृड सुखने, कुष निष्कर्षे, निष्कर्षो निष्काशनम्, खव भूतिप्रादुर्भावे, क्षुभ सञ्चलने, क्लिशू विबाधने, अश भोजने, पुष पुष्टौ, मुष स्तेये—परपदिनः। वृङ् सम्भक्तौ—आत्मपदी।

इति श्ना-विकरणाः क्र्यादयः ॥९॥

चुरादयः

चुर स्तेये, चिति स्मृत्याम्, यन्त्रि सङ्कोचने, लक्ष दर्शनाङ्कयोः, भक्ष अदने, लड उपसेवायाम्, गौरवादि रहितेन प्रीतियोगेन सेवा उपसेवा, मिदि, ष्णिह स्नेहने, ओलडि उत्क्षेपे, ओदनुबन्धोऽयम्, पीड अवगाहने दुःखक्रियायाञ्च, नट अवस्यन्दने, अवस्यन्दनं नाट्यं, बध संयमने, पॄ पूरणे, ऊर्ज्ज बलप्राणयोर्धारणे कुट्ट छेदने, पुट विस्तारे, मुट सञ्चूर्णने, घट्ट चलने, छद संवरणे, पिजि, पिषि हिंसायाम्, पीथ गतौ, तड आघाते, खड, खडि भेदे, क्षल शौचे, तल प्रतिष्ठायाम्, तुल उन्माने, चुल निमज्जने, श्रूप समुच्छ्राये, मूल रोहणे, सान्त्व सामप्रयोगे, मान पूजायाम्, चुद प्रेरणाक्षेपयोः, पाल रक्षणे, श्लिष श्लेषणे, ज्ञप मारणादौ, घटादिश्च, यम च परिवेशने, अन्यस्वार्थण्यन्ता घटादि पठिता अपि न घटादयः, तेन 'शम, लक्ष आलोचने' इत्यस्य निशामयति श्रृणोतीत्यर्थः, व्यय क्षये, स्फिट्ट हिंसायाम्, पूल, पिडि संघाते, टकि बन्धने, पूज पूजायाम्, ईड स्तवने, शुठि शोषणे, चूर्ण पेषणे, गर्ज शब्दे, हृत्रि विस्तारवचने, तिज निशाने, कृत सशब्दने, वर्द्ध छेदनपूरणयोः, म्लेच्छ अव्यक्तशब्दे, म्रक्ष म्रक्षणे, इल प्रेरणे, लुण्ठ स्तेये, छर्द वमने, शूर्प माने गर्द्ध अभिकाङ्क्षायाम्, रुष रोषे, वटि विभजने, मडि भूषायाम्, श्रण दाने, छदि संवरणे, भडि प्रतारणे, यमु हिंसायाम्—परपदिनः।

तत्रि विस्तारणे, मत्रि गुप्तभाषणे, निष्क परिमाणे, लल ईप्सायाम्, चित संवेदने, दशि दंशने, दसि दर्शने च, कुण सङ्कोचने, तर्ज, भर्त्स संतर्जने, यक्ष पूजायाम्, गूर उद्यमे, शम, लक्ष आलोचने, कुत्स अवक्षेपणे, भल विरूपणे, निपूर्व्व दर्शने, कूट अप्रसादे, वञ्चु प्रलम्भने, मद तृप्तियोगे, दिवु परिकूजने, गृ विज्ञाने, विद वेदनाख्यान निवासेषु, कुस्म कुस्मये—आत्मपदिनः।

चर्च अध्ययने, शब्द—उपेन्द्रपूर्व्व आविष्कारे, षूद आस्रवणे, जसु ताडने, पश बन्धने, अम रोगे, चट स्फुट भेदने, घट संघाते—हन्त्यर्थाश्च, ये च तेषु गणेषु हिंसार्था धातव उक्तास्ते चुरादावपि ज्ञेया इत्यर्थः, दिवु अर्दने, अर्ज प्रतियत्ने, घुषिर् विशब्दने, विशब्दनं स्वाभिमताविष्करणम्, नानाशब्दनं वा, आङ्—क्रन्द क्रन्दनमत्यते, तसि, भूष अलङ्कारे, मोक्ष आसने, भज विश्राणने, यत निकारोपस्कारयोः (निरश्च प्रतिदाने) वि पूर्व्वश्चर असंशये, मुक्त प्रमोचने, स्वद-पर्य्यन्ताः सकर्म्मका एव, ग्रस अदने, पूष धारणे, दल विदारणे, लोकृ, लोचृ, णद, तर्क, वृधु—दीप्त्यर्थाः। पूरी आप्यायने, रुज हिंसायाम्, स्वद आस्वादने, इतो निर्विष्णुचापा अदन्ताः—कथ वाक्यप्रबन्धे, वर ईप्सायाम्, गण संख्याने, रह त्यागे, स्तन, गदी देवशब्दे, पत गतौ, पष अनुपेन्द्रात्, स्वर आक्षेपे, रच प्रतियत्ने, कल गतौ संख्याने च, चह आलोचने, मह पूजायाम्, श्रथश्लथ दौर्व्वल्ये, स्पृस ईप्सायाम्, भाम क्रोधे, सूच पैशुन्ये, वीज वीजाधाने, गोम उपलेपने, कुमार क्रीडायाम्, शील उपधारणे, साम सान्त्वने, वेल कालगणने, पलूचल लवनपवनयोः, गवेष मार्गणे, वास गुणान्तराधाने, निवास आच्छादने, भाज पृथक्करणे, सभाज प्रीतिसेवनयोः, ऊन परिहाणे, ध्वन शब्दे, स्तेन चौर्य्ये—परपदिनः।

आगर्वादात्मपदिनः—पद गतौ, गृह ग्रहणे, मृग अन्वेषणे, कुह विस्मापणे, शूर, वीर विक्रान्तौ, स्थूल परिवृंहणे, अर्थ उपयाच्ञायाम्, सत्र सन्ततिक्रियायाम्, (निर्वाहे निस्तारकर्म्मणि वेत्यर्थः) संग्राम युद्धे, गर्व माने।

सूत्र अवमोचने, अवमोचनं वेष्टनम्, मूत्र प्रस्रवणे, रूक्ष पारुष्ये, पार, तीर कर्म्मसमाप्तौ, अंस समाघाते चित्र चित्रीकरणे, कदाचिद्दर्शने च, वट विभाजने, लज प्रकाशने, मिश्र सम्पर्के, स्तोम श्लाघायाम्, छिद्र

क्रर्णभेदने, अन्ध, छद दृष्टचुपघाते, दण्ड दण्डनिपाते, अङ्क लक्षणे, सुख, दुःख तत्क्रियायाम्, रस आस्वादन स्नेहनयोः, व्यय वित्तसमुत्सर्गे, रूप रूपक्रियायाम्, छेद द्वैधीकरणे, व्रण गात्रविचूर्णने, वर्ण वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु, पर्ण हरितभावे, लाभ क्षयपूरणे, अघ पापकरणे, एवम् आन्दोल, प्रेङ्खोल चालने, ओज सामर्थ्ये, स्फुट प्रकाशने, अवधीर अवज्ञायाम्, तुत्थ आवरणे इत्यादयः।

इतो विकल्पण्यन्ताः—युज, पृच संयमने, षह मर्षणे, ईर प्रेरणे, ली द्रवीकरणे, वृजी वर्जने, जॄ वयोहानौ, रिच वियोजन सम्पर्चनयोः, शिष असर्व्वोपयोगे, विपूर्व्वोऽतिशये, तृप प्रीणने, छद आवरणे, मी गतौ, कथ, हिंसि हिंसायाम्, ग्रन्थ बन्धने च, आङः षद प्राप्तौ, श्रन्थ, ग्रन्थ सन्दर्भे, आप्लृ लम्भने, वेः तनु दैर्घ्ये, वद सन्देश वचने, भू प्राप्तौ।

अण्यन्तस्तूभयपदी—मान पूजायाम्, गर्ह विनिन्दने, ञिभी भये, मार्ग अन्वेषणे, कठि शोके, मृजु शौचे धृष प्रहसने—परपदिनः।

मृष तितिक्षायाम्, तष दाहे, वद भाषणे, अर्च पूजायाम्, अर्द हिंसायाम्, शुन्ध शुद्धौ—आत्मपदिनः।

वृञ् आवरणे, धूञ् कम्पने, प्रीञ् तर्पणे—उभयपदिनः।

इति स्वार्थण्यन्ताश्चुरादयः समाप्ताः ॥१०॥

वर्णवासौ वेल चिन्तौ व्ययवीरौ तथा व्रणः।
वृश्च वृश्च वृङ् च विजी व्री-व्ली-वा-वकि-वेञ्व्यथाः ॥१॥
वेचञ् वदी वच-वै-वल्गा-वञ्चु-व्यच-विजिर्-व्रजाः।
वर्च व्रश्चू वाछि-विच्छौ वृजी वेष्ट-वटि-व्रुडाः ॥२॥
विदा विद्लृ वद व्रीड-व्यधौ वृधः वह-वेपौ।
बाधृ-विशौ वृतव्युषौ वनु वीज वपा वमुः ॥३॥
वसौ वृषुवशौ वेल्लवनौ वाहवृही वजः।
एषां प्रयुक्तधातूनामन्तःस्थादित्वमिष्यते ॥४॥

अव ऊर्वी कृवि क्षीवृ कवृ क्लीवृ खवस्तथा।
वर्च जीवौ गर्वतुर्वौ धुर्वी गुर्वी धिवु स्रिवु ॥५॥
दिवि पिवौ देवृधावू सान्त्व षेवृ षिवु ष्ठिवु।
एषां प्रयुक्तधातूनामन्तःस्थान्तत्वमिष्यते ॥६॥

अप्रयुक्ताः परे ज्ञेया ग्रन्थात् कल्पद्रुमादिकात्।
हरिनामामृतस्यैषा संक्षेपाद्धातु-पद्धतिः।
मया कृता प्रयुक्तान्यधातूंस्त्यक्त्वा क्वचित् क्वचित् ॥

इति श्रीश्रील-जीवगोस्वामिपाद-विरचितः धातुसंग्रहसमाप्तः।

****+****

गणपाठः

[पाणिनिसम्मतः]

[तृतीयबन्धनीस्थिताङ्काः श्रीश्रीहरिनामामृतव्याकरण-प्रकरणसूत्रसंख्यानिर्द्देशकाः]

अक्षद्युतादिः [७।६२१]—अक्षद्युत (जानुप्रहृत) जङ्घाप्रहृत जङ्घाप्रहत पादस्वेदन कण्टकमर्द्दन गतानुगत गतागत यातोपयात अनुगत। **अङ्गुल्यादिः** [७।१०६८] अङ्गुली भरुज बभ्रु वल्गु मण्डर मण्डल शष्कुल हरि कपि मुनी रुह खल उदश्वित् गोणी उरस् कुलिश। **अजादिः** [७।२४१] अजा एडका कोकिला चटका अश्वा मूषिका बाला होडा पाका वत्सा मन्दा विलाता पूर्व्वापिहाणा (पूर्व्वापहणा) अपरापहाणा, संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात्, सदच् काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्, शूद्रा चामहत्पूर्व्वा जातिः क्रुञ्चा उष्णिहा देवाविशा जेयष्ठा कनिष्ठा, मध्यमा पुंयोगेऽपि, मूलान्नञः दंष्ट्रा। **अण्डादिः** [६।२५२] अण्ड पदक्षीर शाव भ्रकुंस भृकुटी। **अध्यात्मादिः** [७।५१०] अध्यात्म अधिदेव अधिभूत इहलोक परलोक, आकृतिगण। **अनुप्रवचनादिः** [७।८२३] अनुप्रवचन उत्थापन उपस्थापन सम्वेशन प्रवेशन अनुप्रवेशन अनुवासन अनुवचन अनुवाचन अन्वारोहण प्रारम्भण आरम्भण आरोहण। **अनुशतादिः** [७।१६, ७५२-५५] अनुशतिक अनुहोड अनुसम्वरण (अनुसञ्चरण) अनुसंवत्सर अङ्गारवेणु असिहत्य अस्यहत्य अस्यहेति बध्योग पुष्करसद् अनुहरत् कुरुकत कुरुपञ्चाल उदकशुद्ध इहलोक परलोक सर्व्वलोक सर्व्वपुरुष सर्व्वभूमि प्रयोग परस्त्री, राजपुरुषात् ष्यञि, सूत्रनड, आकृतिगणः तेन अभिगम अधिभूत अधिदेव चतुर्व्विद्या। **अपूपादिः** [७।७०८] अपूप तण्डुल अभ्युष (अभ्यूष) अभ्योष अवोष अभ्येष पृथुक ओदन सूप पूप किण्व प्रदीप मुसल कटक कर्णवेष्टक इर्गल अर्गल, अन्नविकारेभ्यश्च, यूप स्थूणा दीप अश्व पत्र। **अरीहणादिः** [७।३८७] अरीहण (अह्रीरण) द्रुघण द्रुहण भलग (भगल) उलन्द किरण साम्परायण क्रौष्ट्रायण औष्ट्रायण त्रैगर्त्तायण मैत्रायण भास्त्रायण वैमतायण (वैमतायन) गौमतायन सौमतायन सौमायन धौमतायन सौमायन ऐन्द्रायन कौद्रायण (कौन्द्रायण) खाडायन शाण्डिल्यायन रायस्पोष विपथ विपाश उद्दण्ड उदञ्चन खाण्डवीरण वीरण काशकृत्स्न कशकृत्स्न जाम्बवत शिंशपा रैवत (रेवत) विल्व सुयज्ञ शिरीष बधिर जम्वू खदिर सुशर्म्मन् (सशर्म्मन्) भलतृ भलन्दन खण्डु कलन यज्ञदत्त। **अर्द्धर्च्चादिः** [६।१४२, ७।१] अर्द्धर्च्च गोमय कषाय कार्षापण कुपत कुसप (कुणप) कपाट शङ्ख गूथ यूथ ध्वज कबन्ध पद्म गृह सरक कंस दिवस यूष अन्धकार दण्ड कमण्डलु मण्ड भूत द्वीप द्युत चक्र धर्म्म कर्म्मन् मोदक शतमान यान नख नखर चरण पुच्छ दाडिम हिम रजत सक्तु पिधान सार पात्र घृत सैन्धव औषध आढक चषक द्रोण खलीन पात्रीव षष्टिक वारवाण (वारवाण) प्राथ कपित्थ (शुष्क) शाल शील शुक्ल (शुल्क) शीधु कवच रेणु (ऋण) कपट शीकर मुसल सुवर्ण वर्ण पूर्व्व चमस क्षीर कर्ष आकाश अष्टापद मङ्गल निधन निर्यास जृम्भ वृत्त पुस्त वुस्त क्ष्वेडित शृङ्ग निगड (खल) मूलक मधु मूल स्थूल शराव नाल वप्र विमान मुख प्रग्रीव शूल वज्र कटक कण्टक (कर्पट) शिखर कल्क (वल्कल) नटमक (नाटमस्तक) वलय कुसुम तृण पङ्क कुण्डल किरीट (कुमुद) अर्व्वुद अङ्कुश तिमिर आश्रय भूषण इक्कस (इष्वास) मुकुल वसन्त तटाक (तडाग) पिटक विष्टङ्क विडङ्ग पिण्याक माष कोश फलक दिन दैवत पिनाक समर स्थाणु अनीक उपवास शाक कर्पास (विशाल) चषाल (चखाल) खण्ड दर विपट (रण बल मक) मृणाल हस्त आर्द्र हल (सूत्र) ताण्डव गाण्डीव मण्डप पटह सौध योध पार्श्व शरीर फल (छल) पुर (पुरा) राष्ट्र अम्बर विम्ब कुट्टिम मण्डल (कुक्कुट) कुडप ककुद खण्डल तोमर तोरण मञ्चक पञ्चक पुङ्ख मध्य (वाल) छाल वाल्मीक वर्ष वस्त्र वसु देह उद्यान उद्योग स्नेह स्तेन (स्तन स्वर) सङ्गम निष्क क्षेम शूक क्षत्र पवित्र (यौवन कलह) मालक (पालक) मूषिक (मण्डल वल्कल) कुज (कुञ्ज) विहार लोहित विषाण भवन अरण्य पुलिन दृढ

आसन ऐरावत शूर्प तीर्थ लोमन (लोमश) तमाल लोहक दण्डक शपथ प्रतिसर दारु धनुस् मान वर्चस्क कूर्च तण्डक मठ सहस्र ओदन प्रवाल शकट अपराह्ण नीड शकल तण्डुल। **अर्शआदिः** [७।१६८] अर्शस् उरस् तुन्द चतुर कलित जटा घटा घाटा अभ्र अघ कर्दम अम्ल लवण, स्वाङ्गाद्धीनात्, वर्णात्, आकृतिगणः। **अवान्तरदीक्षादिः** [७।८।१६] अवान्तरदीक्षा तिलव्रत देवव्रत। **अश्मादिः** [७।३।६४] अश्मन् यूथ ऊष मीन मन्द दर्भ वृन्द गुद खण्ड नग शिखा कोट पाम कन्द कान्द कुल गह्व गुड कुण्डल पीन गुह। **अश्वादिः** [७।७५०] अश्व अश्मन् गण ऊर्णा (उर्म) उमा भङ्गा क्षण (गङ्गा) वर्षा वसु। **अहरादिः** [६।३३६] अहर् गीर् धुर्। **आकर्षादिः** [७।६।१८] आकर्ष (आकष) त्सरु पिशाच पिचण्ड अशनि अश्मन् निचय जय चय विजय आचय नय पाद दीप ह्रद ह्राद ह्लाद गद्गद शकुनि। **आद्यादिः** [७।११०६] आदि मध्य अन्त पृष्ठ पार्श्व, आकृतिगणः। **आहिताग्न्यादिः** [६।१६३] आहिताग्नि जातपुत्र जातदन्त जातश्मश्रु तैलपीत घृतपीत (मद्यपीत) ऊढभार्य्य गतार्थ, आकृतिगणोऽयम्, तेन गडुकण्ठ अस्युद्यत (अरमुद्यत) दण्डपाणि। **इष्टादिः** [७।६२६] इष्ट पूर्त्त उपासादिति निगदित परिगदित परिवादित निकथित निपादित निपठित सङ्कलित परिकलित संरक्षित परिरक्षित अर्च्चित गणित अवकीर्ण आयुक्त गृहीत आम्नात श्रुत अधीत अवधान आसेवित अवधारित अवकल्पित निराकृत उपकृत उपाकृत अनुयुक्त अनुगणित अनुपठित व्याकुलित। **उक्थादिः** [७।३४७] उक्थ लोकायत न्यास न्याय पुनरुक्त निरुक्त निमित्त द्विपदा ज्योतिष अनुपद अनुकल्प यज्ञ धर्म्म चर्च्चा क्रमेतर श्लक्ष (संहिता) पदक्रम सङ्घट (सङ्घट्ट) वृत्ति परिषद् संग्रह गण (गुण) आयुर्वेद (आयुर्व्वेद)। **उत्करादिः** [७।४१३] उत्कर संफल शफर पिप्पल पिप्पलीमूल अश्मन् सुवर्ण खलाजिन तिक कितव अणक त्रैवण पिचुक अश्वत्थ काश क्षुद्र भस्त्रा शाल जन्या अजिर चर्म्मन् उत्क्रोश क्षान्त खदिर शूर्पणाय श्यावनाय नैवाकव तृण वृक्ष शाक पलाश विजिगीषा अनेक आतप फल फल सम्पर अर्क गर्त्त अग्नि वैराणक इडा अरण्य निशान्त पण नीचायक शङ्कर अवरोहित क्षार विशाल वेत्र अरीहण खण्ड वातागार मन्त्रणार्ह इन्द्रवृक्ष नितान्तवृक्ष आर्द्रवृक्ष। **उत्सङ्गादिः** [७।६।१८] उत्सङ्ग उडुप उत्पूत उत्पन्न उत्पुट पिटक पिटाक। **उद्गात्रादिः** [७।८३५] उद्गातृ उन्नेतृ प्रतिहर्तृ प्रशास्तृ होतृ पोतृ हर्तृ रथगणक पत्तिगणक सुष्ठु दुष्ठु अध्वर्य्यु वधू सुभग मन्त्र। **उर्य्यादिः** [५।८७] उरी उररी तन्थी ताली आताली वेताली धूली धूसी शकला शंसकला ध्वसकला भ्रंसकला गुलगुधा सजुष् फल फली विक्ली आक्ली आलोष्ठी केवाली केवासी सेवासी पर्य्याली शेवाली वर्षाली अत्यूमशा वश्मशा मस्मसा मसमसा औषट् श्रौषट् वौषट् वषट् स्वाहा स्वधा बन्धा पांपी प्रादुस् श्रत् आविस्। **ऋगयनादिः** [७।५२८] ऋगयन पदव्याख्यान छन्दोमान छन्दोभाषा छन्दोविचिति न्याय पुनरुक्त निरुक्त व्याकरण निगम वास्तुविद्या क्षत्रविद्या अङ्गविद्या विद्या उत्पात उद्याव संवत्सर मुहूर्त्त उपनिषद् निमित्त शिक्षा भिक्षा। **ऋश्यादिः** [७।३८९] ऋश्य (हृष्य) न्यग्रोध शर निलीन (निवास निवात) निधान निबन्धन (निबन्ध विबद्ध) परिगूढ (उपगूढ) असनी सित मत वेश्मन् उत्तराश्मन् अश्मन् स्थूल बाहु खदिर शर्करा अनडह (अनडुह) अरडु परिवंश वेणु वीरण खण्ड दण्ड परिवृत कर्दम अंशु। **एहीडादिः** [६।१६६] एडीहम् एहीयवम् एहिवाणिजा अपेहिवाणिजा प्रेहिवाणिजा एहिस्वागता अपेहिस्वागता एहिद्वितीया अपेहिद्वितीया प्रेहिद्वितीया एहिकटा अपेहिकटा प्रेहिकटा आहरकटा प्रेहिकर्दमा प्रोहकर्दमा विधमचूडा उद्धमचूडा (उद्धरचूडा) आहरचेला आहवसना (आहरसेना) आहरवनिता (अहरवनिता) कृन्तविचक्षणा उद्धरोत्सृजा उद्धरावसृजा उद्धमविधमा उत्पचनिपचा उत्पतनिपता उच्चावचम् उच्चनीचम् आचोपचम् आचपराचम् (नखप्रचम्) निश्चप्रचम् अकिंचन स्नात्वाकालक पीत्वास्थिरक भुक्त्वासुहित प्रोष्यपापीयान् उत्पत्यपाकला निपत्यरोहिणी निषण्णश्यामा अपेहिप्रघसा एहिविघसा इहपञ्चमी इहद्वितीया जहिजोडः जहिजोडम् जहिस्तम्बम् जहिम्भम्बः (उज्जहिस्तम्बम्) अश्नीतपिवता पचतभृज्जता खादतमोदता खादतवमता खादतचामता आहरनिवपा आहरनिष्किरा आवपनिष्किरा उत्पचविपचा भिन्धिलवणा कृन्धिविचक्षणा पचलवणा चचप्रकुटा, आकृतिगणोऽयम्, तेन अकुतोऽभयः कान्दिशीकः कान्देशीकः अहोपुरुषिका अहमहमिका यदृच्छा एहिरेयाहिरा उन्मृजावमृजा द्रव्यान्तरम् अवश्यकार्य्यम्—मयूरव्यंसकाद्यन्तर्गतोऽयम्।

कच्छादिः [७।४४८] कच्च सिन्धु वर्णु गन्धार मधुमत् कम्बोज कश्मीजर साल्व कुरु अनुषण्ड द्वीप अनूप अजवाह विजापक कलुतर रङ्कु । **कण्ड्वादिः** [३।५६२] कण्डूञ् मन्तु हरीङ् वल्गु असु (मनस्) महीङ् लोट् लेट् इरस् इरज् इरञ् उवस् उषस् वेट् मेधा कुषुभ (नमस्) मगध तन्तस् पम्पस् (पपस्) सुख दुःख (भिक्ष चरण चरम अवर) सपर अरर (अरर्) भिषज् विष्णुज (अपर आर) इषुघ वरण चुरण तुरण भूरण गद्गद एला केला खेला (वेला शेला) लिट् लाट् (लेखा लेख) रेखा द्रवस् तिरस् अगद उरस् तरण (तरिण) पयस् संभूयस् संवर, आकृतिगणोऽयम् । **कथादिः** [७।५६७] कथा विकथा विश्वकथा संकथा वितण्डा कुष्ठविद् (कुष्टविद्) जनवाद जनेवाद जनोवाद वृत्ति संग्रह गुणगण आयुर्व्वेद । **कम्बोजादिः** [७।३१२] कम्बोज चाल केरल शक यवन । **कर्णादिः** [७।३६६] कर्ण वसिष्ठ अर्क अर्कलुष द्रुपद आनडुह्य पाञ्चजन्य स्फिग (स्फिज्) कुम्भी कुन्ती जित्वन् जीवन्त कुलिश आण्डीवत् (आण्डीवत) जव जत्र आकन (आनक) । **कर्णादिः** [७।८७३] कर्ण अक्षि नख मुख केश पाद गुल्फ भ्रू शृङ्ग दन्त ओष्ठ पृष्ठ । **कर्त्र्यादिः** [७।४२५] कर्त्रि उम्भि पुष्कर पुष्कल मोदन कुम्भी कुण्डिन नगरी माहिष्मति वर्मती उख्या ग्राम, कुढ्याया यलोपश्च । **कल्याण्यादिः** [७।२७२] कल्याणी सुभगा दुर्भगा बन्धकी अनुदृष्टि अनुसृति (अनुसृष्टि) जरती बलीवर्द्दी ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमा परस्त्री । **कस्कआदिः** [६।३३५] कस्कः कौतस्कुतः भ्रातुष्पुत्रः शुनस्कर्णः सद्यस्कालः सद्यस्क्रीः मद्यस्कः कांस्कान् सर्पिकुण्डिका धनुष्कपालम् बहिष्पलम् (बर्हिष्पलम्) यजुष्पात्रम् अयस्कान्तः तमस्कान्तः अयस्काण्डः मेदस्पिण्डः भास्करः अहस्करः, अकृतिगणः । **काकादिः** [४।३५] काक अन्न शुक शृगाल नौ । **काशादिः** [७।३६१] 'काश पाश अश्वत्थ पलाश पीयूक्षा चरण वास नड वन कर्दम कच्छुल कङ्कट गुह विस तृण कर्पूर बर्वर मधुर ग्रह कपित्थ जतु सीपाल । **काश्यादिः** (७।४४४) काशी चेदी (वेदी) सांयाति सांवाह अच्युत मोदमान शकुलाद हस्तिकर्षू कुनामन् हिरण्या करण गोवासन भारङ्गी अरिन्दम अरित्र देवदत्त दशग्राम शौवावतान युवराज उपराज देवराज मोदन सिन्दुमित्र दासमित्र सुधामित्र सोममित्र छागमित्र साधमित्र (सधमित्र), आपदादिपूर्व्वात् कालान्तात्, आपद् ऊर्द्ध्व तत् । **किंशुलुकादिः** किंशुलुक शाल्व नड अञ्जन भञ्जन लोहित कुक्कुट । **किसरादिः** (७।६५२) किसर नरद नलद स्थागल तगर गुग्गुलु उशीर हरिद्रा हरिद्रु पर्णी (पर्णी) । **कुक्कुट्यादिः** (६।२५२) कुक्कुटी मृगी काकी । **कुञ्जादिः** कुञ्ज ब्रध्न शङ्ख भस्मन् गण लोमन् शठ शाक शुण्डा शुभ विशाप् स्कन्द स्कम्भ । **कुमुदादिः** (७।३६०) कुमुद शर्करा न्यग्रोध इत्कट सङ्कट कङ्कट गर्त्त बीज परिवाप निर्य्यास शकट कच मधु शिरीष अश्व अश्वत्थ बल्वज यवास कूप विकण्ठक दशग्राम । **कुमुदादिः** (७।४०३) कुमुद गोमथ रथकार दशग्राम अश्वत्थ शाल्मलि (शिरीष) मुनिस्थल कुण्डल कूट मधुकर्ण घासकुन्द शुचिकर्ण । **कुम्भपद्यादिः** [६।३४७] कुम्भपदी एकपदी जालपदी शूलपदी मुनिपदी गुणपदी शतपदी सूत्रपदी गोधापदी कलशीपदी विपदी तृणपदी द्विपदी त्रिपदी षट्पदी दासीपदी शितिपदी विष्णुपदी सुपदी निष्पदी आर्द्रपदी कुणिपदी कृष्णपदी शुचिपदी द्रोणीपदी (द्रोणपदी) द्रुपदी सूकरपदी शकृत्पदी अष्टापदी स्थूणापदी अपदी शुचीपदी । **कुर्व्वादिः** (७।२८२) कुरु गर्गर मञ्जुष अजमार रथकार वावदूक, सम्राजः क्षत्रिये, कवि मति (विमति) कापिञ्जलादि वाक् वामरथ पितृमन् इन्द्रजाली एजि वातकि दामोष्णीपि गणकारी कैशोरि कुट शालाका (शलाका) मुर पुर एरका शुभ्र अभ्र दर्भ केशिनी, वेनाच्छन्दसि, शूर्पणाय श्यावनाय श्यावरथ श्यावपुत्र सत्यङ्कार वडभीकार पथिकार मूढ शकन्धु शङ्कु शाक शालीन कर्तृ हर्तृ इन पिण्डि, वामरथस्य कण्वादिवत् स्वरवर्ज्जम् । **कृतादिः** (६।२०) कृत मित मत भूत उक्त (युक्त) समाज्ञात समाम्नात समाख्यात संभावित (समेवित) अवधारित अवकल्पित निराकृत उपकृत उपाकृत (दृष्टकलित दलित उदाहृत विश्रुत उदित), आकृतिगणः **कृशाश्वादिः** (७।३८८) कृशाश्व अरिष्ट अरिश्म वेश्मन विशाल लोमश रोमश लोमक रोमक शवल कूट वर्चल सुवर्चल सुकर सूकर प्रातर (प्रतर) सदृश पुरग पुराग मुख धूम अजिन विनत अवनत कुविद्यास

(कुविठ्यास) पराशर अरुस् अयस् मौद्गल्याकर (मौद्गलयायूकर)। **कोटरादि** [६।२३४] कोटर मिश्रक सिध्रक पुरग सारिक (शारिक)। **क्रमादिः** [७।३५०] क्रम पद शिक्षा मीमांसा सामन्। **क्रौड्यादिः** [७।२४३] क्रौडि लाडि व्याडि आपिशलि आपक्षिति चौटयत चैटयत (वैट्यत) सैकयत वैल्वयत सौधातकी, सूत युवत्याम्, भोज क्षत्रिये, यौतकि कोटि भौरिकि भौलिकि (शाल्मलि) शालास्थलि कापिष्ठलि गौकक्ष्य। **क्षिपकादिः** [७।६९-७०] क्षिपका ध्रुवका चरका सेवका करका चटका अवका लहका अलका कन्यका ध्रुवका एडका, आकृतिगणः। **क्षुभ्नादिः** [३।४१६, ७।७१४] क्षुभ्न नृनमन नन्दिन् नन्दन नगर, एतान्युत्तरपदानि संज्ञायाम् प्रयोजयन्ति—हरिनन्दी हरिनन्दनः गिरिनगरम्, नृतिर्यङि प्रयोजयन्ति—नरीनृत्यते, नर्त्तन गहन नन्दक निवेश निवास अग्नि अनूप, एतान्युत्तरपदानि प्रयोजयन्ति—परिनर्त्तनम् परिगहनम् परिनन्दनम् शरनिवेशः शरनिवासः शराग्निः दर्भानूपः, आचार्य्यादणत्वं च, आकृतिगणोऽयम्। पाठान्तरम्—क्षुभ्ना तृप्नू नृनमन नरनगर नन्दन, यङ्नृती, गिरिनदी गृहगमन निवेश निवास अग्नि अनूप आचार्य्यभोगीन चतुर्हायन, इरिकादीनि वनोत्तरपदानि संज्ञायाम्—इरिका तिमिर समीर कुवेर हरि कर्म्मार। **खलादिः** [७।३४३] खल डाक कुटुम्ब शाक कुण्डलिनी, आकृतिगणः। **गणपत्यादिः** [७।२४८] गणपति अश्वपति (ज्ञानपति) शतपति धनपति (स्थानपति यज्ञपति) राष्ट्रपति कुलपति गृहपति (पशुपति) धान्यपति धन्वपति (बन्धुपति धर्म्मपति) सभापति प्राणपति क्षेत्रपति। **गम्यादिः** [५।१९९] गमी आगमी भावी प्रस्थायी प्रतिरोधी प्रतियोधी प्रतिबोधी प्रतियायी प्रतियोगी। **गर्गादिः** [७।२९२, ३१७] गर्ग वत्स, वाजासे, संस्कृति अज व्याघ्रपात् विदभृत् प्राचीनयोग अगस्ति) पुलस्ति चमस रेभ अग्निवेश शङ्ख शट शक एक धूम अवट मनस् धनञ्जय वृक्ष विश्वावसु जरमाण लोहित शंसित बभ्रु वल्गु मण्डु गण्डु लिगु गुहलु मन्तु मङ्क्षु अलिगु जिगीषु मनु तन्तु मनायी सूनु कथक कन्थक ऋक्ष तृक्ष (वृक्ष) (तनु) तरुक्ष तलुक्ष तण्ड वतण्ड कपिकत (कपि कत) कुरुकत अनडुह कण्व शकल गोकक्ष अगस्त्य कण्डिनी यज्ञवल्क पर्णवल्क अभयजात विरोहित वृषगण रहूगण शण्डिल वर्णक (चणक) चुलक मुद्गल मुसल जमदग्नि पराशर जतूकर्ण (जातूकर्ण) महित मन्त्रित अश्मरथ शर्कराक्ष पूतिमाष स्थूरा अदरक (अररक) एलाक पिङ्गल कृष्ण गोलन्द उलूक तितिक्ष भिषज (भिषज् भिष्णज्) भडित भण्डित दल्भ चेकित चिकित्सित देवहू इन्द्रहू एकलु पिप्पलु वृहदग्नि (सुलोहिन्) सुलाभिन् उक्थ कुटीगु। **गवादिः** [७।७०७-८] गो हविस् अक्षर विष वर्हिस् अष्टका सखदा युग मेधा स्रुचू, नाभि नभश्च, शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत् संनियोगेन चान्तोदात्तत्वम्, ऊधसोऽनङ् च, कूप खद दर खर असुर अध्वन् (अध्वन) क्षर वेद बीज दीस (दीप्त)। **गवाश्वप्रभृतिः** [६।१२७] गवाश्वम् गवाविकम् गवैडकम् अजाविकम् अजैडकम् कुब्जवामनम् कुब्जकिरातम् पुत्रपौत्रम् श्वचण्डालम् स्त्रीकुमारम् दासीमाणवकम् शाटीपटीरम् शाटीप्रच्छदम् शाटीपट्टिकम् उष्ट्रखरम् उष्ट्रशशम् मूत्रशकृत् मूत्रपुरीषम् यकृन्मेदः मांसशोणितम् दर्भशरम् दर्भपूतीकम् अर्जुन-शिरीष अर्जुनपुरुषम् तृणोपलम्(तृणोलपम)दासीदासम् कुटीकुटम् भागवतीभागवतम्। **गहादिः**(७।४५०) गह अन्तस्थ सम विषम मध्य मध्यन्दिन चरण उत्तम अङ्ग वङ्ग मगध पूर्व्वपक्ष अपरपक्ष अधमशाख उत्तमशाख एकशाख समानग्राम एकग्राम एकवृक्ष एक-पलाश इष्वग्र इष्वनीक अवस्यन्दन कामप्रस्थ खाडायन काठेरणि लावेरणि सौमित्रि शैशिरि आसुत दैवशर्म्मि श्रौति आहिंसि आमित्रि व्याडि वैजि आध्यश्वि आनृशंसि शौङ्गि आग्निशर्म्मि भौजि वाराटकि वाल्मिकि (वाल्मीकि) क्षेमवृद्धि आश्वत्थि औद्गाहमानि ऐकविन्दवि दन्ताग्र हंस तत्वग्र (तन्त्वग्र) उत्तर अन्तर (अनन्तर), मुखपार्श्व तसोर्लोपः, जनपरयोः कुक् च, देवस्य च, वेणुकादिभ्यश्छन्, आकृतिगणः। **गिरिनद्यादिः** (६।३२२) गिरिनदी गिरिनख गिरिनद्ध गिरिनितम्ब चक्रनदी चक्रनितम्ब तूर्य्यमान माषोन आर्गयन, आकृतिगणः। **गुडादिः** (७।६९७) गुड कुल्माष सक्तु अपूप मांसौदन इक्षु वेणु संग्राम संघात संक्राम सवाह प्रवास निवास उपवास। **गोपवनादिः** (७।३२०) गोपवन श्रेषु (शिग्रु) विन्दु भाजन अश्वावतान श्यामाक (श्योमाक) श्यामक श्यापर्ण, विदाद्यन्तर्गतोऽयम्।

गौरादिः (७।२०७. २०९) गौर मत्स्य मनुष्य शृङ्ग पिङ्गल हय गवय मुकय ऋष्य (पुट तूण) द्रुण द्रोण हरिण कोकण (काकण) पटर उणक (आमल) आमलक कुवल विम्ब वदर फर्कर (कर्करक) तर्कार शर्कार पुष्कर शिखण्ड सलद शष्कण्ड शनन्द सुषम सुषव अलिन्द गडुल षाण्डुश आथक आनन्द आश्वत्थ सृपाट आखक (आपच्चिक) शष्कुल सूर्य्य (सूर्म) शूर्प सूच यूष (पूप) यूथ सूप मेथ वल्लक घातक सल्लक मालक मालत साल्वक वेतस वृक्ष (वृस) अतस (उभय) भृङ्ग मह मठ छेद पेश भेद श्वन् तक्षन् अनडुही अनड्वाही, एषणः करणे. देह देहल काकादन गवादन तेजन रजन लवण औद्गाहमानि गौतम (गोतम) (पारक) अयस्थूण (अयःस्थूण) भौरिकि भौलिकि भौलिङ्गि यान मेध आलम्बि आलजि आलब्धि आलक्षि केवाल आपक आरट नट टोट नोट मूलाट शातन (पोतन) पातन पाठन (पानठ) आस्तरण अधिकरण अधिकार अग्रहायणी (आग्रहायणी) प्रत्यवरोहिणी (सेचन), सुमङ्गलात् संज्ञायाम्. अण्डुर सुन्दर मण्डल मन्दर मङ्गल पट पिण्ड (षण्ड) उर्द गुर्द शम सूद औड (आर्द्र ह्रद (हद) पाण्ड (भाण्डल) भाण्ड (लोहाण्ड) कदर कन्दल कदल तरुण तलुन कल्माष वृहत् महत् (सोम) सौधर्म. रोहिणी नक्षत्रे रेवती नक्षत्रे, विकल निष्कल पुष्कल, कटाच्छ्रोणि वचने, पिप्पल्यादयश्च. पिप्पली हरितकी (हरीतकी) कोशातकी शमी वरी शरी पृथिवी क्रोष्टु मातामह पितामह। **ग्रह्यादिः** [५। ९८] ग्राही उत्साही उद्दासी उद्भासी स्थायी मन्त्री संमर्दी, रक्षश्रुवपशां नौ, निरक्षी निश्रावी निवापी निशायी, याचृव्याहृसंव्याचव्रजवदवसां प्रतिषिद्धानाम्, अयाची अव्याहारी असंव्याहारी अव्राजी अवादी अवासी, अचामचित्तकर्त्तृकाणाम्, अकारी अहारी (विशायी विषायी), विशयी विषयी देशे, विशयी विषय देशः, अभिभावी भूते, अपराधी उपरोधी परिभवी परिभावी। **चतुर्व्वर्णादिः** [७।८५२] चतुर्व्वर्ण्य चतुर्व्वेद चतुराश्रम सर्व्वविद्य त्रिस्वर त्रिलोक षड्गुण सेना अनन्तर सन्निधि समीप उपमा सुख तदर्थ इतिह मणिक। **चादिः** (२।२१७) च वा ह अह एव एवम् नूनम् शश्वत् युगपत् भूयस् युगपत् सूपत् कूपत् कुवित् नेत् चेत् चण् कच्चित् यत्र नह हन्त माकिम् माकिर् नकिम् नकीम् नकीर् आकिम् माङ् नञ् तावत् यावत् त्वा त्वै द्वै न्वै रै (रे) श्रौषट् वौषट् स्वाहा स्वधा औम् तथा तथाहि खलु किल अथ सुष्ठु स्म अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ आदह उञ् उकञ् वेलायाम् मात्रायाम् यथा यत् तत् किम् पुरा बधा (बध्वा) धिक् हाहा हेहै (हहे) पाट् प्याट् आहो उताहो हो अहो नो (नौ) अथो ननु मन्ये मिथ्या असि ब्रूहि तु नु इति इव वत् वात् वन वत (सम् वशम् शिकम् दिकम्) सनुकम् छंवट् शङ्के शुकम् खम् सनात् सनुतर् नहिकम् सत्यम् ऋतम् अद्धा इद्धा नोचेत् नचेत् नहि जातु कथम् कुतः कुत्र अव अनु हा हे (है) आहोस्वित् शम् कम् खम् दिष्टया पशु नट् सह (आनुषट्) आनुषक् अङ्ग फट् ताजक् भाजक् अये अरे वाट् (चादु)कुम् खुम् घुम् अम् इम् सीम् सिम् सि वै, उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाताः, आकृतिगणोऽयम्। **चूर्णादिः** (७।६२६) चूर्ण करिष करीष शाकिन शाकट द्राक्षा तूस्त कुन्दम दलप चमसी चक्कण चौल। **छत्रादिः** (७।६५६) छत्र शिक्षा प्ररोहस्था बुभुक्षा चुरा तितिक्षा उपस्थान कृषि कर्म्मन् विश्वधा तपस् सत्य अनृत विशिखा विशिका भक्षा उदस्थान पुरोडा विक्षा चुक्षा मन्द्र। **छेदादिः** (७।७७५) छेद भेद द्रोह दोह नर्त्ति (नर्त) कर्ष तीर्थ संप्रयोग विप्रयोग प्रयोग विप्रकर्ष प्रेषण संप्रश्न विप्रश्न विकर्ष प्रकर्ष विराग, विरङ्ग च। **ज्योत्स्नादिः** (७।९४४) ज्योत्स्ना तमिस्रा कुण्डल कुतप विसर्प विपादिका। **तक्षशिलादिः** (७।५४५) तक्षशिला वत्सोद्धरण कैर्म्मेदुर ग्रामणी छगल क्रोष्टुकर्ण सिंहकर्ण संकुचित किंनर काण्डधार पर्व्वत अवसान वर्व्वर कंस। **तारकादिः** (७।८८३) तारका पुष्प कर्णक मञ्जरा ऋजषि क्षण सूत्र मूत्र निष्क्रमण पुरीष उच्चार प्रचार विचार कुड्मल कण्टक मुसल मुकुल कुसुम कुतूहल स्तवक किसलय पल्लव खण्ड वेग निद्रा मुद्रा बुभुक्षा धेनुष्या पिपासा श्रद्धा अभ्र पुलक अङ्गारक वर्णक द्रोह दोह सुख दुःख उत्कण्ठा भर व्याधि वर्म्मन् व्रण गौरव शास्त्र तरङ्ग तिलक चन्द्रक अन्धकार गर्व्व कुमुर (मुकुर) हर्ष उत्कर्ष रण कुवलय गर्ध क्षुधू सीमन्त ज्वर गर रोग रोमाञ्च पण्डा कज्जल तृष् कोरक कल्लोल स्थपुट फल कञ्चुक शृङ्गार अङ्कुर शैवल वकुल श्वभ्र आरल कलङ्क कर्द्दम कन्दल मूर्च्छा अङ्गार हस्तक प्रतिविम्ब विघ्नतन्त्र प्रत्यय दीक्षा गर्ज, गर्भादप्राणिनि आकृतिगणः।

तालादिः (७।५८८) तालाद्धनुषि, बार्हिण इन्द्रालिश इन्द्रादृश इन्द्रायुध चय श्यामाक पीयूक्षा। **तिकादिः** [७।२८४] तिक कितव कितक संज्ञाबालशिख (सज्ञा बाला शिखा) उरस् शाठ्य सैन्धव यमुन्द रूप्य ग्राम्य नील अमित्र गोकक्ष (गौकक्ष्य) कुरु देवरथ तैतल औरस कौरव्य भौरिकि भौलिकि चौपयत चैटयत शीक: त क्षतयत वाजवत चन्द्रमस् शुभ गङ्गा वरेण्य सुपामन् आरब्ध वाह्यक ख्वलपक वृष लोमक उदन्य यज्ञ। **तिमिरादिः** [३।३१५] तिमिरा मिरिका इरिका, आकृतिगणः। **तिष्ठद्गुप्रभृतिः** [६।१८] तिष्ठद्गु वहद्गु आयतीगवम् खलेयवम् खलेबुसम् लूनयवम् लूयमानयवम् पूतयवम् पूयमानयवम् संहृतयवम् संह्रियमानयवम् संहृतबुसम् संह्रियमाणबुसम् समभूमि समपदाति सुषमम् विषमम् दुःषमम् निःषमम् अपसमम् आयतीसमम् (प्रौढम्) पापसमम् पुण्यसमम् प्राह्णम् प्ररथम् प्रमृगम् प्रदक्षिणम् (अपरदक्षिणम्), संप्रति, असंप्रति—इच् प्रत्ययः समासान्तः। **तुन्दादिः** [७।६६२-६३] तुन्द उदर पिचण्ड यव व्रीहि, स्वाङ्गादिवृद्धौ। **तृणादिः** [७।३९२] तृण नड मूल वन पर्ण वर्ण वराण बिल पुल फल अर्ज्जुन अर्ण सुवर्ण वल चरण बुस। **त्रादिः** [७।८४] त्र तसि तर तम चरट् जातीय कल्प देश्य देशीय रूप पाश थ था दार्हि तिथ्य। **दण्डादिः** [७।७७७] दण्ड मुसल मधुपर्क कशा अर्घ मेघ मेघा सुवर्ण उदक वध युग गुहा भाग इभ भङ्ग। **दधिपयआदीनिः** [६।१३४] दधिपयसी सर्पिर्मधुनी मधुसर्पिषी ब्रह्मप्रजापती शिववैश्रवणौ स्कन्दविशाखौ परिव्राजककौशिकौ (परिव्राट्-कौशिकौ) प्रवर्ग्योपसदौ शुक्लकृष्णौ इध्माबर्हिषी दीक्षातपसी (श्रद्धातपसी मेधातपसी) अध्ययनतपसी उलूखलमुसले आद्यवसाने श्रद्धामेधे ऋक्सामे वाङ्मनसे। **दिगादिः** [७।५०१] दिश् वर्ग पूग गण पक्ष धाय्य मित्र मेधा अन्तर पथिन् रहस् अलीक उखा साक्षिन् देश आदि अन्त मुख जघन मेघ यूथ, उदकात् संज्ञायाम्, ज्ञाय (न्याय) वंश वेश काल आकाश। **दृढादिः** [७।८३८] दृढ वृढ परिवृढ भृश कृश वक्र शुक्र चुक्र आम्र कृष्ट लवण ताम्र शीत उष्ण जड बधिर पण्डित मधुर मूर्ख मूक स्थिर, वेर्य्यातलातमतिर्मनःशारदानाम्, समो मतिमनसोः, जवन। **देवपथादिः** [७।१०५९-६०] देवपथ हंसपथ वारिपथ रथपथ स्थलपथ करिपथ अजपथ राजपथ शतपथ शङ्कुपथ सिन्धुपथ सिद्धगति उष्ट्रग्रीव वामरज्जु हस्त इन्द्र दण्ड पुष्प मत्स्य, आकृतिगणः। **द्वारादिः** [७।४] द्वार स्वर स्वाध्याय व्यल्कश स्वस्ति स्वर् स्पयकृत स्वादु मृदु श्वस् श्वन् स्व। **द्विदण्डयादिः** (६।११३-१४) द्विदण्डि द्विमुसलि उभाञ्जलि उभयाञ्जलि उभादन्ति उभयादन्ति उभाहस्ति उभयाहस्ति उभाकर्णि उभयाकर्णि उभापाणि उभयापाणि उभाबाहु उभयाबाहु एकपदि प्रोष्टपदि आच्यपदि (आढ्यपदि) सपदि निकुच्यकर्णि संहतपुच्छि अन्तेवासि। **नडादिः** (७।२९३) नड गर (वर) वक मुञ्ज इतिक उपक (एक) लमक शलङ्कु शलङ्कञ्च सप्तल वाजप्य तिक, अग्निशर्म्मन्वृषगणे, प्राण नर शायक दास मित्र द्वीप पिङ्गर पिङ्गल किङ्कर किङ्कल (कातर) कातल काश्यप (कुश्यप) काश्य काल्य (काव्य) अज अमुष्य (अमुष्म), कृष्णरणौ ब्राह्मणवासिष्ठे अमित्र लिगु चित्र कुमार क्रोष्टु, क्रोष्ट च, लोह दुर्ग स्तम्भ शिंशपा अग्र तृण शकट सुमनस् सुमत मिमत ऋच् जलन्धर अध्वर युगन्धर हंसक दण्डिन् हस्तिन् पिण्ड) पञ्चाल चमसिन् सुकृत्य स्थिरक ब्राह्मण चटक वदर अश्वल खरप लङ्क इन्ध अस्र कामुक ब्रह्मदत्त उदुम्बर शोण अलोह दण्डप। **नडादिः** (७।४१४) नड प्लक्ष बिल्व वेणु वेत्र वेतस इक्षु काष्ठ कपोत तृण, कुञ्चा ह्रस्वत्वं च, तक्षन्नलोपश्च। **नद्यादिः** (७।४२६) नदी मही वाराणसी श्रावस्ती कौशाम्बी वनकौशाम्बी काशपरी काशफारी (काशफरी) खादिरी पूर्व्वनगरी पाठा माया शाल्वा दार्वा शेतकी, वडवाया वृषे। **नन्द्यादिः** (५।१९७) नन्दनः वासनः मदनः दूषणः साधनः वर्द्धनः शोभनः रोचनः सहितपिदमः सञ्ज्ञायाम्—महनः तपनः दमनः जल्पनः रमणः दर्पणः सङ्क्रन्दनः सङ्कर्षणः सहर्षणः जनार्द्दनः यवनः मधुसूदनः विभीषणः लवणः चित्तविनाशनः कुलदमनः (शत्रुदमनः) **निष्कादिः** (७।७४१) निष्क पण पाद माष वाह द्रोण षष्टि। **पक्षादिः** (७।३६८) पक्ष तुक्ष तुष कुण्ड अण्ड कम्बलिका वलिक चित्र अस्ति, पथः पन्थ च, कुम्भ सीरक

सरक सकल सरस समल अतिश्वन् रोमन् लोमन् हस्तिन् मकर लोमक शीर्ष निवात पाक सहक (सिंहक) अङ्कुश सुवर्णक हंसक हिंसक कुत्स बिल खिल यमल हस्त कला सकर्णक। **पचादिः** (५।२०००) पच वच वप वद चल पत नदट् भषट् प्लवट् चरट् गरट् तरट् गाहट् सूरट् देवट् (दोषट्) जर (रज) मर (मद) क्षम (क्षप) सेव मेष कोप (कोष) मेध नर्त व्रण दर्श सर्प (दम्भ दर्प) जारभर श्वपच, आकृतिगणोऽयम्। **पत्यादिः** (६।३३६) पति गण पुत्र। **परदारादिः** (७।६०७) परदार गुरुतल्प। **परिमुखादिः** (७।५०८) परिमुख परिहनु पर्योष्ठ पर्युलूखल परिसीर उपसीर उपस्थूण उपकलाप अनुपथ अनुपद अनुगङ्ग अनुतिल अनुसीत अनुसाय अनुसीर अनुमाष अनुयव अनुयूप अनुवंश प्रतिशाख। **पर्पादिः** (७।६१३) पर्प अश्व अश्वत्थ रथ जाल न्यास व्याल पादः पञ्च। **पात्रेसमितादिः** (६।९१) पात्रेसमिताः पात्रेबहुलाः उदुम्बरमशकः उदुम्बरकृमिः कूपकच्छपः अवटकच्छपः कूपमण्डूकः कुम्भमण्डूकः उदपानमण्डूकः नगरकाकः नगरवायसः मातरिपुरुषः पिण्डीशूरः पितरिशूरः गेहेशूरः गेहेनर्दी गेहेक्ष्वेडी गेहेविजिती गेहेव्याडः गेहेमेही गेहेदाही गेहेदृप्तः गेहेधृष्टः गर्भेतृप्तः आखनिकबकः गोष्ठेशूरः गोष्ठेविजिती गोष्ठेक्ष्वेडी गोष्ठेपटुः गोष्ठेपण्डितः गोष्ठेप्रगल्भः कर्णेटिरिटिरा कर्णेचुरुचुरा, आकृतिगणः। **पामादिः** (७।९४०) पामन् वामन् वेमन् हेमन् श्लेष्मन् कद्रु (कद्रू) बलि सामन् ऊष्मन् कृमि, अङ्गात् कल्याणे, शाकीपलालीदद्रूणां, ह्रस्वत्वञ्च, विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः, लक्ष्म्या अच्च। **पारस्करादिः** [६।३५५] पारस्करो देशः, कारस्करो वृक्षोः, रथस्या नदी, किष्कुः प्रमाणम्, किष्किन्धा गुहा तद्बृहतोः करपत्योश्चौरदेवतयोः सुट् तलोपश्च, प्रात्तुम्पतौ गवि कर्त्तरि। **पार्श्वादिः** [४।२३३] पार्श्व उदर पृष्ठ उत्तान अवमूर्धन्। **पाशादिः** [७।३४२] पाश तृण धूम वात अङ्गार पाटल पोत गेल पिटक पिटाक शकट हल नट वन। **पिच्छादिः** [७।९३५, ९४१] पिच्छा उरस् ध्रुवक, जटाघटाकालाः क्षेपे, वर्ण उदक पङ्क प्रज्ञा। **पीलवादिः** [६।२३५] पीलु दारु रुचि चारु गम् कम्। **पील्वादिः** [७।८७२] पीलु कर्कन्धू (कर्कन्धु) शमी करीर बल (कुवल) बदर अश्वत्थ खदिर। **पुण्याहवाचनादिः** [७।८२६] पुण्याहवाचन स्वस्तिवाचन शान्तिवाचन। **पुरोहितादिः** पुरोहित, राजासे, ग्रामिक पिण्डिक सुहित बालमन्द (बाल मन्द) खण्डिक दण्डिक वर्म्मिक कर्म्मिक धर्म्मिक शीलिक सूतिक मूलिक तिलक अञ्जलिक (अन्तलिक) रूपिक ऋषिक पुत्रिक अविक छत्रिक पर्षिक पथिक चर्म्मिक प्रतिक सारथि आस्तिक सूचिक संरक्ष सूचक (संरक्षसूचक) नास्तिक अजानिक शाक्वर नागर चूडिक। **पुष्करादिः** [७।८८५] पुष्कर पद्म उत्पल तमाल कुमुद नड कपित्थ बिस मृणाल कर्दम शालूक विगर्ह करीष शिरीष यवास प्रवास हिरण्य कैरव कल्लोल तट तरङ्ग पङ्कज सरोज राजीव नालीक सरोरुह पुटक अरविन्द अम्भोज अब्ज कमल पयस्। **पृथ्वादिः** [७।८३६-३७] पृथु मृदु महत् पटु तनु लघु बहु साधु आशु उरु गुरु बहुल खण्ड दण्ड चण्ड अकिञ्चन बाल होड पाक वत्स मन्द स्वादु ह्रस्व दीर्घ प्रिय वृष ऋजु क्षिप्र क्षुद्र अणु। **पृषोदरादिः** [६।३५७] पृषोदर पृषोत्थान बलाहक जीमूत श्मशान उलूखल पिशाच बृसी मयूर, आकृतिगणः। **पैलादिः** [७।३२५] पैल शालङ्कि सात्यकि सात्यङ्कामि राहवि रावणि औदञ्चि औदव्रजि औदमेघि औदब्यज्जि (औदमज्जि) औदभृज्जि दैवस्थानि पैङ्गलोदायनि राहक्षति भौलिङ्गि राणि औदन्यि औद्गाहमानि औज्जिहानि औदशुद्धि, तद्राजाच्चाणः (तद्राज), आकृतिगणोऽयम्। **प्रकृत्यादिः** [४।११५] प्रकृति प्रायो गोत्र सम विषम द्विद्रोण पञ्चक साहस्र। **प्रगद्यादिः** [७।४०१] प्रगदिन् मगदिन् कविल खण्डित गदित चूडार मडार मन्दार कोविदार। **प्रज्ञादिः** [७।११००] प्रज्ञ वणिज् उशिज् उष्णिज् प्रत्यक्ष विद्वस् विदन् षोडन् विद्या मनस्, श्रोत्र शरीरे, जुह्वत् कृष्ण मृगे, चिकीर्षत्, चोर शत्रु योध चक्षुस् वसु एनस् मरुत् क्रुञ्च सत्वत् दशार्ह वयस् व्याकृत असुर रक्षस् पिशाच अशनि कार्षापण देवता बन्धु, आकृतिगणः। **प्रतिजनादिः** [७।६९४] प्रतिजन इदंयुग सयुग समयुग परयुग परकुल परस्यकुल अमुष्यकुल सर्व्वजन विश्वजन महाजन पञ्चजन। **प्रभूतादिः** [७।६०५] प्रभूत पर्य्याप्त। **प्रादिः** [३।४२] प्र परा अप् सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप। **प्रियादिः** [६।२४९-५०] प्रिया मनोज्ञा कल्याणी सुभगा दुर्भगा भक्तिः सचिवा स्वसा कान्ता क्षान्ता समा

चपला दुहिता वामा अबला तनया । **प्रेक्षादिः** [७।२९३] प्रेक्षा फलका (हलका) बन्धुका ध्रुवका क्षिपका न्यग्रोध इक्कट कङ्कट सक्कट कट कूप वुक पुक पुट महू परिवाप यवाप धुवका गर्त्त कूपक हिरण्य । **प्लक्षादिः** [७।५९९] प्लक्ष न्यग्रोध अश्वत्थ इङ्गुदी शिग्रु रुरु कक्षतु बृहती । **बलादि** [७।३९७] बल चुल नल दल वट लकुल उरल पुल (पुल) मूल उलडुल (उल डुल) वन कुल । **बलादि** [७।१८८ बल उत्साह उद्भास उद्धास उद्वास शिखा कुल चूडा सूल कूल आयाम व्यायाम उपयाम आरोह अवरोह परिणाह युद्ध । **बह्वादिः** [७।२३०-३२] बहु पद्धति अञ्चति अङ्कति अहति शकटि (शकति) शक्तिः शस्त्रे, शारि वारि राति राधि (शाधि) अहि कपि यष्टि मुनि, इतः प्राण्यङ्गात, क्तिकारादक्तिनः, सर्व्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके, चण्ड अराल कृपण कमल विकट विशाल विशङ्कट भरुज ध्वज, चन्द्रभागान्नद्याम् (चन्द्रभागा नद्याम्) कल्याण उदार पुराण अहन् क्रोड नख खुर शिखा बाल शफ गुद, आकृतिगणोऽयम्, तेन भग गल राग इत्यादि । **बाह्वादिः** [७।२५६] बाहु उपबाहु उपवाकु निवाकु शिवाकु वटाकु उपनिन्दु (उपविन्दु) वृषली वृकला चूडा बलाका मूषिका कुशला भगला (छगला) ध्रुवका (धुवका) सुमित्रा दुर्मित्रा पुष्करसद् अनुहरत् देवशर्म्मन् अग्निशर्म्मन् (भद्रशर्म्मन्) सुशर्म्मन कुनामन् (सुनामन्) पञ्चन् सप्तन् अष्टन्, अमितौजसः सलोपश्च, सुधावत् उदञ्च् शिरस् माष शराविन् मरीची क्षेमवृद्धिन् शृङ्खलतोदिन् खरनादिन् नगरमर्दिन प्राकारमर्दिन लोमन् अजीगर्त्त कृष्ण युधिष्ठिर अर्ज्जुन साम्ब गद प्रद्युम्न राम (उदङ्क), उदकः सञ्ज्ञायाम्, सम्भूयोऽम्भसोः सलोपश्च, आकृतिगणोऽयम्, तेन सात्त्वकिः जाङ्घिः ऐन्दशर्म्मिः आजधेनविः इत्यादि । **ब्राह्मणादिः** [७।८४१] ब्राह्मण बाडव माणव, अर्हतो नुम् च, चोर धूर्त्त आराधय विराधय अपराधय उपराधय एकभाव द्विभाव त्रिभाव अन्यभाव अक्षेत्रज्ञ संवादिन् संवेशिन् सम्भाषिन् बहुभाषिन् शीर्षघातिन् विघातिन समस्थ विषमस्थ परमस्थ मध्यमस्थ अनीश्वर कुशल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ विश्न बालिश अलस दुःपुरुष कापुरुष राजन् गणपति अधिपति गडुल दायाद विशस्ति विषम विपात निपात, सर्व्ववेदादिभ्यः स्वार्थे चतुर्व्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च, शौटिर, आकृतिगणोऽयम् । **भवदादिः** [७।९९५] भवान् दीर्घायुः देवानांप्रियः आयुष्मान् । **भस्त्रादिः** [७।६१९] भस्त्रा भरट भरण शीर्षभार शीर्षेभार असंभार अंसेभार । **भिदादिः** [५।४४६-४७] भिदा छिदा विदा क्षिपा गुहा श्रधा मेधा गोधा आरा हारा कारा क्षिया तारा धारा रेखा चूडा पीडा वपा वसा मृजा कृपा । **भीमादिः** [५।१४८] भीम भीष्म भयानक वह चर (ऊह चरु) प्रस्कन्दन प्रपतन (प्रतपन) समुद्र स्रुव स्रुक् वृष्टि (दृष्टि) रक्षः सङ्कसुक (शङ्कुसुक) मूर्ख खलति, आकृति-गणोऽयम् । **भृशादिः** [३।५३६] भृश शीघ्र चपल मन्द पण्डित उत्सुक सुमनस् दुर्मनस् अभिमनस् उन्मनस् रहस् रोहत् रेहत् संश्चत् तृपत् शश्वत् भ्रमत् वेहत् शुचिस् शुचिवर्च्चस् अण्डर वर्चस् ओजस् सुरजस् अरजस् । **मध्वादिः** [७।४०८] मधु विस स्थाणु वेणु कर्कन्धु शमी करीर हिम किशरा शर्याण मरुत वार्दाली शर इष्टका आसुति शक्ति आसन्दी शकल शलाका आमिषी इक्षु रोमन् रुष्टि रुष्य तक्षशिला कड वट वेट । **मनोज्ञादिः** [७।८४७-४८] मनोज्ञ प्रियरूप अभिरूप कल्याण मधाविन् आढ्य कुलपुत्र छान्दस छात्र श्रोत्रिय चोर धूर्त्त विश्वदेव युवन् कुपुत्र ग्रामपुत्र ग्रामकुलाल ग्रामड (ग्रामषण्ड) ग्रामकुमार सुकुमार बहुल अवश्यपुत्र अमुष्यपुत्र अमुष्यकुल सारपुत्र शतपुत्र । **मयूरव्यंसकादिः** [६।८२] मयूरव्यंसक छात्रव्यंसक कम्बोजमुण्ड यवनमुण्ड हस्तेगृह्य (हस्तगृह्य) पादेगृह्य (पादगृह्य) लाङ्गूलेगृह्य (लाङ्गूलगृह्य) पुनर्दाय, एहिडादिश्च । **महानाम्न्यादिः** [७।८०८] महानाम्नी आदित्यव्रत गोदान । **महिष्यादिः** [७।६४७] महिषी प्रजापति प्रजावती प्रलेपिका विलेपिका अनुलेपिका पुरोहिता मणिपाली अनुवारक (अनुचारक) होतृ यजमान । **माशब्दादिः**(७।६०५) माशब्द नित्यशब्द कार्य्यशब्द । **मूलविभुजादिः**(५।२२१) मूलविभुज नखमुच काकगुह कुमुद महीध्र कुध्र गिध्र, आकृतिगणोऽयम् । **यवादिः** (७।५८) यव दल्मि ऊर्म्मि (उर्म्मि) भूमि कृमि कुञ्चा वशा द्राक्षा ध्राक्षा ध्रजि ध्रजि ध्वजि निजि सिजि सञ्जि हरित ककुद मरुत् गरुत् इक्षु द्रु मधु, आकृतिगणः **यस्कादिः** (७।३१६) यस्क लह्य द्रुह्य अयस्थूण (अयःस्थूण) तृण कर्ण सदामत्त कम्बलहार वहिर्योग पर्णाढक कर्णाढक पिण्डीजङ्घ वकसस्थ (वकसक्थ) विश्रि कुद्रि अजवस्ति मित्रयु रक्षोमुख जङ्घारथ उत्कास कटुक

मथक (मन्थक) पुष्करट् (पुष्करसद्) विषपुट उपरिमेखल क्रोष्टुकमान (क्रोष्टुमान) क्रोष्टुपार क्रोष्टुमाय शीर्षमाय खरप पदक वर्षुक भलन्दक भडिल भण्डिल भडित भण्डित। **यावादिः** [७।१०९३] याव मणि अस्थि तालु जानु सान्द्र पीतस्तम्ब ऋता उष्णशीते, पशौ लूनविपाते, अण्ड निपुणे, पुत्र कृत्रिमे, स्नात वेदसमाप्तौ, शून्य रिक्ते, दान कुत्सिते, तनु सूत्रे ईयसश्च, ज्ञात अज्ञात, कुमारी क्रीडनकानि च (कुमारक्रीडनकानि च)। **युवादि** [७।८४५-४६] युवन् स्थविर होतृ यजमान पुरुषासे भ्रातृ कुतुक श्रमण (श्रवण) कटुक कमण्डलु कुस्त्री सुस्त्री दुःस्त्री सुहृदय दुर्हृदय सुहृद् दुर्हृद सुभ्रातृ दुभ्रातृ वृषल परिव्राजक सब्रह्मचारिन् अनृशंस हृदयासे कुशल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ, श्रोत्रियस्य यलोपश्च। **रजतादिः** [७।५८३] रजत सीस लोह उदुम्बर नीप दारु रोहीतक विभीतक पीतदारु तीव्रदारु त्रिकण्टक कण्टकार। **रसादिः** [७।९३२] रस रूप गन्ध वर्ण स्पर्श शब्द स्नेह भाव, गुणात् एकाच। **राजदन्तादिः** [६।१८३] राजदन्तः अग्रेवणम् लिप्तवासितम् नग्नमुषितम् सिक्तसंमृष्टम् मृष्टलुञ्चितम् अवक्लिन्नपक्वम् अर्पितोतम् अर्पितोप्तम् उप्तगाढम् उलूखलमुसलम् तण्डुलकिण्वम् दृषदुपलम् आरग्वायनि आरग्वायनबन्धकी चित्ररथबाह्लीकम् अवन्त्यश्मकम् शूद्रार्य्यम् स्नातकराजानौ विष्वक्सेनार्जुनौ अक्षिभ्रुवम् दारगवम् शब्दार्थौ धर्मार्थौ कामार्थौ अर्थशब्दौ अर्थधर्मौ अर्थकामौ वैकारिमतम् गोजवाजम् गोजवाजम् गोपालिधानपूलासम् गोपालधानीपूलासम् पूलासकाण्डम् पूलासककुरण्डम् स्थूलासम् स्थूलपूलासम् उशीरबीजम् (जिज्ञास्थि) सिञ्ज सिञ्जास्थम् सिञ्जाश्वत्थम् चित्रस्वाती भार्य्यापती दम्पती जम्पती जायापती पुत्रपती पुत्रपशु केशश्मश्रू शिरोबिजु शिरोबीजम् शिरोजानु सर्पिर्मधुनी मधुसर्पिषी (आद्यन्तौ) अन्तादी गुणवृद्धी वृद्धिगुणौ। **राजन्यादिः** [७।३७७] राजन्य आनृत वाभ्रव्य शालङ्कायन दैवयातव (दैवयान) (अव्रीडवरत्ना) जालन्धरायण (राजायन) तेलु आत्मकामेय अम्बरीषपुत्र वसाति वैलवन शैलुष उदुम्बर तीव्र वैल्वल आर्जुनायन सम्प्रिय दाक्षि ऊर्णनाभ, आकृतिगणः। **रेवत्यादिः** [७।२८१] रेवती अश्वपाली मणिपाली द्वारपाली वृकवञ्चिन् वृकबन्धु वृकग्राह कर्णग्राह दण्डग्राह कुक्कुटाक्ष (ककुदाक्ष) चामरग्राह। **रैवतिकादिः** [७।५७३] रैवतिक स्वापिशि क्षैमवृद्धि गौरग्रीव (गौरग्रीवि) औदमेघि औदवापि वैजवापि। **लोमादिः** [७।९४०] लोमन् रोमन् बभ्रु हरि गिरि कर्क कपि मुनि तरु। **लोहितादिः** [७।५३७] लोहित चरित नील फेन मद्र हरित दास मन्द, आकृतिगणोऽयम्। **वंशादिः** ७।७६२] वंश कुटज वल्वज मूल स्थूणा (स्थूण) अक्ष अश्मन् अश्व श्लक्ष्ण इक्षु खट्वा। **वरणादिः** [७।४०५] वरणा शृङ्गी शाल्मलि शुण्डि शयाण्डी पर्णी ताम्रपर्णी गोद आलिङ्ग्यायन जालपदी (जानपदी) जम्बू पुष्कर चम्पा पम्पा वल्गु उज्जयिनी गया मथुरा तक्षशिला उरसा गोमती वलभी। **वराहादिः** [७।४०२] वराह पलाशा (पलाश) शेरीष (शिरीष) पिनद्ध निबद्ध बलाह स्थुल विदग्ध (विजग्ध) विभग्न (निमग्न) बाहु खदिर शर्करा। **वसन्तादिः** [७।३४८] वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरत् हेमन्त शिशिर प्रथम गुण चरम अनुगुण अथर्व्वन् आथर्व्वण। **विदादिः** [७।२९१, ३२०] विद उर्व्व कश्यप कुशिक भरद्वाज उपमन्यु किलात कन्दर्प (किंदर्भ) विश्वानर ऋषिषेण (ऋष्टिषेण) ऋतभाग हर्य्यश्व प्रियक आपस्तम्ब कूचवार शरद्वत् शुनक (शुकक्) धेनु गोपवन शिग्रु बिन्दु (भागक) भाजन (शमिक) अश्वावतान श्यामाक श्यामक (श्यावलि) श्यापर्ण हरित किंदास वह्यस्क अर्कजुष (अर्कलुष) वध्योग विष्णुवृद्ध प्रतिबोध रचित (रथीतर) रथन्तर गविष्ठिर निषाद (शबर अलस) मठर (मृडाकु) सृपाकु मृदु पुनर्भू पुत्र दुहितृ ननान्दृ, परस्त्री परशुश्च। **विनयादिः** [७।१०९६] विनय समय, उपायो ह्रस्वत्वञ्च सम्प्रति सङ्गति कथञ्चित् अकस्मात् समाचार उपचार समाय (समयाचार) व्यवहार सम्प्रदान समुत्कर्ष समूह विशेष अत्यय। **विल्वादिः** [७।६८०] विल्व व्रीहि काण्ड मुद्ग मसूर गोधूम इक्षु वेणु गवेधुका कार्पासी पाटली कर्कन्धु कुटीर। **वेतनादिः** [७।६१५] वेतन वाहन अर्धवाहन धनुर्द्दण्ड जाल वेश उपवेश प्रेषण उपवस्ति सुख शय्या शक्ति उपनिषद् उपदेश स्फिज् (स्फज) पाद उपस्थ उपस्थान उपहस्त। **व्याघ्रादिः** (६।२६) व्याघ्र सिंह ऋक्ष ऋषभ चन्दन वृक वृष वराह हस्तिन् तरु कुञ्जर रुरु पृषत् पुण्डरीक पलाश कितव, आकृतिगणः, तेन मुखपद्मम्

मुखकमलम् करकिसलयम् पार्थिवचन्द्र इत्यादि। **व्युष्टादिः** [७।८।११] व्युष्ट निष्क्रमण प्रवेशन उपसंक्रम तीर्थ आस्तरण संग्राम सङ्घात अग्निपद पीलुमूल (पीलु मुल) प्रवास उपवास। **व्रीह्यादिः** [५।२।११६, ११६] व्रीहि माया शाला शिखा माला मेखला केका अष्टका पताका चर्म्मन् कर्म्मन् वर्म्मन् दंष्ट्रा संज्ञा वडवा कुमारी नौ वीणा बलाका यवखदनौ, शीर्षान्नञः। **शकन्ध्वादिः** [६।१।९४] शकन्धुः कर्कन्धुः कुलटा, सीमन्त केशवेशे, हलीषा मनीषा लाङ्गलीषा पतञ्जलिः सारङ्गः पशुपक्षिणोः। **शण्डिकादिः** [४।३।९२] शण्डिक सर्व्वसेन सर्व्वकेश शक शट रक शङ्ख बोध। **शरदादिः** [५।४।१०७] शरद् विपश् अनस् मनस् उपानह् अनडुह् दिव् हिमवत् हिरुक् विद् सद् दिश् दृश् विश् चतुर् त्यद् तद् यद् कियत् जराया जरस् च, प्रतिपरस नुभ्योऽक्ष्णः, पथिन्। **शरादिः** [६।३।१२०] शर दर्भ मृद् (मृत्) कुटी तृण सोम वल्वज। **शर्करादिः** [५।३।१०७] शर्करा कपालिका कपाटिका कनिष्ठिका (कनिष्ठिका) पुण्डरीक शतपत्र गोलमन् लोमन् गोपुच्छ नराची नकुल सिकता। **शाकपार्थिवादिः** [२।१।६०, ४४] शाकपार्थिव कुतपसौश्रुत अजातौल्वलि आकृतिगणोऽयम्, कृतापकृत भुक्तविभुक्त पीतविपीत गतप्रत्यागत यातानुयात क्रयाक्रयिका पुटापुटिका फलाफलिका मानोन्मानिका। **शाखादिः** [५।३।१०३] शाखा मुख जघन शृङ्ग मेघ अभ्र चरण स्कन्ध स्कद (स्कन्द) उरस् शिरस् अग्र शाण। **शिवादिः** [४।१।११२] शिव प्रोष्ठ प्रौष्ठिक चण्ड जम्भ भूरि दण्ड कुठार ककुभ् (ककुभा) अनभिम्लान कोहित सुख सन्धि मुनि ककुत्स्थ कहोड कोहड कहूय कहय रोध कपिञ्जल (कुपिञ्जल) खञ्जन वतण्ड तृणकर्ण क्षीरह्रद जलह्रद परिल (पथिक) पिष्ट हैहय (पार्षिका) गोपिका कपिलिका जटिलिका बधिरिका मञ्जीरक मजिरक वृष्णिक खञ्जास खञ्जाह (कर्मार) रेख लेख आलेखन विश्रवण रवण वर्त्तनाक्ष ग्रीवाक्ष (पिटक विटक) पिटाक तृक्षाक नभाक ऊर्णनाभ जरत्कारु (पृथ्वा उत्क्षेप) पुरोहितिका सुरोहितिका सुरोहिका आर्य्यश्वेत (अर्य्यश्वेत) सुपिष्ट मसुरकर्ण मयूरकर्ण (खर्जुरकर्ण) कदूरक तक्षन् ऋष्टिषेण गङ्गा विपाश यस्क लह्य द्रुह्य अयस्थूण तृणकर्ण (तृणकर्ण) पर्ण भलन्दन विरूपाक्ष भूमि इला सपत्नी, द्व्यचो नद्याः, त्रिवेणी त्रिवणञ्च, आकृतिगणोऽयम्। **शुण्डिकादिः** [४।३।७६] शुण्डिक कृकण कृपण स्थण्डिल उदपान उपल तीर्थ भूमी तृण पर्ण। **शुभ्रादिः** [४।१।१२३, ६८] शुभ्र विष्टपुर (विष्टपुर) ब्रह्मकृत शतद्वार शलाथल शलाकाभ्रू लेखाभ्रू (लेखाभ्र) विकसा (विकास) रोहिणी रुक्मिणी धर्मिणी दिशू शालूक अजवस्ति शकन्धि विमातृ विधवा शुक विश देवतर शकुनि शुक्र उग्र शातल (शतल) बन्धकी सृकण्डु विस्त्रि अतिथि गोदन्त कुशाम्ब मकष्टु शाताहर पवष्टुरिक सुनामन्, लक्ष्मणश्यामयोर्वाशिष्ठे, गोधा कृकलास अर्णीव प्रवाहण भरत (भारत) भरम मृकण्डु कर्पूर इतर अन्यतर आलीढ सुदन्त सुदक्ष सुवक्षस् सुदामन् कद्रू तुद अकशाय कुमारिका कुठारिका किशोरिका अम्बिका जिह्माशिन् परिधि वायुदत्त शकल शलाका खड्डर कुवेरिका अशोका गन्धपिङ्गला खडान्मत्ता अनुदृष्टिन् (अनुदृष्टि) जरतिन् बलीवर्दिन् विग्र बीज जीव श्वन् अश्मन् अश्व अजिर, आकृतिगणः। **शौण्डादिः** [२।१।४०] शौण्ड धूर्त्त कितव व्याड प्रवीण संवीत अन्तर अधि पटु पण्डित कुशल चपल निपुण। **श्रमणादिः** [२।१।७०] श्रमणा प्रव्रजिता कुलटा गर्भिणी तापसी दासी बन्धकी अध्यापक अभिरूपक पण्डित पटु मृदु कुशल चपल निपुण। **श्रेण्यादिः** [२।१।५९] श्रेणी एक पूग मुकुन्द राशि निचय विषय निधन पर इन्द्र देव मुण्ड भूत श्रमण वदान्य अध्यापक अभिरूपक ब्राह्मण क्षत्रिय (विशिष्ट) पटु पण्डित कुशल चपल निपुण कृपण। **संकाशादिः** [४।२।८०] संकाश कपिल कश्मीर (समीर) सूरसेन सरक सूर, सुपथिन् पन्थ च, यूप (यूथ) अंस अङ्ग नासा पलित अनुनाश अश्मन् कूट मलिन दश कुम्भ शीर्ष चिरन्त (विरत) समल सीर पञ्जर पन्थ नल रोमन् लोमन् पुलिन सुपरि कटिप सकर्णक वृष्टि तीर्थ अगस्ति विकर नासिका। **सख्यादिः** [४।२।८०] सखि अग्निदत्त वायुदत्त सखिदत्त (गोपिल) भल्लपाल (भल्ल पाल) चक्र चक्रवाक छगल अशोक करवीर वासव वीर पूर वज्र कुशीरक शीहर (सीहर) सरक सरस समर समल सुरस रोह तमाल कदल सप्तल। **सन्तापादिः** [५।१।१०१] सन्ताप सन्नाह संग्राम सयोग सम्पराय सम्वेशत सम्पेष निष्पेष सर्ग निसर्ग विसर्ग उपसर्ग प्रवास उपास सङ्घात सवेष संवास सम्मोदन सक्तु, मांसौदनाद्विगृहीतादपि।

सन्धिवेलादिः (७।४६५) सन्धिवेला सन्ध्या अमावस्या त्रयोदशी चतुर्दशी पञ्चदशी पौर्णमासी प्रतिपत् संवत्सरात् फलपर्व्वणोः। **समानादिः** (७।२२०) समान एक वीर पिण्ड श्व (शिगी) भ्रातृ भद्र पुत्र, दासाच्छन्दसि। **सम्पदादिः** (५।४४२) सम्पद् विपद् आपद् प्रतिपद् परिषद्। **सर्व्वादिः** (२।१६६) सर्व्व विश्व उभ उभय डतर डतम ततर ततम यतर यतम कतर कतम अन्य अन्यतर एकतर एकतम इतर त्वत् त्व नेम सम सिम, पूर्व्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम, स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्, अन्तरं वहिर्योगोपसंव्यानयोः, त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम्।

साक्षात्प्रभृतिः (५।८७) साक्षात् मिथ्या चिन्ता भद्रा रोचना आस्था अमा श्रद्धा प्राजर्य्या प्राजरुहा वीजर्य्या वीजरुहा संसर्य्या अर्थे लवणम् उष्णम् शीतम् उदकम् आर्द्रम्, अग्नौ वशे विकसने विहसने प्रतपने, प्रादुस् नमस, आकृतिगणोऽयम्। **सिध्मादिः** (७।६३३) सिध्म गडु मणि नाभि वीज वीणा कृष्ण निष्पाव पांशु पार्श्व पर्शु हनु सक्तु मास (मांस) पार्ष्णिधमन्योर्दीर्घश्च, वातदन्तबलललाटामूङ् च, जटाघटाकटाकालाः क्षेपे, पर्णा उदक प्रज्ञा मकथि कर्ण स्नेह शीत श्याम पिङ्ग पीत्त पुष्क पृथु मृदु मञ्जु मण्डु पत्र चटु कपि गण्डु ग्रन्थि श्री कुश धारा वर्ष्मन् पक्ष्मन् श्लेष्मन् पेश निष्पाद् कुण्ड क्षुद्रजन्तूपतापयोश्च। **सिन्ध्वादिः** (७।५४५) सिन्धु वर्णु मधुमत् कम्बोज शाल्व कश्मीर गन्धार किष्किन्धा उरसा दरद (दरद्) गान्दिका। **सुखादिः** (३।४४४) सुख दुःख तृप्त कृच्छ्र अस्र आस्र अलीक प्रतीप करुण कृपण सोढ। **सुखादिः** (७।६८२) सुख दुःख तृप्त कृच्छ्र अस्र (आश्र) आस्र अलीक कठिन सोढ प्रतीप शील हल, माला क्षेपे, कृपण प्रणाय (प्रणय) दल कक्ष। **सुतङ्गमादिः** (७।४००) सुतङ्गम मुनिचित विप्रचित्त महाचित्त महापुत्र स्वन श्वेत गडिक (खडिक) शुक्र विग्र वीजवापिन् अर्ज्जुन श्वन् अजिर जीव खण्डिन कर्ण विग्रह। **सुषामादिः** (६।३०६) सुषामा निःषामा दुःषामा सुषेधः निषेधः दुःषेध सुषन्धिः निषन्धिः दुषन्धिः सुष्ठु दुष्ठु, गौरिशक्थः संज्ञायाम् प्रतिष्णिका जलाषाहम् (जलाषाडन्) नौषेचनम् दुन्दुभिषेवनम् (दुन्दुभिषेचनम्), एति संज्ञायामगात्, नक्षत्राद्वा, हरिषेणः रोहिणीषेणः, आकृतिगणः। **सुस्नातादिः** (७।६०६) सुस्नात सुखरात्रि सुखशयन। **स्थूलादिः** (७।१०७३) स्थूल अणु माषेसु (माष इसु), कृष्ण तिलेषु, यव व्रीहिषु, इक्षु तिल पाद्यकालावदातसुरायाम, गोमूत्र आच्छादने, सुरा अहौ, जीर्णशालिषु, पत्रमूल समस्तो व्यस्तश्च, कुमारीपुत्र कुमारीश्वशुर मणि। **स्वरादिः** (२।२१७) स्वर् अन्तर् प्रातर्, अन्तोदात्ताः, पुनर् सनुतर् उच्चैस नीचैस् शनैस् ऋधक् ऋते युगपत् आरात् (अन्तिकात्) पृथक्, आद्युदात्ताः, ह्यस् श्वस् दिवा रात्रौ सायम् चिरम् मनाक् ईषत् (शश्वत्) जोषम् तूष्णीम् वहिस् (अधस्) अवस् समया निकषा स्वयम् मृषा नक्तम् नञ् हेतौ (हे है) इद्धा अद्धा सामि, अन्तोदात्ताः, वत् ब्राह्मणवत् क्षत्रियवत् सना सनत् सनात् उपधा तिरस्, आद्युदात्ताः, अन्तरा, अन्तोदात्तः, अन्तरेण (मक) ज्याक् (योक् नक्)कम् शम् सन सहसा (श्रद्धा) अलम् स्वधा वषट् विना नाना स्वस्ति अन्यत् अस्ति उपांशु क्षमा विहायसा दोषा मुधा दिष्टचा वृथा मिथ्या क्त्वातोसुन्कसुनः कृन्मकारसन्ध्यक्षरान्ताऽव्ययीभावश्च, पुरा मिथो मिथस् प्रायस् मुहुस् प्रवाहुकम् प्रवाहिका आर्य्यहलम् अभीक्ष्णम् साकम् सार्द्धम् (सत्रम् समम्) नमस् हिरुक्, तसिलादयस्तद्धिता एधाच् पर्य्यन्ताः शस्तसी कृत्वसुच् सुच् आस्थालौ, च्व्यर्थाश्च, (अथ) अम् आम् प्रताम् प्रतान् प्रशान्, आकृतिगणोयम् तेनान्येऽपि, तथाहि माङ् श्रम् कामम् (प्रकामम्) भूयस् परम् साक्षात् साचि (सावि) सत्यम् मंक्षु संवत् अवश्यम् सपदि प्रादुस् आविस् अनिशम् नित्यम् नित्यदा सदा अजस्रम् सन्ततम् उषा ओम् भूर् भुवर् झटिति तरसा सुष्ठु कु अञ्जसा अ मिथु (अमिथु) विथक् भाजक् अन्वक् चिराय चिरम् चिररात्राय चिरस्य चिरेण चिरात् अस्तम् अनुषक् अनुषट् अम्नस् (अम्भस्) अम्नर् (अम्भर्) स्थाने वरम् दुष्ठु बलात् शु अर्व्वाक् शुदि वदि इत्यादि, तसिलादयः, प्राक् पाशपः, शस्प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः, मान्त, कृत्वोऽर्थे, तसिवती, नानात्राविति। **स्वर्गादिः** (७।८२५) स्वर्ग यशस् आयुस् काम धन। **स्वस्रादि** (२।५८) स्वसृ दुहितृ ननान्दृ यातृ मातृ तिसृ चतसृ। **स्वागतादिः** (७।४, ६) स्वागत स्वाध्वर स्वङ्ग व्यङ्ग व्यड व्यवहार स्वपति **हरीतक्यादिः** (७।६०२) हरीतकी कोशातकी नखरञ्जनी शष्कण्डी दोडी दाडी श्वेतपाकी अर्ज्जुनपाकी

द्राक्षा काला ध्वाक्षा गभीका कण्टकारिका पिप्पली चिम्पा (चिञ्चा) शेफालिका। हस्त्यादिः (६।३४६) हस्तिन् कुद्दाल अश्व कशिक कटोलक गण्डोल गण्डोलक कण्डोल कण्डोलक अज कपोल जाल गण्ड महिला दासी गणिका कुसूल।



अव्ययशब्दसंग्रहः

अ—अभाव-भेद-अप्राधान्य-ईषत्-साहश्य-विरोधार्थेषु।
अकस्मात्—अकारणात्, हठात्।
अग्रतस—प्रथमे, सम्मुखे।
अघोस्—सम्बोधने।
अङ्ग—सम्बोधने।
अचिरात्—शीघ्रम्।
अञ्जसा—शीघ्रम्, सत्यम्।
अधुना—इदानीम्।
अनु—पश्चात्, लक्षीकृत्य।
अनुपदम्—तदनन्तरम्।
अन्ततस्—शेषार्थे, न्यूनार्थे।
अन्तर्—मध्ये, शेषे, तन्तःकरणे च।
अन्तरा—व्यतिरेकेण, मध्ये।
अन्तरेण—विना।
अन्यत्—अन्यप्रकारः।
अन्यतरेद्युस्—द्वयोर्मध्ये एकदिने।
अन्यतस्—अन्यत्र, अन्यप्रकारेण।
अन्यत्र—अन्यस्थाने, अन्यविषये।
अन्यथा—अन्येन प्रकारेण।
अन्यदा—अन्यस्मिन् समये।
अन्येद्युस्, अपरेद्युस्—अपरदिने।
अभि—प्रति।
अभितस्—सर्व्वस्यां दिशि, समीपे।
अमा—सह, चन्द्रकलायाम्।
अमुत्र—परलोके।

अट्टट्ट—उच्चशब्दे।
अतस्—अतएव।
अति—अधिकम्।
अतीव—अतिशयम्, अधिकम्।
अत्र—अस्मिन्।
अथ—मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्न-कार्त्स्न्यार्थेषु।
अथकिम्—स्वीकारे।
अस्मि—अहमर्थे।
अहह—खेदे, आश्चर्ये च।
अहहा—खेदे, आश्चर्ये च।
अहे—सम्बोधने।
अहो—आश्चर्य्ये।
अहोवत—कारुण्ये।
अह्नाय—शीघ्रम, तत्क्षणात्।
आ—स्मरणे,पर्य्यन्तार्थे च।
आ—स्मरणे, स्वीकारे च।
आः—विरक्तौ पीडायाञ्च।
आरात्—दूरे, समीपे च।
आविस्—प्रकाशे।
आहो—सन्देहे, प्रश्ने च।
आहोस्वित्—प्रश्ने, सन्देहे च।
इ—खेदे, कोपे च।
इतस्—ततः, अत्र।
इतस्ततः—अत्र तत्र।
इतरेद्युस्—अन्यदिने।
इति—इदमर्थे, शेषे अतएव।
इतिह—परम्परायाम्।
इत्थम्—अनेन प्रकारेण।
इदानीम्—अधुना।

अथो—मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्न-कार्त्स्न्यार्थेषु।
अद्धा—सत्यम्, यथार्थम्।
अद्य—अद्य इदानीम्।
अधरात्—नीचार्थे।
अधरेण—नीचार्थे।
अधस्—नीचार्थे।
अधस्तात्—नीचार्थे।
उदक—उत्तरस्यां दिशि।
उपजोषम्, उपयोषम्—आनन्दे, सन्तोषे च।
उपरि—उच्चस्थाने।
उपांशु—निर्ज्जने।
उभयतस्—उभयेन प्रकारेण।
उभयेद्युस्—उभयदिने।
उम्—क्रोधे, प्रतिज्ञायाञ्च।
उररी—स्वीकारे।
उरी—स्वीकारे।
उरुरी—स्वीकारे।
उषा—प्रातः।
ऊ—दुःखे।
ऊम्—गर्व्वे, क्रोधे च।
ऊररी—स्वीकारे।
ऊरी—स्वीकारे।
ऊरुरी—स्वीकारे।
ऊर्द्ध्वम्—उपरि।
ऊषा—प्रातः।
ऋते—विना।
ए—स्मरणे, सम्बोधने च।
एकत्र—एकस्थाने, सहयोगेन।

अयि—कोमलसम्वोधने, प्रश्ने च।
अये—सम्बोधने, स्मरणे च।
अरे—नीच-सम्बोधने।
अरे रे—नीच-सम्बोधने।
अर्व्वाक्—पूर्व्वे, पश्चात् वक्रार्थे च।
अर्व्वाच्—पूर्व्वे, पश्चात्, वक्रार्थे च।
अलम्—व्यर्थसमर्थयोः।
अवश्यम्—निश्चये।
असि—त्वमर्थे।
अस्तम्—अदर्शने, नाशे।
अस्ति—भवत्यर्थे, तिष्ठत्यर्थे च।
अस्तु—भवतु।
कदा—कस्मिन् समये।
कदाचन—कस्मिंश्चित् समये।
कदाचित्—कस्मिंश्चित् समये।
कर्हि—कदाचित्।
कर्हिचित्—कस्मिंश्चित् समये।
कामम्—यथेष्टम्, पर्य्याप्तम्।
किं पुन—वक्तुमधिकं किम्।
किंवा—अथवा।
किंस्वित्—सम्भावनायाम्, वितर्के च।
किञ्च—अपिच।
किञ्चन—किञ्चित्, स्वल्पे, कियदंशे च।
किञ्चित्—स्वल्पे।
किन्तु—परन्तु।
किन्नु—संशये।
किम्—कुत्सितार्थे, प्रश्ने, वितर्के च।
किमिति—किमर्थम्।
किमु—सम्भावनायाम्, वितर्के च।
किमुत—सम्भावनायाम्, वितर्के च।
किल—निश्चितार्थे अलीके, सम्भावनायां वार्त्तायाञ्च।
कु—कुत्सिते, पापे, मन्दे, अमङ्गले च।
कुतस्—कस्मात् स्थानात् किं निमित्तम्।
कुत्र—कस्मिन् स्थाने, कस्मिन् विषये।

इव—सदृशार्थे, वाक्यालङ्कारे च।
इस—खेदे, विस्मये च।
इह—अत्र।
ईषत्—स्वल्पे।
उ—वितर्के, पादपूरणे च।
उच्चकैस्—उच्चे, अधिके च।
उच्चैस्—उच्चे अधिके च।
उत—संशये, समुच्चये च।
उताहो—प्रश्ने, विकल्पे च।
उताहोस्वित्—प्रश्ने, विकल्पे च।
उत्तरतस्—उत्तरे।
उत्तरात्—उत्तरे।
उत्तरेण—उत्तरे।
उत्तरेद्युस्—परदिने।
खलु—निश्चये, वाक्यालङ्कारे च।
चतुर्द्धा—चतुःप्रकारेण।
चिरम्, चिरेण, चिराय, चिररात्राय, चिरात्, चिरस्य, चिरे — चिरकालम् बहुकालम् (व्याप्य)
चेत्—यदि।
जातु—कदाचित्।
जोषम्—तूष्णीम्, सुखे च।
झटिति—शीघ्रम्।
तत्—तस्मात्, तन्निमित्तम्।
ततस्—तस्माद्धेतोः तदनन्तरम्।
तत्र—तस्मिन् स्थाने।
तथा—तेन प्रकारेण।
तथाहि—दृष्टान्ततः।
तदा—तस्मिन समये।
तदानीम्—तस्मिन् समये।
तर्हि—तदा, ततः।
तावत्—साकल्ये, वाक्यालङ्कारे, तत्परिमिते च।
तिरस्—अप्रकाशे, वक्रार्थे च।
तिर्य्यक्—वक्रार्थे पार्श्वे च।
तु—किन्तु, पुनः।
तूष्णीम्—मौनिनि स्थिरे च।

एकदा—एकस्मिन् समये।
एकैकशम्—एकक्रमेण।
एतर्हि—इदानीम्, अतः कारणात्।
एव—अवधारणे।
एवम्—अनेन प्रकारेण। सम्मतौ च।
ऐ—स्मरणे, सम्बोधने।
ऐषमस्—अस्मिन् वत्सरे।
ओ—सम्बोधने, स्मरणे च।
ओम्—प्रणवे स्वीकारे च।
औ—सम्वोधने।
कच्चित्—प्रश्ने, इच्छाप्रकाशे च
कति—कियति।
कथम्—केन प्रकारेण।
दिष्ट्या—भाग्येन।
दुष्ठु—कु, निन्दिते।
दैवात्—दैवक्रमेण।
द्राक्—शीघ्रम्।
द्विधा, द्वैधा — द्विवारम्, द्विप्रकारम्।
धिक्—निन्दायाम्।
न, नञ् — निषेधे।
नक्तम्—रात्रौ।
नचेत्—तन्न सति।
नमस्—नमस्कारे, प्रणामे च।
नवधा—नवप्रकारेण।
नवशः—नवभिर्नवभिः।
नहि, ना —निषेध।
नाना—बहुविधेषु।
नाम—आख्यायाम्, सम्भावनायाम् प्रकाश्ये च।
नास्ति—न भवतीत्यर्थे।
निकषा—निकटे।
नितराम्—अवश्यम्, अत्यन्तम्।
नित्यदा—सर्व्वदा।
नीचकैस्, नीचैस् —क्षुद्रे स्वल्पेनिम्ने च।
नु—सन्देहे वा अनिश्चये।

कुत्रचित्—कस्मिंश्चित् स्थाने ।
कृतम्—वारणार्थे ।
कृते...निमित्तम् ।
केशाकेशि...केशेषु केशेषु आक्रम्य
यद्युद्धम् ।
क्रमशः.. परपरक्रमेण ।
क्व .. कुत्र ।
क्वचन...कुत्र, कस्मिंश्चित् समये ।
पराक...वक्रे, कुटिलये ।
परासि....गतवत्सरात् पूर्व्वम्, ।
परितस्....चतुर्दिक्षु ।
परुत्
परेद्यवि...परदिने ।
परेद्युस्
पश्चात्....परे पश्चिमे च ।
पुनःपुनर्....वारंवारम् पुनःपुनः ।
पुनर्...पुनः, अप्रथमे ।
पुरतस्...सम्मुखे ।
पुरस्
...पूर्व्वस्यां दिशि,
पुरस्तात् प्रथमे, सम्मुखे च ।
पुरा...पूर्व्वस्मिन् काले, निकटे च ।
पूर्व्वेण....पूर्व्वस्यां दिशि,
पूर्व्वकाले च ।
पूर्व्वेद्युस्...पूर्व्वदिने ।
पृथक्....भिन्ने ।
पृष्ठतास्...पश्चाद्भागे ।
प्रकामम्...यथेष्टम्, यथेच्छम् ।
प्रगे...प्रत्यूषे ।
प्रत्यक्....पश्चात्, पूर्व्वे, पश्चिमे ।
प्रत्यहम्....प्रतिदिनम् ।
प्रत्युत....वैपरीत्ये ।
प्रसह्य...हठात्, बलपूर्व्वकम् ।
प्राक्...पूर्व्वम् ।
प्रातर्....प्रभाते ।
प्रादुस्...व्यक्तार्थे ।
प्राध्वम्...आनुकूल्ये ।
प्रायशस्...बाहुल्यरूपेण ।
प्राह्णे....प्रभाते ।

त्रिः—वारत्रयम् ।
त्रेधा
त्रैधम् त्रिप्रकारेण ।
दक्षिणतस्
दक्षिणात्...दक्षिणस्यां दिशि ।
दक्षिणेन
दण्डादण्डि...दण्डेन दण्डेनाक्रम्य
यद्युद्धम् ।
दिवा...दिने ।
भूयस्....बाहुल्येन, वारंवारम् ।
भूरि...बहुलम्, बहु ।
भूरिशस्...बहुवारम्, बहुशः ।
भृशम्....अतिशयम्, बहुवारम् ।
भो
भोस् सम्बोधने ।
मंक्षु....शीघ्रम्, अतिशयश्च ।
मत्....मदीयार्थे ।
मनाक्...ईषत् ।
मम...ममतायाम् ।
मा...निषेधे, निन्दायाञ्च ।
मिथस्...परस्परम्, रहसि च ।
मिथ्या....निष्फले, असत्ये च ।
मुधा ..वृथा, निष्फले ।
मुहुस्.. वारंवारम् ।
मृषा...मिथ्या ।
यत्...यस्माद्धेतोः, यथाविधे च ।
यतस्...यस्माद्धेतोः, यथाविधे च ।
यत्र...यस्मिन् स्थाने ।
यथा....येन प्रकारेण, सत्ये
अनतिक्रमे च ।
यतातथम्
यथायथम् यथायोग्ये,
यथार्हम्
यथावत् यथार्थे च ।
यथास्वम्
यदा....यस्मिन् समये ।
यदि...सम्भावनायाम् ।
यावत्....साकल्ये, परिमाणे,
पर्य्यन्ते च ।

नूनम्—निश्चये, वितर्के च ।
नो—निषेधे, न ।
नोचेत् ..तन्न सति ।
न्यक्...नीचे, घृण्ये च ।
पञ्चधा....पञ्चभिः प्रकारैः ।
परश्वस्
आगमिनि
परःश्वस् तृतीयदिने ।
वषट्
वौषट् ...आहुतिमन्त्रे ।
बहिस्...बहिर्भागे ।
वा...विकल्पे, वितर्के, समुच्चये
उपमायाम् वाक्यपूरणे च ।
वाढम्...स्वीकारे ।
विधिवत्...यथाविधि ।
विना...व्यतिरेकेण ।
विश्वक्
....सर्व्वत्र, सर्व्वव्यापिनि
विष्वक्
वृथा...अकारणम् ।
शनैस्....क्रमशः, अल्पे अल्पे च ।
शश्वत्....निरन्तरम्, वारवारम् ।
शान्तम्...निवृत्तम्, वारितम् ।
श्रत्...श्रद्धायाम् ।
श्वस्...आगामिदिने ।
संवत्...वत्सरे ।
सकृद्...एकवारम् ।
सत्रा...सहितम् ।
सदा...सर्व्वदा ।
सद्यस्...तत्क्षणे ।
सपदि ..शीघ्रम्, सहार्थे च ।
समन्ततस्.. सर्व्वतः ।
समन्तात्...चतुर्दिक्षु, सर्व्वतः
समम्...सह, एकदा ।
समया...समीपे ।
समुपयोषम्...हर्षे, भाग्ये च ।
सम्प्रति....अधुना ।
सम्यक्...सत्यम्, सर्व्वतोभावेन,
साकल्येन ।

प्रेत्य...परलोके, मरणकाले च ।
फट्...मन्त्रांशविशेषे, अस्त्रमन्त्रे, अनुकारशब्दे च ।
बहुशस्....बहुरूपेण, बाहुल्यरूपेण च ।
भगोस्....सम्बोधने ।
सहसा...हठात्, अतर्कितम् ।
साकम्...सह ।
साक्षात्...प्रत्यक्षम् ।
साचि.. वक्रे, नते च ।
सामि...कियदंशे ।
साम्प्रतम्...उचितम्, सम्प्रति ।
सायम्...सन्ध्याकाले ।
सार्द्धम्...सह ।
सुचिरम्....बहुकालम् ।
सुतराम्....अगत्या, अवश्यम्, अत्यन्तम् ।
सुष्ठु...उत्तमम् ।
स्थाने....उचितम् ।

युगपत्...एककालिकम् ।
रहस्...निर्ज्जने ।
रे...सम्बोधने ।
वत....खेदे, विस्मये, हर्षे च ।
वरम्...उत्कृष्टे ।
स्म...अतीते ।
स्वधा....मन्त्रविशेषे ।
स्वयम्...निजार्थे, आत्मावच्छिन्ने ।
स्वर्...स्वर्गे ।
स्वस्ति...शुभे, मङ्गले च ।
स्वाहा...मन्त्रविशेषे ।
स्वित्...प्रश्ने, वितर्के, संशये च ।
ह...सम्बोधने, पादपूरणे च ।
हंहो....सम्बोधने ।
हञ्जे... नीचां प्रति सम्बोधने ।
हण्डे....चेटीं प्रति सम्बोधने ।
हन्त...खेदे, हर्षे च ।

सर्व्वतस्...सर्व्वप्रकारेण सर्व्वस्यां दिशि ।
सर्व्वथा....सर्व्वप्रकारेण ।
सर्व्वदा...सर्व्वस्मिन् समये ।
सह...समम् ।
हला...सखीं प्रति सम्बोधने ।
हा—विषादे, शंके, पीडायाञ्च
हिरुक्...भिन्ने, मध्ये च ।
हिहि, ही ... हास्ये, हास्य शब्दे
हीही आह्लादे च ।
हुम्, हूम् .. स्वीकारे ।
हे, हेहे, है, हो सम्बोधने ।
ह्यस्...परदिने ।

स्वादि-तिवादि-विष्णुभक्ति-रूपाणि

- प्रकृतिः (२।२)
  - नाम (२।१)
  - धातुः (३।१)
- प्रत्ययः (२।३)
  - स्वादिः (२।४)
  - तिवादिः (३।१२)
  - कृत् (५।१)
  - तद्धितः (७।१)

स्वादि-विष्णुभक्तयः

['सुप्-विभक्तयः' इति पाणिनीयाः, 'स्यादि-विभक्तयः' इति कालापाः, 'स्यादि-क्तयः' इति मौग्धबोधाः एता नाम्नः परे योजनीयाः । नामानि ('प्रातिपदिकम्' इति पाणिनीयाः, 'लिङ्गम्' इति कालापाः, 'लिः' इति मौग्धबोधाः), कृष्णनामानि च ('सर्व्वनाम' इति पाणिनीयाः कालापाश्च, 'सिः' इति मौग्धबोधाः) सर्व्वेश्वरान्तानि (स्वरान्तानि, अजन्तानि) विष्णुजनान्तानि (व्यञ्जनान्तानि, हलन्तानि, हसन्तानि) इति द्विविधानि, तानि च पुनः पुरुषोत्तम-लिङ्गानि (पुंलिङ्गानि), लक्ष्मी-लिङ्गानि (स्त्रीलिङ्गानि) ब्रह्मलिङ्गानि (क्लीवलिङ्गानि) इति भेदाः ।]

विष्णुभक्तिः ('विभक्तिः', 'क्तिः')		एकवचनम् ('क्वम्' इति मुग्धबोध-व्याकरणम्, १३)	द्विवचनम् ('द्वम्')	बहुवचनम् ('ब्वम्')
प्रथमा ('प्री' इति मुग्धबोध-व्याकरणम्, ७९)		सुँ	औ	जस्
द्वितीया	('द्वी')	अम्	औ	शस्
तृतीया	('त्री')	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	('ची')	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	('पी')	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	('षी')	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	('प्ती')	ङि	ओस्	सुप्
सम्बोधनम्		सु	औ	जस्

सम्बोधने सुँ: 'बुद्ध'-संज्ञः (२।२४), 'सम्बुद्धिः' इति पाणिनीयाः (२।३।४९) कालापाश्च (२।१।५) 'घिः' इति मौग्धबोधा (८०)। पुंलिङ्गात् स्त्रीलिङ्गाच्च परे 'सुँ औ जस् अम् औ' इति पञ्च विभक्तयः शिश्च 'कृष्णस्थान संज्ञाः (२।८१) 'सर्व्वनाम-स्थानम्' इति पाणिनीयाः (१।१।४२), 'घुट्' इति कालापाः (२।१। ३-४) 'घिः' इति मौग्धबोधाः (८१-८२)। स्वादयः पञ्च विभक्तयः 'पाण्डव'-संज्ञाः (२।४४), 'सुट' इति पाणिनीयाः (१।१।४३), 'घुट्' इति कालापाः (२।१।३-४) 'घिः' इति मौग्धबोधाः (८१)।

तिवादि-विष्णुभक्तयः

['तिङ्-विभक्तयः' इति पाणिनीयाः, 'आख्यातम्' इति कालापाः, 'त्यादि-क्तयः' इति मौग्धबोधाः, एता धातोः परे योजनीयाः। धातवो भ्वाद्यदादि-ह्वादि-दिवादि-स्वादि-तुदादि-रुधादि-तनादि-क्र्यादि-चुरादयः, परपदिनः (परस्मैपदिनः), आत्मपदिनः (आत्मनेपदिनः), मिश्रपदिनः (उभयपदिनः) च, सेट अनिटश्च, सकर्म्मका अकर्म्मकाश्चेति भेदाः।]

कृष्णधातुकाः

('सार्व्वधातुकम्' इति पाणिनीयाः कालापाश्च, 'र' इति मौग्धबोधाः)

अच्युतः

('लट्' इति पाणिनीयाः, 'वर्त्तमाना' इति कालापाः, 'कौ' इति मौग्धबोधाः)

परपदम् ('परस्मैपदम्' इति पाणिनीयाः कालापाश्च, 'पम्' इति मौग्धबोधाः)

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	तिप्	तस्	अन्ति
मध्यमपुरुषः	सिप्	थस्	थ
उत्तमपुरुषः	मिप्	वस्	मस्

आत्मपदम् ('आत्मनेपदम्' इति पाणिनीयाः कालापाश्च, 'मम्' इति मौग्धबोधाः)

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	ते	आते	अन्ते
मध्यमपुरुषः	से	आथे	ध्वे
उत्तमपुरुषः	ए	वहे	महे

विधिः

('विधिलिङ्' इति पाणिनीयाः, 'सप्तमी' इति कालापाः, 'खौ' इति मौग्धबोधाः)

	परपदम्				आत्मपदम्		
	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्		एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	यात्	याताम्	युस्	प्रथमपुरुषः	ईत	ईयाताम्	ईरन्
मध्यमपुरुषः	यास्	यातम्	यात	मध्यमपुरुषः	ईथास्	ईयाथाम्	ईध्वम्
उत्तमपुरुषः	याम्	याव	याम	उत्तमपुरुषः	ईय	ईवहि	ईमहि

विधाता

('लोट्' इति पाणिनीयाः, 'पञ्चमी' इति कालापाः, 'गी' इति मौग्धबोधाः)

	परपदम्				आत्मपदम्		
	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्		एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	तुप्	ताम्	अन्तु	प्रथमपुरुषः	ताम्	आताम्	अन्ताम्
मध्यमपुरुषः	हि	तम्	त	मध्यमपुरुषः	स्व	आथाम्	ध्वम्
उत्तमपुरुषः	आनिप्	आवप्	आमप्	उत्तमपुरुषः	ऐप्	आवहैप्	आमहैप्

भूतेश्वरः

('लङ्' इति पाणिनीयाः, 'ह्यस्तनी' इति कालापाः, 'घी' इति मौग्धबोधाः)

	परपदम्				आत्मपदम्		
	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्		एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	दिप्	ताम्	अन्	प्रथमपुरुषः	त	आताम्	अन्त
मध्यमपुरुषः	सिप्	तम्	त	मध्यमपुरुषः	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तमपुरुषः	पम्	व	म	उत्तमपुरुषः	इ	वहि	महि

भूतेशः

('लुङ्' इति पाणिनीयाः, 'अद्यतनी' इति कालापाः, 'टी' इति मौग्धबोधाः)

	परपदम्				आत्मपदम्		
	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्		एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	दिप्	ताम्	अन्	प्रथमपुरुषः	त	आताम्	अन्त
मध्यमपुरुषः	सिप्	तम्	त	मध्यमपुरुषः	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तमपुरुषः	पम्	व	म	उत्तमपुरुषः	इ	वहि	महि

रामधातुकाः

('आर्द्धधातुकम्' इति पाणिनीयाः)

अधोक्षजः

('लट्' इति पाणिनीयाः, 'परोक्षा' इति कालापाः, 'ठी' इति मौग्धबोधाः)

	परपदम्				आत्मपदम्		
	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्		एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	णल्	अतुस्	उस्	प्रथमपुरुषः	ए	आते	इरे
मध्यमपुरुषः	थल्	अथुस्	अ	मध्यमपुरुषः	से	आथे	ध्वे
उत्तमपुरुषः	णल	व	म	उत्तमपुरुषः	ए	वहे	महे

बालकल्किः

('लुट्' इति पाणिनीयाः, 'श्वस्तनी' इति कालापाः, 'डी' इति मौग्धबोधाः)

	परपदम्				आत्मपदम्		
	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्		एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	ता	तारौ	तारस्	प्रथमपुरुषः	ता	तारौ	तारस्
मध्यमपुरुषः	तासि	तास्थस्	तास्थ	मध्यमपुरुषः	तासे	तासाथे	ताध्वे
उत्तमपुरुष	तास्मि	तास्वस्	तास्मस्	उत्तमपुरुषः	ताहे	तास्वहे	तास्महे

कामपालः

('आशीर्लिङ्' इति पाणिनीयाः, 'आशी' इति कालापाः, 'डी' इति मौग्धबोधाः)

	परपदम्				आत्मपदम्		
	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्		एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	यात्	याताम्	यासुस्	प्रथमपुरुषः	सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्
मध्यमपुरुषः	यास्	यास्तम्	यास्त	मध्यमपुरुषः	सीष्ठास्	सीयास्थाम्	सीध्वम्
उत्तमपुरुषः	यासम्	यास्व	यास्म	उत्तमपुरुषः	सीय	सीवहि	सीमहि

कल्किः

('लृट्' इति पाणिनीयाः, 'भविष्यन्ती' इति कालापाः, 'ती' इति मौग्धबोधाः)

	परपदम्				आत्मपदम्		
	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्		एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	स्यति	स्यतस्	स्यन्ति	प्रथमपुरुषः	स्यते	स्येते	स्यन्ते
मध्यमपुरुषः	स्यसि	स्यथस्	स्यथ	मध्यमपुरुषः	स्यसे	स्यसे	स्यध्वे
उत्तमपुरुषः	स्यामि	स्यावस्	स्यामस्	उत्तमपुरुषः	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

अजितः

('लृङ्' इति पाणिनीयाः, 'क्रियातिपत्ति' इति कालापाः, 'थी' इति मौग्धबोधाः)

	परपदम्				आत्मपदम्		
	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्		एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	प्रथमपुरुषः	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
मध्यमपुरुषः	स्यस्	स्यतम्	स्यत	मध्यमपुरुषः	स्यथास्	स्येथाम्	स्यध्वम्
उत्तमपुरुषः	स्यम्	स्याव	स्याम	उत्तमपुरुषः	स्ये	स्यावहि	स्यामहि

*****ॐ*****

लिङ्गानुशासनम्

कृदन्त-पुरुषोत्तमलिङ्गाः

ण-प्रत्ययान्ताः (५।२०७, २१०). घणन्ताः (५।३७७-४:४ *, अलन्ताः (५।३७७, ४१५-४२७)*, अथु-प्रत्ययान्ताः (५।४३४), न-प्रत्ययान्ताः (५।४२५)१, कि-प्रत्ययान्ताः (५।४३६-३७)२।

समास-पुरुषोत्तमलिङ्गाः

रात्रचन्ताः (६।१४१), अहान्ताः (६।१४१) ३।

तद्धित-पुरुषोत्तमलिङ्गाः

इमन्प्रत्ययान्ताः (७।८३६-८३८)४।

कृदन्त-लक्ष्मीलिङ्गाः

भावविहितक्यप्-प्रत्ययान्ताः (५।१८७-८८ ४४४), इन्प्रत्ययान्ताः (५।४३२), क्ति-प्रत्ययान्ताः (५।४३८-४४३), ङाप्प्रत्ययान्ताः (५।४४५-४५३), अनप्रत्ययान्ताः (५।४५१)५, णकप्रत्ययान्ताः (भावे) (५।४५२) इण्प्रत्ययान्ताः (५।४५५), अनिप्रत्ययान्ताः (५।४५६)।

समास-लक्ष्मीलिङ्गाः

अप्रत्ययान्त-धुर्शब्दान्ताः (७।९७)।

तद्धित-लक्ष्मीलिङ्गाः

ताप्प्रत्ययान्ताः (७।३४०, ८३१, ८३३-३४), सुत्रोक्ताः कतिपये=७।३४२-४३, ८३९. ८४८-४९,८८२,१०७१

कृदन्त-ब्रह्मलिङ्गाः

भावविहित-क्त-प्रत्ययान्ताः (५।२६), त्र-इत्र-प्रत्ययान्ताः (५।३६४), अनप्रत्ययान्ताः (५।४५७)६, टनप्रत्ययान्ताः (५।४५८-६४)।

समास-ब्रह्मलिङ्गाः

समाहारत्रिरामीनिष्पन्नाः (६।४९, ५१-५२)७, समाहार-रामकृष्णनिष्पन्नाः (६।११८-१३३, १३६), अव्ययीभावनिष्पन्नाः (६।१५२-१७८), अप्रत्ययान्ता-पुर्शब्दान्ताः (७।९५)।

तद्धित-ब्रह्मलिङ्गाः

भाव-कर्म्मार्थ-समूहार्थ-प्रत्ययान्ताः (७।८३१-३८, ८४१-५१, ३३६-३९)८, शाकट-शाकिनप्रत्ययान्ताः (७।८५७), तैल-गोष्ठ-गोयूग-गोषड्गव-प्रभृतिप्रत्ययान्ताः (७।८७५-७६, ८७८-७९), तय-अय-प्रत्ययान्ताः (७।८९५)९।

---

* घणन्ता अलन्ताश्च भावार्थे एव पुरुषोत्तमलिङ्गाः, अन्यार्थे तु विशेष्यलिङ्गा अपि भवन्ति। अलन्तेषु—भयं वर्षं पदं मुखं ब्रह्मलिङ्गम्। १। याच्ञा—लक्ष्मीलिङ्गः। २। इषुधि—पुरुषोत्तमलिङ्गः, लक्ष्मीलिङ्गश्च। ३। पुण्याहम्—ब्रह्मलिङ्गः। ४। प्रेम—ब्रह्मलिङ्गोऽपि। ५। कर्मविहित अनप्रत्ययान्तास्तु विशेष्यलिङ्गाः (५।१४६-१४८)। ६। भावविहिता एव बोध्याः। कारकविहितास्तु प्रायेण विशेष्यलिङ्गाः।

७। अकारान्तभिन्नाः, पात्रादीनि तु ब्रह्मलिङ्गा एव (६।५०, ५२), ६।५१, ७।१२६-२८, २१७ सूत्राणान्तु लक्ष्मीलिङ्गा ब्रह्मलिङ्गाश्च। ८। जनता-बन्धुता-खलिनी-हलिनी-गोत्रा-रथकड्या-प्रभृतयः (७।३४२-४३)लक्ष्मीलिङ्गाः वातूलस्तु (७।९७२) पुरुषोत्तमलिङ्गः। ९। लक्ष्मीलिङ्गा अपि भवन्ति।

संग्रहश्लोकाः

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः ।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥१॥

निमित्तमेकमित्यत्र विभक्त्या नाभिधीयते ।
तद्वदस्तु यदेकत्वं विभक्तिस्तत्र वर्त्तते ॥२॥

ऊर्द्ध्वं मानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्व्वतः ।
आयामस्तु प्रमाणं स्यात् सङ्ख्यावाह्या तु सर्व्वतः ३

अविकारो द्रव मूर्त्तं प्राणिस्थं स्वाङ्गमुच्यते ।
च्युतं च प्राणिनस्तत्तन्निभं च प्रतिमादिषु ॥४॥

आकृतिग्रहणा जातिर्लिङ्गानाञ्च न सर्व्वभाक् ।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रञ्च चरणैः सह ॥५॥

सत्वे निविशतेऽपैति पृथग् जातिषु दृश्यते ।
आधेयश्चाक्रियाजश्च सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुणः ॥६॥

इदमस्तु सन्निकृष्टं, समीपतरवर्त्ति चैतदो रूपम् ।
अदसस्तु विप्रकृष्टं, तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥७॥

नकारजावनुस्वारपञ्चमौ झलि धातुषु ।
सकारजः शकारश्चे रषाभ्यां टुस्तवर्गज ॥८॥

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
विहाराहारसंहारप्रहारप्रतिहारवत् ॥९॥

धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित्तमनुवर्त्तते ।
तमेव विशिनष्ट्यन्योऽनर्थकोऽन्यः प्रयुज्यते ॥१०॥

फलव्यापारयोरेकनिष्ठतायामकर्म्मकः ।
धातुस्तयोर्धर्म्मिभेदे सकर्म्मक उदाहृतः ॥११॥

धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात् ।
प्रसिद्धेरविवक्षानः कर्म्मणोऽकर्म्मिका क्रिया ॥१२॥

नीहृवहिकृषो ण्यन्ता,
दुहिब्रू पृच्छिभिक्षिचिरुधिशास्वर्थाः ।
पचियाचिदण्डिकृग्रह,-मथिजिप्रमुखा द्विकर्म्माणः १३

न्यादीनां कर्म्मणो मुख्यं प्रत्ययो वक्ति कर्म्मजः ।
नयते गौर्द्विजैर्ग्रामं भारो ग्राममथोह्यते ॥१४॥

गौणं कर्म्मदुहादीनां प्रत्ययो वक्ति कर्म्मजः ।
गौः पयो दुह्यतेऽनेन शिष्योऽर्थं गुरुणोच्यते ॥१५॥

वीजकालेषु सम्बद्धा यथा लाक्षारसादयः ।
वर्णादिपरिणामेन फलानामुपकुर्व्वते ॥१६॥

बुद्धिस्थादपि सम्बद्धात्तथा धातूपसर्गयोः ।
अभ्यन्तरिकृतो भेदः पदकाले प्रकाश्यते ॥१७॥

निपाताश्चोपसर्गाश्च धातवश्चेत्यमी त्रयः ।
अनेकार्थाः स्मृताः सर्व्वे पाठस्तेषां निदर्शनम् ॥१८॥

प्रपरापसमन्ववनिर्दुरभि,-व्यधिसूदतिनिप्रतिपर्य्यपयः
उप-आङिति विंशतिरेष सखे, उपसर्गगणः कथितः
कविभिः ॥१९॥

*** ॐ ***

अथोणादिप्रकरणम्

प्रथमः पादः

१। **कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्**। करोतीति कारुः, शिल्पी कारकश्च। 'आतो युक्' २७६१, वातीति वायुः। पायुर्गुदम्। जयत्यभिभवति रोगान्—जायुरौषधम्। मिनोति प्रक्षिपति देहे ऊष्माणमिति —मायुः पित्तम्। स्वादुः। साध्नोति परकार्य-साधुः। अश्नुते-आशु शीघ्रम्। 'आशुर्व्रीहिः पाटलः स्यात्'॥ २। **छन्दसीणः**। 'मा न आयौ'॥ ३। **दृसनिजनिचरिचटिभ्यो ञुण्**। दीर्यत इति दारु। 'स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियाम्'। जानु। जानुनी। इह 'जनिबध्योश्च' २५१२ इति न निषेधः, अनुबन्धद्वयसामर्थ्यात्। चारु रम्यम्। चाटु प्रियं वाक्यम्। मृगय्वादित्वात्कुप्रत्यये 'चटु' इत्यपि॥ ४। **किञ्जरयोः श्रिणः**। किं श्रृणातीति—किंशारुः सस्यशूकं बाणश्च। जरामेति—जरायुर्गर्भाशयः। 'गर्भाशयो जरायुः स्यात्'॥

अथोणादयः॥ १। **कृवापा**—डुकृञ् करणे, वा गतिगन्धनयोः, पा पाने, पा रक्षणे, जि अभिभवे, डुमिञ् प्रक्षेपणे, स्वद आस्वादने, साध संसिद्धौ, अशू व्याप्तौ। 'विश्वकर्म्मणि ना कारुस्त्रिषु कारकशिल्पिनोः इति मेदिनीकोशः। 'कारुः शिल्पिनि कारके' इति धरणिकोशस्तदेतदभिप्रेत्याह—**कारुरित्यादि**। आद्ये योगरूढिः, द्वितीये तु योगमात्रमिति विवेकः। अत एव द्वितीये धात्वर्थं प्रति कारकान्वयो भवत्येव। तथा च भट्टिः—'राघवस्य ततः कार्यं कारुर्वानरपुङ्गवाः। सर्व्ववानरसेनानामाश्वागमनमादिशत्॥' इति। पिबंत्यनेन तैलादिकमिति पायुर्गुदस्थानम्। 'गुदं त्वपानं पायुर्ना' इत्यमरः। पाति रक्षतीति विग्रहे रक्षकोऽपि तथा च मन्त्रः—'भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने' इति। 'स्वतवान् पायौ' इति नस्य रुत्वम्। 'अगदो जायुरित्यपि' इत्यमरः। पुंलिङ्गसाहचर्याज्जायुः पुंसि। मायुः पित्तं कफः श्लेष्मा इत्यमरः। गोपूर्वात्—गां—वाचं विकृतां मिनोति प्रक्षिपतीति **गोमायुः** शृगाल **इत्युज्ज्वलदत्तः**। वस्तुतस्तु मायुशब्दः **'यत्नशुर्मायुमकृत' 'गोमायुरेकः'** इत्यादौ वेदभाष्यकारादिभिस्तथैव व्याख्यातत्वात्। स्वदते रोचते इति **स्वादुः**। विशेष्यनिघ्नोऽयम्। एवं **साधुरपि**॥—**आशु शीघ्रमिति**। विलम्बाभावमात्रे क्लीबं, तद्विशिष्टद्रव्यपरत्वे तु त्रिलिङ्गम्। 'अथ शीघ्रं त्वरितम्' इत्युपक्रम्य 'क्लीबे शीघ्राद्यसत्त्वे स्यात्त्रिष्वेषां भेद्यगामि यत्' इत्यमरः। व्रीहौ पुंस्येव। 'उणादयो बहुलम्' इति बहुलवचनादन्यस्मादप्युण्भवति—रह त्यागे, गृहीत्वा चन्द्रं रहति—त्यजतीति **राहुः**। वस निवासे, वसत्यस्मिन्सर्वमिति सर्वत्रासौ वसतीति वा **वासुः**, वासुश्चासौ देवश्च वासुदेवः। वसुदेवस्यापत्यमित्यस्मिन्नर्थे 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' इत्यणि कृते वासुदेव इति व्युत्पत्त्यन्तरमिति दिक्॥ २। **छन्दसीणः**। उणनुवर्तते। एति गच्छतीत्यायुः॥—**मा न आयौ इति**। आयुशब्दो मनुष्यपर्यायेषु वैदिकनिघण्टौ पठितः। अत एव 'त्वमग्ने प्रथममायुमायवे' 'मा नस्तोके तनये मा न आयौ' इत्यादिमन्त्रेषु वेदभाष्ये तथैव व्याख्यातम्। अर्वाचीनास्तु 'छन्दसीणः' इति सूत्रं बहुलवचनाद्भाषायामपि प्रवर्तत इति स्वीकृत्य 'आयुर्जीवितकालो ना' इत्यमरग्रन्थे आयुशब्दमुकारान्तं व्याचख्युः॥ ननु 'एतेर्णिच्च' इत्युस्प्रत्यये सकारान्तो वक्ष्यमाण आयुःशब्दस्तु लोकवेदयोर्निर्विवाद एव। अत एव जटा आयुरस्येति विग्रहे 'गृध्रं हत्वा जटायुषम्' इति रामायणप्रयोगः, 'यदि त्रिलोकी गणनापरा स्यात्तस्याः समाप्तिर्यदि नायुषः स्यात्' इति श्रीहर्षप्रयोगश्च सगच्छते। तथा च 'आयुर्जीवितकालो ना' इत्यत्रायुःशब्दः सकारान्त इत्येव व्याख्यायतां किमुकारान्ताभ्युपगमेनेति चेत्। अत्राहुः—सकारान्त आयुः शब्दो नपुंसक इति तस्य पुंलिङ्गता नेत्याशयेन तथोक्तमिति। अन्ये तु—'छन्दसीणः' इति सूत्रस्य भाषायां प्रवृत्तभावे 'मा वधीष्ट जटायुं माम्' इति भट्टिप्रयोगः, 'तटीं विन्ध्यस्याद्रेरभजत जटायोः प्रथमजः' इति विन्ध्यवर्णने अभिनन्दोक्तप्रयोगश्च न संच्छेतेत्याहुः। वस्तुतस्तु जटां जाति प्राप्नोतीति जटायुः। मृगय्वादित्वात्कुः। आयातीत्यायुः। एवं च 'जटायुषा जटायुं च विद्यादायुं तथायुषा' इति द्विरूपकेशः, 'वायुना जगदायुना' इति वर्णविवेकश्च सुसाध इति दिक्॥ ३। **दसनि**। दृ विदारणे, षणु दाने, जन जनने चर गतौ, चट भेदने॥—**दार्विति**। 'काष्ठं दार्विन्धनं त्वेधः' इत्यमरः॥—**चाट्विति**। 'चटु चाटु प्रियं वाक्यम्' इति माघः। माघे तु नपुंसकमपि **दर्शितम्**। 'चाटु चाकृतकसंभ्रममासाम्' इति॥ ४ **किंजरयोः**। श्रृ हिंसायाम् इण् गतौ, आभ्यां किंजरयोरुपपदयोर्ञुण् स्यात्॥—**सस्येति**। 'किंशारुर्ना सस्यशूके विशिखे कङ्कपक्षिणि

५। **त्रो रश्चलः**। तरन्त्यनेन वर्णा इति तालुः॥ ६। **कृके वचः कश्च**। कृकेन—गलेन वक्तीति कृकवाकुः। 'कृकवाकुर्मयूरे च सरटे चरणायुधे' इति विश्वः॥ ७। **भृमृशीतॄचरित्सरितनिधनिमिमस्जिभ्य उः**। भरति बिभर्ति वा भरुः स्वामी हरश्च। म्रियन्तेऽस्मिन् भूतानि मरुर्निर्जलदेशः। शेते शयुरजगरः। तरुर्वृक्षः। चरन्ति भक्षयन्ति देवता इममिति चरुः। त्सरुः खड्गादिमुष्टिः। तनु स्वल्पम्। 'स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः'। धनुः शस्त्रविशेषः। 'धनुषा च धनं विदु'। 'धनुरिवाजनि वक्रः' इति श्रीहर्षः। मयुः किंनरः। 'मद्गुः पानीयकाकिका' इति रभसः। न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम्। जश्त्वेन सस्य दः॥ ८। **अणश्च**। लवलेशकणाणवः चात्कटिवटिभ्याम्। कटुः। वटुः॥ ९। **धान्ये णित्**। धान्ये वाच्येऽण उप्रत्ययः स्यात्, स च नित्। नित्त्वादाद्युदात्तः। 'प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे'। 'व्रीहिभेदस्त्वणुः पुमान्'। निद्ग्रहणं 'फलिपाटि—'१८ इत्यादि सूत्रमभिव्याप्य संबध्यते॥ १०। **शॄस्वृस्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिबन्धिमनिभ्यश्च**। शृणातीति शरुः। 'शरुरायुधकोपयोः'। स्वरुर्वज्रम्। स्नेहुर्व्याधिः। चन्द्र इत्यन्ये। त्रपु सीसम्। 'पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः'। 'वसुर्ह्रदेऽग्नौ योक्त्रेंऽशौ वसु तोये धने मणौ'। हनुर्वक्त्रैकदेशः। क्लेदुश्चन्द्रः। बन्धुः। मनुः। चात्

इति मेदिनीकोशः॥ ५ **त्रो रश्च लः**। तॄ प्लवनतरणयोः। त्रः रश्चेति च्छेदः। केचित्तु तॄ ऋ इति प्रश्लिष्य द्वयोरपि सवर्णदीर्घे त्रौ, तयोस्त्रोरित्येवत्वा ऋ गतावित्यस्मादपि त्रुण्, रस्य ल इति व्याख्याय इयर्ति अर्यते वा—आलुः, शाकविशेषो घटी चेत्याहुः। 'कर्करालुर्गलन्तिका'॥ ७। **भृमृशी—**। भृञ् भरणे, मृङ् प्राणत्यागे, शीङ् स्वप्ने, तॄ प्लवनतरणयोः, चर गतौ—अयं भक्षणेऽपि, त्सर छद्म गतौ, तनु विस्तारे, धन धान्ये, डुमीञ् प्रक्षेपणे, टुमस्जो शुद्धौ॥—**भरुरिति**। 'भरुः स्वर्णे हरे पुंसि' इति मेदिनी 'भरुर्भर्तृकनकयोः' इति हेमचन्द्रः।—**शयुरिति**। 'अजगरे शयुर्वाहस इत्युभौ' इत्यमरः॥—**तरुरिति**। तरन्ति नरकमनेन रोपकाः॥—**चरुरिति**। अनवस्रावितान्तरूष्मपक्व ओदन या ज्ञकाः। त्रिवृच्चर्वधिकरणे ऽप्येवमुक्तम्। 'उगवादिभ्यो यत्' इति सूत्रे कैयटस्त्वाह—स्थालीवाची चरुशब्दस्तात्स्थ्यादोदने भाक्त इति 'तनुः काये त्वचि स्त्री स्यात्रिष्वल्पे विरले कृशे' इति मेदिनी। 'धनुः पुमान् प्रियालद्रौ राशिभेदे शरासने' इति नान्ते मेदिनी। विश्वप्रकाशमुदाहरति—**धनुषा चेत्यादि**। धनुषा सार्धं धनुं विदुरित्यर्थः। 'स्यात्तनुस्तनुषा सार्धम्' इत्यतः सार्धमित्यनुषज्यते। 'शुद्धवंशजनितोऽपि गुणस्य स्थानतामनुभवन्नपि शक्तः। क्षिप्नुरेनमृजुमाशु विपक्षं सायकम्' इति श्रीहर्षश्लोकशेषः। 'धनुर्वंशविशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति' इति धन्वन्तरिः। इह पूर्वत्र च धनुरिति उकारान्तः सकारान्तो वा बोध्यः। न च सकारान्तधनुःशब्दो नपुंसक एवेति शङ्क्यम्। 'अथास्त्रियाम्। धनुश्चापौ' इत्यमरोक्त्या तस्यापि पुंस्त्वात्॥—**किंनर इति**। 'तुरङ्गवदनो मयुः' इत्यमरः। 'मीनातिमिनोति'—इत्यात्व तु नेह, बाहुलकात्। 'मयुस्तुरंगवदने' मृगेऽपि मयुरिष्यते' इति विश्वः। मज्जति पानीये इति मद्गुः॥ ८ **अणश्च**। अण शब्दे अस्मादुप्रत्ययः स्यात्॥—**चादिति**। कटे वर्षादौ, वट वेष्टने। कटति रसनामिति कटुः। 'कटुः स्त्री कटुरोहिण्यां लताराजिकयोरपि नपुंसकमकार्ये स्यात्पुंलिङ्गो रसमात्रके। त्रिषु तद्वत्सुगन्ध्योश्च मत्सरेऽपि स्वरेऽपि च' इति मेदिनी॥—**वटुरिति**। वटति वटुः। 'वटुर्द्विजसुतः स्मृतः' इति संसारावर्तः। नटवटुरिति तूपचारात्॥

९ **अभिव्याप्येति**। यद्यपि 'फलिपाटि—' इति सूत्रं यावदनुवर्तत इति न्यायग्रन्थेन 'मर्यादीकृत्य' इत्यपि प्रतीयते तथाप्यभिव्याप्येत्येवोचितम्, 'पिबत सोम्यं मधुः' इत्यादौ मधुशब्दस्याद्युदात्तादर्शनात्। 'वोतो गुणवचनात्' इति सूत्रे हरदत्तेनाप्यभिव्याप्येति स्पष्टमभिधानाच्चेति भावः॥ १० **शॄस्वृस्निहि**। शॄ हिंसायाम्, स्वृ शब्दोपतापयोः स्निह उपतापे, त्रपूष् लज्जायाम्, असु क्षेपणे, वस निवासे, हन हिंसागत्योः क्लिदू आर्द्रीभावे, बन्ध बन्धने, मन ज्ञाने॥—**शरुरिति**। 'शरुः कोपे शरे वज्रे' इति हेमचन्द्रः॥—**स्वरुर्वज्रमिति**। तद्धि अग्निं दृष्ट्वा लपते लज्जत इव। 'त्रपु सीसकरङ्गयोः इति मेदिनी। अस्यन्ति क्षिपन्ति शरीरमित्यसवः प्राणाः॥—**हनुरिति**। 'हनुः पुमान्परो गण्डात्' इति वररुचिकोशः। स्त्रीलिङ्गोऽप्ययम्। 'हनुर्हट्टविलासिन्यां नृत्यारम्भे गदेस्त्रियाम्। द्वयोः कपोलावयवे' इति मेदिनीकोशः। अतिशायने मतुप्। हनुमान्। 'अन्येषामपि दृश्यते' इति दृशिग्रहणात्पाक्षिको दीर्घः, हनूमान्। स्नेहेन बध्नातीति बन्धुः

'बिदि अवयवे'। बिन्दुः॥ ११। स्यन्देः संप्रसारणं धश्च। 'देशे नदविशेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना सरिति स्त्रियाम्' इत्यमरः॥ १२। उन्देरिच्चादेः। उनत्ति इन्दुः॥ १३। ईषेः किच्च। ईषेरुः स्यात्स च कित् आदेरिकारादेशश्च। ईषते= हिनस्ति ईषुः शरः। 'इषुर्द्वयोः'॥ १४। स्कन्देः सलोपश्च। कन्दुः॥ १५। सृजेरसुम् च चात्सलोप उप्रत्ययश्च। रज्जुः॥ १६। कृतेराद्यन्तविपर्ययश्च। ककारतकारयोर्विनिमयः। तर्कुः सूत्रवेष्टने। १७। नावञ्चेः। न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम्। नियतमञ्चति न्यङ्कुर्मृगः॥ १८। फलिपाटिनमिमनिजनां गुक्पटिनाकिधयश्च। फलेर्गुक्, फल्गु। पाटेः। पटिः, पाटयतीति पटुः। नम्यतेऽनेने नाकुर्वल्मीकम् मन्यते इति मधु। जायते इति जतु॥ बलेर्गुक्च। 'वल संवरणे' वल्गुः॥ २०। शः कित्सन्वच्च। श्यतेरुः स्यात्स च कित् सन्वच्च। शिशुर्बालः॥ २१। यो द्वे च। ययुरश्वोऽश्वमेधीयः। 'सन्वत्' इति प्रकृते द्वेग्रहणमित्वनिवृत्त्यर्थम्॥ २२। कुर्भ्रश्च। बभ्रुः। 'बभ्रुर्मुन्यन्तरे विष्णौ बभ्रू नकुलपिङ्गलौ'। चादन्यतोऽपि—चक्रुः कर्ता। जघ्नुर्हन्ता। पपुः पालकः॥ २३। पॄभिदिव्यधिगृधिधृषिभ्यः। कुः स्यात् पुरुः। भिनत्ति भिदुर्वज्रम्। 'ग्रहिज्या'—२४१२ इति संप्रसारणम्, विरहिणं विध्यति विधुः। 'विधुः' शशाङ्के कर्पूरे हृषीकेशे च राक्षसे'। गृधुः कामः। धृपुर्दक्षः।

प्रज्ञादित्वाद्बान्धवः। 'बन्धुर्बन्धूकपुष्पे स्याद्बन्धुर्भ्रातरि बान्धवे' इति विश्वः। मनुर्नादिराजो मन्त्रश्च॥ ११ स्यन्देः—। स्यन्दू प्रस्रवणे॥ १२ उन्देः—। उन्दी क्लेदने॥ १३ ईषेः। ईष गतिहिंसादानेषु॥ १४ स्कन्देः स्कन्दिर गतिशोषणयोः॥—कन्दुरिति। स्कन्दत्यस्मिञ्जनताप इति व्युत्पत्त्या भोगस्थानमिति केचित्। अन्ये तु—स्कन्दति शोषयतीति कन्दुर्लोहादिपात्रमित्याहुः। अत एव 'क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना कन्दुर्वा स्वेदनी स्त्रियाम्' इत्यमरः। 'कन्दुर्वा ना' इति पूर्वेणान्वयाद्वा पुमानित्यर्थः॥ १५ सृजेः। सृज विसर्गे। सृजतीति रज्जुः, स्त्रियाम्। आगमसकारस्य श्चुत्वेन शः। जश्त्वेन जः। सृजेरजुम् चेति सुवचमिति नव्याः 'रज्जुर्वेण्यां गुणेऽपि च' इति मेदिनी॥ १६ कृतेराद्यन्त—। कृती छेदने॥—तर्कुरिति। कृन्त्यतेऽनेनेति तर्कुः सूत्रवेष्टनयन्त्रविशेषः। 'तर्कुटी सूत्रला तर्कुः' इति हारावली॥ १७ नावञ्चेः। अञ्चु गतौ। 'न्यङ्कुर्मुनौ मृगे पुंसि' इति मेदिनी॥ १८ फलिपाटि। फल निष्पत्तौ, पट गतौ, ण्यन्तः। णम प्रह्वत्वे शब्दे, मन ज्ञाने, जनी प्रादुर्भावे, एभ्य उः स्यादेषां च यथाक्रमं गुगागमः पटि नाकि ध त इत्यादेशाश्च भवन्ति। इह एकापि षष्ठी विषयभेदाद्भिद्यते। गुगागमे हि फलेरवयवषष्ठी पटचाद्यादेशचतुष्टयविधौ तु पाटचादिभ्यः स्थानषष्ठी, सापि धतयोर्विधौ अन्ता—इत्युपसंह्रियत इति विवेकः। अनागमकानां सागमका आदेश इति पक्षे तु स्थानषष्ठ्येवेति बोध्यम्। 'फल्गवसारेऽभिधेयवत्। नदीभेदे फल्ग्वां स्त्री' इति मेदिनी। —नाकुर्वल्मीकमिति। 'वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुंनपुंसकम्' इत्यमरः॥—मधुवति। 'मधुश्चैत्रे च दैत्ये च मद्ये पुष्परसे मधु' इति हट्टचन्द्रः। 'मकरन्दस्य मद्यस्य माक्षिकस्यापि वाचकः। अर्धचादिगणे पाठात्पुंनपुंसकयोर्मधुः' इति शाश्वतः॥ १९ वल संवरण इति। दन्त्योष्ठ्यादिः। 'वल्गुः' स्याच्छगले पुंसि सुन्दरे चाभिधेयवत्' इति मेदिनी। यत्तु उज्ज्वलदत्तेन 'बलेर्गुक् च' इति ओष्ठ्यादि पठित्वा बल प्राणने इत्युपन्यस्तं तल्लक्ष्यविरोधादुपेक्ष्यम्। अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे' इत्यादौ दन्त्योष्ठ्यापाठस्य निर्विवादत्वात्॥ २० शः कित्।—शो तनूकरणे, अस्मादुप्रत्ययः 'आदेच उपदेशे' इत्वात्वं, द्वित्व, सन्यतः इत्यभ्यासस्येत्वम्, आतो लोप इटि च' इत्याकारलोपः, शिशुः॥ २१ यो द्वे च। या प्रापणे॥ २२ कुर्भ्रश्च भृञ् भरणे, अस्मात्कुप्रत्ययो धातोर्द्वित्वं च। भरतीति बभ्रुः। धरणिकोशस्थमाह—बभ्रुरित्यादि। 'बभ्रुर्वैश्वानरे शूलपाणौ च गरुडध्वजे। विशाले नकुले पुंसि पिङ्गले स्यामिधेयवत्' इति मेदिनीकोशः।— चादन्यतोऽपिति। भ्रः कुश्चेति वक्तव्ये प्राक् प्रत्ययनिर्देशादित्येके। भ्रश्चेति प्रकृतिसंसृष्टेन चकारेण प्रकृत्यन्तरसमुच्चयादित्यन्ये॥ २३ पृभिदि। पॄ पालनपूरणयोः, भिदिर् विदारणे, व्यध ताडने, गृधु अभिकाङ्क्षायाम्, ञिधृषा प्रागल्भ्ये॥—पुरुरिति। कुप्रत्यये परतः 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' इत्युत्वे रपरत्वम्। 'पुरुः प्राज्येऽभिधेयवत्। पुंसि स्याद्देवलोके च नृपमेदपरागयोः' इति मेदिनी। 'विधुः शशाङ्के' इत्यादिस्तु विश्वकोशः। इह सूत्रे हृषिहृषिभ्यश्चेति पठित्वा हृषुर्हर्षः। 'सूर्याग्निशनिराहवोऽपि हृषवः' इति केचित्॥

२४। **कृग्रोरुच्च**। करोतीति कुरुः। गृणातीति गुरुः॥ २५। **अपदुःसुषु स्थः**। 'सुषामादिषु च' १०२४ इति षत्वम्, अपष्ठु प्रतिकूलम्। दुष्ठु। सुष्ठु॥ २६। **रपेरिच्चोपधायाः**। अनिष्टं रपतीति रिपुः॥ २७। **अजि-दृशिकम्यमिपशिबाधामृजिपशितुक्धुक्दीर्घहकाराश्च**। अर्जयति गुणान् ऋजुः। सर्वानविशेषेण पश्यतीति पशुः। कन्तुः कन्दर्पः। अन्धुः कूपः। 'पांशुर्ना न द्वयो रजः'। तालव्या अपि दन्त्याश्च सम्बसूकरपांसवः'। बाधते इति बाहुः। 'बाहु स्त्रीपुंसयोर्भुजः'॥ २८। **प्रथिम्रदिभ्रस्जां संप्रसारणं सलोपश्च**। त्रयाणां कुः संप्रसारणं भ्रस्जेः सलोपश्च। पृथुः। मृदुः। न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम्, भृज्जति तपसा भृगुः॥ २९। **लङ्घि-बंह्योर्नलोपश्च**। लघुः। ***बालमूललघ्वलमङ्गुलीनां वा लो रत्वमापद्यते**। रघुर्नृपभेदः। बहुः। ३०। **उर्णोतेर्नुलोपश्च**। उरुः सक्थि॥ ३१। **महति ह्रस्वश्च**। उरु महत्॥

३२। **श्लीषेः कश्च** श्लिष्यतीति श्लिकुर्भृत्यः, उद्यतो ज्योतिश्च। ३३। **आङ्परयो खनिशृभ्यां डिच्च**। आ खननीति आखुः। परं शृणातीति परशुः। पृषोदरादित्वादकारलोपात्पर्शुरपि॥ ३४। **हरिमितयोर्द्रुवः**। 'द्रु गतौ' अस्मात् हरिमितयोरुपपदयोः कुः स च डित् हरिभिर्द्रूयते हरिद्रुर्वृक्षः। मितं द्रवति मितद्रुः समुद्रः॥ ३५। **शते च**। शतधा द्रवति शतद्रुः। बाहुलकात्केवलादपि, द्रवत्यूर्ध्वमिति द्रुर्वृक्षः शाखा च। तद्वान् द्रुमः॥ ३६। **खरुशङ्कुपीयुनीलङ्गुलिगु**। पञ्चैते कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते खनते रेफश्चान्तादेशः, खरुः, कामः क्रूरो मूर्खोऽश्वश्च। 'शङ्कुर्ना कीलशत्ययो'। पिबतेरीत्वं युगागमश्च

२४। **कृग्रोरुच्च**। डुकृञ् करणे, गृ शब्दे. आभ्यां कुः स्यादुकारोऽन्ता देशश्च। 'उरण रपरः'। 'कुरुर्नृपान्तरे भक्ते पुमान् पुंभूम्नि नीवृत्ति' इति मेदिनी॥ २५। अपदुःसु। ष्ठा गतिनिवृत्तौ।—**सुषामेत्यादि** एतच्च न्यासाद्यनुरोधेनोक्तम्। वार्तिककृता तु स्थास्थिन्स्थूनामुपसंख्यानम्। 'अपष्ठुः पुंसि बाले च वामे स्यादन्यलिङ्गकः' इति मेदिनी। वामे—प्रतिकूले। एषां त्रयाणां मृगय्वादिपाठेन सिद्धत्वात्सूत्रमिदं न्यासकारस्य संमतमिति रक्षितः॥ २७। **अजिदृशि**। 'अर्ज अर्जने' अस्य ऋजिरादेशः। दृशेः पशिरादेशः, कमेस्तुगागमः। अम रोगे गत्यादौ वा, अस्य धुगागमः। पशि नाशने सौत्रो धातुरस्य दीर्घः। बाधृ लोडने, अस्य हादेशः। षड्भ्योऽपि कुप्रत्ययः स्यादित्यर्थः।—**अविसेषेणेति**। चादिगणे पश्विति पठितम्। 'पशु दृश्यर्थमव्ययम्' इति धरणिः। कन्तुः कन्दर्पः। 'कन्तुर्मकराङ्कः' इति त्रिकाण्डशेषः॥—**पांशुरिति**। पडि पसि नाशने चुरादिर्दन्त्यान्तः॥—**स्त्रीपुंसयोरिति**। उक्तं ह्यमरणे 'द्वौ परौ द्वयोः। भुजबाहुः' इति। परौ द्वौ भुजबाहुशब्दौ द्वयोः स्त्रीपुंसयोरिति तदर्थः। अकारान्तोऽप्ययम्। अत एव 'बाहोऽश्वभुजयोः पुमान्' इति दामोदरः। 'बाहा भुजे पुमान्मानभेदाश्ववृषवायुषु' इति मेदिन्यां टावन्तोऽप्ययम्॥ **२८ प्रथिम्रदि—**। प्रथ प्रख्याने, म्रद मर्दने, भ्रस्ज पाके। प्रथते इति पृथुः। 'पृथु स्यान्महति त्रिषु। स्वक्पत्र्यां कृष्णजीरेऽथ पुमाग्नौ नृपान्तरे' इति मेदिनी। म्रदितुं शक्यतेऽकठिनत्वादिति मृदुः कोमलः। भृगुः शुक्रे प्रपाते च जमदग्नौ पिनाकिनि' इति विश्वः। २९। **लङ्घि**। लघि गतौ, बहि महि वृद्धौ॥—**लघुरिति**। 'पृक्कायां स्त्री लघुः क्लीबं शीघ्रे कृष्णागुरुण्यपि' इति त्रिकाण्डशेषः। 'लघुरगुरौ च मनोज्ञे निःसारे वाच्यवत्क्लीबम्। शीघ्रे कृष्णागुरुणि च पृक्कानामौषधौ स्त्रियाम्' इति मेदिनी॥—**नृपभेद इति**। एतेन 'अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थ-मर्थविच्चकार नाम्ना रघुमात्मसंभवम्' इति कालिदासवचनं व्याख्यातम्॥—**बहुरिति**। 'बहु स्याच्त्र्यादि-संख्यासु विपुले त्वभिधेयवत्' इति मेदिनी॥ ३० **ऊरुरिति**। 'सक्थि क्लीबे पुमानूरुः' इत्यमरः। ऊर्णयते आच्छाद्यते इत्यूरुः। **कर्म्मणि** प्रत्ययः॥ **३१। ऊरु महदिति**। कर्तरि प्रत्ययः॥ **३२ श्लिषेः—**। श्लिष आलिङ्गने अस्मात्कुप्रत्ययः कश्चान्तादेशः॥—**उद्यत इति**। स हि यावत्कार्यं श्लिष्यति—लगति। व्याप्रियति इति यावत्॥ **३३ आङ्परयोः**। खनु अवदारणे, शृॄ हिंसायाम्॥—**पर्शुरपीति**। 'पर्शुः परशुना सह' इति विश्वः॥ **३४ हरिमितेति**। द्रु गतौ, अस्माद्धरिमितयोरुपपदयोः कुः स्यात्स च डित्॥—**हरिद्रुर्वृक्षः इति**। दारुहरिद्रा इत्येके। शतद्रुर्नदीभेदः। 'शतद्रुस्तु शुतुद्रिः स्यात्' इत्यमरः॥—**तद्वानिति** 'द्युद्रुभ्यां मः' इति मः॥ **३६ खरुशङ्कु**। खनु अवदारणे, शकि शङ्कायाम्॥—**काम इत्यादि**। खरुः पतिवरा कन्येत्यपि बोध्यम्। खरुर्दर्पे हरे दैत्ये हये श्वेते तु वाच्यवत्' इति विश्वत्रिकाण्डशेषौ। शङ्कते

पीयुर्भासः कालः सुवर्णं च। नियूर्वात् 'लगि गतौ' अस्मात्कुत्वं नेर्दीर्घश्च, नीलङ्गुः क्रिमिविशेषः शृगालश्च। नीलाङ्गुरिति पाठान्तरम्। तत्र धातोरपि दीर्घः। 'लगे सङ्गे' अस्य अत इत्वं च, लगतीति लिगु चित्तम्। लिगुर्मूर्खः। ३७। **मृगय्वादयश्च**। एते कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। मृगं यातीति मृगयुर्व्याधः देवयुर्धार्मिकः। मित्रयुर्लोकयात्राभिज्ञः। आकृतिगणोऽयम्॥ ३८। **मन्दिवाशिमथिचतिचङ्कयङ्किभ्य उरच्**। मन्दुरा वाजिशाला। वाशुरा रात्रिः। मथुरा। चतुरः। चङ्कुरो रथः। अङ्कुरः। खर्जूरादित्वात् 'अङ्कूरः' अपि॥ ३९। **व्यथेः संप्रसारणं किच्च**। 'विथुरश्चोररक्षसोः'॥ ४०। **मकुरदर्दुरौ**। मकुरो दर्पणः। बाहुलकान्मुकुरोऽपि। 'दृ विदारणे'। धातोर्द्विवचनमभ्यासस्य रुक् किलोपश्च।

'दर्दुरस्तोयदे भेके वाद्यभाण्डाद्रिभेदयोः। दर्दुरा चण्डिकायां स्याद्ग्रामजाले च दर्दुरम्"॥ इति विश्वः। ४१। **मद्गुरादयश्च**। उरजन्ता निपात्यन्ते। माद्यतेर्गुक्, मद्गुरो मत्स्यभेदः। 'कर्बु वर्णे' रुगागमः, 'कर्बुरः श्वेतरक्षसोः'। बध्नातेः खर्जुरादित्वादूरोऽपि, 'बन्धूरबन्धुरौ स्यातां नम्रसुन्दरयोस्त्रिषु' इति रन्तिदेवः। **(ग) कुकतेर्वा कुक् च**। कुक्कुरः। कुकुरः॥ ४२। **असेरुरन्**। असुरः। प्रज्ञाद्यण, आसुरः॥

अस्मादिति शङ्कुः। 'शङ्कुः कीले शरे शस्त्रे संख्यापादपभेदयोः। यादभेदे च पापे च स्थाणावपि च दृश्यते, इति विश्वः॥—**पीयुरिति**। 'पीयुः काले रवौ घोरे' इति मेदिनी॥—**क्रिमिविशेष इति**। **नीलङ्गुः** क्रिमिजातौ स्याद्भ्रमरालीप्रसूनयोः' इति विश्वः। 'नीलङ्गुः स्यात्क्रमौ पुंसि भ्रमरात्यां तु योषिति' इति मेदिनीकारः॥—**पाठान्तरमिति**। 'नीलङ्गुरपि नीलाङ्गुः' इति विश्वः॥—**धातोरपीति**। केचित्तु नील-शब्दे उपपदे गमेष्टिलोपः, उपपदस्य मुम्, दीर्घश्च पाक्षिको निपात्यते इत्याहुः। '**लिगु चित्ते नपुंसकम्**' इति वररुचिः॥ ३७ **मृगय्वादयश्च**। 'मृगयुः पुंसि गोमायौ व्याधे च परमेष्ठिनि' इति मेदिनी। 'मृगयुर्ब्रह्मणि ख्यातो गोमायुव्याधयोरपि' इति विश्वः। 'देवयुर्वाच्यलिङ्गः स्याद्धार्मिके लोकयात्रिके' इति मेदिनी॥—**आकृतिगण इति**। तेन पील प्रतिष्टम्भे, अस्मात्कुः। 'पीलुर्गजे द्रुमे काण्डे परमाणुप्रसूनयोः' इति विश्वः। **भाट्टास्तु**—पीलुशब्दस्य वृक्षे आर्यप्रसिद्धिर्गजे तु म्लेच्छप्रसिद्धिरित्याश्रित्य व्यवजह्रुः। पडि गतौ, अस्मात्कुः बातोर्वृद्धिश्च। पाण्डुः। कडि मदे—कण्डुरित्यादि बोध्यम्॥ ३८ **मन्दिवाशि**। मदि स्तुत्यादौ, वाशृ शब्दे, मथे विलोडने, चते याचने, चङ्क इति सौत्रो धातुः, अकि लक्षणे॥—**वाशुरा रात्रिरिति**। वाश्यन्ते अस्यामिति विग्रहः। वाशुरो गर्दभ इत्यन्ये। 'वाशुरा वाशितारात्र्योः' इति मेदिनीहेमचन्द्रौ॥ —**चङ्कुर इति**। 'चङ्कुरः स्यन्दने वृक्षे' इति मेदिनी। 'अङ्कुरो रुधिरे लोम्नि पानीयेऽभिनवोद्भिदि' इति।—**खर्जूरादित्वादिति**। ऊरप्रत्ययोऽपीति भावः। 'अङ्कुरोऽङ्कूर एव च' इति विश्वप्रकाशः। ३९ **व्यथेः**—। व्यथ भयसंचलनयोरस्मादुरच् कित्स्याद्धातोः संप्रसारणं च। दशपाद्यां तु 'व्यथेः सप्रसारण धः किच्च' इति सूत्रं पठित्वा धकारमन्तादेशं विधाय विधुरोऽनग्निक इत्युदाहृतम्। माधवप्रसादकारादिभिरपि तदेवानुसृतं। न त्वेतद्युक्तम्। 'त्वमेषां विथुरा शवांसि' 'अथ विद्धा विथुरेणाचिदस्त्रा' इत्यादिमन्त्रेषु थवा-राठस्य निर्विवादत्वात्। यदपि माधवेनोक्तं—विदिभिदिच्छिदिरित्यत्र 'व्यथेः सप्रसारण च' इति वचनात्कुरचि श्रान्तं रूपमिति, तदपि स्थवीयः। कुरज्विधायके सूत्रे व्यथेरुपसंख्यानस्याप्रसिद्धत्वात्। तस्मादिह 'धः किच्च' इति सूत्रे वृत्तिपदमञ्जर्योस्तथैवोक्तत्वात्। इह व्यथेः किच्चेत्येवास्तु 'ग्रहिज्या—' इत्यनेन संप्रसारणं स्यादेवेति न भ्रमितव्यम्। ग्रहिज्यादिषु व्यधिर्वंचतुर्थो न त्वयमिति निष्कर्षः॥ ४० **मुकुर इति**। मकि मण्डने, अस्मादुरच् नलोपश्च बाहुलकादिति धातरूपधायाः पक्षे उकार इति भावः। '**मकुरो मुकुरोऽपि च**' इति विश्वः। 'मकुरः स्यान्मुकुरवद्दर्पणे बकुलद्रुमे। कुलालदण्डे' इति मेदिनी॥—**धातोर्द्विवचनमिति**। केचित्तु गुणो दुगागमश्च निपात्यत इत्याहुः॥—**ग्रामजाले चेति**। यामजालेति पाठा-न्तरम्॥ ४१ **मद्गुरादयश्च**। मदी हर्षे॥—**कर्बुर इति**। 'कर्बुरं सलिले हेम्नि कर्बुरः पापरक्षसोः। कर्बुरा कृष्णवृन्तायां शबले पुनरन्यवत्' इति मेदिनी॥—**बन्धूरबन्धुराविति**। बन्ध बन्धने॥ (ग) **कुक्कुर इति**। कुक आदाने। कुक्कुरः कुकुरो मतः' इति हट्टचन्द्रः। 'कुक्कुरः सारमेये ना ग्रन्थिपर्णे नपुंसकम्' इति मेदिनी। तत सातत्यगमने, तादिदीर्घः। आतुरः। वा गति गन्धनयोः। गुगागमः। 'वागुरा मृगबन्धिनी इत्यादिरपि ज्ञेयम्॥ ४२ **असेः**। असु क्षेपणे॥

४३। **मसेश्च**। पञ्चमे पादे 'मसेरूरन्' (ड) ३८१ इति वक्ष्यते।

मसूरा मसुरा व्रीहिप्रभेदे पण्ययोषिति। मसूरा मसुरा वा ना वेश्याव्रीहिप्रभेदयोः।

मसूरी पादरोगे स्यादुपधाने पुनः पुमान्। मसूरमसुरौ च द्वौ, इति विश्वः॥

४४। **शावशेरामौ**। 'शु' इति आश्वर्थे। श्वशुरः। 'पतिपत्न्योः प्रसूः श्वश्रूः श्वशुरस्तु पितातयोः' इत्यमरः॥ ४५। **अविमह्योष्टिषच्**। अविषः। महिषः॥ ४६। **अमेर्दीर्घश्च**। 'आमिष त्वस्त्रियां मांसे तथा स्याद्भोग्य-वस्तुनि॥ ४७। **रुहेर्वृद्धिश्च**। 'रङ्कुशम्बररौहिषाः'। 'रौहिषो मृगभेदे स्याद्रौहिषं च तृणं मतम्' इति संसारवर्त्तः॥ ४८। **तवेर्णिद्वा**। तव' इति सौत्रो धातुः। 'तविषताविषावब्धौ स्वर्गे च'। स्त्रियां तविषी नदी देवकन्या भूमिश्च। 'तविषी बलम्' इति वेदभाष्यम्॥ ४९। **नञि व्यथेः**। 'अव्यथिषोऽब्धिसूर्ययोः'। अव्यथिषी धरारात्र्योः॥ ५०। **किलेर्बुक् च**। किल्बिषम्॥ ५१। **इषिमदिमुदिखिदिच्छिदिभिदिमन्दि-चन्दितिमिमिहिमुहिमुचिरुचिरुधिवन्धिशुषिभ्यः किरच्**। इषिरोऽग्निः। मदिरा सुरा। 'मुदिरः कामुकाभ्रयोः' इति विश्वमेदिन्यौ। खिदिरश्चन्द्रः। 'छिदिरोऽसिकुठारयोः'। भिदिरं वज्रम्। मन्दिरं गृहम्। स्त्रियामपि 'मन्दिरं मदिराऽपि स्यात्' इति विश्वः। 'चन्दिरौ चन्द्रहस्तिनौ'। तिमिरं तमोऽक्षिरोगश्च। मिहिरः सूर्यः 'मुहिरः काम्यसभ्ययोः'। मुचिरो दाता। रुचिरम्। रुधिरम्। बधिरः 'शुष शोषणे' शुषिरं छिद्रम्। शुष्कमित्यन्ये॥ ५२। **अशेर्णित्**। आसिरा वह्निरक्षसोः॥ ५३। **अजिरशिशिरशिथिलस्थिरस्फिरस्थविर-खदिराः**। अजेर्वीभावाभावः, अजिरमङ्गणम्। शशेरुपधाया इत्वम्, शिशिरः स्यादृतोर्भेदे तुषारे शीतले-ऽन्यवत्। 'श्रथ मोचने' उपधाया इत्वं रेफलोपः, प्रत्ययरेफस्य लत्वम्, शिथिलम्। स्थास्फाय्योष्टिलोपः, स्थिरं निश्चलम्। स्फिरं प्रभूतम्। तिष्ठतेर्वुक् ह्रस्वत्वं च, स्थविरः। खदिरः। बाहुलकात् शीङो वुक्

---

४३ **मसेश्च**। मसी परिणामे। 'मसूरा मसुरा वा ना वेश्याव्रीहिप्रभेदयोः। मसूरी पापरोगे स्यादुपधाने पुनः पुमान्' इति मेदिनी॥ ४४। **शावशेः**। 'शु' इति कृताकारलोपः—आशुशब्द, तस्मिन्नुपपदे आशौ गम्यमानायाम् अशू व्याप्तावित्यस्माद्धातोरुरन्स्यात्, श्वशुरो दम्पत्योः पिता। 'पतिपत्न्योः प्रसूः श्वश्रूः श्वशुरस्तु पिता तयोः' इत्यमरः॥ ४५ **अवि**। अव रक्षणादौ। मह पूजायाम्॥— **अविष इति**। राजा समुद्रश्च। महिषो महान्। 'तुरीयं धाम महिषो विवक्ति'। 'उत माता महिषमन्ववेनत्'। टित्त्वान्ङीप्। महिषी राजपत्नी॥ ४७ **रुहेः**। रुह वीजजन्मनि प्रादुर्भावे च। 'रौहिषो मृगभेदः स्याद्रौहिषं च तृणं मतम्' इति संसारावर्तः॥ ४८ **वेदभाष्यमिति**। 'इन्द्रो वृत्रस्य तविषीम्'। 'इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिन' इत्यादिमन्त्रेष्विति भावः। वैदिकनिघण्टौ 'ओजः पाजः' इत्यादिषु वलनामसु तविषीशब्दस्य पाठश्चेह मूलमिति बोध्यम्। 'तविषः शोभनाकारे बलेऽब्धिव्यवसाययोः। तविषी देवकन्यायां पुंसि स्वर्गे महं दधौ ताविषी चेन्द्रकन्यायां ना स्वर्गाम्बुधिकाञ्चने' इति मेदिनी॥ ४९ **नञि व्यथेः**। व्यथ भयसंचलनयोः॥ ५० **किलेः**। किल श्वैत्यक्रीनयोः, अस्माट्टिषच् धातोर्वुगागमश्च। किल्बिषं पापरोगयोः। अपराधेऽपि' इति मेदिनी॥ ५१ **ईषिमदि**। इषु इच्छायाम्, मदी हर्षे, मुद हर्षे, खिद दैन्ये, छिदिर् द्वैधीकरणे, भिदिर् विदारणे, मदि स्तुत्यादौ, चदि आह्लादे, तिम आर्द्रीभावे, मिह सेचने, मुह वैचित्ये, मुच्लृ मोक्षणे, रुच दीप्तौ, रुधिर् आवरणे, बन्ध बन्धने, शुष शोषणे॥— **इषिरोऽग्निरिति**। आहार इत्यन्ये। 'छिदिरः पावके रज्जौ करवाले परश्वधे' इति मेदिनी। 'मन्दिरं नगरेऽगारे क्लीबे ना मकरालये' इति मेदिनी। 'चन्दिरो-ऽनेकपे चन्द्रे' इति च। 'तिमिरं ध्वान्ते नेत्रामयान्तरे' इति। 'मिहिरः सूर्यबुद्धयोः' इति मेदिनी। 'मुहिरः कामिमूर्खयोः' इति च। 'सुन्दरं रुचिरं चारुः' इत्यमरः। 'रुधिरोऽङ्गारके पुंसि क्लीबं तु कुङ्कुमासृजोः' इति मेदिनी। बधिरः श्रोत्रेन्द्रियरहितः। 'शुषिरं विवरं बिलम्' इत्यमरः॥ ५२ **अशेः**। अश भोजने॥ ५३ **अजिर**। अज गतौ, शश प्लुतगतौ, ष्ठा गतिनिवृत्तौ, स्फायी वृद्धौ, खद हिंसायाम्॥— **अजिरमिति**। दशपादीवृत्तौ तु नञ्पूर्वस्य जीर्यतेर्ऋवर्णलोपो निपात्यते इत्युक्तं तदपि ग्राह्यम्। 'आशु द्रुतमजिरं प्रत्नमीड्यम्' इत्यादौ न जीर्यतीत्यजिर इत्यस्यानुगुणत्वात्॥— **अङ्गनमिति** अङ्गेर्ल्युटि अनादेशः। नकारस्य बाहुलकात् णत्वमित्येके अन्ये तु दन्त्यमेवेच्छन्ति। 'अजिरं प्राङ्गणे काये विषये दर्दुरेऽनिले' इति

ह्रस्वत्वं च, शिविरम् ॥ **५४। शलिकल्यनिमहिभडिभण्डिशण्डिपिण्डितुण्डिकुकिभुभ्य इलच्**। सलति गच्छति निम्नमिति सलिलम्। कलिलम्। अनिलः। महिला। पृषोदरादित्वात् महेला अपि। भड इति सौत्रो धातुः, भडिलौ शूरसेवकौ। भण्डिलो दूतः कल्याणं च। शण्डिलो मुनिः। पिण्डिलो गणकः। तुण्डिलो मुखरः। कोकिलः। भविलो भव्यः। बाहुलकात्कुटिलः॥ ५५। **कमेः पश्च**। कपिलः॥ ५६। **गुपादिभ्यः कित्**। गुपिलो राजा। तिजिलो निशाकरः। गुहिलं वनम्॥ ५७। **मिथिलादयश्च**। मथ्यन्तेऽत्र रिपवो मिथिला नगरी। पथिलः पथिकः॥ ५८। **पथिकठिकुठिगडिगुडिदंशिभ्य एरक्**। पतेरः पक्षी गन्ता च। कठेरः कृच्छ्रजीवी। कुठेरः पर्णाशः। बाहुलकान्नुम्न। गडेरो मेघः। गुडेरो गुडकः। दंशेरो हिंस्रः॥ ५९। **कुम्बेर्नलोपश्च**। कुबेरः॥ ६०। **शदेस्त च**। शतेरः शत्रुः॥ ६१। **मूलेरादयः**। एरगन्ता निपात्यन्ते। मूलेरो जटा। गुधेरो गोप्ता। गुहेरो लोहघातकः। मुहेरो मूर्खः॥ ६२। **कबेरोतः पश्च**। कपोतः पक्षी॥ ६३। **भातेर्डवतुः**। भानीति भवान्। ६४। **कठिचकिभ्यामोरन्**। कठोरः। चकोरः॥ ६५। **किशोरादयश्च** किंपूर्वस्य शृणातेष्टिलोपः किमोऽन्त्यलोपः, किशोरोऽश्वशावः। सहोरः साधुः॥ ६६। **कपिगडिगण्डिकटिपटिभ्य ओलच्**। कपीति निर्देशान्नलोपः कपोलः। गडोलगण्डोलौ गुडकपर्यायौ। कटोलः बटुः। पटोलः॥ ६७। **मीनातेरूरन्**। मयूरः॥ ६८। **स्यन्दे संप्रसारणं च**। सिन्दूरम्॥ ६९। **सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्-**

मेदिनी। 'शिशिरो ना हिमे न स्त्री ऋतुभेदे जडे त्रिषु इति च। विश्वकोशस्थमाह—**शिशिरं स्यादिति**। खदिरो वृक्षभेदः। 'खदिरी शाकभेदे, स्त्री ना चन्द्रे दन्तधावने इति मेदिनी।—**शिबिरमिति**। शेरतेऽस्मिन् राजबलानि। 'निवेशः शिबिरं षण्ढे' इत्यमरः॥ **५४ सलिकलि**—। षल गतौ, कल संख्याने, अन प्राणने, मह पूजायाम्, भडि परिभाषणे, भदि कल्याणे सुखे च, शडि रुजायाम्, पिडि संघाते, तुडि तोडने, कुक आदाने, भू सत्तायाम्, कुट कौटिल्ये॥—**कलिल इति**। मिश्रो गहनश्च। 'कलिलं गहनं समे' इत्यमरः॥ —**महिलेति**। 'महिला फलिनीस्त्रियोः' इति मेदिनी। 'प्रियङ्गु फलिनी भली' इत्यमरः।—**पृषोदरेति**। तथा च दमयन्तीकाव्ये प्रयोगः—'परमहेलारतोऽप्यपरदारिवः' इति। परस्य महेला स्त्रीः अथ च परमा उत्कृष्टा हेला क्रीडा तत्र रत इत्यर्थः॥ **५५ कमेः**। कमु कान्तौ। अस्मादिलच् पश्चान्तादेशः। 'कपिलो रेणुकायां च शिशपागोविशेषयोः। पुण्डरीके करिण्यां स्त्री वर्णभेदे त्रिलिङ्गकम्। नाऽनले वासुदेवे च मुनिभेदे च कुक्कुरे' इति मेदिनी। रेणुकेह लताविशेषः। 'हरेणू रेणुका कुन्ती तपिला भस्मगन्धिनी' इत्यमरात् **५६ गुपादिभ्यः**। गुपू रक्षणे, तिज निशाने, गुहू संवरणे॥ **५७ मिथिलादयश्च**। मथे विलोडने। अकारस्येत्वं निपातनात्। पथे गतौ॥ **५८ पतिकठि**। पत्लृ गतौ, कठ कृच्छ्रजीवने, कुठि च, गड सेचने, गुड रक्षायाम् दंश दशने। कुठिधातोरिदित्वात् नुमि प्राप्ते आह—**बाहुलकादिति**॥ ५९ **कुम्बेः**। कुबि आच्छादने। अन्येषामैश्वर्यं कुम्बतीति कुबेरः। 'कुबेरस्त्र्यम्बकसखः'॥ ६० **शदेः**। शद्लृ शातने॥ ६१ **मूलेरा**। मूल प्रतिष्ठायाम्, गुध परिवेष्टने, गुहू संवरणे, मुह वैचित्ये॥ ६२ **कबेः**। कबृ वर्णे। 'कपोतः स्याच्चित्रकण्ठे पारावतविहङ्गयोः' इति मेदिनी। 'कपोतः पक्षिमात्रेऽपि' इति त्रिकाण्डशेषः। अत्र ओतश्चिचत्त्वं प्रामादिकम् 'यत्कपोतः पदमग्नौ कृणोति,' 'देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्—' इत्यादौ सर्वत्र प्रत्ययस्वरेण मध्योदात्तस्यैवोपलभ्यमानत्वादित्याहुः॥ ६३ **भातेः**। भा दीप्तौ।—**भवानिति**। सर्वनामशब्दोऽयम्॥ ६४ **कठि**। कठ कृच्छ्रजीवने, चक तृप्तौ। कठोरः कठिनः पूर्णश्च। 'कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः' इति माघः। चकोरः पक्षिभेदः॥ ६५ **किशोरा**। शॄ हिंसायाम्। षह मर्षणे। किशोरोऽश्वस्य शावके। तैलपर्ण्यौषधौ च स्यात्तरुणावस्थसूर्ययोः' इति मेदिनी॥ ६६ **कपिकडि**। कपि चलने, गड सेचने, गडि वदनैकदेशे, कटे वर्षावरणयोः, पट गतौ॥—**कपोल इति**। केचित्तु सत्रे कडि पठन्ति। कडि मदे। कण्डोलश्चण्डलः। चाण्डालिका तु कण्डोलवीणा चण्डालवल्लकी' इत्यमरः॥—**पटोल इति**। 'पटोल वस्त्रभेदे नौषधौ ज्योत्स्नयां तु योषिति' इति मेदिनी। कल्ल शब्दे। बाहुलकादतोऽप्योलच्। 'कल्लोलः पुंसि हर्षे स्यान्महत्सूर्मिषु वारिणः' इति मेदिनी॥ ६८ **स्यन्देः**। स्यन्दू प्रस्रवणे। सिन्दूरस्तरुभेदे स्यात्सिन्दूरं रक्तवर्णके' इति मेदिनीविश्वप्रकाशौ॥ ६९ **सितनि**। षिञ् बन्धने, तनु विस्तारे, गम्लृ गतौ, मसी परिणामे, षच

क्रुशिभ्यस्तुन्। मिनोतीति सेतुः। 'सितुञ— ३१६३ इति नेट्। तन्तुः। गन्तुः। मस्तु दधिमण्डम्। सच्यत इति सक्तुः, अर्धर्चादिः। 'ज्वरत्वर—' २६५४ इत्यूठ्, तत्र विङ्गीत्यनुवर्तते इति मते तु बाहुलकात्, ओतुर्बिडालः। धातुः। क्रोष्टा ॥ ७०। **पः किच्च**। पिबतीति पितुः। 'पितुर्वह्नौ दिवाकरे' ॥ ७१। **अर्तेश्च तुः**। अर्तेस्तुः स्यात्स च कित्। 'ऋतुः स्त्रीपुष्पकालयोः'॥ ७२। **कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च**। **एभ्यस्तुः** स्यात्। 'कन्तुः कन्दर्पचित्तयोः'। मन्तुरपराधः। जन्तुः प्राणी। 'गातुः पुंकोकिले भृङ्गे गन्धर्वे गायनेऽपि च'। भातुरादित्यः 'यातुरध्वगवात्ययोः' वक्षसि क्लीबम्। हेतुः कारणम् ॥ ७३। **चायः किः**। 'केतुर्ग्रह-पताकयोः' ॥ ७४। **आप्नोतेर्ह्रस्वश्च**। अप्तुः शरीरम् ॥ ७५। **वसेस्तुन्**। वस्तुः ॥ ७६। **अगारे णिच्च**। 'वेश्मभूर्वास्तुरस्त्रियाम्' ॥ ७७। **कृञः क्रतुः**। क्रतुर्यज्ञः ॥ ७८। **एधिवह्योश्च तुः**। एधतुः पुरुषः। वहतु-रनड्वान् ॥ ७९। **जीवेरातुः**। 'जीवातुरस्त्रियां भक्ते जीविते जीवनौषधे' ॥ ८०। **आतृकन् वृद्धिश्च**। जीवेरित्येव। 'जैवातृकस्त्विन्दुभिषगायुष्मत्सु कृशीवले' ॥ ८१। **कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः**। 'कर्षूः पुंसि करीषाग्नौ कर्षूर्नद्यां स्त्रियां मता'। चमूः। तनूः। धनूः शस्त्रम्। 'सर्ज सर्जने' सर्जूर्वणिक्। खर्ज व्यथने खर्जूः पामा ॥ ८२। **मृजेर्गुणश्च**। मर्जूः शुद्धिकृत् ॥ ८३। **वहो धश्च**। 'वधूर्जायास्नुषास्त्रीषु' ॥ ८४। **कषेश्छश्च**। कच्छूः पामा ॥ ८५। **णित्कसिपद्यर्तेः**। कासूः शक्तिः। पादूश्चरणधारिणी। आरूः

सेचने, अव रक्षणादौ, डुधाञ् धारणपोषणयोः, कुश आक्रोशे। 'सेतुर्नालौ कुमारके' इति मेदिनी। 'सेतुरालौ स्त्रियां पुमान्' इत्यमरः। 'सूत्राणि नरि तन्तवः' इत्यमरः। मण्ड दधिभवं मस्तु' इति च। धातुर्ना इन्द्रियेषु च। शब्दयोनिमहाभूततद्गुणेषु रसादिषु। मनःशिलादौ श्लेष्मादौ विशेषाद्गैरिकेऽस्थनि च' इति मेदिनी। 'श्लेष्मादिरसरक्तादिमहाभूतानि तद्गुणाः। इन्द्रियाण्यश्मविकृतिः शब्दयोनिश्च धातवः इत्यमरः। ७० **पः किच्च**। पा पाने अस्मात्तुन् स च कित्। कित्वात् 'घुमास्था' इतीत्वम् ॥ ७१ **अर्तेश्च तु** ऋ गतौ। तुनि प्रकृते अन्तोदात्तार्थं तुः क्रियते। 'ऋतुना यज्ञ च ऋतुर्जनीनाम्' इत्यादि। 'ऋतुवर्षादिषट्सु च। आर्तवे मासि च पुमान्' इति मेदिनी। 'ऋतुः स्त्रीकुसुमेऽपि च' इत्यमरः॥ ७२ **कमिमनि**। कमु कान्तौ, मन ज्ञाने, जनी प्रादुर्भावे, गै शब्दे, भा दीप्तौ, या प्रापणे, हि गतौ वृद्धौ च। कमिग्रहण प्रपञ्चार्थम् 'अर्जिदृशि' इत्यादिना कुप्रत्यये तुकि सिद्धत्वात् ॥—**मन्तुरिति**। 'मन्तुः पुंस्यपराधेऽपि मनुष्येऽपि प्रजापतौ' इति मेदिनी। 'गातुर्ना कोकिले भृङ्गे गन्धर्वे त्रिषु रोषणे' इति मेदिनी। 'भ्रातुर्ना किरणे सूर्ये' इति च ॥ ७३ **चायः किः**। चायृ पूजानिशामनयोः। अस्मात्तुः धातोः किरादेशश्च। 'केतुर्ना रुक्पताकारिग्रहोत्पातेषु लक्ष्मणी' इति मेदिनी ॥ ७४ **आप्नोतेः**। आप्लृ व्याप्तौ ॥—**अप्तुः शरीरमिति**। अभिलषितार्थश्च, आप्त-व्यत्वात्। अत एव यागविशेषवाचकस्याप्तोर्यामशब्दस्याभिलषितार्थप्रापक इत्यवयवार्थमाहुः ॥ **७५ वसेः**। वस निवासे ॥ ७७ **कृञः**। डुकृञ् करणे। कतोः कित्त्वाद्गुणाभावे यणादेशः। '**क्रतुर्यज्ञे** मुनौ पुंसि' इति मेदिनी ॥ ७८ **एधिवह्योश्च तुः**। एध वृद्धौ, वह प्रापणे, चित्त्वादन्तोदात्तः। 'स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व'। 'वहतुः पथिके वृषभे पुमान्' इति मेदिनी ॥ ७९ **जीवेः**। जीव प्राणधारणे ॥ ८० **आतृकन्**। 'जैवातृकः पुमान् सोमे कृपकायुष्मतोस्त्रिषु' इति मेदिनी ॥ ८१ **कृषिचमि**। कृष विलेखने, चमु अदने, तनु विस्तारे, धन धान्ये। रभशकोशस्थाग्रह—**कर्षूः पुंसीत्यादि**। 'कर्षूः पुमान् करीषाग्नौ स्त्रियां कुल्याल्पखातयोः' इति मेदिनी। 'स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः' इत्यमरः। 'सर्जूर्वणिजि विद्युति। स्त्रियां स्वर्गे विधौ रुद्रे' इति मेदिनी। खर्जूः कीटान्तरे स्मृता', 'खर्जूरीपादपे कण्ड्वाम्' इति च ॥ ८२ **मृजेः**। मृजू शुद्धौ। अस्मादूः स्याद्वृध्द्यपवादो गुणश्च। 'मर्जूः स्त्रीशुद्धौ धावकेऽपि च' इति मेदिनी ॥ ८३ **वहो धश्च**। वह प्रापणे। 'बधूः स्नुषा नवोढास्त्री भार्यापृक्काङ्गनासु च' इति विश्वः। 'पृक्का महिला च बधूः' इति त्रिकाण्डशेषः ॥ ८४ **कषेच्छश्च**। कर्षशिषेति दण्डके हिंसार्थः। अस्मादूः स्याच्छश्चान्तादेशः। 'कच्छूर्वां तु पाम पामा विचर्चिका' इत्यमरः ॥ ८५ **णित्कसि**। कस गतौ, पद गतौ, ऋ गतौ। 'कासूर्विकलवाचि स्यात्तथा शक्त्यायुधे स्त्रियाम्' इति मेदिनी। 'कासूः शक्त्यायुधे रुजि। बुधौ विकलवाचि स्यात्' इति हेमचन्द्रः॥

पिङ्गलः ॥ ८६ । **अणो डश्च** । अङ्गूर्जलप्लवद्रव्यम् ॥ ८७ । नञि **लम्बेर्नलोपश्च** । 'तुम्ब्यलाबूरुभे समे इत्यमरः' ॥ ८८ । **के श्र एरङ् चास्य** । कशब्दे उपपदे शृणातेरूः स्यादेरङ् आदेशः । 'कशेरूस्तृणक दे स्त्री' ॥ बाहुलकादुप्रत्यये—कशेरुः, क्लीबे पुंसि च ॥ ८९ । **त्रो दुट् च** । तरतेरूः स्यात्तस्य दुट् । तर्दूः स्याद्दारुहस्तकः' । ९० । **दरिद्रातेर्यालोपश्च** । इश्च आश्च यौ तयोर्लोपः । देद्रूः कुष्ठप्रभेदः । ९१ **नृतीशृध्योः कूः** । नृतूर्नर्तकः । शृधूरपानम् ॥ ९२ । **ऋतेरम् च** । ऋति सौत्रो धातुः । ततः कूरमागमश्च, रन्तूर्देवनदी सत्यवाक् च ॥ ९३ । **अन्दूहम्भूजम्बूकफेलूकर्कन्धूदिधिषूः** । एते कूप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अन्दूर्बन्धनम् । 'हभी ग्रन्थे' निपातनान्नुम्, हम्भूः । अनुस्वाराभावोऽपि निपातनादित्येके हम्भूः । जनेर्बुक्, जम्बूः । 'जमु अदने' इत्यस्येत्येके । बाहुलकाद्ध्रस्वोऽपि, जम्बुः । कफं लाति कफेलूः श्लेष्मातकः, निपातनादेत्त्वम् । ककं दधाति कर्कन्धूर्बदरी, निपातनान्नुम् । दिधिं धैर्यं स्यति—त्यजतीति दिधिषूः पुनर्भूः । 'केचित्तु अन्दूहम्फू-जम्बूकम्बू' इति पठन्ति । हम्फ उत्क्लेशे हम्फूः सर्पजातिः । कमेर्बुक् कम्बूः परद्रव्यापहारो ॥ ९४ । **मृग्रोरुतिः** मरुत् । गरुत् पक्षः ॥ ९५ । **ग्रो मट् च** । गिरतेरुतिस्तस्य च मुट् । गर्मुत् सवर्णं तृणविशेषश्च ॥ ९६ । **हृषेरुलच्** । 'हर्षुलो मृगकामिनोः' । बाहुलकाच्चटतेः' चटुलं शोभनम् ॥ ९७ । **हसृरुहियुषिभ्य इति** ।

---

८६ अणो डश्च । अण दण्डके शब्दार्थः । अप्मादू स्यात्स च णित् डश्चान्तादेशः । ८७ **नञि लम्बेः** । लबि अवस्रंसने । न लम्बते इत्यलाबूः ॥ ८८ **के श्र** । शॄ हिंसायाम् ॥ ८९ **त्रो दुट् च** । तॄ प्लवनतरणयोः ॥ **तर्दूरिति** । 'नेड्वशि इति नेट्' । 'वरमनादौ' इति परिगणनं तु बाहुलकान्नाश्रीयते इत्याहुः । केचित्तु इडभावे 'त्रो दुक् च' इति पठित्वा धातोर्दुगागममाहुः तेषां तु धातोर्गुणो दुर्लभः । दुगागमात्पूर्वं यत्प्राप्तं तदपि भवतीत्येवं चकारबलेन व्याख्याय वा गुणः साधनीयः ॥ ९० **दरिद्रातेः** । दरिद्रा दुर्गतौ ॥—**इश्च आश्चेति** । भोजदेवस्तु प्यालोप इति रेफादिकं पदं छित्त्वा द्वेधा व्याख्यत् रिश्च आश्चेति व्याख्याने दद्रूः । रश्च इश्च आश्चेति व्याख्याने तु 'अन्त्यबाधेऽन्त्यसदेशस्य' इति द्वितीयस्यैव रेफस्य लोपाद्दर्द्रूरिति । मृगय्वादित्वात्कु-प्रत्यये । दर्द्रुरित्यन्ये । दर्द्रुणो दर्द्रुरोगी स्यात्' इत्यमरः । इत्थं चत्वारि रूपाणि ॥ ९१ **नृति** । नृती गात्र-विक्षेपे, शृधु शब्दकुत्सायाम् ॥ ९३ **अन्दूहम्भू** । अदि बन्धने । 'नृतिशृध्योः कूः' इत्यत्र 'अदि' ग्रहणं न कृतं वैचित्र्यार्थमित्याहुः । ला आदाने, कफपूर्वः । डुधाञ् धारणादौ कर्कपूर्वः । षोऽन्तकर्मणि, दिधिपूर्वः षत्वं च ॥—**अन्दूर्बन्धनमिति** । अन्दूः स्त्रियां स्यान्निगडे प्रभेदे भूषणस्य च' इति मेदिनी । 'अन्दुको हस्ति न गदे' इत्यमरः संज्ञायां कन् । 'केऽणः' इति ह्रस्वः । केचित्तु 'अम गतौ' अस्य दुक् । अन्दूर्बुद्धिरिति व्याचख्युः ॥ —हभी ग्रन्थ इति तुदादिरयम् । हम्भतीति हम्भूः । संदर्भकर्तेत्यर्थः । कथक इत्यन्ये । कैयटमतानुरोधेनास्य रूपाणि हूहूवदित्युक्तम् । माधवादयस्तु हढशब्दे उपपदे भुवः क्विप्प्रत्ययः । उपपदस्य हन्नादेशो निपात्यते । यद्वा हढार्थकं हन्निति नान्तमव्ययमुपपदम् । हन्भूः—तरुः सर्पः कपिर्वेति व्याख्याय 'हन्वकर' इति र्यण वर्षा-भूवद्रूपमस्येत्याहुः ॥—**ह्रस्वोऽपिति** । अत एव विक्रमादित्येनोक्तं—'तस्या जम्बोः फलरसो नदीभूय प्रवर्तते' इति । केचित्तु 'परिणतजम्बुफलोपभोगहृष्टा' इति भारविप्रयोगं ह्रस्वान्तत्वे साधकत्वेनोदाजह्रुः । तन्न । 'इको ह्रस्वो ङ्यः' इत्युत्तरपदाधिकारस्थह्रस्वविधायकसूत्रेण गतार्थत्वात् ॥—**दिधिमिति** । केचित्तु दधातेरित्वं द्वित्वं षुक् च निपात्यते । दधात्यसौ दिधिषूरित्याहुः ॥ **पुनर्भूरिति** । 'पुनर्भूर्दिधिषूरूढा द्विः' इत्यमरः । द्विरूढा, द्विवारं विवाहितेत्यर्थः । उज्ज्वलदत्तोक्तं पाठमाह—**केचित्त्विति** । एतच्च कैयटमाधवा-दिग्रन्थविरुद्धम् । अत एव 'हम्भूः स्त्री सर्पचक्रयोः' इति भ्रान्तो मेदिनी ॥ ९४ **मृग्रोः** । मृङ् प्राणत्यागे, गॄ निगरणे, आभ्यामुतिः । इकारस्तकारस्येत्सञ्ज्ञापरित्राणार्थः ॥—**मरुदिति** । प्रज्ञादित्वादणि मारुतोऽपि । मरुतशब्दोऽप्यव्युत्पन्नोऽस्ति । तथा च विक्रमादित्यकोशः—'मरुतः स्पर्शनः प्राणः समीरो मारुतो मरुत्' इति । 'कोऽयं वाति स दाक्षिणात्यमरुत ' इति कविराजश्लोकेऽनुपपत्तिं मत्वा 'दाक्षिणात्यपवनः' इति पाठं केचित्कल्पयन्त्यल्पदृश्वान इति वर्णविवेकः ॥ **गरुदिति** । यवादिरयम् । तेनास्मात्परस्य मतुपो मस्य 'भयः' इत्यनेन वत्वं न । गरुत्मान् ॥ ९५ **गर्मुदिति** । 'गर्मुत्स्त्री स्वर्णलतयोः' इति मेदिनी ॥ ९६ **हृषेः** । हृष तुष्टौ ॥—**चटतेरिति** । चटे वर्षावरणयोः ॥ ९७ **हसृ** । हृञ् हरणे, सृ गतौ, रुह बीजजन्मनि ॥ विश्व-

'हरित ककुभि वर्णे च तृणवाचिविशेषयोः'। सरित् नदी। रोहित् मृगविशेषस्य स्त्री। 'युष' इति सौत्रो धातुः 'ऋश्यस्य रोहित् पुरुषस्य योषित्' इति भाष्यम्॥ ९८। **ताडेर्णिलुक् च**। ताडयतीति तडित्॥ ९९। **शमेर्ढः** बाहुलकादित्संज्ञा एयादेश इट् च न। शण्ढः स्यात्पुंसि गोपतौ'। शण्ढः क्लीवः॥ १००। **कमेरठः**। कमठः। 'कमठः कच्छपे पुंसि भाण्डभेदे नपुंसकम्' इति मेदिनी। बाहुलकाज्जरठः॥ १०१। **रमेर्वृद्धिश्च**। रामठं हिङ्गु॥ १०२। **शमेः खः**। शङ्खः॥ १०३। **कणेष्ठः**। कण्ठः॥ १०४। **कलस्तृपश्च**। तृपतेः कल-प्रत्ययः। चात्तफतेः। तृफला लता। 'त्रिफला तु फलत्रिके'॥ १०५। **शपेर्बश्च**। शबलः॥ १०६। **वृषादिभ्यश्चित्**। वृषलः। पललम्। बाहुलकादगुणः, सरलः। तरलः॥ (१) * **कमेर्बुक्**। कम्बलः। 'मुसः खण्डने' मुसलम्। (२) **लङ्गेर्वृद्धिश्च**। लाङ्गलम्। (३) **कुटिकशिकौतिभ्यः प्रत्ययस्य मुट्**। कुट्मलः।

कोशस्थमाह—**हरिदिति**। 'हरिद्दिशि स्त्रियां पुंसि हर्षवर्णविशेषयोः। अस्त्रियां स्यात्तृणे च' मेदिनी॥—**ऋश्यस्येति**। एतेन 'गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृश्यस्य वपुषा'—इति पुष्पदन्तप्रयोगो व्याख्यातः। 'रोहिन्मृग्यां लताभेदे स्त्री नार्के' इति मेदिनी॥ ९८ **ताडेः**। तड आघाते, ण्यन्तः। तडित्सौदामिनी विद्युत्' इत्यमरः॥ ९९ **शमेः**। शम उपशमे॥—**बाहुलकादिति**। यद्यपि 'नड्वशि कृति' इत्यनेनैव इडभावस्य सिद्धत्वात् 'इट् च न' इत्येतदयुक्तं, तथापि नेड्वरमनादौ' इति परिगणनाद्बहुलग्रहणमाश्रित्यैव इडभावोऽपि साधितः। 'शण्ढः स्यात्पुंसि गोपतौ। अमुष्ठाण्डे वर्षवरे तृतीयप्रकृतावपि' इति मेदिनी॥ १०० **कमेः**—। कम कान्तौ। 'कमठः कच्छपे पुंसि भाण्डभेदे नपुंसकम्' इति मेदिनी॥—**जरठ इति**। जॄ वयोहानौ। 'जरठः कठिने पाण्डौ कर्कशेऽप्यभिधेयवत्' इति विश्वमेदिन्यौ। 'जरठः कठिने जीर्णे' इति वैजयन्ती॥ १०१ **रमेः**। रम क्रीडायाम्॥ १०२ **शमेः**। शम उपशमे। 'शङ्खो निधौ ललाटास्थ्नि कम्बौ न स्त्री' इत्यमरः। 'शङ्ख कम्बौ न योषित्रा भालास्थिनिधिभिन्नखे' इति मेदिनी॥ १०३ **कणेः**। 'कण्ठो गले सन्निधाने ध्वनौ मदनपादपे' इति विश्वमेदिन्यौ॥ १०४ **कलः**। तृप प्रीणने॥—**फलत्रिके इति**। 'त्रिफला तृफला च सा' इति विश्वः। त्रिफलाशब्दसमानार्थस्तृफलाशब्द इति द्विगोः इति सूत्रे रक्षितः॥ १०५ **शपेः**। शप आक्रोशे १०६ **वृषादिभ्यः**। वृषु सेचने, फल गतौ, पॄ गतौ, प्लवनतरणयोः। 'शूद्राश्चावरवर्णाश्च वृषलाश्च जघन्यजाः' इत्यमरः। 'वृषलस्तुरगे शूद्रे' इति हेमचन्द्रः। 'पललं तिलचूर्णे च मिके मांसे नपुंसकम्। ना राक्षसे' इति मेदिनी॥ कलप्रत्ययस्य कित्त्वादाह—**बाहुलकादिति**। 'सरलः पूतिकाष्ठे नाऽथोदारावक्रयोस्त्रिषु' इति मेदिनी॥ 'सरला विरलायन्ते घनायन्ते किल द्रुमाः। न शमी न च पुन्नागा अस्मिन्संसारकानने' इत्यभि-युक्तप्रयोगः॥ (१) **कमेः**। कमु कान्तौ। अस्माद् वृषादित्वेन कलप्रत्यये बाहुलकादित्यनुषज्यत इति बुक्। 'कम्बलो नागराजे स्यात्सास्नाप्रावारयोरपि। कृमावप्युत्तरासङ्गे सलिले तु नपुंसकम्' इति मेदिनी। **मुसलं** स्यादयोऽग्रे च पुंनपुंसकयोः स्त्रियाम्। तालमूल्यामाखुपर्णीगृहगोधिवयोरपि' इति मेदिनी। **मूर्धन्यमध्यो-ऽप्ययमिति** वर्णदेशना। मुस खण्डन इति धातोर्दन्त्यान्तेषु च बोपदेवादिभिः पठितत्वात्। उज्ज्वलदत्ता-दयस्तु तालव्यमध्यमप्याहुः। अत एव 'मुसलं मुषलोऽपि च' इति विश्वकोशे मुशलोऽपि चेति पाठान्तरम्॥ (२) **लङ्गेः**। लगि गतौ अस्मात्कलप्रत्यये बाहुलकादित्यनुषङ्गाद्वृद्धिरिति भावः। एवमग्रेऽपि। मुडागमो बाहुलकादेव॥ (३) **कुटिकशि**। कुट कौटिल्ये, कश गतिशासनयोः, कु शब्दे, अस्मात्कलप्रत्यये गुणो नेत्याशङ्क्याह—**बाहुलकादिति**। 'कोमलं मृदुलं मृदु'। बाहुलकादन्यत्रापि बोध्यः। तद्यथा—कुस श्लेषणे दन्त्यान्तोऽयम्। बोपदेवमते तु तालव्यान्तोऽपि। गुणः, कोशलः कोसलो वा देशविशेषः। 'वृद्धेत्कोसला'—इति सूत्रे तु दन्त्यान्त एव सांप्रदायिकः पाठः। संब संबन्धे, शंब च। **संबलं शंबलम्**। शंबलोऽस्त्री संबलवत् कुलपाथेय मत्सरे इति मेदिनी। कदि आह्वाने नलोपः। गौरादित्वान्ङीषि—**कदली**। 'मन्दान्दोलितकर्पूर-कदलीदलसंज्ञया। विश्रमाय श्रमापन्नानाह्वयन्तीमिवाध्वगान्' इति काशीखण्डे। अजादेराकृतिगणत्वाट्टाबपि

---

* 'कमेर्बुक्' 'लङ्गेर्वृद्धिश्च' 'कुटिकशिकौतिभ्यः प्रत्ययस्य मुट्, एतत्त्रयमपि बाहुलकाल्लब्धम्। न त्वेतानि सूत्राणि।

कुडेरपि, कुड्मलः। कश्मलम्। बाहुलकाद्गुणः, कोमलम्॥ १०७। **मृजेर्ट्टिलोपश्च**। मलम्॥ १०८। **चुपेरच्चोपधायाः**। चपलम्॥ १०९। **शकिशम्योर्नित्**। शकलम्। शमलम्॥ ११०। **छो गुक् ह्रस्वश्च**। छगलः प्रज्ञादित्वाच्छागलः॥ १११। **अमन्ताड्डः**। दण्डः। रण्डा। खण्डः। मण्डः। भण्डश्छिन्नहस्तः। अण्डः। बाहुलकात्सत्वाभावः, षण्ड सङ्घातः। तालव्यादिरित्यपरे शण्डः। गण्डः। चण्डः पण्डः, क्लीवः। पण्डा बुद्धिः। * फण्डः॥ ११२। **क्वादिभ्यः कित्**। कवर्गादिभ्यो डः कित्स्यात्। कुण्डम्। काण्डम्। गुङ्, गुडः। घुण भ्रमणे' घुण्डो भ्रमरः॥ ११३। **स्थाचतिमृजेरालज्वालजालीयचः**। तिष्ठतेरालच्, स्थालम्।

'कदलाकदलौ पृश्न्यां कदलीवदलौ पुनः। रम्भावृक्षेऽथ कदली पताकामृगभेदयोः। कदली बिम्बवायां च' इति मेदिनी। कुश इति सौत्रो धातुः। 'कुशल' शिक्षिते त्रिषु। क्षेमे च सुकृते चापि पर्याप्तौ च नपुंसके इति मेदिनी। कमु कान्तौ। 'कमलं सलिले ताम्रे जलजे व्योम्नि भेषजे। मृगभेदे तु कमलः कमला श्रीवरस्त्रियोः इति विश्वमेदिन्यौ। मडि भूषायाम्। **मण्डलं** परिधौ कोठे देशे द्वादशराजके' इति मेदिनी। 'कोठा मण्डलकं कुष्ठं' इत्यमरः। 'बिम्बोऽस्त्री मण्डलं त्रिषु' इति च॥ १०७ **मृजेः**। मृजू शुद्धौ। 'मलोऽस्त्री पापविट्किट्टे कृपणे त्वविधेयवत्' इति मेदिनी॥ १०८ **चुपेः**। चुप मन्दायां गतौ। **चपलः** पारदे मीने चोरते प्रस्तरान्तरे चपलाकमलाविद्युत्पुंश्चलीपिप्पलीषु च। नपुंसके तु शीघ्रे स्याद्वाच्यवत्तरले चले इति मेदिनी॥ १०९ **शकिशम्योः**। शक्लृ शक्तौ, शम उपशमे। शकलं खण्डे रोहितादीनां त्वचि च। तद्योगात् शकली मत्स्यः। मत्स्यान् शकलानिति भाष्यम्। शकलं त्वचि खण्डे स्याद्रागवस्तुनि वल्कले' इति मेदिनी॥ ११० **छो गुक्** छो छेदने। 'छगलं नीलवस्त्रे ना छागे स्त्री वृद्धदारके' इति मेदिनी॥ १११ **अमन्ताड्डः**। अमिति प्रत्याहारः। दमु उपशमे, रमु क्रीडायाम्, खनु अवदारणे, मन ज्ञाने, वन संभक्तौ, अम गत्यादिषु षणु दाने, गम्लृ गतौ, चण दाने, पण व्यवहारे स्तुतौ च। काशिकायां तु त्रिभ्य एव कणमाः स्युरित्युक्तम्। अम् प्रत्याहारस्तु न स्वीकृतः। अष्टाध्याय्यां तस्य विषयाभावात्॥—दण्ड इति। बाहुलकात् 'चुटू' इति नेत्संज्ञा। 'दण्डोऽस्त्री लगुडेऽपि स्यात्' इत्यमरः। 'रण्डा मूषकपर्ण्यां च विधवायां च योषिति। खण्डोऽस्त्री शकले नेक्षुविकारमणिभेदयोः। मण्डः पञ्चाङ्गुले शाकभेदे क्लीवं तु मस्तुनि। वण्डा तु पांसुलायां स्त्री त्रिषु हस्तादिवर्जिते'। अमन्ति संप्रयोगं यान्ति अनेनेति अण्डं प्राण्यवयवः। षण्डः पद्मादिसघाते न स्त्री स्यात् गोपतौ पुमान्। शडि रुजायाम्, अस्मात् घञि शण्डशब्दस्तालव्यादिरपि संघाते वर्तते इत्याशयेन मतान्तरमाह—**तालव्यादिरित्यपरे इति**। 'गण्डः स्यात्पुंसि खड्गिनि। चिह्नवीरकपोलेषु हयभूषण बुद्बुदे। **चण्डो** ना तिन्तिणीवृक्षे यमकिंकरदैत्ययोः। चण्डी कल्यायणी देव्यां हिंस्रा कोपनयोषितोः पण्डः शठे धियि स्त्री स्यात्' इति मेदिनी। फण गतौ फण्डः। प्रज्ञादित्वादण्। फाण्ड उदरम्॥ ११२ **क्वादिभ्यः कित्**। कुण शब्दोपकरणयोः।—**कुण्डमिति**। इह कुण्डमित्यत्र प्रायेणानुस्वारमेव लिखन्ति तत्तु प्रमादकृतम्। एवमन्यत्रापि बोध्यम्। डस्य कित्त्वान्न गुणः। 'अनुनासिकस्य क्विझलोः' इति दीर्घस्तु न भवति, बाहुलका-त्संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वाद्वेत्याहुः। '**कुण्डमग्न्यालये** यानभेदे देवजलाशये। कुण्डी कमण्डलौ जारात्पति-वत्नीसुते पुमान् पिठरे तु न ना' इति मेदिनी। 'अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलकः' इत्यमरः॥—**काण्डमिति**। कमु कान्तौ। 'अनुनासिकस्य'-इति दीर्घः। 'काण्डोऽस्त्री दण्डबाणार्ववर्गावसरवारिषु' इत्यमरः। अर्वा= कुत्सितः। अत एव 'काण्डं स्तम्बे तरुस्तन्धे बाणेऽवसरनीरयोः। कुत्सिते वृक्षभिन्नाडी-वृन्दे रहसि न स्त्रियाम्' इति मेदिनी। गुङ् अव्यक्ते शब्दे। 'गुडो गोलेक्षुपाकयोः' इत्यमरः। गुडा स्नुही, तद्वत्केशा यस्य स गुडाकेशः शिवः, जटाधारित्वात्। गुडः स्याद्गोलके हस्तिसन्नाहेक्षुरिकारयोः। गुडा स्नुह्यां च कथिता गुडिकायां च योषिति' इति मेदिनी। गुडाका निद्रा तस्या ईशः इति वा, जितेन्द्रिय-त्वादिति माधवः॥ ११३ **स्थाचति**। ष्ठा गतिनिवृत्तौ चते याचने, मृजू शुद्धौ। लचा सिद्धे आलच

---

* फण्ड इत्यस्य मूले पाठः क्वचिद्दृश्यते, तथैवात्राप्युल्लेखः। तत्त्वबोधिनीकारेणास्योल्लेखान्नायं मूलस्थ इति प्रतीयते।

स्थाली । चतेर्वालञ्, चात्वाल: । मृजेरालीयच्, मार्जालीयो बिडाल: ॥ ११४ । **पतिचण्डिभ्यामालञ्** । पातालम् । चण्डाल: । प्रज्ञादित्वादणि 'चाण्डाल:' अपि इत्येके । ११५ । **तमिविशिबिडिमृणिकुलिकपिपलि-पञ्चिभ्य: कालन्** । तमाल:, विशाल:, बिडाल: । मृणालम् । कुलाल: कपालम् । पलालम् । पञ्चाला: ॥ ११६ । **पतेरङ्गच् पक्षिणि** । पतङ्ग: ॥ ११७ । **तरत्यादिभ्यश्च** । तरङ्ग: । लवङ्गम् ॥ ११८ । **बिडादिभ्य: कित्** । बिडङ्ग: । मृदङ्ग: । कुरङ्ग: । बाहुलकादुत्वं च ॥ ११९ । **सृवृञोर्वृद्धिश्च** । सारङ्ग: । वारङ्ग: । स्वङ्गादिमुष्टि: ॥ १२० । **गन् गम्यद्यो:** । गङ्गा । अद्‌ग: पुरोडाश ॥ १२१ । **छापूखडिभ्य: कित्** । छाग: । पूग: । खङ्ग: । बाहुलकात् 'पिट अनादरे' गन्सत्वाभावश्च । पिङ्गस्तरल: । 'पिङ्गैरगद्यतो ससंभ्रममेवमेवा

आकारश्चिन्त्यप्रयोजन: । चित्स्वर बाधित्वा पक्ष आद्युदात्तार्थमित्येके । 'स्थाल भाजनभेदेऽपि स्थाली स्यात् पादलेखयो:' इति मेदिनी । 'चात्वालो यज्ञकुण्डे स्यादर्भे च' इति विश्व: । मार्जालीय: स्मृत: शूद्रे बिडाले कायशोधने' इति मेदिनी ॥ ११४ **पतिचण्डि** । पत्लृ गतौ, चडि कोपे । पतन्त्यस्मिन्नधर्मेणेति पातालम् । उपधावृद्धि: । 'अधोभुवनपातालं बलिसद्म । रसातलम् इत्यमर: । 'पातालं नागलोके स्याद्विवरे वडवानले' इति मेदिनी ॥ – **चण्डाल इति** । इदित्त्वान्नुमि अदुपधत्वाभावान्न वृद्धि: । माधवेन तु 'पतिचण्डिभ्यामालञ्' इति नितं पठित्वा पातालशब्दे बाहुलकाद्वृद्धिमुक्त्वा, वृद्ध्यर्थमालञिति केषांचित्पाठे तु चण्डालशब्देऽपि वृद्धि: । स्यादित्युक्तं । तदतिरभसात् ॥-**एके इति** । उज्ज्वलदत्तादय: । एतच्च 'कुलालवरुडकर्मारनिषाद-चण्डालमित्रामित्रेभ्यश्छन्दसि' इति चण्डालात्स्वार्थेऽणं विदधता वार्तिकेन तद्भाष्येण च सह विरुद्धमिति बोध्यम् ॥ ११५ **तमिविशि** । तमु काङ्क्षायाम्, विश प्रवेशने, बिड आक्रोशे, मृण हिंसायाम्, कुल संस्त्याने, कपि चलने । निर्देशान्नलोप: । पल गतौ, पचि विस्तारे । 'तमालस्तिलके खङ्गे तापिच्छे वरुणद्रुमे' इति मेदिनी । 'विशाला त्विन्द्रवारुण्या मुज्जयिन्यां तु योषिति । नृपवृक्षभिदो: पुंसि पृथुलेऽप्यभिधेयवत्' इति मेदिनी । 'बिडालो नेत्रपिण्डे स्याद्वृषदंशकके पुमान्' इति च मेदिनी । 'ओतुर्बिडालो मार्जारो वृषदंशक आखुभुक्' इत्यमर: । '**मृणालं** नलदे क्लीवं पुंनपुंसकयोर्बिसे' इति मेदिनी । 'कुलाल: ककुभे कुम्भकारे स्त्री त्वञ्जनान्तरे' इति च मेदिनी । 'कुलाल घूकपक्षिणि । ककुभे कुम्भकारे च'.इति हेमचन्द्र: । 'कपालोऽस्त्री शिरोऽस्थिन स्याद्घटादे: शकले व्रजे' इति मेदिनीविश्वप्रकाशौ । 'पाञ्चाली पुत्रिकागत्यो: स्त्रियां पुंभूम्नि नीवृति' इति मेदिनी । बाहुलकात् श्यतेरपि कालन् । 'आदेश उपदेश' – इत्यात्वम् । शाला । शल चलने । अस्मात् घञि शाला । 'सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्' इति निपातनात्स्त्रीत्वमिति न्यास: । 'शाला द्रुस्कन्धशाखायां गृहगेहैकदेशयो: । ना झषे' इति मेदिनी । ११६ **पतेरङ्गच्** । पत्लृ गतौ । पक्षिणीत्युप-लक्षणम् । 'पतङ्ग: शलभे शालिप्रभेदे पक्षिसूर्ययो: । क्लीवं सूते इति मेदिनी । सूते पारद इत्यर्थ: ॥ ११७ । **तरत्या** । तॄ प्लावनतरनयो: । लूञ् छेदने, तरङ्ग ऊर्मि: । 'तरङ्गस्तुरगादीनामुत्फाले वस्त्रभङ्गयो:' इति विश्व: । 'लवङ्ग देवकुसुमे' । आकृतिगणोऽयम् ॥ ११८ । **बिडादिभ्य:** । विड आक्रोशे, मृद क्षोदे, कॄ विक्षेपे, एभ्योऽङ्गच् कित्स्यात् । विडङ्ग ओषधिविशेष इति उज्ज्वलदत्त: ॥ 'विडङ्ग: कृमिसघ्घ्ने विडङ्गो नागरेऽन्यवत्' इति विश्व: । 'विडङ्गस्त्रिष्वभिज्ञे स्यात् कृमिघ्ने पुंनपुंसकम्' इति मेदिनी । '**मृदङ्ग**: पटहे घोषे' इति च । कुरङ्गो मृगविशेष: ॥ – **बादुलकादुत्वं चेति** । कुर शब्दे इत्यस्मादङ्गच् । तस्य कित्वेन गुणाभाव इत्यन्ये ॥ ११९ **सृवृञो:** । सृ गतौ, वृञ् वरणे । 'सारङ्ग: पुंसि हरिणे चातके च मतङ्गजे । शवले त्रिषु, इति मेदिनी । बाहुलकात् नॄ नये । 'अथ नारङ्ग: पिप्पलीरसे । यमजप्राणिनि विटे नागरङ्ग-द्रुमेऽपि च' इति मेदिनी ॥ १२० **गन् गम्य** । गम्लृ गतौ, अद भक्षणे । **बाहुलकात्** । अम गत्यादिषु, अस्मादपि गण् । 'अङ्गं गात्रे उपाये च प्रतीके चाप्रधानके । अङ्गो देशविशेषे स्यादङ्ग संबोधनेऽव्ययम्' इति विश्व: । अङ्गं गात्रे प्रतीकोपाययो: पुंभूम्नि नीवृति । क्लीवैकत्वे त्वप्रधाने त्रिष्वङ्गवति चान्तिके' इति मेदिनी ॥ १२१ **छापू** । छो छेदने, पूङ् पवने, खड भेदने । छायते छिद्यते वा यज्ञार्थमिति छाग: । पूवते मुखमनेनेति पूग: । 'पूगस्तु क्रमुके वृन्दे' इति मेदिनी । 'खङ्गो गण्डकशृङ्गे स्यान्निस्त्रिंशे गण्डकेऽपि च' इति शब्दतरङ्गिण्याम् । 'खङ्गो गण्डकोशृङ्गासिबुद्धभेदेषु गण्डके' इति मेदिनी ॥

इति माघः ॥ १२२ । **भृञः किन्नुट् च** भृञो गन् कित्सात्तस्य नुट् च । 'भृङ्गाः षिङ्गालिधूम्याटाः' ॥ १२३ । **शृणातेर्ह्रस्वश्च** । शृङ्गम् ॥ १२४ । **गण् शकुनौ** । नुट् चेत्यनुवर्तते । शार्ङ्गः ॥ १२५ । **मुदिग्रोर्गग्गौ** मुद्गः । गर्गः ॥ १२६ । **अण्डन् कृसृवृभृञः** । करण्डः । सरण्डः पक्षी । भरण्डः स्वामी । वरण्डो मुखरोगः ॥ १२७ । **शॄदॄभसोऽदिः** । शरत् । 'दरद्धृदयकूलयोः' । भसत् जघनम् ॥ १२८ । **दृणातेः षुक् ह्रस्वश्च** । दृषत् ॥ १२९ । **त्यजितनियजिभ्यो डित्** । त्यद् । तद् । यद् । सर्वादयः ॥ १३० । **एतेस्तुट् च** । एतद् ॥ १३१ । **सर्तेरटिः** । 'सरट् स्याद्वातमेघयोः' । वेदभास्ये तु 'याभिः कृशानुम्' इति मन्त्रे 'सरड्भ्यो मधुमक्षिकाभ्यः' इति व्याख्यातम् ॥ १३२ । **लङ्घेर्नलोपश्च** । लघट् वायुः ॥ १३३ । **पारयतेरजिः** । पारक् सुवर्णम् ॥ १३४ । **प्रथः कित्संप्रसारणं च** । पृथक् । स्वरादिपाटदव्ययत्वम् ॥ १३५ । **भियः षुक् ह्रस्वश्च** । भिषक् ॥ १३६ । **युष्यसिभ्यां मदिक्**, 'युष्' सौत्रो धातुः । युष्मद् । अस्मद् । त्वम् । अहम् ॥ १३७ । **अर्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभायावापदियक्षिनीभ्यो मन्** । एभ्यश्चतुर्दशभ्यो मन् । अर्मश्चक्षूरोगः । स्तोमः सङ्घातः । सोमः । हामः । सर्मो गमनम् । धर्मः । क्षेमं कुशलम् । क्षोमम् । प्रज्ञाद्यणि—क्षौमं च । भाम आदित्यः ।

---

१२२ **भृञः** । डुभृञ् धारणपोषणयोः । किदित्यनुवर्तनात्किद्ग्रहणमिह स्पष्टार्थम् । 'भृङ्गो धूम्याटषिङ्गयोः । मधुव्रते भृङ्गराजे पुंसि भृङ्गं गुडत्वचि' इति मेदिनी ॥ १२३ **शृणातेः** । शॄ हिंसायामस्माद्गन् धातोर्ह्रस्वत्वं प्रत्ययस्य तु कित्त्व नुट् च । 'शृङ्गं प्रभुत्वे शिखरे चिह्ने क्रीडाम्बुयन्त्रके । विषाणोत्कर्षयोश्चाथ शृङ्गः स्यात्कूर्चशीर्षके । स्त्रीविषायां स्वर्णमीनभेदयोर्ऋषभौषधौ' इति मेदिनी । शृङ्गं विषाणमाख्यातं शैलाग्रे जलयन्त्रके । मीनौषधिसुवर्णानां भेदे शृङ्गी प्रयुज्यते' इत्युत्पलिनीकोषः ॥ १२४ **गण् शकुनौ** । शृणाते शकुनौ वाच्ये गण् स्यात्तस्य नुट् । 'अचोऽञ्णिति' इति धातोर्वृद्धिः । शार्ङ्गः पक्षी । शार्ङ्गं धनुरिति तु शृङ्गस्य विकार इति बोध्यम् ॥ १२५ **मुदिग्रोः** । मुद हर्ष, गॄ निगरणे, आभ्यां यथासंख्य गक् ग इत्येतौ स्तः । मुद्गः सस्यभेदः । गर्गो मुनिविशेषः ॥ १२६ **अण्डन्** । डुकृञ् करणे, सृ गतौ, भृञ् भरणे, वृञ वरणे । 'करण्डो मधुकोशासिकारण्डेषु ललाटके' इति मेदिनी । वरण्डोऽप्यन्तरावेदी समूहमुखरोगयोः' इति विश्वमेदिन्यौ । बाहुलकात् तॄ प्लवनतरणयोरित्यतोऽपि । 'तरण्डो वडिशीसूत्रबद्धकाष्ठादिके प्लवे' इति मेदिनी ॥ १२७ **शॄदॄ** । शॄ हिंसायाम्, दॄ विदारणे, भस भर्त्सनदीप्त्योः । शरत् स्त्री वत्सरेऽप्यृतौ । दरत्स्त्रियां प्रपाते च भयपर्वतयोरपि । भसत् स्त्री भास्वरे योनौ' इति मेदिनी । 'उवे अम्बसुलाभिके' इति मन्त्रव्याख्यायां भसद्भग इति वेदभाष्यम् 'जघन्यां पत्नीः संयाजयन्ति भसद्वीर्या हि स्त्रियः' इत्यत्र भसज्जघनमिति व्याख्यातारः ॥ १२८ **दृणातेः** । दॄ विदारणे, 'दृषन्निष्येषणशिलापट्टप्रस्तरयोः स्त्रियाम्' इति मेदिनी । १२९ **त्यजि** । त्यज हानौ, तनु विस्तारे, यज देवपूजादौ ॥ **त्यदित्यादि** । डित्वाट्टिलोपः ॥ १३० **एतेः** । इण् गतौ अस्मादविस्तस्य तुटि गुणः । एतद् ॥ १३१ **सर्तेः** । सृ गतौ । १३२ **लङ्घेः** । लघि शोषणे १३३ **पारयतेः** । पार तीर कर्मसमाप्तौ, चुरादिः ॥—**पारगिति** । णिलोपः कुत्वम् । १३४ **प्रथः** । प्रथ प्रख्याने ॥ १३५ **भियः** । ञिभि भये ॥ १३६ **युष्मसि** । असु क्षेपणे ॥ १३७ **अर्तिस्तु** । ऋ गतौ, ष्टुञ् स्तुतौ, षुञ् अभिषवे, हु दानादनयोः, सृ गतौ, धृञ् धारणे, क्षि क्षये, टुक्षु शब्दे, भा दीप्तौ, या प्रापणे, वा गतिगन्धनयोः, पद गतौ, णीञ् प्रापणे, 'सोमस्तुहिनदीधितौ । वानरे च कुबेरे च पितृदेवे समीरणे । वसुप्रभेदे कर्पूरे नीरे सोमलतौषधौ' इति मेदिनी ॥—**होम इति** । देवतोद्देशेन हविः प्रक्षेपः । 'धर्मोऽस्त्री पुण्य आचारे स्वभावोपमयोः क्रतौ । अहिंसोपनिषन्न्याये ना धनुर्यमसोमपे' इति च । 'धर्मः पुन्ये यमे न्याये स्वभावाचारयोः क्रतौ इति विश्वः । 'क्षौमं पट्टे दुकुलेऽस्त्री क्षौमं वल्कलजांशुके शणजेऽतसिजे' इति मेदिनी 'भामः क्रोधे रवौ दीप्तौ' इति च । 'यामस्तु पुंसि प्रहरे संयमेऽपि प्रकीर्तितः' इति च । 'वामं धने पुंसि हरे कामदेवे पयोधरे । वल्गुप्रतीपसव्येषु त्रिषु नार्यां स्त्रियामथ । वामीशृगालीवडवारासभीकरभीषु च' इति 'पद्मोऽस्त्री पद्मके व्यूहनिधिसंख्यान्तरेऽम्बुजे । ना नागे' इति च मेदिनी ।– **यक्षपूजायामिति** । अयमन्तस्थादिः । मनिन्प्रत्यये तु नकारान्तः शब्दः । 'क्षयः शोषश्च यक्ष्मा च' इत्यमरः । 'राजयक्ष्मेव इत्युज्ज्वलदत्तेनोपन्यस्तम् । तन्न । तस्य चवर्गतृतीयादित्वात् । अत एव 'अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां

यामः । 'वामः शोभनदुष्टयोः' । पद्मन् । 'यक्ष पूजायाम्' यक्ष्मो रोगराजः । नेमः ॥ १३८ । **जहाते सन्वदा-लोपश्च** । 'जिह्मः कुटिलमन्दयोः' ॥ १३९ । **अवतेष्टिलोपश्च** । मन्प्रत्ययस्यायं टिलोपो न प्रकृतेः । अन्यथा 'डित्' इत्येव ब्रूयात् । ज्वरत्वर'-२६५४ इति ऊठौ । तयोर्दीर्घे कृते गुणः । चादिपाठादव्ययत्वमित्युज्ज्वल-दत्तः । तन्न, तेषामसत्त्वार्थत्वात् । वस्तुतस्तु स्वरादिपाठादव्ययत्वम् । अवतीति अंम् ॥ १४० । **ग्रसेरा च** ग्रामः । १४१ । **अविसिविसिशुषिभ्यः कित्** । ऊमं नगरम् । स्यूमो रश्मिः । सिमः सर्वः । 'शुष्ममग्निसमीरयोः' १४२ । **इषियुधीन्धिदसिस्याधूसूभ्यो मक्** । 'इष्मः कामवसन्तयोः' । 'ईषि' इति पाठे दीर्घादि । युध्मः शरो योद्धा च । इध्मः समित् । दस्मो यजमानः । श्यामः । धूमः । सूर्मा(?)ऽन्तरिक्षम् । बाहुलकात् ईर्मं व्रणः ॥ १४३ । **युजिरुचितिजां** कुश्च । युग्मम् । रुक्मम् । तिग्मम् ॥ १४४ । **हन्तेर्हि च** । हिमम् ॥ १४५ । **भियः षुग्वा** । भीमः । भीष्मः ॥ १४६ । **धर्मः** । घृधातोर्मग्गोणश्च निपात्यते ॥ १४७ । **ग्रीष्मः** । ग्रसतेर्निपातोऽयम् १४८ । **प्रथेः षिवन् संप्रसारणं च** । पृथिवी । 'षवन्' इत्येके, पृथवी । 'पृथवी पृथिवी पृथ्वी' इति शब्दार्णवः १४९ । **अशूप्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्यः क्वन्** ॥ अश्वः । प्रुष स्नेहनादौ 'प्रुष्वः स्यादृतुसूर्ययोः' । प्रुष्वा

चुबुकादधि । यक्ष्मं सर्वस्मात्' इति मन्त्रे यक्ष्मशब्दस्यान्तः स्थादित्वम् । 'जक्षन् क्रीडन् रममाण' इत्यादि-मन्त्रे तु जक्षच्छब्दस्य चवर्गतृतीयादित्वं वेदभाष्यकृतो व्याचख्युः । 'नेमः कालेऽवधौ गर्ते प्रकारे कैतवेऽपि च' इति मेदिनी । 'नेमस्त्वर्धे प्रकारयर्तयोः । अवधौ कैतवे च' इति हेमचन्द्रः ॥ १३८ । **जहातेः** । ओहाक् त्यागे ।— **जिह्म इति** । मन्प्रत्ययस्य सन्वत्त्वाद् द्वित्वे 'सन्यतः' इतीत्वम् । 'जिह्मस्तु कुटिले मन्दे क्लीव तगरपादपे' इति मेदिनी ॥ १३९ **अवतेः** । अव रक्षणादौ । 'ओं प्रश्ने स्वीकृतौ रोषे' इति विश्वः ॥ १४० **ग्रसेरा च** । ग्रसु अदने । अतो मन्धातोराकारश्च । 'ग्रामः स्वरे संवसथे वृन्दे शब्दादिपूर्वके' इति विश्वः । शब्दादिपूर्वको ग्रामशब्दो वृन्दे, शब्दग्रामो गुणग्राम इति यथा । 'शब्दादिपूर्वो वृन्देऽपि ग्रामः' इत्यमरः । संपूर्वोऽय युद्धे । तदुक्तं—'संपूर्वः सयुगे स्मृतः' इति ॥ १४१ **अविसिवि** । अव रक्षणादौ, षिवु तन्तुसन्ताने, षिञ् बन्धने, शुष शोषणे' एभ्यो रन्स्यातस च कित् । ऊठादिकं पूर्ववत् ।— **ऊमं नगरमिति** । 'त्वे क्रतुम्' इति मन्त्रे ऊमास्तर्पका यजमाना इति वेदभाष्यम् । टापि बाहुलकाद्ध्रस्वत्वे 'उमाऽतसीहैमवतीहरिद्राकान्ति-कीर्तिषु' इति मेदिनी ।— **स्यूमो रश्मिरिति** । सूत्रतन्तुरित्यन्ये । सिमः सर्वनामगणे पठितः । शुष्मं तेजसि सूर्ये ना' इति मेदिनी । शुष्मं बलमिति वेदभाष्यम् ॥ १४२ **इषियुधि** । इष गतिहिंसादानेषु । इष गताविति केचित् । ईष्मः । युध संप्रहारे, ञिइन्धी दीप्तौ, दसु उपक्षये, श्यैङ् गतौ, धूञ् कम्पने, षूञ् प्राणिगर्भ-विमोचने ॥ युध्म इति । 'युध्मो धनुषि संयोगे' इति मेदिनी । 'दस्मस्तु यजमाने स्यादपि चौरे हुताशने' इति च । त्रिषु श्यामौ हरित्कृष्णौ श्यामा स्याच्छारिवा निशा इत्यमरः । 'श्यामो वटे प्रयागस्य वारिदे वृद्धदारके । पिके च कृष्णहरितोः पुंसि स्यात्तद्वति त्रिषु । मरीचे सिन्धुलवणे क्लीवं स्त्री शारिवौषधौ । अप्रसूताङ्गनायां च प्रियङ्गावपि । गुग्गुलौ । यमुनायां त्रियामायां कृष्णत्रिवृतिकौषधे । नीलिकायाम्' इति मेदिनी । **ईर्ममिति** । ईर गतौ । 'व्रणोऽस्त्रियामीर्ममरुः क्लीवे' इत्यमरः । बाहुलकात् जन जनन इत्यस्मा-दपि । जन्मम् । रुह बीजजन्मनीति निर्देशान्मनिनन्तोऽप्यस्ति स तु नान्तः । 'जनुर्जननजन्मानि' इत्यमरस्तु अकारान्तनकारान्तोभयसाधारणः ॥ १४३ **युजि** । युजिर् योगे, रुच दीप्तौ, तिज निशाने, एभ्यो मक् कवर्गश्चान्तादेशः । 'रुक्मं तु काञ्चने लोहे' इति विश्वमेदिन्यौ । तिग्मं तीक्ष्णम् ॥ १४४ **हन्तेः** । हन हिंसा-गत्योरस्यान्मक् धातोर्हिरादेशश्च । 'हिमं तुषारमलयोद्भवयोः स्यान्नपुंसकम् । शीतले वाच्यलिङ्गं' इति मेदिनी । १४५ **भियः** । ञिभी भये । बिभेत्यस्मादिति विग्रहः । 'भीष्मो गाङ्गेयघोरयोः । भीमोऽम्लवेतसे घोरे शम्भौ मध्यमपाण्डवे' इति मेदिनी ॥ १४६ **धर्मः** । घृ क्षरणदीप्त्योः ॥ १४७ **ग्रीष्मः** । ग्रसु अदने, 'घर्मः स्यादातपे ग्रीष्मेऽप्युष्णस्वेदाम्भसोरपि' । 'ग्रीष्म ऊष्णर्तुभेदयोः' इति च मेदिनी ॥ १४८ **प्रथेः** । प्रथ प्रख्याने । षित्त्वान्ङीष् । 'पृथवी पृथिवी पृथ्वी धरा सर्वंसहा रसा' इति शब्दार्णवः ॥ १४९ **अशूप्रुषि** । अशू व्याप्तौ, लट बाल्ये, कण निमीलने, खट काङ्क्षायाम् विश प्रवेशने । 'अश्वः पुंजातिभेदे च तुरगे च पुमानयम्' इति मेदिनी । 'अश्वः पुंभेदवाजिनोः' इति विश्वः । 'लट्वा करञ्जभेदे [illegible]

जलकणिका। लट्वा पक्षिभेदः फलं च। कण्वं पापम्। बाहुलकादित्वे— किण्वमपि खट्वा। विश्वम्॥ १५०। **इण् शीभ्यां वन्**। एवो गन्ता। ये च एवा मरुतः'। असत्वे निपातोऽयम्। 'शेवं मित्राय वरुणाय:'॥ १५१। **सर्वनिघृष्वरिष्वलष्वशिवपट्वप्रह्वेष्वा अतन्त्रे**। अकर्तर्येते निपात्यन्ते। सृतमनेन विश्वमिति सर्वम्। निपूर्वात् घृषेर्गुणाभावोऽपि, निघृष्यतेऽनेन निघृष्वः खुरः। रिष्वो हिंस्रः। लष्वा नर्तका। 'लिष्वः' इत्यन्ये, तत्रोपधाया इत्वमपि। शेतेऽस्मिन् सर्वमिति शिवः शम्भुः, शीङो ह्रस्वत्वम्। पट्वा रथ मूलोकश्च प्रह्वयते इति प्रह्वः। ह्वेञ अकारयकारलोपः, जहातेरालोपो वा। ईषेर्वन्, ईष्व आचार्यः। 'इष्वः, इत्यन्ये। अतन्त्र किम्। सर्ता मारुतः। बाहुलकात् ह्लसतेः ह्लस्वः॥ १५२। **शेवयह्वजिह्वाग्रीवाप्वमीवाः**। 'शवे' इत्यन्तोदात्तार्थम्। यान्त्यनेन यह्वः, ह्रस्वो दुगागमश्च। लिहन्त्यनया जिह्वा, लकारस्य जः, गुणाभावश्च गिरन्त्यनयाग्रीवा, ईडागमश्च। आप्नोतीतिआप्त्रा वायुः। मीवा उदरकृमिः। वापुरित्यन्ये॥ १५३। **कॄगॄशॄदॄभ्यो वः**। वर्षः काम आखुश्च। गर्वः। शर्वः। दर्वो राक्षसः॥ १५४। **कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः**। यौतीति युवा। वृषा इन्द्रः। तक्षा। राजा। धन्वा मरुः। धन्वः शरासयम्। द्युवा सूर्यः। प्रतिदीव्यन्त्यस्मिन् प्रतिदिवा दिवसः॥ १५५। **सप्यशूभ्यां तुट् च**। सप्त। अष्ट॥ १५६। **नञि जहातेः**। अहः॥ १५७। **श्वन्नुक्षन्पूषन्प्लीहन्क्लेदन्स्नेहन्मूर्धन्मज्जन्नर्यमन्विश्वप्सन्परिज्मन्मातरिश्वन्मघवन्निति**। एते त्रयोदश कनि प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। श्वयतीति श्वा। उक्षा। पूषा। 'प्लिह गतौ' इकारस्य दीर्घत्वम्, प्लेहतीति प्लीहा कुक्षिव्याधिः। 'क्लिदु आर्द्रीभावे' क्लिद्यति क्लेदा चन्द्रः। स्निह्यतेर्गुणः

इति विश्वमेदिन्यौ। 'कण्व पापे मुनौ पुंसि इति मेदिनी। 'किण्व बीजाघसीघुषु' इति च पठ्यते। खट्यते शयनार्थिभिः। काङ्क्ष्यते इति खट्वा। 'विश्वा ह्यतिविषायां स्त्री जगति स्यान्नपुंसकम्। न ना शुण्ठ्यां पुंसि देवप्रभेदेष्वखिले त्रिषु इति मेदिनी॥ १५०। **इण्**। इण गतौ। शीङ् स्वप्ने। शेवं सुखमिति वेदभाष्यम्। शेवं मेढ्रमित्युज्ज्वलदत्तः॥ **१५१ सर्वनिघृष्व**। सृ गतौ, घृषु संघर्षे, रिष हिंसायाम्, लष कान्तौ शीङ् स्वप्ने, पट गतौ ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च, ओहाक् त्यागे इति वा, ईष शब्दे। तन्त्रोशब्दोऽत्र कर्तृवाचीत्याह—**अकर्तरीति**॥—**निपात्यन्ते इति**। वन्प्रत्ययान्ततयेति शेषः। **ह्लस्व इति**। ह्लस शब्दे। 'ह्रस्वो न्यक्खर्वयोस्त्रिषु' इति मेदिनी॥ **१५२ शेव्यह्व**। एते वन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते॥—अन्तोदात्तार्थमिति। 'इण्शीभ्याम्' इत्यनेन आद्युदात्तत्वसिद्धेरितिभावः। शीङ् स्वप्ने। शेवा लिङ्गाकृतिः। दशपादीवृत्तिरीत्याऽऽह—**यान्त्यनेनेति**। उज्ज्वलदत्तस्तु यज देवपूजादौ। जकारस्य हकारो यह्वो यजमान इत्याह। वैदिकनिघण्टौ महन्नामसु यह्वशब्दः पठितः 'प्रवो यह्वं पुरूणां'। यह्वं महान्तमिति वेदभाष्यम्। लिह आस्वादने। लिहन्त्यनयेति जिह्वा। जि जये। हुगागमः। जिह्वा रसनेत्युज्ज्वलदत्तः॥ **ग्रीवेति**। गॄ निगरणे. आप्लृ व्याप्तौ. मीङ् हिंसायाम्॥—**मेवेति**। वेदे तु अमीवेति छित्वा अम रोग इत्यस्माद्वः, इट् चेत्युक्तम्। 'अमीवहा वास्त ष्पते' इत्यादिमन्त्रास्तत्रानुकूलाः॥ **१५३ कॄ गॄ**। कॄ विक्षेपे गॄ निगरणे, शॄ हिंसायाम् दॄ विदारणे। गर्वोऽहंकारः। शर्वो रुद्रः॥ **१५४ कनिन्यु**। यु मिश्रणे वृषु सेचने, तक्षू त्वक्षू तनूकरणे, राज् दीप्तौ, धवि गत्यर्थः द्यु अभिगमने, दीवु क्रीडादौ। 'युवा स्यात्तरुणे श्रेष्ठे निसर्गबलशालिनि इति, वृषा कर्णे महेन्द्रे ना' इति च मेदिनी। 'तक्षा तु वर्धकिस्त्वष्टा रथकारश्च काष्ठतट्' इत्यमरः। 'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः' इति च। 'समानौ मरुधन्वानौ' इति च अथास्त्रियाम्। धनुश्चापौ धन्वशरासनकोदण्डकार्मुकम्' इति चामरः। 'धन्वा तुमरुदेशे ना क्लीवे चापे स्थलेऽपि च' इति मेदिनी॥ **१५५ सप्यशूभ्याम्**। षप समवाये, अशू व्याप्तौ॥ **१५६ नञि**। ओहाक् त्यागे, कनिनि आतो लोपः॥ **१५७ श्वन्नुक्षन्**। टुओश्वि गतिवृध्द्योः, उक्ष सेचने, पुष वृद्धौ, ष्णिह प्रीतौ, मुह वैचित्ये, मुर्वी बन्धने। उकारस्य दीर्घत्वे वकारस्य धकार इत्युज्ज्वलदत्तः। टुमस्जो शुद्धौ। मस्जेः सकारस्य शकारस्तस्य जश्त्वेन जः। माङ् माने शब्दे च, प्सा भक्षणे, जनी प्रादुर्भावे, टुओश्वि गतिवृध्द्योः॥—**कनिप्रत्ययान्ता इति**। नायं निदिति भावः। केचित्तु नित्यं स्वीकृत्य उक्षन्नादीनां सूत्रेऽन्तोदात्तनिपातनमाहुः। तच्च गौरवग्रस्तमित्यपेक्ष्यम्॥ **श्वेति**। इकारलोप निपात्यते॥ **पूषेति**। 'सौ च' इत्युपधादीर्घः। 'इन्हन्' इति नियमात्पूषणौ

स्निह्यतीति स्नेहा सुहृच्चन्द्रश्च। मुह्यन्त्यस्मिन्नाहते मूर्धा, मुहेरुपधाया दीर्घो धोऽन्तादेशो रमागमश्च। मज्जत्यस्थिषु मज्जा अस्थिसारः। अर्यपूर्वो माङ्, अर्यमा। विश्व प्सातिं विश्वप्सा अग्निः। परिजायते परिज्मा चन्द्रोऽग्निश्च, जनेरुपधालोपो मश्चान्तादेशः। मातरि अन्तरिक्षे श्वयतीति मातरिश्वा, धातोरिकारलोपः। 'मह पूजायाम्' हस्य घो वुगागमश्च, मघवा इन्द्रः॥ इत्युणादिषु प्रथमः पादः॥

अथ द्वितीयः पादः

१५८। **कृहृभ्यामेणुः**। करेणुः। हरेणुर्गन्धद्रव्यम्॥ १५९। **हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्**। हथो विषण्णः कुष्ठः। नीथा नेता। रथः। काष्ठम्॥ १६०। **अवे भृञः**। अवभृथः। १६१। **उषिकुषिगार्तिभ्यः स्थन्**। ओष्ठः। कोष्ठम्। गाथा। अर्थः। बाहुलकात् शाथः॥ १६२। **सर्तेर्णित्**। सार्थः। समूहः॥ १६३। **जॄवृञ्भ्यामूथन्**। जरूथं मांसम्। 'वरूथो रथगुप्तौ ना'॥ १६४। **पातॄतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक्**। 'पिथो रविर्धृतं पीथम्'। 'तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्यायमन्त्रिषु। अवतारर्षिजुष्टाम्भःस्त्रीरजःसु च विश्रुतम्' इति विश्वः। तुत्थोऽग्निः। उक्थं सामभेदः। रिक्थम्। बाहुलकाद्दचेरपि—रिक्थमृक्थं धनं वसु'। सिक्थम्॥ १६५। **अर्तेर्निरि**। निर्ऋथं साम॥ १६६। **निशीथगोपीथावगथाः**। निशीथोऽर्धरात्रः, रात्रिमात्रं च।

पूषण इत्यादौ न दीर्घः। 'क्लेदौषधिशशाङ्कयोः' इति यादवः॥—**मूर्धेति**। 'मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः॥ **मज्जेति**। नकारान्तोऽयम्। टाबन्तोऽप्यभ्युपगम्यते। 'ऊष्मया सार्धमूष्मापि मज्जोक्ता मज्जया सह' इति द्विरूपकोषात्। 'अर्यमा तु पुमान्सूर्ये पितृदेवान्तरेऽपि च' इति मेदिनी॥ **परिजायत इत्यादि**। एतच्च दशपादीवृत्त्यनुरोधेनोक्तम्। 'परिज्मानं सुखं रथम्' इति मन्त्रस्य वेदभाष्ये तु परिज्मा परितो गन्ता अञ्जेः परिपूर्वस्य 'श्वन्नुक्षन्' इत्यादिना मनुप्रत्ययः, अकारलोपः, आद्युदात्तत्वं च निपात्यत इत्युक्तम्। उज्ज्वलदत्तस्तु परिज्वेति पठित्वा जु इति सौत्रो धातुः परिपूर्वः, यणादेशः परिज्वा चन्द्रः इत्याह, तल्लक्ष्यविरोधादुपेक्ष्यम्॥—**मातरिश्वेति**। सप्तम्या अलुक्। इति भत्वविषये संप्रसारणं न भवति। 'श्वयुव' इति सूत्रे अभिव्यक्ततरत्वेन कुक्कुरवाचकस्यैव श्वशब्दस्य तदन्तस्य च ग्रहणात्। तेन मातरिश्वनः मातरिश्वनेत्येव इह सूत्रे इतिशब्दे आद्यर्थस्तेनान्येभ्योऽपि यथादर्शनं कनिः प्रयोक्तव्यः। दशपाद्यां तु इति शब्दोऽत्र न पठ्यते इत्युणादिषु प्रथमः पादः।

१५८। **कृहृभ्याम्**। डुकृञ् करणे, हृञ् हरणे। 'करेणुरिभ्यां स्त्री नेभे' इत्यमरः। 'करेणुर्गजयोषायां स्त्रियां पुंसि मतङ्गजे' इति मेदिनी॥—**गन्धद्रव्यमिति**। कलायश्चेति बोध्यम्। 'कलायस्तु सतीनकः' इत्यमरः। 'हरेणुखण्डिके चास्मिन्' इत्यमरः। 'हरेणुर्ना सतीने स्त्री रेणुकाकुलयोषितोः' इति मेदिनीविश्वप्रकाशौ॥ १५९। **हनिकुषि**। हन हिंसागत्योः, कुष निष्कर्षे, णीञ् प्रापणे, रमु क्रीडायाम्, काशृ दीप्तौ। कुष्ठं रोगे पुष्करे स्त्री' इति मेदिनी। 'कुष्ठं रोगे सुगन्धे च' इति विश्वः। नीथे नीथे मघवानं सुतास.' इति मन्त्रे नीथशब्दस्यान्तोदात्तत्वं बाहुलकात्। नीथे नीथे स्तोत्रे स्तोत्रे इति वेदभाष्यम्। 'रथः पुमानवयवे स्यन्दने वेतसेऽपि च' इति मेदिनी। 'रथः स्यात्स्यन्दने काये वीरणे वेतसेऽपि च' इति विश्वः। 'काष्ठा दारुहरिद्रायां कालमानप्रकर्षयोः स्थानमात्रे दिशि च स्त्री दारुणि स्यान्नपुंसकम्' इति मेदिनी॥ १६० **अवे**। डुभृञ् धारणपोषणयोः। अवभृथो यज्ञावसानम्॥ १६१ **उषिकुषि**। उष दाहे, कुष निष्कर्षे, गै शब्दे, ऋ गतौ, एभ्यः स्थन्। 'कोष्ठं कुक्षिकुसूलयोः। गाथा शोके संस्कृतान्यभाषायां शेषवृक्षयोः' इति मेदिनी। 'अर्थोऽभिधेयवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु' इत्यमरः। शोणः श्वयथुः। शु गतौ॥ १६२ **सर्तेः**। सृ गतौ। 'सार्थो वणिक्समूहे स्यादपि संघातमात्रके' इति मेदिनीविश्वप्रकाशौ॥ १६३ **जॄवृञ्**। ज्या वयोहानौ क्र्यादिः, जॄष् विवादौ। वृञ् वरणे। जरूथोऽसुरविशेष इति वेदभाष्यम् 'जरूथं स्यात्तनुत्राणे रथगोपनवेश्मनोः' इति हेमचन्द्रः॥ १६४ **पातॄ**। पा पाने, तॄ प्लवनतरणयोः तुद व्यथने, वच परिभाषणे विचिर् विरेचने, षिच क्षरणे, ऋच स्तुतौ। 'तुत्थोऽग्नावञ्जने तुत्था नीलीसूक्ष्मैलयोरपि' इति विश्वः। 'तुत्थमञ्जनभेदे स्यान्नीलीसूक्ष्मेलयोः स्त्रियाम्। 'सिक्थो भक्तपुलाके ना मधूच्छिष्टे नपुंसकम्' इति मेदिनी॥ १६५ **अर्तेः**। ऋ गतौ 'द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम्' इति मन्त्रे निर्ऋथो हिंसेति वेदभाष्यम्॥ १६६ **निशीथ**। शीङ् स्वप्ने

गोपीथं तीर्थम् । अवगथः प्रातः स्नातः ॥ १६७ । **गश्चोदि** । उद्गीथः साम्नो भागविशेषः ॥ १६८ । **समीणः** समिथो वह्निः संग्रामश्च ॥ १६९ । **तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः** । तिजेर्जलोपः, तिथोऽनलः कामश्च । पृष्ठम् । गूथं विष्ठा । यूथं समूहः । 'प्रोथमस्त्री तुरङ्गास्ये प्रोथः प्रस्थित उच्यते' ॥ १७० । **स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदृपिवन्द्युन्दिश्वितिवृत्यजिनीपदिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिचन्दिदहिदसिदम्भिवसिवाशिशीङ्हसिसिधिशुभिभ्यो रक्** । द्वात्रिंशतो रक् स्यात् । वलि यलोपः, स्फारम् । न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम्—तक्रम् । वक्रम् । शक्रः । क्षिप्रम् । क्षुद्रः । सृप्रश्चन्द्रः । तृप्रः पुरोडाशः । दृप्रो बलवान् । वन्द्रः पूजकः । उन्द्री, उन्द्रो जलचरः । श्वित्रं कुष्ठम् । 'वृत्रो रिपौ ध्वनौ ध्वान्ते शैले चक्रे च दानवे' । अजेर्वी, वीरः । नीरम् । पद्रो ग्रामः । मद्रो हर्षो देशभेदश्च । 'मुद्रा प्रत्ययकारिणी' । 'खिद्रो रोगो दरिद्रश्च' । छिद्रम् । भिद्रं वज्रम् । मन्द्रः । चन्द्रः । पचाद्यचि 'चन्दः' अपि । 'हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्रः शशी चन्दो हिमद्युतिः' । दह्रोऽग्निः । दस्रः स्वर्वैद्यः । 'दभ्रः समुद्रः स्वल्पं च' । वसेः संप्रसारणे—

३१६८ । **न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम्** । ८।३।११० । रेफपरस्य सकारस्य सृप्यादीनां सवनादीनां च मूर्धन्यो न स्यात् । 'पूर्वपदात्'–३६४१ इति प्राप्तः प्रतिषिद्धः इति वृत्तिभूयोऽभिप्रायः । तेन 'शासिवसि

निपूर्वः, पा पाने गोपूर्वः, 'घुमास्था'-इतीत्वम् । गाङ् गतौ । अवपूर्वस्य धातोः ह्रस्वत्वम् । 'निशीथस्तु पुमानर्धरात्रे स्याद्रात्रिमात्रके' इति मेदिनी । 'प्रतिरस्य चारुमध्वरम्' इति मन्त्रे 'गोपीथः सोमपानम्' इति वेदभाष्यम् । तीर्थमिति तु वृत्तिकारः ॥ १६७ **गश्चोदि** । उदि उपपदे गै शब्दे इत्यस्मात् थक् ॥ १६८ **समीणः** । इण् गतावस्मात्समि उपपदे थक् । शमिथशब्दः संग्रामपर्यायेषु वैदिकनिघण्टौ पठितः । 'श्रिये जातः' इति मन्त्रे समिथाः=युद्धानीति वेदभाष्यम् । तच्च युक्तमेव, सम्यगेति जयार्थमत्रेति व्युत्पत्तेः । संपूर्वकेणः क्तिन्नाद्यन्तस्य लोकेऽपि युद्धार्थत्वदर्शनाच्च । उक्तं ह्यमरेण— 'समित्याजिसमिद्युधः' इति ॥ १६९ **तिथपृष्ठ** । तिज निशाने, पृषु सेचने, गु पुरीषोत्सर्गे, यु मिश्रणे, प्रुङ् गतौ एते थक्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'पृष्ठं तु चरमं तनोः' इत्यमरः । पृष्ठं चरममात्रेऽपि देहस्यावयवान्तरे' इति मेदिनी । स्तोत्रविशेषोऽपि पृष्ठम्, 'पृष्ठैः स्तुवते' इत्यादौ तथा निर्णयात् ॥ **गूथमिति** । निपातनाद्दीर्घः । एवं यूथेऽपि । **यूथं** तिर्यक्समूहेऽपि वृन्दमात्रेऽपि भाषितम्' इति विश्वः । 'यूथं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम्' इति रघुः ॥ **प्रोथमिति** निपातनाद्गुणः । 'प्रोथोऽस्त्री हयघोणायां ना कटयामध्वगे त्रिषु' इति मेदिनी ॥ १७० **स्फायितञ्चि** । स्फायी वृद्धौ, तञ्चु संकोचने, वञ्चु प्रलम्भने, शक्लृ शक्तौ, क्षिप प्रेरणे, क्षुदिर् संपेषणे, सृप्लृ गतौ, तृप प्रीणने, दृप हर्षमोचनयोः, वदि अभिवादनस्तुत्योः, उन्दी क्लेदने, श्विता वर्णे, वृतु वर्त्तने, अज गतिक्षेपणयोः णीञ् प्रापणे, पद गतौ, मद हर्षे मुद हर्षे, खिद दैन्ये छिदिर् द्वैधीकरणे, भिदिर् विदारणे, मदि स्तुतौ, चदि आह्लादने, दह भस्मीकरणे, दसु उपक्षेपे, दम्भु दम्भने, वस निवासे, वाशृ शब्दे, शीङ् स्वप्ने, हसे हसने षिध गत्याम्, शुभ दीप्तौ ॥ **द्वात्रिंशत इति** । दशपाद्यां तु त्रयस्त्रिंशदुक्ताः । दम्भिवहिवमीति पठित्वा 'वह प्रापणे' ऊहोऽनड्वानित्युदाहरणात् । माधवोऽप्येवम् ॥ **स्फारमिति** । 'नेड्वशि कृति' इति नेट् । वलि यलोपः । 'स्फार स्यात्पुंसि विकटे करकादेश्च बुद्बुदे' इति मेदिनी ॥ **तक्रमिति** । 'तक्रं ह्युदश्विन्मथितं पादाम्ब्वर्धाम्बु निर्जलम्' इत्यमरः । 'वक्रः स्याज्जटिले क्रूरे पुटभेदे शनैश्चरे' इति विश्वः । 'शक्रः पुमान् देवराजे कुटजार्जुनभूरुहोः' इति मेदिनी । 'क्षुद्रः स्यादधमक्रूरकृपणाल्पेषु वाच्यवत्' इति मेदिनी ॥ **तृप्रः पुरोडाश इति** । 'न तृप्रा उरुव्यचसम्' इति मन्त्रे वेदभाष्यकारैरित्थं व्याख्यातं, प्रकृतसूत्रे उज्ज्वलदत्तादिभिश्च । दशपादीवृत्तौ तु तृप्रमाज्यं काष्ठं चेत्युक्तम् । तृप्रं दुःखमिति सुब्धातुवृत्तौ माधवः । हिमांशुरित्यादि—हिमद्युतिरित्यन्तं शब्दार्णवः । दस्यति रोगानुक्षिपतीति दस्रः । 'दस्रः खरेऽश्विनीसुते' इति मेदिनी । 'दस्रः खरे चाश्विनयोः' इति विश्वः ॥ **३१६८ शासिवसीति प्राप्तमपि नेति** । एवं च 'अविन्दद् उस्रियाः' इति मन्त्रे षत्वाभावः सिद्धः । माधवस्तु वृत्तिग्रन्थानुरोधेन बाहुलकादिह षत्वं नेति व्याचष्ट । **'उस्रो वृषे च किरणे उस्रार्जुन्युपचित्रयोः' इति मेदिनी । माहेयी सौरभेयी गौरुस्रा माता च शृङ्गिणी'**

२४१० इति प्राप्तमपि न। उस्रो रश्मिः। उस्रा गौः। वाश्रो दिवसः। वाश्रं मन्दिरम्। शीरोऽजगरः। हस्रो मूर्खः। सिध्रः साधुः। सुभ्रम्। बाहुलकात्—मुसे* रक्, मुस्रम्। उदश्रु॥ १७१। **चकिरम्योरुच्चोपधायाः।** चुक्रमम्लद्रव्यम्। रुम्रोऽरुणः॥ १७२। **वौ कसेः।** विकुस्रश्चन्द्रः॥ १७३। **अमितम्योर्दीर्घश्च।** आम्रम्। ताम्रम्॥ १७४। **नि देर्नलोपश्च।** निद्रा॥ १७५। **अर्देर्दीर्घश्च।** आर्द्रम्॥ १७६। **शुचेर्दश्च।** शूद्रः॥ १७७। **दुरीणो लोपश्च।** दुःखेनेयते प्राप्यत इति दूरम्॥ १७८। **कृतेश्छः क्रू च।** कृच्छ्रम् क्रूरः॥ १७९। **रोदेर्णिलुक् च।** रोदयतीति रुद्रः १८०। **बहुलमन्यत्रापि संज्ञाछन्दसोः।** णिलुगित्येव

इत्यमरः। वाश्रो ना दिवसे क्लीवं मन्दिरे च चतुष्पथे' इति मेदिनी। 'वाश्रो रासभपक्षिणोः' इत्येके। माधवेन तु 'वाश्रेव विद्युन्मिमाति' इति मन्त्रे शब्दयुक्ता प्रस्तुतस्तना धेनुर्वाश्रेति व्याख्यातम्। 'शुभ्रं स्यादभ्रके क्लीवमुद्दीप्रशुक्लयोस्त्रिषु' इति मेदिनी॥ **मुस्रमिति।** मुस खण्डने॥ १७१। **चकि।** चक तृप्तौ, रमु क्रीडायाम्, 'चुक्रस्तत्म्लेऽम्लवेतसे। चुक्री चाङ्गेरिकायां स्याद् वृक्षाम्ले चुक्रमिष्य' इति विश्वः॥ १७२ **वौ कसेः।** कस गतौ। विपूर्वादस्माद्रक् स्यादुत्व चोपधायाः॥ १७३ **अमि।** अम गत्यादिषु:, तमु काङ्क्षायाम्। आभ्यां रक स्यादुपधाया दीर्घश्च॥ १७४ **निन्देः।** णिदि कुत्सायाम्॥ १७५ **अर्देः।** अर्द गतौ। 'आर्द्रा नक्षत्रभेदे स्यात्स्त्रियां क्लिन्नेऽभिधेयवत्' इति मेदिनी॥ १७६ **शुचेः।** शुच शोके, अस्माद्रक् दश्चान्तादेशः, धातोर्दीर्घश्च। शूद्रो वृषलः। 'अहहा रे त्वा शूद्र' इति श्रुतौ तु रूढेर्बाधाद् योग एव पुरस्कृतः तथा चोत्तरतन्त्रे भगवता व्यासेन सूत्रितं 'शुगस्य तदनादरश्रवणात्' इति। १७७ **दुरीणो।** इण् गताविस्यस्माद्दुरुपपदे रक् स्याद्धातोर्लोपश्च। 'रो री' इति रेफस्य लोपे 'ढ्लोपे' इति दीर्घः॥ १७८ **कृतेः।** कृती च्छेदने इत्यस्माद्रक् स्यात् छ क्रू इत्येतावादेशौ च स्तः। छस्त्वन्त्यस्यादेशः। क्रू त्वनेकाल्त्वात्सर्वस्यादेशः। 'कृच्छ्रमाख्यातमाभीले पापसांतपनादिनोः' इति विश्वमेदिनौ। 'स्यात्कष्टं कृच्छ्रमाभीलम्' इत्यमरः। 'क्रूरस्तु कठिने घोरे नृशंसे चाभिधेयवत्' इति विश्वः। नृशंसो घातुकः क्रूरः पापो धूर्तस्तु वञ्चकः' इत्यमरः १७९ **रोदेः।** रुदिर् अश्रुविमोचने। ण्यन्तादस्माद्रक् णेश्च लुक्। 'णेरनिटि' इति लोपे तु 'पुगन्त' इति गुणः स्यादिति णिलुक् चेत्युक्तम्॥ **रोदतीति रुद्र इति।** नन्वेवं 'सोऽरोदीद्यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्' इति श्रुत्या सह विरोधोऽत्र स्यादिति चेत्। अत्राहुः—'कर्तरि कृत्' इति सूत्रानुरोधेन शम्भुरित्यत्र शं भावयतीत्यन्तर्भावितण्यर्थता यथा स्वीक्रियते तथा अरोदीदित्यत्राप्यन्तर्भावितण्यर्थतायां स्वीकृतायां रोदनं कारितवानित्यर्थत्वाभावान्नास्ति श्रुतिविरोधः। न च देवैरग्नौ वामं वसु स्थापितं, तच्च धनं देवैर्याचितं चेदग्निस्तु रोदनं कृतवानिति सोऽरदीदित्यादिश्रुत्यर्थादिहान्तर्भावितण्यर्थकल्पनं न संभवतीति श्रुतिविरोधस्त्वपरिहार्य एवेति वाच्यम्। देवैः स्थापितं वामं वसु देवेभ्योऽग्निना न दत्तं ते देवा एव रोदनं कृतवन्तः। अग्निस्तु तदीयमदत्वा रोदनं कारितवानित्यर्थकल्पनायाः संभवात्। अथवाऽग्नौ प्रयुज्यमानरुद्रशब्दस्य रोदितीति रुद्रः' इत्येवार्थोऽस्तु। परन्तु ब्रह्मविष्णुरुद्रा इति व्यवह्रियमाणो यो रुद्रस्तद्वाचकरुद्रशब्दस्य 'रोदेः' इत्युणादिसूत्रानुरोधेन 'रोदयतीति रुद्रः' इत्येवार्थकल्पनायां बाधकाभावात् श्रुतिविरोधोऽत्र नास्त्येवेति॥ १८० **अन्यत्रापीति।** धात्वन्तरात्प्रत्ययान्तरेऽपि णेर्लुगित्यर्थः। संज्ञायामुदाहरणम्—बृंहयति=वर्धयति प्रजा इति ब्रह्मा। शं सुखं भावयतीति शम्भुरित्यादि। छन्दसि तु वृधु वृद्धौ। 'वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयः' वर्धयन्त्वित्यर्थः। 'य इमा जजान', जनी प्रादुर्भावे, लिटि रूपम्। जनयामासेत्यर्थः। इह णलि परतः 'अत उपधायाः' इति वृद्धिर्भवत्येव, 'जनिवध्योश्च' इति निषेधस्य चिणि ञिति णिति किति च स्वीकारात्। न च णिलोपे सति प्रत्ययान्तत्वात् 'कास्प्रत्ययात्' इत्याम्स्यादिति वाच्यम्। 'अमन्त्रे इति पर्युदासादामोऽप्रसक्तेः 'कास्यनेकाचः' इति इति वार्तिकेन तु आमशङ्का दूरापास्तैव, लिटि णिलोपे सत्यनेकाच्त्वाभावात्॥ ननु णलि 'णेरनिटि' इत्यनिडादावार्धधातुके णिलोपे जजानेति रूपं सिद्धमिति किमनेन लुक्युदाहरणेन ? इति चेन्मैवम्। णिलोपे सति 'जनीजॄष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च' इति णौ मित्वे 'मितां ह्रस्वः' स्यात्, प्रत्ययलक्षण-

---

* केचित्तु 'मुसे रक्' इति सूत्रमेवेत्याहुः।

'वान्ति पर्णशुषो वातास्ततः पर्णमुचोऽपरे। ततः पर्णरुहो वान्ति ततो देवः प्रवर्षति ॥'

१८१। **जोरी च**। जीरोऽणुः। 'ज्यश्च' इत्येके ॥ १८२। **सुसूधागृधिभ्यः क्रन्**। सुरः। सूरः। धीरः। गृध्रः ॥ १८३। **शुसिमीनां दीर्घश्च**। शुः सौत्रः, शूरः। सीरम्। चीरम्। मीरः समुद्रः ॥ १८४। **वाविन्धेः** वीध्रं विमलम्। १८५। **वृद्धिवपिभ्यां रन्**। वर्ध्रं चर्म। वप्रः प्राकारः ॥ १८६। **ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्रकुब्रचुब्रक्षुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुक्रशुक्लगौरवव्रेरामालाः**। रन्नन्ता एकोनविंशतिः। निपातनाद्गुणाभावः, ऋज्रो नायकः। इदि, इन्द्रः। अङ्गेर्नलोपः, अग्रम्। 'वज्रोऽस्त्री हीरके पवौ'। डुवप्, उपधाया इत्वम्, विप्रः। कुम्बिचुम्ब्योर्नलोपः—कुब्रमरण्यम्, चुब्रं मुखम्। क्षुर विलेखने' रेफलोपः, अगुणः, क्षुरः। 'खुर छेदने' रलोपो गुणाभावश्च, खुरः। भन्देर्नलोपः, भद्रम्। 'उच समवाये' चस्य गः, उग्रः। ञिभी, भेरी। पक्षे लः भेलो जलतरणद्रव्यम्। शुचेश्चस्य कः शुक्रः। पक्षे लः शुक्लः। गुङ्, वृद्धिः, 'गौरोऽरुणे सिते पीते'। 'वन

न्यायो न प्रवर्तत इति मित्त्वाभावादिष्टं सिध्यति ॥ बाहुलकादसञ्ज्ञाछन्दसोरपि क्वचिद्भवतीत्याशयेनोदाहरति —**वान्तीत्यादि**। पर्णानि शोषयन्तीति पर्णशुषः। पर्णानि मोचयन्तीति पर्णमुचः ॥ १८१ **जोरी च**। जु गतौ, सौत्रोः। अस्माद्रक् ईकारश्चान्तादेशः। 'जीरः खड्गे वणिग्द्रव्ये' इति विश्वः। 'जीरस्तु जरणे खड्गे' इति मेदिनी ॥—**ज्यश्चेति**। ज्या वयोहानौ। अस्माद्रक्, 'ग्रहिज्या' इति संप्रसारण पूर्वरूपम् 'हलः' इति दीर्घः ॥—**एके इति**। मुख्या इत्यर्थः। तथा च 'न धातुलोपः' इति सूत्रे 'जीवरदानुः' इत्यस्य प्रत्याख्यानार्थं 'नैतज्जीवे रूपं' किं तु 'रकि ज्यः संप्रसारणम्' इति भाष्ये उक्तम् ॥ १७२ **सुसूधा**। षुञ् अभिषवे, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने, डुधाञ् धावणादौ, गृधु अभिकाङ्क्षायाम्। 'सुरा चषकमद्ययोः। पुंलिङ्गस्त्रिदिवेशे स्यात्' इति मेदिनी। 'सुरो देवे सुरा मद्ये चषकेऽपि सुरा क्वचित्' इति विश्वः। सुवति प्रेरयति कर्मणि लोकमिति सूरः सूर्यः। 'सूरसूर्यार्यमादित्य' इत्यमरः। 'धीरो धैर्यान्विते स्वैरे बुधे क्लीबं तु कुङ्कुमे। स्त्रियां श्रवणतुल्यायाम्' इति मेदिनी। 'गृध्र खगान्तरे पुंसि वाच्यलिङ्गोऽथ लुब्धके' इति च ॥ १८३ **शुसिचि**। शु गतौ, षिञ् बन्धने, चिञ् चयने, डुमिञ् प्रक्षेपणे, एभ्यः क्रन् एषां दीर्घत्वं च 'शूरः स्याद्यादवे भटे' इति मेदिनी। शूरश्चारुभटे सूर्ये' इति विश्वहेमचन्द्रौ। 'सीरोऽर्कहलयोः पुंसि चीरी झिल्लया नपुंसकम् गोस्तने वस्त्रभेदे च रेखालेखनभेदयोः इति मेदिनी। चीरं तु गोस्तने वस्त्रे चूडायां सीसकेऽपि च। चीरी कृच्छ्राटिकाझिल्लयोः इति विश्वः। १८४ **वाविन्धेः**। ञिइन्धी दीप्तौ। विपूर्वादस्यात् क्रन्, अनिदिताम् इति नलोपः वीध्र तु विमलार्थकम् इति विशेष्यनिघ्नेऽमरः ॥ १८५ **वृधि**। वृधु वृद्धौ, डुवप् वीजसन्ताने। 'वप्रः पितरि केदारे वप्रः प्राकाररोधसोः' इति धरणिरन्तिदेवौ। 'वप्रस्ताते पुमानस्त्री वेणुक्षेत्रचये तटे' इति मेदिनी ॥ १८६ **ऋज्रेन्द्राग्र**। ऋज गतिस्थानार्दिषु, इदि परमैश्वर्ये, अगि गतौ वज गतौ, डुवप् वीजसन्ताने, कुवि आच्छादने, चुवि वक्त्रसंयोगे, भदि कल्याणे, शुच शोके, गुङ् अव्यक्ते शब्दे, इण् गतौ ॥—**नायक इति**। '**ऋज्राश्वः** पृष्टिभिरम्बरीषः' इति मन्त्रे 'ऋज्रा गतिमन्तोऽश्वा यस्य स ऋज्राश्वः' इति वेदभाष्यम्। 'इन्द्रः शचीपतावन्तरात्मन्यादित्ययोगयोः' इति विश्वः। 'अग्रं पुरस्तादुपरि परिमाणे पलस्य च। आलम्बने समूहे च प्रान्ते स्यात्पुंनपुंसकम्। अधिके च प्रधाने च प्रथमे चभिधेयवत्' इति मेदिनी। क्षुर लोमच्छेदकः। 'क्षुरः स्याच्छेदनद्रव्ये कोकीलाक्षे च गोक्षुरे' इति विश्वमेदिन्यौ। 'खुरः कोलदले शफे' इति मेदिनी। 'भद्रः शिवे खञ्जरीटे वृषभे तु कदम्बके। करिजातिविशेषे ना क्लीबं मङ्गलमुस्तयोः' इति च। 'उग्रः शूद्रासुते क्षत्राद्रुद्रे पुंसि त्रिषूत्कटे। स्त्रीवचाक्षुद्रयोः' इति मेदिनी। **भेरीति** गौरादित्वान्ङीष्। 'भेरी स्त्री दुन्दुभिः पुमान् इत्यमरः। 'भेलः प्लवे भीलुके च निर्बुद्धिमुनिभेदयोः' इति विश्वः। 'भेलः प्लवे मणौ पुंसि भीरावज्ञे च वाच्यवत्' इति। 'शुक्रः स्याद्भार्गवे ज्येष्ठमासे वैश्वानरे पुमान् रेतोऽक्षिरुग्भिदोः क्लीबं शुक्लो योगान्तरे सिते। नपुंसकं तु रजते' इति च। 'गौरः पीतेऽरुणे श्वेते विशुद्धेऽप्यभिधेयवत्। ना श्वेतसर्षपे चन्द्रे न द्वयोः पद्मकेसरे। गौरी त्वसंजातरजःकन्याशंकरभार्ययोः। रोचने रजनीपिङ्गाप्रियङ्गुवसुधासु च। आपगाया विशेषेऽपि यादसांपतियोषिति' इति च मेदिनी। नदीभेदे च गौरी स्याद्वरुणस्य च योषिति' इति विश्वः। 'अष्टवर्षा तु या दत्ता श्रुतशीलसमन्विते। सा गौरी तत्सुतो

संभक्तौ' वनो विभागी। इणो गुणाभावः 'इरा मद्ये च वारिणि'। 'मा माने' माला ॥ १८७। **समिकस उकन्**। 'कस गतौ' सम्यक्कसन्ति पलायन्ते जना अस्मादिति संकुसुको दुर्जनः, अस्थिरश्च ॥ १८८। **पचिनशोर्णकन् कनुमौ च**। पचेः कः, पाकुकः सूपकारः। नशेर्मम्, नंशुकः ॥ १८९। **भियः क्रुकन्**। भीरुकः ॥ १९०। **क्वुन् शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि**। रजकः। इक्षुकुट्टकः। चरकः। 'चष भक्षणे' चषकः। शुनकः। भषकः ॥ १९१। **रमे रश्च लो वा**। रमको विलासी, लमकः ॥ १९२। **जहातेर्द्वे च**। जहकस्त्यागी कालश्च ॥ १९३। **ध्मो धम च**। धमकः ॥ कर्मकारः ॥ १९४। **हन वध च**। वधकः ॥ १९५। **बहुलमन्यत्रापि**। 'कुह विस्मापने'। कुहकः। कृतकम् ॥ १९६। **कृषेर्वृद्धिश्चोदीचाम्**। कार्षकः कृषकः ॥ १९७। **उदकं च**। प्रपञ्चार्थम् ॥ १९८। **वृश्चिकृषोः किकन्**। वृश्चिकः। कृषिकः ॥ १९९। **प्राङि पणिकषः**। प्रापणिकः पण्यविक्रयी। प्राकषिकः परदारोपजीवी ॥ २००। **मुषेर्दीर्घश्च**। मूषिकः आखुः। २०१। **स्यमेः संप्रसारणं च**। चाद्दीर्घः। सीमिको वृक्षभेदः ॥ २०२। **क्रिय इकन्**। क्रयिकः, क्रेता ॥ २०३ **आङि पणिपनिपतिखनिभ्यः**। आपणिकः। आपनिकः इन्द्रनीलः कीरातश्च। आपतिकोः श्येनो दैवायत्तश्च आखनिको मूषिको वराहश्च ॥ २०४। **स्य स्त्याहृञविभ्य इनच्**। श्येनः। स्त्येनः। हरिण। अविनो-

---

यस्तु स गौरः परिकीर्तितः' इति ब्रह्माण्डवचनं श्राद्धकाण्डे हेमाद्रिणोदाहृतं। एतेन 'गौरः शुच्याचारः' इत्यादि भाष्यं व्याख्यातम्। 'इराभूवाक्सुराप्सु च' इति मेदिनी ॥ **मालेति**। प्रत्ययरेफस्य लत्वम्। 'मालं क्षेत्रे स्त्रियां पुङ्क्तिस्रजोर्जात्यन्तरे पुमान्' इति मेदिनी। 'मालं क्षेत्रे जने मालो माला पुष्पादिदामनि' इति विश्वः। 'मालमुन्नतभूतलम्' इत्युत्पलः। 'क्षेत्रमारुह्य मालम्' इति मेघदूतः। मणिपूर्वोऽयमर्थान्तरेऽपि रूढः 'मणिमाला स्मृता हारे स्त्रीणां दन्तक्षतान्तरे' इति विश्वः। **बाहुलकात्**-तिज निशाने। रन् दीर्घत्वं जस्य वः 'तीव्रा तु कटुरोहिण्यां गाजिकागण्डदूर्वयोः। क्लिष्वत्युष्णे नितान्ते च कटौ' इति मेदिनी ॥ १८७। **समिकस**। 'संकसुकोऽस्थिरे' इति विशेष्यनिघ्नेऽमरः ॥ १८८। **पचिनशोः**। डुपचष् पाके, णश अदर्शने। आभ्यां णुकन् प्रत्ययः स्यात्। णकारो वृद्ध्यर्थः। अनयोर्यथाक्रमं कादेशनुमागमौ च भवतः ॥ १८९ **भियः**। ञिभी भये। 'अधीरे कातरस्त्रस्नौ भीरुभीरुकभीलुकाः' इत्यमरः ॥ १९० **क्वुन्**। शिल्पिन्यभिधेये संज्ञाया गम्यमानायां च क्वुन् स्यादपूर्वस्य निरुपपदस्य च। अपिशब्दात्सोपपदस्य। पञ्चम्यर्थे षष्ठी। यद्वा अर्थद्वारकसबन्धे षष्ठी, प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः क्रियाकारकभावात्। एवं च निरूपपदप्रकृत्यर्थनिरुपितकर्तृकारके क्वुन्नित्याद्यर्थः फलितः। शिल्पिनि तावत् रज्ज रागे। 'रजको धावके शुके' इति विश्वः। 'रजको धावकशुकौ' इति हेमचन्द्रः। 'कट्ट छेदने' इक्षून् कुट्टयति गौडिकः। चर गतिभक्षणयोः। संज्ञायां तु 'चषकोऽस्त्री पानपात्रम्'। शुन गतौ, भष भर्त्सने — शुनकः, भषकः श्वा ॥ १९१। **लमक इति**। ऋषिविशेषः ॥ १९२। **जहातेः**। ओहाक् त्यागे ॥ १९३ **ध्मो धम च**। ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः। कुहको दाम्भिकः ॥ १९५ **कृतकमिति**। कृती छेदने ॥ १९६ **कृषेः**। कृष विलेखने। अस्मात्क्वुन् वृद्धिश्च। कार्षकः कृषीवलः। कृषकः स एव। कृषकः पुंसि फाले स्यात्कृषकः त्वभिधेयवत्' इति मेदिनी ॥ १९७ **उदकं च**। ऊन्दी क्लेदने अस्मात्क्वुन् ॥ ननु 'क्वुन् शिल्पि' इत्यादिना गतार्थमित्याशङ्क्यामाह **प्रपञ्चार्थमिति** ॥ १९८। **वृश्चिकृषोः**। ओव्रश्चू छेदने, कृष विलेखने ॥ १९९ **प्राङि**। पण व्यवहारे। कषशिषेति दण्डके हिंसार्थकः ॥ २०० **मुषेः**। मुष स्तेये अस्मात्किकन् धातोर्दीर्घश्च ॥ २०१ **स्यमेः**। स्यमु शब्दे ॥ २०२ **क्रियः**। डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये ॥ २०३ **आङि पणि**। पण व्यवहारे स्तुतौ च, पन च, पत्लृ गतौ, खनु अवदारणे, एभ्य आङि उपपदे इकन् स्यात् ॥ **आपणिक इति**। नन्वत्रैव प्रपूर्वे आङि प्रापणिक इति सिद्धो 'प्राङि पणि' इत्यत्र पणिग्रहणं प्रपञ्चार्थमित्युज्ज्वलदत्तः। उपसर्गान्तरनिवृत्त्यर्थमिति तु मनोरमायाम्। आपणिकशब्दोऽयं नित्स्वरेणाद्युदात्तः। आपणेन व्यवहरतीत्यर्थे ठकि तु 'कितः' इत्यन्तोदात्तः ॥ २०४ **श्यास्त्या**। श्यैङ् गतौ, स्त्यै ष्ट्यै शब्दसंघातयोः, हृञ् हरणे, अव रक्षणादौ। 'श्येनः पत्त्रिणि पाण्डुरे' इति मेदिनी। स्त्येनश्चौरः। 'स्तेन चौर्ये' इति चौरादिकात्पचाद्यचि तु 'स्तेनः' इति निर्यकारोऽपि। केचित्तु 'स्तायूनां पतये नमः' इत्यादिप्रयोगोपष्टम्भेन निर्यकारस्यापि ष्टै धातोर्माधवादिभिर्भ्वादिषु स्वीकृतत्वात्प्रकृतसूत्रेऽपि ष्टै धातुमेव

ऽध्वर्युः ॥ २०५ । **वृजेः किच्च** । वृजिनम् ॥ २०६ । **अजेरज च** । वीभावबाधनार्थम् । अजिनम्
बहुलमन्यत्रापि । कठिनम् । नलिनम् । मलिनम् । कुण्डिनम् ।द्यतेः—'यत्परुषि दिनम्' । दिवम
२०८ । **द्रुदक्षिभ्यामिनन्** । द्रविणम् । दक्षिणः । दक्षिणा ॥ २०९ । **अर्तेर्ह्रि दिच्च** । हरिणं शून्यम्
वेपितुह्योर्ह्रस्वश्च । विपिनम् । तुहिनम् ॥ २११ । **तलिपुलिभ्यां च** । 'तलिन विरले स्तोके
तलिन त्रिषु' । पुलिनम् ॥ २१२ । **गर्वेरत उच्च** । गौरादित्वात् ङीप् । गुर्विणी गर्भिणी ॥ २१३
रोहिणः ॥ २१४ । **महेरिनण् च** । चादिनन् । माहिनम् महिन राज्यम् ॥ २१५ । **वि.....च्चिप्र**
द्रुप्रुज्वां दीर्घोऽप्रसारण च । वाक् । प्राट् । श्रीः । स्रवत्यतो घृतादिकमिति स्रूः — यज्ञोपकरणम् ।
कटप्रूः कामरूपी कीटश्च । 'जूराकाशे सरस्वत्यां पिशाच्यां जवने स्त्रियाम्' ॥ २१६ । **आप्नोते**
आपः । अपः । अद्भिः । अभ्यः ॥ २१७ । **परौ व्रजेः षश्च पदान्ते** । व्रजेः क्विप्दीर्घौ स्तः, पदान
परिव्राट् । परिव्राजौ ॥ २१८ । **हुवः श्लुवच्च** । जुहूः ॥ २१९ । **स्रुवः कः** । स्रुवः ॥ २२० ।

पठन्तः स्तेनब्दो निर्यकार एवेत्याहुः । 'हरिणः पुंसि सारङ्गे विशदे त्वभिधेयवत् । हरिणी हरि
नारीभिद्वृत्तभेदयोः । सुवर्णप्रतिमायां च' इति मेदिनी ॥ २०५ वृजेः । वृजी वर्जने । वृजिन पाप
कल्मषे क्लीवे केशे ना कुटिलेऽन्यवत्' इति मेदिनी ॥ २०६ अजेः । अज गतिक्षेपणयोः । अस्म
अजेरजादेशविधानं व्यर्थमित्यत आह—**वीभावबाधनार्थमिति** । अजिन चर्म कृत्तिः स्त्री इत्यमरः
बहुलमन्यत्रापि । अन्यस्मादपीत्यर्थः । कठः कृच्छ्रजीवने, णल गहने, मल मल्ल धारणे, कुडि
अवखण्डने । 'कठिनमपि निष्ठुरे स्यात् स्तब्धे तु त्रिषु नपुंसकं स्थाल्याम् । कठिनी खटिकायामपि
गुडशर्करायां च' इति मेदिनी । 'मलिनं दूषिते कृष्ण ऋतुमत्यां तु योषिति' इति मेदिनी ॥— **कुण्डि**
'नगरं कुण्डिनमण्डजा ययौ' इति श्रीहर्षः । कुण्डिन ऋषिः । तस्यापत्य कौण्डिन्यः ॥— **यत्परुषी**
परुषि पर्वणि दिनं खण्डितं तद्देवानाम्' इति तैत्तिरीयश्रुत्यर्थः ॥ २०८ **द्रुदक्षि** । द्रु गतौ, दक्ष वृद्धौ
न द्रव्यंवित्ते काञ्चने च पराक्रमे' इति मेदिनी । दक्षिणो दक्षिणोद्भूतसरलच्छन्दवर्तिषु । अव
यज्ञादिविधिदाने दिशि स्त्रियाम्' इति च । 'दक्षिणः सरलोदारपरच्छन्दानुवर्त्तिषु । वाच्यवद्दक्षि
यज्ञदानप्रतिष्ठयोः' इति विश्वः ॥ २०९ **अर्ते** । ऋ गतौ, अस्मादिनन् कित्स्याद् इकारश्च धातोः ।
'हरिणं शून्यमूषरम्' इत्यमरः । 'हरिणं तूषरे शून्येऽपि' इति मेदिनी ॥ २१० **वेपि** । टुवेपृ कम्पने
अर्दने, आभ्यामिनन् ह्रस्वश्च धातोः । 'अटव्यरण्यं विपिनम्' इत्यमरः ॥ तुहिनमिति । लघूप
ह्रस्वः ॥ २११ **तलि** । तल प्रतिष्ठायाम्, पुल महत्त्वे । 'तलिनं तरले स्तोके स्वच्छेऽपि वाच्यवि
इति मेदिनी ॥ २१२ **गर्वे** । गर्व मोचने, अस्मादिनन् अकारस्य उत् ॥ २१३ **रुहेश्च** । रुह बीज
प्रादुर्भावे ॥ रोहिण इति । प्रज्ञादित्वादणि रौहिणश्चन्दनतरुः ॥ २१४ **महेः** । मह पूजायाम् ।
मिन्द्रमाहिनः सन् इति मन्त्रे 'माहिनो महनीयः पूजनीयः' इति वेदभाष्यम् ॥ २१५ **विदद्वचि** ।
भाषणे, प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्, श्रिञ् सेवायाम्, स्रु गतौ, द्रु गतौ, प्रुङ गतौ, जु गतौ सौत्रः ॥ व
'वचिस्वपि' इति संप्रसारणाभावः, पृच्छतीति प्राट् । 'ग्रहिज्या' इति सप्रसारणाभावः, छ्वोः श
शः, व्रश्च इति षत्वं, जश्त्वचर्त्वे, प्राशौ प्राशः ॥ **श्रीरिति** । 'कृदिकारात्' इति ङीष् तु न
कृत्प्रत्ययो य इकार इति व्याख्यानात् । कृदन्त यदिकारा तमिति पक्षे तु यद्यपि ङीषः प्राप्तिरि
कारग्रहणे तत्सामर्थ्यादेव केवलस्येकारस्य ग्रहणादिकारान्तपक्षो दुर्बल इत्याहुः । दुर्घटस्त ङीषी श्री
रक्षित इच्छन्तीत्याह । 'श्री वेषरचना शोभा भारती सरलद्रुमे । लक्ष्म्यां त्रिवर्गसम्पत्तिविद्योपक
विभूतौ च मतौ च स्त्री' इति मेदिनी । जूराकाशे इत्यादिमूलोदाहृतमपि मेदिनी ॥ २१६ **आप्नोतेः**
व्याप्तौ, अस्मात्क्विप् धातोर्ह्रस्वश्च । 'आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि' इत्यमरः । २१७ **परौ** । व्रज गतौ
हुवः । हु दानादनयोः । अस्मात्क्विप् धातोश्च दीर्घः श्लुवद्भावाद्द्विर्वचनम् ॥ २१९ **स्रुवः कः** ।
स्रुवो यज्ञपात्रविशेषः । अयं स्रुवो अभिजिघर्ति स्रुवेण पार्वणौ जुहोति' इत्यादौ प्रसिद्धः ॥ २२०
स्रुव इत्येत्र । योगविभाग उत्तरार्थः ॥ क इदिति । तेन स्रुक् स्रुचौ स्रुच इत्यादौ गुणो न ॥

इकार उच्चारणार्थः। क इत्। कुत्वम्, स्रुक्। 'स्रुवं च स्रुचश्च संमृड्ढि'॥ २२१। **तनोतेरनश्च वः।** तनोतेश्चिक् प्रत्ययः, अनो बशब्दादेशश्च। त्वक्॥ २२२। **ग्लानुदिभ्यां डौ।** ग्लौ। नौ॥ २२३। **च्विरव्ययम्।** डौरित्येव। ग्लौ करोति। 'कृन्मेजन्तः' ४५० इति सिद्धे नियमार्थमिदम्—उणादिप्रत्ययान्ता च्व्यन्त एवेति॥ २२४। **रातेर्डैः।** राः। रायौ। रायः॥ २२५। **गमेर्डोः।**

'गौर्नादित्ये बलीवर्दे किरणक्रतुभेदयोः। स्त्री तु स्याद्दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि।
नृस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाणलोमसु।'

बाहुलकाद् द्युतेरपि डोः, 'द्यौः स्त्री स्वर्गान्तरिक्षयोः'॥ २२६। **भ्रमेश्च डूः।** भ्रूः। चाद्गमेः, अग्रेगूः॥ २२७। **दमेर्डोसिः।** दोः। दोषौ। २२८। **पणेरिज्यादेश्च वः।** वणिक्। स्वार्थेऽण्, 'नैगमो वाणिजो वणिक्' २२९। **वशेः कित्।** 'उशिगग्नौ घृतेऽपि च'॥ २३०। **भृञ ऊच्च।** भूरिक् भूमिः॥ २३१। **जसिसहोरुरिन्** जसुरिर्वज्रम्। महुरिरादित्यः पृथिवी च॥ २३२। **सुयुरुवृञो युच्।** सवनश्चन्द्रमाः। यवनः। रवणः कोकिलः। वरणः॥ २३३। **अशे रश च।** अश्नोतेर्युच् स्यात् रशादेशश्च। रशना काञ्ची। जिह्वावाची

२२१। तनोते। तनु विस्तारे। व इति संघातग्रहण तदाह—**वशब्दादेश** इति। 'स्त्रियां तु त्वगसृग्धरा' इत्यमरः॥ २२२ **ग्लानुदि**। ग्लै हर्षक्षये, णुद प्रेरणे। 'ग्लौर्मृगाङ्कः कलानिधिः' इत्यमरः। 'स्त्रियां नौस्तरणिस्तरिः' इति च॥ २२३ **ग्लौ करोतीति**। अग्लौः ग्लौः सपद्यते तथा करोतीत्यर्थः। अव्ययत्वात्सुपो लुक् **च्व्यन्त एवेति**। तेन ग्लौर्नौर्गौरित्यादीनां नाव्ययत्वमिति भावः॥ २२४ **रातेः**। रा दाने॥ **रा इति**। 'रायो हलि' इत्वात्वम्। 'रा स्मृतः पावके तीक्ष्णे राः पुंसि स्वर्णवित्तयोः' इति मेदिनी। 'रास्तीक्ष्णे दहने रास्तु सुवर्णे जलदे धने' इति हेमचन्द्रः॥ २२५ **गमेः**। गम्लृ गतौ, 'गोतो णित्' गौः॥—**गौर्नादित्य इत्यादि** 'गौः स्वर्गे वृषभे रश्मौ वज्रे चन्द्रे पुमान् भवेत्। अर्जुनी नेत्रदिग्बाणभूवाग्वारिषु गौर्मता' इत्यमरः॥—**द्युतेरपीति**। द्युत दीप्तौ, द्योतन्ते देवा अस्यामिति द्यौः॥ २२६। **भ्रमेश्च**। भ्रमु अनवस्थाने, गम्लृ गतौ। अग्रेगूः सेवकः॥ २२७ **दमेः**। दमु उपशमे। डित्त्वाट्टिलोपे—दोरिति। 'दोषं तस्य' इति श्रीहर्षप्रयोगात्पुंस्त्वम्। 'ककुद्दोषणी' इति भाष्यप्रयोगान्नपुंसकत्वम्। 'दोर्दोषा च भुजा बाहुः' इति धनंजयकोशात्स्त्रीलिङ्गोऽप्ययमित्यादि प्रागेव प्रपञ्चितम्॥ २२८ **पणेः**। पण व्यवहारे स्तुतौ च। अमरकोशस्थमाह—**नैगम इत्यादि** २२९ **वशेः**। वश कान्तौ, अस्मादिनिः कित्स्यात्। 'ग्रहिज्या' इति संप्रसारणम्॥ २३० **भृञः**। भृञ् भरणे, अस्मादिनिः कित्स्यात् धातोरूकारान्तादेशश्च॥ २३१ **जसि**। जसु मोक्षणे। षह मर्षणे। 'जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम्' इति मन्त्रे जसुरये श्रान्तायेति, 'नीचायमानं जसुरिं न श्येनम्' इत्यत्र जसुरि क्षुधितं श्येनं न—श्येनपक्षिणमिवेति। 'उतस्य वाजी सहुरिर्ऋतावा' इति मन्त्रे सहुरिः सहनशील इति च वेदभाष्यम्॥ २३२ **सुयु**। षुञ् अभिषवे, यु मिश्रणे, रु शब्दे, वृञ् वरणे। 'सवनं त्वध्वरे स्नाने सोमनिर्दलनेऽपि च' इति मेदिनी। यवनो म्लेच्छविशेषः। 'रवणः शब्दने स्वरे' इति च मेदिनी। रवणः कोकिल इत्येके। वरणो वृक्षभेदः। टापि तु वरणा नदी। 'वरणः तिक्तशाकेऽपि प्राकारे वरणं वृत्तौ' इति विश्वः। 'वरणो वरुणः सेतुस्तिक्तशाकः कुमारकः' इत्यमरः॥ २३३ **अशेः**। अशू व्याप्तौ।—**जिह्वावाची रिवति**। रस आस्वादने चौरादिकः। ततो नन्द्यादित्वात् ल्युः। 'ण्यासश्रन्थ'—इति युज्वा। रस स्वादयतीति रसना। 'रसनं स्वदने ध्वनौ। जिह्वायां तु न पुंसि स्याद्रास्नायां रसना स्त्रियाम्' इति मेदिनी। काञ्चीवाची तालव्यशकारवान्, जिह्वावाची तु दन्त्यसकारवानित्येषा व्यवस्था भूरिप्रयोगाभिप्रायेणोक्ता। **वस्तुतस्तु** तालव्यशकारवान् रशनाशब्दोऽपि काञ्च्यां जिह्वायां च, तथा दन्त्यसकारवान् रसनाशब्दोऽप्यर्थद्वये बोध्यः। तथा हि—'तालव्या अपि दन्त्याश्च शम्बशूकरपांशवः। रशनाऽपि च जिह्वायाम्' इति विश्वकोशाज्जिह्वायामुभयं साधु। रसनं निःस्वने स्वादे रसना काञ्चिजिह्वयोः' इत्यजयधरणिकोषाभ्यां काञ्च्यामप्युभयं साधु। एवं च 'असेरश च' इति सूत्रे अशू व्याप्तौ, अश भोजने, इति धातुद्वयमपि ग्राह्यम्। रस आस्वादने, रस शब्दे, इति धातुभ्यां तु 'बहुलमन्यत्रापि' इत्यनुपदमेव बक्ष्यमाणेन युच्। तेन सर्वत्रावयवार्थानुगमोऽपि सूपपाद

तु दन्त्यसकारवान् ॥ २३४। **उन्देर्नलोपश्च**। ओदनः॥ २३५। **गमेर्गश्च**। गमेर्युच् स्याद्गश्चादेशः। गगनम् ॥ २३६। **बहुलमन्यत्रापि**। युच् स्यात्। स्यन्दनः। रोचना॥ २३७। **रञ्जेः क्युन्**। रजनम्॥ २३८। **भूसूधूभ्रस्जिभ्यश्छन्दसि**। भुवनम्। सुवन आदित्यः। धवनो वह्निः। निधुवनं सुरतम्। भृज्जनमम्बरीषम्॥ २३९। **कृपृवृजिमन्दिनिधाञः क्युः**। किरणः। पुरणः समुद्रः। वृजनमन्तरिक्षम्। मन्दनं स्तोत्रम्। निधनम्॥ २४०। **धृषेर्धिष् च संज्ञायाम्**। धिषणो गुरुः। धिषणा धीः। २४१। **वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च**। अतिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। 'पृषु सेचने' गुणाभावः, पृषन्ति। बृहत्। महान्। चमेर्जगादेशः जगत्॥ २४२। **संश्चत्तृपद्वेहत्**। एते निपात्यन्ते। पृथक्करणं शतृवद्भावनिवृत्त्यर्थम्। सचिनोतेः सुट्,

---

इत्याहुः॥ २३४ **उन्देः**। उन्दी क्लेदने अस्माद्युच्। 'ओदनं न स्त्रियां भक्ते बलायामोदनी स्त्रियाम्' इति मेदिनी॥ २३५ **गमेः**। गम्लृ गतौ। 'नभोऽन्तरिक्षं गगनम्' इत्यमरः॥ २३६ **बहुलमिति**। स्यन्दू प्रस्रवणे, रुच दीप्तौ। 'स्यन्दनं तु श्रुतौ नीरे तिनिशे ना रथे स्त्रियाम्' इति मेदिनी। 'रोचना रक्तकह्लारे गोपित्तवरयोषितोः। रोचनः कुटशाल्मल्यां पुंसि स्याद्रोचके त्रिषु' इति च। चदि आह्लादे। 'चन्दनं मलयोद्भवे चन्दनः कपिजेदे स्यान्नदीभेदे तु चन्दनी' इति विश्वः। 'चन्दनी तु नदीभिदि। चन्दनोऽस्त्री मलयजे भद्रकाल्यां नपुंसकम्' इति मेदिनी। भद्रकाली ओषधिविशेषः। भद्रकाली तु गन्धोल्यां कात्यायन्यामपि स्त्रियाम्' इति मेदिनी। असु क्षेपणे। 'असनं क्षेपणे क्लीवं पुंसि स्याज्जीवकद्रुमे' इति मेदिनी। अत सातत्यगमने। राजपूर्वः। 'राजादनः क्षीरिकायां पियाले किंशुकेऽपि च' इति विश्वमेदिन्यौ। एवमन्येऽपि द्रष्टव्याः॥ २३७ **रञ्जेः**। रञ्ज रागे, ल्युटि तु रञ्जनम्। 'रञ्जनो रागजनने रञ्जनं रक्तचन्दने' इति मेदिनी। बाहुलकात्कृपेरपि क्युन्। 'कृपो र लः' इति प्राप्तलत्वाभावश्च। कृपणः॥ २३८ **भूसू**। भू सत्तायां, षूङ् प्राणिप्रसवे, धूञ् कम्पने, भ्रस्ज पाके। बहुलवचनाद्भाषायामपि क्वचित्। 'भुवनं विष्टपेऽपि स्यात्सलिले गगने जने' इति मेदिनी। 'त्रिष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमरः।—**भृज्जनमिति**। 'ग्रहिज्या' इति सम्प्रसारणम्। सस्य जश्त्वेन दः, दस्य श्चुत्वेन जः। 'क्लीवेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना' इत्यमरः॥ २३९ **कृपृ**। कृ विक्षेपे, पृ पालनादौ, वृजी वर्जने, मदि स्तुत्यादौ, डुधाञ् धारणपोषणयोः। निधनं स्यात्कुले नाशे इति मेदिनी। 'निधनं कुलनाशयोः' इति हेमचन्द्रः॥ २४० **धृषेः**। ञिधृषा प्रागल्भ्ये, अस्मात्क्युः, धिशादेशश्च धातोः। 'धिषणस्त्रिदशाचार्ये धिषणा धियि योषिति' इति मेदिनी। 'गीष्पतिर्धिषणो गुरुः' इत्यमरः॥ २४१ वर्तमाने शतृवच्चेति। तथा च 'उगिदचाम्' इति नुमि महान् स्त्रियां तु 'उगितश्च' इति ङीपि—महतीत्यादि सिध्यतीति भावः॥ ननु पृषन्महदादयः 'लटः शतृशानचौ' इति शतृप्रत्ययान्ता एव भवन्तु। ततश्च वर्तमाने इति शतृवच्च इति च न कर्तव्यमिति महदेव लाघवमिति चेत्। **अत्राहुः**—शतृप्रत्ययान्तत्वे तु 'कर्तरि शप्' इति शप्प्रत्यये महतीत्यादौ 'आच्छीनद्योः' इति नुम् स्यात्, महानित्यादौ तु 'तास्यनुदात्तेङिददुपदेशात् इति लसार्वधातुकस्वरः स्यात्, अतिप्रत्ययान्तत्वे तु तस्यातिप्रत्ययस्यार्धधातुकत्वाभ्युपगमने शबभावान्नोत्तदोष इत्याशयेनातिप्रत्ययान्तत्वेन निपातनं स्वीकृतमिति। बृह वृद्धौ, मह पूजायाम्, गम्लृ गतौ॥ पृषन्तीति बिन्दुवाची पृषच्छब्दो नपुंसकमिति ध्वननाय बहुवचनमुदाहृतम्। 'पृषन्मृगे पुमान् बिन्दौ न द्वयो पृषतोऽपि ना। अनयोश्च त्रिषु श्वेतबिन्दुयुक्तेऽप्युभाविमौ' इति मेदिनी। 'बृहती क्षुद्रवार्त्ताक्यां कण्टकार्यां च वाचि च। वारिधान्यां महत्यां च छन्दवसनभेदयोः' इति विश्वः। शतृवद्भावात् 'उगिदचाम्' इति नुम् बृहन् विपुलः। महती वल्लकीभेदे राज्ये तु स्यान्नपुंसकम्। तत्त्वभेदे पुमान् श्रेष्ठे वाच्यवत् इति मेदिनी। महती नारदवीणा। विश्वावसोस्तु बृहती तुम्बुरोस्तु कलावती। महती नारदस्य स्यात्सरस्वत्यास्तु कच्छपी' इति वैजयन्ती। अवेक्ष्यमाणं महतीं मुहुर्मुहुः। इति माघः। 'जगत्स्याद्विष्टपे क्लीवं वायौ ना जङ्गमे त्रिषु। जगती भुवने क्ष्मायां छन्दोभेदे जनेऽपि च' इति मेदिनी। तत्र वायुवाचिनः पुंलिङ्गस्य शतृवद्भावादुगित्त्वेन नुमि जगन् जगन्तौ, जगन्तः इत्यादि भवति। द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च इति व्युत्पादितस्य तु नुमभावात् 'जगत् जगतौ जगतः इत्यादिति बोध्यम्॥ २४२ **संश्चत्त**। चिञ् चयने, तृप प्रीणने, हन हिंसागत्योः॥ **निपात्यन्त इति**। नतिप्रत्ययान्ता इति शेषः। निवृत्त्यर्थमिति एवं च संश्चदित्यत्र 'उगिदचाम्' इति नुमः

इकारलोपः, संश्चत् कुहकः। तृपत् छत्रम्। विपूर्वाद्धन्तेष्टिलोपः, एत ए च, 'वेहद्गर्भोपघातिनी'॥ २४३। छन्दस्यसानच् शुजृभ्यां श्यामा। शवसानः पन्थाः। जरसानः पुरुषः॥ २४४। ऋञ्जिवृधिमन्दिसहिभ्यः किन्। ऋञ्जसानो मेघः। वृधसानः पुरुषः। मन्दसानोऽग्निर्जीवश्च। सहसानो यज्ञो मयूरश्च॥ २४५। अर्तेर्गुणः शुट् च। अर्शसानोऽग्निः। २४६। सम्यानच् स्तुवः। संस्तवानो वाग्मी॥ २४७। युधिबुधिदृशिभ्यः किच्च युधानः। बुधानः। 'दृशानो लोकपालकः'॥ २४८। हुर्छेः सनो लुक् छलोपश्च। जुहुराश्चन्द्रमाः॥ २४९। श्वितेर्दश्च। 'शिश्विदानः पुण्यकर्मा'॥ २५०। तृन्तृचौ शंसिक्षदादिभ्यः संज्ञायां चानिटौ। शंसेः क्षदादिभ्यश्च क्रमात्तृन्तृचौ स्तः, तौ चानिटौ। शंस्ता स्तोता शस्तनौ। शंस्तरः। क्षदिः सौत्रो धातुः शकलीकरणे भक्षणे च। अनुदात्तेत्, 'वृक्ये चक्षदानम्' इति मन्त्रात् 'उक्षाणं वा वेहतं वा क्षदन्ते' इति ब्राह्मणाच्च 'क्षत्ता स्यात्सारथौ द्वाःस्थे वैश्यायामपि शूद्रजे'॥ २५१। बहुलमन्यत्रापि। मनु, मन्ता। हन्, हन्ता। इत्यादि॥ २५२। नप्तृ नेष्टृ त्वष्टृ होतृ पोतृ भ्रातृ जामातृ मातृ पितृ दुहितृ। न पतन्त्यनेन पितरो नरके इति नप्ता पौत्रो दौहित्रश्च। नयते षुग्गुणश्च, नेष्टा त्विषेरितोऽत्वम्, त्वष्टा। होता पोता ऋत्विग्भेदः भ्राजतेर्जलोपः, भ्राता। जायां माति जामाता। 'मान पूजायां' नलोपः माता। पातेराकारस्य इत्वम्।

शङ्कैव नास्ति। वेहदित्यत्र तु 'उगितश्च' इति ङीप् नेति भावः। संचिनोतेरिति। सुभूतिचन्द्रस्तु संपूर्वाच्छ्यतेः सश्चदित्याह॥—तृपच्छत्रमिति। चन्द्रमा इत्यन्ये। विहन्ति गर्भमिति वेहत्॥—इत ए चेति। विशब्दसंबन्धिन इकारस्य एकार इत्यर्थः। गौरित्यनुवृत्तौ 'वेहद् गर्भोपघातिनी' इत्यमरः॥ २४३ छन्दसि। शु गतौ, जॄ ष् वयोहानौ।—पन्था इति। 'प्रमन्महे इत्यादिमन्त्रद्वये शवसानशब्दो गन्तृपरतया व्याख्यातः॥ २४४ ऋञ्जि। ऋजि भर्जने, वृधु वृद्धौ, मदि स्तुत्यादौ, षह मर्षणे। एभ्यः असानच् कित्स्यात्। ऋञ्जसानो मेघ इति। ऋजेरिदित्वान्नुम्। इदित्वादेव नलोपाभावः। एवं च अयं मन्दिसही च त्रयोऽपि पूर्वसूत्र एव पठितुं शक्याः। कित्त्वं तु वृधुधातवेवोपयुज्यते। उत्तरसूत्रेऽपि गुणग्रहणं सुत्यजम्। 'ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैः' 'अस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसु' इत्यादिमन्त्राणां भाष्ये तु यौगिकार्थ एव पुरस्कृतः॥ २४५ अर्तेः। 'अर्तेः सुट् च वृधेः' 'आसात्रिषदर्शसानाय' इति मन्त्रस्य भाष्ये तु अर्शसानाय शत्रूणां हिंसित्रे इति व्याख्यातम्॥ २४६ सम्या। ष्टुञ् स्तुतौ अस्मात्सम्युपपदे आनच्॥ २४७ युधि। युध संप्रहारे। युधानो रिपुः। बुधिर् बोधने। बुधान आचार्यः। दृशिर् प्रेक्षणे। बाहुलकात्कृपेरपि—कृपाणः खड्गः। 'कृपाणेन कथंकारं कृपणः सह गण्यते। परेषां दानसमये यः स्वकोशं विमुञ्चति'॥ २४८ हुर्च्छेः। हुर्च्छा कौटिल्ये, अस्मात्सन्नन्तादानच्स्यात्सनो लुक् छलोपश्च। 'युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः' इति मन्त्रे जुहुराणं कौटिल्यकारि एनः पापं युयोधि पृथक् कुरु इति भाष्यम्॥ २४९ श्वितेः। श्विता वर्णे अस्मात्सन्नन्तादानच्, 'सन्यङोः इति द्वित्वम्। सनो लुक् तकारस्य च दकारः। किदित्यनुवृत्तेर्न गुणः। पुण्यकर्मेति। शिश्विदानोऽकृष्णकर्मा' इति विशेष्यनिघ्ने अमरः। अकृष्णं शुक्लं निष्पापत्वात् शुद्धं कर्म यस्येत्यर्थः। क्षीरस्वामिना तु प्रकृतसूत्रं विस्मृत्य 'श्विदि श्वैत्ये' अस्माल्लिटः कानजिति व्याख्यातं। तदसंगतं, कानचश्छान्दसत्वात्, इदित्वेन नलोपानुपपत्तेश्चेति दिक्। २५० तृन्तृचौ॥—शंस्तेति। शंसु स्तुतौ, अस्मात्तृन्। 'अप्तृन्' इति सूत्रे नप्त्रादिग्रहणं नियमार्थम् औणादिकतृजन्तानां चेदुपधादीर्घस्तर्हि नप्त्रादीनामेवेत्युक्तम्। तेनात्र दीर्घो नेत्युदाहरति—शंस्तारौ शस्तर इति। नित्त्वादाद्युदात्तः। तथा च मन्त्रः—'ग्रावग्राभ उत शंस्था सुविप्रः'। आदिशब्दाच्छास् अनुशिष्टौ। शास्ति त्रिनयति सत्वान् शास्ता—बुद्धः। शास्तारौ। शास्तरः। शास्ता समन्तभद्रे ना शासके पुनरन्यवत्' इति। प्रपूर्वस्य तु नप्त्रादिषु पाठात् 'अप्तृन्' इति दीर्घः—प्रशास्तारौ, प्रशास्तारः। 'क्षत्ता शूद्राच्च वैश्याजे प्रतीहारे च सारथौ। भुजिष्यातनयेऽपि स्यान्नियुक्तवेधसोः पुमान्' इति मेदिनीकोशानुसारेणाह—वैश्यायामिति। अमरस्तु 'क्षत्रियाणां च शूद्रजे' इत्याह। णीञ् प्रापणे, उत्पूर्वः। उन्नेता ऋत्विग्भेद॥ २५१। बहुलमन्यत्रापि। अन्यत्रापि धातोर्बहुलं तृन्तृचौ भवतः। पूर्वसूत्रस्थादिशब्देनैव मन्ताहन्तेत्यादेः सिद्धत्वात्प्रपञ्चार्थमिदं सूत्रम्॥ २५२ नप्तृनेष्टृ। मप्त्रादयो दश तृन्तृजन्ता निपात्यन्ते॥ नप्तेति। नञः

पिता दुहेस्तृच्, इट् गुणाभावश्च, दुहिता ॥ २५३ । **सुञ्यसेऋन्** । स्वसा ॥ २५४ । **यतेर्वृद्धिश्च** । याता । 'भार्यास्तु भ्रातृवर्गस्य यातरः स्युः परस्परम् ॥ २५५ । **नञि च नन्देः** । न नन्दति ननान्दा । इह 'बुद्धिर्नानुवर्तते' इत्येके । ननान्दा तु स्वसा पत्युर्ननन्दा नन्दिनी च सा' इति शब्दार्णवः ॥ २५६ । **दिवेऋः** । देवा देवरः । 'स्वामिनो देवृदेवरौ' ॥ २५७ । **नयतेर्डिच्च** । ना । नरौ । नरः ॥ २५८ । **सव्ये स्थश्छन्दसि** । 'अम्बाम्ब' २११८ इत्यत्र—* स्थास्थिन्स्थॄणामुपसंख्यानम् । सव्येष्ठा सारथिः । सव्येष्ठारौ । सव्येष्ठरः ॥ २५९ । **अर्तिसृधृधम्यम्यश्यवितॄभ्योऽनिः** । अष्टभ्योऽनिप्रत्ययः स्यात् । अरणिरग्नेर्योनिः । सरणिः । धरणिः । धमनिः । अमनिर्गतिः । अशनिः । अवनिः, तरणिः । बाहुलकात् रजनिः ॥ २६० । **आङि शुषेः सनश्छन्दसि** आशुशुक्षणिरग्निर्वातश्च ॥ २६१ । **कृषेरादेश्च चः** । चर्षणिर्जनः ॥ २६२ । **अदेर्मुट् च** । अद्मनिरग्निः ॥ २६३ । **वृतेश्च** । वर्तनिः । गोवर्धनस्तु—'चकारान्मुट्, वर्त्मनिः' इत्याह ॥ २६४ । **क्षिपेः किच्च** । क्षिपणिरायुधम् ॥ २६५ । **अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः** । अर्चिर्ज्वाला । इदन्तोऽप्ययम्, 'अग्नेभ्राजन्ते

प्रकृतिभावः, पत्लृ गतावित्यस्मात् अत् शब्दलोपः । णीञ् प्रापणे, त्विष दीप्तौ, हु दानादनयोः, पूञ् पवने, भ्राजृ दीप्तौ, मा माने, पा रक्षणे, दुइ प्रपूरणे । 'त्वष्टा पुमान् देवशिल्पितक्षणोरादित्यभिद्यपि' इति मेदिनी जायां मातीत्यन्तर्भावितण्यर्थः ॥ २५३ **सुञ्यसेः** । सुञि उपपदे असु क्षेपणे इत्यस्मात् ऋन्, यणादेशः, स्वसा भगिनी । 'सावसेः' इति तु क्वचित्कः पाठः ॥ २५४ **यतेः** । यती प्रयत्ने ॥ २५५ **नञि च** । टुनदि समृद्धौ, अस्मान्नञ्युपपदे ऋन् ॥—**न नन्दतीति** । कृतायामपि सेवायां न तुष्यतीत्यर्थः । 'उषाप्यूषा ननान्दा च ननन्दा च प्रकीर्तिता' इति द्विरूपकोशः ॥ २५६ **दिवेः** । दिवु क्रीडाविजिगीषादौ ॥—**देवेति** । भ्रातर इत्यनुवृत्तौ 'स्वामिनो देवृदेवरौ' इत्यमरः । 'देवे धवे देवरि माधवे च' इति श्रीहर्षः ॥ २५७ **नयतेः** । णीञ् प्रापणे । अस्माद् ऋप्रत्ययः स च डित्, डित्वाट्टिलोपः । 'स्युः पुमांसः पञ्चजनाः पुरुषाः पूरुषा नराः' इत्यमरः ॥ २५८ **सव्ये** । ष्ठा गतिनिवृत्तौ । अस्मात्सव्यशब्दे उपपदे ऋः स्यात्स च डित् । 'तत्पुरुषे कृति'—इति सप्तम्या अलुक् ॥—**उपसंख्यानमिति** । षत्वस्येति शेषः ॥ २५९ **अर्ति** । ऋ गतौ, सृ गतौ, धृञ् धारणे, धमिः सौत्रः, क्षम गतौ, अश भोजने, अव रक्षणादौ, तॄ प्लवनतरणयोः । 'अरणिर्वह्निमन्थे ना द्वयोर्निर्मथ्यदारुणि' इति मेदिनी । 'सरणिः श्रेणिवर्त्मनोः इति दन्त्यादौ रभसः । सरणिः पङ्क्तौ मार्गे स्त्री इति मेदिनी । शॄ हिंसायां ततोऽतिप्रत्ययः । **शरणिरित्येके** । 'शरणिः पथि चावलौ' इति तालव्यादावजयः 'इमामग्ने शरणिम्' इति मन्त्रे शरणिं हिंसां व्रतलोपरूपां मीमृषः क्षमस्वेति वेदभाष्यम् । धरणिर्भूमिः । 'धमनी तु शिराहट्टविलासिन्यां तु योषिति' इति मेदिनी । अमनिर्गतिः । अश्यते भुज्यते राज्यमिन्द्रेणानयेति अशनिर्वज्रम् । 'अशनिः स्त्रीपुंसयोः स्याच्चञ्चलायां स्वावपि' इति मेदिनी । अवनिः पृथिवी । 'तरणिर्द्युमणौ पुंसि कुमारीनौकयोः स्त्रियाम्' इति मेदिनी । कुमारी लताविशेषः । 'तरणी रामतरणी कर्णिका चारुकेसरा सहा कुमारी गन्धोल्योः' इति धन्वन्तरिनिघण्टुः ॥—**रजनिरिति** । रञ्ज रागे, अस्मादप्यनिः, नलोपोऽपि बाहुलकात्, 'कृदिकारात्—इति ङीष्, रजनी । 'रजनी नीलिनी रात्रिर्हरिद्राजतुकासु च' इति मेदिनी ॥ २६० **आङि** । शुष शोषणे अस्मात्सन्नन्तादाङि उपपदे अनिः स्यात् ॥ २६१ **कृषेर दे** । 'कृष विलेखने' ॥—**चर्षणिर्जन इति** । वैदिकनिघण्टौ चर्षणिशब्दस्य मनुष्यनामसु पाठात् । 'ओमासश्चर्षणीधृतः' इत्यादिमन्त्रेषु वेदभाष्यकारैस्तथैव व्याख्यातत्वाच्च । उज्ज्वलदत्तेन तु आदेश्च ध इति पठित्वा धर्षणिर्बन्धकीति व्याख्यातम् । तदयुक्तम् । तथा सति धृषेरित्येव सूत्रयेत । प्रागल्भरूपावयवार्थानुगमात् । आदेश्च ध इत्यंशस्य त्यागेन लाघवाच्च । तस्मादादेश्च चः इति दशापादीवृत्तिपाठ एव युक्त इत्याहुः ॥ २६२ **अदेः** अद भक्षणे । अस्मादनिस्तस्य मुडागमश्च ॥ २६३ । **वृतेश्च** । वृतु वर्तने अस्मादप्यनिः ।—**वर्तनिरिति** । 'कृदिकारात्'—इति ङीषि तु वर्तनी । 'सरणिः पद्धतिः पद्या वर्तन्येकपदीति च' इत्यमरः ॥ २६४ **क्षिपेः** । क्षिप प्रेरणे ॥—**क्षिपणिरायुधमिति** । 'उतस्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति' इति मन्त्रस्य वेदभाष्ये तु क्षिपणिं क्षेपणमनु तुरण्यति—त्वरयति गन्तुमिति व्याख्यातम् ॥ २६५ **अर्चि** । अर्च पूजायाम्, शुच शोके, दु दाना दनयोः, सृप्लृ गतौ, छद अपवारणे, ण्यन्तः । छर्द वमने, अर्चिरिति सान्तम् । 'तमर्चिषा स्फूर्जयन्' इति

अर्चयः।' शोचिर्दीप्तिः। हविः सर्पिः। 'इस्मन्'—२८८५ इति ह्रस्वः, छदिः पटलम्। छर्दिर्वमनव्याधिः। इदन्तोऽपि, 'छर्दतीमारशूलवान्' ॥ २६६। **बृंहेर्नलोपश्च**। 'बर्हिर्ना कुशशुष्मणोः' ॥ २६७। **द्युतेरिसिन्नादेश्च जः**।। ज्योतिः ॥ २६८। **वसौ रुचेः संज्ञायाम्**। वसुरोचिर्यज्ञः ॥ २६९। **भुवः कित्**। भुविः समुद्रः ॥ २७०। **सहो धश्च**। सधिरनड्वान् ॥ २७१। **पिबतेस्थुक्**। पथिश्चक्षुः समुद्रयोः' ॥ २७२। **जनेरुसिः**। जनुर्जननम् ॥ २७३। **मनेर्धश्छन्दसि**। मधुः ॥ २७४। **अर्तिपॄवपियजितनिधनितपिभ्यो नित्**। अरुः। परुर्ग्रन्थिः। वपुः। यजुः। तनुः, तनुषी, तनूंषि। धनुरस्त्रियाम्। 'धनुर्वंशविशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति'। सान्तस्य उदन्तस्य वा रूपम्। 'तपुः सूर्याग्निशत्रुषु' ॥ २७५। **एतेर्णिच्च**। आयुः, आयुषी ॥ २७६। **चक्षेः शिच्च**। जक्षुः ॥ २७७। **मुहे किच्च**। मुहुरव्ययम् ॥ २७८। **बहुलमन्यत्रापि**। आचक्षुः। परिचक्षुः ॥ २७९। **कॄगॄशॄवृञ्चतिभ्यः ष्वरच्**। 'कर्वरो व्याघ्ररक्षसोः'। गर्वरोऽहंकारी। शर्वरी रात्रिः। 'वर्वरः प्राकृतो जनः'। चत्वरम् ॥ २८०। **नौ सदेः**। 'निषद्वरस्तु जम्बालः'। निषद्वरी रात्रिः ॥ **इत्युणादिषु द्वितीयः पादः**।

मन्त्रः। 'नयनमिव सनिद्रं घूर्णते दैवमर्चिः' इति माघः। 'ज्वालाभासोर्नपुंस्यर्चिः' इति नानार्थे सान्तेष्वमरः इदन्तोऽपीति। णिजन्तादर्चेरत इरिति भावः। 'अर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम्' इत्यमरः। रोचिः शोचिरुभे क्लीबे' इति च। सर्पिर्घृतम्। छाद्यतेऽनया छदिः। छदिः स्त्रियामेवेति लिङ्गानुशासनसूत्रम्। एवं च पटलं छदिः इत्यमरग्रन्थे पटलसाहचर्याच्छदिषः क्लीबतां वदन्त उपेक्ष्याः ॥ छर्दतीति। छर्दिश्चातिसारश्च शूलश्च तानि यस्य सन्तीति विग्रहः ॥ २६६ **बृंहे**। बृहि वृद्धौ। अस्मादिसिः ॥ **कुशशुष्मणोरिति**। शुष्मा नाम अग्निः। 'अग्निर्वैश्वानरो वह्निः' इत्युपक्रम्य 'बर्हिः शुष्मा' इत्यमरेणोक्तत्वात्। 'बर्हि पुंसि हुताशने। न स्त्री कुशे' इति मेदिनी ॥ २६७ **द्युतेः**। द्युत दीप्तौ। 'ज्योतिरग्नौ दिवाकरे। पुमान्नपुंसकं दृष्टौ स्यानक्षत्र-प्रकाशयोः' इति मेदिनी। २६८ **वसौ**। रुच दीप्तावस्माद्वसुशब्दे उपपद इसिन्स्यात्संज्ञायाम् बाहुलकात्वे वला दपि। 'रोचिः शोचिरुभे क्लीबे' इत्यमरः ॥ २६९ भुवः। भवतेरिसिन् स्यात्स च कित् ॥ २७० **सहो**। षह मर्षणे। अस्मादिसिन् धश्चान्तादेशः ॥ २७१ **पिबतेः**। पा पाने। अस्मादिसिन्, धातोश्च थुगागमः ॥ २७२ जनेः। जनी प्रादुर्भावे ॥ २७३ **मनेः**। मनु अवबोधने। अस्मादुसिः। स्याच्छन्दसि धकारश्चान्तादेशः मधुः पवित्रद्रव्यम् ॥ २७४ **अर्तिपॄ**। ऋ गतौ, पॄ पालनपूरणयोः, डुवप् बीजसन्ताने, यज देवपूजादौ, तनु विस्तारे, धन धान्ये, तप सन्तापे, एभ्य उसिर्नित्स्यात्। 'व्रणोऽस्त्रियामीर्ममरुः क्लीबे' इत्यमरः। ग्रन्थिर्ना पर्वपुरुषी' इति च। **वपुः** क्लीबं तनौ शस्ताकृतावपि' इति मेदिनी। शस्ताकृतिः प्रशस्ताकृति-रित्यर्थः। यजुरिति यजुर्वेदः। तनुः शरीरम्। तनुषीति। 'तनुषे तनुषेऽनङ्गम्' इति सुबन्धुः। 'स्यात्तनु-स्तनुषा सार्धं धनुषा च धनुं विदुः इति द्विरूपेषु विश्वः। अथास्त्रियाम्। धनुश्चापौ' इत्यमरः। 'धनुः प्रियाले ना न स्त्री राशिभेद शरासने। धनुर्धरे त्रिषु:' इति सान्ते मेदिनी ॥ २७५ एतेः। इण् गतावित्यस्मा-दूसिः, णित्त्वाद् वृद्धौ कृतायामायादेशः ॥ २७६ चक्षेः। चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि अस्मादुसिः शिद्भवति। शित्त्वात्ख्याञादेशाभावः। चक्षते रूपमनुभवन्त्यनेनेति चक्षुः ॥ २७७ **मुहे**। मुह वैचित्त्ये। मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्ष्णमसकृत्समाः इत्यव्ययेष्वमरः ॥ अस्मात्परं २७८ **बहुलमन्यत्रापि** इति सूत्रं स्पष्टत्वात्त्यक्तम् ॥ २७९ **कॄ गॄ**। कॄ विक्षेपे, गॄ निगरणे, शॄ हिंसायाम्, वृञ् वरणे, चते याचने। 'नैरृतः कर्वरः क्रव्यात्कर्बुरो यातुरक्षसोः' इति शब्दार्णवः। 'शर्वरी यामिनीस्त्रियोः' इति मेदिनी। 'वर्वरः पामरे केश-विन्यासे नीवृदन्तरे। वर्वरः फञ्जिकायां तु वर्वरा शाकपुष्पयोः' इति विश्वः। वर्वरः पामरे केशचक्रले नीवृदन्तरे। फञ्जिकायां पुमान् शाकपुष्पभेदभिदोः स्त्रियाम्' इति मेदिनी। 'चत्वरं स्थण्डिले गणे' इति च २८० **नौ सदेः**। षद्लृ विशरणादौ। निपूर्वादस्मात्ष्वरच् स्यात्। सदिरप्रतेः इति षत्वम्। 'निषद्वरः स्मरे पङ्के निशायां तु निषद्वरी' इति मेदिनी ॥ **इत्युणादिषु द्वितीयः पादः**।

अथ तृतीयः पादः

२८१। **छित्वरछत्वरधीवरपीवरमीवरचीवरतीवरनीवरगह्वरकट्वरसंयद्वराः**। एकादश ष्वरच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। 'छिदिर्' 'छद्' अनयोस्तकारोऽन्तादेशः, छिदेर्गुणाभावश्च— छित्वरो धूर्तः, 'छत्वरो गृहकुञ्जयोः' धीवरः कैवर्तः। पीवरः स्थूलः। मीवरो हिंसकः। चिनोतेर्दीर्घश्च, चीवरं भिक्षुकप्रावरणम्। तीवरो जातिविशेषः। नीरवः परिव्राट्। गाहतेर्ह्रस्वत्वम्, गह्वरम्। कटे वर्षादौ, कट्वरं व्यञ्जनम्। यमेर्दकारः संयद्वरो नृपः। 'पदेः—संपद्वरः' इत्येके॥ २८२। **इण्सिञ्जिदीङुष्यविभ्यो नक्**। 'इनः सूर्ये नृपे पत्यौ'। सिनः काणः। जिनोऽर्हन्। दीनः। उष्णः। ऊनः॥ २८३। **फेनमीनौ**। एतौ निपात्येते। स्फायतेः फेनः। मीनः॥ २८४ **कृषेर्वर्णे**। कृष्णः॥ २८५। **बन्धेर्ब्रधिबुधी च**। ब्रध्नः, बुध्नः॥ २८६। **धापॄवस्यज्यतिभ्यो नः**। 'धाना भ्रष्टयवे स्त्रियः'। पर्णं पत्रम्, पर्णः किंशुकः। 'वस्नो मूल्ये वेतने च'। अजेर्वी, वेनः। अत्नः— आदित्यः। बाहुलकात्—शृणोतेः श्रोणः पङ्गुः॥ २८७। **लक्षेरट् च**। लक्षेश्चुरादिण्यन्तान्नः स्यात्तस्याडागमश्च। चान्मुडित्येके। 'लक्षणं लक्ष्मण नाम्नि चिह्ने च'। लक्षणो लक्ष्मणश्च रामभ्राता। 'लक्षणा हंसयोषायां सारसस्य च लक्ष्मणा'॥ २८८। **वनेरिच्चोपधायाः**। वेन्ना नदी॥ २८९। **सिवेष्ट्युँ च**। दीर्घो-

---

२८१ छित्वर॥—**अनयोरिति**। छिदिर् द्वैधीकरणे, छद अपवारणे, 'छित्वरश्छेदने द्रव्ये धूर्ते वैरिणी च त्रिषु' इति मेदिनी। डुधाञ् धारणपोषणयोः, पा पाने, मा माने, एषां त्रयाणामीत्वमन्त्यस्य निपात्यत इत्येके। अन्ये तु पीव मीव तीव नीव स्थौल्ये। एभ्यः ष्वरचि 'लोपो व्योः'— इति लोपमाहुः। 'पीवरः कच्छपे स्थूले' इति मेदिनी॥—मीवर इति। हिंसक इत्यर्थानुगुण्येन मीञ् हिंसायाम्' इत्यस्मात्ष्वरजिति केचिदाहुः। तीवरो नाम्बुधौ व्याधे' इति मेदिनी। 'स्यात्तीवरो वाणिजके वास्तवेऽपि च दृश्यते' इति मेदिनीविश्वप्रकाशौ॥—गाहतेरिति। गाहू विलोडने। 'कट्वरं कुत्सिते वाच्यलिङ्गं तक्रे नपुंसकम्' इति मेदिनी। बाहुलकादुपपूर्वकात् 'हु दानादनयोः' इत्यस्माष्वरच्युकारलोपः। 'उपह्वरं समीपे स्यादेकान्तेऽपि नपुंसकम् इति मेदिनी। उपह्वरो रथ इति केचित्। 'तदु प्रयक्षतं' इति मन्त्रे तु उपह्वरे उपगन्तव्ये समीपदेशे॥ २८२ **इण**। इण् गतौ, षिञ् बन्धने, जि जये, दीङ् क्षये, उष दाहे, अव रक्षणे। 'इनः पत्यौ नृपार्कयोः' इति मेदिनी। 'जिनोऽर्हति च बुद्धे च पुंसि स्यात्त्रिषु जित्वरे इति च। 'दीना मूषिकयोषायां दुर्गते कातरेऽन्यवत्' इति विश्वः। 'उष्णो ग्रीष्मे पुमान् दक्षाशीतयोरन्यलिङ्गकः' इति मेदिनी। 'ज्वरत्वर' इत्युठ् ऊनमसंपूर्णम्॥ २८३ **फेन**। स्फायी वृद्धौ, अस्य फे इत्यादेशः। मीञ् हिंसायाम्। 'डिण्डीरोऽब्धिकफः फेनः' इत्यमरः। 'मीनो राश्यन्तरे मत्स्ये' इति विश्वः॥ २८४ **कृषेः**। कृष विलेखने अस्माद्वर्णे वाच्ये नक् स्यात्। 'कृष्णः सत्यवतीपुत्रे केशवे वायसेऽर्जुने। कृष्णा स्याद्द्रौपदीनीलीकणाद्राक्षासु योषिति। मेचके वाच्यलिङ्गः स्यात्क्लीवे मरिचलोहयोः' इति मेदिनी॥ २८५ **बन्धेः**। बन्ध बन्धने, अस्मान्नक्। 'भास्करोऽहस्करो ब्रध्नः प्रभाकरदिवाकरौ' इत्यमरः। 'बुध्नो ना मूलरुद्रयोः' इति मेदिनी॥ २८६ **धापॄ**। डुधाञ् धारणादौ, पॄ पालनादौ, वस निवासे, अज गतौ, अत सातत्यगमने, एभ्यो नः स्यात्। नक् प्रत्यये सति तु वस्न इत्यत्र संप्रसारणं स्यात्। वेत् इत्यत्र तु गुणो न स्यादिति भावः। 'धाना भ्रष्टयवे प्रोक्ता धान्याकेऽभिनवोद्भिदि' इति विश्वः। 'पर्णं पत्रं किंशुके ना' इति मेदिनी। 'वस्नस्त्ववक्रये पुंसि वेतने स्यान्नपुंसकम् इति च। वेनः—लुण्टाकः प्रजापतिश्च॥ २८७ **लक्षेः**। लक्ष दर्शनाङ्कनयोः॥—लक्षणमित्यादि। लक्षणलक्ष्मणशब्दौ द्वावपि नामचिह्नयोः क्लीवौ। रामभ्रातरि पुंलिङ्गौ। हंसयोषायां लक्षणा। सारसस्य योषायां 'लक्ष्मणा' इति व्यवस्थेत्यर्थः। लक्षणं नाम्नि चिह्ने च सौमित्रिरपि लक्षणः। लक्ष्मणं लाञ्छने नाम्नि रामभ्रातरि लक्ष्मणः' इति विश्वः। लक्षणं नामचिह्नयोः लक्ष्मणं च लक्ष्मणस्तु सौमित्रौ लक्षणो यथा इति हेमचन्द्रः। लक्ष्मणौ लक्ष्मणोऽपि च इति विश्वरूपकोशः। लक्षणं नाम्नि चिह्ने च सारस्यां लक्षणा क्वचित्। लक्ष्मणा त्वौषधीभेदे सारस्यामपि योषिति। रामभ्रातरि पुंसि स्यात्सश्रीके चाभिधेयवत्' इति मेदिनी। कोशे तु सारस्यामपि लक्षणा इति निर्मकारः स्वीकृतः॥ २८८ **वनेः**। वन संभक्तौ, अस्मान्नः, उपधाया इत्वं च॥—वेन्नेति लघूपधगुणः॥ २८९ **सिवेः**। षिवु तन्तुसन्ताने॥—**बाहुलकादिति**। एतच्च

ऽवारणसामर्थ्यान्न गुणः । स्यूनः आदित्यः । बाहुलकात् केवलोऽपि नः, ऊठ्, अन्तरङ्गत्वाद्यण, गुणः, स्योनः ॥ २९० । कृवृजृसिद्रुपन्यनिस्वपिभ्यो नित् । कर्णः । वर्णः । 'जर्णश्चन्द्रे च वृक्षे च । सेना । द्रोणः । पन्नो नीचैर्गतिः । अन्नमोदन । स्वप्नो निद्रा ॥ २९१ । धेट इच्च । 'धेनः सिन्धुर्नदी धेना' ॥ २९२ । तृषिशुषिरसिभ्यः कित् । तृष्णा । शुष्णः सूर्यो वह्निश्च । रस्नं द्रव्यम् ॥ २९३ । सुञो दीर्घश्च । सूना बधस्थानम् ॥ २९४ । रमेस्त च । रमयतीति रत्नम् ॥ २९५ । रासनासस्नास्थूण वीणाः । रासना गन्धद्रव्यम् । सास्ना गोगलकम्बलः । स्थूणा गृहस्तम्भः । वीणा वल्लकी ॥ २९६ । गादाभ्यां ष्णुच् । गेष्णुर्गायनः । देष्णुर्दाता ॥ २९७ । कृतयशूभ्यां क्स्नः । कृत्स्नम् । अक्ष्णमखण्डम् ॥ २९८ । तिजेर्दीर्घश्च । तीक्ष्णम् ॥ २९९ । श्लिषेरच्चोपधायाः । श्लक्ष्णम् ॥ ३०० । यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच् । यज्युरध्वर्युः । 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' शुन्ध्युरग्निः । दस्युस्तस्करः । जन्युः शरीरी ॥ ३०१ । भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युकौ । भुज्युर्भाजनम् । मृत्युः ॥ ३०२ । सर्तेरयुः । सरयूर्नदी । 'अयु' इति पाठान्तरम्, सरयू ॥ ३०३ । पानीविषिभ्यः पः । पाति रक्षत्यस्मादात्मानमिति पापम् । तद्योगात्पापः । नेपः पुरोहितः । बाहुलकाद्गुणाभावे नीपो वृक्षविशेषः । वेष्पः पानीयम् ॥ ३०४ । च्युवः किच्च । च्युपो वक्त्रम् ॥ ३०५ । स्तुवो दीर्घश्च । स्तूपः समुच्छ्रायः ॥ ३०६ ।

'छ्वो शूड्' इति सूत्रे वृत्तौ 'येन विधिः इति सूत्रे कैयटग्रन्थे च स्पष्टम् ॥ यणिति । लघूपधगुणे कृते त्वेकारस्यायादेशे ऊठोऽपि 'सार्वधातुक'—इत्यादिना 'गुणे कृते स्योन इति स्यादिति भावः । 'स्योनः किरणसूर्ययो' इति मेदिनी ॥ २९० कृवृ । कॄ विक्षेपे, वृञ् वरणे, दीर्घपाठे तु वॄ वरणे, जॄष् वयोहानौ, दिवादिः । जॄ इति क्र्यादौ चुरादौ च । षिञ् बन्धने द्रु गतौ, पन स्तुतौ, अन प्राणने, ञिष्वप् शये, एभ्यो नप्रत्ययो नित्स्यात् । नर्ण पृथाज्येष्ठसुते सुवर्णालौ श्रुनावपि इति विश्वमेदिन्यौ । वर्णो द्विजादिशुक्लादियशोगुणकथासु च । स्तुतौ ना न स्त्रियां भेदे रूपाक्षरविलेखने इति मेदिनी । विश्वमेदिनीरत्नमाह—जर्णश्चन्द्र इति । जर्णो जीर्णद्रुमेन्दुषु इति हेमचन्द्रः । 'ध्वजिनी वाहिनी सेना' इत्यमरः । 'द्रोणोऽस्त्रियामाढके स्यादाढकादिचतुष्टये । पुमानकृपीपतौ । कृष्णकाकेऽस्त्री नीवृदन्तरे । स्त्रियां काष्ठाम्बुवाहिन्यां गवादन्यामपीष्यते । अन्नं भक्ते च भुक्ते स्यात् इति मेदिनी । 'स्वप्नः स्वापे प्रसुप्तस्य विज्ञाने दर्शने पुमान्' इति मेदिनी ॥ २९१ धेटः । धेट् पाने, अस्मान्नः स्यादिच्चान्तादेशः । 'धेना नद्यां नदे पुमान् इति मेदिनी । 'धेनः समुद्रे नद्यां च धेना' इति विश्वः । 'श्लोक धारा' इत्यादिषु सप्तपञ्चाशत्सङ्ख्याके वाङ्नामसु धेनेति वैदिकनिघण्टौ पठितम् । अत एव 'धेना जिगाति दाशुषे' इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व' इत्यादिमन्त्रेषु धेना वागिति व्याख्यातं भाष्ये ॥ २९२ तृषि । ञितृषा पिपासायाम्, शुष शोषणे, रस शब्दे । 'तृष्णा लिप्सापिपासयोः' इति विश्वः ॥ २९३ सुञः । षुञ् अभिषवे, अस्मान्नः स्याद्धातोर्दीर्घश्च । सूनाऽधोजिह्विकाऽपि च' इति नान्तेऽमरः । 'सूनं प्रसवपुष्पयोः । सूना पुत्र्यां बधस्थानगलकण्ठिकयोः स्त्रियाम्' इति मेदिनी ॥ २९४ रमेः । रमेर्णयन्तान्नः । स्यात्तकारश्चान्तादेशः । 'रत्नं स्वजाति श्रेष्ठेऽपि मणावपि नपुंसकम्' इति मेदिनी ॥ २९५ रास्ना । रस आस्वादने, उपधादीर्घः । 'रास्ना तु स्यादभुजङ्गाख्यामेलापर्णामपि स्त्रियाम् इति मेदिनी । षस स्वप्ने, उपधादीर्घः । 'सास्ना तु गलकम्बलः' इत्यमरः । सास्ना गोगलकम्बलः इति पाठान्तरम् । 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' इत्यस्य ऊत्वं प्रत्ययस्य णत्वं च । 'वीणा विद्युति वल्लक्याम्' इति मेदिनी । २९६ गादाभ्याम् । गै शब्दे, डुदाञ् दाने । गेष्णुर्नटे गायके च देष्णुर्दातरि दुर्दमे इति विश्वः ॥ २९७ कृतयशू कृती वेष्टने, अशू व्याप्तौ । 'कृत्स्नं सर्वाम्बुकुक्षिषु' इति मेदिनी ॥ २९८ तिजेः । तिज निशाने, अस्मात्क्स्नः धातोर्दीर्घश्च । 'तीक्ष्ण सामुद्रलवणे विषलोहाजिमुष्कके । क्लीवं यवाग्रके पुंसि तिग्मात्मत्यागिनोस्त्रिषु' इति मेदिनी । ३०० यजि । यज देवपूजादौ, मन ज्ञाने, शुन्ध शुद्धौ, दसु उपक्षये, जनी प्रादुर्भावे । 'दस्युश्चौरे रिपौ पुंसि' इति मेदिनी । 'अथ जन्युः स्यात्पुंसि प्राण्यग्निधातृषु' इति च । ३०१ भुजिः । भुज पालनादौ, मृङ् प्राणत्यागे, आभ्यां यथासङ्ख्यं युक्त्युकौ स्त । 'मृत्युर्ना मरणे यमे' इति मेदिनी ॥ ३०२ सर्तेः । सृ गतौ ॥ ३०३ पानी । पा रक्षणे, णीञ् प्रापणे, विष्लृ व्याप्तौ । नीपः कदम्बबन्धूकनीलाशोकद्रुमेऽपि च' इति मेदिनी ॥ ३०४ च्युवः । च्युङ् गतौ । धातूनामनेकार्थत्वादिह भाषणे । च्यवन्ते भाषन्तेऽनेनेति

सुभृभ्यां निच्च। चात्कित् सूपः। बाहुलकादूत्त्वम्, शूर्पम् ॥ ३०७। **कुयुभ्यां च**। कुवन्ति मण्डूका अस्मिन् कूपः। युवन्ति बध्नन्त्यस्मिन्पशुमिति यूपो यज्ञस्तम्भः ॥ ३०८। **खष्पशिल्पशष्पबाष्परूपपर्पतल्पाः**। सप्तैते पप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। खनतेर्नकारस्य षत्वम्, खष्पो क्रोधबलात्कारौ। शीलतेर्ह्रस्वः, शिल्पं कौशलम्। 'शसु हिंसायाम्' निपातनात्षत्वम्। शष्पं बालतृणं प्रतिभाक्षयश्च। बाधतेः षः, 'बाष्पो नेत्रजलेऽष्मणोः'। बाष्पं च। रौतेर्दीर्घं रूपं स्वभावे सौन्दर्ये। पॄ, 'पर्पं गृहं बालतृणं पङ्गुपीठ च'। 'तल प्रतिष्ठाकरणे' चुरादिणिचो लुक्, 'तल्पं शय्याट्टदारेषु' ॥ ३०९। **स्तनिहृषिपुषिगदिमदिभ्यो णेरित्नुच्**। अयामन्त—२३११ इति णेरयादेश स्तनयित्नुः, हर्षयित्नुः, पोषयित्नुः, गदयित्नुर्वावदूकः, मदयित्नुर्मदिरा ॥ ३१०। **कृहनिभ्यां क्त्नुः**। कृत्नुः शिल्पी। हत्नुर्व्याधिः शस्त्र च ॥ ३११। **गमेः सन्वच्च**। जिगत्नुः ॥ ३१२। **दाभाभ्यां नुः**। दानुर्दाता। भानुः ॥ ३१३। **वचेर्गश्च**। वग्नुः ॥ ३१४। **धेट इच्च**। धयति सुतानिति धेनुः ॥ ३१५ **सुवः कित्**। 'सूनुः पुत्रेऽनुजे रवौ' ॥ ३१६। **जहातेर्द्वेऽन्त्यलोपश्च**। जह्नुः ॥ ३१७। **स्थो णुः**। 'स्थाणुः कीले स्थिरे हरे' ॥ ३१८। **अजिवृरीभ्यो निच्च**। अजेर्वी, वेणुः। वर्णुर्नददेशभेदयोः। 'रेणुर्द्वयोः स्त्रियां

विग्रहः। दशपाद्यां तु चुपः किच्च इति पठ्यते। चुप मन्दायां गतौ। चोपतीति च्युपः मन्दगमनकर्ता ॥ ३०५ **स्तुवः**। ष्टुञ् स्तुतौ। अस्मात्पः स्याद्धातोर्दीर्घश्च ॥ ३०६ **सुभृ**। षुञ् अभिषवे, शॄ हिंसायाम्। आभ्यां पः स्यात्स च निद्वत्। नित्यं तु स्वरार्थम्। 'सूपो व्यञ्जनसूदयोः' इति मेदिनी ॥ ३०७ **शूर्पमिति** बाहुलकादुत्वं रपरत्वं 'हलि च' इति दीर्घ। 'प्रस्फोटनं शूर्पमस्त्री' इत्यमरः ॥—कुयु। कु शब्दे, यु मिश्रणे आभ्यां पः स च मिद्धातदीर्घत्व च ॥ ३०८ **खष्पशिल्प**। खनु अवदारणे। शील समाधौ, बाधृ लोडने, रु शब्दे, पॄ पालनादौ। खष्पः क्रोधे बलात्कृतौ इति विश्वः। शष्पं बालतृणेऽपि च। पुंसि स्यात्प्रतिभाहानौ इति मेदिनी ॥ विश्वोक्तिमाह—बाष्प इति। बाष्पभूष्मणि चाश्रुणि इति कोशान्तरमभिप्रेत्याह—बाष्प चेति 'रूपं स्वभावे सौन्दर्ये नालके पशुशब्दयोः। ग्रन्थवृत्तौ नाटकादावाकारश्लोकयोरपि इति विश्वमेदिन्यौ। तल्पमट्टे कलत्रे च शायनीये च न द्वयोः इति मेदिनी। अमरोक्तिमाह—तल्प शय्येति ॥ ३०९ **स्तनिहृषि**। स्तनगदी देवशब्दे चरादिण्यन्तौ हृष तुष्टौ पुष पुष्टौ, मदी हर्षग्लेपनयोः, घटादिः। एभ्यो ण्यन्तेभ्यः इत्नुच् स्यात्। स्तनयित्नुः पुमान्वारिधरेऽपि स्तनितेऽपि च इति मेदिनी। स्तनयित्नुः पयोवाहे तद्ध्वनौ मृगरागयोः इति विश्वः। 'हर्षयित्नुः सुते हेम्नि पोषयित्नुः पिके द्विजे' इति च। गदयित्नुः पुमान्कामे जल्पाके कार्मुकेऽपि च इति विश्वमेदिन्यौ। मदयित्नुः कामदेवे पुमान्मद्ये नपुंसकम् इति मेदिनी ॥ ३१० **कृहति**। डुकृञ् करणे, हन हिंसागत्योः। कृत्नुरिति। कर्तेत्यर्थः। कित्त्वान्न गुणः। हत्नुरिति। 'अनुदात्तोपदेश'—इत्यादिनानुनासिकलोपः। एवमुत्तरत्र—गमेरपि क्त्नुप्रत्यये जिगत्नुरित्यत्रापि बोध्यः। शस्त्र चेति। चाद्धन्ता। दशपादीवृत्तौ तु क्नुरिति तकाररहितं पठित्वा कृणुः कर्ता। हनुर्वेकैकदेशः। बाहुलकान्नलोपः। गमेस्तु जिगत्नुरित्युदाहृत। तत्सर्वं प्रामादिकम्, लक्ष्यविसंवादात्। तथा च श्रूयते सुरूपकृत्नुमूतये ज्येष्ठ-राजं भरे कृत्नु अयं कृत्नुरगृभीतः मा नो बधाय हत्नवे 'मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्' 'यो नः सनुत्य उत वा जिगत्नु' इत्यादि। अत एव हन्तिधातुं विवृण्वता माधवेन उपहत्नुरित्युदाहृत्य क्नोः कित्त्वादनुनासिकलोपः इत्युक्तम्। यत्तु तेनैव 'सुरूपकृत्नुम्' इति मन्त्रं विवृण्वता तकारोपजनश्छान्दस इत्युक्तं तद्दशपादीवृत्तिमनु-सृत्य न तु वस्तुस्थितिमनुरुध्येति सहृदयैराकलनीयमित्याहुः ॥ ३१२ **दाभाभ्याम्**। डुदाञ् दाने, भा दीप्तौ। दानुर्दातरि विक्रान्ते' इति मेदिनि। 'भानू रश्मिदिवाकरौ' इत्यमर ॥ ३१३ **वचेः**। वच परिभाषणे। वग्नुर्वाचालः ॥ ३१४ **धेटः**। धेट् पाने अस्मान्नु स्यादिकारश्चान्तादेशः। 'धेनु स्यान्नवसूतिका' इत्यमरः ३१५ **सुवः**। षूङ् प्राणिप्रसवे। अस्मान्नु स्यात्स च कित्। विश्वोक्तिमाह सूनुः पुत्रे इति ॥ ३१६ **जहातेः**। ओहाक् त्यागे। 'जह्नुः स्यात्पुंसि राजर्षिभेदे च मधुसूदने' इति मेदिनी ॥ ३१७ **स्थो णु**। ष्ठा गतिनिवृत्तौ, अस्माण्णुः स्यात् ॥ विश्वोक्तिमाह—स्थाणुरिति। 'स्थाणुः कीले हरे पुमान्। अस्त्री ध्रुवे' इति मेदिनी ॥ ३१८ **अजिवृ**। अज गतौ, वृङ् संभक्तौ, रीङ् गतिरेषणयोः, एभ्यो णुर्नित्स्यात्। 'वेणुर्नृपान्तरे वंशे' इति

धूलिः ॥ ३१९ । विषेः किच्च । विष्णुः ॥ ३२० । कृदाधाराचिकलिभ्यः कः । बाहुलकान्न वस्येतसंज्ञा । 'कर्को धवलघोटकः' । दाको दाता । धाकोऽनड्वानाधारश्च । राका पौर्णमासी । अर्कः । 'कल्कः पापाशये पापे दम्भे विट्किट्टयोरपि ॥ ३२१ । सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक् । 'सृक उत्पलवातयोः । वृकः श्वापदकाकयोः भूकं छिद्रम् । शुष्कः । मुष्कोऽण्डम् ॥ ३२२ । शुकवल्कोल्काः । शुभेरन्त्यलोपः, शुकः । 'वल्कं वल्कलमस्त्रियाम्' । उष दाहे षस्य लः, उल्का ॥ ३२३ । इण्भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन् । 'एके मुख्यान्यकेवलाः' भेको मण्डूकमेघयोः इति विश्वमेदिन्यौ । काकः । पाकः शिशुः । शल्कं शकलम् । अत्कः पथिकः शरीरावयवश्च । मर्कः शरीरवायुः ॥ ३२४ । नौ हः । जहाति वन् स्यानौ । निहाका गोधिका ॥ ३२५ । नौ सदेडिच्च । निष्कोऽस्त्री हेम्नि तत्पले ॥ ३२६ । स्यमेरीट् च । स्यमीको वल्मीकः वृक्षभेदश्च । 'इट् ह्रस्वः' इति केचित्, स्यमिकः ॥ ३२७ । अजियुधूनीभ्यो दीर्घश्च । वीकः स्याद्वातपक्षिणोः । यूका । धूको वायुः । नीको वृक्षविशेषः ॥ ३२८ । ह्रियो रश्च लो वा । 'ह्रका ह्लीका त्रपा मता' ॥ ३२९ । शकेरुनोन्तोन्त्युनयः

विश्वः । रेणुः स्त्रीपुंसयोर्धूलौ पुंलिङ्गः पर्पटे पुनः' इति मेदिनी ॥ ३१९ विषेः । विष्लृ व्याप्तौ । अस्माण्णुः स्यात्स च किच्चान्नित् । नित्त्वादाद्युदात्तत्वम् । विष्णुरिच्छा । विष्णुर्नारायणः कृष्णः इत्यमरः ॥ ३२० कृदा । डुकृञ् करणे, डुदाञ् दाने, डुधाञ् धारणपोषणयोः, रा दाने, अर्च पूजायाम् कल गतौ । 'कर्कः कर्कतले वह्नौ शुक्लाश्वे दर्पणे घटे इति विश्वमेदिन्यौ । राका नद्यन्तरे कच्छ्वा नवजातरजः स्त्रियाम् । संपूर्णेन्दुतिथौ इति मेदिनी । राका तु सरिदन्तरे । राका नवरजः कन्या पूर्णेन्दुः पूर्णिमापि च इति विश्वः । इह दा धा रा एषां कुणः इति ह्रस्वोऽपि बाहुलकात् संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वाद्वा नेति बोध्यम् । अर्कोऽर्कपर्णे स्फटिके रवौ ताम्रे दिवस्पतौ' इति विश्वमेदिनौ । कल्कोऽस्त्री घृततैलादिशेषे दम्भे विभीतके । विट्विट्टयोश्च पापे च त्रिषु पापाशये पुनः इति मेदिनी । बाहुलकाद्रमेरपि कः । रङ्कुः कृपणमन्दयोः इति मेदिनी । कपिलकादित्वाल्लत्वं, टाप् । 'लङ्का रक्षः पुरीशाखाशाकिनीकुलटासु च इति विश्वमेदिन्यौ ॥ ३२१ सृवृ । सृ गतौ, वृञ् वरणे, भू सत्तायाम्, शुष शोषणे, मुष स्तेये । सृक इति । सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मम् इति इति मन्त्रस्य वेदभाष्ये तु सृकं सरणशीलं पविं वज्रं संशाय सम्यक् तीक्ष्णीकृत्येति व्याख्यातम् । भूकं छिद्रं च काले च' इति मेदिनी । 'मुष्को मोक्षकवृक्षे स्यात्संघाते वृषणेऽपि च' इति स एव ॥ ३२२ शुको व्यासस्रुते कीरे रावणस्य च मन्त्रिणि । शिरीषपादपे पुंसि ग्रन्थिपर्णे नपुंसकम् । वल्कं वल्कलशल्कयोः' इति च । उल्का ज्वाला विभावसोः इति सुभूतिचन्द्रः ॥ ३२३ इण्भी । इण् गतौ, ञिभी भये, कै शब्दे, पा पाने, शल गतौ, अत सातत्यगमने । एकं संख्यान्तरे श्रेष्ठे केवलेतरयोस्त्रिषु इति मेदिनी । काकः स्याद्वायसे वृक्षप्रभेदे पीठसर्पिणि । शिरोऽवक्षालने मानप्रभेदद्वीपभेदयोः । काका स्यात्काकनासायां काकोली काकजङ्घयोः । रक्तिकायां मलय्यां च काकमाच्यां च योषिति । काकं सुरतबन्धे स्यात्काकानामपि सहतौ इति मेदिनी-विश्वप्रकाशौ । 'पाकः परिणतौ शिशौ । केशस्य जरसा शौक्ल्ये स्थाल्यादौ पचनेऽपि च' इति मेदिनी । शल्कं तु शकले वल्के इति च । मर्च इति सौत्रो धातुरिति बहवः । मर्च शब्दे चौरादिकः इति 'मिदचोऽन्त्यात्परः' इति सूत्रे कैयटः । 'मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन' इति मन्त्रे मर्चयति विधेयीकरोति भर्त्सयति वेति वेदभाष्यम् । न चैवं णिलोपस्य स्थानिवद्भावेन कुत्वाभावान्मर्क इति न सिध्येदिति वाच्यम् । पूर्वत्रासिद्धे तदभावात् । शो तनूकरणे, अस्मादपि बाहुलकात्कन् । 'शाको द्वीपान्तरेऽपि च । शक्तौ द्रुमविशेषे च पुमान् हरितके स्त्रियाम्' इति मेदिनी ॥ ३२४ नौ हः । ओहाक् त्यागे । अस्मान्निशब्दे उपपदे कन्स्यात् । 'निहाका गोधिका समे' इत्यमरः ॥ ३२५ नौ सदेः । षद्लृ विशरणे, अस्मान्निशब्दे उपपदे कन् स्यात् स च डित् । डित्वाट्टिलोपः । 'सदिरप्रतेः' इति षत्वम् । 'निष्कमस्त्री साष्टहेमशते दीनारकर्षयोः । वक्षोलंकरणे हेममात्रे हेमपलेऽपि च' इति मेदिनी ॥ ३२६ स्यमेः । स्यमु शब्दे अस्मात्कन्स्यात्तस्य च ईडागमः । 'स्यमीका नीलिकायां स्त्री स्यमीको नाकुवृक्षयोः' इति मेदिनी ॥ ३२७ अजि । अज गतिक्षेपणयोः, यु मिश्रणे, धूञ् कम्पने, णीञ् प्रापणे, एभ्यः कन् स्यादेषां दीर्घश्च । तत्सामर्थ्याद्गुणाभावः । अजेर्वीभावः ॥ ३२८ ह्रियः । ह्री लज्जायाम्, अस्मात्कन्धातोर्दीर्घत्वं च, तत्सामर्थ्याद्गुणाभावः ॥ ३२९ शकेः । शक्लृ शक्तौ ।

उन उन्त उन्ति उनि एते चत्वारः स्युः। शकुनः, शकुन्तः शकुन्तिः, शकुनिः ॥ ३३० । **भुवो झिच्** । भवन्तिः वर्तमानकालः । बाहुलकादवेश्च, अवन्तिः । वदेः—वदन्तिः । किंवदन्ती जनश्रुतिः ॥ ३३१ । **कन्युच् क्षिपेश्च** । चाद्भुवः । क्षिपण्युर्वसन्तः इत्युज्ज्वलदत्तः । भुवन्युः स्वामिसूर्ययोः ॥ ३३२ । **अनुङ् नदेश्च** । चात्क्षिपेः । नदनुर्मेघः । क्षिपणुर्वातः ॥ ३३३ । **कॄवॄदारिभ्यः उनन्** । करुणा वृक्षभेदः स्यात्करुणा च कृपा मता । वरुणः । दारुणम् ॥ ३३४ । **त्रो रश्च लो वा** । तरुणोऽस्तलुनो युवा ॥ ३३५ । **क्षुधिपिशिमिथिभ्यः कित्** । क्षुधुनो म्लेच्छजातिः । पिशुनः । मिथुनम् । ३३६ । **फलेर्गुक् च** । फल्गुनः पार्थः । प्रज्ञाद्यण्, फाल्गुनः ३३७ । **अशेर्लशश्च** । लशुनम् ॥ ३३८ । **अर्जेणिलुक् च** । अर्जुनः ॥ ३३९ । **तृणाख्यायां चित्** । चित्त्वा-दन्तोदात्तः । अर्जुनं तृणम् ॥ ३४० । **अर्तेश्च** । अरुणः ॥ ३४१ । **अजियमिशीङ्भ्यश्च** । वयुनं देवमन्दिरम् यमुना । शयुनोऽजगरः ॥ ३४२ । **वृतॄवदिहनिकमिकषिभ्यः सः** । वर्सः । तर्सम् । 'तर्सः प्लवसमुद्रयोः' ।

शकुन्तिपक्षिशकुनिशकुन्तशकुनद्विजाः इत्यमरः । 'शकुनस्तु पुमान्पक्षिमात्रप्रश्नविशेषयोः । शुभशंसिनिमित्ते च शकुन स्यान्नपुंसकम्' इति मेदिनी । 'शकुन्तः कीटभेदे स्याद्भासपक्षिविहङ्गयोः' इति । 'शकुनि पुंसि विहगे सौबले करणान्तरे' इति च ॥ ३३० **भुवः** । भू सत्तायाम् । अस्मात् झिच् स्यात् । 'झोऽन्तः' कृदिकारान् इति ङीष् भवन्ती लटः संज्ञा । तथा च 'अस्तिर्भवन्तीपरः प्रयोक्तव्यः' इति भाष्यम् । बाहुलकात्कमेरपि प्रत्ययादिलोपे धातोः कुशब्दादेशः । कुन्तिः । 'इतो मनुष्यजातेः' इति ङीष्, 'कुन्ती पाण्डुप्रियायां च शल्लक्यां गुग्गुलुद्रुमे' इति मेदिनी ॥ **अवन्तिरित्यादि** । अव रक्षणे, वद व्यक्तायां वाचि, आभ्यामपि झिच् वदन्तीति । कृदिकारात् । इति ङीष् ॥ ३३१ **कन्युच्** । क्षिप प्रेरणे, भू सत्तायाम् । 'क्षिपण्युस्तु पुमान् देहे सुरभौ वाच्यलिङ्गके' इति मेदिनी । 'भुवन्युः स्यात्पुमान्भानौ ज्वलने शशलाञ्छने' इति विश्वमेदिन्यौ । ३३२ **अनुङ्** । णद अव्यक्ते शब्दे । अस्मादनुङ्प्रत्ययः स्यात् ।—क्षिपणुरिति । ङित्त्वाद्गुणाभावः ॥ ३३३ **कॄवॄ** । कॄ विक्षेपे, वृञ् वरणे, दॄ विदारणे, ण्यन्तः । 'करुणस्तु रसे वृक्षे कृपायां करुणा मता' इति विश्व-मेदिन्यौ । वरुणस्तरुभेदेऽप्सु प्रतीचीप्रतिसूर्ययोः इति विश्वः । 'दारुणं भीषणं भीष्मम्' इत्यमरः । 'दारुणो रसभेदे ना द्विषु तु स्याद्भयावहे' इति मेदिनी ॥ ३३४ **त्रो रश्च** । तॄ प्लवनतरणयोः अस्मादुनन्स्यात् । तरुणं कुब्जपुष्पे ना रुचके यूनि तु त्रिषु' इति मेदिनी । गौरादित्वान् ङीपि 'तरुणी तलुनीति च' इति द्विरूपेषु विश्वः ॥ ३३५ **क्षुधि** । क्षुध बुभुक्षायाम्, पिश अवयवे, अयं दीपनायामपि । मिथिः सौत्रो धातुः 'पिशुनो दुर्जनः खलः' इत्यमरः । पिशुनं कुङ्कुमे स्मृतम् । कपिवक्त्रे च काके ना सूचकक्रूरयोस्त्रिषु । पृक्कायां पिशुना स्त्री स्यात् इति मेदिनी । 'मिथुनं न द्वयो राशिभेदे स्त्रीपुंसयुग्मके' इति च ॥ ३३६ **फलेः** फल निष्पत्तौ, अस्मादनन् गुगागमश्च धातोः । 'फल्गुनस्तु गुडाकेशे नदीजार्जुनभूरुहे । तपस्यसञ्ज्ञमासे तत्पूर्णिमायां च फाल्गुनी इति मेदिनी ॥—फाल्गुन इति । 'फल्गुनः फाल्गुनोऽर्जुने' इति द्विरूपकोशः ॥ ३३७ **अशेः** । अश भोजने अस्मादुनन् धातोर्लशादेशश्च । लशुनं महाकन्दः । 'लशुना लशुणं वेश्म वेश्मलं विश्वमश्ववत्' इति मध्यतालव्येषु विश्वः । 'लसश्च' इति दन्त्यमध्यपाठस्तु प्रामादिकः ॥ ३३८ **अर्जः** । अर्ज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु, अस्माण्ण्यन्तादुनन् स्यात् णेश्च लुक् । इह 'णेरनिटि' इति णिलोपेनैव सिद्धे णिलुक् च इत्युक्तेः फलं चिन्त्यम् । ३३९ **अर्जुन** । ककुभे पार्थे कार्तवीर्यमयूरयोः । मातुरेकसुतेऽपि स्याद्धवले पुनरन्यवत् । नपुंसकं तृणे नेत्ररोगे वाप्यर्जुनी गवि । उषायां बाहुदानद्यां कुट्टन्यामपि च क्वचित् इति विश्वमेदिन्यौ ॥ ३४० **अर्तेश्च** । ऋ गतौ, अस्मादुनन्स्यात्स च चित् । 'अरुणोऽव्यक्तरागेऽर्के सन्ध्या-रागेऽर्कसारथौ । निःशब्दे कपिले कुष्ठभेदे ना गुणिनि त्रिषु । अरुणाति विषाश्यामामञ्जिष्ठात्रिवृतासु च' इति मेदिनी ॥ ३४१ **अजि** । अज गतिक्षेपणयोः, यम उपरमे, शीङ् स्वप्ने, एभ्य उनन् स्यात्स च चित् । अजेर्वीभावः वीयते गम्यतेऽत्रेति वयुनम् । विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् इति मन्त्रे वयुनानि प्रज्ञानानिति वेदभाष्यम् । वैदिकनिघण्टौ प्रज्ञापर्याये च वयुनशब्दः पठितः । यमुना शमनस्वसा इत्यमरः ॥ ३४२ **वृ, तॄ, वृ** वरणे, तॄ प्लवनतरणयोः, वद व्यक्तायां वाचि, हन हिंसागत्योः, कमु कान्तौ, कष हिंसायाम् ॥ वर्सः

वत्सः । वत्सम् वक्षः । हंसः । 'कंसोऽस्त्री पानभाजनम्' । कक्षं नक्षत्रम् ।। ३४३ । **प्लुषेरच्चोपाधायाः** । प्लक्षः ।। ३४४ । **मनेर्दीर्घश्च** । मांसम् ।। ३४५ । **अशेर्देवने** । अक्षः ।। ३४६ । **स्नुव्रश्चिकृत्यृषिभ्यः कित्** । स्नुषा । वृक्षः । कृत्समुदकम् । ऋक्षं नक्षत्रम् ।। ३४७ । **ऋषेर्जातौ** । ऋक्षोऽद्रिभेदे भल्लूके शोणके कृतवेधने ऋक्षमुक्तं च नक्षत्रे इति विश्वः ।। ३४८ । **उन्दिगुधिकुषिभ्यश्च** । उत्सः प्रस्रवणम् । गुत्सः स्तवकः । कुक्षो जठरम् ।। ३४९ । **गृधिपण्योर्दकौ च** । गृत्सः कामदेवः । पक्षः ।। ३५० । **अशेः सरः** । अक्षरम् ।। ३५१ । **वसेश्च** । वत्सरः ।। ३५२ । **सपूर्वाच्चित्** । संवत्सरः ।। ३५३ । **कृधूमधिभ्यः कित्** । बाहुलकान्न षत्वम्,

---

तर्स इति । तितुव इति नेट् । षत्वे तु न भवति । बाहुलकेन षत्वे कर्तव्ये प्रत्ययसंज्ञाया अप्रवृत्तेः । कक्ष-शब्दे तु षत्वं भवत्येव । एतच्च भाष्यकैयटादिपर्यालोचनयोक्तम् । कथं तर्हि सर्वैरप्युणादिवृत्तिकारैरिह षत्वमुदाहृतमिति चेत् । अत्राहुः-अस्तु भाष्यप्रामाण्यात् वर्सं तर्समिति दन्त्यपाठोऽपि साधुः । पक्षे तु षत्वमस्तु बाहुलकलभ्यषत्वाभावस्य पाक्षिकत्वेऽपि बाधकाभावात् । वृषितृषिभ्यां घञि कृते, ण्यन्तादेरचि घञर्थे कविधानम् इति ण्यन्तात्कप्रत्यये वा कृते वर्षतर्षशब्दयोर्दुर्वारत्वात्, 'अज्विधौ भयादीनामुपसंख्यानं नपुंसके क्तादिनिवृत्त्यर्थम्' इत्यत्र 'वर्षम्' इत्याकरे उदाहृतत्वाच्च । तस्मादिह द्विरूपता फलितेति । वर्षोऽस्त्री भारतादौ स्याज्जम्बुद्वीपाब्दवृष्टिषु । प्रावृट्काले स्त्रियां भूम्नि इति मेदिनी । 'तर्षो लिप्सोदन्ययोः' इति च 'पुत्रादौ तर्णके वर्षे वत्सः क्लीवं तु वक्षसि' इति त्रिकाण्डशेषः । 'सद्योजातस्तु तर्णकः' । 'हंसः स्यान्मानसौकसि । निर्लोभनृपविष्णवर्कपरमात्मसु मत्सरे । योगभेदे मन्त्रभेदे शारीरमरुदन्तरे । तुरङ्गमप्रभेदे च' इति मेदिनी । 'कंसोऽस्त्री तैजसद्रव्ये कांस्ये मानेऽसुरे तु ना' इति च । 'कंसो दैत्यान्तरे स्मृतः । कांस्ये च कांस्य पात्रे च मानभेदे च कीर्तितः' इति विश्वः । 'कक्षा स्यादन्तरीयस्य पश्चादञ्चलपल्लवे । स्पर्धायां ना तु दोर्मूलकच्छवीरुत्तृणेषु च' इति मेदिनी ।। ३४३ **प्लुषेः** । प्लुष दाहे, अस्मात्सः स्यादुपधाया अकारश्च । 'प्लक्षो द्वीपविशेषे स्यात्पर्कटीगर्दभाण्डयोः । पिप्पले द्वारपार्श्वे च गृहस्य परिकीर्तितः' इति विश्वः ।। ३४४ **मनेः** । मन ज्ञाने । 'मांसं स्यादामिषे क्लीवं कक्कोलीजटायोः स्त्रियाम्' इति मेदिनी ।। ३४५ **अशेः** । अशू व्याप्तौ, अस्माद्देवने वाच्ये सः स्यात् । 'व्रश्चभ्रस्ज' इत्यादिना षत्वादिकार्यम् । 'अथाक्षमिन्द्रिये । ना द्यूताङ्गे कषचक्रे व्यवहारे कलिद्रुमे' इत्यमरः । 'अक्षो ज्ञानात्मशकटव्यवहारेषु पाशके । रुद्राक्षेन्द्राक्षयोः सर्पे बिभीतकतरावपि । चक्रे कर्षे पुमान् क्लीवं तुत्थसौवर्चलेन्द्रिये' इति मेदिनी ।। ३४६ **स्नुव्रश्चि** । स्नु प्रस्रवणे, ओव्रश्चू छेदने, कृती छेदने, ऋषी गतौ, एभ्यः सः कित्स्यात् । स्नुषा पुत्रवधूः । वृक्ष इति । स्रस्य कित्वाद् 'ग्रहिज्या' संप्रसारणम् । 'ऋक्षः पर्वतभेदे स्याद्भल्लुके शोणके पुमान् । कृतवेधेऽप्यन्यलिङ्गं नक्षत्रे पुंनपुंसकम्' इति मेदिनी ।। ३४७ **ऋषेर्जातौ** । पूर्वसूत्रेनैव सिद्धे ऋषेर्जातावेवेति नियमार्थं सूत्रम् । तेनान्येभ्यस्त्रिभ्यः कुवलयौगिकत्वेऽपि सप्रत्ययो भवति ।। ३४८ **उन्दिगुधि** । उन्दी क्लेदने, गुध रोषे, कुष निष्कर्षे एभ्यः सः कित्स्यात् । अनिदिताम् इति नलोपः । उत्सः प्रस्रवणं वारि इत्यमरः । 'गुत्सः स्यात्स्तवके स्तम्बे हारभिद्ग्रन्थिपर्णयोः' इति मेदिनी । गुच्छश्च गुत्सो गुच्छो गुलुच्छवत्' इति द्विरूपकोशात् । 'स्याद् गुच्छः स्तवके स्तम्बे हारभेदकलापयोः इति च वर्गद्वितीयान्ते मेदिनीकोशाच्च ।। ३४९ **गृधि** । गृधु अभिकाङ्क्षायाम् पण व्यवहारे स्तुतौ च । ननु गृधेश्चर्त्वेन गृत्स इति सिद्धे दकारविधानं व्यर्थमिति चेत् । मैवम् । चर्त्वस्यासिद्धत्वेन एकाचो बशः इति भष्भावप्रसङ्गात् । न चैवमपि प्रक्रियालाघवाय तकार एव विधीयतामिति शङ्क्यम् । 'चयो द्वितीया' इति पक्षे तकारस्य थकारापत्तेः । 'पक्षो मासार्धके पार्श्वे ग्रहे साध्यविरोधयोः । केशादेः परतो वृन्दे बले सखिसहाययोः । चुल्लीरन्ध्रे पतत्रे च राजकुञ्जरपार्श्वयोः' इति विश्वमेदिन्यौ ।। ३५० **अशेः** । अशू व्याप्तौ, व्रश्च इत्यादिना षत्वादिकार्यम् । 'अक्षरं स्यादपवर्गे परब्रह्मणि वर्णयोः' इति हेमचन्द्रः । 'अशे सरन्' इत्युज्ज्वलदत्तादिपाठस्तु प्रामादिकः, नित्स्वरापत्तेः । इष्यते तु प्रत्ययस्वरेणाक्षरशब्दस्य मध्योदात्तम् । 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' इत्यादिऋङ्मन्त्रेषु, त्रीणि च शतानि षष्टिश्चाक्षराणि' इति यजुषि च तथैव पाठात् । अत एव 'अश्नोतेर्वा सरोऽश्नरम्' इति द्वितीयाह्निकान्ते भाष्यवृत्तं सत्तम् ।। ३५१ **वसेश्च** । वस निरासे, अस्मादपि सरः स्यात् । 'सः स्यार्धधातुके' इति तत्त्वम् ।। ३५२ **सपूर्वाच्चित्** । पूर्व-

'कृसरः स्यात्तिलौदनम्'। धूसरः। मत्सरः। 'मत्सरा मक्षिका ज्ञेया भम्भराली च सा मता'। ३५४। **पतेरश्च लः**। पत्सल पन्थाः॥ ३५५। **तन्यृषिभ्यां क्सरन्**। तसरः सूत्रवेष्टने। ऋक्षरः ऋत्विक्॥ ३५६। **पीयुक्वणिभ्यां कालन् ह्रस्वः संप्रसारणं च**। पीयुः सौत्रः। पियालो वृक्षभेदः। कुणालो देशभेदः॥ ३५७। ***कटिकुषिभ्यां काकुः**। कठाकुः पक्षी। कुषाकुरग्निः सूर्यश्च॥ ३५८। **सर्तेर्दुक् च**। सृदाकुर्वातरग्निः॥ ३५९। **वृतेर्वृद्धिश्च**। वार्ताकुः। बाहुलकादुकारस्य अत्वम्, वार्ताकम्॥ ३६०। **पर्देर्नित्संप्रसारणमल्लोपश्च** 'पृदाकुर्वृश्चिके व्याघ्रे चित्रके च सरीसृपे'॥ ३६१। **सृयुवचिभ्योऽन्युजागूजक्नुचः**। अन्युच्, आगूच्, अक्नुच् एते क्रमात्स्युः। सरण्युर्मेघवातयोः। यवागूः। वचक्नुर्विप्रवाग्मिनोः॥ ३६२। **आनकः शीङ्भियः** शयानकोऽजगरः। भयानकः॥ ३६३। **आणको लूधूशिङ्घिधाञ्भ्यः**। लवाणकं दात्रम्। धवाणको वातः। शिङ्घाणकः श्लेष्मा। पृषोदरादित्वात्पक्षे कलोपः, 'शिङ्घाणं नासिकामले'। 'धाणको दीनारभागः'॥ ३६४। **उल्मुकदर्विहोमिनः**। उष दाहे, षस्य लः, मुकप्रत्ययश्च 'उल्मुकं ज्वलदङ्गारम्'। दृणातेर्विः, दर्विः।

सहितात्क्सतेः परः सः स्यात्स च चित्। चित्त्वादन्तोदात्तः। 'इन्दुवत्सराय परिवत्सराय'। सद्धर्वादिति पाठान्तरम्। तच्च लक्ष्याविरोधादुपेक्ष्यम्॥ ३५३ **कृधू**। डुकृञ् करणे, धूञ् कम्पने, मदी हर्षे, एभ्यः सरः कित्स्यात्। कृसरः स्यात् इत्यादि हारावलीस्थम्। धूसरो किन्नरीभेदे ना खरे त्रिषु पाण्डुरे' इति मेदिनी। 'मत्सरा मक्षिकायां स्यान्मात्सर्यक्रोधयोः पुमान्। असह्यपरसंपत्तौ कृपणे चाभिधेयवत्' इति च। 'मत्सरोऽन्यशुभद्वेषे तद्वत्कृपणयोस्त्रिषु' इत्यमरः। अथ मत्सरः। असह्यपरसंपत्तौ मात्सर्ये कृपणे क्रुधि' इति विश्वः। वेदे तु 'मदी हर्षे' इति योगार्थं पुरस्कृत्य प्रयुज्यते 'इन्दुमिन्द्राय मत्सरम्'। 'तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रयानम्' इत्यादि। समत्सरं हर्षहेतुमिति तद्भाष्यम्॥ ३५४ **पतेः**। पत्लृ गतौ, अस्मात्सरः स्याद्रेफस्य लश्च॥ ३५५। **तन्यृषि**। तनु विस्तारे, ऋषी गतौ। अमरोक्तिमाह—**तसर इति**। कित्त्वात् 'अनुदात्तोपदेश' इत्यादिनानुनासिकलोपः॥—**ऋक्षरः ऋत्विगिति**। ऋक्षर वारिधारायामृक्षरस्त्वृत्विजि स्मृतः' इति मेदिनी 'अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थाः' इति मन्त्रस्य वेदभाष्ये तु ऋक्षरः कण्टक इति व्याख्यातम्॥ ३५६ **पीयुक्वणिभ्याम्**। 'अण रण' इति दण्डके क्वणिः पठ्यते। स च सब्दार्थकः। आभ्यां कालन् स्यात्, यथाक्रमं ह्रस्वः संप्रसारणं च। 'राजादनं पियालः स्यात्' इत्यमरः। 'प्रियालः स्यात्पियलवत्' इति द्विरूपकोशः। बाहुलकाद्भञ्जेरपि कालन्। कित्त्वान्नलोपः। न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम्। भगालं नरमस्तकम्। मत्वर्थे इनिः 'चण्डिकान्तो भगाली च लेलिहानो वृषध्वज' इति राजशेखरः॥ ३५७ **कटिकुषि**। कठ कृच्छ्रजीवने, कुष निष्कर्षे। 'कुषाकुः कपिवह्न्यर्के ना परत्तापिनि त्रिषु' इति मेदिनी। उज्ज्वलदत्तस्तु 'कठिकषिभ्यां' इति पठित्वा कष शिषेति दण्डकधातुमुपन्यस्य कषाकुरित्युदाजहार। तत्कोशविरुद्धम्, मेदिनीकोशे ह्युकारप्रक्रमे पाठात्॥ ३५८ **सर्तेः**। सृ गतौ, अस्मात्काकुः स्याद्धातोर्दुगागमश्च। सृदाकुर्णाऽनिले चक्रे ज्वलने प्रतिसूर्यके इति मेदिनी॥ ३५९ **वृतेः**। वृतु वर्तने, 'वार्ताकुरपि वार्ताकी वृन्ताकोऽपि च दृश्यते' इति द्विरूपे विश्वः। वार्ताकी हिङ्गुली सिंही भण्टाकी दुष्प्रधर्षणी' इत्यमरः। वार्नाकं पित्तलं किंचिदङ्गार परिपाखितम्' इति वैद्यशास्त्रम्॥ ३६० **पर्दः**। पर्द कुत्सिते शब्दे। अस्मात्काकुः स्यात्स च नित्। धातो रेफस्य सप्रसारणमकारलोपश्च। विश्वकोशस्थमाह। **पृदाकुरिति**। 'पृदाकुर्वृश्चिके व्याघ्रे सर्पचित्रकयोः पुमान् इति मेदिनी ३६१ **सृयु**। सृ गतौ, यु मिश्रणे, वच परिभाषणे। 'सरण्युस्तु पुमान् वारिवाहे स्यान्मातरिश्वनि' इति मेदिनी। 'सरण्युरस्य सूनुरश्वः' इति मन्त्रस्य भाष्ये सरण्युः शीघ्रगामीति व्याख्यातम्। यवागूरुष्णिका श्राणा विलेपी तरला च सा' इत्यमरः। 'वचक्नुस्तु पुमान् विप्रे वावदूकेऽभिधेयवत्' इति मेदिनी॥ ३६२ **आनकः**। शीङ् स्वप्ने, ञिभी भये, बिभेत्यस्मादिति भयानको भयंकरः। भयानकः स्मृतो व्याघ्रे रसे राहौ भयंकरे इति मेदिनी॥ ३६३ **आणको**। लूञ् छेदने, धूञ् कम्पने, शिघि आघ्राणे, डुधाञ् धारणपोषणयोः। हारावलीस्थमाह—शिङ्घाणमिति। 'शिङ्घाणं काचपात्रे स्याल्लोहनासिकयोर्मले' इति विश्वः। शिङ्घाणः फेनडिण्डीरो नक्ररेतश्च पिच्छिलः' इति विक्रमादित्यकोशः॥ ३६४ **उल्मुक**। एते निपात्यन्ते। निपातनप्रकारमेवाह—**उष दाहे इत्यादि**। हारावलीस्थमाह—उल्मुकमिति। 'दर्विः कम्बिः खजाका च' इत्यमरः

जुहोतेर्गिनिः, होमी ॥ ३६५ । **ह्रियः कुक् रश्च लो वा** । ह्रीकुः ह्लीकुः लज्जावान् ॥ ३६६ । **हसिमृग्रिण्वाऽमिदमिलूपूधुर्विभ्यस्तन्** । दशभ्यस्तन् स्यात् । नितृञ्च ३।६३ इति नेट् हस्तः । मर्तः । गर्तः । एतः कुर्बुरः । वातः अन्तः दन्तः । 'लोतः स्यादश्रुचिह्नयोः' । पोतो बालवहित्रयोः' । धूर्तः । बाहुलकात् तुसेर्दीर्घश्च, तूस्तं पापम्, धूलिर्जटा च ॥ ३६७ । **नञ्याप इट् च** । नापितः ॥ ३६८ । **अनिमृङ्भ्यां किच्च** । ततम् मृतम् । ३६९ । **अञ्जिघृसिभ्यः क्तः** । अक्तम् । घृतम् । सितम् ॥ ३७० । **दुतनिभ्यां दीर्घश्च** । दूतः । तातः ॥ ३७१ । **जेर्मुट् चोदात्तः** । जीमूतः ॥ ३७२ । **लोष्टपलितौ** । लुनातेः क्तः, तस्य सुट् धातोर्गुणः, लोष्टम् ।

---

३६५ **ह्रियः** । 'ह्री लज्जायाम्' अस्मात्कुक्प्रत्ययः स्यात् । ककारो गुणनिषेधार्थः ॥ ३६६ **हसि** । हसने, मृङ् प्राणत्यागे, गृ निगरणे, इण् गतौ, वा गतिगन्धनयोः, अम गत्यादिषु, दमु उपशमे, लूञ् छेदने, पूञ् हसे पवने, धुर्वी हिंसायाम् । 'हस्तः करे करिकरे सप्रकोष्ठकरेऽपि च । ऋक्षे केशात्परो व्राते' इति मेदिनी ॥ अत्रायमर्थः—केशवाचकात्परो यो हस्तशब्द स समूहवाची । तथा च केशहस्तशब्दः केशसमूहशब्दपर्याय इति । मर्तो भूलोकस्तत्र भवो मर्त्यः, दिगादेराकृतिगणत्वात् । गर्तस्त्रिगर्तभेदे स्यादवटे च कुकुन्दरे' इति मेदिनी ॥—**एत इति** । 'एतः कर्बुर आगते । अन्तःस्वरूपे नाशे वा न स्त्री शेषेऽन्तिके त्रिषु' इति च । 'दन्तोऽद्रिकटके कुञ्जे दशने चौपधौ स्त्रियाम्' इति च मेदिनी । 'लोतमश्रुणि चोरिते' इति विश्वः । 'क्तक्तवतू निष्ठा' इति सूत्रे लोतो मेष इति कैयटः । 'पोतः शिशौ वहित्रे च' इति विश्वमेदिन्यौ ॥—**धूर्त इति** । 'लोपो व्योर्वलि' इति वलोपः, राल्लोपः इत्यनेन लोपस्तु विङतीत्यनुवृत्तिपक्षे बाध्यः । हलि च इति दीर्घः । 'धूर्तं तु खण्डलवणे धत्तूरे ना शठे त्रिषु' इति मेदिनी ।—तूस्तमिति । तुस खण्डन इत्यस्मात्तन् ॥ ३६७ **नञ्या** । आप्लृ व्याप्तौ, अस्मान्नञ्युपपदे तन्स्यादिडागमश्च । बाहुलकान्नञो नलोपाभावः ॥ ३६८ **तनि** । तनु विस्तारे, मृङ् प्राणत्यागे, आभ्यां तन्प्रत्ययः स्यात्स च कित् । कित्वादनुनासिकलोपः । 'ततं वीणादिकं वाद्यम्' इत्यमरः । 'अथ ततं व्याप्ते विस्तृते च त्रिलिङ्गकम् । क्लीबं वीणादिवाद्ये स्यात्पुंलिङ्गस्तु समीरणे इति मेदिनी । 'मृतं तु याचिते मृत्यौ क्लीबं मृत्युमति त्रिषु' इति च ॥ ३६९ **अञ्जि** । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणादौ घृ क्षरणदीप्त्योः, षिञ् बन्धने, एभ्यः क्तः स्यात् । निष्ठासंज्ञा तु एतस्य न भवति, उणादीनामव्युत्पन्नत्वाद्बाहुलकाद्वा । अन्यथा 'निष्ठा च द्व्यजनात्' इत्याद्युदात्तत्वं स्यादिति 'क्तक्तवतू निष्ठा' इति सूत्रे कैयटः । अक्तं परिच्छिन्नम् । 'अक्तः परिमाणवाचकः' इति भाष्यस्य कैयटेन तथा व्याख्यातत्वात् । 'अक्तं व्याप्ते च संकुले' इति विश्वः, इत्युज्ज्वलदत्तेनोक्तम्, तच्च लिपिभ्रमप्रयुक्तम् । विश्वकोशे हि 'व्यस्तं व्याप्ते च संकुले इति स्थितत्वात् । तथा च मेदिन्यां वकारादिप्रक्रमे— 'व्यस्तं तु व्याकुले व्याप्ते' इत्युक्तम् । 'घृतमाज्ये जले क्लीबं प्रदीप्ते त्वभिधेयवत्' । 'सितमवसिते च बद्धे धवले त्रिषु शर्करायां स्त्री इति मेदिनी । बाहुलकात् ऋ गतौ इत्यस्मात् क्तः । ऋतमुञ्छशिले जले । सत्ये दीप्ते पूजिते स्यात् इति मेदिनी ॥ ३७० **दुतनि** । दु गतौ तनु विस्तारे, आभ्यां क्तः स्याद्धातोर्दीर्घश्च । दूतः प्रेष्यः । गौरादित्वान्ङीष्, दूती । कथं तर्हि 'तेन दूति विदितं निषेदुषा' इति रघुरिति चेत् । अत्राहुः—दूङ् परितापे इत्यस्मात् क्तिचि दूतिरिति । दूत्यां दूतिरपि स्मृता इति द्विरूपकोशः । 'तातोऽनुकम्प्ये जनके' इति विश्वमेदिन्यौ । बाहुलकात् 'शीङ् स्वप्ने' इत्यस्मादपि क्तः । शीता लाङ्गलपद्धतिः, रामपत्नी च । 'शीता नभः सरिति लाङ्गलपद्धतौ च शीता दशाननरिपोः सहधर्मिणी च । शीतं स्मृतं हिमगुणे च तदन्विते च शीतोऽलसे च बहुवारतरौ च दृष्टः' इति तालव्यादौ धरणिः सीता दन्त्यादिरप्यस्ति । सीता लाङ्गलपद्धतिः । वैदेहीस्वर्गगङ्गासु' इति दन्त्यादौ मेदिनीकोशात् । 'सीता लाङ्गलरेखा स्याद्व्योमगङ्गा च जानकी' इत्यादनौ रभसकोशाच्च ॥ ३७१ **जेः** । जि जये, अस्मात् क्तप्रत्ययस्तस्योदात्तमुडागमः स्यात् । दीर्घ इत्यनुवृत्त्या धातोर्दीर्घश्च स्यात् । इदं सूत्रमनार्षमिति केचित् । अत एव वृत्त्यादिग्रन्थे पृषोदरादिषु जीमूतशब्द उदाहृतः । 'जीमूतोऽद्रौ भृतिकरे देवताडे पयोधरे' इति मेदिनी । 'वेणी खरागरी देवताडो जीमूत इत्यपि' इत्यमरः । 'जीमूतः स्याद्वृत्तिकरे शक्रेऽद्रौ घोषके घने' इति विश्वः ३७२ **लोष्ट** । लूञ् छेदने, पल गतौ, एतौ क्तान्तौ निपात्यते । लोष्टानि लेष्टवः पुंसि इत्यमरः । अत्र पुंसीत्युभयान्वयि । तेन पुंनपुंसकलिङ्गो लोष्टशब्दः । तथा च 'स्थानेऽन्तरतमे' भाष्यम् 'लोष्टः क्षिप्तो बाहुवेगं

पलितम् ॥ ३७३ । **हृश्याभ्यामितन्** । हरितश्येतौ वर्णभेदौ ॥ ३७४ । **रुहे रश्च लो वा** । रोहितो मृग-मत्स्ययोः । लोहितं रक्तम् ॥ ३७५ । **पिशेः किच्च** । पिशितं मांसम् ॥ ३७६ । **श्रुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः** श्रवाय्यो यज्ञपशुः । दक्षाय्यो गरुडो गृध्रश्च । स्पृहयाय्यः । गृहयाय्यो गृहस्वामी ॥ ३७७ । **दिधिषाय्यः** । दधातेर्द्वित्वमित्वं षुक् च, 'मित्र इव यो दिधिषाय्योऽभूत' ॥ ३७८ । **वृञ एण्यः** । वरेण्यः ॥ ३७९ । **स्तुवः क्सेय्यश्छन्दसि** । स्तुषेय्यं पुरुवर्चसम् ॥ ३८० । **राजेरन्यः** । राजन्यो वह्निः ॥ ३८१ । **शॄरम्योश्च** । शरण्यम् । रमण्यम् ॥ ३८२ । **अर्तेर्निच्च** । अरण्यम् । ३८३ । **पर्जन्यः** । 'पृषु सेचने' षस्य जः, पर्जन्यः शक्रमेघयोः ॥ ३८४ । **वदेरान्यः** । 'वदान्यस्त्यागिवाग्मिनो' ॥ ३८५ । **अमिनक्षियजिवधिपतिभ्योऽत्रन्** । अमत्र । भाजनम् । नक्षत्रम् । यजत्रः । वधत्रमायुधम् । 'पतत्र च तनूरुहम् ॥ ३८६ । **गडेर दश्च** कः । कडत्रम् डलयोरेकत्वस्मरणात्—कलत्रम् ॥ ३८७ । **वृञश्चित्** । वरत्रा चर्ममयी रज्जुः ॥ ३८८ । **सुविदेः कत्रः** ।

गत्वा' इत्यादि । अत एव 'लेष्ठः गण्डेऽपि लोष्टः स्यात्' इति पुंलिङ्गकाण्डे गोपालितः । 'पलित शैलजे तापे केशपाके च कर्दमे' इति मेदिनी ॥ ३७३ **हृश्या** । हृञ् हरणे, श्यैङ् गतौ । हरिता स्त्री च दूर्वायां हरिद्वर्ण-युतेऽन्यवत्' इति मेदिनी । 'शुक्लशुभ्रशुचिश्वेतविशदश्येतपाण्डराः' इत्यमरः ॥ ३७४ **रुहेः** । रुहे वीजजन्मनि प्रादुर्भावे च । अस्मादितन् । रोहितं कुङ्कुमे रक्ते ऋजुशक्रशरासने । पुंसि । स्यान्मीनमृगयोर्भेदे रोहित-कद्रुमे' । 'लौहितं रक्तगोशीर्षकुङ्कुमाजिकुचन्दने । पुमान् तदान्तरे भौमे वर्णे च त्रिषु तद्वति' इति मेदिनी ३७५ **पिशेः** । पिश अवयवे । अयं दीपनायामपि । अस्मादितन्स्यात्स च कित् । पिशितं मांसम् । 'मांस्यां स्त्री' इति मेदिनी । मांस्यां जटामांस्याम् । तथा च 'जटा च पिशिता पेशी' इति धन्वन्तरिः ॥ ३७६ । **श्रुदक्षि** । श्रु श्रवणे, दक्ष वृद्धौ, स्पृह ईप्सायाम्—गृहू ग्रहणे चुरादावदन्तौ । उद्वतस्त्रुचे भवसि श्रवाय्यः इति मन्त्रे श्रावय्यो मन्त्रैः श्रवणीय इति वेदभाष्यम् । दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः' इत्यादिष्वपि यौगिकार्थ एव भाष्ये पुरस्कृतः ।—स्पृहयाय्यः । अयामन्ता इति णेरयादेशः । एवं गृहयाय्य इति । ३६७ **दिधिषाय्य इति** । डुधाञ् धारणपोषणयोः । उज्ज्वलदत्तस्तु 'दधिषाय्यः' इति सूत्रं पठित्वा दधिपूर्वात्स्यतेराय्यः षत्वं च । दधिषाय्यो घृतम् इति व्याख्यत् । दशपादीवृत्तिकारस्तु 'धिष शब्दे' अस्य द्वित्वं गुणाभावः, अत्वं चाभ्यासस्य निपात्यत इत्याह । प्रसादकारादयोऽप्येवमेवाहुः । तदेतत्सर्वं प्रामादिकम् । 'मित्रो इव यो दिधिषाय्योऽभूत्' इति वैदिकप्रयोगाद्दिधिषाय्य इत्येव सूत्रं युक्तमिति प्रामाणिकाः । ३७८ **वृञः** । वृण् वरणे वरेण्यः श्रेष्ठः ॥ ३७९ **स्तवः** । ष्टुञ् स्तुतौ । स्तुषेय्यं स्तोतव्यं पुरुवर्पसं वहुरूपमिति वेदभाष्यम् । 'स्तुवः केय्यः' इति पठित्वा कित्वाद्गुणाभावे उवङि सति 'स्तुवेय्यः पुरन्दरः' इत्युदाहरन् उज्ज्वलदत्तस्तु उदाहृत-श्रुतितद्भाष्यादिविरोधादुपेक्ष्यः । तस्मादिह क्सेय्यप्रत्ययं पठन् दशपादीवृत्तिकृदेव ज्यायानित्याहुः ॥ ३८० **राजेः** । राजृ दीप्तौ । क्षत्रियजातौ तु 'राजश्वशुराद्यत्' इति यत्प्रत्यये राजन्य इत्यन्तस्वरितः ॥ ३८१ **शॄरम्योः** । शॄ हिंसायाम्, रम क्रीडायाम् । आभ्यामन्यः स्यात् ॥ ३८२ **अर्तेः** । ऋ गतौ । अस्मादन्यः स च नित् । 'अटव्यरण्यं विपिनम्' इत्यमरः । ३८३ **पर्जन्यः** । पृषु सेचते । षस्य जः । 'पर्जन्यः मेघशब्देऽपि ध्वनदम्बुदशक्रयोः' इति मेदिनी ॥ ३८४ **वदेः** । वद व्यक्तायां वाचि । अजयकोशस्थमाह—**वदान्य इति** । ३८५ **अमिनक्षि** । अम गत्यादिषु, चक्ष गतौ, यज देवपूजादौ, वध हिंसायाम्, पतॢ गतौ । **नक्षत्रमिति** । 'नभ्राणनपात्' इति सूत्रे नञः प्रकृतिभावे नक्षत्रमिति साधितं, तत्तु व्युत्पत्त्यन्तरमिति बोध्यम् । यजत्रमग्नि-होत्रमिति प्राञ्चः । वस्तुतस्तु यजत्रो यष्टव्यदेवता : संते वायुर्यातिन गच्छतां सयजत्रैरङ्गानि' इति मन्त्रे अथैव व्याख्यातत्वात् । अमरकोशस्थमाह पतत्रं चेति ॥ ३८६ **गडेः** । गड सेचने, अस्मादत्रन् स्याद्गकारस्य ककारादेशश्च । कलत्रं श्रोणिभार्ययोः इत्यमरः ॥ ३८७ **वृञः** । वृञ् वरणे, अस्मादत्रन् चित्स्यात् । चित्त्वा-दन्तोदात्तः । 'नध्री वध्री वरत्रा स्यात्' इत्यमरः । 'वरत्रायां दार्वानह्यमानः' इत्यादौ चित्स्वरः स्पष्टः ॥ ३८८ **सुविदेः कत्रः** । विद ज्ञाने । इह कत्रन्निति नितं केचित्पठन्ति । तत्प्रामादिकम्, वृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या' इत्यादौ नित्स्वरादर्शनात्, कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण प्रत्ययस्वरस्यैव दर्शनाच्चेत्याहुः ॥

'सुविदत्रं कुटुम्बकम् ।। ३८९ । कृतेर्नुम् च । कृन्तत्रं लाङ्गलम् ।। ३९० । भृमृदृशियजिपर्विपच्यमितमिनमिहर्येभ्योऽतच् । दशभ्योऽतच् स्यात् । भरतः । मरतो मृत्युः । 'दर्शतः सोमसूर्ययोः' । यजतः ऋत्विक् । पर्वतः । पचतोऽग्निः । अमतो रोगः । तमतस्तृष्णापरः । नमतः प्रह्वः । हर्यतोऽश्वः ।। ३९१ । पृषिरञ्जिभ्यां कित् । पृषतो मृगो बिन्दुश्च । रजतम् ।। ३९२ । खलतिः । स्खलतेः सलोपः अतच्प्रत्ययान्तस्य इत्वं च, खलतिर्निष्केशशिराः ।। ३९३ । शीङ्शपिरुगमिवञ्चिजीविप्राणिभ्योऽथः । सप्तभ्योऽथः स्यात् । शयथोऽजगरः शपथः । रवथः कोकिलः । गमथः पथिकः पन्थाश्च । वञ्चथो धूर्तः । वन्दि इति पाठे वन्द्यते वा वन्दथः स्तोता स्तुत्यश्च । जीवथ आयुष्मान् । प्राणथो बलवान् । बाहुलकात्—शमिदमिभ्याम् । 'शमथस्तु शमः' शान्तिर्दान्तिस्तु दमथो दमः' ।। ३९४ । भृञश्चित् । भरथो लोकपालः ।। ३९५ । रुदिविदिभ्यां ङित् । रोदितीति रुदथः शिशुः । वेत्तीति विदथः ।। ३९६ । उपसर्गे वसेः । आवसथो गृहम् । संवसथो ग्रामः ।। ३९७ । अत्यविचमितमिनमिरभिलभिनभितपिपतिपनिपणिमहिभ्योऽसच् । त्रयोदशभ्योऽसच् स्यात् । अततीति अतसो वायुरात्मा च । अवतीति अवसो राजा भानुश्च । चमत्यस्मिन् चमसः सोमपानपात्रम् । ताम्यत्यस्मिन् तमसोऽन्धकारः । नमसः अनुकूलः । 'रभसो वेगहर्षयोः' । लभसो धनं याचकश्च । नभते नभ्यति वा नभस आकाशः । तपसः पक्षी चन्द्रश्च । पतसः पक्षी । 'पतसः कष्टविफलः' । पणसः पण्य-

---

३८९ कृतेः । कृती छेदने, अस्मात्कत्रः स्याद्धातोर्नुमागमश्च । 'घन्व च यत्कृन्तत्रं च' इति मन्त्रे कृन्तत्र—कर्तनीयमरण्यमिति वेदभाष्यम् ।। ३९० भृमृ । भृञ् भरणे, मृङ् प्राणत्यागे, दृशिर् प्रेक्षणे, यज देवपूजादौ पर्व पूरणे, डुपचष् पाके, अम गतौ, तमु काङ्क्षायाम्, णम प्रह्वत्वे शब्दे च, हर्य गतिकान्त्योः । दशपाद्यां तु भृदृशीङिति पठित्वा 'दृङ् आदरे' द्रियते दरतः, शेते शयतः, इत्युदाहृतम् । तन्न । 'रुशन्तमग्निं नटे । रामानुजे च दौष्यन्तौ' इति मेदिनी ।—यजतः ऋग्विगिति । उज्ज्वलदत्ताद्यनुरोधेनैवमुक्तम् । वेदभाष्ये तु 'हिरण्यशृङ्गं यजतो बृहन्तम्' इत्यादिषु यजतशब्दो यष्टव्यपरतया व्याख्यातः । पर्वतः पादपे पुंसि शाव-मत्स्यप्रभेदयोः । देवमन्यन्तरे शैले' इति मेदिनी ।—हर्यतोऽश्व इति । 'परि त्यं हर्यतं हरिम्' 'आहर्यताय धृष्णवे' इत्यादि मन्त्रेषु हर्यतः सर्वैः स्पृहणीय इति वेदभाष्यम् ।। ३९१ पृषि । पृषु सेचने, रञ्ज रागे, आभ्यामतच् कित्स्यात् । 'पृषन् मृगे पुमान् बिन्दौ न द्वयोः पृषतोऽपि ना । अनयोश्च त्रिषु श्वेतबिन्दुयुक्तेऽप्युभाविमौ' इति मेदिनी । 'रजतं त्रिषु शुक्ले स्यात् क्लीवं हारे च दुर्वर्णे' इति च ।। ३९२ खलतिः । स्खल संचलने ।। ३९३ शीङ्शपि । शीङ् स्वप्ने, शप आक्रोशे, रु शब्दे, गम्लृ गतौ, वञ्चु गतौ भ्वादिः, वञ्चु प्रलम्भने चुरादिः, जीव प्राणधारणे, अन प्राणने प्रपूर्वः । उज्ज्वलदत्तेनात्र वञ्चिजीवीति पठ्यते । अन्यैस्तु वञ्चिस्थाने वन्दिः पठ्यते । वञ्चथवन्दथयोरन्यतरं वेदादावुपलभ्यते, बहुश्रुतैः पाठो निर्णेयः ।। वन्दथ इति । कर्मणि कर्तरि वा प्रत्ययः ।।—प्राणथ इति 'अणितः' इति णत्वम् ।। शमिदमिभ्यामिति । शम उपशमे, दमु उपशमे । 'शमथः शान्तिमन्त्रिणोः' इति मेदिनी । 'दमथस्तु पुमान् दण्डे दमे च परिकीर्तितः' इति च ।। ३९४ भृञः । डुभृञ् धारणपोषणयोः । अस्मादथः स्यात्स च चित् ।। ३९५ रुदि । रुदिर् अश्रुविमोचने, विद ज्ञाने आभ्यामथः स्यात्स च ङित् । विदथो योगिकृत्तिनोः' इति मेदिनी । अत्रोज्ज्वलदत्तः 'रुविदिभ्यां कित्' इति पठित्वा रौतीति रुवथश्चेत्युदाजहार । दशपादीवृत्तिकारस्तु 'रुदिविदिभ्यां कित्' इति पपाठ । इह तु भाष्यानुरोधेन ङिदिति पठितम् । तथाहि 'गाङ् कुटादि'—सूत्रे के पुनश्चङादयः ? चङ्ग्रङ्नजिङ्अथङ्नङ् इति भाष्यम् । किदिति पठतां तु 'अथङ्' इति भाष्यं न सङ्गच्छेतेति दिक् ।। ३९६ उप वस निवासे, अस्यादुपसर्गे उपपदे अथः स्यात् । उज्ज्वलदत्तेन तु सोपसर्गाद्वसेरिति पठितम् । अन्यैस्तु आङि वसेरिति पठितम् ।। ३९७ अत्यवि । अत सातत्यगमने, अव रक्षणादौ, चमु अदने, तमु काङ्क्षायाम्, णमु प्रह्वत्वे शब्दे च, रभ राभस्ये, डुलभष् प्राप्तौ, णभ तुभ हिंसायाम्, भ्वादौ क्र्यादौ चायम् । तप सन्तापे, पत्लृ गतौ, पण व्यवहारे स्तुतौ च, पन च, मह पूजायाम् । गौरादित्वात् ङीष् । 'अतसी स्यादुमा क्षुमा' इत्यमरः । 'चमसो यज्ञपात्रस्य भेदेऽस्त्री पिष्टके स्त्रियाम्' इति मेदिनी । 'पनसः

द्रव्यम्। म सं ज्ञानम्॥ ३९८। **वेञस्तुट् च**। बाहुलकादात्वाभावः। वेतसः॥ ३९९। **वहियुभ्यां णित्**। वाहसोऽजगरः। यावसस्तृणसङ्घातः। ४००। **दयश्च**। 'वय गतौ' वायसः काकः॥ ४०१। **दिवः कित्**। दिवसम्, दिवसः॥ ४०२। **कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच्**। करभः। शरभः। शलभः। कलभः। गर्दभः। ४०३। **ऋषिवृषिभ्यां कित्**। ऋषभः, वृषभः॥ ४०४। **रुषेर्नित्लुषू च**। रुष हिंसायाम्, अस्मादभच् नित्कित्स्यात्, लुषादेशश्च। 'लुषभो मत्तदन्तिनि॥ ४०५। **रासिवल्लिभ्यां च**। रासभः। वल्लभः॥ ४०६। **जॄविशिभ्यां झच्**। जरन्तो महिषः। वेशन्त पल्वलम्॥ ४०७। **रुहिनन्दिजीविप्राणिभ्यः षिदाशिषि** रोहन्तो वृक्षभेदः। नन्दन्तः पुत्रः। जीवन्त औषधम्। प्राणन्तो वायुः। षित्वाद्ङीष्, रोहन्ती॥ ४०८। **तॄभूवहिवसिभासिसाधिगडिमण्डिजिनन्दिभ्यश्च**। दशभ्यो भच् स्यात्, स च षित्। तरन्तः समुद्रः। तरन्ती नौका। भवन्तः कालः। वहन्तो वायुः। वसन्तः ऋतुः। भासन्तः सूर्यः। साधन्तो भिक्षुः। गडेर्घटादित्वान्मित्त्वं ह्रस्वः, अयामन्त—२३११ इति णेरयः, गण्डयन्तो जलदः। मण्डयन्तो भूषणम्। जयन्तः शक्रपुत्रः। नन्दयन्तो नन्दकः॥ ४०९। **हन्तेर्मुट् हि च**। हेमन्तः॥ ४१०। **भन्देर्नलोपश्च**। भदन्त प्रव्रजितः। ४११ **ऋच्छेररः**। ऋच्छरा वेश्या। बाहुलकात् जर्जरझर्झरादयः॥ ४१२। **अर्तिकमिभ्रमिचमिदेविवासिभ्यश्चित्**

कण्टकिफले वन्दके वानरान्तरे। स्त्रियां रोगप्रभेदे स्यात् इति च॥ ३९८ **वेञः**। वेञ् तन्तुसन्ताने, अस्मादसच् स्यात्तस्य तुट्। दशपादीवृत्तौ तु 'वियस्तुट् च' इति पठित्वा 'वी गतिप्रजनकान्त्यादिषु' इति धातुरुदाहृतः। ३९९ **वहि**। वह प्रापणे, यु मिश्रणादौ, 'अजगरे शयुर्वाहस इत्युभौ' इत्यमरः। 'वा तु क्लीवे दिवसवासरौ' इति च॥ ४०० **यावस इति**। असचो णित्त्वाद्वृद्धिः॥ ४०१ **दिवः**। दिवु क्रीडादौ। ४०२। **कृशृ**। कॄ विक्षेपे, शॄ हिंसायाम्, शल गतौ, कल विलेखने, गर्द शब्दे। करभो मणिबन्धादिकनिष्ठान्तोष्ट्रतत्सुते' इति मेदिनी। 'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इत्यमरः। 'शरभस्तु पशोर्भिदि'। 'करभो वानरभिदि' इति मेदिनी। 'समौ पतङ्गशलभौ' इत्यमरः। 'कलभः करिपोतकः' इति च। 'गर्दभं श्वेतकुमुदे गर्दभो गन्दभिद्यपि। रासभे गर्दभी क्षुद्रजन्तुरोगप्रभेदयोः' इति मेदिनी॥ ४०३ **ऋषि**। ऋषी गतौ, वृषु सेचने, आभ्यां अभच् स्यात्स च कित्। 'ऋषभस्त्वौषधान्तरे। स्वरभिद्वृषयोः कर्णरन्ध्रगर्दभतुच्छयोः। उत्तरस्थः स्मृतः श्रेष्ठे स्त्रीनराकारयोषिति। शूकशिम्ब्यां शिरालायां विधवायां क्वचिन्मता' इति मेदिनी। 'वृषभः श्रेष्ठवृषयोः' इति च॥ ४०५ **रासिवल्ली**। रासृ शब्दे, वल्ल संवरणे। 'वल्लभो दयितेऽध्यक्षे सुलक्षणतुरङ्गमे' इति मेदिनी॥ ४०६ **जॄविशि**। जॄ वयोहानौ, विश प्रवेशने। 'वेशन्तः पल्वलं चाल्पसरः' इत्यमरः। बाहुलकादर्हतेरपि झच्। 'अर्हतः क्षपणको जिनः' इति विक्रमादित्यकोशः॥ ४०७ **रुहि**। रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च, टुनदि समृद्धौ, जीव प्राणधारणे, अन प्राणने प्रपूर्वः। एभ्य आशिषि झच्, स च षिद्भवति।—**प्राणन्त इति**। 'अनितेः' इति णत्वम्॥ ४०८ **तॄभू**। तॄ प्लवनतरणयोः, भू सत्तायाम्, वह प्रापणे, वस निवासे, भासृ दीप्तौ, साध संसिद्धौ, गड सेचने मडि भूषायाम् उभौ ण्यन्तौ, जि जये, टुनदि समृद्धौ, ण्यन्तः।—**नन्दयन्त इति**। उज्ज्वलदत्तस्तु नन्दन्त इत्युदाहृत्य पूर्वसूत्रेण गतार्थतामाशङ्क्य अनाशीरर्थं नन्दिग्रहणमित्याह। तच्चिन्त्यम्, इहाप्याशिषीत्यस्य स्वयमेवानुवर्तितत्वात्॥ ४०९ **हन्तेः**। हन हिंसागत्योरस्मात् झच् प्रत्ययः स्यात्तस्य मुडागमः धातोर्हिरादेशश्च॥ ४१० **भन्देः**। भदि कल्याणे सुखे च, अस्मात् भच् स्याद्धातोर्नकारलोपश्च॥ ४११ **ऋच्छेः**। ऋच्छ गतौ॥ **बाहुलकादिति**। जर्ज चर्च झर्झ परिभाषणहिंसातर्जनेषु। परिभाषणभर्त्सनयोरिति। तुदादौ। 'जर्जरं शैवले शक्रध्वजे त्रिषु जरत्तरे। झर्झरः स्यात्कलियुगे वाद्यभेदे नदान्तरे' इति मेदिनी। बाहुलकादेव झस्य जादेशे जर्झर इत्युज्ज्वलदत्तः॥ ४१२। **अर्तिकमि**। ऋ गतौ, कमु कान्तौ, भ्रमु अनवस्थाने, चमु अदने, दिवु क्रीडादौ, वस निवासे, उभावपि ण्यन्तौ। 'अररं छदकपाटयोः' इति मेदिनी। 'कपाटमररं तुल्ये' इत्यमरः। 'भ्रमरः कामुके भृङ्गे' इति मेदिनी। चमरं चामरे स्त्री तु मञ्जरीमृगभेदयोः इति च। चमरो मृगभेदः। देवरः पत्युः कनिष्ठभ्राता॥—**वासर इति**। केचित्तु सूत्रे 'वाशिभ्यः' इति तालव्यं पठित्वा 'वाश्र

षड्भागोऽरश्चित् स्यात्। अररं कपाटम्। कमरः कामुकः। भ्रमरः। चमरः। देवरः वामरः॥ ४१३। **कुवः क्करन्**। कुररः पक्षिभेदः॥ ४१४। **अङ्गिमदिमन्दिभ्य आरन्**। अङ्गारः। मदारो वराहः। 'मन्दारः पारिजातकः'॥ ४१५। **गडेः कड च**। कडारः॥ ४१६। **शृङ्गारभृङ्गारौ**। शृभृभ्यामारन्नुम् गुक् ह्रस्वश्च शृङ्गारो रसः। 'भृङ्गारः कनकालुका'॥ ४१७। **कञ्जिभृजिभ्यां चित्**। कञ्जिः सौत्रो धातुः। कञ्जारो मयूरः। मार्जारः॥ ४१८। **कमेः किदुच्चोपधायाः**। चिदित्यनुवृत्तेरन्तोदात्तः। कुमारः॥ ४१९। **तुषारादयश्च**। तुषारः। कासार सहार आम्रभेदः॥ ४२०। **दीङो नुट् च**। दीनारः सुवर्णाभरणम्॥ ४२१। **सर्तेरपः षुक् च**। सर्षपः। ४२२। **उषिकुटिदलिकचिखजिभ्यः कपन्**। उषपो वह्निसूर्ययोः'। कुटपं मानभाण्डम्। दलपः प्रहरणम्। कचपं शाकपत्रम्। खजपं घृतम्॥ ४२३। **क्वणेः सम्प्रसारणं च**। कुणपम्। ४२४। **विटपपिष्टपविशिपोलपाः**। चत्वारोऽमी कपन् प्रत्ययान्ताः। 'विट शब्दे' विटपः। विशतेरादेः पः, प्रत्ययस्य तुट्, षत्वम्, पिष्टपं भुवनम्। विशतेः प्रत्ययादेरित्वम्, विशिपं मन्दिरम्। वलतेः संप्रसारणम्, 'उलपं कोमलं तृणम्'॥ ४२६। **वृतेस्तिकन्**। वर्त्तिका॥ ४२७। **कृतिभिदिलतिभ्यः कित्**। कृत्तिका। भित्तिका भित्तिः। लत्तिका गोधा॥ ४२८। **इष्यशिभ्यां तकन्**। इष्टका। अष्टका॥ ४२९। **इणस्तशन्-**

शब्दे' इत्यस्मादरप्रत्यये वाश्यत इति वाशवः कोकिल इत्याहुः॥ ४१३ **कुवः**। कु शब्दे॥ ४१४ **अङ्गि**। अगिर्गत्यर्थः, मदी हर्षे, मदी स्तुत्यादौ। 'अङ्गार उल्मुके न स्त्री पुंलिङ्गस्तु महीसुते' इति मेदिनी। मन्दारः स्यात्सुरद्रुमे। परिभद्रेऽर्कपर्णे च मन्दारो हस्तिधूर्त्तयोः' इति च। मदि स्तुत्यादावित्यस्माद्वाहुलकादारन्पि, परिभद्रे तु मन्दारुर्मन्दारः पारिजातकः' इति **शब्दार्णवः**॥ ४१५ **गडेः**। गडि वदनैकदेशे, गड सेचने, अस्मादारन्प्रत्ययः स्यात्कडादेशश्च। कडारः कपिले दासे' इति मेदिनी। 'कडारः कपिलः पिङ्गः' इत्यमरः ४१६ **शृङ्गारः**। एतौ निपात्येते। शॄ हिंसायाम्, डुभृञ् धारणपोषणयोः, अभ्यामारन्नुम् गुग् ह्रस्वश्च। 'शृङ्गारः सुरते नाट्ये रसे च गजमण्डने। नपुंसकं च लवङ्गेऽपि नागसंभवचूर्णयोः, इति मेदिनी। भृङ्गारी झिल्लकायां स्यात् कनकालौ पुनः पुमान्' इति च॥ ४१७ **कञ्जि**। मृजू शुद्धौ, चित्वादारप्रत्यय अन्तोदात्तः 'कञ्जारो जरठे सूर्ये विरञ्चौ वारणे मुनौ' इति विश्वमेदिन्यौ। **मार्जार** ओतौ खट्वाङ्गे' इति च। ओतुर्बिडालो मार्जारः' इत्यमरः॥ ४१८ **कमेः**। कमु कान्तौ, अस्मादारन्कित्स्यात्। कुमारः स्याच्छुके स्कन्दे युवराजेऽश्ववारके। बालके वरुणादौ ना न द्वयोर्जात्यकाञ्चने। कुमारी शैलतनयानवमाल्योर्नदीभिदि सहापराजिताकन्याजम्बुद्वीपेषु च स्त्रियाम्' इति मेदिनी। विश्वप्रकाशे तु कुमारी रामतरणी इति पाठः। रामतरणी लताविशेषः। सहेति प्रसिद्धः। 'तरणी रामतरणी वर्णिका चारुकेसरा। सहा कुमारी गन्धाढ्या इति धन्वन्तरिनिघण्टुः। 'जम्बूद्वीपसहाकन्याः कुमार्योऽथाश्ववारके। बालके कार्त्तिकेये च कुमारो भर्तृदारके इति त्रिकाण्डशेषः॥ ४१९ **तुषारा**। एते निपात्यन्ते। तुष तुष्टौ आरन्। तुषारस्तुहिनं हिमम्' इत्यमरः। कासृ शब्दकुत्सायाम्। कासारः सरसी सरः' इत्यमरः।—**सहार इति**। षह मर्षणे॥ ४२० **दीङो**। दीङ् क्षये, अस्मादारन् तस्य नुडागमश्च॥ ४२१ **सर्तेः**। सृ गतौ अस्मादपः स्याद्धातोः षुगागमश्च॥ ४२२ **उषि** इष दाहे, कुट कौटिल्ये, दल विदारणे, कच बन्धने, खज मन्थे॥ ४२३ **क्वणे**। क्वण शब्दे। अस्मात्कपन् धातोर्वकारस्य संप्रसारणं च'। 'कुणपः पूतिगन्धे शवेऽपि च' इति मेदिनी। 'कुणपः शवमस्त्रियाम्' इत्यमरः ४२५ **विटप**। 'विटपो न स्त्रियां स्तम्बशाखाविस्तरपल्लवे। विटाधिपे ना' इति मेदिनी।—**विशतेरिति**। विश प्रवेशने।—**आदेः पः इति**। एतच्च उज्ज्वलदत्तरीत्योक्तम्। अन्ये तु सूत्रे विष्टप इति दन्त्योष्ठ्यादिमेव पठन्ति। युक्तं चैतत्। 'यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्' इत्यादौ तथा दर्शनात्। अमरकोशेऽपि 'विष्टपं भुवनं जगत्' इति प्रचुरपाठाच्च॥—**वलतेः**। वल वल्ल संवरणे संचरणे च। '**उलपो** न स्त्री गुल्मिन्यां ना तृणान्तरे' इति मेदिनी॥ ४२६ **वृतेः**। वृतु वर्तने॥ ४२७ **कृतिभिद**। कृती छेदने, भिदिर् विदारणे, लतिः सौत्रो धातुः॥ ४२८ **इष्यशि**। इष इच्छायाम्, अशू व्याप्तौ, आभ्यां तकन् कित्स्यात्॥ **इष्टकेति**। इष्टकेषिकामालानाम्' इति निर्देशात् 'प्रत्ययस्थात्' इति नेत्वम्। केचित्तु प्रत्ययस्थादितीत्वमिह न भवति, नित्यत्वात्। तज्ज्ञापकं 'मृदस्तिकन्' इति इकारोच्चारणमित्याहुः॥ ४२९। **इणस्त**।—**एतशा इति**। 'अत्वसन्तस्य' इति

तशसुनौ । एतशो ब्राह्मणः स एव एतशाः ॥ ४३० । **वीपतिभ्यां तनन्** । 'वी गत्यादौ' वेतनम् । पत्तनम् । ४३१ । **दृदलिभ्यां भः** । दर्भः दल्भः स्यादृषिचक्रयोः ॥ ४३२ । **अतिगृभ्यां भन्** । अर्भः । गर्भः ॥ ४३३ । **इणः कित्** । इभः । ४३४ । **असिसञ्जिभ्यां क्थिन्** । अस्थि । सक्थि ॥ ४३५ । **प्लुषिकुषिशुषिभ्यः क्सिः** । प्लुक्षिर्वह्निः । कुक्षिः । शुक्षिर्वातः ॥ ४३६ । **अशेर्नित्** । अक्षि । ४३७ । **इषेः क्सुः** । इक्षुः ॥ ४३८ । **अवितृस्तृतन्त्रिभ्य ईः** । 'अवीर्नारी रजस्वला' । तरीर्नौः । स्तरीर्धूमः । तन्त्रीर्वीणादेर्गुणः ॥ ४३९ । **यापोः किद्द्वे च** । ययीरश्वः । 'पपीः स्यात्सोमसूर्ययोः ॥ ४४० । **लक्षेर्मुट् च** । लक्ष्मीः ॥ **इत्युणादिषु तृतीयः पादः** ॥

अथ चतुर्थः पादः

४४१ । **वातप्रमीः** । वातशब्दे उपपदे माधातोरीप्रत्ययः स च कित् । वातप्रमीः । अयं स्त्रीपुंसयोः ॥ ४४२ । **ऋतन्यञ्जिवन्यञ्ज्यर्पिमद्यत्यङ्गिकुयुकृशिभ्य कत्निज्यतुजलिजिष्ठुजिष्ठुजिसन्स्यनिथिनुल्यसासानुकः** द्वादशभ्यः क्रमात्स्युः । अर्तेः कत्निच्, यण्, 'बद्धमुष्टिः करो रत्निः सोऽरत्निः प्रसृताङ्गुलिः' । तनोतेर्यतुच् तन्यतुर्वायूरात्रिश्च । अञ्जेरलिच्, अञ्जलिः । वनेरिष्टुच्, वनिष्ठुः स्थविरान्त्रम् । अञ्जेरिष्ठच्, अञ्जिष्ठो

दीर्घः । एतशसौ एतशमः ॥ ४३० **वीपति** । पत्लृ गतौ । 'पत्तनं पुटभेदनम्' इति पुरीपर्यायेष्वमरः ॥ ४३१ **दृदलि** । दृ विदारणे, दल विकसने ॥ ४३२ **अतिगृ** । ऋ गतौ, इयर्तीति— अर्भः शिशुः । सञ्ज्ञायां कनि अर्भकः । 'गर्भो भ्रूणेऽर्भके कुक्षौ सन्धौ पनसकण्टके' इति मेदिनी ॥ ४३३ **इणः** । इण् गतौ, अस्माद्भन् कित्स्यात् । इभः स्तम्बेरमः पद्मी इत्यमरः ॥ ४३४ **असि** । असु क्षेपणे, षञ्ज सङ्गे । 'कीकसं कुल्यमस्थि च' इत्यमरः । 'सक्थि क्लीबे पुमानूरुः' इति च ॥ ४३५ **प्लुषि** । प्लुष दाहे, कुष निष्कर्षे, शुष शोषणे ॥ ४३६ **अशेः** । अशू व्याप्तौ, अस्मात् क्सिन्नित्स्यात् । अक्षि नयनम् ॥ ४३७ **इषेः** । इष इच्छायाम् । इक्षुः 'रसाल इक्षु' इत्यमरः ॥ ४३८ **अवि** । अव रक्षणादौ, तॄ प्लवनतरणयोः, स्तृञ् आच्छादने, तन्त्रि कुटुम्ब धारणे, चुरादिर्ण्यन्त ॥— **तरीरिति** । 'स्त्रियां नौस्तरणिस्तरिः' इत्यमरः ॥ ४३९ **यापोः** । या प्रापणे, पा पाने, आभ्यामीः कित्स्यात् द्वित्वं च धातोः ॥ ४४० **लक्षेः** । लक्ष दर्शनाङ्कनयोः । चुरादिर्ण्यन्तः । अस्मादी-प्रत्ययः स्यात्तस्य मुडागमो णिलोपश्च । 'लक्ष्मीः पद्मा विभूतिश्च' । 'कृदिकारात्' इति ङीषि 'लक्ष्मी' इत्यपि भवतीति रक्षितः । 'लक्ष्मी संपत्तिशोभयोः । ऋद्ध्योषधौ च पद्मायाम्' इति मेदिनी ॥ **इत्युणादिषु तृतीयः पादः** ॥

४४१ **माधातोरिति** । मा माने, कित्त्वात् 'आतो धातोः इत्यालोपः । 'वातप्रमीवातमृगः' इत्यमरः ।— अय-मिति । 'द्विचतुःषट्पदोरगाः' इत्यमरेण चतुष्पाद्वाचिनामुभयलिङ्गतोक्तेः, भूतिचन्द्रादिभिरपि वातप्रमी-शब्दस्य द्विलिङ्गतोक्तेश्चेति भावः । तत्र कृदिकारात् इति पाक्षिको ङीष् कैश्चिदिष्यते । न च ह्रस्वादेव कृदिकारात् इति ङीष् भवति न तु दीर्घादिति शङ्क्यम् । वर्णनिर्देशे कारप्रत्ययस्य विधानेन दीर्घादपि कृदि-कारात् इति ङीषः संभवात् । अत एव वातप्रमीश्रीलक्ष्मीति पक्षे ङयन्ताः सुसाधव इति रक्षितः । एतच्च दुर्घटग्रन्थे स्पष्टम् । 'आशीराह्यदंष्ट्रायां लक्ष्मीर्लक्ष्मीहरिस्त्रियाम् इति द्विरूपकोशः । अत एव आशीविषो विषधरः इत्यमरकोशः । संगच्छते । अश भोजने इत्यस्मात् इणजादिभ्यः इति इण्प्रत्यये उपधावृद्धौ कृदि-कारात् इति ङीषः स्वीकारात् । 'आशीमिव कलामिन्दोः' इति राजशेखरः । 'आशीर्हिताशंसाऽहिदंष्ट्रयोः' इति सान्तेऽमरात् सान्तोऽप्याशीः शब्दोऽस्तीत्यन्यदेतत् ॥ ४४२ **ऋतनि** । ऋ गतौ, तनु विस्तारे, अञ्जू व्यक्त्यादौ, वनु याचने, अञ्जू स एव, ऋ गतौ, ण्यन्तः, मदी हर्षे, अत सातत्यगमने, अगिर्गत्यर्थः कु शब्दे यु मिश्रणे, कृश तनूकरणे । प्रसङ्गादाह अरत्निरिति । न रत्निः अरत्निरिति नञ्समास । प्रसृताङ्गुलिः सहस्तः अरत्निरित्यर्थः । दशपादीवृत्तौ तु कत्निजित्यत्र ककारमपठित्वा अर्तेरत्निचमवितं विधाय अरत्निः साधितः । उज्ज्वलदत्तानुसारेणाह—**वायू रात्रिश्चेति** । तन्यतुः शब्दो मेघः अशनिश्चेत्यपि बोध्यम् । आविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् इति मन्त्रे तन्यतुर्गर्जितमिति, 'सृजा वृष्टिं न तन्यतुः इति मन्त्रे तन्यतुर्मेघ इति उतस्मास्य तन्यतोरिव द्योः इति मन्त्रे 'दिवश्चित्रं न तन्यतुम् इति मन्त्रे च तन्यतुरशनिरिति वेदभाष्ये

भानुः । अर्पयतेरिमन्, अर्पिसोऽग्रमांसम् । मदेः स्यन्, मत्स्यः । अतेरिथिन्, अतिथिः । अङ्गेरुलिः, अङ्गुलिः । कौतेरसः, कवसः । अच इत्येके, कवचम् । यौतेरासः, यवासो दुरालभा । कृशेरानुक्, कृशानुः ४४३ । **शृः करन्** । उत्तरसूत्रे किद्ग्रहणादिह ककारस्य नेत्वम्, शर्करा ॥ ४४४ । **पुषः कित्** । पुष्करम् ॥ ४४५ । **कलंश्च** । पुष्कलम् ॥ ४४६ । **गमेरिनिः** । गमिष्यतीति गमी ॥ ४४७ । **आङि णित्** । आगामी ॥ ४४८ । **भुवश्च** । भावी ॥ ४४९ । **प्रे स्थः** । प्रस्थायी ॥ ४५० । **परमे कित्** । परमेष्ठी ॥ ४५१ । **मन्थः** । मन्थतेरिनिः कित्स्यात् । कित्वान्नवारलोपः मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः ॥ ४५२ । **पतः स्थ च** । पन्थाः, पन्थानौ ॥ ४५३ । **खजेराकः** । खजाकः पक्षी ॥ ४५४ । **बलाकादयश्च** । बलाका । शलाका । पताका ॥ ४५५ । **पिनाकादयश्च** । पातेरीत्वं नुम् च । क्लीबपुंसोः पिनाकः स्याच्छूलशङ्करधन्वनोः' । 'तड आघाते'

व्याख्यातत्वात् । 'अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसंपुटे कुडवेऽपि च' इति मेदिनी ।।—**स्थविरान्त्ररिति** । 'वनिष्ठो-र्हृदयादधि' इति मन्त्रस्य भाष्ये तथोक्तत्वात् ।।—**अञ्जिष्णु इति** । केचिदञ्जेरिष्णुचमिच्छन्ति, तेषामञ्जि-ष्णुरुदाहरणम् ।—**अर्पिस इति** । 'अर्तिह्री'-इत्यादिना पुक् । 'णेरनिटि' इति णिलोपः ।। **मदेरिति** । मात्स्यो मीनेऽथ पुंभूम्नि देशे इति मेदिनी । 'अतिथिः कुशपुत्रे स्यात्पुमानागन्तुके त्रिषु' इति च । 'अङ्गुलिः कर-शाखायां कणिकायां गजस्य च' इति च । कवसः सन्नाहः कंकटजातिश्च ।।—**अच इति** । 'कवचो गर्दभाण्डे च संनाहे पर्पटेऽपि च' इति मेदिनी । **यौतेरिति** । 'दुरालभा वदुस्पर्शा यासो धन्वयवासकः' इति धन्वन्तरि-निघण्टुः । 'कृशानुः पावकोऽनलः' इत्यमरः ।। ४४३ **शृः** । शॄ हिंसायाम् । 'शर्करा खण्डविकृतौ उपला-कर्परांशयोः । शर्करान्वितदेशे च रुग्भेदे शकलेऽपि च' इति मेदिनी ।। ४४४ **पुषः** । पुषः पुष्टौ, अस्मात्कर-न्स्यात्स च कित् । 'पुष्करं खेऽम्बुपद्मयोः । तर्यवक्त्रे खड्गफले हस्तिहस्ताग्रकाण्डयोः । कुष्ठौषधिद्वीपतीर्थ-भेदयोश्च नपुंसकम् । ना रोगनागविहगनृपभेदेषु वारुणौ' इति मेदिनी ॥ ४४५ **कलंश्च** । पुष्यतेः कलन् स्यात्, स च कित् । 'पुष्कलस्तु पूर्णे श्रेष्ठे' इति हेमचन्द्रः ॥ ४४६ **गमेः** । गम्लृ गतौ । 'भविष्यति गम्यादयः' इत्याशयेनाह – **गमिष्यतीति** ।। ४४७ **आगामिति** । इनिप्रत्ययस्य णित्वादुपधावृद्धिः । आगमिष्यतीत्यर्थः ।। ४४८ **भुवश्च** । भू सत्तायाम । अस्मादिनिः स च णित्स्यात् । भविष्यतीति भावी ।। ४४९ **प्रे स्थः** । ष्ठा गतिनिवृत्तौ, प्रपूर्वादस्मादिनिः स च णित् । णित्वात् 'आतो युक्' इति युक् । प्रस्थायी गन्तुकामः ।। ४५० **परमे** । परमशब्दे उपपदे तिष्ठतेरिनिः कित्स्यात् । कित्वादातो लोपः, 'हलदन्तात' इत्यलुक् । 'परमेष्ठी पितामहः' इत्यमरः ।। ४५१ **मन्थः** । मन्थ विलोडने ।। **मन्था इति** । 'पथिमथि' इत्यात्वम् । 'इतोऽत्स र्व-नामस्थाने' । 'मन्था मन्थनदण्डे च वज्रे चापेऽपि च स्मृतः' ।। ४५२ **पतः** । पत्लृ गतौ, इत्यस्मादिनिः स्थ-श्चान्तादेशः । 'पथे गतौ' इत्यस्मात्पचाद्यचि अकारान्तोऽप्यस्ति । 'वाटः पथश्च मार्गश्च' इति सुभुतिचन्द्रः । 'त्वचि त्वचः किरोऽपि स्यात्किरौ प्रोक्तः पथः पथि' इति द्विरूपेषु विश्वः । इह **ऋभवो** देवाः क्षिपन्त्यस्मि-न्निति विग्रहे 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' इति डः । '**ऋभुक्षः** स्वर्णवज्रयोः इति विश्वः । ततो **मत्वर्थीयेनि** । ऋभुक्षिन्निति नान्तं प्रातिपदिकम् । पथिमथि' इत्यात्वे 'इतोऽत्' इत्वत्वे च **ऋभुक्षा** इन्द्रः, **ऋभुक्षाणौ ऋभु-क्षाण** इत्युज्ज्वलदत्तः । दशपाद्यां तु 'अर्तेः भुक्षिनक्' इति सूत्रमुपन्यस्य ऋभुक्षिन्नित्युदाहृतम् । '**ऋभुक्षिण-मिन्द्रमाहुव ऊतये**' इति मन्त्रस्य वेदभाष्ये तत्सूत्रमुदाहृतम । अत्रायं विवेकः—इनिप्रत्ययान्ता इति मते अन्तोदात्तत्वं न्याय्यं, प्रत्ययस्वरेण इनेरिकारस्योदात्तत्वात्, अवग्रहाभावो बाहुलकात् । द्वितीयमते त्वव-ग्रहाभावो न्याय्यः । परे तु प्रत्ययस्वरेणोकारस्योदात्ततया भुक्षिनक्प्रत्ययान्तस्य मध्योदात्तत्वे प्रसक्ते बाहु-लकादन्तोदात्तः स्वीकर्तव्य इति ।। ४५३ **खजेः** । खज मन्थे ।। ४५४ **बलाका** । बल प्राणने, शल गतौ, पत्लृ गतौ, एते आकप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'बलाका बकपङ्क्तिः स्याद्बलाका बिसकण्ठिका । बलाका प्रोक्ता बलाकश्च बको मतः' इति विश्वशाश्वती । 'शलाकाऽञ्जनयष्टिका । पताका वैजयन्त्यां च सौभाग्ये-ऽङ्के ध्वजेऽपि च' इति विश्वः । 'पताका वैजयन्त्यां च सौभाग्ये नाटकाङ्कयोः' इति मेदिनी ।। ४५५ **पिनाका** इति आकप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पा रक्षणे, पिनाकोऽस्त्री रुद्रचापे पांशुवर्षत्रिशूलयोः' इति मेदिनी ।

तडाकः ॥ ४५६ । **कषिदूषिभ्यामीकन्** । कषीका पक्षिजातिः । दूषीका नेत्रयोर्मलम् ॥ ४५७ । **अनिहृषिभ्यां किच्च** । अनीकम् हृषीकम् ॥ ४५८ । **चङ्कण कङ्कणश्च** । 'कण शब्दे' अस्माद्यङ्लुगन्तादीकन्, धातोः कङ्कणादेशश्च । घण्टिकायां कङ्कणीका सैवा प्रतिसरापि च' । ४५९ । **शॄ पॄ वृञां द्वेरक् चाभ्यासस्य** । शर्शरीको हिंस्रः । पर्परीका दिवाकरः । रर्वरीकः कुटिलकेशः ॥ ४६० । **पर्फरीकादयश्च** । स्फुर स्फुरणे' अस्मादीकन् धातोः पर्फरादेशः । पर्फरीकं किसलयम् । दर्दरीकं वादित्रम् । झर्झरीकं शरीरम् । तित्तिडीको वृक्षभेदः । (ग) **चरेर्नुं च** । चञ्चरीको भ्रमरः । मर्मरीक हीनजनः । कर्करीका गलन्तिका । पुणतेः, पुण्डरीकं वादित्रम् । पुण्डरीको व्याघ्रोऽग्निर्दिग्गजश्च ॥ ४६१ । **ईषेः किद्ध्रस्वश्च** । इषीका शलाका ॥ ४६२ । **ऋजेश्च** । ऋजीकः उपहतः ॥ ४६३ । **सर्तेर्नुम् च** । सृणीका लाला ॥ ४६४ । **अलीकादयश्च** ।

अमरोक्तिमाह—**क्लीवपुंसयोरिति** । किंच पिष्लृ सञ्चूर्णने, षकारस्य णत्वं धातोर्यगागमः । 'पिण्याकोऽस्त्री तिलकल्के हिङ्गु वाह्लीकसिह्लके' इति मेदिनी ॥ ४५६ **कषि** । कष खषेति दण्डके हिंसार्थकः । दुष वैकृत्ये, ण्यन्तः । 'दोषो णौ' इत्युपधाया ऊकारः । अमरोक्तिमाह—दूषिकेति । किंच अकृतेऽपि ईकनि दूषयतेः 'अच इः' इति प्रत्यये दूषिः । 'कृदिकारात्' इति ङीषि दूषी । उभाभ्यामपि स्वार्थे कनि दूषिका ह्रस्वमध्यैव 'केऽणः' इति ङीषोऽपि ह्रस्वादेशात् । 'त्रिचण्डी दूषिका दूषी पिचाटं च दृशोर्मलम्' इति विक्रमादित्यकोशः 'दूषिका तूलिकायां च मले स्याल्लोचनस्य च' इति मेदिनी ॥ ४५७ **अनिहृषि** । अन प्राणने, हृष तुष्टौ, अभ्यामीकन्स्यात् स च कित् । 'अनकोऽस्त्री रणे सैन्ये' इति मेदिनी । हृषीकं विषयेन्द्रियम्' इत्यमरः ॥ ४५८ **चङ्कणः** । कणधातोर्यङ्लुकि प्रत्ययलक्षणन्यायेन सन्योङोः इति द्वित्वे कुहोश्चुः इत्यभ्यासस्य चुत्वे 'नुगतोऽनुनासिकान्तस्य' इति नुकि चङ्कण् । ङसिङसोस्तु चङ्कणः ।—**धातोरिति** । चङ्कणित्यस्य ॥ ४५९ **शॄ पॄ** । शॄ हिंसायाम्, पॄ पालनादौ, वृञ् वरणे, एभ्य ईकन्, एषां द्विर्वचनमभ्यासस्य रुगागमश्च ॥—**शर्करीक इत्यादि** । उरदत्ते रपरत्वम् ॥ ४६० **पर्फरीका** । ईकन्नन्ता एते निपात्यन्ते ॥—**पर्फरादेश इति** । एतच्चोज्ज्वलदत्तरीत्योक्तं, वस्तुतस्तु धातोर्द्वित्वमुकारस्याकारः, सलोपः रुक् चाभ्यासस्येति दशपाद्यां यदुक्तं तदेव न्याय्यम् । चरेर्नुम् च त्युत्तरग्रन्थानुरोधेन द्वे रुक् चेत्याद्यनुवृत्तेर्न्याय्यत्वात् ।—**किसलयमिति** 'नीतशेव तुर्फरी पर्फरीका इति मन्त्रस्य वेदभाष्ये तु त्रिफला विशरणे, पॄ पालनपूरणयोः, पर्व पूर्व पूरणे, एषामन्यतमस्य निपातनमिदमित्याश्रित्य शत्रूणां विदारयितारौ, स्तोतॄणां पालकौ, इष्टार्थस्य पूरयितारौ चेति व्याख्यातम् ॥ दर्दरीकमिति । दॄ विदारणे, अस्मादीकन्धातोर्दर्दरादेशः । झर्झरीकमिति । झॄष् वयोहानौ । अस्मादीकन्धातोर्झर्झरादेशः । वस्तुतस्तु दर्दरीकझर्झरीकावपि पर्फरीकवद्धातोर्द्वित्वं रुक् चाभ्यासस्येति व्याख्येयौ । उत्तरखण्डे ऋकारस्य गुणे रपरत्वम् ।—तित्तिडीक इति । निमष्टिमष्टीम आर्द्रीभावे । मकारस्योकारः, अभ्यासस्य तुक् च । 'तिन्तिणी चाम्लिका' इत्यमरे तु शब्दान्तरं बोध्यम् । तथा च तित्तिडी त्वम्लिका चिञ्चा तित्तिडीका कपिप्रिया इति वाचस्पतिः । 'अम्लीका चाम्लिका चिञ्चा तित्तिडीका च तित्तिडा' इति चन्द्रः । 'अम्लीका चुक्रिका चुक्रासाम्ला शुक्राथ शुक्लिका । अम्लिका चिञ्चिका चिञ्चा तिन्तिडीका सुतित्तिडा' इति धन्वन्तरिनिघण्टु ॥ (ग) **चरेरिति** । 'चर गतिभक्षणयोः' अस्यादीकन् द्विर्वचनमभ्यासस्य नुमागमश्च । भ्रमरश्चञ्चरीकः स्याद्रोलम्बो मधुसूदनः । इन्दिन्दिरः पुष्पकीटो मदुद्रो मधुकेशयः इति त्रिकाण्डशेषः ।—मर्मरीक इत्यादि । मृङ् प्राणत्यागे, डुकृञ् करणे, आभ्यामीकन् धातोर्द्वित्वम् अभ्यासस्य रुक् । 'कर्कर्यालुर्गलन्तिका' इत्यमरः । पुण कर्मणि शुभे, णस्य डः प्रत्ययस्य रुडागमश्च । 'पुण्डरीकं सिताम्भोजे सितच्छत्रे च भेषजे । पुंसि व्याघ्रेऽपि दिङ्नागे कोशकारान्तरेऽपि च' इति मेदिनी ४६१ **ईषेः** । ईष गतावस्मादीकन् ह्रस्वश्च । कित्त्वाद्गुणाभावः । ह्रस्वविधानसामर्थ्यादेव गुणाभावे सिद्धेऽप्युत्तरार्थं कित्त्वमित्याहुः । इषीका स्यादीषिकापि वानायुजवनायुजौ इति द्विरूपकोशः । ४६२ **ऋजेः** । ऋज गतौ ॥ ४६३ **सर्तेः** । 'सृ गतौ' अस्मादीकन्कित्स्याद्धातोर्नुमागमश्च । 'सृणिका स्यन्दिनी लाला' इत्यमरः ॥ ४६४ **मृडः कीकच्** । मृड सुखने । मृडः कीकन् इत्युज्ज्वलदत्तादिपाठः प्रामादिकः । मृडीकशब्दस्य चित्स्वरेणान्तदात्तत्वात् । 'मृलीके अस्य सुमतौ स्याम' इत्यादौ चित्स्वरस्यैव दर्शनात् ॥ ४६५

कीकजन्ता निपात्यन्ते। 'अल भूषणादौ' अलीकं मिथ्या। विपूर्वात् व्यलीकं विप्रियं खेदश्च। 'वलीकं पटलप्रान्ते' इत्यादि॥ ४६५। **कॄतॄभ्यामीषन्**। 'करीषोऽस्त्री शुष्कगोमये' तरीषः तरीता॥ ४६७। **शॄपॄभ्यां किच्च**। शिरीषः। पुरीषम्॥ ४६८। **अर्जेर्ऋज च**। 'ऋजीषं पिष्टपचनम्'॥ ४६९। **अम्बरीषः** अयं निपात्यते। 'अबि शब्दे' अम्बरीषः पुमान् भ्राष्ट्रम्। अमरस्तु क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना। ४७०। **कॄशॄपॄकटिपटिशौटिभ्य ईरन्**। करीरो वंशाङ्कुरः। शरीरम्। परीरम् फलम्। कटीरः कन्दरो जघनप्रदेशश्च। 'शौटीरस्त्यागिवीरयोः'। ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् शौटीर्यम्॥ ४७१। **वशेः कित्। उशीरम्**॥ ४७२। **कषेर्मुट् च**। कश्मीरो देशः॥ ४७३। **कृञ उच्च**। कुरीरं मैथुनम्॥ ४७४। **घसे किच्च**। क्षीरम् ४७५। **गभीरगम्भीरौ**। गभेर्भः। पक्षे **नुम् च**॥ ४७६। **विषा विहा**। स्यतेर्जहातेश्च विपूर्वाभ्यां 'आ' प्रत्ययः। विषा बुद्धिः। विहा स्वर्गः। अव्यये इमे॥ ४७७। **पच एलिमच्**। 'पचेलिमो वह्निरव्योः'॥

अलीकादा। 'अलीकमप्रियेऽपि स्याद्दिव्यसत्ये नपुंसकम्' इति मेदिनी। 'अलीकमप्रिये प्रोक्तमलीकमनृते दिवि' इति विश्वः। अलीकमप्रिये भाले वितथे इति हेमचन्द्रः। तथा चाभियुक्तैः प्रयुज्यते—ते दृष्टिमात्रपतिता अपि कस्य नात्र क्षोभाय पक्ष्मलदृशामलकाः खलाश्च। नीचाः सदैव सविलासमलीकलग्ना ये कालतां कुटिलतां च न सत्यजन्ति' इति। इहालीकलग्नाः भाललग्नाः अप्रिये लग्ना इत्याद्यर्थो यथायोग्यं बोध्यः। 'व्यलीकमप्रियाकार्यवैलक्ष्येष्वपि पीडने। ना नागरे' इति मेदिनी। वल संवरणे, 'वलीकनीध्रे पटलप्रान्ते' इत्यमरः। वलतेर्मुगागमे वल्मीकम्। 'वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुंनपुंसकम्' इत्यमरः। वहतेर्वृद्धिश्च। वाहीको गौरश्वश्च। सुप्रपूर्वादिणस्तुट् च, सुप्रतीकः। शाम्यतेः शमीक ऋषिः। एवमग्रेप्युह्या इत्याशयेनाह—इत्यादीति॥ **४५५ कॄतॄ**। कॄ विक्षेपे, तॄ प्लवनतरणयोः॥ ४६७ **शॄपॄ**। शॄ हिंसायाम्, पॄ पालनादौ, आभ्यामीषन् कित्स्यात्। 'ॠत इद्धातोः' इति इत्वे रपरत्वम्। शिरीषो वृक्षभेदः। 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य इत्युत्वम्, 'गूथं पुरीषं वर्चस्कमस्त्री विष्ठाविशौ स्त्रियाम्' इत्यमरः॥ ४६८ **अर्जेः**। अर्ज षर्ज अर्जने, अस्मादीषन् कित्स्यात् धातोर्ऋजादेशश्च। अमरोक्तिमाह—**ऋजीषमिति**। किंच उद्धृतरसः सोमलतायाः शेषोऽपि ऋजीषम्। एतच्च 'ऋजीषणं वृषणसश्चत श्रिये' 'आसत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी इत्यादिमन्त्रे भाष्ये स्पष्टम्॥ ४६९ **अयमिति**। ईषन् प्रत्ययस्तस्य अरुडागमश्चेत्यर्थः। बोपालितोक्तिमाह—अम्बरीषमित्यादि। क्लीबेऽम्बरीष भ्राष्ट्रे ना इत्यमरः। 'अम्बरीषो रणे भ्राष्ट्रे क्लीबं पुंसि नृपान्तरे। नरकस्य प्रभेदे च किशोरे भास्करेऽपि च। आम्रातकेऽनुपाते च' इति मेदिनी॥ ४७० कॄशॄपॄ। कॄ विक्षेपे शॄ हिंसायाम्, पॄ पालनपूरणयोः, कटे वर्षावरणयोः, इट किट कटी गतौ, चुरादौ पट पुटेति दण्डके भाषार्थः, शौटृ गर्वे। 'वंशाङ्कुरे करीरोऽस्त्री वृक्षभिद्घटयोः पुमान्। करीरा चीरिकायां च दन्तमूले च दन्तिनाम्' इति मेदिनी। शीर्यत इति शरीरम्। 'शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः। अर्धर्चादित्वात् 'शरीरः' इति पुंलिङ्गोऽपि॥—**परीरमिति**। पूर्यतेऽनेनेति विग्रहः। बाहुलकात् हिडि गत्यनादरयोः, हिण्डते हृतस्तनो गच्छतीति हिण्डीरः। 'हिण्डीरोऽब्धिकफः फेनः' इत्यमरः। 'हिण्डीरोऽपि च हिण्डीरः' इति द्विरूपकोशः। किर्मीरजम्बीरतूणीरादयोऽपि बाहुलकादेव बोध्याः। 'किर्मीरो नागरङ्गे च कर्बुरे राक्षसान्तरे' इति मेदिनी 'जम्बीरः प्रस्थपुष्पे स्यात्तथा दन्तशठद्रुमे' इति च॥ ४७१ **वशेः**। वश कान्तौ, अस्मादीरन्कित्स्यात्। किस्वात्संप्रसारणादि। उशीरं वीरणमूलम्। उशीरोऽपि। मूलेऽस्योशीरमस्त्रियाम्। अभयं नलदं सेव्यम्' इत्यमरः॥ ४७२ **कशेः**। कश इति सौत्रो धातुः। अस्मादीरन् तस्य मुडागमश्च। पृषोदरादित्वात्कश्मीरः ४७३ **कृञः**। डुकृञ् करणे, अस्मादीरन् धातोरन्तस्य उदादेशो नपरः॥ ४७४ **घसेः**। घस्लृ अदने। अस्मादीरन् कित्स्यात्। 'गमहन' इत्युपधालोपे कत्वं षत्वं च। 'क्षीवं दुग्धे च नीरे च' इति विश्वः॥ ३७५ **गभीर**। गम्लृ गतौ। अस्मादीरन् भकारोऽन्तादेशः पक्षे नुमागमश्च निपात्यते। 'निम्नं गभीरं गम्भीरम्' इत्यमरः॥ ४७६ **विषः**। षोऽन्तकर्मणि, ओहाक् त्यागे, आभ्यां विपुर्वाभ्यामाप्रत्ययो निपात्यते॥ ४७७ **पचः**। डुपचष् पाके, अस्मादेलिमच् स्यात्। कर्तरि अयम्। कृत्प्रत्ययेषु तु केलिमर उपसंख्यातः॥ ४७८

४७८। **शीङो धुक्लक्वलञ्वालनः**। चत्वारः प्रत्ययाः स्युः। शीधु मद्यम्। शीलं स्वभावः। शैवलः। शेवालम्। बाहुलकात् वस्यपोऽपि। 'शैवालं शैवालो न स्त्री शेपालो जलनीलिका'॥ ४७९। **मृकणिभ्यामूकोकणौ**। मरूको भृगः। काणूकः काकः॥ ४८०। **वलेरूकः**। वलूकः पक्षी उत्पलमूलं च॥ ४८१। **उलूकादयश्च**। वलेः संप्रसारणमूकश्च। उलूकाविन्द्रपेचकौ। वावदूको वक्ता। भल्लूकः॥ (ग) ※**शमेर्वुकच**। शम्बूको जलशुक्तिः॥ ४८२। **शलिमण्डिभ्यामूकण्**। शालूकं कन्दविशेषः। मण्डूकः। ४८३। **नियो मिः**। नेमिः॥ ४८४। **अर्तेरुच्च**। ऊर्मिः॥ ४८५। **भुवः कित्**। भूमिः॥ ४८६। **अश्नोते रश् च**। रश्मिः किरणो रज्जुश्च॥ ४८७। **दलिमः**। 'दल विशरणे' दलिमरिन्द्रायुधम्॥ ४८८। **वीज्याज्वरिभ्यो निः**। बाहुलकाण्णत्वम्। 'वेणिः स्यात्केशविन्यासः प्रवेणी च स्त्रियामुभे'। ज्यानिः। जूर्णिः॥ ४८९। **सृवृषिभ्यां कित्**। सृणिरङ्कुशः। 'वृष्णिः क्षत्रियमेषयोः'। ४९०। **अङ्गेर्नलोपश्च**। अग्निः॥ ४९१। **वहिश्रिश्रुयुद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित्**। वह्निः। श्रेणिः। श्रोणिः। योनिः। द्रोणिः। ग्लानिः। हानिः। तूर्णिः।

शीङः। शीङ् स्वप्ने, शेरतेऽनेनेति शीधुर्मद्यविशेषः। 'मैरेयमासवः शीधुः' इत्यमरः। अर्धर्चादिपाठात् क्लीवं च—'पुंनपुंसकयोर्दारुजीवातुस्थाणुशीधवः' इति त्रिकाण्डशेषः। शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इति मेदिनी 'जलनीली तु शैवालम्' इत्यमरः। 'शैवलं पद्मकाष्ठे स्यात् शैवाले तु पुमानयम्' इति मेदिनी। शब्दार्णवोक्तिमाह—शेवालं शैवाल इति॥ ४७९ **मृकणि**। मृङ् प्राणत्यागे, कण शब्दार्थः, ऊकश्च उकण् च—ऊकोकणौ एतौ प्रत्ययौ यथाक्रमं भवतः॥ ४८० **वलेः**। वल संवरणे। 'उलूकः पुंसि काकारविन्द्रे भारतयोधिनि' इति मेदिनी। वदेर्यङ्लुगन्तादूकः। वाचोयुक्तिपटुर्वाग्मी वावदूकोऽतिवक्तरि' इत्यमरः॥ ४८१ **भल्लूक इति**। 'भल्ल परिभाषणे' इत्यस्मादूकः॥ (ग) **शमेः**। 'शम उपशमे' अस्माद्वुकः, धातोर्मुगागमश्च। शम्बूको गजकम्भान्ते घोण्टे च शूद्रतापसे' इति मेदिनी। बाहुलकादूकप्रत्यये ह्रस्वमध्योऽपि। 'जम्बूक जम्बुकं प्राहुः शम्बूकमपि शम्बुकम्' इति द्विरूपकोशः। जम्बूकबन्धूकावप्यत्रैव द्रष्टव्याः। 'जम्बूकः फेरवे नीचे पश्चिमाशापतावपि' इति मेदिनीविश्वप्रकाशौ। बन्धूकं बन्धुजीवे स्याद्बन्धूकः पीतसारके इति च। ४८२ **शलिमण्डि**। शल गतौ, मडि भूषायां हर्षे च। सौगन्धिकं तु कल्हारम्' इत्याद्युपक्रम्य शालूकमेषां कन्दः स्यात्' इत्यमरः। एवं च सौगन्धिकादीनां कुमुदकैरवान्तानां कन्दो मूलं शालूकमित्यर्थः। मण्डते वर्षासमयमिति मण्डूको भेकः॥ ४८३ **नियो मिः**। णीञ् प्रापणे। नयति चक्रमिति नेमिश्चक्रावयवः। नेमिर्नातिनिशे कूपत्रिकाचक्रान्तयोः स्त्रियाम्' इति मेदिनी। बाहुलकादन्यतोऽपि या प्रापणे, यामिः स्वसृकुलस्त्रियोः इत्यन्तस्थादौ रभसः। जामिः स्वसृकुलस्त्रियोः इति चवर्गतृतीयादावजयकोशः। 'चवर्गादिरपि प्रोक्तो जामिः स्वसृकुलस्त्रियोः' इति द्विरूपेषु विश्वः॥ ४८४ **अर्तेरुच्च**। ऋ गतावित्यस्मान्मिः, धातोरूकारादेशश्च। उच्चेति वक्तुमुचितम्, रपरत्वे 'हलि च' इति दीर्घसंभावात्॥ ऊर्मिः स्त्रीपुंसयोर्वीच्यां प्रकाशे वेगभङ्गयोः। वस्त्रसंकोचरेखायां वेदनापीडयोरपि' इति मेदिनी॥ ४८५ **भुवः**। भवतेर्मिः कित्स्यात् भवन्ति भूतान्यस्यामिति भूमिः। 'भूमिर्वसुन्धरायां स्यात्स्थानमात्रेऽपि च स्त्रियाम् इति मेदिनी। 'भूर्भूमिरचलानन्ता' इत्यादिस्त्वमरः॥ ४८६ **अश्नोतेः**। अशू व्याप्तौ, अस्मान्मिः, धातो रशादेशश्च। 'रश्मिः पुमान् दीधितौ स्यात्पक्ष्मप्रग्रहयोरपि' इति मेदिनी॥ ४८८ **वीज्या**। वी गतौ, ज्या वयोहानौ, ज्वर रोगे। अमरोक्तमाह—**वेणिः स्यादित्यादि**। कृदिकारात् इति ङीष्। 'वेणी केशस्य बन्धने। नद्यादेरन्तरे देवताडे इति मेदिनी। 'वेणी स्वरागरी देवताडो जीमूत इत्यपि' इत्यमरः। 'ज्यानिर्हानौ स्रवन्त्यां च' इति विश्वः। 'ज्वरत्वर इत्युपधाया वकारस्य च ऊठ्। जूर्णिः स्त्रीरागः॥ ४८९ **सृवृषि**। सृ गतौ, वृषु सेचने, आभ्यां निः कित्स्यात्। अङ्कुशोऽस्त्री सृणिः स्त्रियाम्' इत्यमरः। 'सृणिः स्यादङ्कुशे पुमान्, इति कोशान्तरम्। अत एव आरक्षमग्नमवमत्य सृणिशिताग्रम्' इति माघे पुंलिङ्गप्रयोगः। वृष्णिस्तु यादवे मेषे वृष्णिः पाखण्डचण्डयोः' इति विश्वः। ऐन्द्रे वृष्णि षोडशिनि तृतीयम् इति श्रुतौ वृष्णि मेषमित्यर्थः। अङ्गेः। अगिर्गत्यर्थः। 'अग्निर्वैश्वानरेऽपि स्याच्चित्रकाख्योपधौ पुमान् इति मेदिनी॥ ४९१ **वहि**। वह प्रापणे,

बाहुलकात् म्लानिः ॥ ४६२ । **घृणिपृश्निपार्ष्णिचूर्णिभूर्णि** । एते पञ्च निपात्यन्ते । घृणिः किरणः । स्पृशतेः सलोपः, पृश्निरल्पशरीरः । पृषेर्वृद्धिश्च, पार्ष्णिः पादतलम् । चरेरुपधाया उत्वम्, चूर्णिः कपर्दकशतम् । विभर्तेरुत्वम्, भूर्णिर्धरणी ॥ ४६४ । **जृशॄस्तृजागृभ्यः क्विन्** । जीर्विः । पर्शुः । शीर्विर्हिस्रः । स्तीर्विरध्वर्युः । जागृविर्नृपः ॥ ४६५ । **दिवो द्वे दीर्घश्चाभ्यासस्य** । 'दीदिविः स्वर्गमोक्षयोः' ॥ ४६६ । **कृविघृष्विछविस्थविकिकीदिवि** । कृविस्तन्तुवायद्रव्यम् । घृष्विर्वराहः । छास्थोर्ह्रस्वत्वं च छविर्दीप्तिः, स्थविस्तन्तुवायः । दीव्यतेः किकीपूर्वात् किकीदिविश्चाषः । बाहुलकाद्ध्रस्वदीर्घयोर्विनिमयः चाषेण किकिदीविना ४६७ । **पातेर्डतिः** । पतिः ॥ ४६८ । **शकेर्ऋतिन्** । शकृत् ॥ ४६९ । **अमेरतिः** । अमतिः कालः ॥ ५०० । **वहिवस्यर्तिभ्यश्चित्** । वहति पवनः । 'वसतिर्गृहयामिन्योः' । अरतिः क्रोधः ॥ ५०१ । **अञ्चेः को वा** । अङ्कतिः अञ्चतिर्वातः ॥ ५०२ । **हन्तेरंह च** । हन्तेरतिः स्यादंहादेशश्च धातोः । हन्ति दुरितमनया अंहतिर्दानम् । 'प्रादेशनं निर्वपणमपवर्जनमंहतिः' ॥ ५०३ । **रमेर्णित्** । 'रमतिः कालकामयोः' ॥ ५०४ । **सूडः**

श्रिञ् सेवायाम्, श्रु श्रवणे, यु मिश्रणे, द्रु गतौ, ग्लै म्लै हर्षक्षये, ओहाक् त्यागे त्वरा संभ्रमे, एभ्यो निः प्रत्ययः स्यात्स च नित् । 'वह्निर्वैश्वानरेऽपि स्याच्चित्रकाख्यौषधौ पुमान्' इति मेदिनी । श्रेणिः पङ्क्तिः । निःश्रेणिस्त्वधिरोहिणी । श्रेणिः स्त्रीपुंसयोः पङ्क्तौ समाने शिल्पिसंहतौ' इति मेदिनी । श्रोणिः कटिप्रदेशः 'कटिः श्रोणिः ककुद्मति' इत्यमरः । योनिर्भगम् । योनिः स्त्रीपुंसयोश्च स्यादाकरे स्मरमन्दिरे' इति मेदिनी । द्रोणिः सेचनी । 'कृदिकारात इति ङीपि द्रोणी । 'द्रोणोऽस्त्रीयामाढके स्यादाढकादिचतुष्टये । पुमान् कृपीपतौ कृष्णकाके स्त्री नीवृदन्तरे' इति मेदिनी । ग्लानिर्दौर्बल्यम् । हानिरपचयः क्षयश्च । तूर्णिर्मानः ॥ ४६२ **घृणि** घृ सेचने, स्पृश संस्पर्शने, पृषु सेचने, चर गतौ, डुभृञ् धारणपोषणयोः । निप्रत्ययो गुणाभावश्च निपात्यते 'घृणिः पुनः । अंशुज्वाला रङ्गेषु' इति हेमचन्द्रः । 'पृश्निरल्पतनौ' इत्यमरः । 'पार्ष्णिः स्यादुन्मदस्त्रियाम् । स्त्रियां द्वयोः सैन्यपृष्ठे पादग्रन्थ्यधरेऽपि च' मेदिनी ।—भूर्णिमिति । 'तक्वा न भूर्णिः इति मन्त्रस्य भाष्ये तु भूर्णिर्धारकः पोषको वेति व्याख्यातम् ॥ ४६३ **वृ** । वृञ् वरणे, दृङ् आदरे, स्त्रियां 'कृदिकारात' इति ङीष् । दर्वी ॥ ४६४ **जॄशॄ** । जॄ वयोहानौ, शॄ हिंसायाम्, स्तॄञ् आच्छादने, जागृ निद्राक्षये, क्विनः कित्त्वात् 'ऋत इद्धातोः इति इत्वे रपरत्वे जीर्विरित्यादि ॥ ४६५ **दिवो** । 'दिवु क्रिडादौ' अस्मात् क्विन्, शित्वाद्गुणाभावः 'दीदिविर्धिषणान्नयोः' इति विश्वः । 'दीदिविर्ना धिषणेऽन्न तदस्त्रियाम्' इति मेदिनी । धिषणो बृहस्पतिः । 'दीदिविर्द्वादिशकरश्चक्षुः सुरगुरुर्गुरुः' इति त्रिकाण्डशेषः । दीदिविर्द्वादशार्चिः स्याज्जीवः प्राक्फल्गुनीयुतः इति हारावली । 'ओदनोऽस्त्री सदीदिविः' इत्यमरः । अत्र सदीदिविः दीदिविसहित इति व्याख्यानं न्याय्यम् । अत्र स इति विशेषणाद्दीदिविः पुंलिङ्ग इति केषाञ्चिद्व्याख्यान नादर्तव्यम् । स इति छेदने तु अस्त्रियामिति न लभ्येत । ततश्च 'अन्ने तदस्त्रियाम्' इति पूर्वोक्तमेदिनीग्रन्थो विरुध्येतेति ध्येयम् । 'गोपामृतस्य दीदिविम्' इति मन्त्रे तु द्योतमानमित्यर्थः ॥ ४६३ **कृवि** । डुकृञ् करणे, घृषु सेचने, छो छेदने, ष्ठा गतिनिवृत्तौ, दिवु क्रीडादौ, एते क्विन्नन्ता निपात्यन्ते ।—**घृष्विर्वराह इति** । 'उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः' इति मन्त्रे तु घृष्वेः कामानां वर्षकस्येत्यर्थ इति व्याख्यातम्, घृषु सेचने इति धात्वर्थानुगमात् । 'छविः शोभारुचोर्योषित्' इति मेदिनी । 'अथ चाषः किकीदिविः' इत्यमरः ॥—**विनिमय इति** । 'किकीदिविः किकिदिविः' इति द्विरूपकोशः ॥ ४६७ **पातेः** । पा रक्षणे डित्त्वाट्टिलोपः । 'पतिर्धवे ना त्रिष्वीशे' इति मेदिनी ॥ ४६८ **शकेः** । शक्लृ शक्तौ । 'उच्चारावस्करौ शमलं शकृत् । गूथं पुरीषं वर्चस्तमस्त्री विष्ठाविशौ स्त्रियाम्' इत्यमरः ॥ ४६९ **अमेः** । अम गतौ । 'अथामतिः पुंसि हिमदीधितिकालयोः' इति मेदिनी ॥ ५०० **वहि** । वह प्रापणे, वह निवासे, ऋ गतौ । **'वहतिः** सचिवे गवि' इति विश्वः । **'वसतिः** स्यात् स्त्रियां वासे यामिन्यां च निकेतने' इति मेदिनी ॥ ५०१ **अञ्चेः** । अञ्चु गतौ, अस्मादतिः स्यात्ककारश्चान्तादेशो विकल्पेन ॥ ५०२ **हन्तेः** । हन हिंसागत्योः, अमरोक्तिमाह—प्रादेशनमित्यादि ॥ ५०३ **रमेः** । रमतेरतिः स्यात्स च नित् । 'रमतिर्नायके नाके पुंसि स्यात्' इति मेदिनी । नित्त्वमाद्युदात्तार्थम् । रन्तिरसि रमतिरसि

क्रिः। सूरिः ॥ ५०५। **अदिशदिशुभिभ्यः क्रिन्**। अद्रिः। शद्रिः शर्कराः। भूरि प्रचुरम्। शुभ्रिर्ब्रह्मा ॥ ५०६। **वङ्क्र्यादयश्च**। क्रिन्नन्ता निपात्यन्ते। वङ्क्रिर्वद्यिभेदः गृहदारु पार्श्वास्थि च। वप्रिः क्षेत्रम्। अहिरङ्घ्रिश्च चरणः। तदिः सौत्रो धातुः तन्द्रिर्मोहः। बाहुलकाद्गुणः, भेरिः ॥ ५०७। **राशदिभ्यां त्रिप्** रात्रिः। शत्त्रिः कुञ्जरः। ५०८। **अदेस्त्रिनिश्च**। चात्त्रिप्। अत्त्री, अत्त्रिणौ, अत्त्रिणः। अत्त्रिः, अत्त्री अत्त्रयः ॥ ५०९। **पतेरत्रिन्**। पतत्त्रिः पक्षी ॥ ५१०। **मृकणिभ्यामीचिः**। मरीचिः। कणीचिः पल्लवो निनादश्च ॥ ५११। **श्वयतेश्चित्**। श्वयीचिर्व्याधिः ॥ ५१२। **वेञो डिच्च**। वीचिरतरङ्गः। नञ्समासे अवीचिर्नरकभेदः ॥ ५१३। **ऋहनिभ्यामूषन्**। अरुषः सूर्यः। हनूषो राक्षसः ॥ ५१४। **पुरः कुषन्**। 'पुर अग्रगमने'। पुरुषः। अन्येषामपि ३५३९ इति दीर्घः, पूरुषः ॥ ५१५। **पॄनहिकलिभ्य उषच्**। परुषम्। नहुषः। कलुषम् ॥ ५१६। **पीयेरूषन्**। पीय इति सौत्रो धातुः, पीयूषम्। बाहुलकाद्गुणे 'पीयूषोऽभिनवं

---

५०४ **सूङः**। षूङ् प्राणिप्रसवे। कित्त्वाद्गुणाभावः। 'धीमान् सूरिः कृती कृष्टिर्लब्धवर्णो विचक्षणः' इत्यमरः दशपाद्यां तु 'सूङोरिन् दीर्घश्च' इति पाठः। तत्र रिनो नकारो नानुबन्धः, उत्तरसूत्रे क्रिन्प्रत्ययारम्भात्। अनुबन्धत्वे हि लाघवादिहैव क्रिन्मुच्येत। तथा च सूरी, सूरिणौ, सूरिण इत्यादि रूपम्। अत एवाभिधान-मालायां सूरीति नान्तमुदाहृतमित्यवधेयम्। दशपादीवृत्तिकारैस्त नित्त्वं स्वीकृत्य सूरिरित्युदाहृतं, तदेतेन प्रत्युक्तम्। स्वरविरुद्धमपि, 'सदा पश्यन्ति सूरयः' 'विसूरयो दधतो विश्वमायुः' इत्यादौ सूरिशब्दस्यान्तो-दात्तत्वदर्शनात् ॥ ५०५ **अदि**। अद भक्षणे, शद्लृ शातने, भू सत्तायाम्, शुभ शुम्भ शोभार्थे। 'अद्रयो द्रुमशैलार्काः' इत्यमरः। 'भूरिर्ना वासुदेवे च हरे च परमेष्ठिनि। नपुंसकं सुवर्णे च प्राज्ये स्याद्वाच्यलिङ्गकः' इति मेदिनी ॥ ५०६। **वङ्क्र्यादयश्च**। वकि कौटिल्ये, टुवप् बीजसन्ताने। निपातनात्सम्प्रसारणाभावः। अहिर्भाषार्थश्चुरादिण्यन्तः। अघि गतौ गत्यारम्भे च। ञिभी भये।— तन्द्रिरिति। कृदिकारात् इति पक्षे ङीष्। तन्द्री निद्राप्रमीलयोः' इति मेदिनी। 'तन्द्री तन्द्रिश्च तन्द्रायाम्' इति द्विरूपकोशः। 'विभज्य नक्तं-दिवमस्ततन्द्रिणा' इति भारविः ॥ प्रत्ययस्य कित्त्वाद्गुणाभावमाशङ्क्याह— बाहुलकादिति ॥ ५०७ राशदि रा दाने, शद्लृ शातने। 'शत्त्रिर्नाम्भोधरे विष्णौ' इति मेदिनी। शत्त्रिमग्न उपमां केतुमर्यः इति मन्त्रस्य वेदभाष्ये तु उपमां उपमानभूतं केतुं प्रख्यातं शस्त्रिम् एतन्नामकं राजर्षिमिति व्याख्यातम् ॥ ५०८ **अदेः**। अद भक्षणे, अत्त्री भक्षकः। अत्त्रिः ऋषिविशेषः। उज्ज्वलदत्तादयस्तु अदेस्त्रिन्निति पठित्वा अत्रिरित्युदा-जहार। तन्न। त्रिपैवेष्टसिद्धौ प्रत्ययान्तरवैयर्थ्यात्। गोवर्धनस्तु अदेस्त्रिन्निच्चेति पठित्वा निदिति वचना-न्नकारस्य नेत्संज्ञा, अत्त्री अत्त्रिणौ अत्त्रिण इत्याह। तदपि न। नित्त्वे सत्याद्युदात्तत्वापत्तेः। न चेष्टापत्तिः। जनीन्या अत्त्रिणं पर्णि'। 'अग्ने हसिन्या अत्त्रिणम्' इत्यादावन्तोदात्तस्य निर्विवादत्वात्। अत एव 'न लुमताङ्गस्य' इति सूत्रे 'अदेस्त्रिनिश्च' इत्येव कैयटोऽप्याहेति दिक् ॥ ५०९ **पतेः**। पत्लृ गतौ ॥ पतत्त्रिरिति पक्षवाचकात् तत्रशब्दान्मत्वर्थे इनि तु नान्तः। पतत्त्री पतत्त्रिणौ पतत्त्रिण इत्यादि ॥ ५१० **मृकणि**। मृङ् प्राणत्यागे, कण शब्दार्थः कण गतौ। 'मरिचिः कृपणे दीप्तौ ऋषिभेदे च दृश्यते' इति विश्वः। मरीचिर्मुनि-भेदे ना गभस्तावनपुंसकम्' इति मेदिनी। 'कणीचिः पुष्पितलतागुञ्जयोः शकटे स्त्रियाम्' इति च ॥ ५११ **श्वयतेः**। टुओश्वि गतिवृद्ध्योः, अस्मादीचिप्रत्ययश्चित्स्यात् ॥ ५१२ **वेञः**। वेञ् तन्तुसन्ताने। अस्मादीचि-र्डित्स्यात्। वीचिः स्वल्पे तरङ्गे स्यादवकाशे सुखे द्वयोः' इति विश्वमेदिन्यौ ॥ ५१३ **ऋहनि**। ऋ गतौ। हन हिंसागत्योः ॥ ५१४ **पुरः**। कुष निष्कर्षे। कित्त्वाद्गुणाभावः। 'पुरुषः पुरुषे सांख्यज्ञे च पुन्नागपादपे' इति विश्वमेदिन्यौ ॥ ५१५ **पॄनहि**। पॄ पालनपूरणयोः णह बन्धने, कल शब्दसंख्यानयोः। परुषं कर्बुरे रूक्षे निष्ठुरोक्तौ च वाच्यवत्' इति मेदिनी। 'नहुषो राजविशेषे नागभिद्यपि' इति हेमचन्द्रः। उषचश्चित्त्वा-न्नहुषशब्दस्यान्तोदात्तत्वे प्राप्ते ग्रामादित्वाद्वृषादित्वाद्वा आद्युदात्तत्वमित्याहुः। एतच्च 'देवा अकृण्व-न्नहुषस्य विश्वम्' इति मन्त्रस्य भाष्ये स्पष्टम्। 'कलुषं त्वाविलैनसोः' इति विश्वः ॥ ५१६ **पीयेः**। पीयूषममृतं सुधा' इत्यमरः। 'पीयूषं सप्तदिवसावधि क्षीरे तथाऽमृते' इति मेदिनी ॥ अन्यरोक्तमाह—**पेयूष इत्यादि**।

षयः' ।। ५१७ । मस्जेर्नुम् च । मञ्जूषा । ५१८ । गडेश्च । गण्डूषः । गण्डूषा ।। ५१९ । अर्तेररुः । अररुः शत्रुः, अररु, अररवः ।। ५२० । कुटः किच्च । कुटरुर्वस्त्रगृहम् । कित्वप्रयोजनं चिन्त्यम् ।। ५२१ । शका-दिभ्योऽटन् । 'शकटोऽस्त्रियाम्', शकिर्गत्यर्थः । कङ्कटः सन्नाहः । देवटः शिल्पी । करटः । इत्यादि ।। ५२२ कृकदिकडिकटिभ्योऽम्बच् । करम्बं व्यामिश्रम् । कदि कडी सौत्रौ । कदम्बो वृक्षभेदः । कडम्बोऽग्रभाग । कटम्बो वादित्रम् । ।। ५२३ । कदेर्णित्पक्षिणि । कादम्बः कलहंसः ।। ५२४ । कलिकर्द्योरमः । कलमः । कर्दमः ।। ५२५ । कुणिपुल्योः किन्दच् । 'कुण शब्दोपकरणयोः' कुणिन्दः शब्दः । पुलिन्दो जातिविशेष ।। जातिविशेषः ।। ५२६ । कुपेर्वा बश्च । कुपिन्दकुविन्दौ तन्तुवाये ।। ५२७ । नौ षञ्जेर्घथिन् । निषङ्गथिरा-लिङ्गकः । ५२८ । उद्यर्तेश्चित् । उदरथिः समुद्रः ।। ५२९ । सर्तेणिच्च । सारथि ।। ५३० । खर्जिपिञ्जा-दिभ्य उरोलचौ । खर्जूरः । कर्पूरः । वल्लूरं शुष्कमांसम् । पिञ्जूलं कुशवर्तिः । (ग) लङ्गेर्वृद्धिश्च ।

---

५१७ मस्जेः । टुमस्जौ शुद्धौ, अस्मादूषन्स्यान्नुमागमश्च धातोः । 'मिदचोऽन्त्यात्परः, सस्य श्चुत्वेन शः तस्य जश्त्वेन जः, तस्य 'झरो झरि' इति वालोपः । लोपाभावपक्षे जकारद्वयम् । मञ्जूषा काष्ठमयं द्रव्यम् । पेटक इति यावत् । 'पिटकः पेटकः पेटा मञ्जूषा' इत्यमरः ।। ५१८ गडेः । गडि वदनैकदेशे । 'गण्डूषो मुखपूर्तौभपुष्करप्रसृतोन्मिते' इति मेदिनी ।। ५१९ अर्तेः । ऋ गतौ, उकारान्तोऽयं प्रत्ययो न तु सकारान्त इति स्फोरयति अररु, अररवः इत्यनेन । न चोकारान्तत्वे विवदितव्यम् । 'कटिद्य वीररुं शूरमर्त्यम्' 'अपाररुमदेवयजनो जहि' इत्यादिमन्त्रेषु तथा दर्शनात् । अत्र व्याचक्षते मा नः शसो अररुषः' इति मन्त्रस्य भाष्ये सान्तोऽयमिति माधवेनोक्तं यत्तत्प्रौढिवादमात्रं न तु वास्तवम्, अररुष इति पदस्य आद्युदात्तत्वानुप-पत्तिप्रसङ्गात् । तस्माद्रातेः 'लिटः क्वसुश्च' इति क्वसौ रविवानित्यनेन नञ्समासे 'ऽरुयररुष' इति व्याख्येयम् । ततश्च 'तत्पुरुषे तुल्यार्थे' इत्यादिना पूर्वपदप्रकृतिस्वरे सत्याद्युदात्तत्वं सिध्यति । 'गुरुद्वेषो अररुषे दधन्ति' इत्यत्र स्वयमेव रातेः क्वसन्तस्य नञ्समास इत्यादि व्याख्यानात् । 'यो नो अग्ने अररिवां अघायुः' इत्यादिमन्त्रान्तरसंभवाच्चेति ।। ५२० कुटः । कुट कौटिल्ये, अस्मादरुः स्यात्स च किन् ।।— चिन्त्यमिति । 'गाङ् कुटादिभ्यः' इति ङित्त्वेनैव गुणाभावासिद्धेरिति भावः ।। ५२१ शका । शकिर्गत्यर्थ इति । शक्लृ शक्तावित्यस्मादटन्नित्येके । 'क्लीबेऽनः शकटोऽस्त्री स्यात्' इत्यमरः ।। देवट इति । देवृ देवने करट इति । डुकृञ् करणे, कॄ विक्षेपे इत्यस्माद्वा अटन् । 'काकेभगण्डौ करटौ' इत्यमरः । करटो गजगण्डे स्यात्कुसुम्भे निन्द्यजीविनि । एकादशाहादिश्राद्धे दुर्दुरूढेऽपि वायसे' इति मेदिनी ।। ५२२ कृकदि । डुकृञ् करणे, कटे वर्षावरणयोः । 'करम्बो मिश्रिते बान्तो भान्तस्तु दधिसक्तुषु' इति विश्व । 'कदम्बं निकुरम्बे स्यान्नीपसर्षपयोः पुमान्' इति च ।। ५२३ कदेः । 'कादम्बः स्यात्पुमान्पक्षिविशेषे सायकेऽपि च' इति मेदिनी ५२४ कलि । कल संख्याने, कर्द कुत्सिते शब्दे । 'कलमः पुंसि लेखन्यां शालौ पाटच्चरेपि च' इति मेदिनी । ५२५ कुणिपुल्योः । पुल महत्त्वे ।। ५२६ कुपेः । कुप क्रोधे । अस्मात्किदच् स्यात, वकारश्चान्तादेशो विकल्पेन । तन्तुवायः कुविन्दः स्यात्' इत्यमरः । बाहुलकात् अल भूषणादौ । अलिन्दम् । यस्यामलिन्देषु न चक्रुरेव मुग्धाङ्गनागोमयगोमुखानि' इति माघः ।। ५२७ नौ षञ्जेः । षञ्ज सङ्गे । निपूर्वादस्मात् घथिन्स्यात् । उपसर्गात्सुनोति इत्यादिना षत्वम् । 'चजोः' इति कुत्वम् । 'आभुरस्य निषङ्गथिः' । रथकूबर इत्यर्थः ।। ५२८ उद्य । ऋ गतौ उत्पूर्वादस्मात् घथिन् स्यात् स च चित् ।। ५२९ सर्तेः । सृ गतौ अस्मात् घथिन् णित्स्यात् । 'नियन्ता प्राजिता यन्ता सूतः क्षत्ता च सारथिः' इत्यमरः ।। ५३० खर्जि । खर्ज मार्जने, शिञ्ज हिंसायाम् । खर्जादिभ्यः पिञ्जादिभ्यश्च यथाक्रमं ऊरऊलचौ स्तः । 'खर्जूरं रूप्यफलयोः खर्जूरः कीटवृक्षयोः' इति मेदिनीहेमचन्द्रौ । कृपू सामर्थ्ये बाहुलकात् 'कृपो र लः इति लत्वाभावः । अथ कर्पूर-मस्त्रियाम् । घनसारश्चन्द्रसंज्ञः सिताभ्रो हिमबालुका' इत्यमरः । वल्ल संवरणे वल्लूवम् । 'उत्तप्तं शुष्कमांसं स्यात्तद्वल्लूरं त्रिलिङ्गकम् इत्यमरः । एवं शालूरादयो द्रष्टव्याः । 'भेके मण्डूकवर्षाभूशालूरप्लवदर्दुराः' इत्यमरः ।। (ग) लङ्गेः । लचिर्गत्यर्थः । 'लाङ्गूलं पुच्छशेफसोः' इति मेदिनी । कुसूल इति । कुस श्लेषणे,

लाङ्गूलम्। कुसूलः। (ग) **तमेर्बुग्वृद्धिश्च**। ताम्बूलम्। (ग) **शृणातेर्दुग्वृद्धिश्च**। शार्दूलः। (ग)**दुवकोः कुक्च दुकूलम्**। कुकूलम्॥ ५३१। **कुवश्चट् दीर्घश्च**। कूची चित्रलेखनिका॥ ५३२। **समीणः**। समीचः समुद्रः। समीची हरिणी॥ ५३३। **सिवेष्टेरु च**। सूचो दर्भाङ्कुरः। सूची॥ ५३४। **शमेर्बन्**। शम्बो मुसलम्॥ ५३५। **उल्बादयश्च**। वन्नन्ता निपात्यन्ते। 'उच समवाये' चस्य लत्वं गुणाभावश्च, उल्बो गर्भाशयः। शुल्बं ताम्रम्। विम्बम्॥ ५३६। **स्थः स्तोऽम्बजवकौ**। तिष्ठतेरम्बच् अबक एतौ स्तस्तादेशश्च 'स्तम्बो गुच्छस्तृणादिनः'। स्तवकः पुष्पगुच्छः॥ ५३७। **शाशपिभ्यां ददनौ**। 'शादो जम्बालशष्पयोः'। शब्दः॥ ५३८। **अब्दादयश्च**। अवतीत्यब्दः॥ (ग) **कौतेर्नुम्**। कुन्दः॥ ५३९। **वलिमलितनिभ्यः कयन्** वलयम्। मलयः। तनयः॥ ५४०। **वृह्रोः षुग्दुकौ च**। वृषय आश्रयः। हृदयम्॥ ५४१। **मिपीभ्यां रुः**। मेरुः। पेरुः सूर्यः। बाहुलकात् पिबतेरपि। 'संवत्सरवपुः पारुः पेरुर्वासीर्दिनप्राणी'॥ ५४२। **जत्र्वादयश्च** जत्रु, जत्रुणी। अश्रु, अश्रुणी॥ ५४३। **रुशातिभ्यां कुन्**। रुरुर्मृगभेदः। शातयतीति शत्रुः, प्रज्ञादौ पाठा-

---

दन्त्यसकारवान्। कुसलं च कुसीदं च मध्यदन्त्यमुदाहृतम्' इति विश्वः। ताम्बूलादयोऽप्यत्र द्रष्टव्याः। तमु ग्लानौ, वुग् दीर्घत्वं च। 'ताम्बूली नागवल्ल्यां स्त्री क्रमुके तु नपुंसकम्' इति मेदिनी। शॄ हिंसायाम्, धातोर्वृद्धिर्दुगागमश्च। 'शार्दूलो राक्षसान्तरे। व्याघ्रे च पशुभेदे च सत्तमे तूत्तरस्थिते' इति मेदिनी-विश्वप्रकाशौ। उत्तरस्थितः उत्तरपदभूतः। शार्दूलशब्दस्तु श्रेष्ठवाची राजशार्दूल इति तथा। दु गतौ, कुङ् शब्दे, अनयोः कुक् च। 'दुकूलं श्लक्ष्णवस्त्रे स्यात् क्षौमे च' इति मेदिनी। 'कुकूलं शङ्कुसङ्कीर्णे श्वभ्रे ना तु तुषानले' इति विश्वमेदिन्यौ। शिरीषादपि मृद्वङ्गी क्वेयमायतलोचना। अयं क्व च कुकूलाऽग्नि-कर्कशो मदनानलः' इति प्रयोगश्च॥ ५३१। **कुवः**। कु शब्दे, कुचः स्तनः। 'कुचकूचौ स्तनौ मतौ' इति विश्वः। कूचीति। टित्त्वान्ङीप्॥ ५३२। **समीणः**। इण् गतौ अस्मात्समुपपदे चट् स्याद्दीर्घश्च धातोः॥ ५३३ **सिवेः**। षिवु तन्तुसन्ताने, अस्माच्चट् प्रत्ययः स्याट्टेरुत्वं च, टित्त्वान्ङीप्। सूची तु सीवनद्रव्येऽप्याङ्गिकाभिनयान्तरे' इति मेदिनी॥ ५३४ **शमेः**। **शम** उपशमे। 'शम्बः स्यान्मुसलाग्रस्थलोहमण्डलके पवौ। शुभान्विते त्रिषु' इति विश्वमेदिन्यौ॥ ५३५ **उल्बा**। **उल्बमिति**। 'गर्भाशयो जरायुः स्यादुल्वं च कललोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। शुच शोके, चस्य लत्वं गुणाभावश्च प्राग्वत्, 'शुल्वं ताम्रे यज्ञकर्मण्याचरे जलसंनिधौ इति मेदिनीहेमचन्द्रौ। वी गतिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु, अस्य नुमागमो ह्रस्वत्वं च। ववयोरभेदात्— विम्बम्। विम्बस्तु प्रतिविम्बे स्यान्मण्डले पुंनपुंसकम्। विम्बिकायाः फले क्लीवं कृकलासे पुनः पुमान्' इति मेदिनी॥ ५३६ **स्थः स्तः**। ष्ठा गतिनिवृत्तौ, 'स्तम्बो गुल्मे तृणादीनामप्रकाण्डद्रुमेऽपि च' इति विश्वः। 'स्तम्बोऽप्रकाण्डद्रुमगुच्छयोः' इति मेदिनी। 'स्याद्गुच्छकस्तु स्तवकः' इत्यमरः॥ ५३७ **शाशपि**। शो तनूकरणे शप आक्रोशे, शादो जम्बालशष्पयोः' इत्यमरः। 'शष्पं बालतृणं घासः' इति च। '**शादः** स्यात्कर्दमे शष्पे' इति मेदिनी। शब्दो निनादः॥ ५३८ **अब्दादयः**। एते ददनन्ता निपात्यन्ते। अव रक्षणे, वस्य वः। अब्दः संवत्सरे वारिवाहमुस्तकयोः पुमान्' इति मेदिनी॥ (ग) **कौतेः**। कु शब्दे, 'कुन्दो माध्येऽस्त्री मुकुन्दभ्रमिनिध्यन्तरेषु ना' इति च मेदिनी॥ ५३९ **वलिमलि**। वल संवरणे सचरणे च, मल मल्ल धारणे तनु विस्तारे। **वलयः** कण्टरोगे ना कङ्कणे पुंनपुंसकम्' इति मेदिनी। मलयः पर्वतान्तरे। शैलांशे देश आरामे त्रिविताय़ां तु योषिति इति च। आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः स्त्रियाम् इत्यमरः॥ ५४० **वृह्रोः**। वृञ् वरणे, हृञ् हरणे आभ्यां कयन् स्यात्, यथाक्रमं षुग्दुकावागमौ च भवतः। कयनः कित्त्वादिह गुणाभावार्थम्। ह्रियते विषयैरिति हृदयं मनः॥ ५४१ **मिपीभ्याम्**। डुमिञ् प्रक्षेपणे, पीङ् पाने, 'मेरु सुमेरुर्हेमाद्रिः' इत्यमरः। पीयते रसानिति पेरुः।—पिबतेरिति। पा पाने। हट्टचन्द्रोक्तिमाह संवत्सरवपुरित्यादि ५४२ **जत्र्वादयः**। रुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। जनी प्रादुर्भावे, नकारस्य तकारः। जत्रुः स्कन्धसन्धिः। सन्धौ तस्यै। जत्रुणी इत्यमरः। तस्य पूर्वोक्तस्य स्कन्धस्य सन्धिरित्यर्थः। असु क्षेपणे, अशू व्याप्तौ संघाते च। असु अश्रु च नयनजलम्। शीङो ह्रस्वत्वं गुणागमश्च, शिग्रुर्ना शाकमात्रेऽपि शोभाञ्जनमहीरुहे' इति मेदिनी॥ ५४३ **रुशाति**। रु शब्दे, शद्लृ शातने ण्यन्तः। 'कृष्णसाररुरुन्यङ्कुरङ्कुशम्बररौहिषाः' इत्यमरः

द्ध्रस्वत्वम् ।। ५४४ । **जनिदाच्युसृवृमदिषमिनमिभृञ्भ्य इत्वन्त्वन्न्नथक्विनन्शक्रयटढडटाटचः** । जनित्वौ मातापितरौ । दात्वो दाता । च्यौत्नो गन्ता अण्डजः क्षीणपुण्यश्च । सृणिरङ्कुशश्चन्द्रः सूर्यो वायुश्च । वृशः आर्द्रकं मूलकं च । मत्स्यः । षण्ढ । डित्वाट्टिलोपः, नमतीति नटः शैलूषः । बिभर्ति भरटः कुलालो मृतकश्च ।। ५४५ । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** । पेत्वममृतम् । भृशम् ।। ५४६ । **कुसेरुम्भोमेदेताः** । कुसुम्भम्, कुसुमम्, कुसीदम्, कुसीतो जनपदः ।। ५४७ । **सानसिवर्णसिपर्णसितण्डुलाङ्कुशचषालेल्वलपल्वलधिष्ण्यशल्याः** । सनोतेरसिप्रत्यय उपधावृद्धिः, सानसिर्हिरण्यम् । वृञो नुक् च, वर्णसिर्जलम् । पृ, पर्णसिर्जलगृहम् । 'तड आघाते' तण्डुलाः । 'अकि लक्षणे' उशच् अङ्कुशः । चषेरालः, 'चषालो यूपकटकः' । इल्वलो दैत्यभेदः । पल्वलम् । ञिधृषा, ऋकारस्य इकारः, धिष्ण्यम् । शलेर्यः, शल्यम् । 'वा पुंसि शल्यं शङ्कुर्ना ५४८ । **मूशक्यविभ्यः क्लः** । मूलम् । शक्लः प्रियंवदे । अम्क्लो रसः । बाहुलकादमेः—अम्लः ।। ५४९ ।

'रुरुर्दैत्ये मृगेऽपि च' इति मेदिनी ।। ५४४ **जनिदा** । जनी प्रादुर्भावे, डुदाञ् दाने, च्युङ् गतौ, सृ गतौ, वृञ् वरणे, मदी हर्षे, षम ष्टम अवैकल्ये, णम प्रह्वत्वे शब्दे च, डुभृञ् धारणपोषणयोः । एभ्यो नवभ्यो यथासंख्यं नव स्युः । जनेरित्वन् । जनेरिडागमेनापि जनित्वेति रूपसिद्धाविकारोच्चारणमुत्तरार्थम् ।। च्यौत्न इति त्नणो णित्त्वाद्वृद्धिः ।।—सृणिरिति । क्विनः कित्त्वान्न गुणः । नित्त्वं तु आद्युदात्तार्थम् । 'सृवृषिभ्यां कित्' इति निप्रत्यये त्वन्तोदात्तः साधितः ।।—**वृश इति** । शकः कित्त्वान्न गुणः ।।—**मत्स्य इति** । स्यप्रत्यये चर्त्वेन दस्य तः । अन्तोदात्तोऽयम् । 'ऋतन्यञ्जि' इति सूत्रे तु आद्युदात्तः साधितः ।।—**षण्ड इति** । बाहुलकात् 'धात्वादेः षः सः' इति षस्य सकारो न । प्रत्ययादेर्ढस्य तु प्रयोजनाभावान्न तसंज्ञा । शमेर्ढः' इति सूत्रे तु तालव्यादिः साधितः । 'सायं सायो भवेत्कोशः कोषः षण्ढश्च शण्ढवत्' इति द्विरूपकोशः । 'षण्ढो वर्षवरः' इत्यमरः । 'नटी नल्यौषधी स्त्री स्याच्छैलूषशोणकयोः पुमान्' इति मेदिनी ।।—**नट इति** । नमतेर्डट् भरट इति । बिभर्तेरटच् ।। ५४५ **अन्येभ्योऽपि** । इत्वन्नादयोऽनुवर्तन्ते ।।— **पेत्वमिति** । पा पाने अस्मादित्वन् भृशमिति । भृञः शक् ।। ५४६ **कुसेः** । कुस संश्लेषणे, अस्मादुम्भ उम ईद इत एते प्रत्ययाः स्युः । कुसुम्भं हेमनि महारजने न कमण्डलौ' इति मेदिनी । कुसुमं स्त्री रजोनेत्ररोगयोः फलपुष्पयोः' इति **च** । 'कुसीदं जीवने द्वया क्लीवं त्रिषु कुसीदके' इति **च** । इह सूत्रे तृतीयो ह्रस्वादिर्दीर्घादिश्च तन्त्रेणोपात्तः । वृषादिष्वग्नि इति सूत्रे ह्रस्वादिरेवेति वृत्तिकारहरदत्तादिग्रन्थोपष्टम्भेन निर्णीतम् । 'पारलौकिकवुसीदमसीदत' इति श्रीहर्षप्रयोगात्तु दीर्घादिरित्यपि ।। ५४७ **सानसि** । सनोतेरिति । षणु दाने ।।—वृञो नुक् चेति । वृञ् वरणे अस्मादसिः । दशपाद्यां तु 'सानसिधर्णसि' इति पठित्वा 'धृञो नुक् च' धर्णसिर्लोकपाल इति व्याख्यातम् । युक्तं चैतत्, 'धर्णसिं भूरिधायसम् इत्यादिमन्त्रानुगुणत्वात् ।। पर्णसिरिति । पृ पालनपूरणयोः, अस्मादसि प्रत्ययो नुक् च ।। तण्डुला इति । उलचप्रत्ययो नुमागमश्च धातोः । 'त्रेधा तण्डुलान्विभजेत्' इह चित्स्वरः । 'तण्डुलः स्याद्विडङ्गे च धान्यादिनिकरे पुमान्' इति मेदिनी । अङ्कुश इति । अयमपि चित्स्वरेणान्तोदात्तः तथा च मन्त्रः 'दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा' इति 'अङ्कुशोऽस्त्री सृणिः स्त्रियाम्' इत्यमरः ।।—**चषेराल इति** । चष भक्षणे, प्रत्ययस्वरेणाद्युदात्तः । उज्ज्वलदत्तस्त्वालजिति चितमाह । तन्न । 'चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति', 'चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम्' इत्यादौ चित्स्वरादर्शनात् । अमरोक्तिमाह—चषाल इति । इल्वल इति । इल स्वप्नप्रेरणयोः, वलच् गुणाभावः । 'इल्वलस्तारका राजभेदे ना दैत्यमत्स्ययोः' इति मेदिनी । 'इल्वलास्तच्छिरोदेशे तारका निवसन्ति याः' इत्यमरः । पा पाने, अस्माद्वलच् लुगागमः ह्रस्वत्वं च । पिबन्त्यस्मिन्निति पल्वलमल्पसरः । 'वेशन्तः पल्वलं चाल्पसरः' इत्यमरः ।। इकार इति । रपरत्वाभावो ण्यप्रत्ययश्चेति बोध्यम् । 'धिष्ण्यं स्थाने गृहे भेऽग्नौ' इत्यमरः । धिष्ण्यं स्थानाग्निसद्मसु । ऋक्षे शक्तौ च' इति मेदिनी । धिष्ण्यं स्थाने च ऋक्षे च धिष्ण्योऽग्नौ धिष्ण्यमालये इति धरणिः । शलेः । शल गतौ । शल्यं तु न स्त्रियां शङ्कौ क्लीवं क्ष्वेडेषु तोमरे । मदनद्रुश्वाविधोर्ना' इति मेदिनी ।। ५४८ **मूशक्ि** । मूङ् बन्धने, शक्लृ शक्तौ, अवि शब्दे । मूलं शिफाऽऽद्ययोः । मूलं वित्तेन्तिके इति मेदिनी । 'शक्लः प्रियंवदे' इति

माछाससिभ्यो यः । माया । छाया । सस्यम् । बाहुलकात्सुनोतेः, 'सव्यं दक्षिणवामयोः' ॥ ५५० । **जनेर्यक्** 'ये विभाषा' २३१६ । जन्यं युद्धम् । जाया भार्या ॥ ५५१ । **अघ्न्यादयश्च** । यगन्ता निपात्यन्ते । हन्ते यक् अडागम उपधालोपश्च, अघ्न्या माहेयी । अघ्न्यः प्रजापतिः । 'कनी दीप्तौ' कन्या । बवयरैवयम्, वन्ध्या । ५५२ । **स्नामदिपद्यर्तिपॄशकिभ्यो वनिप्** । स्नावा रसिकः । मद्वा शिवः । पद्वा पन्थाः । अर्वा तुरङ्गहर्योः पर्वा ग्रन्थिः प्रस्तावश्च । शक्वा हस्ती । ङीब्रौ, शक्वरी अङ्गुलिः ॥ ५५३ । **शीङ्क्रुशिरुहिजिक्षिसृधृभ्यः क्वनिप्** । शीवा अजगरः । क्रुश्वा सृगालः । रुह्वा वृक्षः । जित्वा जेता । क्षित्वा वायुः । सृत्वा प्रजापतिः । धृत्वा विष्णुः ॥ ५५४ । **ध्याप्योः संप्रसारणं च** । धीवा कर्मकरः । पीवा स्थूलः ॥ ५५५ । **अदेर्ध च** । अध्वा ५५६ । **प्र ईरशदोस्तुट् च** । प्रेत्वा प्रशत्त्वा च सागरः । प्रेत्वरी प्रशत्त्वरी च नदी ॥ ५५७ । **सर्वधातुभ्य इन्** पचिरग्निः । तुडिः । तुण्डिः वलिः वटिः । यजिः । देवयजिः । काशत इति काशिः । यतिः । मल्लिः । मल्ली । केलिः । **मसी परिणामे मसिः** । बाहुलकाद्गुणः, कोटिः । हेलिः । बोधिः । नन्दिः । कलिः ॥

विशेष्यनिघ्नेऽमरः । अमेरेति । अम रोगे चुराण्यन्तः । बाहुलकादेवोपधाह्रस्वः । 'अम्लो रसविशेषे स्यादम्ला चाङ्गेरिकौषधौ इति मेदिनी ॥ ५४९ **माछा** । मा माने, छो छेदने, षस स्वप्ने 'माया स्याच्छाम्बरीबुद्धयोर्मायि पीताम्बरेऽसुरे' इति मेदिनी । '**छाया** स्यादतपाभावे प्रतिबिम्बार्कयोषितोः । पालनोत्कोचयोः कान्तिसच्छोभापङ्क्तिषु स्त्रियाम्' इति विश्वमेदिन्यौ । 'वृक्षादीनां फलं सस्यम्' इत्यमरः ।।— **सुनुतेरिति** । षुञ् अभिषवे 'सव्यं वामे प्रतीपे च' इति मेदिनी ॥ ५५० **जनेः** । जन जनने । यकः कित्त्वमुत्तरार्थम् । **जन्यं** हट्टे परीवादे सङ्ग्रामे च नपुंसकम् । जन्या मातृवयस्यां जन्यः स्याज्जनके पुमान् । त्रिषूत्पाद्यजनितोश्च नवोढाज्ञातिभृत्ययोः । स्निग्धे' इति मेदिनी । आत्वपक्षे रूपमाह— जायेति ॥ ५५१ **अघ्न्या** । अघ्न्य इति । यकः कित्त्वात् 'गमहन' इत्युपधालोपे 'हो हन्तेः' इति कुत्वेन हस्य घः । अडागममनुवर्त्या नञ्पूर्वाद्धन्तेर्यगित्यन्ये ॥ अघ्न्येति । स्त्रियां टाप् । 'माहेयी सौरभेयी गौरुस्रा माता च शृङ्गिणी । अर्जुन्यघ्न्या रोहिणी स्यात् इत्यमरः । संपूर्वाद्धाञो यक्, आतो लोपश्च । 'संध्यां पितृप्रसूनद्यन्तरयोर्युगसन्धिषु' इति मेदिनी ॥ 'कन्या कुमारिकानार्योरोषधीराशिभेदयोः' इति विश्वमेदिन्यौ ॥ वन्ध्येति । बन्ध बन्धने । वन्ध्यस्त्वफल-वृक्षादौ स्त्रियां स्यादप्रजस्त्रियाम्' इति मेदिनी । कौतेर्यति डुक् । कुड्यमित्युज्ज्वलदत्तः । यतो नावः इत्याद्युदात्तः । ठचकप्रत्ययान्तोऽयमन्तोदात्त इत्यन्ये इति 'निवाते वातत्राणे' इति सूत्रे वृत्तिः । डित्वाट्टि-लोपे सति कित्करणं व्यर्थं स्यादिति गुणप्रतिषेधार्थत्ककाराड्डकारस्येत्त्वं नेति तत्रैव हरदत्तः । एवं स्थिते-ऽघ्न्यादयो यगन्ता इति प्रायोवादः ॥ ५५२ **स्नामदि** । ष्णा शौचे, मदी हर्षे, पद गतौ, ऋ गतौ, पॄ पालन-पूरणयोः, शक्लृ शक्तौ । '**अर्वा** तुरङ्गमे पुंसि कुत्सिते वाच्यलिङ्गकः' इति मेदिनी । 'पर्व क्लीबं महे ग्रन्थौ प्रस्तावे लक्षणान्तरे । दर्शप्रतिपदोः संधौ विषुवत्प्रभृतिष्वपि' इति च ॥ ङीब्राविति । 'वनो र च' इत्यनेन ।।—**अङ्गुलिरिति** । एतच्च 'आरोहतं दर्शतं शक्वरीर्मम' इत्यादिमन्त्रव्याख्यायां स्पष्टम् । शक्वरी छन्दसो भेदे नदीमेखलयोरपि' इति मेदिनी ॥ ५५३ **शीङ्** । शीङ् स्वप्ने, क्रुश आह्वाने, रोदने च, रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च, जि जये, क्षि निवासगत्योः सृ गतौ, धृञ् धारणे ॥ ५५४ **ध्याप्योः** । ध्यै चिन्ता-याम्, प्यै वृद्धौ, आभ्यां क्वनिप्स्यात्संप्रसारणं च धातोः । हल इति दीर्घः ॥ ५५५ **अदेः** । अद भक्षणे, अस्मात्क्वनिप् धकारश्चान्तादेशः, अध्वा मार्गः ॥ ५५६ **प्र ईर** । ईर गतौ, शद्लृ शातने, आभ्यां प्रपूर्वाभ्यां क्वनिप्स्यात्तस्य तुडागमश्च ।।—**प्रेत्वरीति** । स्त्रियाम् 'वनो र च' इति ङीब्रौ ॥ ५५७ **सर्वधातुभ्य इन्** । डुपचष् पाके, तुडि तोडने तोडनं दारणं हिंसनं च, वल संवरणे, वट वेष्टने, यज देवपूजादौ, काशृ दीप्तौ, यती प्रयत्ने । 'यतिः स्त्री पाठविच्छेदे निकारयतिनोः पुमान्' इति मेदिनी । मल मल्ल धारणे, केलृ चलने भ्वादिः, केला विलासे कण्ड्वादिः, किल श्वैत्यक्रीडनयोः तुदादिः, कुट कौटिल्ये, हिल भावकरणे बुध अवगमने, टुनदि समृद्धौ, कल शब्दसंख्यानयोः । 'गाङ्कुटादिभ्यः' इति ङित्वाद्गुणाभावमाशङ्क्याह— **बाहुलकादिति** । कोटिः स्त्री धनुषोऽग्रेऽश्रौ संख्याभेदप्रकर्षयोः इति मेदिनी । बोधिः पुंसि समाधेश्च भेदे पिप्पलपादपे इति च । नन्दिर्द्यूताङ्ग आनन्दे स्त्री नन्दिकेश्वरे पुमान्' इति च । 'कलिः स्त्री कलिकायां ना

५५८। **हृपिषिरुहिवृतिविदिछिदिकीर्तिभ्यश्च**। हरिर्विष्णावहाविन्द्रे भेके सिंहे हये रवौ। चन्द्रे कीले प्लवङ्गे च यमे वाते च कीर्तितः। पेषिर्वज्रम्। रोहिर्व्रती। वर्तिः। वेदिः। छिदिश्छेत्ता। कीर्तिः॥ ५५९। **इगुपधात्कित्**। कृषिः। ऋषिः। शुचिः। लिपिः। बाहुलकाद्वत्वे लिविः। 'तूल निष्कर्षे' तूलिः। तूली कूर्चिका॥ ५६०। **भ्रमेः संप्रसारणं च**। भृमिर्वातः। बाहुलकात् भ्रमिः॥ ५६१। **क्रमितमिशतिस्तम्भामत इच्च**। क्रिमिः। संप्रसारणानुवृत्तेः कृमिः अपि। तिमिर्मत्स्यभेदः। शितिर्भेचकशुक्लयोः। स्तिम्भिः समुद्रः ५६२। **मनेरुच्च**। मुनिः॥ ५६३। **वर्णेर्बलिश्चाहिरण्ये**। वर्णिः सौत्रः। अस्य बलिरादेशः। करोपहारयोः पुंसि बलि प्राण्यङ्गजे स्त्रियाम्। हिरण्ये तु वर्णिः सुवर्णम्॥ ४६४। **वसिवपियजिराजिव्रजिसदिहनिवाशिवादिवारिभ्य इञ्**। वाशिश्छेदनवस्तुनि। वापिः, वापी। याजिर्यष्टा। राजिः, राजी। व्राजिर्वातालिः। सादिः सारथिः। निघातिर्लोहघातिनी। वाशिरग्निः वादिर्विद्वान्। वारिर्गजबन्धकी। जले तु क्लीबम्।

शूराजिकलहे युगे इति च। इह इञित्येव सूत्रम्। सर्वधातुभ्य इति तु प्रक्षिप्तं व्यर्थं च। एवं सर्वधातुभ्यष्ट्रन् इत्यादावपि बोध्यमित्याहुः। अत एव दशपाद्यां ष्ट्रन्नित्येव पठितमिति दिक्॥ ५५८ **हृपिसि**। हृञ् हरणे, पिष्लृ संचूर्णने, रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च, वृतु वर्तने। वर्तिर्दीपोपकरणम्। विद सत्तायाम्, विद्यते पुण्यमस्यामिति वेदिः, 'वेदिः परिष्कृता भूमिः'। छिदिर् द्वैधीकरणे, कृत संशब्दने, हरतेः कीर्तयतेश्च अच इः इति प्राप्ते, इतरेषां तु इगुपधात् इति कप्रत्यये प्राप्ते वचनमिदम्। यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहांशुवाजिषु। शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु इत्यमरः। हरिश्चन्द्रार्कवाताश्वशुकभेकयमाहिषु। कपौ सिंहे हरेऽजेऽसौ शक्रे लोकान्तरे पुमान्। वाच्यवत्पिङ्गहरितोः' इति मेदिनी। वर्तिर्भेषजनिर्माणे नयनाञ्जलेखयोः। गात्रानुलेपनी दीपदशादीपेषु योषिति' इति मेदिनी। वेदिः स्यान्मण्डले पुमान्। स्त्रियामङ्गुलिमुद्रायां स्यात्परिष्कृतभूतले इति च। कीर्तिः प्रसादयशसोर्विकारे कर्दमेऽपि च इति विश्वः॥ ५५९ **इगुपधात्**। कृष विलेखने, ऋषी गतौ, शुच शोके, लिप उपदेहे, इजादेरिगुपधाद्धातोरिन्स्यात्स च कित्। केचित्तु इगुपधात्किरिति पठित्वा इणोऽपवादः किप्रत्यय इति व्याचख्युः। तन्न। प्रत्ययस्वरेण ऋष्यादीनामन्तोदात्ततापत्तेः। न चेष्टापत्तिः, 'अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिः' ऋषिर्विप्रः काव्येन शुचिर्विप्रः शुचिः कविः इत्यादौ ऋषिशुचिप्रभृतीनामाद्युदात्तत्वदर्शनात्। न चैवम् अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व इत्यादौ कृषिशब्दस्यान्तोदात्तता न सिद्धदिति वाच्यम्। 'इक्कृष्यादिभ्यः इतीक्प्रत्यये सत्यन्तोदात्तत्वसिद्धेः। ऋषिर्वेदे वसिष्ठादौ दीधितौ च पुमानयम् इति मेदिनी। 'शुचिर्ग्रीष्मागिनश्रृङ्गारेष्वाषाढे शुद्धमन्त्रिणि' इति च। ५६० **भ्रमेः**। भ्रमु अनवस्थाने, अस्मादिन्स्यात् स च कित् संप्रसारणं च। 'भृमि चिद्यथा वसवः पृषन्ति' इति मन्त्रे भृमिं भरणशीलं दरिद्रं जनमिति वेदभाष्यम्॥ ५६१ **क्रमि**। क्रमु पादविक्षेपे, तमु काङ्क्षायाम्, शतिस्तम्भौ सौत्रौ, एभ्य इन्स्यात्स च कित्। एषामत इकारादेशश्च। क्रिमिः क्षुद्रजन्तुः। 'कृमिर्ना क्रिमिवत्कीटे लाक्षायां क्रिमिले खरे' इति विश्वमेदिन्यौ। पारतं पारदं वासो वासरः क्रिमिवत्कृमिः' इति द्विरूपकोशः। तिमिरिति। अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम तथा चास्ति तिमिंगिलः। तिमिगिलगिलोऽप्यस्ति तद्गिलोलक्ष्मण' इति रामायणे सप्तमाङ्के रामवाक्यम्। केचित्तु 'तद्गिलोऽप्यस्ति राघव' इति पठित्वा राघवं प्रति लक्ष्मणवाक्यमित्याहुः। **'शितिः कृष्णे सिते भूर्जे'** इति विश्वः। शितिर्भूर्जे ना सितासितयोस्त्रिषु' इति मेदिनी॥ ५६२ **मनेः**। मन ज्ञाने अस्मादिन्स्यात्स च कित् अकारस्योकारादेशश्च स्यात्। मन्यते जानातीति मुनिः। मुनिः पुमान्वशिष्ठादौ वङ्गसेनतरौ जिने' इति मेदिनी॥ ५६३ **वर्णेः**। अस्मादिन्स्यात्स च कित्। बलिर्दैत्यप्रभेदे च करचामरदण्डयोः। उपहारे पुमान्स्त्री तु उरया श्लक्ष्णचर्मणि। गृहदारुप्रभेदे च जठरावयवेऽपि च' इति मेदिनी॥ ५६४ **वसि**। वस निवासे, डुवप् बीजसन्ताने, यज देवपूजादौ, राजृ दीप्तौ, व्रज गतौ, षद्लृ विशरणादौ, हन हिंसागत्योः, वाश्रृ शब्दे, वद व्यक्तायां वाचि ण्यन्तः, वृञ् वरणे ण्यन्तः। वासिरिति दन्त्यसकारवान्। सूत्रेऽष्टमस्तु तालव्यशकारवान्। द्वयमपि छेदनसाधने प्रयुज्यते। 'वास्यादीनामिव करणानां कर्तृव्यापार्यत्वनियमात्' इति वैशेषिकाः। वास्यर्थमित्यत्र 'स्कोः' इति सलोपः प्राप्नोतीति भाष्यम्। वापिरुदकाधारः वापी प्रसिद्धा। राजिः स्त्री पङ्क्तिरेखयोः' इति मेदिनी। इह

बाहुलकात् वारिः पथिकसंहतौ ॥ ५६५ । **नहो भश्च** । नाभिः स्यात्क्षत्रिये पुंसि । प्राण्यङ्गे तु स्त्रियाम् । पुंस्यपीति केचित् ॥ ५६६ । **कृषेर्वृद्धिश्छन्दसि** । कार्षिः ॥ ५६७ । **शः शकुनौ** । शारिः शारिका ॥ ५६८ **कृञ उदीचां कारुषु** । कारिः शिल्पी ॥ ५६९ । **जनिघसिभ्यामिण्** । जनिर्जननम् । घासिर्भक्ष्यमग्निश्च ॥ ५७० । **अज्यतिभ्यां च** । पदाजिः । पदातिः ॥ ५७२ । **अशिपणाय्योः रुडायलुकौ च** । अशे रुट् । राशिः पुञ्जः । पणायतेरायलुक्, पाणिः करः ॥ ५७३ । **वातेर्डिच्च** । विः पक्षी । स्त्रियां 'वी' इत्यपि ॥ ५७४ । **प्रे हरतेः कूपे** । प्रहिः । कूपः ॥ ५७५ । **नौ व्यो यलोपः पूर्वस्य च दीर्घः** । व्येञ इण् स्याद् यलोपश्च नेर्दीर्घः । नीविः, नीवी वस्त्रग्रन्थौ मूलधने च ॥ ५७६ । **समाने ख्यः स चोदात्तः** । समानशब्दे उपपदे ख्या इत्यस्मादिण् स्यात्स च डित् यलोपश्च, समानस्य तूदात्तः स इत्यादेशश्च । समानं ख्यायते जनैरिति सखा

वादीति ण्यन्तनिर्देशेऽपि बाहुलकादण्यन्तादपि इञ् । तथा च भूवादिसूत्रे वदन्तीति वादयः वाचका इति न्यासकारादयः 'वारिः स्मृता सरस्वत्यां वारि ह्रीवेरनीरयोः । वारी घटिभबन्धन्योः' इति विश्वः । हृञ् हरणे, अस्मादिञ् । 'हारिः पथिकसन्तानद्यूतादिभङ्गयोः स्त्रियाम्' मेदिनी ॥ ५६५ **नहः** । णह बन्धने, अस्मादिञ् स्यात् भश्चान्तादेशः ॥—स्त्रियामिति । लिङ्गानुशासने स्त्रियामित्यधिकारे 'नाभिरक्षत्रिये' इति सूचितत्वादिति भावः ॥—पुंस्यपीति । तथा च मेदिनी—'नाभिर्मुख्यनृपे चक्रमध्यक्षत्रिययोः पुमान् । द्वयोः प्राणिप्रतीके स्यात्स्त्रियां कस्तूरिकामदे' इति । भारविश्च पुंसि प्रायुङ्क्त 'समुच्छ्वसत्पङ्कजकोशकोमलै-रुपाहितश्रीण्युपनीविनाभिभिः' इति ॥ ५६६ **कृषेः** । कृष विलेखने, अस्मादिञ् वृद्धिश्च । 'इको गुणवृद्धी' इतीकः स्थाने एव वृद्धिरित्युदाहरति कार्षिरिति । भाषायां तु कृषिरित्येव ॥ ५६७ **शः** । शॄ हिंसायाम्, अस्माच्छकुनौ वाच्ये इञ्स्यात् । 'शारिर्नाक्षोपकरणे स्त्रियां शकुनिकान्तरे । युद्धार्थगजपर्याणे व्यवहारान्तरेऽपि च' इति मेदिनी । कपिलकादित्वाल्लत्वम् । शालिस्तु कलमादौ च गन्धमार्जारके पुमान् इति मेदिनी ५६८ **कृञ** । करोतेरिञ्स्यादुदीचां मते कारुषु वाच्येषु । 'कारि स्त्रियां क्रियायां स्याद्वाच्यलिङ्गस्तु शिल्पिनि इति मेदिनी ॥ ५६९ । **जनि** । जनी प्रादुर्भावे, घस्लृ अदने, आभ्यामिण् । 'जनिबध्योश्च' इति वृद्धि-प्रतिषेधः । जनिरिति स्त्रीलिङ्गम् । 'कृदिकारात्' इति पक्षे ङीष् । 'जनी सीमन्तनीवध्वोरुत्पत्तावौषधीभिदि इति मेदिनी ॥ ५७० **अज्य** । अज गतिक्षेपणयो, अत सातत्यगमने । बाहुलकादजेर्वीभावो न ॥ ५७१ **पादे च** । पादे चोपपदे, 'अज्यतिभ्यामिण्' । 'पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु' इति पदादेशः । पदाजिः पादचारी । 'पदातिपत्तिपदगपादातिकपदाजयः । पद्गश्च' इत्यमरः ॥ ५७२ **अशिपणाय्योः** । अशिश्च पणायिश्चाशिपणाय्यौ, तयोरिति विग्रहः । अशू व्याप्तौ, पण व्यवहारे स्तुतौ च आयप्रत्ययान्तः, आभ्या-मिण् स्यादनयोर्यथाक्रमं रुडायप्रत्ययलुकौ च भवतः । 'राशिर्मेषादिपुञ्जयोः इति मेदिनी ॥ ५७३ **वातः** । वा गतिगन्धनयोः अस्मादिण् स्यात् । डित्वाट्टिलोपः ॥ ५७४ प्रे **हर** । प्रपूर्वाद्धरतेः कूपे वाच्ये इण् । 'पुंस्येवान्धुः प्रहिः कूप उदपानं तु पुंसि वा' इत्यमरः ॥ ४७५ **नौ व्यो** । व्येञ् संवरणे । 'स्त्रीकटीवस्त्र, बन्धेऽपि नीवी परिपणेऽपि च' इत्यमरः । परिपणो मूलधनम् ॥ ५७६ **समाने** । ख्या प्रकथने । इण् स्यादिति यत्तुज्ज्वलदत्तेनोक्तम् इञ् स्यात्स चोदात्त इति । तन्न । संनिहितेन 'जनिघसिभ्यामिण्' इत्यनेन 'वसिवपि-यजि' इत्यादिना विहितस्येञो विच्छिन्नत्वात् । यद्यपि तेनैव 'नौ व्यः' इति पूर्वसूत्रे उक्तम् इञत्रानुवर्तत न त्विण्, उत्तरसूत्रे उदात्तवचनाज्ज्ञापकादिति । तदपि न । स चोदात्तः इति हि नायं धातोः परत्र विहितं प्रत्ययं निर्देष्टुं तच्छब्दः किंतु समानशब्दस्य स्थाने विधीयमानमादेशं निर्देष्टुं शब्दस्वरूपपरः । तथा च कथं ज्ञापकता स्यात् ? यदपि स इञ् उदात्त इति व्याख्याय समानस्य सभाव इति प्रक्रियास्मरणमात्रं कृतं तदपि न सभावविधायकस्याभावात् । यदपि स्वरमञ्जरीकारादिभिरुक्तं समानस्य च्छन्दसि इति सूत्रेण सभाव इति । तदपि न, लोके सखिशब्दस्यासाधुत्वापत्तेः । अपि च 'सखा सखायमब्रवीत्' 'सखा सख्ये अपचन्' सखायस्त्वा ववृमहे' । 'सखा सखिभ्य ईड्यः' इत्यादिमन्त्रेषु सर्वत्र सखिशब्द आद्युदात्त एवेति निर्विवादम् । एवं च इञुदात्त इत्युज्ज्वलदत्तादिव्याख्यानं वेदवार्तानभिज्ञत्वप्रयुक्तमेवेति दिक् ॥

५७७। **आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च**। इण् स्यात्स च ङित् आङो ह्रस्वश्च। 'स्त्रियः पात्र्यश्रिकोटयोः'। 'सर्पे वृत्रासुरेऽप्यहिः'॥ ५७८। **अच इः**। रविः। पविः। तरिः। कविः। अरिः। अलिः॥ ५७९। **खनि-कष्यज्यसिशसिबनिसनिध्वनिग्रन्थिचलिभ्यश्च**। खनिः। कषिर्हिंस्रः। अजिः। असिः। वसिर्वस्त्रम्। वनिरग्निः। सनिर्भक्तिर्दानं च। ध्वनिः। ग्रन्थिः। चलिः पशुः॥ ५८०। **वृतेश्छन्दसि**। वर्तिः॥ ५८१। **भुजेः किच्च**। भुजिः॥ ५८२। **कॄगॄशॄपॄकुटिभिदिछिदिभ्यश्च**। इः कित्स्यात्। किरिर्वराहः। गिरिर्गोत्रा-क्षिरोगयोः। गिरिणा काणः गिरिकाणः। शिरिः शलभो हन्ता च। पुरिर्नगरं राजा नदी च। कुटिः शाला शरीरं च। भिदिर्वज्रं। छिदिः परशुः॥ ५८३। **कुडिकम्प्योर्नलोपश्च**। 'कुडि दाहे' कुडिर्देहः। कपिः॥ ५८४। **सर्वधातुभ्यो मनिन्**। क्रियत इति कर्म। चर्म। भस्म। जन्म। शर्म स्थान बलम् इस्मन् २९८५ इति ह्रस्वः छद्म। सुत्रामा॥ ५८५। **बृंहेर्नोच्च**। नकारस्याकारः। 'ब्रह्म तत्त्वं तपो वेदो ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः'॥ ५८६। **अशिशकिभ्यां छन्दसि**। अश्मा। शक्मा॥ ५८७। **हृभृधृसृस्तृशॄभ्य इमनिच्**। हरिमा

---

५७७ **आङि**। श्रिञ् सेवायाम्, हन हिंसागत्योः। अमरोक्तिमाह— स्त्रिय इति। एवं च सुप्रातसुश्व इति सूत्रे चतुरश्रेति तालव्यपाठः सङ्गच्छते। तत्सूत्रे केषांचिद्दन्त्यपाठस्तु एतत्सूत्रापर्यालोचनामूलक एवेत्यवधेयम्॥ नन्वेवं चतुरस्रमिति दन्त्यप्रयोगस्य कथं निर्वाहः? इति चेत्, अत्राहुः असकारान्तेन दन्त्यगर्भिणास्रशब्देन विग्रहे तत्प्रयोगः साधीयान्। न च तादृशे शब्देऽपि विप्रतिपत्तव्यम्। अस्रः कोणे कचे पुंसि क्लीबमश्रुणि शोणिते' इति मेदिनीकोशादिति। 'अहिर्वृत्रासुरे सर्पे' इति मेदिनी॥ ५७८ **अच इः**। अजन्ताद्धातोरिः स्यात्। रु शब्दे, पूञ् पवने, पविर्वज्रम्। तॄ प्लवनतरणयोः। तरिर्वस्त्रादिस्थापनभाण्डम्। स्त्रियां नौस्तरणिस्तरिः' इत्यमरः। कु शब्दे। 'कविर्वाल्मीकिशुक्रयोः। सुरौ काव्यकरे पुंसि स्यात्खलीने तु योषित इति मेदिनी॥ ऋ गतौ, अरिः शत्रुः। कपिलकादित्वाद्वा कल्पिक लत्वम्। अलिर्भ्रमरः॥ ५७९ **खनि**। खनु अवदारणे। कष खषेति दण्डके हिंसार्थकः। अज गतिक्षेपणयोः, असु क्षेपणे, वस आच्छादने, वन षण संभक्तौ, वनु याचने, षणु दाने, ध्वन शब्दे ग्रन्थ बन्धने उभौ चुरादी, चल कम्पने, एभ्य इः स्यात्। खनिः स्त्रियामाकरः स्यात् इत्यमरः। ण्यन्तात् 'अच इः' इति इप्रत्यये खानिरपि। 'खनिरेव मता खनिः' इति द्विरूपकोशः। 'ग्रन्थिस्तु ग्रन्थिपर्णे ना बन्धे रुग्भेदपर्वणोः' इति मेदिनी। 'ग्रन्थिर्ना पर्वपरुषी' इत्यमरः॥— **वनिरग्निरिति**। 'वनु याचने' इत्यस्मादिप्रत्यये वनियाच्ञा इत्याहुः॥— **चलिः पशुरिति**। 'चरिभ्यश्च' इति पाठान्तरम्। चर गतौ, चरतिर्भक्षणेऽपि। चरिः पशुः॥ ५८० **वृतेः**। वृतु वर्तने अस्मादिः स्यात्। बाहुलकाल्लोकेऽपि 'साज्यं च वर्तिसंयुक्तम्' इति प्रयोगः। 'वर्तिर्भेषजनिर्माणे नयनाञ्जनलेखयोः। गात्रानु-लेपनीदीपदशादीपेषु योषिति' इति मेदिनी॥ ५८१ **भुजेः**। भुज पालनाभ्यवहारयोः अस्मादिः स्यात्स च कित्। भुजिरग्निः। ५८२ **कॄगॄशॄ**। कॄ विक्षेपे, गॄ निगरणे, शॄ हिंसायाम्, पॄ पालनपूरणयोः, कुट कौटिल्ये, भिदिर् विदारणे, छिदिर् द्वैधीकरणे। वराहः सूकरो घृष्टिः कोलः पोत्री किरिः किटिः' इत्यमरः। इगुपधज्ञाप्रीकिरः इति कप्रत्यये किर इत्यकारान्तोऽपि। 'त्वचि त्वचः किरोऽपि स्यात् किरौ प्रोक्तः पथः पथि' इति द्विरूपकोशः। गिरिर्ना नेत्ररुग्भिदि। अद्रौ गिरिजके योषिद्गीर्णौ पूज्ये पुनस्त्रिषु' इति मेदिनी॥ **कुटिरिति**। ङीषि तु कुटी। 'कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः' कुटीरः। 'कुटिः कोटे पुमानस्त्री घटे त्रीपुंसयोर्गृहे। कुटी स्यात्कुम्भदास्यां च सुरायां चित्रगुच्छके' इति मेदिनी॥ ५८३ **कडि**। कुडि दाहे, कपि चलने, आभ्यामिः कित्स्याद्धातोर्नलोपश्च। कपिर्ना हिंसके शाखामृगे च मधुसूदने इति च॥ ५८४ **सर्वधातुभ्यः**। डुकृञ् करणे, चर गतौ, चरतिर्भक्षणेऽपि, जन जनने, भस भर्त्सनदीप्त्योः। शॄ हिंसायाम्, शर्म सुखं। ष्ठा गतिनिवृत्तौ, छद अपवारणे चुरादिः त्रैङ् पालने। सुष्ठु त्रायते इति सुत्रामा इन्द्रः। 'कर्मव्याप्ये क्रियायां च पुंनपुंसकयोर्मतम्' इति रुद्रः। 'चर्म वृत्तौ च फलके' इति मेदिनी॥ ५८५ **बृंहेः**। बृहि वृद्धौ, अस्मान्मनिन्नुमो नकारस्याकारे ऋकारस्य यणादेशः। 'ब्रह्म तत्त्वं तपो वेदे न द्वयोः पुंसि वेधसि। ऋत्विग्योगभिदोर्विप्रे' इति मेदिनी॥ ५८६ **अशि**। अशू व्याप्तौ संघाते च, शक्लृ शक्तौ, शक्मा इन्द्रः। छन्दसीत्यस्य शकिना संबन्धो न त्वशिना। अत एव 'अश्मानमारोपयतः स्मरारेः'। इति प्रयोगः॥ ५८७

कालः। भरीमा कुटुम्बम्। धरिमा रूपम्। सरिमा वायुः। स्तरिमा तल्पम् शरिमा प्रसवः॥ ५८८। **जनिमृङ्भ्यामिमनिन्**। जनिमा जन्म। मरिमा मृत्युः॥ ५८९। **वेञः सर्वत्र**। छन्दसि भाषायां चेत्यर्थः। वेमा तन्तुवायदण्डः, अर्धर्चादिः। 'सामनीवेमनी' इति वृत्तिः॥ ५९०। **नामन् सीमन् व्योमन् रोमन् लोमन् पाप्मन् ध्यामन्**। सप्त अमी निपात्यन्ते। म्नायतेऽनेनेति नाम। सिनोतेर्दीर्घः सीमा, सीमानौ, सीमानः। पक्षे डाप् सीमे, सीमाः। व्येञोऽन्त्यस्योत्वं गुणः, व्योम। रौतेः रोम। लोम। पाप्मा पापम्। ध्याम परिमाणं तेजश्च॥ ५९१। **मिथुने मनिः**। उपसर्गक्रियासंबन्धो मिथुनम्। स्वरार्थमिदम्। सुशर्मा। ५९२ **साऽतिभ्यां मनिन्मनिणौ**। स्यतीति साम, सामनी आत्मा॥ ५९३। **हनिमशिभ्यां सिकन्**। 'हंसिका हंसयोषिति'। मक्षिका॥ ५९४। **कोररन्**। कवरः॥ ५९५। **गिर उडच्**। गरुडः॥ ५९६। **इन्देः कमिन्नोलपश्च**। इदम्॥ ५९७। **कायतेर्डिमिः**। किम्॥ ५९८। **सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्**। वस्त्रम्। अस्त्रम्। शस्त्रम्। इस्मन् २९८५ इति ह्रस्वत्वम् छादनाच्छत्रम्॥ ५९९। **भ्रस्जिगमिनमिहनिविश्यशां वृद्धिश्च**। भ्राष्ट्रः।

हृभृ। 'हृञ् हरणे, डुभृञ् धारणपोषणयोः, धृ धारणे, सृ गतौ, स्तृञ् आच्छादने, शॄ हिंसायाम्॥—**शरिमेति**। एतच्चोज्ज्वलदत्तगीत्योक्तम्। दशपाद्यां तु शॄणातिर्न पठ्यते तत्स्थाने सृधातुं प्रक्षिप्य च दीर्घादि नितं च कृत्वा 'स्तृसृभ्यामीमन्' इति पठ्यते. छन्दोग्रहणं चानुवर्तितम्। युक्तं चैतत्। 'पिपृतां नो भरीमभिः 'वातस्य सर्गे अभवत्सरीमणि'। 'स्तीर्णं वर्हिः सुष्टरीमा जुषाणा'। 'यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिः'। इत्यादिमन्त्राणां तद्ध्रास्यस्य चानुगुणत्वात्, उक्तप्रयोगाणां भाषायामदर्शनेन च्छन्दोऽनुवृत्तेर्न्याय्यत्वाच्च। अत एव 'वेञः सर्वत्र' इति सूत्रे सर्वत्रग्रहणं करिष्यति॥ ५८८ **जनि**। जन जनने, मृङ् प्राणत्यागे। ५८९ **वेञः**। वेञ् तन्तुसन्ताने॥ ५९० **निपात्यन्त इति**। मनिनन्ता इति शेषः। म्ना अभ्यासे मलापो नाभावो वा। नाम संज्ञा। षिञ् बन्धने। सीमसीमे स्त्रियामुभे इत्यमरः। व्येञ् सवरणे, रु शब्दे, रोम गात्रकेशः। लूञ् छेदने। लोम स एव। पा पाने। पुगागमः। ध्यै चिन्तायाम्। बाहुलकादन्येभ्योऽपि यक्ष पूजायाम्। क्षयः शोषश्च यक्ष्मा च' इत्यमरः। षू प्रेरणे, सोमा चन्द्रः। डुधाञ् धारणपोषणयोः। 'धाम देहे गृहे रश्मौ स्थाने जन्मप्रभावयोः' इति मेदिनी॥ ५९१ **मिथुने**। शॄ हिंसायाम्, सुष्ठु शृणाति इति सुशर्मा राजविशेषः। कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तं पदम्। मनिनि तु मध्योदात्तं स्यात्॥ ५९२ **सानि**। षोऽन्तकर्मणि, अत सातत्यगमने, आभ्यां यथासंख्यमेतौ स्तः। स्यति दुःखयति दुरध्येयत्वात्साम। साम क्लीबमुपायस्य भेदे वेदान्तरेऽपि च इति मेदिनी। आत्मा पुंसि स्वभावे स्यात्प्रयत्नमनसोरपि। धृतावपि मनीषायां शरीरब्रह्मणोरपि' इति च॥ ५९३ **हनि**। हन हिंसागत्यः, मश शब्दे रोषकृते च। 'मक्षिका भम्भराली स्यात्' इति हारावली॥ ५९४ **कोररन्**। कु शब्दे। कवरः पाठकः। ववयरैवयात्कवरी केशविन्यासः। जानपद इति ङीष्। अन्यत्र कबरा॥ ५९६ **गिरः**। गॄ निगरणे। कुचित्तु सूत्रमिदं परित्यज्य गरुता डयत इति विगृह्य डीङो डप्रत्यये पृषोदरादित्वाद्गरुतस्तकारलोपे गरुडशब्दं क्लेशेन व्युत्पादयन्ति॥ ५९६ **इन्देः**। इदि परमैश्वर्ये। उज्ज्वलदत्तस्तु कमिन्निति नितं पपाठ। तच्चिन्त्यम्, 'इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानम् 'इदं ते सोम्यं मधु' इत्यादौ नित्स्वराभावात्। दशपाद्यां तु 'इणो दमक्' इति सूत्रितम्॥ **इदमिति**। सर्वनामशब्दोऽयं संनिहितपरामर्शी॥ ५९७ **कायतेः**। कै गै शब्दे। प्रयोजनभावादेव मकारस्येत्संज्ञाविरहे सिद्धे डिमेरिकार उच्चारणार्थः। डकारस्तु टिलोपार्थः। दशपाद्यां तु मान्तमेव डिमिति सूत्रितम्। **किमिति** सर्वनाम॥ ५९८ **सर्वधातुभ्यः**। दशपाद्यां तु अर्थात्सर्वधातुभ्यो भविष्यतीत्याशयेन 'ष्ट्रन्' इत्येव सूत्रितम्। अत एवाधिकं प्रक्षिप्तमित्याहुः। वस निवासे, असु क्षेपणे शसु हिंसायाम्, छद अपवारणे ण्यन्तः। 'अस्त्रं प्रहरणे चापे करवाले नपुंसकम्' इति मेदिनी। पत्लृ गतौ। 'पुत्रं तु वाहने पर्णे स्यात् पक्षे शरपक्षिणोः' इति मेदिनी। पा पाने। पात्रम्। षित्वात् ङीप्, पात्र्यमत्रे त्रिषु क्लीबं स्रवादौ राजमन्त्रिणि। तरिद्वयान्तरे योग्ये इति मेदिनी। दंश दशने, व्रश्च आदिना षत्वे ष्टुत्वं, षितां ङीषोऽनित्यत्वाट्टाप्। दंष्ट्रा॥ ५९९ **भ्रस्जि**। भ्रस्ज पाके, गम्लृ गतौ, णम प्रह्वत्वे शब्दे च, हन हिंसागत्योः, विश प्रवेशने, अशू व्याप्तौ, एभ्यः

गात्रं शकटम्। नात्रं स्तोत्रम्। हान्त्रं मरणम्। वैष्ट्रं विष्टपम्। आष्ट्रमाकाशम्॥ ६०० । **दिवेर्द्युश्च।** द्यौत्रं ज्योतिः॥ ६०१। **उषिखनिभ्यां कित्।** उष्ट्रः। खात्रं खनित्रं जलाधारश्च॥ ६०२। **सिविमुच्योष्टेरू च।** सूत्रम् मूत्रम्॥ ६०३। **अमिचिमिदिशसिभ्यः क्त्रः।** आत्रम्। चित्रम्। मित्रम्। शस्त्रम्॥ ६०४। पुवो ह्रस्वश्च। पुत्रः॥ ६०५। **स्त्यायड्ट्।** स्त्री॥ ६०६। **गुधृवीपचिवचियमिसदिक्षदिभ्यस्त्रः।** 'गोत्रं स्यान्नामवंशयोः'। गोत्रा पृथिवि। धर्त्रं गृहम्। वेत्रम्। पक्त्रं। वक्त्रम्। यन्त्रम्। सत्रम्। क्षत्रम्॥ ६०७। हुयामाश्रुभसिभ्यस्त्रन्। होत्रम्। यात्रा। मात्रा। श्रोत्रम्। भस्त्रा॥ ६०८। **गमेरा च।** गात्रम्। ६०९। **दादिभ्यश्छन्दसि।** दात्रम्। पात्रम्॥ ६१०। **भूवादिगृभ्योणित्रन्।** भावित्रम्। वादित्रम्। गारित्रमदनम् ६११। **चरेर्वृत्ते।** चारित्रम्॥ ६१२। **अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ।** अशित्रम्। वहित्रम्। धरित्री मही। त्रैङ् एवमादिभ्य उत्रः, तोत्र प्रहरणम्। वृञ्, वरुत्रं प्रावरणम्॥ ६१३। **अमेर्द्विषति चित्।** अमित्रः शत्रु॥

ष्ट्रन् स्यादेशां वृद्धिश्च॥ आष्ट्र इति। संयोगादिलोपः। व्रश्च इति षत्वे ष्टुत्वम्। क्लीबेऽम्बरीष आष्ट्रो ना इत्यमरः। वैष्ट्रं विष्टपम्॥ ६०० दिवेः। दिवु क्रीडादौ, अस्मात् ष्ट्रन् स्यात् द्युरादेशो वृद्धिश्च धातोः। ६०१ उषि। उष दाहे, खनु अवधारणे, आभ्यां ष्ट्रन् कित्स्यात्। उष्ट्रः क्रमेलकः। उष्ट्रे क्रमेलकमयमहाङ्गाः इत्यमरः॥ ६०२ सिवि। षिवु तन्तुसन्ताने, मुच्लृ मोक्षणे, आभ्यां ष्ट्रन्कित्स्यात् टेरूकारादेशश्च। सूत्र-सूत्रिभ्यां चुरादिण्यन्ताभ्यामेरचा रूपसिद्धेरायुदाहृतार्थमिदं सूत्रम्। न च घञा तत्सिद्धिः, 'एरच्' इत्यस्य घञो बाधकत्वात्। सूत्रं तु सूचनाग्रन्थे सूत्रतन्तुव्यवस्थयोः' इति विश्वः॥ ६०३ अमि। अम गतिशब्द-संभक्तिषु, चिञ् चयने, ञिमिदा स्नेहने, शसु हिंसायाम्॥ आन्त्रमिति। अनुनासिकस्य इति दीर्घः। श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम् इति कालिदासः। 'आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रम्' इत्यमरः। मित्रं सुहृदि न द्वयोः। सूर्ये पुंसि इति मेदिनी। 'शस्त्रं लोहास्त्रयोः क्लीबं क्षुरिकायां तु योषिति' इति च। प्रत्ययस्वरेणतेऽन्तोदात्ताः 'शुन आन्त्राणि पेचे' 'चित्रं देवानाम्' मित्रं नयम्' शस्त्रस्य शस्त्रमसि इत्यादौ॥ ६०४ पुवः। पूञ् पवने, अस्मात् क्त्रः स्यात् धातोर्ह्रस्वत्वं च। पुनाति स्ववंश्यानिति पुत्रः। पुंनाम्नो नरकस्तस्मात् त्रायते इत्यर्थे 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्यये पुत्र इति व्युत्पत्त्यन्तरम्॥ ६०५ स्त्यायतेः। स्त्यै ष्ट्यै शब्दसङ्घातयोः॥ स्त्रीति। डित्त्वाट्टिलोपः। 'लोपो व्योः' इति यलोपः। टित्वान्ङीप्। स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः इत्यमरः॥ ६०६ गुध। गुङ् अव्यक्ते शब्दे, धृञ् धारणे, वी गतिप्रजनादौ। डुपचष् पाके, वच परि-भाषणे, यम उपरमे, षद्लृ विशरणगत्यादौ, क्षदिः सौत्रः। गोत्रा भूगव्ययोर्गोत्रः शैले गोत्रं कुलाख्ययोः। संभावनीयबोधे च काननक्षेत्रवर्त्मसु इति मेदिनी। सत्रमाच्छादने यज्ञ सदादाने धनेऽपि च इत्यमरः। सत्र यज्ञसदादानच्छादनारण्यकैतवे इति मेदिनी। क्षत्रं ब्राह्मणानन्तरजातिः॥ ६०७ हुयामा। हु दानादनयोः, या प्रापणे, मा माने, श्रु श्रवने, भस भर्त्सनदीप्त्योः। होत्रमाहुतिः। होत्राशब्द ऋत्विक्ष्वपि स्त्रीलिङ्ग इति होत्राभ्यश्छः इति सूत्रे हरदत्तादयः। यात्रा तु यापनेऽपि स्यादगमनोत्सवयोः स्त्रियाम् इति मेदिनी। 'मात्रा कर्णविभूषायां वित्ते माने परिच्छदे। अक्षरावयवे स्वल्पे क्लीबं कार्त्स्न्येऽवधारणे इति च। कर्णशब्दग्रहौ श्रौत्रं श्रुतिः स्त्री श्रवणं श्रवः इत्यमरः। 'भस्त्रा चर्मप्रसेविका' इति च॥ ६०८ गमेः। गम्लृ गतौ, अस्मात् त्रन्स्याद्धातोराकारान्तादेशश्च। गात्रमङ्गे कलेवरे। स्तम्बेरमाग्रजङ्घादिविभागेऽपि मसीरितम्' इति विश्वः ६०९ दादिभ्यः। दाप् लवने एवमादिभ्यस्त्रिन्। दात्रं धान्यादिच्छेदनसाधनम्। पा पाने, 'योग्यभाजनयोः। पात्रम् इत्यमरः। क्षि निवासगत्योः क्षेत्रमित्यादि योज्यम्॥ ६१० भूवादि। भू सत्तायाम्। भावित्रं त्रैलोक्यम्। वद व्यक्तायां वाचि ण्यन्तः। वादित्रं तूर्यादि। गॄ निगारणे॥ ६११ चरेः। चर गतौ, अस्मा-ण्णित्रन्स्यात् वृत्ते वाच्ये। 'वृत्तं पद्ये चारित्रे इत्यमरः। ननु इत्रन्प्रत्यये चरित्रमित्युक्तं ततश्च प्रज्ञादण चारित्रमिति सिद्धौ किमनेनेति चेत्। मैवम्। स्वरे विशेषात्॥ ६१२ अशि। अशू व्याप्तौ एवमादिभ्य इत्रः त्रैङ् पालने एवमादिभ्य उत्रश्च स्यात्॥ वहित्रमिति। वह प्रापणे॥ धरित्रीति। धृञ् धारणे गौरादित्वात् ङीष्॥ ६१३ अमेः। अम गतौ, अस्मादित्रः स्यात्स चित्। उत्रस्तु नानुवर्त्त, अस्वरितत्वात्। मित्रं नेति

६१४। **आः समिण्निकषिभ्याम्**। संपूर्वादिणो निपूर्वात्कषेश्च आ स्यात्। स्वरादित्वादव्ययत्वम्। समया निकषा। ६१५। **चितेः कणः कश्च**। बाहुलकादगुणः, चिक्कणं मसृणं स्निग्धम्॥ ६१६। **पातेर्डुम्सुन्**। पुमान्॥ ६१८। **रुचिभुजिभ्यां किष्यन्**। रुचिष्यमिष्टम्। भुजिष्यो दासः। ६१९। **वसेस्तिः**। वस्तिर्नाभेरधो द्वयोः। 'वस्तयः स्युर्दशासूत्रे'। बाहुलकात् शासः शास्तिः राजदण्डः। विन्ध्यास्यमगमरयतीत्यगस्तिः। शकन्ध्वादिः॥ ६२०। **सावसेः**। स्वस्ति। स्वरादिपाठादव्ययत्वम्॥ ६२१। **वौ तसेः**। वितस्तिः॥ ६२२ **पदिप्रथिभ्यां नित्**। पत्तिः, प्रथितिः, (वा) **तितुत्रेष्वग्रहादीनाम् इतीट्**॥ ६२३। **दृणातेर्ह्रस्वश्च**। दृतिः॥ ६२४। **कॄतॄकृपिभ्यः कीटन्**। किरीटं शिरोवेष्टनम्। तिरीट सुवर्णम्। कृपीटं कुक्षिवारिणोः॥ ६२५। **रुचिवचिकुचिकुटिभ्यः कितच्**। रुचि तमिष्टम्। उचितम्। कुचितं परिमितम्। कुटितं कुटिलम्॥ ६२६। **कुटिकुषिभ्यां क्मलन्**। कुड्मलम्। कुष्मलम्॥ ६२७। **कुषेर्लश्च**। कुल्मलं पापम्। ६२८। **सर्वधातुभ्योऽसुन्**

विग्रहे त्वमित्रमिति नपुंसकम्॥ ६१४ **आः समिण्**। इण् गतौ। अस्मादाप्रत्यये गुणे सत्ययादेशः॥ कषेरिति कषखषेति दण्डकः। समयानिकषाशब्दौ समीपवाचकौ। बाहुलकात् दुषेः। दोषा। दिवेराप्रत्यये बाहुलकादेवास्य गुणाभावे दिवा। स्वदेराप्रत्यये बाहुलकादेव धातोर्धोऽन्तादेशश्च। स्वधेत्यादि॥ ६१५ **चितेः**। चिती संज्ञाने, अस्मात्कण प्रत्ययः स्यात्कश्चान्तादेशः। अमरोक्तमाह— चिक्कणमिति॥ ६१६ **सूचेः**। सूच पैशुन्ये चुरादिरसात्स्मन् णिलोपः। कुत्वषत्वे। सूक्ष्मं स्यात्कण्टकेऽध्यात्मे पुंस्यणौ त्रिषु चाल्पके इति मेदिनी॥ ६१७ **पातेः**। पा रक्षणे, अस्मात डुम्सुन्स्यात्। डित्वाट्टियोपः, उकार उच्चारणार्थ इत्युज्ज्वलदत्तः। वस्तुनस्तूगित्कार्यार्थः। सुपुंसीति 'उगितश्च' इति ङीष्। नकारः स्वरार्थः। पुंसोऽसुङ् इति सूत्रे न्यासरक्षिताभ्यां पुनातेर्मक्सुन ह्रस्वश्चेति पठितम्। पूञो डुम्सुन्नित्यन्ये। भाष्ये तु सूतेः सप्रत्यये पुमानित्युक्तम्। उपेयप्रतिपत्त्यर्था उपाया अव्यवस्थिताः इति तत्त्वम्॥ ६१८ **रुचि**। रुच दिप्तावभिप्रीतौ च भुज पालनादौ। भुजिष्यस्तु स्वतन्त्रे च हस्तसूत्रकदासयोः। स्त्रियां दासीगणिकयोः इति मेदिनी॥ ६१९ **वसेः**। वस निवासे, वस आच्छादने। वस्तिर्द्वयोर्निरूहे नाभ्यधोभूमिदशासु च' इति मेदिनी॥ शास इति शासु अनुशिष्टौ॥ **अस्यतीति**। असु क्षेपणे। अगस्तिः कुम्भयोनौ च वङ्गसेनतरौ पुमान् इति मेदिनी॥ ६२० **सावसेः**। अस् भुवि, अस्मात्सावुपपदे ति स्यात्। बहुलवचनान्न भूभावः॥ ६२१ **वौ**। तसु उपक्षये, अस्माद्विपूर्वात्तिः स्यात्। अङ्गुष्ठे सकनिष्ठे स्याद्वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः इत्यमरः। स्त्रीपुंसयोर्वितस्तिः स्यात् इत्यमरमाला॥ ६२२ **पदि**। पद गतौ, प्रथ प्रख्याने, आभ्यां तिः स्यात्स च निद्।—पत्तिरिति। पदादिः। प्रथितिरिति। प्रख्यातिः॥—**तितुत्रेष्विति**॥ ग्रहादित्वादिडागमनिषेधो नेति भावः॥ ६२३ **दृणातेः**। दॄ विदारणे, अस्मात्तिः स्याद्धातोर्ह्रस्वत्वं च। 'दृतिश्चर्मपुटे मत्स्ये ना' इति मेदिनी॥ ६२४ **कॄतॄ**। कॄ विक्षेपे, तॄ प्लवनतरणयोः, कृपू सामर्थ्ये। किरीटं मुकुटे न स्त्री' इति हेमचन्द्रः। 'गोमी कृपिटमुदरे नीरे' इति विश्वः। दशपाद्यां तु कॄतॄकृपिकपिभ्यः इति पठित्वा कपीट इति चतुर्थमुदाहृतम्। 'कृपो रो लः' इत्यत्र न्यासे तु कॄकृपिभ्यामिति पठ्यते। अतस्तरतिरत्र प्रक्षिप्त इति कश्चित्। 'तरतेश्चेति पृथक्पठित्वा तिरीटः कुलवृक्ष' इति कश्चिद्व्याख्यत्॥ ६२५ **रुचिवचि**। रुच दीप्तावभिप्रीतौ च, वच परिभाषणे, कुच शब्दे तारे। अथवा कुञ्च कौटिल्याल्पीभावयोः इकः कित्वात्सूत्रे नलोपेन निर्देशः। कुट कौटिल्ये॥—**उचितमिति**। वचिस्वपि' इत्यादिना संप्रसारणम्॥ ६२६ **कुटिकुषि**। 'कुड्मलो मुकुले पुंसि न द्वयोर्नरकान्तरे' इति मेदिनी॥ ६२७ कुष निष्कर्षे। कुष्मलं छर्दनम्। विकसितमित्यन्ये॥ ६२८ **सर्वधातुभ्योऽसुन्**। दशपाद्यां तु असुन् इत्येव सूत्रम्। चिती संज्ञाने, चित सञ्चेतने, चुरादिः, सृ गतौ। गौरादित्वान्ङीष् 'सरसी तु महासरः' इति शब्दार्णवः। 'महान्ति सरांसि सरस्यः' इति भाष्यम्। पय गतौ, पीङ् पाने। पयः स्यात् क्षीरनीरयोः इति मेदिनी। षद्लृ विशरणादौ। सदः सभा। वर्च दीप्तौ। 'वर्चो नपुंसकं रूपे विष्ठायामपि तेजसि। पुंसि चन्द्रस्य तनये इति मेदिनी। रुदिर् अश्रुविमोचने। रोदश्च रोदसी चापि दिवि भूमौ पृथक् पृथक्। सहप्रयोगेऽप्यनयो रोदस्यावपि रोदसी' इति विश्वः। वी गत्यादिषु। 'वयः पक्षिणि

चेतः । सरः । पय । मदः ॥ ६२९ । **रपेरत एच्च** । रेपोऽवद्यम् ॥ ६३० । **अशेर्देवने युट् च** । देवने स्तुतौ । यशः ॥ ६३१ । **उब्जेर्बले बलोपश्च** । ओजः ॥ ६३२ । **श्वेः संप्रसारणं च** । शवः शवसी । बल-पर्यायोऽयम् ॥ ६३३ । **श्रयतेः स्वाङ्गे शिर किच्च** । श्रयतेः शिर आदेशोऽसुन् किच्च । शिरः शिरसी ॥ ६३४ । **अर्तेरुच्च** । उरः । ६३५ । **व्याधौ शुट् च** । अर्शो गुदव्याधिः । ६३६ । **उदके नुट् च** । अर्तेमुरन् स्यात्तस्य च नुट् । अर्णः अर्णसी ॥ ६३७ । **इण आगसि** । एनः ॥ ६३८ । **रिचेर्धने घिच्च** । चात्प्रत्ययस्य नुट् । घित्त्वात्कुत्वम्, रेक्णः सुवर्णम् ॥ ६३९ । **चायतेरन्ने ह्रस्वश्च** । चनो भक्तम् ॥ ६४० । **वृङ्शीङ्भ्यां**

बाल्यादौ यौवने च नपुंसकम्' इति मेदिनी । अन प्राणने । अनो भक्तम् । 'अनोऽश्मायः सरसां जाति-संज्ञयोः' इति टचि तु अनसम् । पाकस्थानं महानसम्' इत्यमरः । तमु ग्लानौ । तमः क्लीबं गुणे शोके सैंहिकेयान्धकारयोः' इति रभसः । 'तमो ध्वान्ते गुणे शोके क्लीबं वा ना विधुंतुदे' इति मेदिनी । षह मर्षणे, सहो बले ज्योतिषि च पुंसि हेमन्तमार्गयोः' इति मेदिनी । तप संतापे । 'तपो लोकान्तरेऽपि च । चान्द्रायणादौ धर्मे च पुमान् शिशिरमाघयोः' इति च । मह पूजायाम् । मह उत्सवतेजसोः' इति मेदिनी ॥ नभ हिंसायां भौवादिकः क्रैयादिकश्च । 'नभोऽन्तरिक्षं गगनम्' इत्यमरः । 'नभं तु नभसा सार्धं तपं तु तपसा सह । सह च सहसा सार्धं महं च महसा सह । तमेन च तमः प्रोक्तं रजेनापि रजः समम्' इति द्विरूपकोशः नन्वसुन्प्रत्यये नभः सहस्तम इत्यादिसान्तशब्दाः सिध्यन्ति, पचाद्यचि तु नभं सहं तमं इत्याद्यजन्ता अपि सिध्यन्ति, परन्तु रज इति अकारान्तसकारान्तौ नलोपवच्छब्दौ न सिध्यत इति 'रजेनापि रजः समम्' इति कोशश्चिन्त्य एवेति चेत्, अत्राहुः—'रञ्ज रागे' इत्यस्मादसुनि 'भूरञ्जिभ्यां कित्' इति वक्ष्यमाणेनासुनः कित्त्वान्नलोपे रज इति सिध्यति । 'घञर्थे कविधानम्' इति कप्रत्यये तु रज इत्यदन्तोऽपि सिध्यतीति ॥ ६२९ **रपेः** । रप व्यक्तायां वाचि, अस्मादसुन् स्यादत एकारश्च ॥—**रेपोऽवद्यमिति** । अरेपसा तन्वा इति मन्त्रे निरवद्ययेति भाष्ये उक्तं, नञ्पूर्वकरेपः शब्दस्यानवद्यवाचकत्वात् ॥ ६३० **अशेः** । अशू व्याप्तौ संघाते च, अस्मादसुन्स्याद्धातोर्युडागमश्च । यशः कीर्तिः ॥ ६३१ **उब्जेः** । उब्ज आर्जवे, अस्मादसुन् स्याद्बले वाच्ये वकारस्य लोपश्च । ओजो दीप्ताववष्टम्भे प्रकाशबलयोरपि' इति मेदिनी ॥ ६३२ **श्वेः** । टुओश्वि गतिवृद्ध्योः अस्मादसुन्स्यात्संप्रसारणं च ॥ ६३३ **श्रयतेः** । श्रिञ् सेवायाम्, अस्मात्स्वाङ्गे वाच्येऽसुन्स्यात्स च किद्धातोः शिरादेशश्च । उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम्' इत्यमरः । घञर्थे कप्रत्यये तु शिर इत्यदन्तोऽपि । शिरोवाची शिरोऽदन्तो रजोवाची रजस्तथा' इति कोशान्तरम् । 'पिण्डं दद्याद्गयाशिरे' इति वायुपुराणे । 'कुण्डचोद्धृष्टपाण्डानां कुमाराणां तरस्विनाम् । निचकर्त शिरान्द्रौणिर्नालेभ्य इव पङ्कजान्' इति महाभारतम् ६३४ **अर्तेः** । ऋ गतौ, अस्मादसुन् कित्स्याद्धातोरुत्वं च । रपरत्वम् । उरो वत्स च वक्षश्च' इत्यमरः ॥ ६३५ **व्याधौ** । अर्तेरेव व्याधौ वाच्येऽसुन् तस्य सुडागमश्च स्यात् ॥ ६३६ **अर्ण इति** । पानीयमित्यर्थः ॥ ६३७ **इणः** । इण् गतौ, अस्मात्पापे वाच्येऽसुन् स्यात्तस्य नुडागमश्च । एनः पापम् ॥ ६३८ **रिचेः** । रिचिर् विरेचने रिच वियोजनसंपर्चनयोरित्यस्माद्धा धने वाच्येऽसुन् । रेक्ण इति । 'चजोः इति कुत्वे 'अट्कुप्वाङ्' इति णत्वम् इह दशपादीवृत्तौ नुटं नानुवर्त्य रेकः रेकसी इत्युदाहृतम् । तन्न उत्तरसूत्रे नुडनुवृत्तिर्निर्विवादत्वात् मण्डूकप्लुतौ मानाभावात्, लक्ष्यविसंवादाच्च । उज्ज्वलदत्तेन तु 'विचेर्धने नित्किच्च' इति पठित्वा नुट चानुवर्त्य कित्त्वाद्गुणाभावे नुटश्चुत्वेन ञकारे रिश्वमिति साधितं तल्लोकवेदयोरप्रसिद्धत्वादुपेक्ष्यम् । 'नित्य रेक्णो अमर्त्य परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णः रेक्ण स्वत्यभि या वाममे इति शब्दस्य प्रसिद्धत्वात् । वैदिकनिघण्टौ च सुवर्णपर्यायेषु तथा पाठात् । वेदभाष्ये तु प्रकृतसूत्रेणैव तस्य साधितत्वाच्चापि रेक्ण इति प्रयोग एव साधीयानिति दिक् ॥ ६३९ **चायतेः** । चायृ पूजानिशामनयोः । अस्मादन्ने वाच्येऽसुन्स्यात्तस्य नुट् च धातो-र्ह्रस्वत्वं च । यलोपः । 'चनो दधिष्व पचता' 'सुते दधिश्च नश्चनः' इत्यादिमन्त्रेषु प्रसिद्धोऽयं चनशब्दः । एतेन चणोऽन्नमित्युदाहृत्य बाहुलकाण्णत्वमिति वदन्तो दशपादीवृत्तिकारास्तदनुसारिणः प्रसादकारादयश्च परास्ताः । ६४० **वृङ्** । वृङ् संभक्तौ, शीङ् स्वप्ने, आभ्यां यथाक्रमं रूपे स्वाङ्गे च वाच्येऽसुन्स्यात्तस्य पुडागमश्च । वर्पो रूपमिति । 'घ्नन् छिश्नदेवाँ अभिवर्पसाऽभूत्' इत्यादिमन्त्रेषु प्रसिद्धमिदम् । 'शेपः

रूपस्वाङ्गयोः पुट् च। वर्पो रूपम्। शेपो गुह्यम्॥ ६४१। **स्रुरीभ्यां तुट् च**। स्रोतः। रेतः॥ ६४२। **पातेर्बल जुट् च**। पाजः, पाजसी॥ ६४३। **उदके थट् च**। पाथः॥ ६४४। **अन्ने च**। पाथो भक्तम्। ६४५। **अदेर्नुम् धौ च**। अदेर्भक्ते वाच्येऽसुन् नुमागमो धादेशश्च। अन्धोऽन्नम्॥ ६४६। **स्कन्देश्च स्वाङ्गे**। स्कन्दः, स्कन्दसी॥ ६४७। **आपः कर्माख्यायाम्**। कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा। अप्नः अपः। बाहुलकात् आपः आपसी॥ ६४८। **रूपे जुट् च**। अब्जो रूपम्॥ ६४९। **उदके नुमभौ च**। अम्भः॥ ६५०। **नहेर्दिवि भश्च**। नभः॥ ६५१। **इण आग अपराधे च**। आगः पापापराधयोः॥ ६५२। **अमेर्हुक्च**। अहः॥ ६५३। **रमेश्च**। रंहः॥ ६५४। **देशे ह च**। रमन्तेऽस्मिन् रहः। ६५५। **अञ्चयञ्जियुजिभृजिभ्यः कुश्च**। एभ्योऽसुन् कवर्गश्चान्तादेशः। 'अङ्कश्चिह्नशरीरयोः'। 'अङ्गः पक्षी। यगोः समाधिः। भर्गस्तेजः॥ ६५६

स्याद्वर्षणं पेलम् इति सुभूतिचन्द्रः। अकारान्तोऽप्ययम्, 'शेपपुच्छलाङ्गुलेषु शुनः' इति वार्तिके शेप इति निर्देशात्, 'यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्' इति वैदिकप्रयोगाच्च। शेपः शेपौ च शेफश्च शेफ प्रोक्त च शेफसि इति द्विरूपकोशः॥ ६४१ **स्रुरीभ्याम्**। स्रु गतौ, रीङ् क्षवणे, आभ्यामसुन् स्यात् तस्य तुट् च। स्रोतोऽम्बुवेगेन्द्रिययोः इति विश्वः। 'रेतः शुक्रे पारदे च' इति मेदिनी॥ ६४२ **पातेः**। पा रक्षणे, अस्माद्बले वाच्येऽसुन् जुडागमश्च वर्गतृतीयादिः। 'युट् च' इत्यन्तस्थादिपाठस्तूज्ज्वलदत्तस्य प्रामादिकः। 'पृथुपाजा अमर्त्यः' इत्यादिमन्त्रतद्भाष्यविरोधात्॥ ६४३ **उदके**। पातेरुदके वाच्येऽसुन्स्यात्तस्य थुडागमश्च। कबन्धमुदकं पाथः 'इत्यमरः॥ ६४५ **अदेः**। अद भक्षणे। 'भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नम्' इत्यमरः। 'द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा' इति भारविः॥ ६४६ **स्कन्देः**। स्कन्दिर् गतिशोषणयोः। अस्यात्स्वाङ्गे वाच्येऽसुन् धश्चान्तादेशः॥ ६४७ **आपः**। आप्लृ व्याप्तौ। अस्मात्कर्माख्यायामसुन् ह्रस्वश्च धातोः। प्रत्ययस्य नुडागमस्तु वा स्यात्। 'अप्नस्वतीमस्विना' अपांसि यस्मिन्नधि संदधुः॥—**बाहुलकात्**। इत्युपलक्षणम्, ह्रस्वनुटौ वा स्त इत्यपि व्याख्यानात् इत्यपि बोध्यम्। तथा च 'ब्रुवते कतमेऽपि नपुंसकमापः' इति वाशमुदाहृत्य 'सर्वमापोमयं जगत्' इति प्रयोगो दुर्घटवृत्तौ समर्थितः॥ ६४८ **रूपे**। रूपे वाच्ये आप्नोतेरसुन् ह्रस्वत्वं च धातोः, प्रत्ययस्य जुडागमश्च स्यात्। अब्ज इति। 'झलां जश् झशि' इति पकारस्य बकारः॥ ६४९ **उदके**। उदके वाच्ये आप्नोतेरसुन् ह्रस्वत्वं च नुमागमो भश्चान्तादेशः॥ ६५० **नहेः**। णह बन्धने, अस्माद्गमने वाच्येऽसुन् भश्चान्तादेशः स्यात्। 'नभो व्योम्नि नभा मेघे श्रावणे च पतद्ग्रहे। घ्राणे मृणालसूत्रे च वर्षासु च नभाः स्मृतः' इति विश्वः। नभः क्लीवं व्योम्नि पुमान्घने। घ्राणाश्रावणवर्षासु विसतन्तौ पतद्ग्रहे' इति मेदिनी। 'नभः खं श्रावणो नभाः' इत्यमरः। 'नभं तु नभसा सार्धम्' इति द्विरूपकोशादकारान्तोऽपि॥ ६५१ **इणः**। इणोऽसुन् स्यादपराधे वाच्ये धातोरागादेशश्च। विश्वोक्तिमाह—**आग** इति॥ ६५२ **अमेः**। अम गत्यादौ। अस्मादसुन् हुगागमश्च धातोः स्यात्। अमन्ति गच्छन्त्यनेनाथस्तादित्यंहो दुरितम्॥ ६५३ **रमेश्च**। रमेरसुन् स्यात् हुगागमश्च धातोः। रंहो वेगः। अहिरहिभ्यामसुना सिद्धे अघिरघिभ्यामसुनि अङ्घो रङ्घ इति मा भूदिति सूत्रद्वयमिति गोवर्धनः। तथा च 'स्यान्मध्योष्मचतुर्थत्वमंहसो रंहसोस्तथा' इति द्विरूपकोशः। एवं च दत्तार्घाः सिद्धसङ्घैर्विदधतु घृणयः शीघ्रमङ्घोविघातम्' इति, 'रङ्घःसङ्घः सुराणां जगदुपकृतये नित्ययुक्तस्य यस्य स्तौति प्रीतिप्रसन्नोऽन्वहमहिमरुचेः। सोऽवतात्स्यन्दनो वः' इत्यत्र अङ्घो रङ्घ इति घकारपाठोऽनुप्रासरसिकानां प्रामादिक इति वदन्ति॥ ६५४ **देशे**। देशे वाच्ये रमेरसुन् हकारश्चान्तादेशः स्यात्। 'रहस्तत्त्वे रते गुह्ये' इति मेदिनी॥ ६५५ **अञ्चि**। अञ्चु गतिपूजनयोः, अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु, युजिर् योगे, युज समाधौ, भृजी भर्जने। अङ्कः, अङ्कसी, अङ्कांसि। अङ्गः, अङ्गसी, अङ्गांसि। योगः, योगसी, योगांसि। भर्गस्तेज इति। 'हरः स्मरहरः भर्गः' इत्यत्र तु भर्गशब्दो घञन्तः पुंलिङ्ग इति बोध्यः। उच समवाये, अस्मादसुनि बाहुलकात्कुत्वम्। न्यङ्क्वादित्वाद्वा। 'ओक आश्रयमात्रेऽपि मन्दिरेऽपि नपुंसकम् इति मेदिनी॥ ६५६ **भूरञ्जि**। भू सत्तायाम्, रञ्ज रागे, आभ्यामसुन्कित्स्यात्। भुवः अन्तरीक्षम् षष्ठ्यन्तप्रतिरूपकमव्ययमिदम्। रजो रेणुः। रजः क्लीवं गुणान्तरे।

भूरञ्जिभ्यां कित् । भुवः । रजः ॥ ६५६ । **वसेर्णित्** । वासो वस्त्रम् ॥ ६५८ । **चन्देरादेश्च छः** । छन्दः ॥ ६५९ । **पचिभ्यां सुट् च** । 'पक्षसी तु स्मृतौ पक्षौ' । वक्षो हृदयम् ॥ ६६० । **वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि** । वक्षा अनड्वान्, हासाश्चन्द्रः, धासाः पर्वत इति प्राञ्चः । वस्तुतस्तु णिदित्यनुवर्तते न तु सुट् । तेन वहेरुपधावृद्धिः । इतरयोः आतो युक् २७६१ इति युक् । 'शोणा धृष्णू नृवाहसा' । 'श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः 'विश्वो विहायाः । वाजम्भरो विहायाः । देवो न यः पृथिवीं विश्वधायाः । अधारयत् पृथिवीं विश्वधायसम् धर्णसिं भूरिधायसम् । इत्यादि । ६६१ । **इण आसिः** । अयाः वह्निः । स्वरादिपाठादव्ययत्वम् ॥ ६६२ । **मिथुनेऽसिः पूर्ववच्च सर्वम्** । उपसर्गविशिष्टो धातुर्मिथुनं तत्रामुनोऽपवादोऽसिः स्वरार्थः । यस्य धातोर्यत्कार्यं असुन्प्रत्यये उक्तं, तदत्रापि भवतीत्यर्थः अशेर्देवन् युट् चेत्यादि । सुयशाः ॥ ६६३ । **नञि हन एह च** । अनेहाः, अनेहसौ । ६६४ । **विधाञो वेध च** । विदधातीति वेधाः ॥ ६६५ । **नुवो धुट् च** । नोधाः ऋषिः ६६६ । **गतिकारकोपपदयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च** । असिः स्यात् । सुतपाः । जातवेदाः । 'गतिकारकोपपदात् कृत्' ३८७० इत्युत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वे सति शेषस्यानुदात्तत्वे प्राप्ते तदपवादार्थमिदम् ॥ ६६७ । **चन्द्रे मो डित्** । चन्द्रोपपदान्माङोऽसिः स्यात्स च डित् । चन्द्रमाः ॥ ६६८ । **वयसि धाञः** । वयोधास्तरुणः । ५६६ । **पयसि च** । पयोधाः समुद्रो मेघश्च ॥ ६७० । **पुरसि च** । पुरधाः ॥ ६७१ । **पुरूरवाः** । पुरुशब्दस्य दीर्घो रौतेरसिश्च निपात्यते ॥ ६७२ । **चक्षेर्बहुलं शिच्च** । नृचक्षाः ॥ ६७३ । **उषः कित्** । उषः ॥ ६७४ ।

आर्तवे च परागे च रेणुमात्रेऽपि दृश्यते' इति मेदिनी । घञर्थे कप्रत्यये तु अकारान्तोऽप्ययम् । 'रजोऽयं रजसा सार्धं स्त्रीपुष्पगुणधूलिषु' इत्यजयकोशः ॥ ६५७ **वसेः** । वस निवासे, अस्मादसुन् स्यात्स च णित् । णित्वाद्वृद्धिः ॥ ६५८ **चन्देः** । चदि आह्लादने, अस्मादसुन् आदेः छकारश्च । छन्दः पद्यप्रभेदेऽपि स्वैराचाराभिलाषयोः' इति मेदिनी । अकारान्तोऽप्ययम् । अभिप्रायवशौ छन्दौ इत्यमरद्विरूपकोशौ ॥ ६५९ **पचि** डुपचष् पाके, वच परिभाषणे, आभ्यामसुन् स्यात्तस्य सुडागमश्च । चस्य कुत्वे सस्य षत्वम् । पक्षः, पक्षसी, पक्षांसि । 'यथा शाखायै पक्षसी इति श्रुतिः । 'पूर्वोत्तरे द्वे पक्षसी' इति च श्रुतिः । 'पूर्वोत्तरे द्वे पक्षसी' इति अनीकाधिकरणे शाबरभाष्यम् । माधवस्तु 'पक्ष परिग्रहे' इत्यस्मादसुन् इत्याह ॥ ६६० **वहि** । वह प्रापणे, ओहाक् त्यागे, डुधाञ् धारणादौ, एभ्योऽसुन् स्यात् । अत्र पूर्वसूत्रात्सुटमनुवर्तयतामुज्ज्वलदत्तादीनां मतेनोदाहरणमाह—वक्षा, हासाः धासाः इति । प्राञ्च इति । सकलवृत्तिकृतः प्रसादकारादयश्चेत्यर्थः । एतच्चायुक्तम् । उक्तोदाहरणानि हि न तावल्लोके दृश्यन्ते न वा सम्भवन्ति, सूत्रेऽस्मिन् छन्दसीत्युक्तत्वात् । वेदे तु विपरीतान्येवोदाहरणानि दृश्यन्त इत्याह—वस्तुतस्त्विति । वेदभाष्यकारादयश्चेहानुकूला इत्यवधेयम् । ६६१ **इणः** । इण् गतौ, अस्मादसिः स्यात् ॥ ६६२ **मिथुने** ॥ **सुयशा इति** । 'अशेर्देवने युट् च' इत्यादि पूर्ववत् । सुयशाः, सुस्रोता इत्याद्युदाहार्यम् । ६६३ **नञि** । हन्तेर्नञ्युप देऽसिः स्यात् धातोरेहादेशश्च । 'ऋदुशनस्पुरुदंस' इत्यादिना सावनङ् । ६६४ **विधाञः** । डुधाञ् धारणादौ, विपूर्वादस्मादसिः स्याद्वेधादेशश्च सोपसर्गधातोः । वेधाः पुंसि हृषीकेशे बुधे च परमेष्ठिनि' इति मेदिनी ॥ ६६५ **नुवः** । णु स्तुतौ, अस्मादसिः स्यात्तस्य धुडागमश्च ॥ — **नोधा इति** । 'सद्यो भूव द्वीर्याय नोधाः' इति मन्त्रे 'नोधा ऋषिर्भवति' इति निरुक्तम् । नवं दधातीति तु नैरुक्तं व्युत्पत्यन्तरं बोध्यम् ॥ ६६६ **गति** । गतौ कारके चोपपदेऽसिः स्यात् । तप संतापे, विद ज्ञाने, विद्लृ लाभे ॥ ६६७ **चन्द्रे** । चन्द्रं रजतममृतं च । तदिव मीयतेऽसौ चन्द्रमा इति हरदत्तः । 'स च डित्' इति डित्वाट्टिलोपे चन्द्रमसौ चन्द्रमस इत्यादि सिध्यति ॥ ६६८ **वयसि** । डुधाञ् धारण, अस्माद्वयस्युपपदेऽसिः स्यात्स च डित ॥ ६६९ **पयोधा इति** । पयः शब्द उपपदे डुधाञः पूर्ववत् ॥ ६७० **पुरसि च** । पुरः शब्द उपपदे पूर्ववत् । 'पुरोधास्तु पुरोहितः इत्यमरः ॥ ६७१ **रौतेरिति** । रु शब्दे । 'पुरुरवा बुधसुतो राजर्षिश्च पुरूरवाः' इत्यमरः ॥ ६७२ **चक्षेः** । चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, अस्मादसिः स्यात्स च बहुलं शित् । शित्वात्सार्वधातुकसंज्ञायां ख्याञ् न । नृचक्षाः राक्षसः । शित्वाभावपक्षे तु ख्याञादेशः । प्रख्याः प्रजापतिः ॥ ६७३ **उषः** । उष दाहे, अस्मादसिः स्यात्स

दमेरुनसिः। सम्राचिर्दमुनाः॥ ६७५। **अङ्गतेरसिरिरुडागमश्च**। अङ्गिराः॥ ६७६। **सर्तेरप्पूर्वादसिः**। अप्सराः। प्रायेणायं भूम्नि, अप्सरसः॥ ६७७। **विदिभुजिभ्यां विश्वे**। विश्ववेदाः। विश्वभोजाः॥ ६७८। **वशेः कनसिः**। संप्रसारणम्। उशना॥ **इत्युणादिषु चतुर्थः** पादः॥

अथ पञ्चमः पादः

६७९। **अदि भुवो डुतच्**। अद्भुतम्॥ ६८०। **गुधेरूमः**। गोधूमः॥ ६८१। **मसेरूरन्**। मसूरः। प्रथमे पादे 'असेरुरन्' मसेश्च (४२) इत्यत्र व्याख्यातः॥ ६८२। **स्थः किच्च**। स्थूरो मनुष्यः॥ ६८३। **पातेरतिः** पातिः स्वामी। संपातिः पक्षिराजः॥ ६८४। **वातेर्नित्**। 'वातिरादित्यसोमयोः'॥ ६८५। **अर्तेश्च**। अरतिरुद्वेगः॥ ६८६। **तृहेः क्नो हलोपश्च**। तृणम्॥ ६८७। **वृञ्लुटितनिताडिभ्य उलच् तण्डश्च**। व्रियन्ते लुठ्यन्ते तन्यन्ते ताड्यन्त इति वा तण्डुलाः॥ ६८८। **दंसेष्टटनौ न आ च**। दासः सेवकशूद्रयोः॥ ६८९। **दंशेश्च**। दाशो धीवरः॥ ६९०। **उदि चेडैंसिः**। स्वरादिपाठादव्ययत्वम्। उच्चैः॥ ६९१। **नौ दीर्घश्च**। नीचैः॥ ६९२। **सौ रमेः क्तौ दमे पूर्वपदस्य च दीर्घः**। रमेः सुपूर्वाद्दमे वाच्ये क्तः स्यात्। कित्वादनुनासिक-लोपः। सूरत उपशान्तो दयालुश्च॥ ६९३। **पूञो यण् णुक् ह्रस्वश्च**। यत्प्रत्ययः। पुण्यम्॥ ६९४। **स्रंसेः शिः कुट् किच्च**। स्रंसते शिरादेशो यत्प्रत्ययः कित्, तस्य कुडागमश्च। शिक्यम्॥ ६९५। **अर्तेः वयुरुच्च**

कित्। उषः प्रभातम्। दशपाद्यां तु वसः किदिति पाठः वसति सूर्येण सहेति उषाः देवताविशेषः। 'अपो भि इति सूत्रे उषसश्चेष्यते' इति वार्तिकस्य समुषद्भिरित्युदाहरणं विवृण्वद्भिर्हरदत्तादिभिरयं पाठः पुरस्कृतः॥ ६७४ **दमेः**। दमु उपशमे। 'सम्राचिर्दमुनाः शुक्रः' इत्यमरः। पक्षे 'अन्येषामपि दृश्यते' इति दीर्घः। 'जुष्टो दमूनाः' दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम्। दशपाद्यां तु दमेरूनसिः इति सूत्र एव दीर्घः पठ्यते, तन्मते बाहुलकाद्ध्रस्वो बोध्यः। ६७५ **अङ्गिराः**। अग्निरित्यर्थः। अङ्गिरा ऋषिभेदः॥ ६७६ **सर्तेः**। सृ गतौ॥— **प्रायेणेति**। स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्यादेकत्वेऽप्सरा अपि इति शब्दार्णवः॥ 'अप्सराप्सराः प्रोक्ता सुमनाः सुमनस्सु च इति द्विरूपकोशः। एकाप्सरः प्रार्थितयोर्विवादः इति रघुः॥ ६७७ **विदि**। विद ज्ञाने, भुज पालनाभ्यवहारयोः आभ्यां विश्वशब्दे उपपदेऽसिः स्यात्॥ शब्दस्वरूपपरत्वात् 'विश्वे' इत्यत्र स्मिन्नादेशो न कृतः। उदाहरणे 'विश्वं वेत्ति भुङ्क्ते' इति विग्रहः। यत्तु 'तत्पुरुषे कृति' इति सप्तम्या अलुक् विश्वेवेदाः अग्निः, विश्वेभोजाः इन्द्रः'। इत्युज्ज्वलदत्तेनोक्तं। तन्न। तथा सति स्मिन्नादेशस्य दुर्वारत्वापत्तेः। 'सुमृलीको भवतु विश्ववेदाः' 'पूषाभगः प्रभृते विश्वभोजाः' इत्यादिमन्त्रेषु सुपो लुक एव दर्शनात्, वृत्त्यन्तरे तथैवोदाहरणाच्च॥ ६७८ **वशेः**। वश कान्तौ। 'उशना भार्गवः कविः' इत्यमरः। **इत्युणादिषु चतुर्थः पादः**
६७९ **अदि भुवो**। अत् इत्यव्ययं आकस्मिकार्थे तस्मिन्नुपपदे भूधातोर्डुतच्स्यात्। डित्वाट्टिलोपः। अद्भुत-माश्चर्यम्॥ ६८० **गुधेः**। गुध परिवेष्टने, गुध्यते परिवेष्ट्यते। प्राणिभिरिति। 'गोधूमो नागरङ्गे स्यादो-षधीव्रीहिभेदयोः' इति मेदिनी॥ ६८१ **मसेः**। मसी परिणामे॥ ५८२ **स्थः**। ष्ठा गतिनिवृत्तौ अस्मादूरन्। कित्त्वादालोपः। स्थूरो मनुष्य इति। स्थूरस्य रायो बृहतो ईशे' इति मन्त्रे तु योगपुरस्कारात् स्थिरस्येत्यर्थः इति व्याख्यातम्॥ ६८३ **पातेः**। पा रक्षणे॥ ६८४ **वातेः**। वा गतिगन्धनयोः। रभसकोशस्थमाह— **वातिरिति**। ६८५ **अर्तेः**। ऋ गतौ, अस्मादतिः स्यात्स च नित्॥ ६८६ **तृहेः**। तृह हिंसायाम्, क्नस्य कित्त्वाद्गुणाभावः॥ ६८७ **वृञ्**। वृञ् वरणे, लुट विलोडने, तनु विस्तारे, तड आघाते चुरादिः। एभ्य उलच् स्यात् तण्डादेशश्च धातोः। यद्यपि 'सानसिवर्णसि' इति सूत्रे तण्डुलशब्दो निपातितस्तथापि प्रत्यय-स्वरेण मध्योदात्तः सः, अयं तु चित्स्वरेणान्तोदात्त इति विवेकः॥ ६८८ **दंसेः**। दसि दर्शनदर्शनयोः अस्मा-ट्टटनौ स्याता नकारस्याकारादेशः। टनो नकार आद्युदात्तार्थः। 'दासः शूद्रे दानपात्रे भृत्यधीवरयोरपि' इति विश्वः॥ ६८९ **दंशेः**। दंश दंशने, अस्मादपि टटनौ स्तो नकारस्य चात्वं स्यात्। 'कैवर्ते दाशधीवरौ' इत्यमरः। ६९० **उदि**। चिञ् चयने। डैसो डित्वाट्टिलोपः॥ ६९२ **सौरमेः**। रमु क्रीडायाम्॥ ६९३ **पूञः** पूञ् पवने। 'पुण्यं मनोज्ञेऽभिहितं तथा सुकृतधर्मयोः' इति विश्वः॥ ६९४ **स्रंसेः**। स्रंसु अधःपतने, कित्त्वं

उरणो मेषः ॥ ६६६ । **हिंसेरीरन्नीरचौ** । हिंसीरो व्याघ्रदुष्टयोः ॥ ६६७ । **उदि दृणातेरजलौ पर्वपदान्त्य-लोपश्च** । उदरम् ॥ ६६८ । **डित् खनेर्मुट् स चोदात्तः** । अच् अल् च डित्स्याद्धातोर्मुट्, स चोदात्तः । मुखम् ॥ ६६९ । **अमेः सन्** । अंसः ॥ ७०० । **मुहेः खो मूर्च** । मूर्खः ॥ ७०१ । **नहेर्हलोपश्च** । नखः । ७०२ । **शीङो ह्रस्वश्च** । शिखा ॥ ७०३ । **माङ ऊखो मय् च** । मयूखः ॥ ७०४ । **कलिगलिभ्यां फगस्योच्च** कुल्फः शरीरावयवो रोगश्च । गुल्फः पादग्रन्थिः ॥ ७०५ । **स्पृशेः श्वण्शुनौ पृ च** । श्वण्शुनौ प्रत्ययौ 'पृ' इत्यादेशः । पार्श्वम् । पार्श्वोऽस्त्री कक्षयोरधः । पर्शु गयुधम् ॥ ७०६ । **श्मनि श्रयतेर्डुन्** । श्मन्शब्दो मुखवाची । मुखमाश्रयत इति श्मश्रु ॥ ७०७ । **अश्र्वादयश्च** । अश्रु नयनजलम् ॥ ७०८ । **जनेष्टन् लोपश्च** जटा ॥ ७०९ । **अच् तस्य जङ्घ च** । तस्य जनेर्जङ्घादेशः स्यादच्च । जङ्घा ॥ ७१० । **हन्तेः शरीरावयवे द्वे च** । जघनम् । 'पश्चान्नितम्बः स्त्रीकटयाः क्लीबे तु जघनं पुरः' ॥ ७११ । **क्लिशेरन् लो लोपश्च** । लकारस्य लोपः । केशः ॥ ७१२ । **फलेरितजादेश्च पः** । पलितम् ॥ ७१३ । **कृञादिभ्यः संज्ञायां वुन्** । करकः, करका । कटकः । नरकम्, नरकः । 'नरकं नारकोऽपि च' इति द्विरूपकोशः । सरक गगनम् ।

तु गुणाभावार्थम् ॥ ६६५ **अर्तेः** । ऋ गतौ अस्मात्कुप्रत्ययः स्याद्धातोरुत्वं च । रपरत्वम् । युवोरनाकौ । 'मेढ्रोरभ्रोरणोर्णायुमेषवृष्णय एडके' इत्यमरः ॥ ३९३ **हिंसेः** । हिंसि हिंसायाम् ॥ ३९७ **उदि** । दॄ विदारणे ३९८ **डित्खनेः** । खनुः अवदारणे, अस्मादजलौ स्तः । 'मुखं निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि । सन्ध्यन्तरे नाटकादेः शब्देऽपि च नपुंसकम्' इति मेदिनी ॥ ३९९ **अमेः** । अम गतौ, 'स्कन्धो भुजशिरोंसोऽस्त्री' इत्यमरः । 'अंसः स्कन्धे विभागे च' इति दन्त्यान्ते विश्वः ॥ ७०० **मुहेः** । मुह वैचित्ये, अस्मात्खप्रत्ययो धातोर्मुरादेशश्च । मुह्यतीति मूर्खः । 'अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेयबालिशाः' इत्यमरः ॥ ७०१ **नहेः** । णह बन्धने । अस्मात्खः । 'नखः कररुहे पण्ढे गन्धद्रव्ये नखं नखी' इति विश्वः । 'नखी स्त्रीक्लीबयोः शुक्तौ नखरे पुंनपुंसकम्' इति मेदिनी ॥ ७०२ **शीङः** । शीङ् स्वप्ने, अस्मात्खः । स्याद्धातं ह्रस्वश्च । ह्रस्वविधान-सामर्थ्याद्गुणाभावः । शिखा शाखा बर्हिचूडालाङ्गलिक्यग्रमात्रके । चूडामात्रे शिफाया च ज्वालायां प्रपदेऽपि च' इति मेदिनी ॥ ७०३ **माङः** । माङ् माने । 'मयूखस्त्विट्करज्वालासु' इत्यमरः । ७०४ **कलि** । कल शब्दसंख्यानयोः, गल अदने, आभ्यां फक् स्यात् धातोरकारस्योत्वं च ॥ गुल्फ इति । तद्ग्रन्थी घुटिके गुल्फौ इत्यमरः । तयोः पादयोर्ग्रन्थी इत्यर्थः ॥ ७०५ **स्पृशेः** । स्पृश संस्पर्शे. 'पार्श्वं वक्षाधरे चक्रपार्श्वे पर्शुगणेऽपि च' इति विश्वमेदिन्यौ ॥ ७०६ **श्मनि** । श्रिञ् सेवायाम्, अस्मात् श्मन्युपपदे डुः स्यात् डित्वा-ट्टिलोपः । तद्वृद्धौ श्मश्रु पुंमुखे इत्यमरः । पुरुषस्य मुखे तेषां रोम्णां वृद्धौ श्मश्रुशब्दो वर्तत इत्यर्थः । ७०७ **अश्र्वादयः** । अशू व्याप्तौ, अस्मात् रुन् प्रत्ययो नञ्पूर्वात् श्रयतेर्डुन् वा । यत्तूज्ज्वलदत्तेनोक्तम् अश्नोतेर्ड्रुट् चेति । तदयुक्तम्, डित्वाट्टिलोपे सति धातोरश्रवणप्रसङ्गात् । न च टिलोपाभावो निपात्यत इति वाच्यम् । तथा सति डित्वोत्प्रेक्षणस्य निष्फलत्वापत्तेरिति दिक् ॥ ७०८ **जनेः** । जनी प्रादुर्भावे, अस्मा-ट्टन्प्रत्ययः स्याद्धातोरन्त्यलोपश्च । 'जटा लग्नकचे मूले मांसी प्लक्षे पुनर्जटी' इति मेदिनी ॥ ७०९ **जङ्घेति** जनेरच्प्रत्यये सति अजाद्यतः इति टाप् ॥ ७१० **हन्तेः** । देहावयवे वाच्ये हन्तेरच्प्रत्ययः स्यात्, द्वित्वं च धातोः । आभ्यासकार्यम्, 'अभ्यासाच्च' इति कुत्वम् । अमरोक्तिमाह पश्चान्नितम्ब इति । जघनं च स्त्रियाः श्रोणिपुरोभागे कटावपि इति मेदिनी ॥ ७११ **क्लिशेः** । क्लिशू विबाधने, अस्मादन्स्यात् । केशः स्यात्पुंसि वरुणे ह्रीवेरे कुण्डलेऽपि च' इति मेदिनी ॥ ७१२ **फलेः** । फल निष्पत्तौ । 'पलितं जरसा शौक्ल्यम्' इत्यमरः 'पलितं शैलजे तापे केशपाशे च कर्दमे' इति मेदिनी ॥ ७१३ **कृञादिभ्यः** । डुकृञ् करणे, करकः कमण्डलुः 'करकस्तु पुमान्पक्षिविशेषे दाडिमेऽपि च । द्वयोर्मेघोपले न स्त्री करके च कमण्डलौ' इति मेदिनी । करका वृष्टिपाषाणः । कटे वर्षावरणयोः, 'कटको वलये सानौ' । 'क्वुन् शिल्पिसंज्ञयोः' इति क्वुनाऽप्ययं सिद्धस्तथा च गुणभाज इहैव वुनि उदाहार्याः, गुणनिषेधभाजस्तु क्वुनि । उदासीनास्तु यत्र कुत्रचिदिति भावः । नॄ नये । 'स्यान्नारकस्तु नरको निरयो दुर्गतिः स्त्रियाम्' इत्यमरः । 'नरकः पुंसि निरये देवारातिप्रभेदयोः'

कोरकः, करकं च ॥ ७१४ । **चीकयतेराद्यन्तविपर्ययश्च** । कीचको वंशभेदः ॥ ७१५ । **पचिमच्योरिच्चोपधायाः** । पेचकः । मेचकः ॥ ७१६ । **जनेररष्ठ च** । जठरम् ॥ ७१७ । **वचिमनिभ्यां चिच्च** । वठरो मूर्खः 'मठरो मुनिशौण्डयोः । बिदादित्वान्माठरः । गर्गादित्वान्माठर्यः ॥ ७१८ । **ऊर्जि दृणातेरलचौ पूर्वपदान्तलोपश्च** । 'ऊर्दरः शूररक्षसोः' ॥ ७१९ । **कुदरादयश्च** । कुदरः । कुसूलः । मृदरं विलसत् । सृदरः सर्पः । ७२० । **हन्तेर्युन्नाद्यन्तयोर्घतवतत्वे** । घातनो मारकः ॥ ७२१ । **क्रमिगमिक्षमिभ्यस्तुन् वृद्धिश्च** । क्रान्तुः पक्षी । गान्तुः पथिकः । क्षान्तुर्मशकः ॥ ७२२ । **हर्यतेः कन्यन् हिरच्** । कन्यन् प्रत्ययः । हिरण्यम् ॥ ७२३ **कृञः पासः** । कर्पासः । बिल्वादित्वात्कार्पासं वस्त्रम् ॥ ७२४ । **जनेस्तु रश्च** । जतुर्हस्ती योनिश्च ॥ ७२५ । **ऊर्णोतेर्डः** । ऊर्णा ॥ ७२६ । **दधातेर्यत् नुट् च** । धान्यम् ॥ ७२७ । **जीर्यतेः क्रिन् रश्च वः** । जिव्रिः स्यात्कलपक्षिणोः । बाहुलकात् हलि च ३५४ इति दीर्घो न ॥ ७२८ । **मव्यतेर्यलोपो मश्चापतुट् चालः** । मव्यतेरालप्रत्ययः स्यात्तस्यापतुडागमो धातोर्यलोपो मकारश्चान्तस्य । ममापतालो विषये ॥ ७२९ । **ऋजेः कीकन्** । ऋजीक इन्द्रो धूमश्च ॥ ७३० । **तनोतेर्डउः सन्वच्च** । तितउः पुंसि क्लीबे च ॥ ७३१ । **अर्भकपृथुकपाका वयसि** । 'ऋधु वृधौ' अतो वुन्, भकारश्चान्तादेशः । प्रथेः कुकन्संप्रसारणं च । पिबतेः कन् ॥

इति मेदिनी । उदयनाचार्यास्तु 'न च नरकाण्येव सन्ति' इति क्लीवं प्रयुञ्जते तन्निर्मूलमित्याहुः । सृ गतौ 'सरकोऽस्त्री शीधुपात्रे शीधुपानेक्षुशीधुनोः' इति मेदिनी । कुर शब्दे । 'कोरकोऽस्त्री कुड्मले स्यात्कक्कोलमृणालयोः' इति मेदिनी । 'विचकार कोरकानि इति माघः । कोरकः पुमान् इत्यमरोक्तिस्तु नादर्तव्येत्याहुः । अपकरकादयोऽपि इहैव बोध्याः । ७१४ **चीकयतेः** । चीक आमन्त्रणे चुरादिः । अस्याद्यन्तविपर्ययः । पचिमच्योरित्वं चानुपदं वक्ष्यमाणं बाहुलकबललभ्यं बोध्यम् । कीचको दैत्यभिद्वाताहतसस्वनवंशयोः' इति मेदिनी । डुपचष् पाके । 'उलूके करिणः पुच्छमूलोपान्ते च पेचकः' इत्यमर । 'पेचको गजलाङ्गूलमूलोपान्ते च कौशिके' इति मेदिनी ॥ ७१५ मचि मुचि कल्कने । 'मेचकस्तु मयूरस्य चन्द्रके श्यामले पुमान् । तद्युक्ते वाच्यवत्क्लीवं स्रोतोऽञ्जनाब्दवारयोः' इति मेदिनी ॥ ७१६ **जनेः** । जन जनने, जनी प्रादुर्भावे वा । 'जठरः कठिनेऽपि स्यात्' इत्यमरः । 'जठरो न स्त्रियां कुक्षौ वृद्धकर्कटयोस्त्रिषु' इति मेदिनी ॥ ७१७ **वचि** । वच परिभाषणे, मन ज्ञाने, आभ्यामरप्रत्ययः स्यात्स च चित् रश्चान्तादेशः । 'वठरः कुक्कुटे वण्टे सरठे च' इति मेदिनी ॥ ७१८ **ऊर्जि** । दॄ विदारणे, अस्मादूर्ज्युपपदे अलचौ प्रत्ययौ स्तः ॥ ७१९ **कुदरादयश्च** । कु मृ सृ एतदव्ययपूर्वं कदृणाति प्रकृतिका लजन्ता निपात्यन्ते ॥ ७२० **हन्तेः** । हन हिंसागत्योः ॥ ७२१ **क्रमि** । क्रमु पादविक्षेपे, गम्लृ गतौ, क्षमूष् सहने, एभ्यस्तुन्स्यादेषां वृद्धिश्च ॥ ७२२ **हर्यतेः** । हर्य गतिकान्त्योः । हिरण्यं रेतसि द्रव्ये शातकुम्भवराटयोः । अक्षये मानभेदे स्यादकुप्ये च नपुंसकम्' इति मेदिनी ॥ ७२३ **कृञः** । डुकृञ् करणे ॥ ७२४ **जनेः** । तु इत्यविभक्तम् । जनेस्तुप्रत्ययो रेफश्चान्तादेशः स्यात् ॥ ७२५ **ऊर्णोतेः** । ऊर्णुञ् आच्छादने, अस्मात् डः स्यात् । डित्वाट्टिलोपः, टाप्, 'ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यादावर्त्ते चान्तरा भ्रुवौ' इत्यमरः । भ्रुवोर्मध्ये य आवर्त्तस्तत्रेत्यर्थः । 'अन्तरान्तरेण' इति द्वितीया ॥ ७२६ **दधातेः** । डुधाञ् धारणादौ, अस्माद्यन् प्रत्ययः स्यात्तस्य नुडागमश्च । धान्य व्रीहिषु धान्यके इति मेदिनी ॥ ७२७ **जीर्यतेः** । जॄ वयोहानौ अस्मात् क्रिन्स्यात् । 'ऋत इद्धातोः' । रपरत्वम् । रेफस्य वकारादेशः ॥ ७२८ **मव्यतेः** । मव्य बन्धने ॥ अन्त्यस्येति । वकारस्येत्यर्थः ॥ ७२९ **ऋजेः** । ऋजी गतौ ॥ ७३० **तनोतेः** । तनु विस्तारे, अस्मात् डउः प्रत्ययस्तस्य सन्वद्भावात् द्वित्वमभ्यासस्येत्वं च । डित्वाट्टिलोपः । पृथगुच्चारणसामर्थ्याद्गुणो न । तितउः चालनी । 'सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत' । 'तितउः परिपवनं भवति' इति पस्पशायां भाष्यम् । 'चालनी तितउः पुमान्' इत्यमरः चालनं तितउन्युक्तम्' इति कोशान्तरम् । स्याद्वास्तु हिङ्गु तितउ' इति पुंस्पुंस्कवर्ग निबाण्डशेषः । ७३१ **अर्भक** । एते निपात्यन्ते । निपातनप्रकारमेवाह ऋधु वृद्धावित्यादि ॥ प्रथेरिति । प्रथ प्रख्याने, पा पाने पिबति स्तनादिकमिति पाकः । 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः । 'अर्भकः कथितो

७३२। **अवद्यावमाधमार्वरेफाः कुत्सिते**। वदेर्नञि यत्, अवद्यम्। अवतेरमः, वस्तपक्षे धः, अवमः- अधमः अर्तेर्वन्, अर्वा। रिफतेस्तौदादिकात् अः, रेफः॥ ७३३। **लीरीङोर्ह्रस्वः पुट् च तरौ श्लेषणकुत्सनयोः**। तरौ प्रत्ययौ क्रमात् स्तो धातोर्ह्रस्वः प्रत्ययस्य पुट्। लिप्तं श्लिष्टम्। रिप्रं कुत्सितम्॥ ७३४। **क्लिशे-रिच्चोपधायाः कन् लोपश्च लो नाम् च**। क्लिशेः कन् स्यात् उपधाया ईत्वं लस्य लोपो नामागमश्च। कीनाशो यमः। क्लिष्टफलं चिन्त्यम्॥ ७३५। **अश्नोतेराशुकर्मणि वरट् च**। चकारादुपधाया ईत्वम्॥ ईश्वरः॥ ७३६। **चतेरुरन्**। चत्वारः॥ ७३७। **प्राततेररन्**। प्रातः॥ ७३८। **अमेस्तुट् च**। अन्तर्मध्यम् ७३९। **दहेर्गो लोपो दश्च नः**। गप्रत्ययो धातोरन्तस्य लोपो दकारस्य नकारः। नगः॥ ६४०। **सिचेः संज्ञायां हनुमौ कश्च**। सिञ्चतेः कप्रत्ययो हकारादेशो नुम् च स्यात्। सिंहः॥ ७४१। **व्याङि घ्रातेश्च जातौ**। कप्रत्ययः स्यात्। व्याघ्रः॥ ७४२। **हन्तेरच् घुर च**। घोरम्॥ ७४३। **क्षमेरुपधालोपश्च**। चादच्। क्ष्मा॥ ७४४। **तरतेर्ड्रिः**। त्रयः त्रीन्॥ ७४५। **ग्रहेरनिः**। ग्रहणिः। ङीष्, ग्रहणी व्याधिभेदः। ७४६। **प्रथेरमच्**। प्रथमः॥ ७४७। **चरेश्च**। चरमः॥ ७४८। **मङ्गेरलच्**। मङ्गलम्। इत्युणादिषु पञ्चमः पादः॥

बाले मूर्खेऽपि च कृशेऽपि च। पृथुकः पुंसि चिपिटे शिशौ स्यादभिधेयवत्'। 'पाकः परिणतौ शिशौ। केशस्य जरसा शौक्ल्ये स्थाल्यादौ पचनेऽपि च' इति मेदिनी॥ ७३२ **अवद्या**। एते कुत्सिते निपात्यन्ते। वद व्यक्तायां वाचि, अव रक्षणादौ, ऋ गतौ, रिफ कत्थनयुद्धनिन्दाहिंसादानेषु। 'निकृष्टप्रतिकृष्टार्वरेफयाप्या-वमाधमाः' इत्यमरः। 'कुपूयकुत्सितावद्यखेटगर्ह्याणकाः समाः इति च। 'अधमः स्याद्गर्ह्ये ऊनेऽपि' इति मेदिनी। 'अर्वा तुरङ्गमे पुंसि कुत्सिते वाच्यलिङ्गकः। रेफो रवर्णे पुंसि स्यात्कुत्सिते पुनरन्यवत्' इति च मेदिनी॥ ७३३ **लीरीङोः**। लीङ् श्लेषणे, रीङ् श्रवणे। क्रमादिति। श्लेषणे वाच्ये तप्रत्ययः कुत्सिते वाच्ये रप्रत्यय इत्यर्थः। 'लिप्तं विषाक्ते भुक्ते च वाच्यवत्स्यात्विलेपिते' इति विश्वः॥ ७३४ **क्लिशेः**। क्लिशू विबाधने। नामागमश्च प्रत्ययस्येति शेषः। चिन्त्यमिति। ईत्वविधानसामर्थ्यादेव गुणाभावसिद्धेरिति भावः। 'कीनाशः कर्षकः क्षुद्रोपांशुधूलिषु वाच्यवत्। यमे ना' इति मेदिनी॥ ७३५ **अश्नोतेः**। अशू व्याप्तौ अस्माद्वरट् स्यात्। आशूकर्म वरदानादिक्रिया यस्य तस्मिन्वाच्ये, शीघ्रदातरीत्यर्थः॥ ईश्वर इति। स्त्रियां तु टित्त्वान्ङीप्, ईश्वरी। प्रत्ययस्वरेण मध्योदात्ता। ईशेर्वनिपि 'वनो र च' इति ङीव्रयोस्तु धातुस्वरेणाद्यु-दात्ता पुंयोगलक्षणे ङीषि अन्तोदात्ताः। 'स्थेशभासपिसकसः' इति वरचि तदन्तादपि ईश्वरेति विवेकः। 'ईश्वरो मन्मथे शम्भौ नाट्ये स्वामिति वाच्यवत्। ईश्वरी चेश्वरोमयाम्' इति मेदिनी। ईश्वरा उमाया-मिति छेदः। ईश्वरः शङ्करेऽधीशे तत्पत्न्यामीश्वरीश्वरा' इति बोपालितः। 'विन्यस्तमङ्गलमहौ' षधिरीश्वरयाः' इति भारविः। दशपाद्यां तु सूत्रान्तरमपि 'हन्तेरन् घश्च' इति। हन हिंसागत्योः, अस्माद्रन्प्रत्ययः स्यात घश्चान्तादेशः। हन्यते गम्यतेऽतिथिभिरिति घरः गृहम्॥ ७३६ **चतेः**। चते याचने, अस्मादुरन्स्यात्। अकार उच्चारणार्थः। स्वरादिपाठादव्ययत्वम्। प्रातर्॥ ७३८ **अमेः**। अम गतिशब्द-संभक्तिषु, अस्मादरन्स्यात्तस्य तुडागमश्च। अन्तःशब्दोऽपि प्रातः शब्दवत् अव्ययम्॥ ७३९ **दहेः**। दह भस्मीकरणे। 'नगो महीरुहे शैले भास्करे पवनाशने' इति मेदिनी॥ ७४० **सिचेः**। षिच क्षरणे। हकारादेश इति। धातोरन्त्यस्येत्यर्थः। सिंहः कण्ठीरवे राशौ सत्तमे चोत्तरस्थितः। सिंही क्षुद्रबृहत्योः स्याद्वासके राहुमातरि' इति विश्वः॥ ७४१ **व्याङि**। घ्रा गन्धोपादाने, अस्माज्जातौ वाच्यायां कः स्यात्। कित्त्वादातो लोपः। व्याघ्रः स्यात्पुंसि शार्दूले रक्तैरण्डकरञ्जयोः। श्रेष्ठे नरादुत्तरस्थः कण्टकार्यां च योषिति' इति मेदिनी॥ ७४२ **हन्तेः**। हन्तेरच् स्याद्धातोर्घुरादेशश्च। 'घोरं भीमे हरे' इति विश्वः॥ ७४३ **क्षमेः**। क्षमूष् सहने। 'क्ष्मावनिर्मेदिनी मही' इत्यमरः॥ ७४४ **तरतेः**। तॄ प्लवनतरणयोः, अस्मात् ड्रिः स्यात्। डित्त्वाट्टिलोपः॥ ७४५ **ग्रहेः**। ग्रह उपादाने। ङीषिति। कृदिकारात् इत्यनेन। 'ग्रहणी रुक् प्रवाहिका' इत्यमरः॥ ७४६ **प्रथेः**। प्रथ प्रख्याने। प्रथमस्तु भवेदादौ प्रधानेऽपि च वाच्यवत्' इति मेदिनी।

प्रथमचरम इति वैकल्पिकसर्वनामत्वात्पक्षे जसः शीभावः। प्रथमे, प्रथमाः॥ ७४७ चरेश्च। चर गति-भक्षणयोः, अस्मादमच्स्यात्। चरमे चरमाः। योगविभागश्चिन्त्यप्रयोजनः। प्रथिचरिभ्यामित्येव सुवचम्। ७४८ मङ्गेः। उखउखीत्यादिदण्डके गत्यर्थको मगिः पठ्यते। कल्याणं मङ्गलं शुभम्। मङ्गलो ग्रहभेदः। 'मङ्गला सितदूर्वायामुमायां पुंसि भूमिजे। नपुंसकं तु कल्याणे सर्वार्थे रक्षणेऽपि च' इति मेदिनी। भावे ष्यञि माङ्गल्यम्, 'तत्र साधुः' इति यत्। 'मङ्गल्यः स्यात्त्रायमाणाश्वत्थबिल्वमसूरके। स्त्रियां शम्यामधः पुष्प्यां मिसि शुक्लवचासु च। रोचनायामधो दध्नि क्लीबं शिवकरे त्रिषु' इति मेदिनी॥ इत्युणादिषु पञ्चमः पादः॥

उणादिप्रत्ययाः सन्ति पादोत्तरशतत्रयम् (३२५)। तेषां विवेचनं त्वत्र ज्ञानेन्द्रस्वामिभिः कृतम्॥

प्राचा तु कतिपयानामेवोणादीनामुपन्यासः कृतो न तु सर्वेषां, सोऽप्युपन्यासो नैकप्रघट्टकतया कृतः किंतु विच्छिद्येति स्पष्टम्। तत्रापि केचित्प्रमादा मनोरमायां प्रदर्शितास्तेष्वेव कांश्चित्प्रमादान्दर्शयामः॥ द्वितीय पादे—'मजो ण्विः' इति ण्विप्रकरणे 'छन्दसी सहः' 'वहश्च' इत्युपन्यस्य 'परौ व्रजेः षः पदान्ते' इति ण्वि-स्तेनैव षः, परिव्राट् इत्ययं हि प्राचो ग्रन्थः तद्व्याख्यायां तत्पौत्रेण पञ्चपाद्युणादिसूत्रे इदं पठ्यते इत्युक्तं। तदुभयमपि प्रामादिकम्। 'क्विब्वचि' इति क्विब्दीर्घौ प्रक्रम्य 'परौ व्रजेः' इति सूत्रस्य पाठात्। अस्मिन्नंशे पञ्चपादीदशपाद्योरेकवाक्यत्वात्। यदपि प्राचो ग्रन्थे क्वचिल्लटचते चिणिति। तदप्यपाणिनीयत्वादुपेक्ष्यम् एतेन प्रघट्टकान्तरे 'स्तृद्रुपरिव्रजां दीर्घश्च' इति केचित् इति प्राचोग्रन्थोऽपि प्रत्युक्तः। सूत्रारूढं सर्वसंमते चार्थे केचिदित्युक्तेरप्रामाणिकत्वात्। यदपि 'धर्त्तिचक्षिङ्वपितपिजनिरञ्जेरुस' इति पठितं। तदप्यनाकरम् तथा हि—जनेरुसिः अर्तिपॄवहियजितनिधनितपिभ्यो नित् 'एतेर्णिच्च' 'चक्षेः शिच्च' इति सर्वसंमतः पाठः। 'वपूंषि तस्मै वपुषो वपुष्टरम्' इत्यादिमन्त्रेषु आद्युदात्ततयाऽनुकूलश्च। वेदभाष्ये एवमेव स्थितम्। इत्यादयो द्वितीयपादे प्रमादाः॥ तृतीयपादेऽपि—स्तनिदूषिपुषिगदिमदिहृदिभ्यो णेरित्नुजिति प्राचा पठितं। तत्र दूषिहृदी वृत्तिकृतां ग्रन्थे न पठितौ। दूषयित्नुः हृदयित्नुरिति प्रयोगोऽप्याकरे न दृष्टः। 'स्तनिहृषिपुषिमुदि-गदिमदिभ्यः इति हि पञ्चपदीपाठः। 'घुषिगन्धिमण्डिजनिनमिभ्यः' इति दशपाद्यामधिकं पठितमित्यन्य-देतत्। यदपि 'श्रुदक्षिस्पृहिगृहिदॄजिभ्य आय्यः' इति पठित्वा दराय्य जराय्य इति प्राचोक्तं। तदपि न, दॄजिग्रहणस्याकरानारूढत्वात्। यदपि 'जृविशिभ्यां झच्' गण्डिमण्डिजनिनन्दिभ्यश्च' इत्युक्त्वा 'गण्डयतो जनयन्तः' इत्युदाहृतं प्राचा, यच्च गण्डयन्त इति प्रतीकमुपादाय मेघनामेदमिति व्याख्याय गडि वदनैकदेशे इति व्याख्यातृभिर्विवृतं। तत्सर्वं प्रामादिकम्। तथाहि उणादिषु गडीति निरनुषङ्गं पठित्वा गड सेचने इति विवृतं, 'अयामन्ता' इति सूत्रे वृत्तिन्यासहरदत्तादिसकलग्रन्थेष्वेवं. माधवग्रन्थेऽप्येवमेव। युक्तं चैतत्। मेघ इति व्याख्यानं प्रति सेचनार्थस्यैवानुगुणत्वात्। जनेः पाठोऽप्यप्रामाणिकः। जिधातुं पठित्वा 'जयन्तः पाक-शासनिः' इति सर्वैर्विवृतत्वात्, जनयन्त इति लक्ष्यस्य कैरपि अप्रदर्शितत्वात्, अप्रसिद्धत्वाच्च इत्यादय-स्तृतीयपादे प्रमादाः॥ अथ चतुर्थे यदपि कॄगॄस्तृजागृभ्यः क्विन्। कीर्विः गीर्विः स्तृविरिति प्राचोक्तं तदपि लिपिभ्रमप्रयुक्तमेव। कॄ विक्षेपे, गॄ निगरणे, स्तृञ आच्छादने, इति प्राचो ग्रन्थं विवृण्वतामुक्तिरपि मूलाशुद्धयैव हेया। 'जॄशॄस्तॄजागृभ्यः क्विन्' इति हि पाठ उणादिवृत्तिकायां माधवादीनां च संमतः। जीर्विः पशुः। शीर्विः हिंस्रः। स्तर्विरध्वर्युरिति च तत्तद्ग्रन्थेषूपपादितम्। स्तृ इत्यस्य दीर्घान्तत्व एवहि 'ॠत इद्धातोः' इ ीत्वं लभ्यते न तु ह्रस्वान्तत्वेऽपि, तस्माद्यथाकरमेव हि ग्रहीतुमुचितमिति दिक्॥ यदपि प्राचोक्तं 'ग्लाज्याहात्वरिभ्यो निः' इति तदप्यनाकरम्। आकरे हि 'वीज्याज्वरिभ्यो निः' इति पठित्वा सूत्रद्वयान्तरं 'वहिश्री' इति सूत्रे 'ग्लाहात्वरिभ्यो नित्' इति सूत्रितत्वात्। 'तूर्णी रथः सदानवः' इत्यादावाद्यु-दात्तदर्शनाच्च॥ नच 'स्त्रियां क्तिन्' इत्यधिकारस्थं वार्तिकमेवेदं प्राचोदाहृतं न तूणादिसूत्रस्थमिति वाच्यम् एवमपि त्वरतेः पाठस्यानुचितत्वात्॥ न ह्यसौ वार्तिकेऽस्तीति दिक्॥ एवं सख्याने स्त्यायतेड्रट् इत्यपि प्राचोदाहृतमप्यनाकरम्। स्त्यायते ड्रडित्येव सूत्रस्याकरे पञ्चपाद्यां दशपाद्यां चोपलम्भात्। 'संस्त्याने स्त्यायतेर्ड्रट् स्त्री सूतेः प्रसवे पुमान्' इति भाष्ये श्लोकपाठः, स एव माधवेनोपन्यस्तः। न तु सूत्रपाठस्य

तथात्वं दृश्यते, एवं तद्ग्रन्थव्याख्यातॄणामपि प्रमादा ऊह्या । तद्यथा—पाणिन्यादिमुनीनिति व्याचक्षाणैरुक्तम्—'मनेरुच्चोपधायाः' इति, न ह्येवंविधं सूत्रं पञ्चपाद्यां दशपाद्यां वाऽस्ति, अत इत्यनुवर्तमाने 'मनेरुच्च' इत्येव सूत्रितत्वादिति दिक् ॥ इति चतुर्थपादे प्राचः प्रमादाः ॥

॥ इत्युणादयः समाप्ताः ॥

वैदिकी प्रक्रिया

प्रथमोऽध्यायः

३३८७ । **छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम्** । १ । २ । ६१ । द्वयोरेकवचनं वा स्यात् । पुनर्वसु नक्षत्रं पुनर्वसू वा । लोके तु द्विवचनमेव । ३३८८ । **विशाखयोश्च** । १ । २ । ६२ । प्राग्वत् । विशाखा नक्षत्रम् विशाखे वा

श्रीगणाधीशाय नमः

सिन्दूरेण विराजितं त्रिनयनं दिक्संख्यदोर्भिर्युतं भक्तानुग्रहकारकं प्रमदयाश्लिष्टं सदानन्दनम् ।
अष्टाविंशतिवर्णकैश्च सततं यं चिन्तयन्ते जनास्तं देवं गणपं स्मरामि सततं चन्द्रार्धचूडं विभुम् ॥१॥
यस्तर्कादिसमस्ततन्त्रकमलव्रातप्रसादेष्विव प्रत्यक्षप्रमितः परः किरणवानन्वर्थगोवर्धनः ।
सोऽयं पण्डितमण्डलोद्भटरटद्वारीन्द्रवृन्दाग्रणीः श्रीरामाङ्घ्रिनिषेवकः समजनि श्रीमौनिगोवर्धनः ॥२॥
रघुनाथपदारविन्दसेवावशतस्तस्य बभूवः नन्दनः ।
रघुनाथ इतीडचानामगम्यो रघुनाथाङ्घ्रिनिषेवकः सुधीः ॥३॥
बभूवुस्तस्य चत्वारस्तनयाः सुनया बुधाः । महादेवाभिधः श्रेष्ठो महाभाग्यः सुभाषितः ॥४॥
रामकृष्णो द्वितीयोऽसौ रामकृष्णाङ्घ्रिसेवकः । तृतीयो जयकृष्णोऽस्मि श्रीकृष्णाप्राप्तसद्भवः ॥५॥
श्रीमत्सिद्धान्तकौमुद्याः स्वरवैदिकखण्डयोः । नत्वा मुनित्रयं हृद्यां टीकां कुर्वे सुबोधिनीम् ॥६॥
सुशब्दव्रातश्रीकुमुदवनविद्योतनकरी सदा सद्व्युत्पत्तिप्रसरणपरानन्दकरी ।
कुशब्दध्वान्तस्य प्रसभमभिविध्वंसनकरी कृतिर्भूयादेषा बुधजनमनः प्राङ्गणचरी ॥७॥

इयता प्रबन्धेन लौकिकशब्देष्वन्वाख्यातेष्वपि वैदिकान्वाख्यानमवशिष्यते । न चेदिदमप्रयोजनम् । 'रक्षोहागमलघ्वसंन्देहाः प्रयोजनम्' इति वदता भाष्यकारेण वेदरक्षाया व्याकरणारम्भस्य प्रयोजनत्वेन मुख्यतयाऽभिधानात् । 'ब्राह्मणेन निष्कारणः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' इति वेदार्थज्ञानोपायतया वेदाङ्गत्वेनैव व्याकरणाध्ययनविधानाच्च ॥ नन्वेवमपि वैदिकशब्दानां लौकिकशब्दाभिन्नत्वात्तदनुशासनेनैव सिद्धे किमर्थं तेषामनुशासनमिति चेन्न । लौकिकशब्देभ्यो भिन्ना अपि वैदिकशब्दाः सन्ति । तद्यथा—'त्मना देवेषु' 'मध्वा जभार' 'गृभ्णामि ते' इत्यादयो वेदे दृश्यन्ते । लोके तु आत्मना जहार गृह्णामीत्यादयः। अत एव भाष्यकारो लौकिकेभ्यो वैदिकान्भेदेन व्यपदिशति—'अथशब्दानुशासनं। केषां शब्दानां ? लौकिकानां वैदिकानां चेति' इतितेषामन्वाख्यानमावश्यकमिति मनसि विभाव्याह—**छन्दसीत्यादि** ३३८७ । पुनर्वसुशब्देनोदभूतावयवस्य ज्योतिः समुदायस्याभिधानाद्द्वयोर्द्विवचने प्राप्ते एकवचनं विधीयते, तदाह—**द्वयोरित्यादि** ॥—**वा स्यादिति** । 'जात्याख्यायाम्' इत्यतोऽन्यतरस्यामित्यनुवर्तनात् ॥—**लोके त्विति** । 'गां गताविव दिवः पुनर्वसू' इत्यादो ॥ ३३८८ **विशाख** । **प्राग्वदिति** । द्वयोरेकवचनं वा स्यादित्यर्थः । विशाखेति

३३८९। **षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा**। १। ४। ९। षष्ठ्यन्तेन युक्तः पतिशब्दश्छन्दसि घिसंज्ञो वा स्यात्। क्षेत्रस्य पतिना वयम्। इह वा इति योगं विभज्य छन्दसीत्यनुवर्तते। तेन सर्वे विधयश्छन्दसि वैकल्पिकाः। 'बहुलं छन्दसि' ३४०१ इत्यादिरस्यैव प्रपञ्चः। '**यचि भम्**' २३१॥ ※ **नभोऽङ्गिरोमनुषां वत्युपसंख्यानम्** नभसा तुल्यं नभस्वत्, भत्वाद्रुत्वाभावः। अङ्गिरस्वदङ्गिरः। मनुष्वदग्ने। (उ २७२) जनेरुसिः इति विहित उसिप्रत्ययो मनेरपि बाहुलकात्॥ ※ **वृषण्वस्वश्वयोः**। वृष वर्षुकं वसु यस्य स वृषण्वसुः। वृषा अश्वो यस्य वृषणश्वः। इहान्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदत्वे सति नलोपः प्राप्तो भत्वाद्वार्यते। अत एव 'पदान्तस्य' १९८ इति णत्वनिषेधोऽपि न। 'अल्लोपोऽनः' २३४ इत्यलोपो न, अनङ्गत्वात्।

३३९०। **अयस्मयादीनि च्छन्दसि**। १। ४। २०। एतानि छन्दसि साधूनि। भपदसंज्ञाऽधिकाराद्यथायोग्यं संज्ञाद्वयं बोध्यम्। तथा च वार्तिकम्—※ **उभयसंज्ञान्यपीति वक्तव्यम्**। इति। स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन पदत्वात्कुत्वम्, भत्वाज्जश्त्वाभावः, जश्त्वविधानार्थायाः पदसंज्ञाया भत्वसामर्थ्येन बाधात्। नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु। अत्र पदत्वाज्जश्त्वम्। भत्वात्कुत्वाभावः। '**ते प्राग्धातोः**' २२३०।

३३९१। **छन्दसि परेऽपि**। १। ४। ८१। ३३९२। **व्यवहिताश्च**। १। ४। ८२। हरिभ्यां याह्योक आ। आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि। ३३९३। **इन्धिभवतिभ्यां च**। १। २। ६। आभ्यां परोऽपिल्लिट् कित् स्यात्। समीधे दस्युहन्तमम्। पुत्र ईधे अथर्वणः। बभूव। इदं प्रत्याख्यातम्। ※ **इन्धेश्छन्दोविषयत्वाद्भुवो वुको नित्यत्वात्ताभ्यां लिटः** किद्वचनानर्थक्यमिति॥ इति प्रथमोऽध्यायः।

अपरस्तु 'राधा विशाखा' इति प्रयुञ्जानो द्विवचननियमं नेच्छति। सूत्रं तूदासीनम्॥ ३३८९ **षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा**। 'पति समास एव' इत्यतः पतिरिति वर्तते 'पतिः समास एव' इति नियमादसमासे न प्राप्नोतीति वचनमारभ्यते।—**पतिनेति**। घित्वात् 'आङो ना' इति नाभावः। षष्ठीति किम्? 'मया पत्या जरदष्टिर्यथासः'। छन्दसीति किम्? ग्रामस्य पतये।—**योगं विभज्येति**। 'षष्ठीयुक्तश्छन्दसि' इति, उक्त एवार्थः। ततो वा, 'छन्दसि' इति वर्तते। यावदिह शास्त्रे कार्यं तच्छन्दसि वा भवति। तथा च फलितमाह—**तेनेत्यादिना**। ※ **नभोङ्गिरसिति**। नभस् आङ्गिरस् मनुष् एषां वति परे भत्वं वक्तव्यमित्यर्थः।—**नभस्वदिति**। 'तेन तुल्यम्' इति वतिः। भत्वफलमाह—**रुत्वाभाव इति**। 'ससजुषोः' इति प्राप्तस्य। तत्र हि पदस्येत्यनुवर्तते। अङ्गिरसा तुल्यमङ्गिरस्वत्। अत्रापि देहलीदीपकन्यायेन 'रुत्वाभावः' इति संबध्यते॥—**मनुष्वदिति**। मनुषा तुल्यम्। अत्र भत्वात् 'आदेशप्रत्यययोः' इति षः। पदसंज्ञायां तु रुत्व स्यात् न तु षत्वम्, अपदान्तस्येति वचनात्॥—**बाहुलकादिति**। बहूनर्थाल्लातीति बहुलम्। 'ला आदाने' अस्मात् 'आतोऽनुपसर्गे' इति कः। बहुलस्य भावो बाहुलकम्। मनोज्ञादित्वाद्वुञ्॥ ※ **वृष**। वृषन्नित्येतद्वसु, अश्व एतयोश्च परतो भं स्यात्। 'निपातनान्येतानि छन्दोविषयाणि' इति कैयटः॥—**वृषण्वसुरिति**। लोके वृषवसुः वृषाश्वः॥—**नलोपः प्राप्त इति**। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इत्यनेन॥—**अत एवेति**। भत्वादेवेत्यर्थः॥—**अनङ्गत्वादिति**। 'अल्लोपोऽनः' इत्यत्रास्येत्यधिकारात्॥ ३३९० **अयस्मयादीनि**। आनन्तर्याद्भसंज्ञाद्वारेणैव निपातनं प्राप्तमित्याह—**संज्ञाद्वयमिति**। ननु अनन्तरस्य इति न्यायं बाधित्वोभयसंज्ञाविधाने किं प्रमाणमित्याशङ्क्याह—**तथा च वार्तिकमिति**। कुत्वमिति। 'चोः कुः' इत्यनेन॥ **जश्त्वाभाव इति**। 'झलां जशोऽन्ते' इति प्राप्तस्य।—**ऋक्वतेति**। अयस्मयादिषु ऋक्वतेत्यादयः समुदाया एव बोध्याः। तेन जश्त्वमस्तु कुत्वं मा भूदिति वैपरीत्येन प्रसज्यत इति बोध्यम्॥—**नैनमिति**। वाचामिनाः प्रभवस्तेष्वप्येनं विद्वांसं न हिन्वन्ति। विवदितुं न गच्छन्तीत्यर्थः॥—**ते प्रागिति**। व्याख्यातम्॥ ३३९१ अस्यापवादमाह। **छन्दसीत्यादि**। गत्युपसर्गसंज्ञकाश्छन्दसि परे प्रयोक्तव्याः। अपिशब्दात्पूर्वे॥ ३३९२ **व्यव**। व्यवहिता अपि गत्युपसर्गसंज्ञकाः प्रयोक्तव्याः। सूत्रद्वयस्योदाहरणे आह—**हरिभ्यामित्यादि**। आयाहीति प्राप्तम्। 'ते प्राग्' इत्यत्र संज्ञानियमपक्षो भाष्ये उक्तः, ते इत्यनेन प्रादीन् उपेत्येतत्पर्यन्तान्स्वरूपेण परामृश्य धातोः प्राक् प्रयुक्तानामेषां पूर्वसूत्रैकवाक्यतया संज्ञाविधानात्। अस्मिंश्च पक्षे 'छन्दसि परेऽपि' 'व्यवहिताश्च' इति

द्वितीयोऽध्यायः

३३९४। **तृतीया च होश्छन्दसि**। २। ३। ३। जुहोतेः कर्मणि तृतीया स्याद्द्वितीया च। **यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति**। अग्निहोत्रशब्दोऽत्र हविषि वर्तते, 'यस्याग्निहोत्रमधिश्रितममेध्यमापद्येत' इत्यादिप्रयोगदर्शनात्, 'अग्नये हूयते' इति व्युत्पत्तेश्च। यवाग्वाख्यं हविर्देवतोद्देशेन त्यक्त्वा प्रक्षिपतीत्यर्थः। ३३९५। **द्वितीया ब्राह्मणे**। २। ३। ६०। ब्राह्मणविषये प्रयोगे दिवस्तदर्थस्य कर्मणि द्वितीया स्यात्। षष्ठ्यपवादः। गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः॥ ३३९६। **चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि**। २। ३। ६२। षष्ठी स्यात्। पुरुषमृगश्चन्द्रमसे। गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्। वनस्पतिभ्य इत्यर्थः॥ *** षष्ठ्यर्थे चतुर्थीति वाच्यम्**। या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः॥ ३३९७। **यजेश्च करणे**। २। ३। ६३। इह छन्दसि बहुलं षष्ठी घृतस्य घृतेन वा यजते। ३३९८। **बहुलं छन्दसि**। २। ४। ३९। अदो घस्लादेशः स्यात्। घस्तां नूनम्, लुङि मन्त्रे घस ३४०२ इति च्लेर्लुक्, अडभावः। सग्धिश्च मे॥ ३३९९। **हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च छन्दसि**। २। ४। २८। द्वन्द्वः पूर्ववल्लीङ्गः। हेमन्तश्च शिशिरश्च हेमन्तशिशिरौ। अहोरात्रे॥

सूत्रद्वयं न कर्तव्यम्॥ ३३९३ **इन्धि**। इन्धीत्युच्चारणार्थेनेकारेण निर्देशः। 'सुट्तिथोः' इतिवत्, न तु 'इक्श्तिपौ' इति इका, नलोपापत्तेः। 'असंयोगात्' इत्यतः 'लिट् कित्' इत्यनुवर्तते। तदाह—**लिट् किदिति**। ञि इन्धी दीप्तौ, लिटः कित्त्वाद् 'अनिदिताम्' इति नलोपः। संयोगात्परत्वात्पूर्वेणाप्राप्तौ वचनम्॥ **बभूवेति** कित्त्वाद्गुणवृद्ध्यभावे 'भुवो वुक्' इति वुक्। अत्र पित्त्वात्पूर्वेणाप्राप्तौ वचनम्।—**इदमिति** 'इन्धि' इति सूत्रम् छन्दोविषयोत्वादिति। अयमभिप्रायः इन्धेर्भाषायां 'इजादेश्च' इत्यामा भाव्यम्। छन्दसि तु अमन्त्रे इति प्रतिषेधात् यद्यप्याम् नास्ति तथापि छन्दस्युभयथा' इति लिटः सार्वधातुकत्वे ङित्त्वात्सिद्धे इति नलोपः। श्नमभावस्त्वार्धधातुकत्वाच्छन्दसि दृष्टानुविधानात्॥—**वुको** नित्यत्वादिति। 'परनित्या' इति परिभाषया परान्नित्यस्य बलीयस्त्वात्। कृताकृतप्रसङ्गित्वेन नित्यत्वात्॥ इति **वैदिकीप्रकरणे प्रथमोऽध्यायः**॥

३३९४ **तृतीया**। 'कर्मणि द्वितीया' इत्यतः कर्मणीति वर्तते। द्वितीयायां प्राप्तायां तृतीया विधीयते, चशब्दात्सापि भवति। तदाह—कर्मणीति। यवाग्वेति। अत्र यवागूशब्दात्तृतीया। अग्निहोत्रशब्दाच्च द्वितीया। अग्निहोत्रशब्दो हविर्वाचकः। जुहोतिश्च प्रक्षेपणार्थः। यवागूभिन्नं हविरग्नौ प्रक्षिपतीत्यर्थः। तदाह—यवाग्वाख्यमित्यादि। भिन्नविभक्तिचवरुद्धत्वेऽपि भिन्नार्थकविभक्तिचनवरुद्धत्वानामार्थयोरभेदान्वयः। भाष्ये चैतत्सत्रं प्रत्याख्यातम्। अग्निहोत्रशब्दो ह्यग्नावपि वर्तते। 'यस्याग्निहोत्रं प्रज्वलितम्' इति दर्शनात्। हूयतेऽस्मिन्निति व्युत्पत्तेश्च। तथा यवागूशब्दात्तृतीया तदाऽग्निहोत्रशब्दो ह्यग्नौ वर्तते, जुहोतिश्च प्रीणने। यवाग्वा अग्निं प्रीणयतीत्यर्थः। यदा यवागूशब्दाद् द्वितीया तदाऽग्निहोत्रशब्दो हविषि वर्तते, जुहोतिश्च प्रक्षेपणे। यवाग्वाख्यं हविर्द्रव्यं प्रक्षिपतीत्यर्थः॥ ३३९५ **द्वितीया**। 'दिवस्तदर्थस्य' इति वर्तते, तदाह—ब्राह्मणेत्यादि। सोपसर्गस्य च्छन्दसि 'विभाषोपसर्गे' इत्यनेन व्यवस्थितविभाषयाऽपि सिद्धे निरुपसर्गार्थ आरम्भः। षष्ठ्यपवाद इति। 'दिवस्तदर्थस्य' इति प्राप्तायाः॥ ३३९६ **चतुर्थ्यर्थे**। बहुलग्रहणात् 'चन्द्रमसे रुदमो रात्र्यै' इत्यादौ षष्ठ्यभावः॥ ३३९७ **यजेः**। यजेर्धातोः करणे कारके छन्दसि विषये बहुलं षष्ठी स्यात्॥ ३३९८ **बहुलम्**। 'अदो जग्धिः' इत्यतः अदः इति, 'लुङ्सनोः' इत्यतः 'घस्लृ' इति च। अदो बहुलं घस्लादेशः स्याच्छन्दसि। **घस्तामिति**। अदेर्लुङि रूपम्॥ **अडभाव इति**। 'बहुलं छन्दसि' 'न माङ्योगे' इत्यनेन॥ नन्विदं 'लुङ्सनोः' इत्यनेन सिद्धमित्याशङ्क्योदाहरणान्तरमाह सग्धिरिति। अदनं ग्धिः। अदेः क्तिनि घस्लादेशे घसिभसोर्हलि च' इत्युपधालोपे 'झलो झलि' इति सलोपः। झषस्तथोः' इति धत्वम्। घस्य जश्त्वम्। न च जश्त्वे कर्तव्येऽल्लोपस्य स्थानिवत्त्वम्। न पदान्त इति सूत्रेण जश्त्वे तन्निषेधात्। ततः समानशब्देन समासे कृते समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु' इति सूत्रेन समानस्य सः॥ ३३९९ **हेमन्तशिशिरौ** 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' इति प्राप्तम्। अहोरात्रे इति। अहश्च रात्रिश्चेति द्वन्द्वे कृते 'अहःसर्वैकदेश' इत्यनेन समासान्तोऽच्। यस्येति च इतीकारलोपः। 'रात्राह्नाहाः पुंसि' इति प्राप्तं द्वित्वमतन्त्रम्,

'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' २४२३। ३४००। **बहुलं छन्दसि**।२।४।७३। वृत्रं हनति वृत्रहा। अहिः शयत उप पृक्पृथिव्याः। अत्र लुङ्। अदादिभिन्नेऽपि क्वचिल्लुक् त्राध्वं नो देवाः। 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' २४८६ ३४०१। **बहुलं छन्दसि**।२।४।७६। दाति प्रियाणि चिद्वसु। अन्यत्रापि पूर्णां विवष्टि॥ ३४०२। **मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः**।२।४।८०। एभ्यो लेर्लुक् स्यान्मन्त्रे। अक्षन्नमीमदन्त हि, घस्लादेशस्य गमहन २३६२ इत्युपधालोपे 'शासिवसि' २४१० इति षः। माह्वर्मित्रस्य। धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य 'नशेर्वा ४३१ इति कुत्वम्। सुरुचो वेन आवः। मा न आधक। आदित्याकारान्तग्रहणम्। आ प्रा द्यावा-पृथिवी। परावर्ग्भारभृद्यथा। अक्रन्नुषासः। त्वे रयिं जागृवांसो अनुग्मन्। मन्त्रग्रहणं ब्राह्मणस्याप्युप-लक्षणम्। अज्ञत वा अस्य दन्ताः। विभाषानुवृत्तेर्नेह न ता अगृभ्णन्नजनिष्ट हि षः॥ इति द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः

६४०३। **अभ्युत्सादयां प्रजनयां चिकयां रमयामकः पावयां क्रियाद्विदामकन्निति च्छन्दसि**।३।१।४२। आद्येषु चतुर्षु लुङि आम् अकः इत्यनुप्रयोगश्च। अभ्युत्सादयामकः। अभ्युदसीषददिति लोके। प्रजनयामकः

'अहोरात्राणि विदधत्'। छन्दसि किम्? हेमन्तशिशिरे, अहोरात्रो। यद्यपि पाठक्रमेण 'बहुलं छन्दसि' इति घस्लादेशविधायकसूत्रात्पूर्वं व्याख्यातुं युक्तं तथापि 'व्यत्ययो बहुलम्' इति वक्ष्यमाणेन लिङ्गव्यत्यय-विधायकेन गतार्थमिति ध्वनयितुं तथा न व्याख्यातम्॥ ३४०० **बहुलं छन्दसी**। बहुल शपो लुक् स्यात्। 'अदिप्रभृतिभ्यः' इत्युक्तं ततो न भवति। तथैवोदाहरति **वृत्रं हनतीत्यादि**। हन्ति शेते इति लोके।— **त्राध्वमिति**। 'त्रैङ् पालने' 'आदेच उपदेशेऽशिति' इत्यात्वम्। त्रायध्वमिति लोके॥ ३४०१। **दातीति**। ददातीति लोके॥ **अन्यत्रापीति**। जुहोत्यादिभिन्नेऽपि श्लुर्भवतीति शेषः॥ **विवष्टीति**। 'वश कान्तौ' अदादिः। श्लौ इति द्वित्वम्। भृत्रामित्। 'बहुलं छन्दसि' इति सूत्रेणाभ्यासस्येकारः। व्रश्च इति षत्वं ष्टुत्वम् ३४०२ **मन्त्रे घस**। घस अत्तेरादेशः। ह्वर। ह्वृञ् कौटिल्ये, अस्य कृतगुणानुकरनं ह्वरेति। अकारस्तू-च्चारणार्थः। णश अदर्शने। वृञ् वरणे। वृङ संभक्तौ। दह भस्मीकरणे। आत् आकारान्ताः प्रा पूरणे इत्यादयः। वृजी वर्जने। डुकृञ् करणे। गम्लृ गतौ। जनी प्रादुर्भावे॥ अक्षनिति। अत्तेर्लुङि झिः॥ घस्लादेशस्येति। 'लुङ्सनोः इति विहितस्य। **माह्वरिति**। माङि उपपदे ह्वरतेर्लुङि सिप्। 'इतश्च' इतीकारलोपः। च्लेर्लुकि कृते 'सार्वधातुके' इति गुणे कृते रपरत्वे 'हल्ङ्याप्' इति लोपः॥ **प्रणगिति**। प्रपूर्वान्नशेर्लुङ्। 'हल्ङ्याप' इति लोपः। 'उपसर्गादसमासेऽपि' इति णत्वम्॥ मर्त्यस्येति। मकारेऽनु-नासिके परे 'यरोऽनुनासिके' इति ङः॥ कुत्वमिति। पक्षे व्रश्च इति षत्वेन नडिति रूपं बोध्यम्। आव इति। आङ्पूर्वात्प्राधातोः सिप्। रुत्वे यत्वे च यलोपः। परावर्गिति। परापूर्वाद्वृजेस्तिप्। उपधागुणे चोः कुः इति कुत्वम्॥ **अक्रन्निति**। झेर्ङित्त्वाद्गुणाभावे यण्। अनुग्मन्निति। अनुपूर्वाद्गच्छतेर्भिः। गमहन इत्युपधालोपः। ननु मन्त्रशब्दः संहितायां रूढ इति अज्ञतेत्यादौ ब्राह्मणप्रयोगे लुक् न प्राप्नोतीत्याशङ्क्याह **मन्त्रग्रहणमित्यादि**। अज्ञतेति। 'गमहन' इत्युपधालोपः। ब्राह्मणप्रयोगोऽयम्। मन्त्रेति किम्? अघसत्। अह्वार्षीत्। अनशत्। अवारीत्। अधाक्षीत्। अप्रासीः। अवर्जीत्। अकार्षीत्। अगमत्। अजनि। अजनिष्ट॥ इति वैदिकीप्रकरणे द्वितीयोऽध्यायः॥

३४०३ **अभ्युत्सादयाम्**। अभ्युत्सादयामित्यादयश्छन्दसि विषयेऽन्यतरस्यां निपात्यन्ते। षद्लृ विशरण-गत्यवसादनेषु। जनी प्रादुर्भावे। रमु क्रीडायाम्। ण्यन्तेभ्य एभ्यो लुङि आम्प्रत्ययो निपात्यते। चिञ् चयने। शुद्धादस्मादाम्प्रत्यये द्विर्वचनं कुत्वं च। अक इति प्रत्येकं संबध्यते, तदाह आद्येष्विति। अक इति। कृञो लुङि तिपि च्लेः 'मन्त्रे घस' इत्यादिना लुक्, तिपो हल्ङ्यादिलोपः। अभ्युत्सादयामक इति। आमः इति लुङो लुक्॥ अभ्युदसीषददिति। सदेर्ण्यन्तात्लुङि चङि 'णौ चङ्युपधायाः इति ह्रस्वः। 'चङि' इति द्विर्वचनम्। हलादिः शेषः। 'सन्वल्लघुनि इति सन्वद्भावे सन्यतः इतीत्वम्। दीर्घो लघोः। लोक इति वेदेऽपि पाक्षिकमिदं बोध्यम्। विदांकुर्वन्तु इति सूत्रादन्यतरस्यांग्रहणानुवृत्तेः। पावयामिति। पवतेः पुनातेर्वा

प्राजीजनदित्यर्थः। चिकयामकः। अचैषीदित्यर्थे चिनोतेराम, द्विर्वचनं, कुत्वं च। रमयामकः, अरीरमत्। पावयांक्रियात्। पाव्यादिति लोके। विदामक्रन् अवेदिषुः। ३४०४। **गुपेश्छन्दसि**। ३। १। ५० च्लेश्चङ् वा। गृहानजूगुपतं युवम्। अगोप्तमित्यर्थ। ३४०५। **नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः**। ३। १। ५१ च्लेश्चङ् न। मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः। मा त्वाग्निर्ध्वनयीत्। ३४०६। **कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि**। ३। १। ५९। च्लेरङ् वा। इदं तेभ्योऽकरं नमः। अमरत्। अदरत्। यत्सानोः सानुमारुहत्। ३४०७। छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि। ३। १। १२३। कृन्ततेर्निस् पूर्वात्क्यपि प्राप्ते ण्यत्। आद्यन्तयोर्विपर्यासो निसः षत्वं च। निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः। देवशब्द उपपदे ह्वयतेर्जुहोतेर्वा क्यप् दीर्घश्च, स्पर्धन्ते वा उ देवहूये 'प्र' 'उत्' आभ्यां नयतेः क्यप् प्रणीयः, उन्नीयः। उत्पूर्वाच्छिषेः। क्यप्, उच्छिष्यः। मृङ् स्तृञ् ध्वृ एभ्यो यत् मर्यः, स्तर्या। स्त्रियामेवायाम्। ध्वर्यः। खनेर्यण्ण्यतो खन्यः खान्यः। यजेर्यः शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्यायै। आङ्पूर्वात्पृच्छेः क्यप्, आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति। सीव्यतेः क्यप् षत्वं च, प्रतिषीव्यः। ब्रह्मणि वदेर्ण्यत्, ब्रह्मवाद्यम्। लोके तु 'वदः सुपि क्यप् च' २८५४ इति क्यब्यतौ। भवतेः स्तौतेश्च ण्यत् भाव्यः, स्ताव्यः। उपपूर्वाच्चिनोतेर्ण्यत् आयादेशश्च पृडे उत्तरपदे, उपचाय्यपृडम्॥ *** हिरण्य इति वक्तव्यम्**। उपचेयपृडमन्यत्। 'मृड सुखने' पृड च इत्यस्मादिगुपधलक्षणः कः। ३४०८। **छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्**। ३। २। २७। एभ्यः कर्मण्युपपदे इन् स्यात्। ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम्। उत नो गोषणि

ण्यन्तादाशीर्लिङ्याम्, क्रियादित्यनुप्रयोगश्च॥ **क्रियादिति**। करोतेराशीर्लिङि रूपम्। 'लिङाशिषि' इत्यार्धधातुकत्वाद्विकरणाभावः। 'रिङ् शयग्' इति रिङ्। विदामक्रन्निति। विदेर्लुङि आम् गुणाभावः। लुङन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च॥ ३४०४ **गुपेः**। आयप्रत्ययाभावस्थल एवेद, सूत्रे केवलस्योच्चारणात्॥ अजूगुपतमिति। गुपू रक्षणे। 'तस्थस्थमिपाम्' इति थसस्तम्। 'तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य' इत्यभ्यासस्य दीर्घः अगोप्तमिति। ऊदित्वादिडभावे वदव्रज इति वृद्धिः। 'झलो झलि' इति सिचो लोपः। इट्पक्षेअगोपिष्टम् आयप्रत्ययपक्षे अगोपायिष्टम्। इत्थं चत्वारि च्छन्दसि। लोके तु चङं वर्जयित्वा त्रीण्येवेति विवेकः॥ ३४०५ **नोनयतीति**। ऊन परिहाणे। ध्वन शब्दे। इल प्रेरणे। अर्द गतौ याचने च। एभ्यो ण्यन्तेभ्यश्च्लेः णिश्रि इति प्राप्तश्चङादेशो नेत्यर्थः। अत्रोनयत्येलयती चुरादौ ण्यन्तौ। ध्वनयतिरपि चुरादिरदन्तो घटादिर्ण्यन्तश्च। अर्दयतिस्तु हेतुमण्ण्यन्तः॥ ऊनयीरिति। मध्यमपुरुषैकवचनम्। न माङ्योगे इति आट्प्रतिषेधः इदमिन्द्रं प्रति सव्यस्य ऋषेर्वचनम्। त्वायतः त्वामिच्छतः। जरितुः स्तोतुः मम काममभिलाषं मा ऊनयीः ऊनं मा कार्षीरित्यर्थः। औननदिति भाषायाम्। **ध्वनयीदिति**। तिप् न माङ्योगे इत्यट्प्रतिषेधः। भाषायां तु घटादेः अदिध्वनत्। चुरादेः अदध्वनत्। ऐलयीत्। आर्दयीत्। आर्दिदत्। ऐलिलत् इति लोके। ३४०६ **कृमृदृ**। 'च्लि लुङि' इत्यतः च्लिरिति 'अस्यतिवक्ति' इत्यतोऽङिति इरितो वा इत्यतो वेत्यनुवर्तते, तदाह **च्लेरित्यादि**। अकरमिति। 'डु कृञ्करणे मिप्। अङि कृते ऋदृशोऽङि इति गुणः॥ **अमरदिति**। मृङ् प्राणत्यागे। व्यत्ययेन परस्मैपदम्॥ **अदरदिति**। दृ विदारणे। **अरुहदिति**। रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च। लोके तु अकार्षीत्। अमृत। अदारीत्। अरुक्षत्॥ ३४०७ **छन्दसि**। निष्टर्क्यादयः शब्दाश्छन्दसि निपात्यन्त इति। **क्यपि प्राप्त इति**। ऋदुपधाच्च इति सूत्रेण। **आपृच्छ्यमिति**। प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्। ग्रहिज्या इति संप्रसारणम्॥ **प्रतिषीव्येति**। षिवु तन्तुसन्ताने। हलि च इति दीर्घः॥— **उपचाय्यपृडमिति**। उपचाय्यं च तत्पृडं चेति कर्मधारयः।— **हिरण्य इति**। हिरण्येऽभिधेये इत्यर्थः॥ ३४०८ **छन्दसि**। **एभ्य इति**। वन षण संभक्तौ। रक्ष पालने। मन्थ विलोडने। एभ्य इत्यर्थः॥ 'स्तम्बशकृतोरिन्' इत्यतः इन्निति वर्तते तदाह इन्स्यादिति। 'वन षण संभक्तौ' इति भ्वादिगणेन सह निर्दिष्टयोरेव ग्रहणं न तु 'वनु याचने, षणु दाने, इति तानादिकयोः, सानुबन्धकत्वात्॥— **ब्रह्मवनिमिति**। ब्रह्म वनति क्षत्रं वनति गां सनतीति विवक्षायामिन्, तदन्तादितीयैकवचनम्। सुषामादित्वात्षत्वम्॥ **पथिरक्ष्य इति**। पन्थानं रक्षयन्तीति

भिगम्। ये पथां पथिरक्षयः। चतुरक्षौ पथिरक्षी। हविर्मथीनामभि। ३४०९। **छन्दसि सहः**। ३। २। ६३। सुप्युपपदे सहेर्ण्विः स्यात। पृतनाषाट्। ३४१०। **वहश्च**। ३। २। ६४। प्राग्वत्। दित्यवाट्। योगविभाग उत्तरार्थं। ३४११। **कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट्**। ३। २। ६५। एषु वहेर्ञ्युट् स्याच्छन्दसि। कव्यवाहनः। पुरीषवाहनः। पुरीष्यवाहनः। ३४१२। **हव्येऽनन्तः पादम्**। ३। २। ६६। अग्निर्नो हव्यवाहनः। पादमध्ये तु 'वहश्च' ३४१० इति ण्विरेव। हव्यवालग्निरजरः पिता नः॥ ३४१३। **जनसनखनक्रमगमो विट्**। ३। २। ६७। 'विड्वनोः' २९८२ इत्यात्वम्। अब्जाः। गोजाः। गोषा इन्दो नृषा असि, 'सनोतेरनः' ३६४५ इति षत्वम्। इय शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्। आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः। अग्रेगाः ३४१४। **मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन्**। ३। २। ७१। ❋ श्वेतवहादीनां डस्पदस्येति वक्तव्यम्। यत्र पदत्वं भावि तत्र ण्विनोऽपवादो डस् वक्तव्य इत्यर्थः। श्वेतवाः, श्वेतवाहौ, श्वेतवाहः। उक्थानि उक्थैर्वा शंसति उक्थशा यजमानः, उक्थशासौ, उक्थशासः। पुरो दाश्यते दीयते पुरोडाः॥ ३४१५। **अवे यजः**। ३। २। ७२। अवयाः, अवयाजौ, अवयाजः। ३४१६। **अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च**। ८। २। ६७। एते संबुद्धौ कृतदीर्घा निपात्यन्ते। चादुक्थशाः। ३४१७। **विजुपे छन्दसि**। ३। २। ७३। उपे उपपदे यजेर्विच्। उपयट्। ३४१८। **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च**। ३। २। ७४। सुप्युपसर्गे चोपपदे आदन्तेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये मनिनादयस्त्रः प्रत्ययाः स्युः। चाद्विच्। सुदामा सुधीवा। सुपीवा। भूरिदावा। घृतपावा। विच्, कीलालपाः। '**ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्**' २९९८। ३४१९। **बहुलं छन्दसि**। ३। २। ८८। उपपदान्तरेऽपि हन्तेर्बहुलं क्विप् स्यात्। यो मातृहा पितृहा। '**छन्दसि लिट्**' ३०९३। भूतसामान्ये। अहं द्यावापृथिवी आ ततान। '**लिटः कानज्वा**' ३०९४। '**क्वसुश्च**' ३०९५। छन्दसि लिटः कानच्क्वसू वा स्तः।

विग्रहः। पथिरक्षीति। पन्थानं रक्षत इति विग्रहः। हविर्मथ्नातीति विग्रहः॥ ३४०९ **छन्दसि**। षह मर्षणे 'भजो ण्विः' इति वर्तते, तदाह ण्विः स्यादिति। ननु 'तुरासाहं पुरोधाय' इति लोके प्रयोगा दृश्यन्ते। तेषां का गतिः? इति चेत्। णिजन्ताद्विच् बोध्यः॥ पृतनाषाडिति। सहेः साडः सः इति षत्वम्॥ ३४१० वहः प्राग्वदिति। ण्विः स्यादित्यर्थः॥ ३४१२ **हव्ये**। अन्तः शब्दो मध्यमवाची। हव्यशब्दे उपपदे वहेर्ञ्युट् स्यात् पादमध्ये चेन्न पादान्ते इति फलितोऽर्थः॥ हव्यवालग्निरिति। अत्र डस्य लः, द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य सम्पद्यते स डकारो लकार इति प्रातिशाख्ये विहितः॥ ३४१३ **जनसन**। जनादिभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विट् स्यात्। अग्रेगा इति। 'हलदन्तात्' इति सप्तम्या अलुक्॥ ३४१४ **मन्त्रे श्वेतवहो**। श्वेतादिपूर्वेभ्यो वहादिभ्यो ण्विन्स्यात्। अलाक्षणिककार्यार्थं निपातनम्। श्वेतशब्दे कर्तृवाचिन्युपपदे वहेः कर्मणि कारके ण्विन्प्रत्ययः। उक्थे कर्मणि करणे चोपपदे शंसतेः प्रत्ययो नलोपश्च। पुरः पूर्वस्य 'दासृ दाने' इत्यादेर्डत्वं कर्मणि च प्रत्ययः॥ **डस्पदस्येति**। पदस्येति प्रत्येकमभिसबध्यते। भाविपदत्वाश्रयणेन चेदमुच्यते, तदाह—**यत्र पदत्वं भावीति**। डसन्तस्येत्यर्थः॥ श्वेतवा इति श्वेता एतं वहन्ति श्वेतवा इन्द्रः। 'अत्वसन्तस्य' इति दीर्घः। उक्थशासाविति। नलोपे कृते 'अत उपधायाः' इति वृद्धिः॥ ३४१५ **अवे**। योगविभाग उत्तरार्थः। 'पुरोडाशवयजो ण्विन्' इत्येकयोगे श्वेतवहादीनामप्युत्तरत्रानुवृत्तिः स्यात्। यजेश्चावपूर्वस्यैवानुवृत्तिः स्यात्केवलस्यैवेष्यत इति॥ ३४१६ **अवयाः श्वेतवाः**। ननु मन्त्रे श्वेतवहेत्यादिना डसि कृते सौ 'अत्वसन्तस्य' इति दीर्घे रुत्वे च श्वेतवा इत्यादि सिद्धेर्नार्थोऽनेन योगेनेत्याशङ्क्याह एते सबुद्धाविति संबुद्धौ हि 'अत्वसन्तस्य' इति न प्राप्नोति, तत्रासंबुद्धावित्यनुवर्तनात्। ३४१७ **विजुपे**। ननु छन्दसीति व्यर्थं मन्त्रे इत्यनुवृत्तेरेव भाषायां न भविष्यतीति चेत्। सत्यम्। ब्राह्मणसंग्रहार्थं छन्दोग्रहणम्। मन्त्रव्यतिरिक्तो वेदभागो ब्राह्मणम्। तदुक्तम् 'तच्चोदकेषु मन्त्राख्या शेषे ब्राह्मणशब्दः'॥ ३४१८ **सुधीवा**। सुपीवेति 'घुमास्था' इतीत्वम्॥ कीलालपा इति। कीलालं जलम्। पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम् इत्यमरः। तत् पिबतीति। 'पा पाने' विच्॥ ३४१९ **उपपदान्तरेऽपीति**। ब्रह्मभ्रूणवृत्रभिन्नेष्वपीत्यर्थः॥ **आततानेति**। 'णलुत्तमो वा' इति णित्त्वपक्षे वृद्धिः। **अररवानिति**। रा दाने। लिटः क्वसुः। 'वस्वेकाजाद्घसाम्' इत्यादन्तत्वादिट्। ततो नञ्समासः। 'दीर्घादटि' इति वक्ष्यमाणेन नस्य रुत्वम् 'आतोऽटि नित्यम्'

चक्राणा वृष्णिम्। यो नो अग्ने अररीवाँ अघायुः। '**णेश्छन्दसि**' ३११७। ण्यन्ताद्धातोश्छन्दसि इष्णुच् स्यात्तच्छीलादौ। वीरुधः पारयिष्णवः। '**भुवश्च**' ३११८। अस्मात्केवलात्प्रागवत्। भविष्णुः। ※ **छन्दसि परेच्छायां क्यच उपसंख्यानम्**। '**क्याच्छन्दसि**' ३१५०। उप्रत्ययः स्यात्। अघायुः। ※ **एरजधिकारे जवसवौ छन्दसि वाच्यौ**। जवे याभिर्यूनः। ऊर्वोर्मे जवः। देवस्य सवितुः सवे। २४२०। **मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः**। ३। ३। ९६। वृषादिभ्यः क्तिन्स्यात्स चोदात्तः। वृष्टिं दिवः। सुम्नमिष्टये। पचात्पक्तीरुत। इयं ते नव्यसी मतिः। वित्तिः। भूतिः। अग्न आ याहि वीतये। राती स्यामभयासः। २४२१ **छन्दसि गत्यर्थेभ्यः**। ३। ३। १२९। ईषदादिषूपपदेषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि युच् स्यात्। खलोऽपवादोः। सूपसदनोऽग्निः। ३४२२। **अन्येभ्योऽपि दृश्यते**। ३। ३। १३०। गत्यर्थेभ्यो येऽन्ये धातवस्तेभ्योऽपि छन्दसि युच् स्यात्। सुवेदनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम्। ३४२३। **छन्दसि लुङ्लङ्लिटः**। ३। ४। ६। धात्वर्थानां संबन्धे सर्वकालेष्वेते वा स्युः। पक्षे यथास्वं प्रत्ययाः देवो देवेभिरागमत्। लोडर्थे लुङ्। इदं तेभ्योऽकरं नमः। लङ्, अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः। लिट् अद्य ममार। अद्य म्रियत इत्यर्थः। ३४२१। **लिङर्थे लेट्**। ३। ४। ७। विध्यादौ हेतुहेतुमद्भावादौ च धातोर्लेट् स्याच्छन्दसि। ३४२५। **सिब्बहुलं लेटि**। ३। ४। ३४। ३४२६। **इतश्च लोपः परस्मैपदेषु**। ३। ४। ९७। लेटस्तिङामितो लोपो वा स्यात्परस्मैपदेषु। ३३२७। **लेटोऽडाटौ**। ३। ४। ९४। लेटः, अट् आट् एतावागमौ स्तस्तौ च पितौ ※ **सिब्बहुलं णिद्वक्तव्यः**। वृद्धिः प्र ण आयूंषि तारिषत्। सुपेशसस्करति जोषिषद्धि। आ साविषदर्शसानाय सिप इलोपस्य चाभावे। पताति दिद्युत्। प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति। ३४२८। **स उत्तमस्य**। ३। ४। ९८। लेडुत्तमसकारस्य वा लोपः स्यात् करवावः। टेरेत्वम्। ३४२९। **आत ऐ**। ३। ४। ९५। लेट आका-

---

इति रोः पूर्वस्यातो नित्यमनुनासिकः। प्रसङ्गादघायुशब्दं साधयितुमाह ※ छन्दसीति। 'सुप आत्मनः' इत्यत्र आत्मनः इति विशेषणात्परेच्छायां न प्राप्नोतीति **वचनम्**॥ क्याच्छन्दसि। 'सनाशंसभिक्ष उः' इत्यत उरिति वर्तते क्यन्ताद्धातोरुः स्याच्छन्दसि॥ अघायुरिति। परस्याघमिच्छतीत्यर्थे क्यच्, 'अश्वाघस्यात्' इति वक्ष्यमाणेनाकारादेशः। तदन्तादुप्रत्ययः॥ **जवसवाविति**। जु इति सौत्रो धातुः। षूङ् प्राणिगर्भविमोचने, षु प्रसवैश्वर्ययोरिति वा। आभ्यां 'ऋदोरप्' इति अपि प्राप्तेऽज्विधीयते। स्वरे भेदः॥ ३४२० **मन्त्रे वृषेष**। 'स्त्रियां क्तिन्' इत्यतः क्तिन्निति वर्तते। वीरा इति शश्चम्यर्थे प्रथमा, तदाह वृषादिभ्य इति। वृष्टिमिति। वृषु सेचने॥ इष्टये इति। इषु इच्छायाम्। चतुर्थ्येकवचनम्॥ मतिविति। मन ज्ञाने क्तिन्। 'अनुदात्तोपदेश' इत्यनुनासिकलोपः॥ **वित्तिरिति**। विद सत्तायाम्। कित्त्वान्न लघूपधगुणः॥ **वीतये इति** वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु॥ **रातावित**ि। रा दाने॥ ३४२३ **छन्दसि लुङ्लुङ्लिटः**। उदाहरणेषु धातुसंबन्धो मृग्यः॥ **आगमदिति**। गम्लृ गतौ 'पुषादि' इति लृदित्त्वादङ्॥ **अकरमिति**। 'कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि' इति च्लेरङ्। 'ऋदृशोऽङि' इति गुणः॥ **अवृणीतेति**। वृञ् वरणे। लङ्। 'क्र्यादिभ्यः श्ना' 'ई हल्यघोः' इतीत्वम्॥ ३४२६ **इतश्च**। 'लेटोऽडाटौ' इत्यतो लेट इति 'वैतोऽन्यत्र' इत्यतो वेति चानुवर्तते, तदाह लेट इत्यादि॥ ३४२७ **लेटो**॥ आगमौ स्त इति। तौ च पर्यायेण न तु यौगपद्येन, अड्विधिसामर्थ्यात्, अन्यथा सवर्णदीर्घे कृते विशेषाभावात्॥ अडुत्तमस्य इति सूत्रान्मण्डूकप्लुत्या पिच्चेत्यनुवर्तत इत्याशयेनाह **तौ च पिताविति**। तत्फलं तु 'विक्रन्दसी एर्वरासु व्रतैते' इत्यादिषु गुणः॥ वृद्धिरिति। 'अचोऽञ्णित' इत्यनेन॥ **तारिषदिति**। तॄ प्लवनतरनयोः। तिप इकारलोपः। सिप् इट्॥ **जोषिषदिति**। जुषी प्रीतिसेवनयोः। अनुदात्तेत्। व्यत्ययेन परस्मैपदम्॥ ३४२८ **आ साविषदिति**। आङ्पूर्वात् 'षु प्रसवैश्वर्ययोः' इत्यस्माल्लेट॥ पतातीति। 'पत्लृ पतने' तिप्। आडागमः॥ **करवावेति**। कृञो लेटो वस्, 'तनादिकृञ्भ्य' इति उः। गुणः, रपरः। 'लेटोऽडाटौ' इत्याट्, तस्य पित्त्वेनाङित्त्वाद्विकरणस्य गुणः। 'अत उत्सार्वधातुके' इत्युत्वाभावश्च। 'मदी हर्षे' णिच्, तदन्ताल्लेट्। आतामि कृते आह टेरेत्वमिति। 'टित आत्मनेपदानां' इत्यनेन॥ ३४२९ **आकारस्येति**। प्रथमस्येत्यर्थः। द्वितीयस्य 'टित आत्मनेपदानाम्'

रस्य ऐ स्यात्। सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते। आतामित्याकारस्य ऐकारः। विधिसामर्थ्यादाट ऐत्व न। अन्यथा हि ऐटमेव विदध्यात्। यो यजाति यजात इत्। ३४३०। **वैतोऽन्यत्र**। ३।४।९६। लेट एकारस्य ऐ स्याद्वा 'आत ऐ' ३४२९ इत्यस्य विषयं विना। पशूनामीशै। ग्रहा गृह्यान्तै। अन्यत्र किम्। सुप्रयसा मादयते। ३४३१। **उपसंवादाशङ्कयोश्च**। ३।४।८। पणबन्धे आशङ्कायां च लेट् स्यात्। अहमेव पशूनामीशै। नेज्जिह्मा यन्तो नरकं पताम। **'हल इनः शानज्झौ'** २५५७। ३४३२। **छन्दसि शायजपि**। ३।१।८४। अपिशब्दाच्छानच्॥ *** हृग्रहोर्भश्छन्दसि**। इति हस्य भः। गृभाय जिह्वया मधु। बधान देव सवितः, 'अनिदितां' ४१५ इति बध्नातेर्नलोपः। गृभ्णामि ते। मध्वा जभार। ३४३३। **व्यत्ययो बहुलम्**। ३।१।८५। विकरणानां बहुल व्यत्ययः स्यात् छन्दसि। आण्डा शुष्णस्य भेदति। भिनत्तीति प्राप्ते। जरसा मरते पतिः। म्रियत इति प्राप्ते। इन्द्रो वस्तेन नेषतु, नयोतेर्लोट् शप्सिपौ द्वौ विकरणौ। इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्। तरेमेत्यर्थः। तरतेर्विध्यादौ लिङ्, उ शप् सिप् चेति त्रयो विकरणाः॥

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च। व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिध्यति बाहुलकेन॥१॥ धुरि दक्षिणायाः। दक्षिणस्यामिति प्राप्ते। चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति। तक्षन्ती प्राप्ते उपग्रह परस्मैपदात्मनेपदे। ब्रह्मचारिणमिच्छते। इच्छतीति प्राप्ते। प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यति। युध्यत इति प्राप्ते। मधोस्तृप्ता इवासते। मधुन इति प्राप्ते। नरः पुरुषः। अधा स वीरै र्दशभिर्वियूयाः। वियूयादिति प्राप्ते। कालः कालवाची प्रत्ययः। श्वोऽग्नीनाधास्यमानेन, लुटो विषये लृट्। तमसो गा अदुक्षत्। अधुक्षदिति प्राप्ते। मित्र वयं च सूरयः। मित्रा वयमिति प्राप्ते। स्वरव्यत्ययस्तु वक्ष्यते। कर्तृशब्दः कारकमात्रपरः। तथा च तद्वाचिनां कृत्तद्धितानां व्यत्ययः। अन्नादाय। अण्विषये अच्। अवग्रहे

इत्यनेनैत्वमेव, नित्यत्वात्। न च शब्दान्तरप्राप्त्याऽनित्यत्वम्, कृताकृतप्रसङ्गित्वमात्रेण क्वचिन्नित्यताश्रयणात्। उत्तरसूत्रेऽन्यत्रेति लिङ्गाच्च। आट एत्वं नेत्युक्तं, तस्य फलमाह—**यजाति यजात इति**। यज देवपूजादौ। लेट आडागमः॥ ३४३० **वैतो**। अन्यत्वं किमनूक्ष्येत्याकाङ्क्षायां पूर्वसूत्रविषयादिति लभ्यते, सन्निधानात्। तदाह **आत इत्यादि**। ईशै इति। ईश ऐश्वर्ये। उत्तमैकवचनमिट्। इतश्च इति लोप नास्ति परस्मैपदेषु इत्युक्तेः। टेरेत्वे तस्य ऐः। गृह्यान्ता इति ग्रहेः कर्मणि लेट् भिः। तस्याडागमः। यक् ग्रहिज्या इति संप्रसारणं टेरेत्वं पूर्ववदैत्वम्॥ ३४३१ **पण बन्ध इति**। यदि मे भवानिद कुर्यात्तर्हीदमहं दास्यामीति समयकरणं पणबन्धः। आशङ्का संभावना॥ **अहमेवेति**। त्रिपुरविजये देवैः प्रार्थितस्य रुद्रस्येदं वचनम्। पशवः संसारिणः। **नेदिति**। इच्छब्द आशङ्कां द्योतयति। जिह्माचरणेन नरकपातः स माभूदित्यर्थः। **पतामेति**। 'स उत्तमस्य' इति सलोपः॥ ३४३२ **छन्दसि साय**। छन्दसि श्नः शायजप्यादेशः स्याद्धौ परे॥ **गृभायेति**। ग्रह उपादाने। लोटः सेर्हिः, 'क्र्यादिभ्यः श्ना', 'ग्रहिज्या' इति संप्रसारणम्॥ **बधानेति**। बन्ध बन्धने। 'अतो हेः' इति हेर्लुक्॥ प्रसङ्गात् 'हृग्रहोर्भश्छन्दसि' इत्यस्योदाहरणमाह **गृभ्णामीति**। **जभारेति**। हृञ् हरणे। लिटो णलि वृद्धौ हस्य भः। गृह्णामि, जहारेत्यर्थः॥ ३४३३ **भेदतीति**। भिदिर् विदारणे, रौधादिकः। श्नमि प्राप्ते शप्। **म्रियत इति**। मृङ् प्राणत्यागे। 'तुदादिभ्यः' इति शे कृते 'रिङ् शयग्लिङ्क्षु' इति रिङादेशः, इयङ्॥ **नेषत्विति**। नयत्वित्यर्थः। **द्वौ विकरणाविति**। तत्र शप् न्यायः, सिप्तु बाहुलकात्। एतेन 'सेमामविड्ढि' इत्यादि व्याख्यातम्। 'अव रक्षणे' अस्माल्लोटि शपि प्राप्ते बाहुलकात्सिप् 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' षत्वं, जश्त्वम्॥ **तरुषेमेति**। 'तरुष मस्' इति जाते यासुट्। 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य'। नित्यं ङितः। अतो येयः। लोप व्योर्वलि। आद्गुणः। अत्रोप्रत्ययान्तस्य सिपं प्रत्यङ्गत्वात् 'सार्वधातुक' इति गुणः प्राप्तः। सिबन्तस्य शपि लघूपधगुणश्च प्राप्तो बाहुलकान्न भवति॥ **सुप्तिङिति**। शास्त्रकृत्पाणिनिराचार्य एषां सुप्प्रभृतीनां व्यत्ययमिच्छति। सोऽपि तथाविधो व्यत्ययो बाहुलकेन सिध्यति। बहुलस्य भावो बाहुलकम्। मनोज्ञादित्वाद्वुञ्। तत्पुनर्बहुलशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्त बह्वर्थादानम्। चशब्दो हेतौ। यस्मादेवमुक्तप्रकारो व्यत्ययो बहुलग्रहणेनैव सिध्यति, तस्माद्बहुलग्रहणं कृतमित्यर्थः। वियूया इति। 'यु मिश्रणे' विपूर्वः। आशिषि लिङ्। **आधास्यमानेनेति**। आङ्पूर्वाद्दधातेः 'लृटः सद्वा' इत्यनेन शानजादेशः

विशेषः। यङो यशब्दादारभ्य 'लिङ्याशिष्यङ्' ३४३४ इति ङकारेण प्रत्याहारः। तेषां व्यत्ययो 'भेदति' इत्यादिरुक्त एव। ३४३४। **लिङ्याशिष्यङ्**। ३। १। ८६। आशीर्लिङि परे धातोरङ् स्याच्छन्दसि। 'वच उम्' २४५४ मन्त्रं वोचेमाग्नये। ❋ दृशेरग्वक्तव्यः। पितरं च दृशेय मातरं च। अङि तु **'ऋदृशोऽङि'** इति गुणः स्यात्। ३४३५। **छन्दस्युभयथा**। ४। ४। ११७। धात्वधिकारे उक्तः प्रत्ययः सार्वधातुकार्धधातुकोभयसंज्ञः स्यात्। **वर्धन्तु** त्वा सुष्टुतयः। वर्धयन्त्वित्यर्थः। आर्धधातुकत्वाण्णिलोपः। विशृण्विरे, सार्वधातुकत्वात् श्नः श्रृभावश्च, 'हुश्नुवोः' २३८७ इति यण्। **'आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च'** ३१५१। आदन्तादृवर्णान्ताद्गमादेश्च किकिनौ स्तस्तौ च लिड्वत्। बभ्रिर्वज्रम्। पपिः सोमं। ददिर्गाः। जग्मियुर्वा जघ्निर्वृत्रममित्रियम्। जज्ञिः। लिड्वद्भावादेव सिद्धे 'ऋच्छत्यॄताम्' २३८३ इति गुणबाधनार्थं कित्त्वम्। 'बहुलं छन्दसि' ३५७८ इत्युत्वम्, ततुरिः। जगुरिः। ३४३६। **तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः**। ३। ४। ९। से, वक्षे रायः। सेन्, ता वामेषे। असे, शरदो जीवसे धाः असेन्, नित्त्वादाद्युदात्तः। क्से, प्रेषे। कसेन्, गवामिव श्रियसे। अध्यै अध्यैन्। पक्षे नित्स्वरः। शध्यै, राधमः सह मादयध्यै। शध्यैन्, वायवे पिबध्यै। तवै, दातवा उ। तवेङ्, सूतवे। तवेन्, कर्तवे। ३४३७। **प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै**। ३। ४। १०। एते तुमर्थे निपात्यन्ते। प्रयातुं रोढुम् अव्यथितुमित्यर्थः। ३४३८।

'स्यतासी' इति स्यः। 'आमे मुक्' इति मुक्। **मित्र वयमिति**। दीर्घस्य ह्रस्वव्यत्ययः॥ **स्वरव्यत्ययस्त्विति** 'गवामिव श्रियसे' इत्यत्र 'तुमर्थे' इत्यनेन कसेनि कृते 'ञ्नित्यादि' इत्याद्युदात्ते प्राप्ते व्यत्ययेन मध्योदात्तता कृत्तद्धितानामिति। 'तेन दीव्यति' इत्यादौ विधीयमानानां ठगादीनां देवनादिकर्तृत्वादेवमुक्तम्। न त्विह कारकवाचित्वेऽप्याग्रहः, कृत्तद्धितमात्रे तात्पर्यात्। तथा च किमो विहितो डतिर्यच्छब्दादपि भवति। 'त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः'। 'विश्वोदेवासो मरुतो यतिष्ठन'। **अन्नादायेति**। अन्नमत्तीत्यन्नादः तस्मै। अग्ने कर्मण्युपपदेऽदेः कर्मण्यणि प्राप्तेऽच॥ **अवग्रह इति**। अणि कृते अन्न आदायेति, अचि तु—अन्न आदयेति भावः॥ ३४३४ **वोचेमेति**। वचेराशीर्लिङो मस्, अङ्। वच उम्, यासुट्॥ ३४३५ **छन्दस्युभयथेति**। लिङः सार्वधातुकसंज्ञाऽप्यस्ति, तेन यासुट् इयादेशः। वलिलोपः। आह। परार्थे प्रयुज्यमानाः शब्दा वतिमन्तरेणापि वत्यर्थं गमयन्ति, गौर्वाहीक इतिवदित्याशयेनाह लिड्वदिति। किकिनौ भवत लिट् प्रत्ययश्च भवतीत्ययमर्थस्तु न भवति। तथा हि सति 'लिट्किकिन.' इत्येव ब्रूयात्। **बभ्रिरिति**। 'भृञ्' अस्मात् किः। लिड्वद्भावाद्द्वित्वम्। किकिनोः स्थाने तिवादयस्तु न, लिड्वदित्यतिदेशेन स्वरूपाबाधेनैव कार्यातिदेशात्। 'न लोकाव्यय' इति षष्ठीनिषेधे वज्रशब्दाद्द्वितीया॥ **जग्मिरिति**। 'गमहन' इत्युपधालोपः। **जघ्निरिति**। 'हो हन्तेः' इति कुत्वम्॥ जज्ञिरिति। श्चुत्वम्। जञोर्ज्ञः॥ **ननु लिड्वद्भावे सति 'असंयोगाल्लिट् कित्'** इत्येव सिद्धे कित्त्वकरणनमर्थकमित्याशङ्क्याह लिड्वद्भावादिति। 'असंयोगाल्लिट् कित्' इति कित्त्वं सिद्धमिति भावः। आदिति मुखसुखार्थो दकारो न तु तकारः। तेन तात्परत्वाभावाद्दीर्घस्यापि **ऋकारस्य** ग्रहणं, तदाह ततुरिः। जगुरिरिति। तॄ प्लवनतरणयोः। गॄ निगरणे। आभ्यां किः। द्वित्वात्परत्वात् 'बहुलं छन्दसि' इत्युत्वे प्राप्ते 'द्विर्वचने' इति निषेधादुत्वाभावे द्वित्वम्। उरदत्वम्। उत्तरस्योत्वम्॥ ३४३६ **तुमर्थे**। तुमुनोऽर्थः तुमर्थो भावः॥ ननु 'कर्तरि कृत्' इति वचनात्कर्तरि तुमुनो विधानात्कथं भावोऽर्थ इति चेत्, शृणु 'अव्ययकृतो भावे' इति वचनात्तुमुनो भावे विधानात्। तुमर्थे पञ्चदश प्रत्यया भवन्ति वक्षे इति। वचः से कुत्वम्, षत्वम्। कषसंयोगे क्षः॥ **एषे इति**। इणो गुणः। नकारो 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इत्याद्युदात्तार्थः॥ **प्रेषे इति**। इणः से कित्त्वादगुणे आद्गुणः॥ **श्रियसे इति**। इयङ् नित्त्वादाद्युदात्तः। इह मन्त्रे मध्योदात्तः पठ्यते। तत्र बाहुलकात्प्रत्ययस्वरो बाध्यः॥ **आहुवध्यै इति**। जुहोतेरुवङ्।— **मादयध्यै इति**। 'मदी हर्षे' ण्यन्तात् शध्यैप्रत्ययः। तस्य भाववाचिसार्वधातुकत्वात् 'सार्वधातुके' इति यकि प्राप्ते व्यत्ययेन शप् गुणायादेशौ। **पिबध्यै इति**। अत्रापि यक्प्रसङ्गे व्यत्ययेन शप्। पाघ्रा इति पिबादेशः **दातवा उ इति**। ददातेस्तवै आयादेशे 'लोपः शाकल्यस्य' इति यलोपः॥ **सूतवे इति**। ङित्त्वान्न गुणः॥ **कर्तव इति**। कृञो गुणः। कर्तुमित्यर्थः॥ ३४३७ **प्रयै**। प्रपूर्वाद्यातेः कैप्रत्ययः। रुहेरिष्यै। नञ्पूर्वाद्व्यथेश्च

दृशे विख्ये च । ३ । ४ । ११ । द्रष्टुं विख्यातुमित्यर्थः । ३४३९ । **शकि णमुल्कमुलौ** । ३ । ४ । १२ । शक्नोतावुपपदे तुमर्थे एतौ स्तः । विभाजं नाशकत् । अपलुपं नाशकत् । विभक्तुम् अपलोप्तुमित्यर्थः । ३४४० । **ईश्वरे तोसुन्कसुनौ** । ३ । ४ । १३ । ईश्वरो विचरितोः । ईश्वरो विलिखः । विचरितुं विलेखितुमित्यर्थः । ३४४१ । **कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः** । ३ । ४ । १४ न म्लेच्छितवै । अवगाहे । दिदृक्षेण्यः । भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् । ३४४२ ।**अवचक्षे च** । ३ । ४ । १५ । रिपुणा नावचक्षे । अवख्यातव्यमित्यर्थः । ३४४३ । **भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन्** । ३ । ४ । १६ । आसंस्थातोः सीदन्ति । आसमाप्तेः सीदन्तीत्यर्थः । उदेतोः । अपकर्तोः । प्रवदितोः । प्रचरितोः । होतोः । आअमितोः । काममाविजनितोः सभवामः' । ३४४४ । **सृपितृदोः कसुन्** । ३ । १ । १७ । भावलक्षणे इत्येव । पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । पुरा जत्रुभ्य आतृदः ॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः

३४४५ । **रात्रेश्चाजसौ** । ४ । १ । ३१ । रात्रिशब्दान्ङीप्स्यात् अजस्विषये छन्दसि । रात्रि व्यख्यदायती । लोके तु—(ग) **कृदिकारात्** इति ङीष्यन्तोदात्तः । ३४४६ । **नित्यं छन्दसि** । ४ । १ । ४६ । बह्वादिभ्यश्छन्दसि विषये नित्यं ङीष् । बह्वीषु हित्वा । नित्यग्रहणमुत्तरार्थम् । ३४४७ । **भुवश्च** । ४ । १ । ४७ । ङीष्

३४३८ दृश । योगविभागश्चिन्त्यप्रयोजनः । दृशेः ख्यातेश्च केप्रत्ययः । कित्त्वाद् दृशेर्न गुणः । ख्यातेरालोपश्च **३४३९ विभाजमिति** । विपूर्वाद्भजतेर्णमुल् । णित्वात् 'अत उपधायाः' इति वृद्धिः । **अपलुपमिति** । 'लुप्लृ छेदने' कित्त्वाद्गुणाभावः ॥ ३४४० **ईश्वरे** । ईश्वरशब्दे उपपदे धातोस्तोसुन्कसुनौ स्तश्छन्दसि ॥ **विचारितोरिति** । चर गताविट् । **विलिख इति** । लिख विलेखने' कित्त्वान्न गुणः । 'क्त्वातोसुन्कसुनः' इत्यव्ययत्वात् 'अव्ययादाप्सुपः' इति विभक्तेर्लुक्, 'न लुमता' इति निषेधाद् 'अत्वसन्तस्य' इति दीर्घो न । ३४४१ **कृत्यार्थे** । कृत्यानामर्थो भावकर्मणी, 'तयोरेव' इति कृत्यानां भावकर्मणोर्विधानात् । तत्र एते प्रत्ययाः स्युः । यद्यपि कृत्यानामर्थो 'भव्यगेय' इत्यादौ कर्ताऽपि, बह्व्यं स्नानीयमित्यादौ करणादिरपि, तथापि न तत्र कृत्यत्वेन कर्त्रादिषु विधानं । किं तर्हि ? स्वरूपेण । कृत्यतया विधानं तु भावकर्मणोरेवेति भावः ।— **न म्लेच्छितवै इति** । न म्लेच्छितव्यमित्यर्थः ॥ **अवगाहे इति** । गाहू विलोडने । **दिदृक्षेण्य इति** । दृशेः सन्नन्तात्केन्यः । अतो लोपः । कर्त्वमिति । कृञः त्वन् । कृत्यमित्यर्थः । यद्यपि 'तुमर्थे सेसेन्' इत्यनेन तुमर्थे तवै विहितस्तथापि भावभिन्नेऽपि कर्मकारके तवै यथा स्यादित्येवमर्थम् ॥ ३४४२ **अवचक्षे** । अवपूर्वाच्चक्षिङ एश्प्रत्ययो निपात्यते । शित्त्वात्सार्वधातुकत्वं । तेन ख्याञादेशो न ॥ ३४४३ **भावलक्षणे** । कृत्यार्थे इति निवृत्तम् । तुमर्थे इति वर्तते । प्रकृत्यर्थविशेषणं भावलक्षणग्रहणम् । भावो लक्ष्यते येन तस्मिन्नर्थे वर्तमानेभ्यः स्थादिभ्यो धातुभ्यस्तुमर्थे तोसुन् स्याच्छन्दसि । संस्थानादिनामवधित्वेन लक्षणं भावः । **आ समाप्तेरिति** । संपूर्वो हि तिष्ठतिः समाप्तौ रूढः, संतिष्ठते पिण्डपितृयज्ञ इत्यादौ तथा दर्शनात् ॥ **आतमितोरिति** । तमु ग्लानौ ॥ ३४४४ **सृपितृदोः** । सृप्लृ गतौ । उतृदिर् हिंसाऽनादरयोः । भावलक्षणेऽर्थे वर्तमानयोः सृपितृदोस्तुमर्थे कसुन् स्यात् । **विसृप इति** । गमनादित्यर्थः ॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

३४४५ **रात्रेश्चाजसौ** । न जसिः अजसिस्तस्मिन् । इकार उच्चारणार्थः । 'आहो प्रभूतादिभ्यः' इतिवत् ॥ **छन्दसीति** । ननु 'तिमिरपटैरवगुण्ठिता रात्र्यः' इति प्रयोगो न स्यात् । छन्दसीत्युच्यते । न चेदं छन्दः । अजसाविति निषेधाच्च । किं च वेदेऽपि रात्र्य इति प्रयोगो न स्यात् इत्याशङ्क्याह लोके त्विति । तुशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । लोके जसि वेदे चेत्यर्थः । **कृदिकारादिति** । राशदिभ्यां त्रिरिति व्युत्पत्तिपक्षे कृदिकारान्तः । अव्युत्पत्तिपक्षे तु 'सर्वतोऽक्तिन्नर्थात्' इति ङीष् बोध्यः ॥ ३४४६ **नित्यम्** । 'बह्वादिभ्यश्च' इति वर्तते 'अन्यतो ङीष्' इत्यतो ङीषिति च । तदाह बह्वादिभ्य इति । नन्वारम्भसामर्थ्यादेव नित्यत्वे सिद्धे नित्यग्रहणं व्यर्थमित्याशङ्क्याह नित्यग्रहणमुत्तरार्थमिति । ३४४७ **भुवः** । विभ्वीति । 'विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम्' इति डुप्रत्ययान्तात् ङीष् ॥ ननु स्वयंभूरत्रापि स्यादित्याशङ्क्याह डुप्रत्ययान्तमिति ॥ न

स्यात् छन्दसि । विभ्वी, प्रभ्वी । 'विप्रसंभ्य' ३१६० इति डुप्रत्ययान्तं सूत्रेऽनुक्रियते, उत इत्यनुवृत्तेः । उवङादेशस्तु सौत्रः । ※ **मुद्गलाच्छन्दसि लिच्च** । ङीपो लित्वमानुक् चागमः । लित्स्वरः । रथीरभून्मुद्गलनी । ३४४८ । **दीर्घजिह्वी च छन्दसि** । ४ । १ । ५९ । संयोगोपधत्वादप्राप्तो ङीष् विधीयते । आसुरी वै दीर्घजिह्वी देवानां यज्ञवाट् । ३४४९ । **कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि** । ४ । १ । ७१ । ऊङ् स्यात् । कद्रुश्च वै कमण्डलूः ।। ※ **गुग्गुलुमधुजतुपतयालूनामिति वक्तव्यम्** । गुग्गुलूः । मधूः । जतूः । पतयालूः । 'अव्ययात्त्यप्' १३२४ । ※ आविष्ट्यस्योपसंख्यानं छन्दसि । आविष्ट्यो वर्धते । ३४५० । **छन्दसि ठञ्** । ४ । ३ । १९ । वर्षाभ्यष्ठकोऽपवादः । स्वरे भेदः । वार्षिकम् । ३४५१ । **वसन्ताच्च** । ४ । ३ । २० । ठञ् स्यात् छन्दसि । वासन्तिकम् । ३४५२ । **हेमन्ताच्च** । ४ । ३ । २१ । छन्दसि ठञ् । हैमन्तिकम् । योगविभाग उत्तरार्थः । **'शौनकादिभ्यश्छन्दसि'** १३८३ । णिनिः प्रोक्तेऽर्थे । छाणोरपवादः । शौनकेन प्रोक्तमधीयते । शौनकिनः । वाजसनेयिनः । छन्दसि किम् । शौनकीया शिक्षा । ३४५३ । **द्व्यचश्छन्दसि** । ४ । ३ । १५० । विकारे मयट् स्यात् । शरमयं बर्हिः । यस्य पर्णमयी जुहूः । ३४५४ । **नोत्वद्वर्ध्रबिल्वात्** । ४ । ३ । १५१ । उत्वान् उकारवान् । मौञ्ज शिक्यम् । वर्ध्रं चर्म, तस्य विकारो वार्ध्री रज्जुः । बैल्वो यूपः । **'सभाया यः'** १६५७ । ३४५५ । **ढश्छन्दसि** । ४ । ४ । १०६ । सभेयो युवा । ३४५६ । **भवे छन्दसि** । ४ । ४ । ११० । सप्तम्यन्ताद्भवार्थे यत् । मेघ्याय च विद्युत्याय च । यथायथं शैषिकाणामणादीनां घादीनां चापवादोऽयं यत् पक्षे तेऽपि भवन्ति, सर्वविधीनां छन्दसि वैकल्पिकत्वात् । तद्यथा मुञ्जवान्नाम पर्वतः, तत्र भवो मौञ्जवतः सोमस्येव मौञ्जवतस्य भक्षः । आ चतुर्थसमाप्तेश्छन्दोऽधिकारः । ३४५७ । **पाथोनदीभ्यां ड्यण्** । ४ । ४ । १११ । अमुत्या पाथ्यो वृषा । चनो दधीत नाद्यो गिरो मे । पाथसि भवः पाथ्यः । नद्यां भवो नाद्यः । ३४५८ । **वेशन्तहिमवद्भ्यामण्** । ४ । ४ । ११२ । भवे । वैशन्तीभ्यः स्वाहा हैमवतीभ्यः स्वाहा । ३४५९ । **स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ** । ४ । ४ । ११३ । पक्षे यत् । ड्यड्ड्ययोस्तु स्वरे भेदः । स्रोतसि भवः स्रोत्यः स्रोतस्यः । ३४६० । **सगर्भसयूथसनुताद्यन्** । ४ । ४ । ११४ । अनुभ्रात सगर्भ्यः । अनुसखा सयूथ्यः । यो नः

तर्हि डुप्रत्ययान्तस्य 'घेर्ङिति' इति गुणे कृते 'भोः' इति निर्देशः प्राप्नोति, तदाह उवङादेशस्तु सौत्र इति । ※ **मुद्गला** । 'इन्द्रवरुण' इति सूत्रस्थं वार्तिकमिदम् । **लित्स्वर इति** । लितीत्यानुगाकारस्योदात्तत्वम् ।। ३४४८ । **दीर्घजिह्वी** । दीर्घजिह्वीति निपात्यते छन्दसि ।। **अप्राप्तो ङीषिति** । 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्' इति न प्राप्नोति, तत्र ह्यसंयोगोपधादिति प्रतिषेधात् ।। ३४४९ **कद्रु** । 'ऊङुतः' इत्यत ऊङिति वर्तते, कद्रुशब्दात्कमण्डलुशब्दाच्च स्त्रियामूङ् स्याच्छन्दसि ।। गुग्गुलुमधु । एषां व्यत्ययेन छन्दसि स्त्रीत्वम् । पतयालुशब्दः 'स्पृहिगृहि' इत्यादिना आलुजन्तः ।। **अव्यया** । व्याख्यातमपि त्यबनुवृत्तिप्रदर्शनार्थं स्मारितम् ।। **अविष्ट्यस्येति** । 'अव्ययात्त्यप्' इत्यत्र 'अमेहक्वतसित्रेभ्यः' इति नियमादप्राप्तः शैषिकस्त्यब् विधीयते । आविष्ट्य इति । आविर्भूतमाविष्ट्यम् । 'ह्रस्वात्तादौ' इति षत्वं, तकारस्य ष्टुत्वम् ।। ३४५० **ठकोऽपवादो इति** । 'वर्षाभ्यष्ठक्' इति प्राप्तस्य ।। ननु ठक्ठञोः को विशेषस्तत्राह स्वरे भेद इति । ठञि कृते 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इत्याद्युदात्तत्वं, ठकि तु सति 'कितः' इत्यनेनान्तोदात्तत्वं स्यादिति भावः । वार्षिकमिति । टस्येकः ।। ३४५२ **उत्तरार्थ इति** । 'सर्वत्राण् च तलोपश्च' इत्येतदर्थः । तत्र ह्यस्यैवानुवृत्तिर्यथा स्यात् वसन्तस्य माभूत ।। **शौनक** । 'काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः' इत्यतो णिनिरिति वर्तते, तदाह **णिनिरिति** ।। **प्रोक्ते इति** । 'तेन प्रोक्तम्' इत्येतस्मिन्नर्थे ।। **शौनकीयेति** । वृद्धाच्छः । ३४५३ **द्व्यचः** । 'मयड्वैतयोर्भाषायाम्' इत्युक्तेर्वेदेऽप्राप्तो विधीयते । ३४५४ **नोत्वत्** । उकारवतः प्रातिपदिकाद्वर्ध्रबिल्वशब्दाभ्यां च मयण्न स्यात् । **द्व्यचश्छन्दसि** इति प्राप्तः प्रतिषिध्यते ।। मौञ्जमिति । मुञ्जशब्दादौत्सर्गिकोऽण् ।। **वार्ध्रीति** । वर्ध्रशब्दादौत्सर्गिकोऽण् । 'टिड्ढाणञ्' इति ङीष् । ३४५५ **ढश्छन्दसि** । सप्तम्यन्ताभ्यामाभ्यां भवार्थे ड्यण् स्यात् ।। पाथसीति । पाथो जलम् । कबन्धमुदकं पाथः इत्यमरात् । 'पाथोऽन्तरिक्ष' इति वृत्तिः । ३४५९ **वैशन्तीभ्य इति** । विशेर्झच् । वेशन्तः पल्वलम् । तत्र भवा आपः वैशन्त्यः ।। ३४६० **सगर्भसयूथस** । अर्तिगृभ्यां भन् ।

सनुत्य उत वा जिगत्नुः। नुतिनुतम्। 'नपुंसके भावे क्तः' ३०९०। सगर्भादयश्चायोऽपि कर्मधारयाः। 'समानस्य छन्दसि' १०१३ इति सः। ततो भवार्थे यत्। यतोऽपवादः। ३४६१। **तुग्राद्धन्**। ४। ४। ११५। भवेऽर्थे। पक्षे यदपि। आ वः शमं वृषभं तुग्र्यासु इति बह्वृचाः। तुग्रियासु इति शाखान्तरे। घनाकाशयज्ञवरिष्ठेषु तुग्रशब्द इति वृत्तिः। ३४६२। **अग्राद्यत्**। ४। ४। ११६। ३४६३। **घच्छौ च**। ४। ४। ११७ चाद्यत्। अग्रे भवोऽग्र्यः। अग्रियः। अग्रीयः। ३४६४। **समुद्राभ्राद्घः**। ४। ४। ११८। समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणम्। नानदतो अभ्रियस्येव घोषाः। ३४६५। **बर्हिषि दत्तम्**। ४। ४। ११९। 'प्राग्घिताद्यत्' १६२६ इत्येव। बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु। ३४६६। **दूतस्य भागकर्मणी**। ४। ४। १२०। भागोंऽशः। दूत्यम्। ३४६७। **रक्षोयातूनां हननी**। ४। ४। १२१। या ते अग्ने रक्षस्या तनूः। ३४६८। **रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये**। ४। ४। १२२। प्रशंसने यत्स्यात्। रेवत्यादीनां प्रशंसनं रेवत्यम्। जगत्यम्। हविष्यम्। ३४६९। **असुरस्य स्वम्**। ४। ४ १२३। असुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम्। ३४७०। **मायायामण्**। ४। ४। १२४। आसुरी

गिरति गीर्यते वा गर्भः। युता भवन्त्यस्मिन्निति यूथम्। 'तिथपृष्ठयूथगूथप्रोथाः' इति थक्प्रत्ययान्तो निपातितः। दीर्घोऽपि निपातनादेव। कर्मधारया इति। समानश्चासौ गर्भश्च इति विग्रहः॥ **यतोऽपवाद इति**। 'भवे छन्दसि' इति प्राप्तस्य॥ ३४६२ **अग्राद्यत्**। 'भवे छन्दसि' इत्येव सिद्धे घादिभिर्बाधा मा भूदिति यद्विधीयते। ३४६४ **समुद्रा**। समुन्दतीति समुद्रः। 'स्फायितञ्चि' इति रक्। अपो बिभर्ति इत्यभ्रम्। मूलविभुजादित्वात्कः। अभ्रसमुद्रादिति वक्तव्ये समुद्राभ्रादित्युक्तिः पूर्वनिपातस्यानित्यत्वज्ञापनार्था॥ ३४६५ **बर्हिषि**। तत्र भव इति निवृत्तम्। बर्हिःशब्दाद्दत्तमित्यर्थे यत्प्रत्ययो भवति॥— **बर्हिष्येष्विति**। 'बृंहतेर्नलोपश्च' इनीस्प्रत्ययान्तो बर्हिस्तस्माद्यत्॥ ३४६६ **दूतस्य**। दूतशब्दात्षष्ठीसमर्थाद्भागे कर्मणि चाभिधेये यत्प्रत्ययः स्यात्। भागे तस्येदम् इत्यणि प्राप्ते वचनम्। कर्मणि तु दूतवणिग्भ्यां च' इत्यौपसंख्यानिके ये दूत्यमित्यादि। दूतस्य भागो दूत्यः, कर्म दूत्यम्॥ ३४६७ **रक्षोयातून म्**। षष्ठीबहुवचनान्ताभ्यां रक्षस्यातुशब्दाभ्यां हननीत्यस्मिन्नर्थे यत्स्यात्। रक्षेरसुनि रक्षः। 'कमिमनिजनि' इत्यादिना यातस्तुन्। यातुशब्दो रक्षःशब्दपर्यायः। न च 'विरूपाणामपि समानार्थानाम्' इत्येकशेष स्यादिति वाच्यम्। बह्वर्थाभिधायिस्वरूपवचनेन सूत्रे भिन्नार्थत्वात्॥ **रक्षस्येति**। हन्यतेऽनया सा हननी रक्षसाम्। एवं यातव्या। बहुवचनं स्तुतिवैशिष्ट्यज्ञापनाय। बहूनां रक्षसां हनने हि स्तुति प्रतीयते॥ ३४६८ **रेवतीजगती** प्रशंसनं प्रशस्यम्। प्रपूर्वात् 'शंसु स्तुतौ' इत्यस्माद्भावे क्यप्, न द ह— **प्रशंसने इति**। रयिरस्यास्तीति रेवती रयिशब्दान्मतुप्, 'छन्दसीरः' इति वत्वम्, 'रयेर्मतौ बहुलम्' इति संप्रसारणम्। उगित्त्वान्ङीप्, नक्षत्रे गौरादित्वान्ङीष्। जगच्छब्दात् 'वर्तमाने' इत्यनेन शतृवद्भावात् 'उगितश्च' इति ङीप्। हविषे हिता हविष्या उगवादित्वाद्यत्। तासां प्रशंसनं हविष्यं, यस्य इति लोपे कृते 'हलो यमां यमि' इति यलोपः॥ ३४६९ **असुरस्य स्वम्**। असुरशब्दात्षष्ठीसमर्थात्स्वमित्येतस्मिन्नर्थे यत्स्यात्। **असुर्यमिति**। न सुरोऽसुरः सुरप्रतिपक्षी। अथ वा असेरुरच्। अस्यति अस्यते वा असुरः। तस्य स्वमसुर्यम्॥ ३४७० **मायायामण्**। मीयतेऽनयेति माया असदर्थप्रकाशनशक्तिः। माङ औणादिक यः। तस्यां वाच्यायामसुरशब्दादण् स्यात्। पूर्वसूत्रापवादः॥—**असुरीति**। 'टिड्ढाणञ्' इति ङीष्॥ ३४७१ **तद्वनसा**। मत्वन्तात्प्रथमासमर्थादासामिति षष्ठ्यर्थे यत्स्यात्, तत्प्रथमासमर्थमुपधानो मन्त्रश्चेत्स भवति, यत्तदासामिति निर्दिष्टं इष्टकाश्चेत्ता भवन्ति। मतोश्च लुक्॥ **वर्चस्वानिति**। वर्चःशब्दो यस्मिन्मन्त्रेऽस्ति स वर्चस्वान्। कुम्भेष्टकोपधानमन्त्रः 'भूतं च स्थ भव्यं च स्थ देवस्य वः सवितुः प्रसवे' इत्यादिकः। उपधीयतेऽनेनेत्युपधानः। चयनं रचनमित्यर्थः। **ऋतव्या इति**। ऋतुशब्दो यस्मिन्मन्त्रेऽस्ति स ऋतुमान् स च मधुश्च माधवश्चेत्यादिकः। ऋतुमानुपधानो मन्त्र आसामिष्टकानाम् ऋतव्याः। तद्वानिति किम्? मन्त्रादेव समुदायान्माभूदिति काशिका। अत्र हरदत्त ननु तद्वानित्यस्मिन्नसति। 'समर्थानां प्रथमाद्वा' इति वचनादासामिति प्रथमानिर्दिष्टत्वात्षष्ठ्यन्तादिष्टकाभिधायिन उपधानमन्त्रे प्रत्ययः स्यादिति वाक्यार्थः स्यात्। तथा च समुदायान्न प्राप्नोतीति चेत्। सत्यम्।

माया। ३४७१। **तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः**।४।४।१२५। वर्चस्वानुपधानो मन्त्र आसामिष्टकानां वर्चस्याः। ऋतव्याः। ३४७२। **अश्विमानण्**।४।४।१२६। आश्विनीरुपदधाति। ३४७४। **वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप्**।४।४।१२७। 'तद्वानासाम्' ३४७१ इति सूत्रं सर्वमनुवर्तते। 'मतोः' इति पदमावर्त्य पञ्चम्यन्तं बोध्यम्। मतुबन्तो यो मूर्धशब्दस्ततो मतुप्स्यात्प्रथमस्य मतोर्लुक् च वयःशब्दवन्मन्त्रोपधेयास्विष्टकासु। यस्मिन्मन्त्रे मूर्धवयःशब्दौ स्तः, तेनोपधेयासु। मूर्धन्वतीरुपदधाति इति प्रयोगः। ३४७४। **मत्वर्थे मासतन्वोः**।४।४।१२८। नभोऽभ्रम्। तदस्मिन्नस्तीति नभस्यो मासः। ओजस्या तनूः ३४७५। **मधोर्ञ च**।४।४।१२९। चाद्यत्। माधवः। मधव्यः। ३४७६। **ओजसोऽहनि यत्खौ**।४।४।१३०। ओजस्यमहः, ओजसीनं वा। ३४७७। **वेशोयशआदेर्भगाद्यल्खौ**।४।४।१३१। * यथासंख्य नेष्यते। वेशो बलं तदेव भगः इति कर्मधारयः। वेशोभग्यः। वेशोभगिनः। यशोभग्यः। यशोभगिनः। ३४७८। **पूर्वैः कृतमिनयौ च**।४।४।१३२। गम्भिरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः। ये ते पन्थाः सेवितः

आसामिति प्रथमं न करिष्यति इति मत्वा प्रश्नप्रतिवचने, ततश्च 'उपधानो मन्त्र आसामिष्टकासु लुक् च मतोः' इति योगः करिष्यते। तथा च तद्वानित्यस्याभावे 'भूतं च स्थ भव्यं च स्थ' इत्ययमुपधानो मन्त्र आसामिष्टकानामिति वाक्यं स्यात्। तथा चेतिना परामृष्टान्मन्त्रसमुदायादेव प्रत्ययः प्राप्नोतीति भावः। उपधान इति किम्? वर्चस्वदभिमन्त्रणमासामित्यत्र माभूत्। 'शिवेन मा चक्षुषा' इत्यनुवाकः कुम्भेष्टकाभिमन्त्रणे विनियुक्तः। मन्त्र इति किम्? अङ्गुलिमानुपधानो हस्त आसामित्यत्र माभूत्। इष्टकास्विति किम्? वर्चस्यानुपधान आसां शर्कराणामित्यत्र माभूत्। इति करणं नियमार्थम्। अनेकपदसंभवे केनचिदेव पदेन तद्वान्मन्त्रो गृह्यते, न सर्वेण। मतुब्ग्रहणमुत्तरार्थम्। अश्विमानित्यत्र मतुप एव लुक् यथा स्यात्, इनेर्माभूत्। इह तु मत्वन्तात्प्रत्ययविधानात्तस्यैव लुक् भविष्यति॥ ३४७२ **अश्विमान्**। अश्विशब्दो यस्मिन्मन्त्रेऽस्ति सोऽश्विमान्मन्त्रः स च 'ध्रुवक्षितिः' इत्यादिकः। प्रथमान्तादश्विमच्छब्दादासामिति षष्ठ्यर्थे अण् स्यात् यत्प्रथमानिर्दिष्टमुपधानो मन्त्रश्चेत्स भवति। यत्तदासामिति निर्दिष्टमिष्टकाश्चेत्ता भवन्ति, मतोश्च लुक्॥ **अश्विनीरुपदधातीति**। अश्वशब्दात् 'अत इनिठनौ' इत्यस्त्यर्थे इनिः। तदन्तान्मतुप्। अश्विमान्स उपधानो मन्त्र आसामिष्टकानामिति विगृह्याणि विहिते मतोश्च लुकि कृते 'इनण्यनपत्ये' इति प्रकृतिभावः। ३४७३। **वयस्यासु**। वयस्वानुपधानो मन्त्र आसामिष्टकानां ताः वयस्याः, तास्वभिधेयासु प्रथमासमर्थान्मतुबन्तमूर्धशब्दादासामिति षष्ठ्यर्थे मतुप्स्यात्। यत्प्रथमानिर्दिष्टमुपधानो मन्त्रश्चेत्स भवति, यदासामिति निर्दिष्टमिष्टकाश्चेत्ता भवन्ति। यस्मिन्मन्त्रे मूर्धशब्दो वयःशब्दश्च विद्यते स मूर्धवान् वयस्वान्, यथा 'मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः' इति, तत्र वयस्वच्छब्दादिव मूर्धवच्छब्दादपि पूर्वेण यति प्राप्ते मतुब्विधीयते इत्याशयेनाह यस्मिन्मन्त्रे इति। मूर्धन्वतीरिति। 'अनोनुट्' इति नुडागमः। मूर्धवत इति वक्तव्ये भाविनं मतुब्लुकं चेतसि कृत्वा मूर्ध्न इत्युक्तम्॥ ३४७४ **मत्वर्थे**। यस्मिन्नर्थे मतुब्विहितस्तस्मिन्नर्थे प्रथमान्ताद्यत्स्यात् मासतन्वोरभिधेययोः॥ ननु प्रथमासमर्थमिति कस्मादागतमिति चेन्मत्वर्थग्रहणादित्यवेहि। 'कृपिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः' इति ऊकारान्तस्तनूशब्दः सूत्रे निर्दिष्टः। न तु 'भृमृशीङ्तृचरित्सरित्तनिधनिमिमस्जिभ्य उः' इत्युकारान्तः। 'द्वन्द्वे घि' इति पूर्वनिपातप्रसङ्गात्॥—**ओजस्या इति**। ओजो यस्या यस्यां वा अस्तीत्योजस्या॥ ३४७५ **मधोः**। मधुशब्दान्मत्वर्थे ञः स्याच्चाद्यत्॥—**मधव्या इति**। ओर्गुणः। 'वान्तो यि' इति अवादेशः। ३४७६ **ओजसोऽहनि**। ओजःशब्दान्मत्वर्थे यत्खौ स्तोऽहन्यभिधेये। ननु यद्ग्रहणं व्यर्थं, खश्चेत्येवास्त्विति चेन्मैवम्। खश्चेत्युच्यमानेऽनन्तरसूत्रविहितस्य ञमात्रस्य समुच्चयो विज्ञायेत, तस्माद्यद्ग्रहणम्॥ ३४७७ **वेशोयश**। वेशश्च यशश्च वेशोयशसी ते तादौ यस्य तस्माद्वेशोयशआदेर्भगात्प्रातिपदिकाद्यल्खौ स्तो मत्वर्थे। लकारः। स्वरार्थः॥ ३४७८ **पूर्विणेभिरिति**। पूर्वैः कृताः पूर्विणाः,

---

* यतेति—अत्र वृत्तिकृतः 'यल्, ख च' इति सूत्रं व्यभजन्। तत् 'यथासंख्यं नेष्यते' इति मूलविरुद्धं 'यथासंख्य' सूत्रस्थभाष्यविरुद्धं च।

पूर्व्यामः। ३४७९। अद्भिः संस्कृतम्। ४। ४। १३३। यस्येदमप्यं हविः। ३४८०। सहस्रेण संमितौ घः। ४। ४। १३४। सह स्त्रियासो अपां नोर्मयः। सहस्रेण तुल्या इत्यर्थः। ३४८१। मतौ च। ४। ४। १३५। सहस्रशब्दान्मत्वर्थे घः स्यात्। सहस्रमस्यास्तीति सहस्त्रियः। ३४८२। सोममर्हति यः। ४। ४। १३६। सोम्यो ब्राह्मणः। जज्ञार्ह इत्यर्थः। ३४८३। मये च। ४। ४। १३७। सोमशब्दाद्यः स्यान्मयडर्थे। सोम्यं मधुः। सोममयमित्यर्थः। ३४८४। मधोः। ४। ४ १३८। मधुशब्दान्मयडर्थे * यत्स्यात्। मधव्यः। मधुमय इत्यर्थः। ३४८५। वसो समूहे च। ४। ४। १३९। चान्मयडर्थे यत्। वसव्यः॥ * अक्षरसमूहे छन्दस उपसंख्यानम्। छन्दःशब्दादक्षरसमूहे वर्तमानात्स्वार्थे यदित्यर्थः। 'आश्रावय' इति चतुरक्षरम्, अस्तु श्रौषट् इति चतुरक्षरं, 'ये यजामहे' इति पञ्चाक्षरं, यज' इति द्व्यक्षरम्, 'द्व्यक्षरो वषट्कारः' एव वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः। ३४८६। नक्षत्राद्घः। ४। ४। १४०। स्वार्थे। नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा। ३४८७। सर्वदेवात्तातिल्। ४। ४। १४१। स्वार्थे। सविता नः सुवतु सर्वतातिम्। प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः। ३४८८। शिवशमरिष्टस्य करे। ४। ४। १४२। करोतीति करः, पचाद्यच्। शिवं करोतीति शिवतातिः। याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे। अथो अरिष्टतातये। ३४८९। भावे च। ४। ४। १४३। शिवादिभ्यो भावे तातिः स्याच्छन्दसि। शिवस्य भावः शिवतातिः। शन्तातिः। अरिष्टतातिः॥ इति चतुर्थोऽध्यायः॥

पञ्चमोऽध्यायः

३४९०। सप्तनोऽञ्छन्दसि। ५। १। ६१। 'तदस्य परिमाणम्' १७२३ इति 'वर्गे' इति च। सप्त साप्तानि असृजत्॥ * शन्शतोर्डिनिश्छन्दसि तदस्य परिमाणमित्यर्थे वाच्यः। पञ्चदशिनोऽर्धमासाः। त्रिंशिनो मासाः। * विंशतेश्चेति वाच्यम्। विंशिनोऽङ्गिरसः॥ * युष्मदस्मदोः सादृश्ये वतुब्वाच्यः॥ त्वावतः पुरूवसो। न त्वावाँ अन्यः। यज्ञं विप्रस्य मावतः। ३४९१। छन्दसि च। ५। १। ६७। प्रातिपदिकमात्रा१

तः। एवं पूर्व्यामः पूर्विणाः॥ ३४७९ अद्भिः। तृतीयान्तादप्शब्दात्संस्कृतमित्यर्थे यत्स्यात्॥ ३४८० सहस्रेण। तृतीयान्तात्सहस्रशब्दात्संमितमित्येतस्मिन्नर्थे घः स्यात्। संमित सहशस्तुल्य इत्यर्थः।—सहस्त्रिया इति। सहस्रेण संमिताः सहस्त्रिया। 'यस्येति च' इत्यकारलोपः। समिताविति पाठान्तरम्॥ ३४८१ मतौ। 'तपःसहस्राभ्यां विनीनी' इत्यस्यापवादः॥ ३४८२ सोममर्हति। द्वितीयान्तात्सोमशब्दादर्हतीत्यर्थस्मिन्नर्थे यः स्यात्। सोम्य इति। सोममर्हतीति सोम्यः॥ ३४८३ मये च। आगतविकारावयवप्रकृता मयडर्थाः। तत्रागते पञ्चमी समर्थविभक्तिः, विकारावयवयोः षष्ठी, प्रकृतवचने प्रथमा॥ ३४८४ मधोः। यः स्यादिति। वृत्तिकारस्तु यतमेवानुवर्तयति न तु यम्॥ ३४८६ नक्षत्रात्। स्वार्थ इति। समूह इति नानुवर्तते। तेनाऽनिर्दिष्टार्थत्वात्स्वार्थे प्रत्यय उत्पद्यत इत्यर्थः॥ ३४८७ सर्वदेवात्। सर्वशब्दाद्देवशब्दाच्च तातिल् स्यात्॥ ३४८८ शिवशम। करशब्दसामानाधिकरण्यात् 'शिवशमरिष्टस्य' इति 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' इति षष्ठी॥ इति वैदिकसुबोधिन्यां चतुर्थोऽध्यायः॥

३४९० सप्तनोऽञ्। सप्तन्शब्दादञ् स्याच्छन्दसि॥ साप्तानीति। सप्तन्शब्दादञि 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां जस्। 'जश्शसोः शिः'। 'नपुंसकस्य' इति नुम्। उपधाया दीर्घः॥ * शन्शतोः। डित्करणं शदन्तस्य टिलोपार्थम्॥ पञ्चदशिन इति। पञ्चदशाहानि परिमाणमेषामिति डिनिः टिलोपः। एतेन त्रिंशिनो व्याख्याताः॥ विंशिनोऽङ्गिरस इति। विंशतिर्गोत्राणि परिमाणमेषामिति विग्रहे डिति कृते 'तिविंशतेर्डिति' इति तिशब्दलोपे कृते यस्येति लोपः। आङ्गिरसाऽयास्यगार्ग्यगौतम इत्यादिप्रवरभेदभिन्नानि विंशतिरवान्तरगोत्राणि परिमाणमेषामित्यर्थः॥ त्वावत इति। त्वमिव त्वावान्, तस्य त्वावतः

---

* यत्स्यादिति। तत्त्वबोधिनीकारैः 'यः स्यात्' इत्येव पाठो दृष्टः। स च वृत्तिकाराद्यननुकूल इति लेखकैः परिवर्तित इति सम्भाव्यते। शेखरकाराश्च 'य इति निवृत्तम्' इत्येव वदन्ति। १ मात्रात् 'तदर्हति' इत्यर्थे यत्स्याच्छन्दसि' इत्येवम्पाठः क्वचिद्दृश्यते।

तदर्हतीति यत्। सादन्यं विदथ्यम्। ३४९२। **वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि**। ५। १। ९१। निर्वृत्तादिष्वर्थेषु। इद्वत्सरीयः। ३४९३। **संपरिपूर्वात्ख च**। ५। १। ९२। चाच्छः। संवत्सरीणः, संवत्सरीयः। परिवत्सरीणः परिवत्सरीयः। ३४९४। **छन्दसि घस्**। ५। १। १०६। ऋतुशब्दात्तदस्य प्राप्तमित्यर्थे। भाग ऋत्वियः। ३४९५। **उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे**। ५। १। ११८। धात्वर्थविशिष्टे साधने वर्तमानात्स्वार्थे वतिः स्यात्। यदुद्वतो निवतः। उद्गतान्निर्गतादित्यर्थः। ३४९६। **थट् च छन्दसि**। ५। २। ५०। नान्तादसंख्यादेः परस्य डटस्थट् स्यान्मट् च। पञ्चथम्, पञ्चमम्। '**छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि**' १८८९। पर्यवस्थाता शत्रुः। अपत्यं परिपन्थिनम्। मा त्वा परिपरिणो विदन्। ३४९७। **बहुलं छन्दसि**। ५। २। १२२। मत्वर्थे विनिः स्यात्। ※ **छन्दोविन्प्रकरणेऽष्ट्रामेखलाद्वयोभयरुजाहृदयानां दीर्घश्चेति वक्तव्यम्**। इति दीर्घः मंहिष्ठमुभयाविनम्। शुनमुष्ट्राभ्यचवत। ※ **छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ**। ई रथीरभूत, सुमङ्गलीरियं वधूः मघवानमीमहे। ३४९८। **तयोर्दार्हिलौ च छन्दसि**। ५। ३। २०। इदन्तदोर्यथासंख्यं स्तः। इदा हि व उपस्तुतिम्। तर्हि। ३४९९। **था हेतौ च छन्दसि**। ५। ३। २६। किमस्था स्याद्धेतौ प्रकारे च। कथा ग्रामं न पृच्छसि। कथा दाशेम। ३५००। **पश्च पश्चा च छन्दसि**। ५। ३। ३३। अवरस्य अस्तात्यर्थे

अहमिवेति मावान्, तस्य मावतः। 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' इति त्वमादेशौ। 'आ सर्वनाम्नः' इत्यात्वम्॥ ३४९१ **सादन्यमिति**। सदनं गृहमर्हतीति सादन्यः। 'अन्येषामपि' इति दीर्घः॥ **विदथ्यमिति**। विदथो यज्ञस्तमर्हतीत्यर्थः॥ ३४९२ **इद्वत्सरीय इति**। इद्वत्सरेण निर्वृत्तः, इद्वत्सरमधीष्टो भृतो भूतो भावी वा इद्वत्सरीयः। इद्वत्सरेदावत्सरशब्दौ पञ्चवर्षे युगे द्वयोर्वर्षयोः संज्ञे। एवं संवत्सरपरिवत्सरशब्दादपि॥ ३४९३ **संपरिपूर्वात्**। संपरिपूर्वाद्वत्सरान्तात्प्रातिपदिकाच्छन्दसि विषये निर्वृत्तादिष्वर्थेषु खः स्यात्। चाच्छः॥ ३४९४ **छन्दसि घस्**। 'समयस्तदस्य प्राप्तम्' इत्यतस्तदस्य प्राप्तमिति 'ऋतोरण्' इत्यतः ऋतोरिति चानुवर्तते तदाह **ऋतुशब्दादित्यादि**। **ऋत्विय इति**। 'सिति च' इति पदत्वेन भत्वे निरस्ते 'ओर्गुणः' इति गुणाभावे यण्॥ ३४९५ **उपसर्गात्**। इह धातुशब्देन धातुवाच्या क्रिया लक्ष्यते। सोऽर्थः प्रयोजनं यस्य साधनस्य तस्मिन् वर्तमानादित्यर्थः, तदाह—**धात्वर्थविशिष्ट इति**। उपसर्गाश्च पुनरेवमात्मकाः यदुत श्रुतायां क्रियायां तामेव विशिंषन्ति। यथा आगच्छति। यत्र तु न श्रूयते तत्र क्रियाविशिष्टसाधनमाहु। यथा निष्कौशाम्बिः तथा च यत्र क्रियापदं न श्रूयते तत्रैव यथा स्यादित्येवमर्थं 'धात्वर्थे' इत्युक्तम्॥ ३४९६ **थट् च**। 'तस्य पूरणे' इत्यतो डडिति 'नान्तादसंख्यादेः' इति च, तदाह नान्तादित्यादि। पञ्चतमिति। पञ्चानां पूरणमित्यस्मिन्नर्थे डटि कृते तस्य थडागमः॥ छन्दसि। 'परिपन्थिन् परिपरिन्' एतौ निपात्येते छन्दसि पर्यवस्थातरि वाच्ये। पर्यवस्थाता प्रतिपक्षः सपत्न इत्युच्यते। निपातनं चात्र पर्यवस्थातृशब्दात्स्वार्थे इनिः प्रत्ययोऽवस्थातृशब्दस्य 'पन्थि परि' एतावादेशौ च निपात्येते॥ ३४९७ **बहुलम्**। अस्मायामेधास्रजो विनिः इत्यतो विनिरिति वर्तते, तदाह— **विनि स्याविति**। अष्ट्रावीति। 'अशे ष्ट्रन्' अष्ट्रा। दंष्ट्रापर्यायोऽयम्। मेखलावी, द्वयावी, उभयावी, रुजावी हृदयावी। अत्र द्वयोभयहृदयान्येव दीर्घत्वं प्रयोजयन्ति अन्येषां स्वत एव दीर्घत्वात्॥ छन्दसि। ईश्च वनिप् च ईवनिपौ॥ ई इति। ईप्रत्ययस्योदाहरणमुच्यते॥ रथीरिति। रथोऽस्यास्तीति रथी॥— **सुमङ्गलीरिति**। सुष्टु मङ्गलमिति 'सुः पूजायाम्' इति समासः। तेनोऽनेन मत्वर्थीय ईकारप्रत्ययः॥— **मघवानिति**। मघं धनं, तदस्यास्तीति वनिप्। मतुपि तु मघवच्छब्दः॥ ३४९८ **तयोः**। तच्छब्देन 'इदमोर्हिल्' 'तदो दा च' इति संनिहिताविदन्तदौ परामृश्येते. तदाह इदन्तदोरिति सूत्रे व्यत्ययेन पञ्चम्याः स्थने षष्ठी॥—**यथासंख्यं स्त इति**। इदशब्दाद्दा, तच्छब्दात् र्हिल्॥ इदा। इदम्शब्दाद्, 'इदम इश्' इत्यनेने दम इशादेशः॥ ३४९९ **था हेतौ**। 'प्रकारवचने थाल्' इत्यतः प्रकारवचन इति, किमश्चेति च। तदाह **किमस्था स्यादित्यादि**। कथा ग्रामं न पृच्छसीति। केन हेतुना न पृच्छसीत्यर्थः। तस्य 'प्राग्दिशो विभक्तिः' इत्यधिकाराद्विभक्तिसंज्ञायां 'किमः कः' इति कादेशः। प्रकारवचने उदाहरणमाह **कथा दाशेमेति**। केन प्रकारेणेत्यर्थः॥ ३५०० **पश्च पश्चा**। अवरस्य पश्चभावः, अकाराकारौ च प्रत्ययौ निपात्येते॥ **अस्तात्यर्थे इति**। 'दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः'

निपातौ। पश्च हि सः। नो ते पश्चा। 'तुश्छन्दसि' २००७। तृजन्तात्तृन्नन्ताच्च इष्ठनीयसुनौ स्तः। आसुतिं करिष्ठ। दोहीयसी धेनुः। ३५०१। **प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल्छन्दसि**। ५। ३। १११। इवार्थे। तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा। ३५०२। **अमु च छन्दसि**। ५। ४। १२। किमेत्तिङव्ययघादित्येव। प्रतं नय प्रतरम्। ३५०३। **वृकज्येष्ठाभ्यांतिल्तातिलौ च छन्दसि**। ५। ४। ४१। स्वार्थे। यो नो दुरेवो वृकतिः। ज्येष्ठतातिं बर्हिषदम्। ३५०४। **अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि**। ५। ४। १०३। तत्पुरुषाट्टच् स्यात्समासान्तः। ब्रह्मसामं भवति। देवच्छन्दसानि। ३५०५। **बहुप्रजाश्छन्दसि**। ५। ४। १२३। बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश। ३५०६ **छन्दसि च**। ५। ४। १४२। दन्तस्य दतृ स्याद्बहुव्रीहौ। उभयतोदतः प्रतिगृह्णाति। ३५०७। **ऋतश्छन्दसि** ५। ४। १५८। ऋदन्ताद्बहुव्रीहेर्न कप्। हता माता यस्य हतमाता॥ इति पञ्चमोऽध्यायः।

अथ षष्ठोऽध्यायः

'एकाचो द्वे प्रथमस्य' २१७२॥ ❊ **छन्दसि वेति वक्तव्यम्**। यो जागार। दाति प्रियाणि। ३५०८। **तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य**। ३। १। ७। तुजादिराकृतिगणः। प्रभरा तूतुजानः। सूर्यं मामहानम्। दाधार यः पृथिवीम्। स तूताव। ३५०९। **बहुलं छन्दसि**। ३। १। ६४। ह्वः संप्रसारणं स्यात्। इन्द्रमा हुव ऊतये॥ ❊ **ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोपश्च छन्दसि**। ऋच्शब्दे परे त्रेः संप्रसारणमुत्तरपदादेर्लोपश्चेति वक्तव्यम्। तृचं साम। छन्दसि किम्। त्र्यृचानि॥ ❊ **रयेर्मतौ बहुलम्**। रेवान्। रयिमान्पुष्टिवर्धनः। ३५१०। **चायः कीः** ६। १। ३५। न्यन्यं चिक्युर्न निचिक्युरन्यम्। लिटि उसि रूपम्। बहुलग्रहणानुवृत्तेर्नेह अग्नि

करिष्ठ इति। कर्तृशब्दादिष्ठन्। 'तुरिष्ठेमेयःसु' इति तृलोपः॥ **दोहीयसीति**। अतिशयेन दोग्ध्रीत्यर्थः। लिङ्गविशिष्टपरिभाषया दोग्ध्रीशब्दात्प्रत्ययः। 'भस्याढे' इति पुंवद्भावेन ङीपो निवृत्तिः। ततः 'तुरिष्ठेमेयःसु' इति तृचि निवृत्ते निमित्ताभावाद्धत्वकुत्वयोरपि निवृत्तिः॥ ३५०१ **प्रत्नपूर्व**। प्रत्न पूर्व विश्व इम एभ्यस्थाल् स्यात्। ३५०२। **अमु च**। किमेत्तिङव्ययघाद् द्रव्यप्रकर्षे वर्तमानादमुप्रत्ययो भवति॥ प्रतरमिति। [1]प्रशब्दार्थस्य प्रकर्षस्य प्रकर्षे तरप्, प्रकृष्टतर इतिवत्। तदन्तादमुः। स्वरादिषु 'अम् आम्' इति पठ्यते, तेन तदन्तस्याव्ययत्वे सुपो लुक्। अत्रोदित्करणम् 'इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च' इत्यत्रास्य ग्रहणं माभूत्। यदि स्यात्तर्हि अत्रापि यद्दृष्टं कार्यं तदप्यतिदिश्येत। तत्र कः दोषः? इह श्रियमन्यमानः। यस्येति लोपः प्राप्नोति॥ ३५३४ **अनसन्तात्**। अनन्तस्योदाहरणमाह ब्रह्मसाममिति। असन्तस्याह देवच्छन्दसानीति॥ ३५०५ **बहुप्रजाः**। बहुप्रजा इति निपात्यते छन्दसि। बहुप्रजा इति। बह्व्यः प्रजा यस्येति बहुव्रीहिः। असिच् प्रत्ययः। 'यस्येति च' इत्याकारलोपः। 'अत्वसन्तस्य' इति दीर्घः। रुत्वविसर्गौ॥ ३५०६ **छन्दसि च**। 'वयसि दन्तस्य दतृ' इत्यतो 'दन्तस्य दतृ' इत्यनुवर्तते, तदाह—दन्तस्य स्यादिति। उभयतोदत इति। उभयतो दन्ता यस्येति विग्रहः॥ ३५०७ **हतमाता इति**। 'नद्यृतश्च' इति नित्यं कप् प्राप्तः इति सुबोधिन्यां पञ्चमोऽध्यायः।

जागारेति। जागृ निद्राक्षये। लिटि प्रथमपुरुषैकवचनम्॥—**दातीति**। 'डुदाञ् दाने' लट्। शपः श्लुः। श्लौ इति नित्यं द्वित्वे प्राप्ते विकल्पः॥ ३५०८ **तूतुजान इति**। तुजेर्लिट् तस्य कानजादेशः। मामहानमिति। 'मह पूजायां' कानच्॥ तूतावेति। तुः सौत्रधातुः, तस्माल्लिट्॥ ३५०९ **बहुलं छन्दसि**। 'ह्वः संप्रसारणं' इति वर्तते, तदाह—ह्वः संप्रसारणं स्यादिति। अहुवे इति। आङ्पूर्वात् ह्वञो लडात्मनेपदोत्तमैकवचनम्। 'बहुलं छन्दसि' इति शपो लुकि कृते संप्रसारणमुवङादेशश्च॥ तृचं सूक्तमिति। तिस्रः ऋचो यस्मिंस्तत् तृचत्। 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' इति समासान्तः अः॥—**रयेर्मतौ**। रयिशब्दस्य मतौ परतः संप्रसारणं स्याच्छन्दसि॥—रेवानिति। 'छन्दसीरः' इति वत्वम्॥ **रयिमानिति**। बहुलग्रहणात्संप्रसारणवत्वयोरभावः ३५१० **चायः की**। चायतेर्बहुलं कीत्ययमादेशः स्याच्छन्दसि॥—**चिक्युरिति**। 'कुहोश्चुः' इति चुः।

---

[1] अत्र सर्वेषु मुद्रितपुस्तकेषु 'प्रकर्षार्थस्य प्रकर्षे तरप्' इत्येव पाठः। प्राचीनलिखितपुस्तकपाठोऽस्माभिरादृतः प्रकर्षार्थस्य प्रशब्दस्य यः प्रकर्षरूपोऽर्थस्तस्य प्रकर्षे तरप् इत्येवमर्थः।

ज्योतिर्निचाय्य। ३५११। अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्यजश्रातााश्रितमाशीराशीर्ताः। ६। १। ३६। एते छन्दसि निपात्यन्ते। इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथाम्। स्पर्धेर्लङि आथाम्। अर्कमानृचुः, वसून्यानृहुः, अर्चेर्रर्हेश्च लिटयुसि। चिच्युषे, च्युङो लिटि थासि। यस्तित्याज, त्यजेर्णलि। श्रातास्त इन्द्र सोमाः, श्रिता नो ग्रहाः, 'श्रीञ् पाके' निष्ठायाम्। आशिरं दुह्रे मध्यत आशीर्तः, श्रीञ एव क्विपि निष्ठायां च। ३५१२। खिदेश्छन्दसि। ६। १। ५२। 'खिद दैन्ये' अस्यैच आ स्यात्। चिखाद चिखेदेत्यर्थः। ३६१३। शीर्षंश्छन्दसि। ६। १। ६०। शिरःशब्दस्य शीर्षन् स्यात्। शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगतः। ३५१४। वा छन्दसि। ६। १ १०६। दीर्घाज्जसि इति च पूर्वसवर्णदीर्घो वा स्यात्। वाराही, वाराह्यौ। मानुषीरीलते विशः। उत्तरसूत्रद्वयेऽपीदं वाक्यभेदेन संबध्यते। तेनामि पूर्वत्वं वा स्यात्। शमीं च शम्यं च। सूर्म्यं सुषिरामिव। 'संप्रसारणाच्च' ३३० इति पूर्वरूपमपि वा। इज्यमानः, यज्यमानः। ३४१५। शेश्छन्दसि बहुलम्। ६। १ ७०। लोपः स्यात्। या ते गात्राणाम्। ताता पिण्डानाम्। ※ एमन्नादिषु छन्दसि पररूपं वक्तव्यम्। अपां त्वेमन्। अपां त्वोद्मन्। ३५१६। भय्यप्रवय्ये च छन्दसि। ३। १। ८३। बिभेत्यस्मादिति भय्यः। वेतेः 'प्रवय्या' इति स्त्रियामेव निपातनम्। 'प्रवेयम्' इत्यन्यत्र। छन्दसि किम्? भेयम्। प्रवेयम्॥ ※ हृदय्या उपसंख्यानम्। हृदे भवा हृदय्या आपः। भवे छन्दसि यत्। ३५१७। प्रकृत्यान्तःपादमव्यपरे। ६। १। ११५। ऋक्पादमध्यस्थ एङ् प्रकृत्या स्यादति परे, न तु वकारयकारपरेऽति। उप्रत्ययन्तो अध्वरम्।

निचाय्येति। 'चायृ पूजानिशामनयोः' अस्मात्क्त्वा। गतिसमासे 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' इति ल्यबादेशः ३५११। स्पर्धेर्लङ्याथामिति। द्विर्वचनं, रेफस्य संप्रसारणम्, अकारलोपश्च निपातनात्। अस्पर्धेथामिति भाषायाम्। अपरे तु अपपूर्वस्य स्पर्धेर्लङ्याथामिति संप्रसारणमलोपश्च निपातनात्। 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' इत्यडागमाभावः। तन्मते प्रत्युदाहरणमपास्पर्धेथामिति भाषायाम्। अर्चेरर्हेश्चेति। संप्रसारणमलोपश्च निपातनात्। ततो द्विर्वचनमुरदत्वम्, 'अत आदेः' इति दीर्घत्वम्। तस्मान्नुड् द्विहलः इति भाषायाम्॥—त्यजेर्णलीति। त्यज वयोहानौ। अभ्यासस्य संप्रसारणं निपात्यते। तत्याजेति भाषायाम्॥ श्राता इति। 'श्रीञ् पाके' इत्यस्य निष्ठायां श्राभावः। श्रिता इति। तस्यैव श्रीणातेर्ह्रस्वत्वं च॥— आशिरमिति। आङ्पूर्वस्य श्रीणातेः क्विप् धातोः शिर आदेशः। तस्माद्वितीयैकवचनम्॥ आशीर्त इति। श्रीञ आङ्पूर्वस्य शिर इत्यादेशः॥ निष्ठायाञ्चेति। नत्वाभावो निपातनात्। 'हलि च' इति दीर्घः॥ ३५१२ खिदेश्छन्दसि। 'आदेच उपदेशे' इत्यत आदिति एच् इति च वर्तते, 'विभाषा लीयतेः' इत्यतो निभाषेति च, तदाह आद्वा स्यादिति॥ चिखादेति। व्यत्ययेन परस्मैपदम्॥ ३५१३ शीर्ष्ण इति। 'अल्लोपोऽनः' इत्यल्लोपः, 'रषाभ्याम्' इति णत्वम्। पूर्वस्मादपि विधौ स्थानिवद्भावः' इति पक्षे तु 'अट्कुप्वाङ्' इत्यनेन। ३५१४ वा छन्दसि। 'नादिचि' 'दीर्घाज्जसि च' इति च वर्तते, तदाह दीर्घादित्यादि। वाराही इत्यादि। वराहस्य विकार इति 'अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः' इति 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्', ङीप्। द्विवचने पूर्वसवर्णदीर्घः। पूर्वसवर्णाभावे यणादेशः। मानुषीरिति। प्रथमाबहुवचनम्। 'मकोर्जातावञ्यतौ षुक् च' इति अञ्, मनोः षुगागमः॥ सूत्रद्वये इति 'अमि पूर्वः' 'संप्रसारणाच्च' इति पूर्वरूप वा स्याच्छन्दसि, तदाह तेनेति॥ शम्यं चेति। विकल्पविधानसामर्थ्यात्पूर्वरूपत्वाभावे पूर्वसवर्णदीर्घोऽपि न भवति। तयोरत्र विशेषाभावादिति यणादेश एव भवति। यज्यमान इति। यजेर्लटः शानच्। 'सार्वधातुके' इति यक्, 'आने मुक्' इति मुक्। 'ग्रहिज्या' इति संप्रसारणं, पूर्वरूपस्य वैकल्पिकत्वादभावे यण्॥ ३४१५ या ते इति। यानीत्यर्थः। यच्छब्दात्परस्य शेर्लोपे कृते प्रत्ययलक्षणेन 'त्यदादीनामः' इति अत्वे 'नपुंसकस्य झलचः' इति नुम्। 'सर्वनामस्थाने च' इति दीर्घः। नलोपः। ता ता इति। तानि तानीत्यर्थः पूर्ववत्। ३५१६ भय्यप्रवय्ये। बिभेतेः प्रपूर्वस्य वी इत्येतस्य च यति प्रत्यये परतश्छन्दसि विषये यादेशो निपात्यते॥ भय्य इति। 'कृत्यल्युटः' इति अपादाने यत्॥ हृदय्या इति। अकारस्यायादेशः॥ ३५१७ प्रकृत्या। पादस्य मध्ये इत्यन्तःपादमित्यव्ययीभावः। अन्तरित्यव्ययमधिकरणशक्तिप्रधानं मध्यमाचष्टे। पादश्चेह ऋक्पाद एव गृह्यते न श्लोकस्य। 'वा छन्दसि' इत्यतो मण्डूकप्लुतया छन्दसीति वर्तते, तेनास्य वैदिकत्वं संपद्यत

सुजाते अश्वसूनृते। अन्तःपादं किम्। एतास एतेऽर्चन्ति। अव्यपरे किम्। तेऽवदन्। ३५१८। **अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च**। ६। १। ११६। एषु व्यपरेऽप्यति एङ् प्रकृत्या। वसुभिर्नो अव्यात्। मित्रमहो अवद्यात्। मा शिवासो अवक्रमुः। ते न अव्रत। शतधारो अयं मणिः। ते नो अवन्तु। कुशिकासो अवस्यवः। यद्यपि बह्वृचैः 'ते नऽवन्तु रथतूः' 'सोऽयमागात्' तेऽरणेभिः इत्यादौ प्रकृतिभावो न क्रियते, तथापि बाहुलकात्समाधेयम्। प्रातिशाख्ये तु वाचनिक एवायमर्थः। ३५१९। **यजुष्युरः**। ६। १। १२७। उरःशब्द एङन्तोऽति प्रकृत्या यजुषि। उरो अन्तरिक्षम्। यजुषि पादाभावादन्तःपादार्थं वचनम्। ३५२०। **आपो जुषाणो वृष्णो वर्षिष्ठेऽम्बालेऽम्बिके पूर्वे**। ६। ११८। यजुषि अति प्रकृत्या। आपो अस्मान्मातरः। जुषाणो अग्निराज्यस्य। वृष्णो अंशुभ्याम्। वर्षिष्ठे अधि नाके। अम्बे अम्बाले अम्बिके। अस्मादेव वचनात् 'अम्बार्थ' २६७ इति ह्रस्वो न। ३५२१। **अङ्ग इत्यादौ च**। ६। १। ११९। अङ्गशब्दे य एङ् तदादौ च अकारे य एङ् पूर्वः सोऽति प्रकृत्या यजुषि। प्राणो अङ्गे अङ्गे अदीध्यत्। ३५२२। **अनुदात्ते च कुधपरे**। ६ १। १२०। कवर्गधकारपरे अनुदात्तेऽति परे इङ् प्रकृत्या यजुषि। अयं सो अग्निः। अयं सो अध्वरः। अनुदात्ते किम्। अथोऽग्रे रुद्रे। अग्रशब्द आद्युदात्तः। कुधपरे किम्। सोऽयमग्निमन्तः। ३५२३। **अनपथासि च**। ६। १। १२१। अनुदात्ते अकारादौ अवपथाःशब्दे परे यजुषि एङ् प्रकृत्या। त्रीरुद्रेभ्य अवपथाः वपेस्थासि लङि 'तिङ्ङतिङः' ३९३५ इत्यनुदात्तत्वम्। अनुदात्ते किम्। यद्रुद्रेभ्योऽवपथाः। 'निपातैर्यद्यदि'

इत्याशयेनाह ऋक्पादमध्यस्थ इति। 'एङः पदान्तात्' इति सूत्रादेङः इति पञ्चम्यन्तमनुवृत्तं प्रथमया विपरिणम्यते, अन्यस्य कार्यिणोऽसंभवादित्यभिप्रेत्याह एङ् प्रकृत्येति। सन्धिरूपं विकारं न यातीत्यर्थः॥ उपप्रयन्तो अध्वरमिति। 'एङः पदान्तादति' इति प्राप्तः॥ अन्तःपादं किमिति। ऋचीत्येव किं नोक्तमित्यर्थः एतेऽर्चन्तीति। 'कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया' इति। अत्र एते इति पादस्यान्ते एङस्ति, अकारश्च परस्य पादस्यादाविति न निमित्तिनिमित्तयोः पादमध्यस्थत्वमिति सत्यपि ऋक्त्वे प्रकृतिभावः॥ ३५१८ **अव्यात्**। एषामनुकरणत्वात्सुबन्तेन समासः। अव रक्षणे। आशीर्लिङ्। अवद्यादिति पञ्चम्येकवचनान्तम्। अवक्रमुरित्यवपूर्वस्य क्रमेर्लिट्युसि द्विर्वचनप्रकरणे 'छन्दसि वा वचनम्' इति द्विर्वचनाभावे रूपम्। केचित्तु अवचक्रमुरिति सूत्रे कृतद्विर्वचनं पठन्ति। तेषामुदाहरणं मृग्यम्। बह्वृचास्तावदवक्रमुरित्यधीयते॥ अव्रतेति। व्रङ् वृञोः 'मन्त्रे घस' इति च्लेर्लुक्। 'आत्मनेपदेषु' इति भस्यादादेशः। **अयमिति**। इदमः सौ 'इदोऽय् पुंसि'॥ अवतेर्लोट् अवन्तु। अवस्यव इति। अवेरसुन् औणादिकः। ततः क्यच्, 'क्यच्छन्दसि' इत्युः॥ ३५१९ **यजुष्युरः**। उरो अन्तरिक्षमिति। नन्वत्र 'प्रकृत्यान्तःपादम्' इत्यनेनैव सिद्धे व्यर्थोऽयं योग इत्याशङ्क्याह **यजुषि पादाभावादित्यादि**। ३५२० आपोजुषाणो। आप इत्यादीनि पदान्यनुकरणानि, विभक्तिस्तु अनुकार्यानुकरणयोर्भेदस्याविवक्षितत्वान्न भवति। 'सुपां सुलुक्' इति विभक्तेर्लुग्वा। 'अम्बिके' पूर्वे' इत्येतदप्यनुकरणमेव। तत्र प्रथमं जसन्तमनुकरणम्। द्वितीयं स्वन्तम्। तृतीयं शसन्तम्। चतुर्थं ङ्यन्तम्। इतरे संबुद्ध्यन्ताः। 'आपो जुषाणो वृष्णो वर्षिष्ठे' इत्येते शब्दाः 'अम्बिके' शब्दात्पूर्वौ यौ 'अम्बे अम्बाले' शब्दौ तौ च ते अति परतः प्रकृत्या स्युः॥ ३५२१ अङ्ग इत्यादौ च। अङ्गशब्दे य एङिति। प्रकृत्या भवतीति वक्ष्यमाणेन संबन्धः॥ तदादौ अकारे य एङ् पूर्व इति। अत्रापि पूर्ववत्संबन्धः। अतिक्रान्तपरामर्शिना तच्छब्देन इतिशब्दस्यार्थमाचष्टे। तस्याङ्गशब्दस्य आदिरतदादिस्तद्रूपो योऽकारस्तस्मिन्परे य एङ् स इत्यर्थः। नन्वत्र चकारः किमर्थ इति चेत्, शृणु असति चकारेऽङ्गशब्दस्यैवेङ् तदादावति परतः प्रकृत्या भवतीत्यर्थः स्यात्ततश्चाङ्गे अङ्गे इत्यत्रैव स्यात्। अङ्गे अदीध्यदित्यत्र न स्यात्। सति तु तस्मिन्नङ्गशब्दस्य य एङ् यत्र कुत्रचिदति प्रकृत्या भवति, तदादौ चाति परतो यः कश्चिदेङ् स प्रकृत्या भवतीत्ययमर्थो भवति। तेन अङ्गे अङ्गे अदीध्यत्, प्राणो अङ्गे इत्युभयत्रापि भवति। ३५२२ **अनुदात्ते च कुधपरे**। कुधौ परौ यस्मात्स तथोक्तः। कवर्गधकारेति। धकारे अकार उच्चारणार्थः॥ **अग्निरिति। अग्निशब्दः** 'अग्नेर्निर्नलोपश्च' इति निप्रत्ययान्तोऽन्तोदात्तः। अध्वरशब्दः प्रातिपदिकस्वरेणान्तोदात्तः॥ आद्युदात्त इति। **'ऋज्रेन्द्राग्र'** इत्यादिना सूत्रेण निपातितः।

३६३४ इति निघातो न। ३५२४। आङोऽनुनासिकश्छन्दसि। ६। १। १२६। आङोऽचि परेऽनुनासिकः स्यात्, स च प्रकृत्या। अभ्र आँ अपः। गभीर आँ उग्रपुत्रे॥ ❋ **ईषाअक्षादीनां छन्दसि प्रकृतिभावो वक्तव्यः** ईषा अक्षो हिरण्ययः। ज्या इयम्। पूषा अविष्टु। ३५२५ **स्यश्छन्दसि बहुलम्**। ६। १। १३३। 'स्यः' इत्यस्य सोर्लोपः स्याद्धलि। एष स्य भानुः। ३५२६। **ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे**। ६। १। १५१। ह्रस्वात्परस्य चन्द्रशब्दस्योत्तरपदस्य सुडागमः स्यान्मन्त्रे। हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः। सुश्चन्द्र दस्म। ३५२७। **पितरामातरा च छन्दसि**। ३। ३। ३३। द्वन्द्वे निपातः। आ मा गन्तां पितरामातरा च। चाद्विपरीतमपि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ। **'समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु'** १०१२। समानस्य सः स्यान्मूर्धादिभिन्ने उत्तरपदे। सगर्भ्यः॥ ❋ छन्दसि स्त्रियां बहुलम्॥ विष्वग्देवयोरद्र्यादेशः। विश्वाची च घृताची च। देवद्रीचीं नयत देवयन्तः। कद्रीची। ३५२८। **सध मादस्थयोश्छन्दसि**। ६। ३। ९६। सहस्य सधादेशः स्यात् इन्द्र त्वास्मिन्सधमादे। सोमः सधस्थम्। ३५२९। **पथि च छन्दसि**। ६। ३। १०८। पथिशब्दे उत्तरपदे कोः कवं कादेशश्च। कवपथः। कापथः, कुपथः। ३५३०। **साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे**। ६। ३। ११३ सहेः क्त्वाप्रत्यये आद्यं द्वयं तृनि तृतीयं निपात्यते। मरुद्भिरुग्र पृतनासु साल्हा। अचोर्मध्यस्थस्य डस्य लः

३५२४ आङो। आङिति ङिद्विशिष्ट आकारो गृह्यते, य **'ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाऽभिविधौ च यः**। एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित्' इत्यनेन लक्षितः। यद्यपि 'अभ्र आँ अपः' इत्यत्र आकारो न ईषदर्थादिचतुष्टयवृत्तिः, सप्तम्यर्थद्योतकत्वात्। तथापि 'वाक्यस्मरणयोरङित्' इत्यत्रैव तात्पर्यम्। अन्यत्र सर्वत्राङ् ङिद्वेदितव्यः। एवं तावद्भाष्ये स्थितम्। अभ्र आँ अप इति। सप्तम्यर्थद्योतकोऽयमाङ्। 'उपदेशेऽजनुनासिक' इतीत्संज्ञा तु न, उपदेशग्रहणात्॥ ३५२५ **स्यश्छन्दसि**। 'स्यः' इति त्यदित्येतस्य प्रथमान्तस्यानुकरणम् 'सुपां सुलुक्' इति लुप्तषष्ठीकम्॥ एष स्येति। एतदस्त्यदश्च त्यदाद्यत्वं, 'तदोः सः सौ' इति सः। एतदस्त्यदश्च परस्य सोः 'एतत्तदोः सुलोपः' इति 'स्यश्छन्दसि' इति च लोपः॥ ३५२६ **ह्रस्वात्**। चन्द्रशब्दे उत्तरपदे ह्रस्वात्परः सुडागमो भवति। स च भवन् चन्द्रशब्दस्यैव, उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयानित्याशयेनाह—चन्द्रशब्दस्योत्तरपदस्येति॥ सुडागमः स्यादिति। 'सुट् कात्पूर्वः' इत्यतः सुडित्यनुवर्तनात्। ३५२७ पितरा। पूर्वपदस्यारङादेशो निपात्यते। उत्तरपदे तु 'सुपां सुलुक्' इत्यादिना विभक्तेराकारादेशः 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः' इति गुणः॥ **समानस्य**॥ सः स्यादिति। 'सहस्य सः' इत्यतः स इत्यनुवर्तते॥ सगर्भ्य इति। समानो गर्भः सगर्भः। तत्र भवः सगर्भ्यः। 'सगर्भसयूथसनुताद्यन्' इति यन् प्रत्ययः। अमूर्धेत्यादि किम्? समानमूर्धा। समानप्रभृतयः। समानदर्काः॥ ❋ छन्दसि स्त्रियाम्। 'विष्वग्देवयोः' इति सर्वनाम्नोऽप्युपलक्षणम्। बहुलग्रहणात्क्वचिन्न भवति। विश्वाची। देवद्रीचीति। विश्वमञ्चतीति देवानञ्चतीति क्विन्। उगितश्च इति ङीप्। 'अचः' इत्यकारलोपः। चौ इति दीर्घत्वम्। अत्र विष्वग्देवयोरद्र्यादेशः प्राप्तो बाहुलकान्न क्वचिच्च भवतीत्याह कद्रीचीति। कुत्सितमञ्चतीति कद्रीची। किंशब्दस्य टेरद्र्यादेशः ङीबल्लोपदीर्घाः पूर्ववत्॥ ३५२८ **सध माध**। सहस्य सध्रिः' इत्यत सहस्येति वर्तते। माद स्थ इत्येनयोरुत्तरपदयोः सहस्य सध इत्ययमादेशः स्यात्। सधेत्यविभक्तिको निर्देशः॥ **सधमादे इति**। सह माद्यन्ति देवा अस्मिन्निति सधमादः यत्र इति। 'मदोऽनुपसर्गे' इत्यपि प्राप्ते 'अजब्भ्यां स्त्रीखलनाः' इति तद्बाधके ल्युटि 'हलश्च' इति घञ्। सूत्रे मादेत्यकार उच्चारणार्थः। तेन मादयतेः क्विबन्तस्य मादिति यद्रूपं तत्रापि भवति 'आ त्वा बृहन्तो हरयो युज्यमाना अर्वागिन्द्रः। सधमादो वहन्तु'॥ **सधस्थमिति**। सह तिष्ठन्ति सधस्थः। आतोऽनुपसर्गे इति कः॥ ३५३० साढ्यै। एते त्रयो निपात्यन्ते निगमे॥ सहेः क्त्वाप्रत्यय इति। पक्षे क्त्वाप्रत्ययस्य ध्यै आदेशश्च निपात्यते। साढ्यै सहेः क्त्वाप्रत्ययस्य ध्यै, 'हो ढः' ष्टुत्वं 'ढो ढे लोपः' ढलोपे इति दीर्घः। साढ्वा इति। ढत्वादि पूर्ववत्॥ तृनि तृतीयमिति। तृचि त्वन्तोदात्तं स्यात्, तथा 'भूरि चक्र' इति मन्त्रे साढेत्याद्युदात्तं पठ्यते तन्न संगच्छेतेति भावः। सूत्रे इतिशब्दः प्रकारार्थः तेन निष्ठायामपि निपातनं बोध्यम्। अषालहो अग्ने वृषभः। द्वयोरिति। अस्य आचार्यस्य मते द्वयोः स्वरयोर्मध्यमेत्य डकारो लकारान्ततां संपद्यते ऊष्मणा सम्प्रयुक्तो ढकारो लहकारतामेतीत्यन्यः॥ ३५३१

ढस्य लहश्च प्रातिशाख्ये विहितः। आह हि—**द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य संपद्यते स डकारो लकारः। लहकारतामिति स एव चास्य ढकारः सन्नूष्मणा संप्रयुक्तः**॥ इति। ३५३१। **छन्दसि च**। ६। ६। १२६। अष्टन आत्वं स्यादुत्तरपदे। अष्टापदी। ३५३२। **मन्त्रे शोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ**। ६। ३। १३१। दीर्घः स्यान्मन्त्रे। अश्वावतीं सोमावतीम्। इन्द्रियावान्मदिन्तमः विश्वकर्मणा विश्वव्यावता। ३५३३। **ओषधेश्च विभक्तावप्रथमायाम्**। ६। ३। १३२। दीर्घः स्यान्मन्त्रे। यदोषधीभ्यः। अदधात्योषधीषु। ३५३४। **ऋचि तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम्**। ६। ३। १३३। दीर्घः स्यात्। आ तू न इन्द्र। नू मर्तः। उत वा घा स्यालात्। मक्षू गोमन्तमीमहे। भरता जातवेदसम्। तिङिति थादेशस्य ङित्त्वपक्षे ग्रहणम्। तेनेह न शृणोत ग्रावाणः। कूमनाः। अत्रा ते भद्रा। यत्रा नश्चक्रा। ऊरुष्याणः। ३५३५। **इकः सुञि**। ६। ३। १३४। ऋचि दीर्घ इत्येव। अभीषुणः सखीनाम्। 'सुञः' ३६४२ इति षः। 'नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः' ३६४७ इति णः। ३५३६। **द्व्यचोऽतस्तिङः**। ६। ३। १३५। मन्त्रे दीर्घः। विद्मा हि चक्रा जरसम्। ३५३७। **निपातस्य च**। ६। ३। १३६। एवा हि ते। (* **अन्येषामपि दृश्यते**। ६। ३। १३७। अन्येषामपि पूर्वपदस्थानां दीर्घः स्यात्। पुरुषः। दण्डादण्डि।) ३५३८। **छन्दस्युभयथा**। ६। ४। ५। नामि दीर्घो वा 'धाता धातॄणाम्' इति बह्वृचाः। तैत्तिरीयास्तु ह्रस्वमेव पठन्ति। ३५३९। **वा षपूर्वस्य निगमे**। ६। ४। ९। षपूर्वस्यान उपधाया वा दीर्घोऽसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने परे। ऋभुक्षाणम्। ऋभुक्षणम्। निगमे किम्। तक्षा। तक्षाणौ। ३५४०। **जनिता मन्त्रे**। ६। ४। ५३। इडादौ तृचि णिलोपो निपात्यते। यो नः पिता ३५४१। **शमिता यज्ञे**। ६। ४। ५४। शमयितेत्यर्थः। ३५४२। **युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि**। ६। ४। ५८। ल्यपीत्यनुवर्तते। वियूय। विप्लूय। 'आडजादीनाम्' २२५४। ३५४३। **छन्दस्यपि दृश्यते**। ६। ४। ७३। अनजादीनामित्यर्थः। आनट्। आवः। 'न माङ्योगे' २२२८। ३५४४। **बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि**। ६। ४। ७५। अडाटौ न स्तः, माङ्योगेऽपि स्तः। जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय। मा वः क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सुः

अष्टापदीति। अष्टौ पादा अस्या इति बहुव्रीहौ 'संख्यासुपूर्वस्य' इति पादस्य लोपे कृते 'पादोऽन्यतरस्याम्' इति ङीष्॥ ३५३२ **मन्त्रे**। सोम, अश्व, इन्द्रिय, विश्वदेव्य, एषां मतुप्प्रत्यये परे दीर्घः स्यान्मत्रे॥ ३५३३ **ओषधेश्च**। न च 'कृदिकारादक्तिनः' इति ङीषा गतार्थता, अन्तोदात्ततापत्तेः। इष्यते त्वाद्युदात्तः, लघावन्ते इति फिट्सूत्रात्। ३५३४ **ऋचि तुनु**। घ इति स्वरूपग्रहणं न तरप्तमपोः, छन्दसि घशब्दस्यैव दीर्घदर्शनात् उत वेति। भार्याया भ्राता श्यालस्ततः पञ्चमी॥ भरतेति। लोण्मध्यमपुरुषबहुवचनस्य थस्य 'लोटो लङ्वत्' इत्यतिदेशात्तस्य स्थाने तादेशः 'तस्थस्थमिपाम्' इत्यनेन॥ शृणोतेति। 'तप्तनप्तनथनाश्च' इति तबादेशः। अत्र पित्त्वान्ङित्त्वं नास्ति॥ उरुष्याण इति। उरुष्येति कण्ड्वादियगन्तो वक्षणार्थकः। लोटः सेर्हिः 'अतो हेः' इति लुक्। 'न' इत्यस्य 'नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः' इति णत्वम्॥ ३५३५ **इकः**। इगन्तस्य सुञि परतो दीर्घः स्यादृचि॥ ३५३६ **द्व्यचो**। द्व्यचस्तिङन्तस्यातो दीर्घः स्यादृचि। विद्मेति। 'विद ज्ञाने' लट् 'विदो लटो वा' इति मसः स्थाने मः। चक्रेति। लिटो मध्यमपुरुषबहुवचनम्॥ ३५३७ **निपातस्य च**। दीर्घः स्यान्मन्त्रे। एवशब्दश्चादिषु पाठान्निपातः॥ ३५३८ **छन्दस्यु**। नामीति वर्तते, 'ढ्रलोपे' इत्यतो दीर्घ इति च, तदाह—नामीत्यादि। ३५३९ **ऋभुक्षाणमिति**। ऋभुक्षिन्शब्द उणादिषु निपातितः। 'इतोऽत्सर्वनामस्थाने' इतीकारस्याकारादेशः॥ ३५४० **जनितेति**। जनयितेत्यर्थः। ३५४१ **शमिता**। निपातनं पूर्ववत् ३५४३ **आनडिति**। नशेर्लुङि 'मन्त्रे घस' इति लेर्लुक्। 'नशेर्वा' इत्यस्याभावे 'व्रश्च' इति षः। जश्त्वेन डः। तस्य चर्त्वेन टः॥ **आवरिति**। वृञो लुङि लेर्लुक्। गुणः रेफस्य विसर्गः॥ ३५४४ **बहुलं छन्दसि**। माङ्योगेऽपि बहुलमडाटौ भवतः। अमाङ्योगेऽपि न भवतः। माङ्योगेऽपि न भवतः। **जनिष्ठा इति**। जनेर्लुङ् थास् अडागमाभावः। माङ्योगेऽप्यडागममुदाहरति **मा व इति**। वो युष्माकं क्षेत्रे भार्यायां परबीजानि परेषां बीजानि वीर्याणि मा अवाप्सुः उप्तानि माभूवन्। वपेः कर्मणि लुङ् व्यत्ययेन परस्मैपदम्

---

* अस्यात्र पाठो बहुषु पुस्तकेषु न दृश्यते। टीकाकृद्भिरस्पर्शात्संदिग्धमिव।

३५४५ । **इरयो रे** । ६ ।४।७६ । प्रथमं दध्र आपः । रेभावस्याभीयत्वेनासिद्धत्वादालोपः । अत्र रेशब्दस्येटि कृते पुनरपि रेभावः । तदर्थं च च सूत्रे द्विवचनान्तं निर्दिष्टम् इरयोः इति । ३५४६ । **छन्दस्युभयथा** ६ । ४ । ८६ । भूसुधियोर्यण् स्यादियङुवङौ च । वनेषु चित्रं विभ्वम्, विभुवं वा । सुध्यो३ नव्यमग्ने, सुधियो वा ॥ * **तन्वादीनां छन्दसि बहुलम्** । तन्वं पुषेम, तनुवं वा । त्र्यम्बकम्, त्रियम्बकं वा । ३५४७ । **तनिपत्योश्छन्दसि** । ६ । ४ । ९९ । एनयोरुपधालोपः क्ङिति प्रत्यये । वितत्निरे कवयः । शकुना इव पप्तिम ३५४८ । **घसिभसोर्हलि च** । ६ । ४ । १०० । सग्धिश्च मे । बब्धां ते हरी धानाः । 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' २४२५ ३५४९ । **श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि** । ६ । ४ । १०२ । श्रुधी हवम् । शृणुधी गिरः । रायस्पूर्धि । उरुणस्कृधि । अपावृधि । ३५५० । **वा छन्दसि** । ३ । ४ । ८८ । पिपृग्धि । ३५५१ । **अङितश्च** । ६ । ४ । १०३ । हेर्धिः स्यात् । रारन्धि, रनेर्व्यत्ययेन परस्मैपदम्, शपः श्लुः, अभ्यासदीर्घश्च । अस्मे प्रयन्धि । युयोधि जातवेदः । यमेः शपो लुक् । यौतेः शपः श्लुः । ३५५२ । **मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः** । ६ । ४ । १४१ । आत्मन्शब्दस्यादेर्लोपः स्यादाङि । त्मना देवेषु । ३५५३ । **विभाषर्जोश्छन्दसि** । ६ । ४ । १६२ । ऋजुशब्दस्य ऋतः स्थाने रः स्याद्वा इष्ठेमेयस्सु । त्वं रजिष्ठ मनुनेषि, ऋजिष्ठं वा । ३५५४ । **ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि छन्दसि** । ६ । ४ । १७५ । ऋतौ भवमृत्व्यम् । वास्तुनि भवं वास्त्व्यम्, वास्त्वं च । मधुशब्दस्याणि स्त्रियां यणादेशो निपात्यते माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । हिरण्यशब्दाद्विहितस्य मयटो मशब्दस्य लोपो निपात्यते, हिरण्ययेन सविता रथेन ॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

'च्लेः सिच्', 'वदव्रज' इति वृद्धिः । इदं काशिकानुरोधेनोदाहृतम् । अध्ययनं तु वाप्सुरित्येव दृश्यते । गाङ्चटस्तदाहरणान्तरमन्वेषणीयम् ॥ ३५४५ **इरयो** । 'इरे' इत्येतस्य रे आदेशः स्याच्छन्दसि ॥ दध्रे इति धात्रो लिटि झस्य 'लिटस्तझयोः' इतीरेचि कृते रेभावः ॥ ननु चात्र परत्वाद्रेभावे कृतेऽनजादित्वादालोपो न प्राप्नोतीत्यत आह रेभावस्येति । नन्वेवमपि रेभावस्यैव क्रादिनियमादिडागमः प्राप्नोति । न च रेभावस्य वैयर्थ्यम्, कृसृप्रभृतिष्वनिट्सु चरितार्थत्वात् तत्राह — अत्रेति ॥ कथं पुनर्लाक्षणिकस्य तस्येरेशब्दस्य रेभावो भवति ? तत्राह तदर्थं चेति । द्विर्वचननिर्देशाल्लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषा न प्रवर्तत इति भावः ॥ ३५४६ **तन्वादीनाम्** । तन्वादीनां बहुलमियङुवङादेशः स्याच्छन्दसि ॥ **तनुवमिति** । अधातुत्वादप्राप्त उवङ् विधीयते ॥ तन्वमिति । 'वा छन्दसि' इत्यमि पूर्वत्वाभावे यण् ॥ **त्र्यम्बकमिति** । त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि यस्यासौ त्र्यम्बको रुद्रः ॥ ३५४७ **वितत्निरे इति** । 'तनु विस्तारे' लिटः प्रथमपुरुषबहुवचनम् । अत्राल्लोपस्यासिद्धत्वेऽपि 'अत एकहल्मध्ये' इति एत्वाभ्यासलोपौ न, लोपविधानसामर्थ्यात् ॥ पप्तिमेति । 'पत्लृ पतने' लिटो मसो मस्य इट् । वितेनिरे पेतिमेति भाषायाम् ॥ ३५४८ **घसिभसोः** । अनयोरुपधालोपः स्याद्धलादावजादौ च क्ङिति ॥ सग्धिरिति । अदेः क्तिन् 'बहुलं छन्दसि' इति घस्लादेशे उपधालोपे च कृते 'झलो झलि' इति सलोपस्तकारस्य धत्वं घस्य जश्त्वम् । ततः समाना ग्धिः सग्धिरिति समासे कृते 'समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु' इति सूत्रेण समानस्य सः । बब्धामिति । भसेर्लोटि ताम्, श्लुः । परं नित्यमप्युपधालोपं बाधित्वा बाहुलकात्प्रथमं 'श्लौ' इति द्वित्वम् । तत उपधालोपसलोपधत्वजश्त्वानि कर्तव्यानि ३५४९ **श्रुशृणु** । एभ्यो हेर्धिः स्यात् ॥ श्रुधीति । 'बहुलं छन्दसि' इति शपो लुक् । अन्येषामपि इति दीर्घत्वम् शृणुधीति । श्रुवः शृच इति श्रुवः शृभावश्च । विधानसामर्थ्यात् 'उतश्च प्रत्ययात्' इति न हेर्लुक्, दीर्घः पूर्ववत् ॥—पूर्धीति । पॄ पालने । शपो लुक् 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' इत्युत्वम् । 'हलि च' इति दीर्घः ॥ उरुणस्कृधीति । नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः इति णत्वम् । 'कः करत्' इत्यादिना विसर्जनीयस्य सत्वम् ॥ अपावृधीति दीर्घः पूर्ववत् ॥ ३५५१ **अभ्यासस्य दीर्घश्चेति** । तुजादित्वादिति भावः ॥ रारन्धीत्यत्र 'अनुदात्तोपदेश' इत्यादिना मलोपो न, हेरङित्त्वात् ॥ यमेः शपो लुगिति । बहुलं छन्दसि इत्यनेन । एवमुत्तरत्रापि ॥ ३५५३ **विभाषर्जो** । 'र ऋतो हलादेर्लघोः' इत्यतः र ऋत इति तुरिष्ठेमेयःसु' इति च, तदाह ऋतः स्थाने

---

१ 'त्वादातो लोपः' इति क्वचित् पाठः ।

सप्तमोऽध्यायः

'शीङो रुट्' २४४२। ३५५५। **बहुलं छन्दसि**। ७। १। ८। रुडागमः स्यात्। 'लोपस्तु आत्मनेपदेषु' ३५६३ इति पक्षे तलोपः, धेनवो दुह्रे। लोपाभावे घृतं दुह्रते। अदृश्रमस्य। 'अतो भिस ऐस्' २०३। ३५५६। **बहुलं छन्दसि**। ७। १। १०। अग्निर्देवेभिः। ३५५७। **नेतराच्छन्दसि**। ७। १। २६। स्वमोरदड् न। वार्त्रघ्नमितरम्। छन्दसि किम्। इतरत्काष्ठम्। 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' ३३३२। ३५५८। **क्त्वाऽपि छन्दसि**। ७। १ ३८। यजमानं परिधापयित्वा। ३५५९। **सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः**। ७। १। ३९। ऋजवः सन्तु पन्थाः। पन्थान इति प्राप्ते सुः। परमे व्योमन्, व्योमनि इति प्राप्ते ङेर्लुक्। धीती मती सुष्टुती, धीत्या मत्या सुष्टुत्येति प्राप्ते पूर्वसवर्णदीर्घः। या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा अश्विना, यौ सुरथौ दिविस्पृशावित्यादौ प्राप्ते आ। नताद्ब्राह्मणम्, नतमिति प्राप्ते आत्। [1]याद्देव विश्व तात्वा, यमिति प्राप्ते। न युष्मे वाजबन्धवः, अस्मे इन्द्राबृहस्पती, युष्मासु अस्मभ्यमिति प्राप्ते शे। उरुया धृष्णुया, उरुणा धृष्णुनेति प्राप्ते या। नाभा पृथिव्याः, नाभामिति प्राप्ते डा। ता अनुष्ठ्योच्यावयतात्, अनुष्ठानमनुष्ठा व्यवस्थावङ्, आङो ड्या। साधुया, साध्विति प्राप्ते याच्। वसन्ता यजेत, वसन्ते इति प्राप्ते आल्। * **इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम्**। उर्विया दार्विया। उरुणा दारुणेति प्राप्ते इया। सुक्षेत्रिया सुक्षेत्रिणेति प्राप्ते डियाच्। दृति न शुष्कं सरसी शयानम्। ङेरीकार इत्याहुः। तत्राद्युदात्ते पदे प्राप्ते व्यत्ययेनान्तोदात्तता। वस्तुतस्तु ङीषन्तात् ङेर्लुक्। ईकारादेशस्य तूदाहरणान्तरं मृग्यम्॥ * **आङ्याजयारामुपसंख्यानम्**। प्र बाहवा सिसृतम्। बाहुनेति प्राप्ते आङादेशः, घेर्ङिति २४५ इति गुणः। स्वप्नया। स्वप्नेनेति प्राप्ते अयाच्। स नः सिन्धुमिव नावया। नावेति प्राप्ते अयार्, रित्स्वरः।

इत्यादि। ३५५४ **ऋत्व्य**। ऋतुशब्दाद्यति वास्तुशब्दादणि यति च यणादेशो निपात्यते॥ मशब्दस्येति। तस्यासिद्धत्वात् 'यस्य' इति लोपो न। 'आकृत्सार्वं' इति दीर्घसत्त्वङ्गवृत्तपरिभाषया वरणीयः। यद्वा मकारमात्रस्य लोपः। ततो 'यस्य' इति लोपे कृते प्रत्ययाकारस्य श्रवणम्॥ इति षष्ठोऽध्यायः॥

३५५५ **बहुलं छन्दसि**। छन्दसि विषये बहुलं रुडागमः स्यात्॥ दुह्रे इति। दुहेर्लट्, टेरेत्वे झस्यादेशे रुट् तलोपः। लोपाभावे इति। 'लोपस्त आत्मनेपदेषु' इत्यस्य वैकल्पिकत्वादित्यर्थः। अदृश्रमिति। 'दृशिर् प्रेक्षणे' लुङ्, व्यत्ययेन प्रथमपुरुषबहुवचनस्थाने। उत्तमपुरुषैकवचनं मिप् तस्य रुडागमः॥ ३५५७ **नेतरा** इतरशब्दात्परयोः स्वमोरद्ड्डादेशो न स्याच्छसि॥ **इतरमिति**। 'अद्डुतरादिभ्यः' इत्यदडभावे 'अतोऽम्' इत्यम्॥ क्त्वो ल्यविति। समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यपि प्राप्ते छन्दसि क्त्वाऽपि विधीयते। तदाह— ३५५८ **क्त्वापि**। अनञ्पूर्वे समासे 'क्त्वा' इत्येतस्य 'क्त्वा' इत्ययमादेशः स्यात्। अपिशब्दाल्ल्यबपि। स च समासेऽसमासे च भवति अप्राप्तिविषये ल्यपः, प्रापणार्थत्वादपिशब्दस्य। अन्यथा 'वा छन्दसि' इत्येव ब्रूयात् तथा च छन्दोविधिमनुविदधानाः कल्पसूत्रकारा अपि प्रयुञ्जते ताज्येनाक्षिणी अज्येति॥ **परिधापयित्वेति** णिजन्तात्परिपूर्वाद्धातेः क्त्वा, तस्य ल्यबादेशे प्राप्ते क्त्वादेशः॥ ३५५९ **सुपाम्**। सुपां स्थाने सुः लुक् पूर्वसवर्णः आ-आत्-शे-या-डा-ड्या-याच् आल् एते आदेशाः स्युश्छन्दसि॥ **पन्था इति**। 'व्यत्ययो बहुलम्' इत्येव सिद्धमिदम्। उक्तं हि तत्र 'सुप्तिङुपग्रह' इत्यादि तस्यैवाय प्रपञ्चः। धीतीत्यादि। धीतीमथी-सुष्टुतीशब्देभ्यस्तृतीयैकवचनस्य पूर्वसवर्ण ईकारः, प्रमाणत आन्तर्यात्। सवर्णदीर्घत्वम्॥ दिविस्पृशाविति प्राप्ते आ इति। अनेनादित्यत्राकारोऽपि प्रश्लिष्यत इति दर्शितम्॥ **नतादिति**। नतशब्दादम्। तस्यादादेशः 'न विभक्तौ तु' इतीत्संज्ञाप्रतिषेधः॥ याद्देवेत्यादि। यत्तच्छब्दादम्, अस्यात्॥ न युष्मे इति। युष्मदः सप्तमीबहुवचनस्य शे आदेशः। शेषे लोपः॥ **अस्मे इन्द्रेति**। शे इति प्रगृह्यत्वादयादेशाभावः॥ **नाभा इति** डित्वाट्टिलोपः॥ ता अनुष्ठ्येति। षड्विंशतिरस्य वङ्क्रय इति प्रक्रम्य इदमध्वर्युप्रैषे पठितम् ताः वङ्क्रीः अनुष्ठ्या अनुष्ठानेन अनुक्रमेण गणनया गणयित्वा उच्यावयतात् भवान्। विशसनं करोतु। पृथक् करोतु

---

1 एतदपि सुपां स्थाने 'आत्' इत्यस्योदाहरणम्।

३५६० । **अमो मश्** । ७ । १ । ४० । मिबादेशस्यामो मश् स्यात् । अकार उच्चारणार्थः । शित्वात्सर्वादेशः 'अस्तिसिचः' २२२५ इति इट् । वधीं वृत्रम् अवधिषमिति प्राप्ते । ३५६१ । **लोपस्त आत्मनेपदेषु** । ७ । १ ४१ । छन्दसि । देवा अदुह्र, अदुहतेति प्राप्ते । दक्षिणतः शये, शेते इति प्राप्ते१ । आत्मने इति । किम् । उत्सं दुहन्ति । ३५६२ । **ध्वमो ध्वात्** । ७ । १ । ४२ । अन्तरेवोष्माणं वारयध्वात् । वारयध्वमिति प्राप्ते । ३५६३ । **यजध्वैनमिति च** । ७ । १ । ४३ । एनमित्यस्मिन्परे ध्वमोऽन्तलोपो निपात्यते । यजध्वैन प्रियमेधाः वकारस्य यकारो निपात्यत इति वृत्तिकारोक्तिः प्रामादिकी । ३५६४ । **तस्य तात्** । ७ । १ । ४४ । मध्यमपुरुषबहुवचनस्य स्थाने तात्स्यात । गात्रमस्यानूनं कृणुतात, कृणुतेति प्राप्ते । सूर्यं चक्षुर्गमयतात, गमयतेति प्राप्ते । ३५६५ । **तप्तनप्तनथनाश्च** । ७ । १ । ४५ । तस्येत्येव । शृणोत ग्रावाणः । शृणुतेति प्राप्ते तप् । सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे, दधातन द्रविणं चित्रमस्मै, तनप् । मरुतस्तज्जुजुष्टन । जुषध्वमिति प्राप्ते व्यत्ययेन परस्मैपदं श्लुश्च । विश्वेदेवासो मरुतो यतिष्ठन । यत्संख्याकाः स्थेत्यर्थः । यच्छब्दाच्छान्दसो डतिः, अस्तेस्तस्य थनादेशः । ३५६६ । **इदन्तो मसि** । ७ । १ । ४६ । मसीत्यविभक्तिको निर्देशः । इकार

भवानित्यर्थः ।। अनुष्ठानमनुष्ठेति । अनुपूर्वात्तिष्ठतेरङ् तृतीयैकवचनस्य डचादेशे डित्त्वाट्टिलोपः ।। नन्वनुपूर्वात्तिष्ठतेः 'आतश्चोपसर्गे इत्यङं बाधित्वा 'स्थागापापचो भावे' इति क्तिना भाव्यमिति चेत् सत्यम् । पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरा' इति सूत्रे व्यवस्थायामिति निर्देशादङपि, सामान्यापेक्षज्ञापकाश्रयणात् । तदेतद् ध्वनयति—**व्यवस्थावदिति** । **साधु इति प्राप्त इति** । सोर्लुकि प्राप्त इत्यर्थः ।। वसन्ते इति प्राप्ते आल् इति । पूर्वसवर्णे तु 'अतो गुणे' इति स्यात । उर्वियेति । उरुदारुशब्दात्तृतीयैकवचनस्येयादेशः ।। सुक्षेत्रियेति । सुक्षेत्रिन्शब्दात्तृतीयैकवचनस्य डियाजादेशः । डित्त्वाट्टिलोपः । बाहुनेति प्राप्त इति काशिकायां तु प्रबाहुनेति प्राप्त इत्युक्तम् तत्समासभ्रमादित्यवधेयम् । प्रेति न समस्तं पृथक्स्वरदर्शनात पदकारैर्विच्छिद्य पाठाच्च । अत आख्यातान्वयीति ध्येयम् ।।—**स्वप्नयेति** । अयाचोऽकारः 'सुपि च' इति दीर्घनिवृत्त्यर्थः । 'अतो गुणे' इति पररूपम् ।। **नावयेति** । नौशब्दाट्टा इत्यस्याऽयार् ।। रित्स्वर इति । 'रिति' इति सूत्रेण ।। ३५६० **अमो** अम इति मिबादेशो गृह्यते न द्वितीयैकवचनं छन्दसि दृष्टानुविधानात् । तदेतदाह—**मिबादेशस्येति** । शित्वात्सर्वादेश इति । शित्करणाभावे तु 'अलोऽन्त्यस्य' इति मकारस्य स्यात । आदेः परस्य इति तु न, पञ्चमीनिर्देशाभावात् । न च मकारस्य मकारवचने प्रयोजनाभावात् सर्वादेशो भविष्यतीति वाच्यम् । मकारस्य मकारवचनमनुस्वारनिवृत्त्यर्थः स्यात, मो राजि समः क्वौ' इत्यत्र यथा ।।— **वधीमिति** । हन्तेर्लुङ् 'हन वध लिङि' 'लुङि च' इति वधादेशः । 'च्लेः सिच्' इट्, 'तस्थस्थ' इति मिपोऽम्भावः । तस्य मश्, 'अस्तिसिचः' इति तस्यापृक्तस्येट् 'इट ईटि' इति सिचो लोपः । सवर्णदीर्घत्वम् ।। 'बहुलं छन्दसि' इत्यडभावः ।। ३५६१ **लोपस्त** । आत्मनेपदेषु यस्तकारस्तस्य छन्दसि विषये लोपः स्यात् ।।—**अदुह्रेति** । दुहेर्लुङ् । 'आत्मनेपदेष्वनतः' इति झस्यादादेश । 'बहुलं छन्दसि' इति रुट्, तकारस्य लोपे द्वयोरकारयोः 'अतो गुणे' इति पररूपम् ।। शये इति । शेते इत्यत्र तलोपे कृतेऽयादेशः ।। ३५६२ **ध्वमो** । ध्वमो ध्वादित्यादेशः स्याच्छन्दसि ।। वारयध्वादिति । वृञो णिचि लोट् । ३५६३ **यज** । वृत्तिकारस्तु यजध्वैनमिति पाठं कृत्वा वकारस्य यकारस्य निपात्यत इत्याह । तद् दर्शयति वकारस्येत्यादि ।। प्रामादिकीति । लक्ष्ये वकारपाठस्य निर्विवादत्वात् । वेदभाष्येऽपि प्रकृतसूत्रस्य मलोपमात्रपरतोक्तेश्चेति भावः ।। ३५६४ **तस्य** । मध्यमपुरुषबहुवचनस्येति । प्रथमपुरुषैकवचनस्य तु न ग्रहणम्, छन्दसि दृष्टानुविधानात् । पूर्वोत्तराभ्यां बहुवचनाभ्यां साहचर्याच्च ।। कृणुतादिति । कृवि हिंसाकरणयोश्च । 'धिन्विकृण्व्योर च' इत्युप्रत्ययः, वकारस्य चाकारः । अतोः लोपः ।। **गमयतादिति** । गमेर्णिच् । 'जतीजॄष्' इति अमन्तत्वान्मित्संज्ञायां मितां ह्रस्वः, लोण्मध्यमपुरुषबहुवचनस्य तादेशः ।। ३५६५ **तप्तनप्त** । तस्य स्थाने एते आदेशाः स्युः ।। शृणोतेति । श्रु श्रवणे । श्रुवः शृ च' इति श्नुप्रत्ययः शृभावश्च पित्त्वेनाङित्त्वादगुणः ।। सुनोतनेति 'षुञ् अभिषवे' 'स्वादिभ्यः श्नुः', त इत्यस्य तनप् ।। दधातनेति । अत्राप्यङित्त्वात् 'श्नाभ्यस्तयो' इत्याकार-

उच्चारणार्थः। मस् इत्ययमिकाररूपचरमावयवविशिष्टः स्यात्। मस इगागमः स्यादिति यावत्। नमो भरन्त एमसि। त्वमस्माकं तव स्मसि। 'इमः' 'स्मः' इति प्राप्ते। ३५६७। **क्त्वो यक्**।७।१।४७। दिवं सुपर्णो गत्वाय। ३५६८। **इष्ट्वीनमिति च**।७।१।४८। क्त्वाप्रत्ययस्य ईनम् अन्तादेश निपात्यते इष्ट्वीनं देवान्। 'इष्ट्वा' इति प्राप्ते। ४५६९। **स्नात्व्यादयश्च**।७।१।४९। आदिशब्दः प्रकारार्थः। आकारस्य ईकारो निपात्यते। स्विन्नः स्नात्वी मलादिव। पीत्वी सोमस्य वावृधे। 'स्नात्वा' 'पीत्वा' इति प्राप्ते। ३५७०। **आज्जसेरसुक्**।७।१।५०। अवर्णान्तादङ्गात्परस्य जसोऽसुक् स्यात्। देवासः। ब्राह्मणासः। ३५७१। **श्रीग्रामण्योश्छन्दसि**।७।१।५६। आमो नुट्। श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम्। सूत ग्रामणीनाम्। ३५७२। **गोः पदान्ते**।७।१।५७। विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम्। पादान्ते किम्। गवां शता पृक्षयामेषु। पादान्तेऽपि क्वचिन्न, छन्दसि सर्वेषां वैकल्पिकत्वात्। विराज गोपतिं गवाम् ३५७३। **छन्दस्यपि दृश्यते**।७।१।७६। अस्थ्यादीनामनङ्। इन्द्रो दधीचो अस्थभिः। ३५७४। **ई च द्विवचने**।७।१।७७। अस्थ्यादीनामित्येव अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम्। ३५७५। **ह्वस्ववस्स्वतवसां छन्दसि**।७।१।८३। एषां नुम् स्यात्सौ। कीदृङ्ङिन्द्रः। स्ववान् स्वतवान्। 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' २४९४। ३५७६। **बहुलं छन्दसि**।७।१।१०३। ततुरिः। जगुरिः पराचः। ३५७७। **ह्रु ह्वरेश्छन्दसि**।७।२

लोपाभावः॥ ३५६६ **इदन्तो**। अन्तशब्दोऽवयववचनः। इत् अन्तो यस्य स इदन्तः। तपरकरणमसंदेहार्थम्। तथा चायमर्थः मस् इत्ययं शब्द इकारान्तो भवति, मसः सकारान्तस्य इकार आगमो भवति स च तस्यान्तो भवतीत्यर्थः। तदेतदाह— **मस् इत्ययमिति**। तत्र यदि सकारोपमर्देन इकारान्तत्वमभिप्रेतं स्यात्तर्हि 'मस इत्' इति वाच्यं स्यात्। तस्मादवस्थित एव सकारे इकार उपसजनीयः। अन्तग्रहणाच्च तद्ग्रहणेन गृह्यते ततश्च टित्वाकित्वादेरागमलिङ्गस्याभावेऽप्ययर्थादागमोऽयं संपद्यते। तदेतद्ध्वनयन्नाह— **मस इगागमः स्यादिति**। एवं च मस इगिति वक्तव्यं, प्रत्याहारसन्देहप्रसङ्गात्तथा नोक्तम्॥ एमसीति। 'इण् गतौ' मस् तस्य इकारोऽन्तावयवः॥ स्मसीति अस्तेर्मस् 'श्नसोरल्लोपः'॥ ३५६७ **क्त्वो**। क्त्वा इत्यस्य यगागमः स्याच्छन्दसि॥ गत्वायेति। गमेः क्त्वा। 'अनुदात्तोपदेश' इत्यनुनासिकलोपः। क्त्वा इत्यस्य यगागमः॥ ३५६८ **इष्ट्वीन**। क्त्वाप्रत्ययस्येति। यजेः परस्येति शेषः॥ इष्ट्वीनमिति। 'वचिस्वपि' इति संप्रसारणम् 'व्रश्च' इति षत्वम्। ष्टुत्वम्। आकारस्येनमादेश॥ ३५६९ **पीत्वीति**। पिबतेः क्त्वा। 'घुमास्था' इतीत्वम् ३५७० **आज्जसेः**। जसेरिति पूर्वाचार्यानुरोधेन निर्देशः॥ देवास इति। असुकि कृते जसः सकारस्य श्रवणम् असुकः सकारस्य विसर्गः॥ ३५७१ **श्रीणामिति**। अस्य वामि इति नदीत्वविकल्पान्नदीत्वाभावे उदाहरणमिदं बोध्यम्। नदीत्वपक्षे तु 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इत्यनेनैव सिद्धम्॥ सूत ग्रामणीनामिति। सूताश्च ग्रामण्यश्चेतीतरेतरयोगः॥ ३५७२ **गोः पा**। गो इत्येतस्मादुत्तरस्यामो नुडागमः स्यात्पादान्ते। पादश्चेह ऋक्पादो गृह्यते, छन्दसीत्यधिकारात्॥ ३५७३ **छन्दस्य**। 'छन्दसि च' इत्येव सिद्धे अपि 'दृश्यते' इत्येतत्सर्वोपाधिव्यभिचारार्थम्। अन्यथा आरम्भसामर्थ्यात्क्वचिदेव व्यभिचारः संभाव्येत। टादावचीत्युक्तं हलादावपि भवति अस्थभिः। विभक्तावित्युक्तम्, अविभक्तावपि भवति 'अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति'। अस्थन्वन्तमित्यत्रास्थिशब्दान्मतुप्। अनङि कृते 'अनो नुट्' इति मतुपो नुट्। अनङो नकारस्य लोपः॥ ३५७५ **ह्वक्**। 'आच्छीनद्योर्नुम्' सावनडुहः' इतः। 'नुम् सौ' इत्यनुवर्तते। तदाह नुम् स्यादिति। कीदृङ्ङिन्द्र इति। किम्शब्दे उपपदे 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च' इति दृशेः क्विन्। इदकिमोरीश् की इति किमः की आदेशः। नुम्, 'संयोगान्तस्य लोपः', 'क्विन्प्रत्ययस्य' इति कुत्वेन नस्य ङः, 'ङमो ह्रस्वादचि' इति ङुट्। स्ववानिति। अवतेरसुन् सुष्ठु अवो यस्येति विग्रहः। स्ववः शब्दान्नुमि कृते 'सान्तमहतः' इति दीर्घः, संयोगान्तलोपः। तस्यासिद्धत्वान्नलोपो न॥ स्वतवानिति। तुधातुः सौत्रो वृद्ध्यर्थः तनोऽसुन्। स्वं तवो वृद्धिर्यस्येति विग्रहः। ३५७६ **ततुरिरिति**। तरतेः 'आदृगम' इति किन्प्रत्ययः। उत्वं तस्य 'द्विर्वचनेऽपि' इति स्थानिवद्भावात्तृ इत्येतस्य द्विर्वचनम्। उरदत्वम्॥ ३५७७ **ह्रु ह्वरे**। 'श्वीदितो निष्ठायाम्' इत्यतो निष्ठायामिति वर्तते। तदाह निष्ठायामिति। अह्रुतमिति। न ह्रुतमह्रुतम्॥

३१। 'ह्लु' आदेशः स्यात्। अह्लुतमसि हविर्धानम्। ३५७८। **अपरिह्वृताश्च**। ७। २। ३२। पूर्वेण प्राप्तस्यादेशस्याभावो निपात्यते। अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्। ३५७९। **सोमे ह्वरितः**। ७। २। ३३। इड्गुणौ निपात्येते। मा नः सोमो ह्वरितः। ३५८०। **ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितचत्तविकस्ता विशस्तृशंस्तृशास्तृतरुतृनरूतृवरुतृवरूतृवरूत्रीरुज्ज्वलितक्षरितिवमित्यमितीति च**। ७। २। ३४। अष्टादश निपात्यन्ते तत्र ग्रसु स्कम्भु स्तम्भु एषामुदित्वान्निष्ठायामिट्प्रतिषेधे प्राप्ते इण्निपात्यते। युवं शचीभिर्ग्रसितामुमुञ्चतम्। विष्कभिते अजरे। येन स्वः स्तभितम्। सत्येनोत्तभिता भूमिः, स्तभितेत्येव सिद्धे उत्पूर्वस्य पुनर्निपातनमन्योपसर्गपूर्वस्य मा भूदिति। चते याचने। कस गतौ। आभ्यां क्तस्येडभावः, चत्तो इतश्चत्तामुतः। विधा ह श्यावमश्विना विकस्तम्। उत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्। निपातनं बहुत्वापेक्षं सूत्रे बहुवचनं विकस्ता इति तेनैकवचनान्तोऽपि प्रयोगः साधुरेव। 'शसु शंसु शासु' एभ्यस्तृच इडभावः, एकस्त्वष्टुरश्वस्याविशस्ता। ग्रावग्राभ उत शंस्ता। प्रशास्ता पोता। तरतेर्वृङ्वृञ्भ्यां च तृचः 'उट्' 'ऊट्' एतावागमौ निपात्येते तरुतारं रथानाम् तरूतारम्। वरुतारम् वरूतारम्। वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु। अत्र ङीबन्तनिपातनं प्रपञ्चार्थम्। वरूतृशब्दो हि निपातितः, ततो ङीपा गतार्थत्वात्। उज्ज्वलादिभ्यश्चतुर्भ्यः शप इकारादेशो निपात्यते। ज्वल दीप्तौ। क्षर संचलने। टुवम उद्गिरणे। अम गत्यादिषु। इह क्षरिति इत्यस्यानन्तरं 'क्षमिति' इत्यपि केचित्पठन्ति। तत्र क्षमूष् सहने इति धातुर्बोध्यः। भाषायां तु ग्रस्तस्कब्धस्तब्धोत्तब्धचतितविकसिताः। विशसिता। शंसिता। शासिता। तरीता, तरिता। वरीता, वरिता। उज्ज्वलति। क्षरति। पाठान्तरे क्षमति। वमति। अमति। '**बभूथाऽऽततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे**' २५२७। विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ। येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ। जगृम्भा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तम्। त्वं ज्योतिषा वितमो ववर्थ। भाषायां तु बभूविथ, आतेनिथ, जगृहिम, ववरिथ इति। ३५८१। **सनिंससनिवांसम्**। ७। २। ६९। सनिमित्येतत्पूर्वात्सनतेः सनोतेर्वा क्वसोरिट् एत्वाभ्यासलोपाभावश्च निपात्यते। ※ **पावकादीनां छन्दसि प्रत्ययस्थात्कादित्वं नेति वाच्यम्**। हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः। ३५८२। **घोर्लोपो लेटि वा**। ७। ३। ७०। दधद्रत्नानि दाशुषे। सोमो ददद्गन्धर्वाय। यदग्निरग्नये ददात्।

३५७८ अपरिह्वृता। छन्दसि बहुवचनान्तस्यैव प्रयोगदर्शनाद्बहुवचननिर्देशः। ३५७९ **सोमे**। इट्गुणाविति ह्लु इत्यादेशस्याभावोऽपि बोध्यः॥ ३५८० **ग्रसित**। ग्रसु अदने। स्कम्भु स्तम्भु रोधनार्थौ सौत्रौ। चते याचने। कस गतौ। शसु हिंसायाम्। शंसु स्तुतौ। शासु अनुशिष्टौ। तॄ प्लवनतरणयोः। वृङ् सम्भक्तौ। वृञ् वरणे। ज्वल दीप्तौ। क्षर संचलने। क्षमूष् सहने। टुवम् उद्गिरणे। अम गत्यादिषु॥ अष्टादशेति। क्षमितेः पाठपक्षे तु एकोनविंशतिः॥ उदित्त्वान्निष्ठायामिट्प्रतिषेधे प्राप्ते इति। 'उदितो वा' इति क्त्वायां वेट्त्वात् 'यस्य विभाषा' इति निषेधे प्राप्ते इत्यर्थः। विष्कभित। 'अनिदिताम्' इति नलोपः। 'वेः स्कभ्नातेर्नित्यम्' इति षत्वम्। उत्तभितेति। 'उदः स्थास्तम्भोः' इति पूर्वसवर्णः। सकारस्य थकारः। तस्य झरो झरि सवर्णे इति लोपः। अन्योपसर्गपूर्वस्य मा भूदिति। यदि स्यात् उत्तभितग्रहणं व्यर्थं स्यात्। चत्तो इति चत्तशब्दाट्टापि उत्रा सह 'आद्गुणः'। निपातेन सह एकीकृत्य छेदस्तु पदकाराणां संप्रदायसिद्धः। 'भूयामो' इति मन्त्रे भूयायो इति यथा॥ अश्वस्याविशस्तेति। अन्येषामपि इति पूर्वपदस्य दीर्घः॥ निपातनं बहुत्वापेक्षमिति तेन छान्दसः प्रयोग एकवचनान्तोऽप्युदाहृत इति भावः। **ततो ङीपा इति**। ऋन्नेभ्यः इति विहितेन॥ **बभूथा**। निगमो वेदः। एषां वेद इडभावो निपात्यते। वृञः क्रादिसूत्रेणेडभावे सिद्धे निगम एवेति नियमार्थं निपातनम्। तदेतदाह— **भाषायां तु ववरिथेति**॥ ३५८१ **सनिंस**। सनिपूर्वात्सनतेः सनोतेर्वा सनिंससनिवांसमिति निपात्यते। क्वसोरिडिति। 'नेड्वशि कृति' इति निषेधे प्राप्ते निपातनम्। पावका इति। पुनन्ति पावयन्ति वा पावकाः। पुनातेः दावयतेर्वा ण्वुल्, टाप्॥— **दधदिति**। दधातेर्लेट्, तिप्, 'श्लौ' इति द्वित्वम्। 'दधाति' इति स्थिते आकारलोपः। 'लेटोऽडाटौ' इत्यडागमः। 'इतश्च लोपः परस्मैपदेषु' इतीकारलोपः। दाशुषे यजमानाय रत्नानि दधत्। दध्यादित्यर्थः। ददिति ददाते रूपम्॥ ३५८२

३५८३। **मीनातेर्निगमे**। ७। ३। ८१। शिति ह्रस्वः। प्रमिणन्ति व्रतानि। लोके प्रमीणन्ति।
'अस्तिसिचोऽपृक्ते' २२२५। ३५८४। **बहुलं छन्दसि**। ७। ३। ९७। सर्वा इदम्। आसीदिति प्राप्ते।
'ह्रस्वस्य गुणः' २४२। 'जसि च' २४१। ※ जसादिषु छन्दसि वावचनं प्राङ् णौ चङ्युपधायाः। अधा शतक्रतवः। पश्वे नृभ्यो यथा गवे, पशवे॥ ※ 'नाभ्यस्तस्याचि' २५०३ इति निषेधे 'बहुलं छन्दसि' इति वक्तव्यम्। आनुषग्जुजोषत्। ३५८५। **नित्यं छन्दसि**। ७। ४। ८। छन्दसि विषये चङ्युपधाया ऋवर्णस्य ऋन्नित्यम्। अवीवृधन्। ३५८६। **न छन्दस्यपुत्रस्य**। ७। ४। ३५। पुत्रभिन्नस्यादन्तस्य क्यचि ईत्वदीर्घौ न। मित्रयुः, 'क्याच्छन्दसि' ३१५० इति उः। अपुत्रस्य किम्। पुत्रीयन्तः सुदानवः। ※ अपुत्रादीनामिति वाच्यम्। जनीयन्तोऽन्वग्रवः। जनमिच्छन्त इत्यर्थः। ३५८७। दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति। ७। ४। ३६। एते क्यचि निपात्यन्ते। भाषायां तु उप्रत्ययाभावात् दुष्टीयति, द्रविणीयति, वृषीयति, रिष्टीयति। ३५८८। **अश्वाघस्यात्**। ७। ४। ३७। 'अश्व' 'अघ' एतयोः क्यति आत्स्याच्छन्दसि। अश्वायन्तो मघवन्। मा त्वा वृका अघायवः। 'न च्छन्दसि' ३५८८ इति निषेधो नेत्वमात्रस्य, किंतु दीर्घस्यापीति। अत्रेदमेव सूत्रं ज्ञापकम्। ३५८९। **देवसुम्नयोर्यजुसि काठके**। ७। ४। ३८। अनयोः क्यचि आत्स्याद्यजुषि कठशाखायाम्। देवायन्तो यजमानाः। सुम्नायन्तो हवामहे। इह यजुःशब्दो न मन्त्रमात्रपरः, किंतु वेदोपलक्षकः। तेन ऋगात्मकेऽपि मन्त्रे यजुर्वेदस्थे भवति। किं च ऋग्वेदेऽपि भवति, स चेन्मन्त्रो यजुषि कठशाखायां दृष्टः। यजुषीति किम्। देवाञ्जिगाति सुम्नयुः। बह्वृचानामप्यस्ति कठशाखा, ततो भवति प्रत्युदाहरणमिति हरदत्तः। ३५९०। **कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः**। ७। ४। ३९। एषामन्त्यस्य लोपः स्यात् क्यचि परे ऋग्विषये। सपूर्व्या निविदा कव्यतायोः। अध्वर्युं वा मधुपाणिम्। दमयन्तं पृतन्युम्।
'घ्वातेर्हिः' ३०८६। 'जहातेश्च क्त्वि' ३३३१। ३५९१। **विभाषा छन्दसि**। ७। ४। ४४। हित्वा शरीरम्

लोपाभावे उदाहरणमाह—ददादिति। ३५८३ **मीनातेः**। 'प्वादीनां ह्रस्वः' इत्यतो ह्रस्व इति वर्तते, तदाह शिति ह्रस्व इति। प्रमिणन्तीति। दिनुमीना इति णत्वम्॥ ३५८४ **आ इदमिति**। अस्तेर्लङ्, तिप्, 'आडजादीनाम्' इत्याट् शपो लुक्। 'अस्तिसिचः' इतीडभावे अपृक्तत्वाद्धल्ङ्याादिलोपः, रुत्वविसर्गौ। संहितायां तु 'भोभगो' इति रोर्यत्वम्। 'लोपः शाकल्यस्य' इति यलोपः। **जसादिष्विति**। आदिशब्दः प्रकारे, तेन पूर्वयोगनिर्दिष्टानामपि ग्रहणम्। शतक्रतव इति। 'जसि च'। इति गुणाभावपक्षे प्रथमयोः पूर्वसवर्णदीर्घोऽपि 'वा छन्दसि' इति वचनादत्र न भवतीति यणादेशः प्रवर्तते। पश्वे इति। 'घेर्ङिति' इत्यस्याभावे यण्॥ जुजोषदिति। जुषी प्रीतिसेवनयोः। लेट्, व्यत्ययेन परस्मैपदम्, तिप्। इतश्च लोपः 'परस्मैपदेषु', 'लेटोऽडाटौ' इत्यट्, व्यत्ययेन शपः श्लुः, द्विर्वचनम्। ३५८३ **न छन्दसि**। इह यद्यानन्तर्यादीत्वमात्रं प्रतिषिध्येत तर्हि 'आकृत्सार्वे' इति दीर्घः स्यात्, अपवादेन पुनरुत्सर्गस्थितेः। अत आह ईत्वदीर्घौ नेति। क्यचि यदुक्तं तन्नेति व्याख्यानादिति भावः। अत्र च ज्ञापकमनुपदमेव वक्ष्यति॥ पुत्रीयन्त इति। पुत्रमीच्छन्तः पुत्रीयन्तः। जनमिच्छन्तो जनीयन्तः। लटः शत्रादेशः। 'उगिदचाम्' इति नुम्॥ ३५८७ **दुरस्यु**। दुष्टशब्दस्य दुरस्भावः, द्रविणशब्दस्य द्रविणस्भावः, वृषस्य वृषण्भावः, रिष्टस्य रिषण्भावश्च निपात्यते। दुष्टीयतीति। प्रकृतिमात्रे तात्पर्यम्। उप्रत्ययस्य समानार्थेन तृणा दुष्टीयितेत्यादि बोध्यम्॥ **अश्वायन्त इति**। अश्वशब्दात् क्यच्। लटः शत्रादेशः॥ अघायव इति। 'छन्दसि परेच्छायां' इति क्यच्। 'क्याच्छन्दसि' इत्युप्रत्ययः। इदमेव सूत्रं ज्ञापकमिति। अन्यथा दीर्घणैव सिद्धत्वादात्ववचनमनर्थकं स्यात् ३५८९ **देवाञ्जिगातीति**। नन्विदं प्रत्युदाहरणमङ्गद्वयविकलम्। यजुषि काठक इत्यंशद्वयस्यापि तत्राभावादित्याशङ्क्याह बह्वृचानामप्यस्तीति। तत्रेदं दृष्टमिति भावः। काठक इति किम्? यजुर्वेदे शाखान्तरे माभूत्। अन्यत्र सुम्नयुरिदमस्ति॥ ३५९० **कव्यध्वर**। 'कवि अध्वर पृतना' एषामन्त्यस्य लोपः स्यात् क्यचि परे ऋचि विषये। मृगय्वादिगणेऽध्वर्युशब्दः पठ्यते तद्व्युत्पत्त्यन्तरं बोध्यम्॥ ३५९१ **विभाषा**। जहातेरङ्गस्य विभाषा हिरादेशः स्यात्। हीत्वेति। हिआदेशाभावे 'घुमास्था' इतीत्वम्। क्वचित्तु हात्वेति पाठस्तत्र छान्दसत्वात् 'घुमास्था' इतीत्वाभावः॥ ३५९२ **वसुधितमिति**। कर्मधारय इति हरदत्तः।

हीत्वा वा । ३५६२ । **सुधित वसुधित नेमधित धिष्व धिषीय च** । ७ । ४ । ४५ । 'सु' 'वसु' 'नेम' एतत्पूर्वस्य दधातेः क्तप्रत्यये इत्वं निपात्यते । गर्भं माता सुधितं वक्षणासु । वसुधितमग्नौ । नेमधिता न पौंस्या । क्तिन्यपि दृश्यते । उत श्वेतं वसुधितिं निरेके । धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते । धत्स्वेति प्राप्ते । सुरेता रेतो धिषीय, आशीर्लिङि इट् । 'इटोऽत्' २२५७ । धासीयेति प्राप्ते । **'अपो भि' ४४२ । ❋ मासश्छन्दसीति वक्तव्यम्** । माद्भिः शरद्भिः ॥ स्ववःस्वतवसं रुषसश्चेष्यते ॥ स्ववद्भिः, अवतेरसुन्, शोभनमवो येषां ते स्ववसस्तैः । 'तु' इति सौत्रो धातुस्तस्मादसुन्, स्वं तवो येषां तैः स्वतवद्भिः । सनुर्षद्भिरजायथाः । मिथुनेऽसिः । 'वसे किच्च' इत्यसिप्रत्यय इति हरदत्तः । पञ्चादीरीत्या तु 'उषः कित्' इति प्राग्व्याख्यातम् । 'न कवतेर्यङि' २६४१ । ३५६३ । **कृषेश्छन्दसि** । ७ । ४ । ६४ । यङि अभ्यासस्य चुत्वं न । करीकृष्यते । ३५६४ । दाधर्ति दर्धर्ति दर्धर्षि बोभूतु तेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणत्संसनिष्यदत्करिक्रत्कनिक्रदद्भरिभ्रद्दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतः सरीसृपतं वरीवृजन्मर्मृज्याऽऽगनीगन्तीति च । ७ । ४ । ६५ । एतेऽष्टादश निपात्यन्ते । आद्यास्त्रयो धृङो धारयतेर्वा । भवतेर्यङ्लुगन्तस्य गुणाभावः । तेन भाषायां गुणो लभ्यते । तिजेर्यङ्लुगन्तात्तङ् । इयर्तेर्लटि हलादिशेषापवादो रेफस्य लत्वमित्वाभावश्च निपात्यते, अलर्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर । सिपा निर्देशो न तन्त्रम्, अलर्ति दक्ष उत । फणतेराङ्पूर्वस्य यङ्लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य नीगागम निपात्यते, अन्वापनीफणत् । स्यन्देः सम्पूर्वस्य यङ्लुकि शतरि अभ्यासस्य निक्, धातुसकारस्य षत्वम् । करोतेर्यङ्लुगन्तस्याभ्यासस्य चुत्वाभावः करिक्रदत् । क्रन्देर्लुङि च्लेरङ् द्विर्वचनमभ्यासस्य चुत्वाभावो निगागमश्च, कनिक्रदज्जनुषम् । अक्रन्दीदित्यर्थः । विभर्तेरभ्यासस्य जश्त्वाभावः, वियो भरिभ्रदोषधीषु । ध्वरतेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य विगागमो धातोर्ऋकारलोपश्च, दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य । द्युतेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य संप्रसारणभावोऽत्वं विगागमश्च, दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः । तरते शतरि श्लौ अभ्यासस्य रिगागमः, सहजर्जा तरित्रतः । सृपेः शतरि श्लौ द्वितीयैकवचने रीगागमोऽभ्यासस्य । वृजेः शतरि श्लावभ्यासस्य रीक् । मृजेर्लिटि णल्, अभ्यासस्य रुक्, धातोश्च युक् । गमेरङ्-

---

वसूनां धातारं प्रदातारमित्यर्थ इति वेदभाष्यम् ॥ नेमधितमिति । सामिपर्यायो नेमशब्दः । अयं कर्मधारयः । धत्स्वेति । 'श्नाभ्यस्तयोरातः' इत्याकारलोपः । 'दधस्तथोश्च' इति भष्भावः । धिषीयेति । आशीर्लिङा-त्मनेपदोत्तमपुरुषैकवचने दधातेरित्वं निपात्यते । तदाह आशीर्लिङीति ॥ माद्भिरिति । 'पद्दन्नोमास्' इति मासशब्दस्य मास् इत्यादेशः ॥—न कवतेरिति । अनुवृत्त्यर्थ उपन्यासः ॥ ३५६३ **करीकृष्यत इति** । 'रुग्रिकौ च लुकि' इति रीगागमः । लोके तु चरीकृष्यते कृषीवलः ॥ ३५६४ । **धृङ इति** । धृङ् अवस्थाने ॥ धारयतेर्वेति । स एव ण्यन्तः । तत्र दाधर्तीत्यत्र धारयतेः शपः श्लौ णिलुक्, अभ्यासस्य दीर्घत्वं च निपात्यते दर्धर्तीत्यत्र यङ्लुक्पक्षे दाधर्तीति निपातनेन प्राप्तस्य दीर्घस्याभावो निपात्यते । 'रुग्रिकौ च लुकि' 'ऋतश्च' इत्येव रुक् सिद्धः । श्लुपक्षे तु रुगपि निपात्यः । दर्धर्षीत्यत्र यङ्लुक्पक्षे न किंचिन्निपातनं किं तु श्लावेव । भवतेर्यङ्लुगन्ताल्लोट् गुणाभाव इति । ननु 'भूसुवोस्तिङि' इत्येव गुणनिषेधे सिद्धे निपातनमनर्थकमिति चेत्, सत्यम् । ज्ञापकार्थं तर्हि निपातनम् । एतज्ज्ञापयति अन्यत्र यङ्लुगन्तस्य गुणप्रतिषेधो न भवतीति । तेन बोभवीतीत्यत्र भाषायां गुणः सिद्धः, तदेतदाह—**तेन भाषायामिति** । तिजेर्यङ्लुक्यात्मनेपदं निपात्यते तदाह तिजेरिति । 'ऋ गतौ' लटि सिपि 'श्लौ' इति द्वित्वम् । अभ्यासस्य हलादिःशेषापवादो रेफस्य लत्वं निपात्यते । 'अर्तिपिपर्त्योश्च' इत्यभ्यासस्य प्राप्तस्येत्वस्याभावो निपात्यते । तदाह इयर्तेरिति । करोतेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य चुत्वाभावो निपात्यते । 'ऋतश्च' इति रिगागमः, तदाह करोतेरिति । चुत्वाभाव इति 'कुहोश्चुः' इति प्राप्तस्य । **बिभर्तेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य जश्त्वभावो निपात्यते, तदाह बिभर्तेरिति** । जश्त्वाभाव इति । **'अभ्यासे चर्च' इति प्राप्तस्य ॥ दविध्वत इति । ध्वरतेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि जसि रूपम्** । 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुम्प्रतिषेधः । **द्युतेर्यङ्लुगन्तस्य । शतरि अभ्यासस्य संप्रसारण-भावोऽत्वं च निपात्यते, तदाह द्युतेरिति । संप्रसारणाभाव इति । 'द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्' इति प्राप्तस्य** ।

पुर्वस्य लटि श्लावभ्यासस्य चुत्वाभावो नीगागमश्च, वक्षयन्ती वेदा गनीगन्ति कर्णम् । ३५९५ । **ससूवेति निगमे** । ७ । ४ । ७४ । सूतेर्लिटि परस्मैपदं वुगागमोऽभ्यासस्य चात्वं निपात्यते । गृष्टिः ससूव स्थविरम् । 'सुषुवे' इति भाषायाम् । ३५९६ । **बहुलं छन्दसि** । ७ । ४ । ७८ । अभ्यासस्य इकारः स्याच्छन्दसि । पूर्णां विवष्टि । यशेरेतद्रूपम् ॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

३५९७ । **प्रसमुपोदः पादपूरणे** । ८ । १ । ६ । एषां द्वे स्तः पादपूरणे । प्रप्रायमग्निः । संसमिद्युवसे । उपोप मे पराभृश । किं नोदुदु हर्षसे । ३५९८ । **छन्दसीरः** । ८ । २ । १५ । इवर्णान्ताद्रेफान्ताच्च परस्य मतोर्मस्य वः स्यात् । हरिवते हर्यश्वाय गीर्वान् । ३५९९ । **अनो नुट्** । ८ । २ । १६ । अन्नन्तान्मतोर्नुट् स्यात् । अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः । अस्थन्वन्तं यदनस्था । ३६०० । नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानि छन्दसि । ८ । २ ६१ । सदेर्नञ्पूर्वान्निपूर्वाच्च निष्ठायां नत्वाभावो निपात्यते । नसत्तमञ्जसा । निषत्तमस्य चरतः । असन्नं निषण्णमिति प्राप्ते । उन्देर्नञ्पूर्वस्य अनुत्तम् । प्रतूर्तम् इति त्वरतेः, तुर्वीत्यस्य वा । सूर्तम् इति सृ इत्यस्य । गूर्तम् इति 'गूरी' इत्यस्य । ३६०२ । **अम्नरूधरवरित्युभयथा छन्दसि** । ८ । २ । ७० । रुर्वा रेफो वा । अम्न

३५९५ **ससूवेति निगमे** । दाधर्त्यादिष्वेतत्पठितव्यम् ॥ ३५९६ **विवष्टीति** । वश कान्तौ । लटि तिपि शपः श्लौ द्वित्वम् अभ्यासस्येत्वं 'व्रश्च' इति ष्टुत्वम् ॥ इति सुबोधिन्यां सप्तमोऽध्यायः ॥

३५९७ । **प्रसमुपोदः पादपूरणे** । समाहारद्वन्द्वः । समासान्तविधेरनित्यत्वाद् 'द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्' इति न टच् ॥ **प्रप्रायमग्निरिति** । नात्र द्विर्वचनस्य किंचिद्द्योत्यं, केवलं पादपूरणमेव कार्यम् । न चैवंविधस्य भाषायां प्रयोगोऽस्ति इति सामर्थ्याच्छन्दस्येवेदं विधानमित्याहुः ॥ ३५९८ **छन्दसीरः** । **हरिवते इति** । हरयो विद्यन्ते यस्येति हरिवान्, तस्मै । हरिशब्दान्मतुप्, मस्य वकारः । गीर्वानिति । 'र्वोरुपधाया' दीर्घ इकः' इति दीर्घः ॥ ३५९९ **अक्षण्वन्त इति** । अक्षिशब्दान्मतुप्, 'अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः' । 'छन्दस्यपि दृश्यते' इत्यनङ् । नुटोऽसिद्धत्वात्पूर्वं नलोपे भूतपूर्वगत्या नुट्, णत्वम् । ननु यदि परादिर्नुट् क्रियते, तस्य मतुब्ग्रहणेन ग्रहणात् 'मादुपधायाः' इति वत्वं स्यात्, मस्य तु न स्यात्, नुटा व्यवधानात् । यदि तु पूर्वान्तो नुट् क्रियते, तर्हि णत्वं न स्यात्, 'पदान्तस्य' इति न निषेधात् इति चेत्, सत्यम् । नुटोऽसिद्धत्वान्नोक्तदोषः नन्वेवमवग्रहे दोषः स्यात् । अक्षणिति णान्तं ह्यवगृह्णन्ति, अक्षेत्यकारान्तमवग्रहीतुमुचितमिति चेत, सत्यम् । न लक्षणेन पदकारा अनुवर्त्याः पदकारैर्नामलक्षमनुवर्तनीयम्, तस्माद्यथालक्षणं पद वर्तव्यमिति महाभाष्ये स्थितम् । किंच ईयिवांसमित्यादौ पदत्वं विनाऽपि अवग्रहः क्रियते । पूर्वेभिरग्निनेत्यदौ सत्यपि पदत्वे न क्रियते इति ॥ ३६०० **घस्येति** । तरप्तमपोरित्यर्थः, 'तरप्तमपौ घः' इति तरप्तमपोर्घसंज्ञाविधानात् **सुपथिन्तर इति** । सुपथिन्शब्दात् 'द्विवचनविभज्योपपदे' इति तरप्, नलोपः । तरपो नुट्, तस्यानुस्वारः, परसवर्णः ॥ भूरिदात्न इति । भूरिदात्नः परस्य घस्य तुट् वाच्य इत्यर्थः । भूरिदावत्तर इति । आतो मनिन् इत्यादिना दाधातोर्वनिप्, तदन्ता त्तरप्, नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य इति नलोपः, तुडागमः । ईद्रथिन इति रथिन ईकारान्तादेशो घे परे ॥ **रथीतर इति** । रथशब्दात् 'अत इनिठनौ' इति मत्वर्थीय इनिः तदन्तात्तरप् नकारलोपे कृते इकारस्य ईकारादेशः । यति तु नकारलोपापवादो नकारस्थाने ईकारो विधीयते तदा तस्यासिद्धत्वादेकादेशो न स्यात् । वथीतममिति । इह पदकारा ह्रस्वान्तमवगृह्णन्ति । 'अन्येषामपि' इति संहितायां दीर्घ इति तदाशयः ॥ ३६०१ **नसत्त** । एतानि छन्दसि विषये निपात्यन्ते ।—नत्वाभाव इति ॥ 'रदाभ्याम्' इति प्राप्तस्य । निषत्तमिति । 'सदिरप्रतेः' इति षत्वम् । अनुत्तमिति । अनुन्नमिति भाषायाम् । एतन्निपातनारम्भसामर्थ्याद्भाषायां 'नुदविदोन्दत्र' इति विकल्पो नेत्याहुः ॥ प्रतूर्तमिति । यदा त्वरतेः, तदा 'ज्वरत्वर' इत्यादिना ऊठ् । यदातुर्वी हिंसायामित्यस्य, तदा राल्लोपः' ॥ सृ इत्यस्येति । निपातनादुत्तम् रपरत्वं तु 'उरण् रपरः' इत्येव सिद्धम्, कार्यकालपक्षाश्रयणेन परिभाषाणामसिद्धत्वप्रकरणेऽपि प्रवृत्तेः । गूर्तमिति । गूर्णमिति भाषायाम् । ॥ ३६०२ **अम्न** । उभयथेति व्याचष्टे रुर्वा रेफो वेति । 'ससजुषो रुः'

एव अम्नरेव । ऊध एव ऊधरेव । अव एव अवरेव । ३६०३ । **भुवश्च महाव्याहृते** । ८ । २ । ७१ । भुव इति भुवरिति । ३६०४ । **ओमभ्यादाने** । ८ । २ । ८७ । ओंशब्दस्य प्लुतः स्यादारम्भे । ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितम् । अभ्यादाने किम् । ओमित्येकाक्षरम् । ३६०५ । **ये यज्ञकर्मणि** । ८ । २ । ८८ । ये३यजामहे । यज्ञ इति किम् । ये यजामहे । ३६०६ । **प्रणवष्टेः** । ८ । २ । ८९ । यज्ञकर्मणि टेरमित्यादेशः स्यात् । अपां रेतांसि जिन्वतो३म् । टेः किम् । हलन्ते अन्तस्य मा भूत् । ३६०७ । **याज्यान्तः** । ८ । २ । ९० । ये याज्या मन्त्रास्तेषामन्त्यस्य टेः प्लुतो यज्ञकर्मणि । जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहा३म् । अन्तः किम् । याज्यानामृचां वाक्यसमुदायरूपाणां प्रतिवाक्यं टेः स्यात् । सर्वान्त्यस्य चेष्यते । ३६०८ । **ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः** । ८ । २ । ९१ । एषामादेः प्लुतो यज्ञकर्मणि । अग्नयेनुब्रू३हि । अग्नये गोमयानि । प्रे३ष्य । अस्तु श्रौ३षट् । सोमस्याग्ने वीहि वौ३षट् । अग्निमा३वह । ३६०९ । **अग्नीत्प्रेषणे परस्य च** । ८ । २ । ९२ । अग्नीधः प्रेषणे आदेः प्लुतस्तस्मात्परस्य च ओ३श्रा३वय । ३६१० । **विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः** । ८ । २ । ९३ । प्लुतः । अकार्षीः कटम् ? अकार्षं हि३ अकार्षं हि । पृष्टइति किम् । कटं करिष्यति हि । हेः किम् । करोमि ननु । ३६११ । **निगृह्यानुयोगे च** । ८ । २ । ९४ । अत्र यद्वाक्यं तस्य टेः प्लुतो वा । अद्यामावास्येत्यात्थ३ । अमावास्येत्येवंवादिनं युक्त्या स्वमतात्प्रच्याव्य एवमनुयुज्यते । ३६१२ । **आम्रेडितं भर्त्सने** ।

इति नित्यं रुत्वे पक्षे प्राप्ते रेफातेशार्थमिदम् । अम्नस्शब्द इषदर्थे । अम्नरस्तमितमिति यथा । अवो रक्षणम् ॥ अम्न एवेति । यदा रुत्वं तदा 'भोभगो' इति रोर्यत्वं, 'लोपः शाकल्यस्य' इति लोपः ॥ ३६०३ **भुवश्च** । महाव्याहृतेर्भुवस् इत्येतस्य छन्दसि विषये रुर्वा रेफो वा । तिस्रो महाव्याहृतयः पृथिव्यन्तरिक्षस्वर्गाणां वाचिकाः । इह तु मध्यमाया ग्रहणम् । महाव्याहृतेरिति किम् ? भुवो विश्वेषु भुवनेषु, तिङन्तमेतद्भवते । 'छन्दसि लुङ्लङ्लिटः' इति वर्तमाने लङ्, सिप्, शपि गुणाभावश्छान्दसः । बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' इत्यडभावः । लाक्षणिकत्वादेवास्याग्रहणे सिद्धे महाव्याहृतिग्रहणमस्याः परिभाषाया अचित्वत्वज्ञापनार्थं, तेन क्रापयतीत्यादौ पुक् सिध्यति ॥ भुव इति । भुव इत्येतदव्ययमन्तरिक्षवाचि महाव्याहृतिः ॥ ३६०४ **ओम** । अभ्यादानम् आरम्भः । तदाह आरम्भे इति । अत्र प्लुतश्रुत्याऽच्परिभाषोपस्थानादच एव प्लुतः । मकारस्त्वर्धमात्र इति समुदायोऽध्यर्द्धतुर्यमात्रः संपद्यते ॥ ३६०५ **ये यज्ञ** । 'ये' इत्येतस्य यज्ञकर्मणि प्लुतो भवति ॥ ३६०६ **प्रणवः** । यज्ञकर्मणीति वर्तते । यज्ञकर्मणि टेः प्रणवादेशः स्यात् तदाह यज्ञकर्मणीत्यादि ॥ जिन्वतोमिति । जिविः प्रीणनार्थः । लट्, तिप् टेः प्रणवादेशः ॥ **टेः किमिति** । 'वाक्यस्य टेः' इत्यत टेः इत्यनुवर्तमाने पुनष्टेग्रहणं किमर्थमिति प्रश्नः । असति हि टिग्रहणे 'अलोऽन्त्यस्य' इति वचनाट्टेर्योऽन्त्योऽल् तस्योकारः स्यात् । तस्मात्सर्वादेशार्थं टिग्रहणमित्याह हलन्ते अन्त्यस्य मा भूदिति अजन्ते विशेषाभावाद्धलन्ते इत्युक्तम् ॥ ३६०७ **याज्यान्तः** । **ये याज्या मन्त्रे इति** । याज्याकाण्डे पठ्यन्ते ये मन्त्राः याज्यानुवाक्याकाण्डमिति समाख्याते प्रकरणे ये मन्त्रा इत्यर्थः ॥ तेषामिति पाठे तासां याज्यानाम् इहेदमन्तग्रहणं टेरित्यस्य निवर्तकं वा स्याद्विशेषणं वा । आद्ये अचाऽन्ते विशेषिते अजन्ताया एव याज्यायाः प्लुत स्यात् । पक्षान्तरे तदन्तग्रहणमनर्थकम्, टेरन्तत्वाव्यभिचारात् इत्यभिप्रायेणाह अन्तः किमिति ॥ इतरोऽपि विदिताभिप्राय आह याज्यानामृचामिति । याज्या नाम ऋचः काश्चिद्वाक्यसमुदायरूपाः, तत्र यावन्ति वाक्यानि तेषां सर्वेषां टेः प्लुतः प्राप्नोति, स चान्त्यस्यैवेष्यते, तदर्थमन्तग्रहणमिति भावः ॥ ३६०९ **अग्नीत्प्रेषणे परस्य च** । अग्नीधः प्रेषणमग्नीत्प्रेषणम् तस्मिन् । तदाह अग्नीधः प्रेषण इति ॥ ३६१० **विभाषा पृष्टप्रतिवचने** । विभाषा हेः प्लुतो भवति ॥ ३६११ **निगृह्य** । निगृह्येति ल्यबन्तम् । स्वमतात्प्रच्यवनं निग्रहः । तस्यैव स्वमतस्य 'एवं किल त्वं निरुपपत्तिकमात्थ' इति शब्देन प्रतिपादनम् अनुयोगः, तत्र यद्वाक्यं । तदाह अत्र यद्वाक्यमिति निगृह्यानुयोगे यद्वाक्यमित्यर्थः । अद्यामावास्येत्येवं केनचित्प्रतिज्ञातं तमुपपत्तिभिर्निगृह्य साभ्यसूयमनुयुङ्क्ते अद्यामावास्येत्यात्थेति । तदेव विवृणोति अमावास्येत्येवमित्यादि ३६१२ **दस्यो३ दस्यो३ इति** । 'वाक्यादेरामन्त्रितस्य' इत्यादिना द्विर्वचनम् ॥ ननु द्विरुक्तसमुदाये परभागस्यैव प्लुतः । प्राप्नोति न तु पूर्वस्य, 'तस्य परमाम्रेडितम्' इति परभागस्यैवाम्रेडितसंज्ञाविधानात्, इष्यते

८।२।९५। दस्यो३ दस्यो३ घातयिष्यामि त्वाम्। आम्रेडितग्रहणं द्विरुक्तोपलक्षणम्। चौर३ चौर३ चौर३ चौर३। ३६१३। **अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम्**। ८। २। ९६। अङ्गेत्यनेन युक्तं तिङन्तं प्लवते। अङ्ग कूज३ इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म। तिङ् किम्। अङ्ग देवदत्त। मिथ्या वदसि। आकाङ्क्षं किम्। अङ्ग पच नैतदारमाकाङ्क्षति। भर्त्सन इत्येव। अङ्गाधीष्व भक्तं तव दास्यामि। ३६१४। **विचार्यमाणानाम्**। ८। २। ९३। वाक्यानां टेः प्लुतः। होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३ इ। न होतव्य३मिति। विचार्यते। प्रमाणैर्वस्तु-तत्त्वपरीक्षणं विचारः। ३६१५। **पूर्वं तु भाषायाम्**। ८। २। ९८। विचार्यमाणानां पूर्वमेव प्लवते। अहिर्नु३ रज्जुर्नु। प्रयोगापेक्षं पूर्वत्वम्। इह भाषाग्रहणात्पूर्वयोगश्छन्दसीति ज्ञायते। ३६१६। **प्रतिश्रवणे च**। ८। २। ९९। वाक्य य टेः प्लुतोऽभ्युपगमे प्रतिज्ञाने श्रवणाभिमुख्ये च। गां हे देहि भोः। हन्त ते ददामि ३। नित्यः शब्दो भवितुमर्हति ३। दत्त किमात्थ ३। ३६१७। **अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः**। ८। २। १००। अनुदात्तः प्लुतः स्यात्। दूराद्धूतादिषु सिद्धस्य प्लुतस्यानुदात्तत्वमात्रमनेन विधीयते। अग्नि-भूत३ इ। पट३उ। 'अग्निभूते' 'पटो' एतयोः प्रश्नान्ते टेरनुदात्तः प्लुतः। शोभनः खल्वसि माणवक ३। ३६१८। **चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने**। ८। २। १०१। वाक्यस्य टेरनुदात्तः प्लुतः। अग्निचिद्भाया३त्। अग्निचिदिव भाया३त्। उपमार्थे किम्। कथंचिदाहुः। प्रयुज्यमाने किम्। अग्निर्माणवको भायात्।

द्वयोरपीत्याह आम्रेडितग्रहणमित्यादि। द्विरुक्तोपलक्षणार्थमिति। द्विरुक्तसमुदाये भागद्वयोपलक्षणार्थमित्यर्थः एतच्चाम्रेडितस्य भर्त्सने वृत्त्यसंभवाल्लभ्यते॥ ३६१३ **अङ्गयुक्तम्**। आकाङ्क्षतीत्याकाङ्क्षं, पचाद्यच्॥ तिङन्तमिति। आकाङ्क्षं तिङन्तमित्यर्थः॥ अङ्ग कूज ३ इति। अङ्गशब्दोऽमर्षे, 'कूज अव्यक्ते' लोण्मध्य-मपुरुषैकवचनम्॥ ज्ञास्यसि जाल्मेति। कूजनफलमस्मिन्नेव क्षणे ज्ञास्यसीत्यर्थः। अङ्गदेवदत्तेति। अङ्ग-शब्दोऽत्रानुनये। अङ्ग देवदत्तेत्येकं वाक्यम्। एतच्च मिथ्या वदसीत्येतदपेक्षते॥ ३६१४ **विचार्यमाणानाम्**। 'कोटिद्वयस्पृग्विज्ञानं विचार इति कथ्यते। विचार्यमाणस्तज्ज्ञानविषयीभूत उच्यते'। इह तु विचार्यमाण-विषयत्वाद्वाक्यानि विचार्यमाणानि॥ गृहा ३ इ इति सप्तम्येकवचनान्तस्य गृहे इत्यस्य 'एचोऽप्रगृह्यस्य' इति प्लुतविकारः॥ ३६१५ **पूर्वं तु**। पूर्वेणैव सिद्धे नियमार्थमिदम्। तुशब्दस्तदर्थतोऽवधारणार्थः। यथैव विज्ञायेत पूर्वमेव प्लुत इति, मैवं विज्ञायि पूर्वं भाषायामेवेति। उदाहरणे तुशब्दो वितर्के॥ ३६१६ **प्रतिश्रव** प्रतिश्रवणार्थमाह अभ्युपगमे इत्यादि। अङ्गीकारे इत्यर्थः। प्रतिज्ञाने इति। अत्रोभयत्रापि गतिसमासः। अर्थद्वयेऽपि प्रतिपूर्वः शृणोतिः प्रसिद्धः। आभिमुख्ये चेति। अत्र 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' इत्यव्ययी-भावः। दत्त किमात्थ ३ इति। 'किं ब्रूषे' इत्येवं पृच्छ्यते। अत्र श्रवणाभिमुख्यं गम्यते॥ ३६१७ **अनुदात्तं प्रश्नान्त**। प्रश्नवाक्ये यच्चरमं प्रयुज्यते स प्रश्नान्तः। नानेन प्लुतो विधीयते, किं तु दूराद्धूतादिषु विहितस्य प्लुतस्योदात्तत्वे प्राप्ते प्रश्नान्ताभिपूजितयोरनुदात्तत्वगुणमात्रं विधीयते। तदाह दूराद्धूतादिष्विति तत्रैषा वचनव्यक्तिः प्रश्नान्ते अभिपूजिते च यः प्लुतः सोऽनुदात्तो भवतीति। तत्राभिपूजिते 'दूराद्धूते च' इति प्लुत इति। इतरत्र तु 'अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः' इति। अग्निभूत ३ इ इति। पट ३ उ इति। 'आगम३ः पूर्वान् ग्रामान्' इत्येतद्वाक्यं 'अग्निभूते' 'पटो' इत्यनन्तरेण समाप्तम्। तत्र 'अगमः' इत्येवमादीनाम् 'अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः इति स्वरितः प्लुतः। 'अग्निभूते पटो' अनयोरनुदात्तः। अभिपूजिते उदाहरणमाह शोभनः खल्वसीत्यादि॥ ३६१८ **चिदितो चोप**। चिदित्येतन्निपाते उपमानेऽर्थे प्रयुज्यमाने वाक्यस्य टेरनुदात्तः प्लुतो भवतीत्यर्थः। प्लुतोऽप्यत्राज्विधीयतं न गुरुमात्रम्। इतीति किम्। अक्रियमाणे तस्मिन्नुपमानार्थे कस्मिंश्चिच्छब्दे प्रयुज्यमाने चिच्छब्दः प्लुत इति विज्ञायते। इतिशब्दे तु सति 'प्रयुज्य-माने' इत्येतच्चिच्छब्दस्य विशेषणं, प्लुतस्तु 'वाक्यस्य टे' इत्यधिकात्तस्यैव भवतीति मनसि विभाव्योदा-हरणमुखेनाद अग्निचिदिव भायादिति। अत्र न चिच्छब्दस्य प्लुतः, किं तु भायादित्यस्यैव: अक्रियमाणे इतिशब्दे चिच्छब्दस्यैव प्लुतः स्यात् अग्निचिद्भायादित्यत्र न स्यादिति भावः। कथंचिदिति। अत्र कष्टे चिच्छब्दः॥ अग्निर्माणवको भायादिति। अग्निरिव माणवको दीप्यत इत्यर्थः। अत्रोपमानार्थस्य गम्य-मानत्वादस्ति चिच्छब्दस्य प्रतीतिः। प्रयोगस्तु नास्ति। यद्यन्येषामप्युमानार्थानामिवादिनामस्ति प्रतीति-

३६१९। **उपरिस्विदासीदिति च**।८।२।१०२। टेः प्लुतोऽनुदात्तः स्यात्। उपरिस्विदासी३त्। अधःस्विदासी३त् इत्यत्र तु 'विचार्यमाणानाम्' ३६१६ इत्युदात्तः प्लुतः। ३६२०। **स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासंमतिकोपकुत्सनेषु**।८।२।१०३। स्वरितः प्लुतः स्यादाम्रेडिते परेऽसूयादौ गम्ये। असूयायाम् अभिरूपक ३ अभिरूपक रिक्तं ते आभिरूप्यम्। संमतौ अभिरूपक ३ अभिरूपक शोभनोऽसि। कोपे अविनीतक ३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म। कुत्सने शाक्तीक ३ शाक्तीक रिक्ता ते शक्तिः। ३६२१। **क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम्**।८।२।१०४। आकाङ्क्षस्य तिङन्तस्य टेः स्वरितः प्लुतः स्यादाचारभेदे। स्वयं ह रथेन याति ३, उपाध्यायं पदातिं गमयति। प्रार्थनायाम् पुत्रांश्च लप्सीष्ट ३ धनं च तात। व्यापारणे कटं कुरु ३ ग्रामं गच्छ। आकाङ्क्षं किम्। दीर्घायुरसि, अग्नीदग्नीन्विहर। ३६२२। **अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः**।८।२।१०५। अनन्त्यस्यान्त्यस्यापि पदस्य टेः स्वरितः प्लुत एतयोः। अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न्। सर्वपदानामयम्। आख्याने आगम३म् पूर्वा३न् ग्रामा३न्। ३६२३। **प्लुतावैच इदुतौ**।८।२।१०६। दूराद्धूतादिषु प्लुतो विहितस्तत्रैव ऐचः प्लुतप्रसङ्गे तदवयवाविदुतौ प्लवेते। ऐ३तिकायन। औ३पगव। चतुर्मात्रावत्र ऐचौ संपद्यते। ३६२४। **एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ**।८।२।१०७। अप्रगृह्यस्य एचोऽदूराद्धूते प्लुतविषये पूर्वस्यार्धस्याकारः प्लुतः स्यादुत्तरस्य त्वर्धस्य इदुतौ स्तः ॥ प्रश्नान्ताभिपूजितविचार्यमाणप्रत्यभिवादयाज्यान्तेष्वेव। प्रश्नान्ते अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूत३इ। अभिपूजिते भद्रं करोषि पट३उ। विचार्यमाणे होतव्यं दीक्षितस्य गृह३इ। प्रत्यभिवादे आयुष्मानेधि अग्निभूत३इ। याज्यान्ते स्तोमैर्विधेमाग्नय३इ। परिगणनं किम्। विष्णुभूते घातयिष्यामि त्वाम्। अदूराद्धूत इति न वक्तव्यम्। पदान्तग्रहणं तु कर्तव्यम्। इह मा भूत् भद्रं करोषि गौरिति। अप्रगृह्यस्य किम्। शोभने माले३॥ ॥ आमन्त्रिते छन्दसि प्लुतविकारोऽयं वक्तव्यः। अग्न३इ पत्नी व३ः। ३६२५। **तयोर्य्वावचि संहितायाम्**।८।२।१०८। इदुतोर्यकारवकारौ स्तोऽचि संहितायाम्। अग्न ३

स्तथापि चिच्छन्दस्यापि तावदस्तीति भावः॥ **३५१९ उपरिस्विदासीदिति**। अत्रापि विचार्यमाणानाम् इति विहितस्य प्लुतस्य गुणमात्रं विधीयते॥ ३६२० **स्वरितमाम्रेडिते**। उदाहरणे सर्वत्र वाक्यादेरामन्त्रितस्य इति द्विर्वचनम्। ३६२१ **क्षियाशीः**। क्षिया आचारोल्लङ्घनम्। इष्टाशंसनमाशीः। दीर्घायुरसि, अग्नीदग्नीन्विहरेति। क्षियायां तु न प्रत्युदाहृतं नित्यसाकाङ्क्षत्वात्। न हि स्वयं ह रथेन यातीत्युक्ते आचारभेदो गम्यते। किं तर्हि? उपाध्यायं पदातिं गमयतीत्युक्ते॥ ३६२३ **प्लुतावै**। उदाहरणे 'गुरोरनृतः' इति प्लुतः॥ **चतुर्मात्राविति**। ऐचौ समाहारवर्णौ तत्र मात्रा अवर्णस्य, मात्रा इवर्णोवर्णयोः। तत्र ईदूतोः प्लुते कृते तयोस्तिस्रो मात्राः, अवर्णस्य चैका मात्रेति समुदायश्चतुर्मात्र इत्यर्थः। नन्वत्रार्धमात्राऽवर्णस्याध्यर्धमात्रेवर्णोवर्णयोरिति मतेऽर्धचतुर्थमात्रावप्यैचौ प्राप्नुतः। सत्यम्, 'चतुर्मात्रः प्लुत इष्यते' इति भाष्यात् समविभाग एवात्राश्रीयत इति भावः॥ ३६२४ परिगणनमाह— प्रश्नान्तेत्यादि। 'अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः' अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः' इति चानुदात्तः स्वरितो वा प्लुतः। अभिपूजिते। 'अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः' इति प्लुतः। विचार्यमाणे 'विचार्यमाणानाम्' इति प्लुतः। प्रत्यभिवादे 'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' इति प्लुतः। याज्यान्ते 'याज्यान्तः' इति प्लुतः॥ विष्णुभूते इति। नन्विदं परिगणनस्योदाहरणमयुक्तं, यावता सूत्रे एवादूराद्धूत इत्युच्यते, अत आह—अदूराद्धूत इति न वक्तव्यमिति। अन्यार्थेऽवश्यं कर्तव्ये परिगणने तेनैव सिद्धत्वात् 'अदूराद्धूते' इति न वक्तव्यम्॥— भद्रं करोषि गौ ३ रिति अत्रासर्वनामस्थान इति प्रतिषेधात्सौ परतः पूर्वपदं न भवति॥— **शोभने माले ३ इति**। 'ईदूदेद्' इति प्रगृह्यसंज्ञा॥ आमन्त्रिते इति। अप्राप्ते एव प्लुते वचनम्॥ **अग्न ३ इति**। अग्निशब्दस्य सम्बुद्धौ रूपं 'सामन्त्रितम्' इति आमन्त्रितसंज्ञा॥ ३६२५ **तयोर्य्वा**। नन्विदं किमर्थम् 'इको यणचि' इत्यनेनैव सिद्धम्, अत आह इदुतोरसिद्धत्वादिति। ननु सिद्धः प्लुतः स्वरसन्धिषु। कथं ज्ञायते? 'प्लुतप्रगृह्या अचि' इति प्रकृतिभावविधानात्। यस्य हि विकारः प्राप्तस्तस्य प्रकृतिभावो विधेयः, प्लुतस्यासिद्धत्वे न तस्य स्वरसन्ध्योरयो विकारः प्राप्नोति। अस्तु प्लुत सिद्धः, किमायातमिदुतोः? उच्यते। प्लुतप्रकरणे यत्कार्यं तत्स्वरसन्धिषु

याशा । पट ३ आशा । अग्न ३ इ वरुणो । संहितायां किम् । अग्न ३ इ इन्द्रः । संहितायामित्यध्याय-समाप्ते रविकारः । इदुतोरसिद्धत्वादयमारम्भः सवर्णदीर्घत्वस्य शाकल्यस्य च निवृत्यर्थम्, यवयोरसिद्धत्वात् 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' ३६५४ इत्यस्य बाधनार्थो वा । ३६२६ । **मतुवसो रु संबुद्धौ छन्दसि** ८ । ३ । १ 'रु' इत्यविभक्तिको निर्देशः । मत्वन्तस्य वस्वन्तस्य च रुः स्यात् । 'अलोऽन्त्यस्य' ४२ इति परिभाषाया नकारस्य । इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमम् । हरिवो मेदिन त्वा । 'छन्दसीरः' ३६०० इति वत्वम् । ३६२७ । **दाश्वान्साह्वान्मीढ्वांश्च** । ६ । १ । १२ । एते क्वस्वन्ता निपात्यते । मीढ्वस्तोकाय तनयाय ॥ ※ **वन उपसंख्यानम्** । क्वनिब्वनिपोः सामान्यग्रहणम् । अनुबन्धपरिभाषा तु नोपतिष्ठतु, अनुबन्धस्येहानिर्देशात् । यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वः । इणः क्वनिप् । ३६२८ । **उभयथर्क्षु** । ८ । ३ । ८ । अम्परे छवि नकारस्य रुर्वा । पशूंस्तांश्चक्रे । ३६२९ । **दीर्घादटि समानपादे** । ८ । ३ । ९ । दीर्घान्नकारस्य रुर्वा स्यादटि, तौ चेन्नाटौ एकपादस्थौ स्याताम् । देवाँ अच्छा सुमती । महाँ इन्द्रो य ओजसा । 'उभयथा' इत्यनुवृत्तेर्नेह आदित्यान्याचिषामहे । ३६३० । **आतोऽटि नित्यम्** । ८ । ३ । ३ । अटि परतो रोः । पूर्वस्यात:

सिद्धमिति सामान्येन ज्ञापकमाश्रयिष्यते, ततश्चेदुतोरपि सिद्धत्वात्सिद्ध एव यणादेशः, अत आह सवर्णदीर्घत्वस्येति । यमीदं नोच्येत 'अग्न ३ इ इन्द्र' 'पट ३ उ उदकम्' इत्यत्र षाष्ठिकं यणादेशं बाधित्वा सवर्णदीर्घः स्यात् । अग्न ३ याशेत्यादौ च 'इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य' इति प्रकृतिभावः स्यात्तद्बाधनार्थमिद वक्तव्यमेव ॥ ननु च तन्निवृत्तये यत्नान्तरमस्ति । किं पुनस्तत् ? प्लुतपूर्वस्य यणादेशो वक्तव्यः सवर्णदीर्घनिवृत्त्यर्थः शाकलनिवृत्त्यर्थश्च' । तच्चावश्यं वक्तव्यं । य इक् प्लुतपूर्वः न च प्लुतविकारः भो ३ इ इन्द्र, भो ३ यिन्द्रं गायतीति । भोशब्दस्य छान्दसः प्लुतः, ततः परस्येकारस्य निपातत्वात् प्रकृतिभावे प्राप्ते तं बाधित्वा । यणादेशः । तदेवं तस्यावश्यं वक्तव्यत्वेनैव यणा सिद्ध, अत आह यवयोरित्यादि । तथाचोक्तं वृत्तिकृता—'किं तु यणा भवतीह न सिद्धं य्वाविदुतोर्यदयं विदधाति । तौ च मम स्वरसन्धिषु सिद्धौ शाकलदीर्घविधी तु निवर्त्यौ । इक् च यदा भवति प्लुतपूर्वस्तस्य यण विदधात्यपवादम् । तेन तयोश्च न शाकल-दीर्घौ यण्स्वरबाधनमेव तु हेतुः' ॥ अयमर्थः 'इको यणचि' इति यणादेशेन किं रूपं न सिध्यति ? यतोऽयमाचार्यः इदुतोर्य्वौ विदधाति । तौ च 'इदुतौ' स्वरसन्धिषु सिद्धौ । ममेति सूत्रकारेणैकीभूतस्य वचनम् । एवं च दिते परिहरति शाकलदीर्घविधी तु निवर्त्याविति ; शाकलस्येदं शाकल, 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' इत्यण् पुनश्चोदयति इक् च यदेति । वार्तिककारोऽपि इकः प्लुतपूर्वस्य यणं विदधाति । स च प्रकृतिभावस्येव शाकलदीर्घविध्योरप्यपवादः । ततश्च तेनैव यणा एतयोरपि इदुतोः शाकलदीर्घौ न भविष्यत इति नार्थ एतेन । परिहरति यण स्वरेति । यण्स्वरबाधनार्थमेव हेतुः सूत्रारम्भस्येति ॥ ३६२६ **मतु** । अनुबन्धपरित्यागेन सकारान्तस्य यस् इत्यस्य मतुपा सह द्वन्द्वः । अल्पाच्तरस्यापि सौत्रः परनिपातः ॥ मरुत्व इति मरुतो यस्य सन्तीति मतुप् । 'झयः' इति वत्वं । 'तसौ मत्वर्थे' इति भत्वाज्जश्त्वं न ॥ **हरिव मेदिनमिति** । हरयो विद्यन्ते यस्येति मतुप् । हरिवच्छब्दात्संबुद्धयेकवचने 'उगिदचाम्' इति नुम् । हल्ङ्याब्भ्यो दिलोपे च कृते नकारस्य रुः, 'संयोगान्तलोपो रुत्वे सिद्धो वक्तव्यः' इति वचनात् 'हशि च' इत्युत्वम् ॥ ३६२७ प्रसङ्गादाह— **दाश्वानिति** ॥ क्वनिब्वनिपोः सामन्येन ग्रहणमिति । अनुबन्धनिर्देशात्तदनुबन्धकपरिभाषाया अनुपस्थानात् क्वनिपोऽपि ग्रहणम् ॥ **प्रातरित्व इति** । प्रातरेतीति अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति क्वनिप् । 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' । तदाह इणः क्वनिविति ॥ **उभयथा** । नच्छव्यप्रशान्' इति वर्तते । तेनैव नित्ये प्राप्ते विकल्पार्थं वचनम् ॥ ३६२८ **पशूंस्तांश्चक्रे इति** । पशून् तानिति स्थिते नस्य रुः । पूर्वत्र 'अत्रानुनासिकः' इति वाऽनुनासिकः । उत्तरत्र तु 'आतोऽटि नित्यम्' इति नित्यमनुनासिकः । रेफस्य विसर्गः । तस्य 'विसर्जनीयस्य' इति सः ॥ ३६२९ **दीर्घादटि समानपादे** । एकपर्यायः समानशब्दः, तदाह— **तौ चेन्नाटावेकपादस्थाविति** । नाटौ नकार अटौ ॥ **देवाँ अच्छा । महाँ इन्द्रा इति** । देवान् अच्छा महानिति नस्य रुः । 'आतोऽटि नित्यम्' इति नित्यमनुनासिकः ॥ **नेहेति** । एतेन महान् हि स इति बह्वृचानां पाठोऽपि व्याख्यातः । अकारे तु महाँ हि इत्युदाहृतं तच्छाखान्तरे अन्वेषणीयम् ॥ ३६३० **एवं चेति** । विकल्पस्यैव

स्थाने नित्यमनुनासिकः। महाँ इन्द्रः। तैत्तिरीयास्तु अनुस्वारमधीयते। तत्र छान्दसो व्यत्ययस्य इति प्राञ्चः एवं च सूत्रस्य फलं चिन्त्यम्। ३६३१। **स्वतोवान्पायौ**। ८।३।११। रुर्वा। भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने। ३६३२। **छन्दसि वाऽप्राम्रेडितयोः**।८।३।४९। विसर्गस्य सो वा स्यात् कुप्वोः प्रशब्दमाम्रेडितं च वर्जयित्वा। अग्ने त्रातऋतस्कविः। गिरिर्न विश्वतस्पृथुः। नेह वसुनः पूर्वः पतिः। अप्रेत्यादि किम्। अग्निः प्र विद्वान्। परुषः परुषः। ३६३३। **कः करत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः**।८।३।५०। विसर्गस्य सः स्यात् प्रदिवो अपस्कः। यथा नो वस्यसस्करत्। सुपेशसस्करति। अरुणस्कृधि। सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् अनदितेरिति किम्। यथा नो अदितिः करत्। ३६३४। **पञ्चम्याः परावध्यर्थे**।८।३।५१। पञ्चमीविसर्गस्य सः स्यादुपरिभावार्थे परिशब्दे परतः। दिवस्परि प्रथमं जज्ञे। अध्यर्थे किम्। दिवस्पृथिव्याः पर्योजः ३३३५। **पातौ च बहुलम्**।८।३।५२। पञ्चम्या इत्येव। सूर्गो नो दिवस्पातु। ३६३६। **षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु**।८।३।५३। वाचस्पतिं विश्वकर्माणम्। दिवस्पुत्राय सूर्याय। दिवस्पृष्ठं भन्दमानः। तमसस्पारमस्य। परिवीत इलस्पदे। दिवस्पयो दिधिषाणाः। रायस्पोषं यजमानेषु। ३६३७। **इडाया वा**।८।३।५४। पतिपुत्रादिषु परेषु। इलायास्पुत्रः, इलायाः पुत्रः। इलायास्पदे, इलायाः पदेः। '**निसस्तपतावनासेवने**' २४०३। निसः सकारस्य मूर्धन्यः स्यात्। निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः। अनासेवने किम्। निस्तपति। पुनःपुनस्तपतीत्यर्थः। ३६३८। **युष्मत्तत्ततक्षुष्वन्तःपादम्**।८।३।१०३। पादमध्यस्थस्य सस्य मूर्धन्यः स्यात्तकारादिषु परेषु। युष्मदादेशाः त्वं त्वा ते तवाः। त्रिभिष्ट्वं देव सवितः। तेभिष्ट्वा। आभिष्टे। अप्स्वग्ने सधिष्टव। अग्निष्टद्विश्वम्। द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। अन्तःपादं किम्। तदग्निस्तदर्यमा। जन्म आत्मनो गिन्दाभूदग्निस्तत्पुनराहार्जातवेदा विचर्षणिः। अत्राग्निरिति पूर्वपादस्यान्तो न तु मध्य। ३६३९। **यजुष्येकेषाम्**।८।३।१०४। युष्मत्तत्ततक्षुषु परतः सस्य मूर्धन्यो वा। अर्चिभिष्ट्वम्। अग्निष्टे अग्रम्। अर्चिभिष्टतक्षेः। पक्षे अर्चिभिस्त्वम् इत्यादि। ३६४०। **स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि**।८।३।१०५। नृभिष्टुतस्य, नृभिः स्तुतस्य। गोष्टोमम्, गोस्तमम्। पूर्वपदात्' इत्येव सिद्धे प्रपञ्चार्थमिदम्। ३६४१। **पूर्वपदात्**।८।३।१०६। पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य सस्य षो वा। यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठः। युवं हि स्थः स्वर्पती। ३६४२। **सुञः**।८।३।१०७। पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य सुञो निपातस्य सस्य षः। ऊर्ध्व ऊ षु णः। अभी षु णः। ३६४३। **सनोतेरनः**।८।३।१०८। गोषा इन्दो

व्यवस्थिततया प्रकृतसूत्रत्यागेन महल्लाघवम्। सूत्रारम्भे तु व्यत्ययोऽपि शरणीकरणीय इति महान् क्लेश इति भावः॥ ३६३१ **स्वतवान्**। स्वतवानित्येतस्य नकारस्य रुर्वा पायुशब्दे परे। **स्वतवा इति**। तु वृद्धौ सौत्रो धातुः, ततोऽसुन्। स्वं तवो यस्यासौ स्वतवान्। 'हृस्ववःस्वतवसां छन्दसि इति नुम्॥ ३६३२ **परुषः परुष इति**। वीप्सायां द्विर्वचनम्॥ ३६३३ **कः करत्**। **कः इति**। कृञो लुङ्, मन्त्रे घस इत्यादिना च्लेर्लुक्, तिपि गुणः। हल्ङ्यादिलोपः। 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' इत्यडभावः। 'करत' इति कृञ एव लुङ्। 'कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि' इति च्लेरङ्। 'ऋदृशोऽङि' इति गुणः। **करति** इति लट्, व्यत्ययेन शप्। कृधि इति लोट्, मेर्हिः। 'श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि' इति हेर्धिरादेशः। 'कृत' इति कृञ एव क्तः॥ ३६३४ **पर्योज इति**। अत्र परिः सर्वतोभावे॥ ३६३५ **पातौ च**। क्वचित्पठ्यते पाताविति धातुनिर्देश इति। अन्ये तूदाहरणपर्यालोचनया लोडन्तानुकरणं मन्यन्ते॥ ३६३६ **षष्ठ्याः**। वाचस्पतिमिति। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम् इति षष्ठ्यलुक्॥ ३६३७ **निसस्तपता**। आसेवनं पौनःपुन्यं. ततोऽन्यस्मिन्नित्यर्थः॥ ३६३८ **युष्मत्तत्ततक्षुष्विति** सकारान्तानुकरणात् परस्य सुप्सकारस्य 'नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि' इति षत्वम्॥ 'ह्रस्वात्तादौ' इत्यतः तादाविति वर्तते। तदाह—**तकारादिष्विति**। एतद्युष्मद एव विशेषणं नेतरयोः, अव्यभिचारात्॥ त्वं त्वा ते तवा इति। एतेषामेव संभवद्इत्यर्थः॥ ३६४० **स्तुतस्तोमयोः**। एतयोः परतः सस्य षत्वं स्यात्॥ पूर्वपदादित्येव सिद्ध इति। पूर्वं पदं पूर्वपदमिति सामान्यत आश्रीयते, न तु समासावयव एवेति वाक्येऽपि तेनैव सिद्धं षत्वमिति भावः। ततश्च स्तुतस्तोमग्रहणं प्रपञ्चार्थं, छन्दोग्रहणं तूत्तरार्थं कर्तव्यमेव॥ ३६४२ **ऊ षुण इत्यादि**। 'इकः सुञि' इति पूर्वपदस्य दीर्घत्वं, नस् इत्यादेशस्य 'नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः' इति णत्वम्

नृषा असि। अनः किम्। गोसनिः। ३६४४। **सहेः पृतनर्ताभ्यां च**। ८। ३। १०९। पृतनाषाहम्। ऋताषाहम्। चात् ऋतीषाहम्। ३६४५। **निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि**। ८। ३। ११९ सस्य मूर्धन्यः न्यषीदत्, न्यसीदत्। व्यषीदत्, व्यसीदत्। अभ्यष्टौत्, अभ्यस्तौत्। ३६४६। **छन्दस्यृदवग्रहात्**। ऋकारान्तादवग्रहात्परस्य नस्य णः। नृमणाः। पितृयाणम्। ३६४७। **नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः**। ८। ४। २७। धातुस्थात् अग्ने रक्षा णः। शिक्षा णो अस्मिन्। उरु णस्कृधि। अभी षु णः। मो षु णः॥ इत्यष्टमोऽध्यायः॥

इति सिद्धान्तकौमुद्यां वैदिकी प्रक्रिया।

३६४४ सनोतेरनः। अनन्तस्य सनोतेः सस्य षः स्यात्॥ **गोषा इति**। 'जनसनखनक्रमगमो विट्', विड्वनो इत्यात्वम्॥ गोसनिरितिः। 'छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्' इतीन्प्रत्ययः॥ ३६४५ **निव्यभिभ्यो**। 'न रपर' इत्यतो नेति वर्तते। तत्र निषेधविकल्पे विधिकल्प एव फलतीत्याह—मूर्धन्यो वा स्यादिति। अभ्यष्टौदिति उतो वृद्धिर्लुकि हलि' इति वृद्धिः॥ ३६४६ **छन्दस्यृदव**। अवगृह्यते विच्छिद्य पठ्यते इत्यवग्रहः। ऋच्चासाववग्रहश्च ऋदवग्रहः, स्मात्॥ **नृमणा इति**। अत्र संहिताधिकारात्संहिताकाल एव हि तेषां णत्वं, पदकाले चावग्रहः क्रियते। तेनावग्रहयोग्यत्वादृकारोऽवग्रहः इत्युक्तः, न तु तद्दशापन्नः। अत्र हि नृमना इति पदकालेऽवगृह्यते॥ ३६४७ **नश्च**। धातुस्थान्निमित्तादुत्तरस्य उरुशब्दात् षुशब्दाच्च परस्य नस् इत्येतस्य ण स्यात्। धातौ तिष्ठतीति धातुस्थो रेफः षकारश्च। उरु इति स्वरूपग्रहणम्। षु इति कृतषत्वस्य सुत्रो ग्रहणं न सप्तमीबहुवचनस्य। तेन 'इन्द्रो धर्ता गृहेषु नः' इत्यादौ न। नसिति नासिकादेशस्य नासादेशस्य च सामान्येन ग्रहणम्॥—**रक्षा ण इति**। रक्षेति लोटो मध्यमपुरुषैकवचनान्तं, द्व्यचोऽतस्तिङः इति दीर्घः॥ उरुणस्कृधीति। कृञो लोट् सेर्हिः 'श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि' इति हेर्धिः। कः करत् इत्यादिना विसर्जनीयस्य सत्वम्॥ अभी षुण इति। 'इकः सुञि' इति दीर्घः। एवं मोषुण इत्यत्रापि। सर्वत्रोदाहरणे अस्मदादेशोऽयं नस्॥

इति श्रीमन्मौनिकुलतिलकायमानगोवर्धनभट्टात्मजरघुनाथभट्टात्मजेन जयकृष्णेन कृतायां सुबोधिन्याख्यायां सिद्धान्तकौमुदीव्याख्यायां वैदिकी प्रक्रिया समाप्तिमगमत्॥

अथ पाणिनीयशिक्षा १

भाष्यसहिता ।

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा । शास्त्रानु१पूर्व्यं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः ॥१॥

पातु वो निकषग्रावा मतिहेम्नः सरस्वती । प्राज्ञेतरपरिच्छेदं वचसैव करोति या ॥१॥

छन्दःकल्पनिरुक्तानि विवृतानीह सूरिभिः । शिक्षा न विवृता यस्मात्तस्मात्तां विवृणोम्यहम् ॥२॥

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामिति । अथेत्यव्ययमानन्तर्ये, वेदाध्ययनानन्तरमङ्गपाठः । किं कारणं ? 'षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यः' इति स्मरणात् । तत्र च शिक्षा प्रथमा, अथशब्दानुषङ्गात् । सा च वक्तव्येत्यथशब्दस्यार्थः । एतेनैव सिद्धे वेदस्याङ्गानन्तर्येण व्याकरणादिष्वथशब्दोऽत एव नाधीयते । केषुचित् कल्पेषु अधीयते इति चेत् 'अथातोऽधिकारः' 'अथैतस्य समाम्नायस्य' इत्येवमादिषु ? नैष दोषः । नियमार्थः सः, शिक्षानन्तरं कल्प एवाध्येतव्यो नान्यानीति । मङ्गलार्थो वा । आदौ सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि वक्तव्यानि । तत्र चायमेव सम्बन्धो यदुक्तोऽङ्गाङ्गिभावः । नित्यसम्बन्धानि ह्यङ्गान्यङ्गिनः । अभिधेयं तु स्वयमेव वक्ष्यति 'वाच उच्चारणे विधिम्' इति । प्रयोजनं सम्यग्वर्णोच्चारणम् । प्रयोजनमपि श्रूयते एव 'एकोऽपि वर्णः सम्यक् प्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग्भवति' इति । शिक्ष्यतेऽनया वर्णोच्चारणमिति शिक्षा, तां प्रकर्षेण वक्ष्यामि कथयिष्यामि ॥ **पाणिनीयं मतं यथेति** । पाणिनीयमिति 'वृद्धाच्छः' इति छप्रत्ययः । तस्येदमित्यर्थनिर्देशः ॥ **मतमिति** । 'मन ज्ञाने' पाणिनीयं मतं ज्ञानं यथा प्रवक्ष्यामि तेरेव प्रत्याहारैस्तयैव परिभाषया 'अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषत्' इत्यादि, 'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः' इति, 'कण्ठ्यावहाविचुयशाः' इति च । तथाऽन्यदप्यनुक्तमत्र प्रयोजनं यत्तद् व्याकरणादेव ग्रहीतव्यं मोऽनुस्वारः इति ॥ ननु व्याकरणे शब्दचिन्ता, अत्रापि सेति । तत्रश्च व्याकरणेनैव सिद्धत्वादिदमनारम्भ्यम् । सत्यम्, उभयोः शब्दचिन्ता, किन्तु व्याकरणे एतच्चिन्त्यते गोशब्दः सास्नादिमत्यर्थे साधुः, इह तु गोशब्दो जिह्वामूलेनोच्चारयितव्य इति भेदः । **शास्त्रानुपूर्व्यं तद्विद्यादिति** । शास्त्रमिति शासेः करणे ष्ट्रन् प्रत्ययः । आनुपूर्व्यमिति गुरुपूर्वक्रमः । तदिति पाणिनिमतपरामर्शः । तत् पाणिनिमतमेवास्यापि शिक्षाख्यशास्त्रस्याप्यानुपूर्व्यं विद्यावंशपराम्परां जानीयात् पाणिनिमतस्य यदानुपूर्व्यं यो गुरुपूर्वक्रमः स एवास्येत्यर्थः । तथा च वक्ष्यति 'शङ्करः शाङ्करीं प्रादात्' इत्यादि । **यथोक्तं लोकवेदयोरिति** । सामानार्थमित्यर्थः । तथा च भाष्यकारः "य एव लौकिकाः शब्दास्त एव वैदिकास्त एव तेषामर्थाः" इति ॥१॥

ननु अकारादयो वर्णाः स्वस्थानेनैवोच्चार्यन्ते, परस्थाननिराकाङ्क्षत्वात् । किमर्थः शास्त्रारम्भ ? इत्याशङ्क्याह

प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः । पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम् ॥२॥

प्रसिद्धमिति । अबुद्धिभिर्बुद्धिहीनैः प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातं सम्मतं, पुनः पश्चाद् व्यक्तीकरिष्यामि स्फुटीकरिष्यामि । किम् ? वाच उच्चारणे विधिं, वाचो गिरस्तदुच्चारणे उद्गिरणे विधिं विधानम् । ननु 'विधिरत्यन्तमप्राप्तौ' इति स्मर्यते, न चात्रात्यन्तमप्राप्तिः । उक्तं च अधस्तात् 'अकारादयो वर्णाः स्वस्थानेनैवोच्चार्यन्ते' इति । उच्यते यद्यपि स्वस्थानस्थिता उच्चार्यन्ते तथाऽप्यप्राप्तोऽश कथनीयऽनुप्रदानादिः, एतदर्थो विधिशब्दः ॥२॥

वागुच्चारणं च वर्णैः क्रियते, कतिसंख्यास्ते ? इत्यत आह—

त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः २शम्भुमते मताः । प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा ॥३॥

त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वेति । सम्भवत इति सम्भूतेः । तत्काशान्मताः ज्ञाताः । वर्णो वृणोतेः । अत्र 'यथोक्तं लोकवेदयोः' इत्युक्तम् । तत्र किं लोके संस्कृतविषया एव वर्णा उत सर्वभाषाविषयाः ? इत्याह प्राकृते संस्कृते चापीति । अपिशब्दादपभ्रंशादिष्वपि ये वर्णाः सम्भूतेर्जाताः सन्तः तेऽपि ॥ **स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवेति** ब्रह्मणा स्वयमेव हरेण प्रकर्षेणोच्चारिताः ॥३॥

---

१ 'शास्त्रानुपूर्वं' इत्येवं पाठः क्वचिद्दृश्यते स नातीव रमणीयः । २ 'सम्भवतो मताः' इति भाष्यपाठः ।

कथं ते त्रिषष्टिः कथं वा चतुःषष्टिरित्याशङ्क्याह—

स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः । यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमा स्मृताः ॥४॥

स्वरा विंशतिरेकश्चेति । स्वरा इति 'स्वृ शब्दोपतापयोः' स्वर्यते शब्द्यतेऽनेन व्यञ्जनमिति करणेऽच् प्रत्ययः । कथं ते एकविंशति ? ततश्चतुरो यथास्मृति विवृणोमि— अ इ उ ऋ एते चत्वारो ह्रस्वदीर्घप्लुत-भेदेन द्वादश । ऌकारस्य दीर्घादयो न सन्तीति स्मरणात् ह्रस्व एवोपदिश्यते' अत एते त्रयोदश । ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षराणि, सन्ध्यक्षराणामपि ह्रस्वा न सन्तीति स्मरणात् दीर्घप्लुता एव गृह्यते, ते एतेऽष्टौ पूर्वैस्त्रयो-दशभिः सहैकविंशति ॥ स्पर्शानां पञ्चविंशति । कादयो मावसानाः स्पर्शाः । जिह्वामूलतालुमूर्धदन्तोष्ठादिभिः परस्परं स्पर्शैरभिनिष्पद्य आविर्भवन्तीति स्पर्शाः । पूर्वयैकविंशत्या सह षट्चत्वारिंशत् ॥ यादयश्च स्मृता ह्यष्टाविति । यकारादयश्च अष्टौ–य र ल व श ष स हाः—इति । अत्र आद्याश्चत्वारोऽन्तःस्थसञ्ज्ञाः, उपरितना ऊष्माणः । पूर्वया षट्चत्वारिंशता सह चतुःपञ्चाशत् ॥ चत्वारश्च यमाः स्मृता इति । यच्छन्तीति यमाः, स्वयमेवोपरमेरन् । के ते यमाः ? लोके—कुँ खुँ गुँ घुँ इति । "अनन्त्यान्त्यसंयोगे मध्ये यमः पूर्वगुणः" इत्यौदव्रजिः । तथाच—

> ह्रस्वादिभेदैश्चत्वारः प्रथमा द्वादश स्मृताः । ऌकारो ह्रस्व एवैचोऽष्टौ स्वरा एकविंशतिः ॥
> पञ्चविंशतिरष्टाब्धिः स्पर्शाः स्युर्यादयो यमाः । अनुस्वारो विसर्गश्च ⌣क⌣पौ प्लुतऌकारकः ॥
> त्रिषष्टिरेवं वर्णाः स्युर्ह्रस्वदीर्घादिभेदतः । अनुस्वारद्वयाद्वर्णाश्चतुःषष्टिरितीरिताः ॥

तथा च नारदः—

> अनन्त्यश्च भवेत्पूर्वो ह्यन्त्यश्च परतो यदि । तत्र मध्ये यमस्तिष्टेत् सवर्णः पूर्ववर्णयोः ॥
> वर्गान्त्यान् शषसैः सार्धमन्तस्थैर्वाऽपि संयुतान् । दृष्ट्वा यमा निवर्तन्ते आदेशिकमिवाध्वगाः ॥

इति नारदौदव्रज्योर्मतेन यमो वर्णागम इति विधीयते । अस्मात् शास्त्रात् 'चत्वारश्च यमाः स्मृताः' इति वर्णान्तरत्वेनोपदेशः संयोगशास्त्रात् । अथ चतुरक्षराणामुदाहरणमिति प्रकृत्य अग्निरिति यमो गकारौ द्वौ नकार इकारश्चेति । अन्ये तु यमं वर्णापत्तिं मन्यन्ते । तथा च शौनकः—"स्पर्शा यमाननुनासिकान् स्वान् परेषु स्पर्शेष्वनुनासिकेषु" इति । पूर्वया चतुःपञ्चाशता सहाष्टपञ्चाशत् ॥४॥

अनुस्वारो विसर्गश्च ⌣क⌣पौ चापि [१]पराश्रितौ ।
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ऌकारः प्लुत एव च ॥५॥ (१)

अनुस्वारो विसर्गश्चेति । स्वरमनु भवतीत्यनुस्वारः, अनु अकारानुगमेनानुस्वारः । वक्ष्यति च वक्ष्यमाणः स्वरानुगः इति । विसर्ग इति । विविधं सृज्यते क्षिप्यते इति विसर्गः ॥ ⌣क⌣पौ चापि पराश्रयाविति । पराश्रयाविति परौ ककारपकारौ अश्रयः स्थानं ययोस्तौ पराश्रयौ । तथा च वक्ष्यति—

"अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः" इति ।

अपरः पाठः ⌣क⌣पावपि परौ स्मृतौ । अनुस्वारविसर्गयोः पराविद्यर्थः । अपरोऽपि पाठः— ⌣क⌣पौ चापि कपाश्रयौ ककारपकारौ आश्रयः स्थानं ययोस्तौ कपाश्रयौ । चशब्दादनुस्वारविसर्जनीयावपि पराश्रयौ ॥ दुःस्पृष्टश्चेतीति । ईषत्स्पृष्टो वर्णधर्मो न वर्णान्तरम् । वक्ष्यति च 'अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषत्' इति । तथा चौदव्रजिः 'तत्र स्पृष्टं प्रयतनं करणं स्पर्शानाम्' 'दुःस्पृष्टमन्तःस्थानाम्' इति । यण्भक्तिश्च ऌकारो विद्यते । अतो ऌकारो दुःस्पृष्टधर्मा, चशब्दात् ऋकारः । इतिशब्दः पादपूरणार्थः । ऌकार इति । ऌवर्णात् कारप्रत्ययः । प्लुत एव चेति । ऌकारस्य दीर्घादयो न सन्तीत्यधस्तात् परमतमुपन्यस्तम् । स्वमतं चाह—ऌकारः प्लुत एव चेति । त्रिमात्रः, चशब्दाद्ध्रस्वश्च । ननु वर्णानां प्रयत्नमुपरिष्टाद्वक्षत्येव, किमर्थमप्रस्तुतः प्रयत्नः कथ्यते ? उच्यते, प्लुतविधानार्थं तावल्लृकार उच्चारयितव्यः, उच्चारिते च ऌकारे लाघवार्थमप्रस्तुतोऽपि प्रयत्न उच्चारितः दुस्पृष्टश्चेति । अनुस्वारादयः प्लुतान्ताःपञ्च । पूर्वैरष्टपञ्चाशद्भिः सह त्रिषष्टिः । चतुःषष्टिः कथम् ? 'अनुस्वारो विसर्गश्च' इति पाटान्तरात् । कथं पुनरनुस्वारद्वयं ?

---

१ 'पराश्रयौ' इति भाष्यानुसारी पाठः ।

ह्रस्वदीर्घभेदेनेति ब्रूमः। तथा चोदव्रजि:—"अनुस्वरावं आं इत्यनुस्वारौ ह्रस्वदीर्घौ दीर्घह्रस्वौ वर्णौ" इति। अत एव चतुःषष्टिः॥५॥

अथ वर्णसंख्यापरिज्ञानोत्तरकालं चिन्त्यते, क एषामुच्चारयिता, कथं चोच्चारयति, केन क्रमेण चेत्याह

आत्मा बुद्धया [1]समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥६॥

आत्मेति। आत्मा शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्तः। कथं पुनरेतदवगम्यते? यथा शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्त आत्मा उच्यते, द्रष्टृत्वात्। द्रष्टा हि दृश्यादिव्यतिरिक्तो भवति, प्रयोजकत्वात् 'बुद्ध्यादीनि कर्तृप्रयोज्यानि, करणत्वात् कुठारवत्' इति। न्यायात् श्रुतेश्च। न्यायस्तावत् 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः इति स्वर्गादिफलसाधनानि कर्माणि श्रूयन्ते। स्वर्गश्च बायुशरीरोपभोग्यः, तद्व्यतिरिक्त आत्मा शरीरादेः। श्रुतेश्च "तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुषो वा मूर्ध्नो वाऽन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यः" इति। शरीरापक्रमणाय शरीरादिव्यतिरिक्त आत्मा। छान्दोग्यश्रुतेश्च—"एवमेवैष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतीरूपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" इति। क एषामुच्चारयितेति पृष्टे तस्योत्तरं वचनम् आत्मेति। कथमुच्चारयति केन क्रमेणेति प्रश्नद्वयस्योत्तरं दीयते स आत्मा बुद्ध्या सहार्थान् बाह्यान् समर्थ्य सम्यगवगम्यार्थप्रत्यायनाय यदि शब्दा उच्चार्यन्ते तदा मनो युङ्क्ते विवक्षया वक्तुमिच्छा विवक्षा तया। तच्च मनो नियुङ्क्ते आत्मा॥ मनः कायाग्निमाहन्तीति। तच्च मनो नियुक्तं सत् कायाग्निमाहन्ति कायाग्निं शरीराग्निम् आभिमुख्येनाहन्ति॥ स प्रेरयति मारुतमिति। सोऽग्निरभिहतः सन्मारुतं वायुं प्रेरयति॥६॥

मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम्। प्रातःसवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम्॥७॥

मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरमिति। मारुतो वायुरुरसि चरन्मन्द्रं स्वरमुत्पादयति। मन्द्रमिति मन्दे रक् प्रत्ययः॥ प्रातःसवनयोगमिति। प्रातःसवनेन सह योगोऽस्येति प्रातःसवनयोगस्तम्। तथा च ऐतरेयब्राह्मणे—'अथ मन्द्रं तपति तस्मात् मन्द्रया वाचा प्रातःसवने शंसेत्' इति। गायत्रं छन्दोऽस्याश्रयः। गायत्रं गायतेः स्तुतिकर्मणः। आच्छादयति छन्दः॥७॥

कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम्। तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम्॥८॥

कण्ठ इति। मारुत इति वर्तते, सवनं छन्दः स्वरं चरन्निति च। वर्णान् जनयतीति यावत्। कण्ठे चरन्वायुर्मध्यमं स्वरं जनयति। कण्ठे इति 'कण्ठेठः' (उ० सू० १०३) इति ठप्रत्ययः। मध्यं दिनं युनक्तीति माध्यन्दिनं सवनभाजं त्रिष्टुप्छन्दोऽनुगामिनम्॥ तारमिति। तार्तीयसवनमिति तृतीयसवनभाजं तारं स्वरं शीर्षण्यमिति मूर्धनि चरन् वायुं जनयत्युत्पादयति जागतछन्दोऽनुगामिनम्। जागतं छन्दोऽनुगच्छतीति जागतानुगः। शीर्षण्यमिति 'शीर्षंश्छन्दसि' (सू० ३५१३) इति शिरः शब्दस्य शीर्षभावः। तत्र भवं शीर्षण्यम्॥८॥

सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहितो वक्त्रमापद्य मारुतः। वर्णाञ् जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः॥९॥

सोदीर्ण इति। स वायुरुदीर्ण उर्ध्वगतो मूर्धानं यावदुपरितनां गतिमलभमानः शिरःकपालेनावरुद्धत्वात्पुनः प्रत्यावृत्य वक्त्रमेवापद्य वर्णाञ्जनयते उत्पादयति। पुनर्मारुतग्रहणं विस्पष्टार्थम्। तेषां विभागः पञ्चधा स्मृत इति। तेषां वर्णानां जन्यमानानां विभागो विवेकः पञ्चधा पञ्चप्रकारः। 'संख्याया विधार्थे धा' (सू० १९८८) इति धा। स्मृतोऽनुमतः॥९॥

कैर्हेतुभिस्तेषां वर्णानां पञ्चधा विवेक इत्याह—

स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः। इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तं निबोधत॥१०॥ (२)

स्वरतः इति। स्वरस्थानहेतून् व्याख्यास्यामः। वर्णानां ज्ञातार एवमाहुः 'पञ्चधा विवेको वर्णानाम्' इति। स्वरतः उदात्तादिभेदेन। कालतः ह्रस्वादि। स्थानं कण्ठादि। प्रयत्नो द्विधा। अनुप्रदानं स्वरस्थाना-

१ 'समर्थ्यार्थान्' इति भाष्यपाठः।

दिकं घोषादि। अनु प्रकर्षेण दीयते इत्यनुप्रदानम्। 'द्वौ नादानुप्रदानौ' इत्यौदव्रजिः। पञ्चधा विवेकं वर्णानां निपुणमुच्यमानं हे श्रोतारः! निबोधत शृणुत ॥१०॥

अत्र किञ्चिदुच्यते बालव्युत्पत्त्यर्थम्—ननु सर्वमेवैतदनुपपन्नम्। कथम्? आत्मा बुद्ध्या सहार्थान् समर्थ्य मनो युङ्क्त इति व्याख्यातम्। आत्मनश्च नियोजकभावो नोपपद्यते अकर्तृरूपत्वात् तस्य। तथा च श्रुतिः—"असङ्गो ह्ययं पुरुषः" इति, "अस्थूलमनण्वह्रस्वम्" इत्याधिका च। भवता चैवमात्मस्वरूपं व्याख्यातम्। आत्मनश्च नियोजकभावे शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्त इति शरीरादिव्यतिरिक्त आत्मा मनो युङ्क्ते इत्यनुपपन्नम्। उच्यते, अयमात्मा समर्थ्यार्थान्मनो युङ्क्त इत्येतत् क्षेत्रज्ञाभिप्रायम्। क्षेत्रज्ञस्य तदेव स्वरूपं यन्नियोजकत्वम्। तथा च मनुः—

"योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते। यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः॥
जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम्। येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च कर्मसु॥
ताबुभौ भूतसंपृक्तौ महाक्षेत्रज्ञ एव च। उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठति॥" इति।

तं व्याप्येति परमात्मानमाहुः। तथा च व्यासः—

"द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥"

ननु यद्यात्मा बुद्ध्या समर्थ्यार्थानित्युदाहृतो यो नित्यः। क्षेत्रज्ञ एवात्रात्माऽभिप्रेतो भवेत् ततः क्षेत्रज्ञ एवात्मशब्दस्य चरितार्थत्वात् शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्तत्वं कतरस्माच्छब्दात् त्वया वर्णितं, किमर्थं च? उच्यते, आत्मा बुद्ध्येत्यत्र द्वावप्यात्मानौ तौ क्षेत्रज्ञपरमात्माभिधेयरूपावभिप्रेतौ तन्त्रेणोच्चारितौ। तन्त्रेणोच्चारणं सूत्राणामलङ्कारः। एवं चेत् किमर्थं परमात्मनो वर्णनिमित्तत्वं यदुक्तम्, तत्रोच्यते—अपवर्गसाधनोपकारत्वाच्छिक्षायाः। अपवर्गस्य चायमेवोपायः शरीरादिव्यतिरिक्तस्य परमात्मनो बोधः। बुद्धेश्च बुद्ध्यादिभिरैक्यं भवति। किं तदपवर्गसाधनं यस्य शिक्षोपकारे वर्तते? उच्यते, वेदा यज्ञाश्च। तथा च श्रुतिः—'तमेतं वेदानुवचनेन विविदिषन्ति ब्रह्मचर्येण तपसा श्रद्धया यज्ञेनानाशकेन च" इति। वेदानुवचनयज्ञगतमन्त्राङ्गत्वात्सम्यग्वर्णोच्चारणेन यस्मान्मोक्षमाप्नोति। वक्ष्यति च 'अतुलं स सुखं समश्नुते' इति। अतुलं सुखं मोक्ष एव भवति। अलमतिप्रसङ्गेन।

प्रकृतमनुसरामः—

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः। ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि॥११॥
उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ। स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः॥१२॥
अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा। जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च॥१३॥
ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च। जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः॥१४॥
यद्योभावप्रसन्धानमुकारादिपरं पदम्। स्वरान्तं तादृशं विद्यात् यदन्यत् व्यक्तमूष्मणः॥१५॥ (३)
हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तःस्थाभिश्च संयुतम्। औरस्यं तं विजानीयात् कण्ठ्यमाहुरसंयुतम्॥१६॥

उदात्तश्चानुदात्तश्चेति। स्वरतः कालत इत्येतौ द्वौ हेतू श्लोके विवृणोति। स्वर उदात्तादिः। कालो मात्रा मात्राप्रभृतित्रिमात्रपर्यन्तः। उदात्त इत्युपरिष्टात् परिगृहीतः। अनुदात्तस्तद्विपरीतः, अधस्ताद् गृहीत इत्यर्थः। स्वरित इति स्वरान्तरम्। स्वरतीति स्वरितः आक्षेपनिष्पाद्यः, य उदात्तानुदात्तविकारः। तथा च नारद—

"उच्चादुच्चतरं नास्ति नीचान्नीचतरं तथा। त्रैस्वर्ये स्वरसंज्ञायां किंस्थानं स्वर उच्यते॥
उच्चनीचस्थयोर्मध्ये साधारण इति श्रुतिः। तं स्वरं स्वरसंज्ञायां प्रतिजानन्ति शैक्षिकाः"॥

स्वरास्त्रय इति। त्रय एव। ऋग्यजुर्विषयाः पञ्च षट्, सप्त च सामसु। ह्रस्व एकमात्रो दीर्घो द्विमात्रः प्लुतस्त्रिमात्रः। "निमेषकाला मात्रा स्यात्" इत्यौदव्रजिः। तथा च नारदः—

"निमेषकाला मात्रा स्याद्विद्युत्कालेति चापरे" इति।

इतिशब्दः प्रकारार्थः। अनेन प्रकारेण कालत हेतोः स्वरतश्च विषमभागनियमः। तथा च नारदः—'स्वर उच्चस्वरो नीचस्वरः स्वरित एव च। व्यञ्जनान्यत्र वर्तन्ते यत्र तिष्ठति स स्वरः" इति ॥११-१६॥

स्थानत इति यदुक्तं तदाह—

कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्याओष्ठजावुपू। स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः॥१७॥

कण्ठ्यावहाविति। कण्ठ्यावहौ अकारहकारौ कण्ठतो जातौ॥ इचुयशास्तालव्याः इकारश्च चवर्गश्च यकारशकारौ च, एते तालव्याः तालुस्थाने भवाः। 'चु' इत्युकारोऽनुबन्धो वर्गं ज्ञापयति। वर्गादावन्यत्रापि 'कुचुटुतुपु' इत्येवमादिषु उकारः पञ्चवर्णपरिग्रहणार्थः। तथा च पाणिनिः—"अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः" इति। औदव्रजिरपि "स्पर्शवर्गस्य स्पर्शग्रहणे च ज्ञेयम्। वर्गस्य ग्रहणं स्थानेष्वित्याकारः" इति॥ ओष्ठजावुपू—उकारः पवर्गश्च ओष्ठयोर्जातौ॥ स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा इति। ऋकारः टवर्गश्च रेफषकारौ च मूर्द्धन्या भवेयुः॥ दन्त्या लृतुलसा इति। लृकारस्तवर्गश्च लकार सकारौ च दन्तेषु भवाः॥१७॥

जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैः। एऐ तु कण्ठतालव्या ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ॥१८॥

जिह्वामूले इति। कवर्गस्तु जिह्वामूले कथितः। दन्त्योष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैरिति। वकारो दन्त्योष्ठ्यो भवतीति पण्डितैः स्मर्यते॥ एऐ तु कण्ठतालव्या इति। एकार ऐकारश्च कण्ठतालुतो जातौ॥ ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृताविति। ओकारश्चौकारश्च कण्ठोष्ठयोर्जातौ॥१८॥

अर्धमात्रा तु कण्ठ्या स्यादेकारैकारयोर्भवेत्। ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विवृतसंवृतम्॥१९॥

संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम्। **घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः॥२०॥ (४)**

स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम्। **तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यमैचौ तथैव च॥२१॥**

अनुस्वारयमानां च नासिका स्थानमुच्यते। **अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थान[1]भागिनः॥२२॥**

अर्धमात्रा इति। अर्धमात्रा तु कण्ठस्य भवति। कयोः? एकारस्यौकारस्य च। सवर्णग्राहकत्वादैकारश्च औकारश्च द्वावपि गृह्येते। अतश्चतुर्णामपि सन्ध्यक्षराणामर्धमात्रा कण्ठसम्बन्धिनी भवेत्। अध्यर्धास्तालव्योष्ठस्थानाः॥ अयोगेति। अयोगवाहा इत्यनुस्वारादयश्चत्वार उच्यन्ते। अनुस्वारो विसर्गश्च ≍क≍पौ च कण्ठ्यौ। तथा च औदव्रजिः 'अयोगवाहाः अः इति विसर्जनीयः, ≍क इति जिह्वामूलीयः, ≍प≍फ इत्युपध्मानीयः, अं इत्यनुस्वारः नासिक्यः, इत्ययोगवाहाः। न विद्यते योगः संयोगो वर्णान्तरेण येषां ते अयोगवाहाः॥ आश्रयस्थानभाजिन इति। आश्रयस्य ककारादेः स्थानं भाजितुं शीलं येषां ते आश्रयस्थानभाजिनः। अन्ये तु यमानप्ययोगवाहान्मन्यन्ते। तेषां मतेन अयोगवाहशब्दः प्रत्यस्तमितावयवो रूढिशब्दोऽश्वकर्णवद्वेदितव्यः। अनुस्वारस्य स्वरूपमाह अनुस्वारस्य प्रकृतिः पाणिनिनैव कथिता "मोऽनुस्वारः" इति॥१९-२०-२१-२२॥

अलाबुवीणानिर्घोषो दन्तमूल्यः स्वराननु। **अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च॥२३॥**

अनुस्वारे विवृत्यां तु विरामे चाक्षरद्वये। **द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद् यत्रौकारवकारयोः॥२४॥**

व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्। **भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान् प्रयोजयेत्॥२५॥**

यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रँ इत्यभिभाषते। **एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खे अराँ इव खेदया॥२६॥**

रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन् नो ग्रसेत् पूर्वमक्षरम्। दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात् पश्चान्नासिक्यमाचरेत्॥२७॥

हृदये चैकमात्रस्त्वर्द्धमात्रस्तु मूर्धनि। नासिकायां तथाऽर्द्धं च रङ्गस्यैवं द्विमात्रता॥२८॥

हृदयादुत्करे तिष्ठन् कांस्येन समनुस्वरन्। मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वाँ २ इति निदर्शनम्॥२९॥

मध्ये तु कम्पयेत् कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत्। **स रङ्गं कम्पयेत् कम्पं रथीवेति निदर्शनम्॥३०॥**

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः। सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते॥३१॥ (६)

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः। अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः॥३२॥

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः। धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः॥३३॥

शङ्कितं भीतमुद्घृष्टमव्यक्तमनुनासिकम्। काकस्वरं शिरसिगतं तथा स्थानविवर्जितम्॥३४॥

---

१ 'भाजिनः' इति भाष्यसमतपाठः।

उपांशुदष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम् ।
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं तु सानुनास्यम् ॥३५॥
प्रातः पठेन्नित्यमुरः स्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन ।
मध्यंदिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसंकूजितसन्निभेन ॥३६॥
तारं तु विद्यात् सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम् ।
मयूरहंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन ॥३७॥ (७)

अलाब्विते । अलाबुस्तुम्बी, तस्या वीणाया निर्घोष इव शब्दो यस्य सोऽलाबुवीणानिर्घोषः । स्थान दन्तमूलं तत्र भवो दन्तमूल्यः । स्वरान् अकारादीन् अनु भवतीति शेषः । हकाररेफयोः शषसेषु च सदा भवति । तथा च नारदः—

'आपद्यते मकारो रेफोष्मसु प्रत्ययेष्वनुस्वारम् । यवलेषु परसवर्णं स्पर्शेषु चोत्तमापत्तिम्'' इति ।

''अष्टौ स्थानानि वर्णनामुरः कण्ठः शिरस्तथा । जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च'' ॥

इति इमं श्लोकमनुवादरूपं केचित् पठन्ति ॥२३-३७॥

स्वरतः कालतः स्थानतो वर्णानां भेदः कथितः । अधुना प्रयत्नतो भेदः कथ्यते प्रकर्षेण यत्नो वर्णोच्चारणं प्रत्यस्पृष्टादिभिः स प्रयत्नः ।

अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नेमस्पृष्टाः शलस्तथा । शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधानुप्रदानतः ॥३८॥

अजिति । अजिति प्रत्याहारग्रहणम् । 'अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ' एते अस्पृष्टाः । यणः यवरलाः, एते ईषत्स्पृष्टाः । शविति प्रत्याहारग्रहणं शषसाः, एते नेमस्पृष्टाः । अर्धस्पृष्टा इत्यर्थः । तथेति पादपूरणार्थं ॥ शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता इति । हल इति प्रत्याहरग्रहणं हकारादारभ्याऽऽलकारात् । शेष इति उपर्युक्तादन्यः शेषः । यणः शरश्च ईषत्स्पृष्टाः, तद्वर्जिता हलः स्पृष्टाः स्वस्थानैः कथिताः ॥ निबोधानुप्रदानत इति । अनुप्रदानमिति स्वस्थानादिकं घोषादि अनुप्रकर्षेण दीयते इति अनुप्रदानम् ''द्वौ नादानुप्रदानौ'' इत्यौदव्रजिः अनुप्रदानतो हेतोर्वर्णानां भेदं श्रृणु ॥३८॥

ञमोऽनुनासिकानह्वो नादिनो हझषः स्मृताः । ईषन्नादा १यणं जश्च श्वासिनस्तु खफादयः ॥३९॥

ञमिति । प्रत्याहारग्रहणं 'ञ म ङ ण न म्' । अनुनासिक इति । स्वस्थानैरधिका अनुपाठाः, नासिकामनुभवन्तीति अनुनासिकाः ञमणनमोऽनुनासिकानिमान् जानीयात् । तथा च पाणिनिः 'मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः' इति ॥ अह्न इति अकारो रेफश्च हकारो झषश्च । प्रत्याहारग्रहणं झ इति, 'झभघढधष्' एते अह्लादयो नादिनः स्मर्यन्ते । नाद एषामस्तीति नादिनः । अपरः पाठः अमोनुनासिका न ह्रौ । अम इति प्रत्याहारग्रहणं 'अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न म्' एते अनुनासिकाः । न ह्रौ न तु रेफहकारौ अमावपि सन्तौ । नादिनो हझषः स्मृताः । हकारो झषश्च नादिनः, झषः झभघढधषः, अस्यार्थे पाठद्वयात् अमां हकाररेफवर्जितानां विकल्पेनानुनासिकत्वम्, ञमां तु नित्यम् । तथा च शौनक—

''सचादयो या विहिता विवृत्तयः प्लुतोपधान्ता अनुनासिकोपधाः'' इति ।

तथा उकारश्चेति करणे युक्तो रक्तः पृक्तो द्राघितः शाकलेनेति । अकाररेफयोः प्रथमे पाठे नादित्वं, द्वितीयपाठे हकाररेफयोर्नासिकत्वप्रतिषेधः ॥ ईषन्नादा यण्जशस्त्विति । यणः कथिताः । जशस्तु जकाराद्याः शकारेण प्रत्याहारः 'ज ब ग ड द श्' एते यण् जशश्च ईषन्मनाक् नादाः ॥ श्वासिनस्तु खफादय इति । 'खफछठथाः' एते श्वासिनः श्वास एषामस्तीति श्वासिनः ''श्वासो घोषाणां तृतीयात् प्रथमानामुभावघुषोश्चतुर्थानां युग्माः सोष्माणम्'' इति चौदव्रजिः ॥३९॥

ईषच्छ्वासांश्चरो विद्याद्गोर्धामैतत् प्रचक्षते । दाक्षीपुत्र२पाणिनिना येनेदं व्यापितं भुवि ॥४०॥
छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते । ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥४१॥

---

१ 'यण्जशः' इति भाष्यपाठः । २ दाक्षीपुत्रः पाणिनिना' इत्येवं पाठो वैदिकसंप्रदाये समुपलभ्यते । स चावन्वितः, आर्षो वा ।

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् । तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥४२॥

उदात्तमाख्याति वृषोऽङ्गुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा ।

उपान्तमध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव ॥४३॥

उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात् प्रचयं मध्यतोऽङ्गुलिम् । निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम् ॥४४॥

अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् ।

मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नवपदशय्या ॥४५॥

अग्निः सोमः प्रवो वीर्यं हविषां स्वर्बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती ।

अग्निरित्यन्तोदात्तं सोम इत्याद्युदात्तं प्रेत्युदात्तं व इत्यनुदात्तं वीर्यं नीचस्वरितम् ॥४६॥

हविषां मध्योदात्तं स्वरिति स्वरितम् । बृहस्पतिरिति द्व्युदात्तमिन्द्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तम् ॥४७॥

अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः । स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ॥४८॥ (९)

चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं चैव वायसः । शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्द्धमात्रकम् ॥४९॥

कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम् । न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषात् ॥५०॥

सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नाय्यं सुव्यवस्थितम् । सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥५१॥

ईषच्छ्वासांश्चरो विद्यादिति । चर इति प्रत्याहारग्रहणं 'च ट त क प श ष स र्' एतन्नामकान् ईषच्छ्वासान् जानीयात् ॥ गोधामैतत्प्रचक्षत इति । गोर्वाचः, धाम स्थानम्, एतच्छास्त्रमाचक्षते वर्णविदः शास्त्रानुपूर्व्यमिति य उक्ताः ॥४०-५१॥

अथ मन्त्रव्यत्यासलक्षणमाह—

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥५२॥

अवक्षरमनायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम् । अक्षता शस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके ॥५३॥

हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम् । ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति ॥५४॥

हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् । ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ॥५५॥ (१०)

मन्त्रः—मननान्मन्त्रः स्वरतः—उदात्तादिभेदतः, वर्णतः—त्रिषष्ठिरित्यादिभेदतः, मिथ्याप्रयुक्तः—यः स्वरो यो वर्णस्तमज्ञात्वैव प्रयुक्तः, न तमर्थमाह:—तस्यार्थं न वेद । स ईदृशो मन्त्रो वाग्रूपो वज्रसमो यजमानं हिनस्ति । तत्र दृष्टान्तमाह—यथा स्वरतोऽपराधाद् इन्द्र एव शत्रुहन्ताऽभूदिति ॥५२-५५॥

इदानीं गुरुपूर्वक्रममाह—

शङ्कर शाङ्करीं प्रादाद्दाक्षीपुत्राय धीमते । वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः ॥५६॥

शङ्कर इति । शङ्करः शं सुखं करोतीति शङ्करः सुखकरः शाङ्करीं सुखकरीं विद्यां दाक्षीपुत्राय ऋषये दाक्षीनाम्नी ऋषिकन्या तत्पुत्राय धीमते बुद्धिमते प्रादाद्दत्तवान् ॥५६॥

सम्प्रति पाणिनिस्तुतिपरं श्लोकमाह—

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् । कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥५७॥

येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः । तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥५८॥

अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ॥५९॥

येनेति । नन्वप्रकृतं स्तुतिपूर्वकं पाणिनेर्नमस्कारकरणं किमर्थम् ? उच्यते, अचोस्पृष्टा यणस्त्वीषदिति प्रत्याहारैः शिक्षा ग्रथिता प्रत्याहाराश्च पाणिनिना शङ्करादधिगम्य कृत्स्नं समग्रं व्याकरणं प्रोक्तं शिष्योपकाराय स्वप्रत्याहारा लोके प्रवर्तिताः, तदर्था स्तुतिः। अक्षरसमाम्नायमिति प्रत्याहारानाहुः। ऋजवन्यत् ॥५७-५९॥

भगवतः शिक्षायाश्च साक्षात् स्तुतिपरं श्लोकमाह—

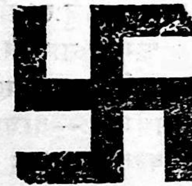
त्रिनयनमभिमुखनिःसृतामिमां य इह पठेत् प्रयतश्च सदा द्विजः ।
स भवति धनधान्यपशुपुत्रकीर्तिमानतुलं च सुखं समश्नुते दिवीति दिवीति ॥६०॥ (११)

अथ शिक्षामात्मोदात्तश्चहकारं स्वराणां यथा गीत्यचोस्पृष्टोदात्तं चाषस्तुशङ्कर एकादश ।

इति पाणिनीयशिक्षा समाप्त ॥

त्रिनयनेति । वैतालीयं छन्दोऽस्य, अन्येषामनुष्टुप् छन्दोऽस्ति । त्रिनयनः शिवस्तस्य मुखान्निःसृता यथा गुहायाः सिंहो निष्क्रामति तथा निःसृता, एतावता त्रिनयनेनापि न कृतेत्यर्थः । तां यः द्विजः पठेदधीयीत स धनादिभिर्युज्यते सुखमतुलं परमानन्दलक्षणमुक्तिमुक्तप्रकारेणाश्नुते प्राप्नोति । अन्यत्रामुष्मिन् लोके धनधान्यपशुकीर्त्तिभाग् भवत्यन्ते मुक्तिभाक्, अन्यदवान्तरफलानि स्वर्गादीनि परिमितकालत्वात् तोलयितुं शक्यन्ते मोक्षाख्यं तु अपरिमितकालवच्छिन्नं सुखरूपमित्यर्थः ॥६०॥

इति पाणिनीयशिक्षापञ्जिकाख्यं भाष्यं सम्पूर्णम् ।


श्रीहरिदास शास्त्री सम्पादिता ग्रन्थावली

(श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस से प्रकाशित)

ग्रन्थ	मूल्य
१-वेदान्तदर्शनम् भागवतभाष्योपेतम्	१५०.००
२-श्रीनृसिंह चतुर्दशी	१०.००
३-श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	२०.००
४-श्रीगौरगोविन्दार्चनपद्धति	२०.००
५-श्रीराधाकृष्णार्चनदीपिका	२०.००
६-७-८-श्रीगोविन्दलीलामृतम्	४५०.००
९-ऐश्वर्यकादम्बिनी	३०.००
१०-श्रीसंकल्पकल्पद्रुम	३०.००
११-१२-चतुःश्लोकीभाष्यम्, श्रीकृष्णभजनामृत	३०.००
१३-प्रेमसम्पुट	४०.००
१४-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
१५-ब्रजरीतिचिन्तामणि	४०.००
१६-श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	३०.००
१७-श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश	५०.००
१८-श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र	५.००
१९-श्रीहरिभक्तिसारसंग्रह	५०.००
२०-धर्मसंग्रह	५०.००
२१-श्रीचैतन्यसूक्तिसुधाकर	१०.००
२२-श्रीनामामृतसमुद्र	१०.००
२३-सनत्कुमारसंहिता	२०.००
२४-श्रुतिस्तुति व्याख्या	१००.००
२५-रासप्रबन्ध	३०.००
२६-दिनचन्द्रिका	२०.००
२७-श्रीसाधनदीपिका	६०.००
२८-स्वकीयात्वनिरास, परकीयात्वनिरूपणम्	१००.००
२९-श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२०.००
३०-श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	११०.००
३२-श्रीगौरांग चन्द्रोदय	३०.००
३१-श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्	३०.००
३३-श्रीब्रह्मसंहिता	५०.००
३४-भक्तिचन्द्रिका	३०.००
३५-प्रमेयरत्नावली एवं नवरत्न	५०.००
३६-वेदान्तस्यमन्तक	४०.००
३७-तत्वसन्दर्भः	१००.००
३८-भगवत्सन्दर्भः	१५०.००
३९-परमात्मसन्दर्भः	२००.००
४०-कृष्णसन्दर्भः	२५०.००
४१-भक्तिसन्दर्भः	३००.००
४२-प्रीतिसन्दर्भः	३००.००
४३-दशःश्लोकी भाष्यम्	६०.००
४४-भक्तिरसामृतशेष	१००.००
४५-श्रीचैतन्यभागवत	२००.००
४६-श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्	१५०.००
४७-श्रीचैतन्यमंगल	१५०.००
४८-श्रीगौरांगविरुदावली	४०.००
४९-श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत	१५०.००
५०-सत्संगम्	५०.००
५१-नित्यकृत्यप्रकरणम्	५०.००
५२-श्रीमद्भागवत प्रथम श्लोक	३०.००
५३-श्रीगायत्री व्याख्याविवृतिः	१०.००
५४-श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	२५०.००
५५-श्रीकृष्णजन्मतिथिविधिः	३०.००
५६-५७-५८-श्रीहरिभक्तिविलासः	६००.००
५९-काव्यकौस्तुभः	१००.००
६०-श्रीचैतन्यचरितामृत	२५०.००
६१-अलंकारकौस्तुभ	२५०.००
६२-श्रीगौरांगलीलामृतम्	३०.००
६३-शिक्षाष्टकम्	१०.००
६४-संक्षेप श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	८०.००
६५-प्रयुक्ताख्यात मंजरी	२०.००
६६-छन्दो कौस्तुभ	५०.००
६७-हिन्दू धर्मरहस्यम् वा सर्वधर्म समन्वयः	५०.००
६८-साहित्य कौमुदी	१५०.००
६९-गोसेवा	४०.००
७०-पवित्र गो	५०.००
७१-गोसेवा (गोमांसादि भक्षण विधिनिषेध) विवेचन)	५०.००
७२-रस विवेचनम्	५०.००
७३-अहिंसा परमो धर्मः	११०.००
७४-भक्ति सर्वस्वम्	५०.००

बंगाक्षर में मुद्रित ग्रन्थ

ग्रन्थ	मूल्य
१-श्रीबलभद्रसहस्रनाम स्तोत्रम्	१०.००
२-दुर्लभसार	१०.००
३-साधकोल्लास	५०.००
४-भक्तिचन्द्रिका	४०.००
५-श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२०.००
६-श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	३०.००
७-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
८-भक्तिसर्वस्व	३०.००
९-मनःशिक्षा	३०.००
१०-पदावली	३०.००
११-साधनामृतचन्द्रिका	४०.००
१२-भक्तिसंगीतलहरी	२०.००
१३-श्रीमन्त्रभागवतम्	७५.००

अंग्रेजी भाषा में मुद्रित ग्रन्थ

ग्रन्थ	मूल्य
१-पद्यावली (Padyavali)	२००.००
२-गोसेवा (Goseva)	५०.००
३-पवित्र गो (The Pavitra Go)	८०.००
४-A Revoew of "Beef in ancient India	२००.००
५-Scriptural Prohibitions on Meat-Eating	१००.००
६-Dinachandrika	५०.००

अंग्रेजी भाषा में मुद्रित ग्रन्थ

ग्रन्थ	भाषा
१-Pavitra Go	(Spanish)
२-Goseva Pavitra Go	(Italian)
३-गोसेवा (गोमांसादि भक्षण विधिनिषेध विवेचन)	(तमिल)
४-पवित्र गो	(तमिल)